श्रीयुत तिलक विजयजी पंजाबी

S Tilak Vijaya Punjabee

समर्पण

अनेक गुण विभूषित परम गुरुदेव श्रीमान् विजय वल्लभ सूरीश्वर महाराज की पूनीत सेवामें—

पूज्यवर्य गुरुदेव ! आपश्रीने जो मुझ किंकर पर अमूल्य उपकार किये हैं उस ऋणको मैं किसी प्रकार भी नहीं चुका सकता। प्रभो ! मैं चाहे जिस भेष और देशमें रहकर अपने कर्तव्य कार्योंमें प्रवृत्ति करता रहूं परन्तु आपश्री के मुझपर किये हुये उपकारोंका चित्र सदैव मेरे सन्मुख रहता है और मुझसे बने हुये यत्किंचित् उन प्रशस्त कार्योंको आपकी ही कृपा समझकर आपको ही अर्पित करता रहता हूं।

वर्तमान जैन समाजकी बीमारीका निदान आप भली प्रकार कर सके हैं अतः आप उस सामाजिक अज्ञान तिमिर रोगको दूर करनेके लिये जैन समाजमें आज ज्ञान प्रचार औषधीका अद्वितीय प्रचार कर रहे हैं। इस क्रान्तिकारी युगमें प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य है कि वह उदार भाव पूर्वक अपने धर्म और समाजकी उन्नतिके कार्यके साथ साथ देशहित कार्योंमें भी अपनी शक्तिका कुछ हिस्सा अवश्य व्ययकरे इस बातको भली प्रकार समझ कर आप श्री देश हितार्थ और त्यागी पदको सुशोभित करने वाली खादीको स्वयं अंगीकार कर इस फैसन प्रिय जैन समाजमें उसका प्रचार कर रहे हैं। आप हिन्दी प्रचारके भी बड़े प्रेमी हैं। आपकी सदैव यह इच्छा रहती है कि जैन धर्म संबन्धी आचार विचार के ग्रन्थ हिन्दी भाषामें अनुवादित हो प्रकाशित होने चाहिये और आप तदर्थ प्रवृत्ति भी करते रहते हैं।

समाजके आचार्य उपाध्याय आदिपद धारी विद्वानोंमें समाज को समयानुसार समुन्नतिके पथ पर लेजानेके लिये अश्रान्त प्रवृत्ति करने वालोंमें आज आपका नाम सबसे प्रथम गिना जाता है। आपके इन अनेकानेक परोपकार युक्त सद्गुणों से मुग्ध हो मैं यह अपना छोटासा शुभ प्रयत्न जन्य श्राद्धविधिका हिन्दी अनुवाद आपके पवित्र करकमलों में समर्पित करता हूं। आशा है कि आप इसे स्वीकृत कर मुझे विशेष उपकृत करेंगे। भवदीय तिलक

भूमिका

यह बात तो निर्विवाद ही है कि जिस धर्मके आचार विचार सम्बन्धी साहित्य का समयानुसार जितने अधिक प्रमाण में प्रचार होता है उसके आचार विचार का भी उस धर्मके अनुयायी समाज में उतने ही अधिक प्रमाण में प्रचार होता है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि आज गुजराती जैन समाज में जितना जैनधर्म के आचार विचार का अधिक प्रचार है उतना मारवाड़, यू० पी०, पंजाब और बंगालके जैन समाज में नहीं है। क्योंकि गुजरात में गुजराती भाषामें जैनधर्म के आचार विचार—धार्मिक क्रियाकाण्ड विषयक साहित्य का समयानुकूल काफी प्रकाशन हो गया है और प्रतिदिन हो रहा है। परन्तु एक गुजरात को छोड़ अन्य देशके निवासी जैनियों में प्रायः अधिकतर राष्ट्र-भाषा हिन्दीका ही प्रचार है और हिन्दी भाषामें अभी तक उन जैन ग्रन्थोंका बिलकुल कम प्रमाण में प्रकाशन हुआ है कि जिनके द्वारा समाज में धार्मिक आचार विचार एवं क्रियाकाण्ड का प्रचार होना चाहिये।

यद्यपि पूर्वाचार्यों द्वारा रचित जैन साहित्य प्राकृत एवं संस्कृत में आज विशेष प्रमाण में प्रकाशित हो गया है परन्तु विद्वान् त्यागीवर्ग के सिवा श्रावक समाज उससे कुछ लाभ नहीं उठा सकता। उसे यदि अपनी नित्य बोलचाल की भाषामें उस प्रकारके ग्रन्थोंका सुयोग मिले तब ही वह उसका लाभ प्राप्त कर सकता है। इसी कारण मैंने हिन्दीभाषा भाषी कई एक सज्जनों की प्रेरणा से जैनसमाज में आज सूत्रसिद्धान्त की समानता रखने वाले और श्रावक के कर्तव्यों से परिपूर्ण श्राद्धविधि प्रकरण—श्रावक विधि नामक इस महान् ग्रन्थ का गुर्जर गिरासे राष्ट्रभाषा हिन्दीमें अनुवाद किया है।

साधारण ज्ञानवान धर्मपिपासु मनुष्यों का सदैव धार्मिक क्रियाकाण्ड की

ओर विशेष ध्यान रहता है और ऐसा होना अत्यावश्यक है, परन्तु जब तक मनुष्य को अपने करने योग्य धार्मिक और व्यवहारिक क्रिया कलापका विधि विधान एवं उन क्रियाओं में रहे हुये रहस्यका परिज्ञान न हो तब तक वह उन क्रियाओं के करनेसे भी विशेष लाभ नहीं उठा सकता। इस त्रुटिको पूर्ण करनेके लिये क्रियाविधि वादियों के वास्ते यह ग्रन्थ अद्वितीय है।

इस ग्रन्थके रचयिता विक्रमकी पंद्रहवीं शताब्दी में स्वनामधन्य श्रीमान् रत्नशेखर सूरि हुये हैं। सुना जाता है कि श्री सुधर्मस्वामी की पट्टपरम्परा में उनकी ४८ वीं पाट पर श्री सोमतिलक सूरि हुये, उनकी पाट पर देवसुन्दर सूरि, उनकी पाट पर मुनिसुन्दर सूरि, मुनिसुन्दर सूरिकी पाट पर श्रीमान् रत्नशेखर सूरि हुये हैं। उनका जन्म विक्रम संवत् १४५७ में हुआ था। पूर्वोपार्जित सुकृतके प्रभावसे बचपन से ही संसारसे विरक्त होनेके कारण मात्र ६ वर्षकी ही वयमें उन्होंने सम्वत् १४६२ में असार संसारको त्याग कर दीक्षा अंगीकार की थी। आप की अलौकिक बुद्धि प्रगल्भता के कारण आपको सम्वत् १४८३ में पण्डित पदवी प्राप्त हुई और तदनन्तर सम्वत् १५२० में आप सूरि पदसे विभूषित हुये।

आपने अपनी विद्वत्ता का परिचय दिलाने वाले श्राद्धप्रतिक्रमण वृत्ति, अर्थदीपिका, श्राद्धविधि सूत्रवृत्ति, श्राद्धविधि पर विधिकौमुदी नामक वृत्ति, आचारप्रदीप और लघुक्षेत्र समास आदि अनेक ग्रन्थ संस्कृत एवं प्राकृत भाषा में लिख कर जैन समाज पर अत्युपकार किया है। आपके रचे हुये विधिवाद के ग्रन्थ आज जैन समाजमें अत्यन्त उपयोगी और प्रमाणिक गिने जाते हैं। आपके ग्रन्थ अर्थकी स्पष्टता एवं सरलता के कारण ही अति प्रिय हो रहे हैं। यदि सच पूछा जाय तो जैन समाज में विधिवाद के ग्रन्थोंकी त्रुटि आपके ही द्वारा पूर्ण हुई है।

ग्रन्थकर्त्ता के बौद्धिक चमत्कार से जैनी ही नहीं किन्तु जैनेतर जनता भी मुग्ध हो गई थी। आचार्य पद प्राप्त किये बाद जब वे स्थम्भन तीर्थकी यात्रार्थ खंभात नगरमें पधारे तब उनकी अति विद्वत्ता और चमत्कारी वादी शक्तिसे मुग्ध हो तत्रस्थ एक बांबी नामक विद्वान्‌ने उन्हें 'बाल सरस्वती' का विरुद प्रदान किया था। जैन समाज पर उपदेश द्वारा एवं कर्तव्य का दिग्दर्शन कराने वाले अपने ग्रन्थों द्वारा अत्यन्त उपकार करके वे सम्बत् १४२७ में पोष कृष्ण षष्ठीके रोज इस संसारकी जीवनयात्रा समाप्त कर स्वर्ग सिधारे।

बिधिबाद के ग्रन्थोमें प्रधानपद भोगने वाले इस श्राद्धविधि प्रकरण नामक मूलग्रन्थ की रचना ग्रन्थकर्त्ता ने प्राकृत भाषामें मात्र १७ गाथाओंमें की है, परन्तु इस पर उन्होंने स्वयं संस्कृतमें श्राद्धविधि कौमुदी नामक छह हजार सातसौ इकसठ श्लोकोंमें जबरदस्त टीका रची है। उस टीकामें ग्रन्थ कर्त्ता ने श्रावकके कर्तव्य सम्बन्धी प्रायः कोई विषय बाकी नहीं छोड़ा। इसी कारण यह ग्रन्थ इतना बड़ा होगया है। सचमुच ही यह ग्रन्थ श्रावक कर्तव्य रूप रत्नोका खजाना है। धार्मिक क्रिया विधिविधान के जिज्ञासु तथा व्यवहारिक कुशलता प्राप्त करनेके जिज्ञासु प्रत्येक श्रावकको यह ग्रन्थ अपने पास रखना चाहिये। इस ग्रन्थके पढ़नेसे एवं मनन करनेसे धार्मिक क्रियाओं के करनेका सरलता पूर्वक रहस्य और सांसारिक व्यवहार में निपुणता प्राप्त होती है और धर्म करनी करने वालोंके लिये यह पवित्र ग्रन्थ हितैषी मार्ग दर्शक का कार्य करता है।

अनुवाद के उपरान्त इस ग्रन्थके प्रथमके बारह फार्म छोड़ कर इसका संशोधन कार्य भी मेरे ही हाथसे हुआ है अतः यदि इसमें दृष्टिदोष से कहींपर प्रेस सम्बन्धी या भाषा सम्बधी त्रुटियें रह गई हों तो पाठक वृन्द सुधार कर पढ़ें और तदर्थ मुझे क्षमा करें।

विनीत तिलक विजय.

निवेदन

इस ग्रन्थका अनुवाद कार्य तो दो वर्ष पूर्व ही समाप्त होचुका था। संवत् १९८३ के चैत्र मासमें प्रारम्भ कर जेठमास तक इस महान् ग्रन्थका भाषान्तर निर्विघ्नतया पूर्ण होगया था, परन्तु इतने बड़े ग्रन्थ को छपानेके लिये आर्थिक साधनके अभावसे मैं इसे शीघ्र प्रकाशित न कर सका। कुछ दिनोंके बाद साधन संपादन कर लेने पर भी मुझे इसके प्रकाशन में कई एक भव्य जन्तुओं के कारण विघ्नोंका सामना करना पड़ा।

ग्रन्थका अनुवाद किये चारेक महीने बाद मैं अहिंसा प्रचारार्थ रंगून गया, वहां पर सज्जन श्रावकोंकी सहाय एवं एक विद्वान बौद्ध फुंगी-साधुकी सहाय से देहात तकमें घूम कर करीब ढाई हजार बुद्धिष्टोंको मांसाहार एवं अपेय सुरापान छुड़वाया। जब देहातमें जाना न बनता था तब कितने एक सज्जनों के आग्रह से रंगून में जैन जनता को एक घंटा व्याख्यान सुनाता था। इससे तत्रस्थ विचारशील जैन समाज का मुझ पर कुछ प्रेम होगया, परन्तु एक दो व्यक्तियों को मेरा कार्यार्थ रेलवे तथा जहाज वगैरहसे प्रवास करना आदि नूतन आचार विचार बड़ा ही खटकता था।

वहांके संघमें अग्रगण्य श्रीयुत प्रेमजी भाई जो मेरी स्थापन- की हुई वहांकी जीवदया कमेटी के मानद मन्त्री थे एक दिन उन्होंने मुझसे कहा कि शायद मुझे देशमें जाना पड़े, यदि पीछे आपको कुछ द्रव्यकी जरूरत हो तो फरमावें। मैंने समय देख कर कहा कि मुझे मेरे निजी कार्यके लिये द्रव्य की कोई आवश्यकता नहीं है परन्तु मैंने श्राद्धविधि नामक श्रावकों के आचार विचार सम्बन्धी एक बड़े ग्रन्थका भाषान्तर किया है और उसके छापनेमें करीब तीनेक हजार का खर्च होगा, सो मेरी इच्छा है कि यह ग्रन्थ किसी प्रकार प्रकाशित होजाय। प्रेमजी भाई ने कहा कि यहांके संघमें ज्ञान खातेका द्रव्य इकट्ठा हुआ पड़ा है सो हम संघकी ओरसे इस ग्रन्थको छपवा देंगे। उन्होंने वैसा प्रयत्न किया भी सही।

एक दिन जब संघकी मिटींग किसी अन्य कार्यार्थ हुई तब उन्होंने यह बात भी संघ समक्ष रख दी। संघकी तरफसे यह बात मंजूर होती जान एक दो व्यक्ति जो मेरे आचार विचारसे विरोध रखते थे हाथ पैर पीटने लगे। तथापि विशेष सम्मति से रंगून जैन संघकी ओरसे इस ग्रन्थ को छपानेका निश्चय होगया और पांच सौ रु० कलकत्ता जहां ग्रन्थ छपना था नरोत्तम भाई जेठा भाई पर भेजवा दिये गये। ग्रन्थ छपना शुरू हो गया, यह बात मेरे विरोधियों को बड़ी अखरती थी।

कई एक आवश्यकीय कार्यों के कारण मुझे पूना आना पड़ा फिर तो भवा जन्तुओं ने मेरे अभावका लाभ उठा लिया। इधर प्रेमजी भाई भी देशमें चले गये थे। अब राणाजी की चढ़ बनी। बिचारे भोले भाले जयपुर वाले उस मैनेजिंग ट्रष्टीके मेरे विरुद्ध कान भर दिये गये एवं आठ मास तक परिश्रम करके याने बर्मा के देहात में भूख प्यास सह कर किये हुये मेरे अहिंसा प्रचार प्रशस्त कार्यको लोगोंके समक्ष अप्रशस्त रूपमें समझाया गया, बस फिर क्या था? विचार शक्तिका अभाव होनेके कारण बिना पेंदोके लोटेके समान तो हमारा धार्मिक समाज है ही। ग्रन्थमें सहायता देना नामंजूर होगया, भेजी हुई रकम कलकत्ता से वापिस मंगवा ली गई ग्रन्थ छपना बन्द पड़ा।

इस समय हार्टकी बीमारी से पीड़ित हो जिन्दगी की खतर नाक हालत मे मैं डाक्टरकी सम्मति से देवलाली नासिक में पड़ा था। छपता हुआ ग्रन्थ बन्द होजाने पर डेढ महीने बाद कुछ अनारोग्य अवस्था में ही मुझे कलकत्ता आना पड़ा। मैं चाहता था कि कोई व्यक्ति इसके छपानेका कार्य भार ले ले तो मैं इससे निश्चिन्त हो अपने दूसरे कर्तव्य कार्यमें प्रवृत्त रहूं, इसलिये मैं दो चार श्रीमन्त श्रावकों से मिलकर वैसी कोशिश की। परन्तु दाल न गलने पर मैंने कलकत्ता में ग्राहक बना २ कर इस कामको चालू कराया। अपरिचित व्यक्तियों को ग्राहक बना कर इतने बड़े ग्रन्थका खर्च पूरा करनेमें कितना त्रास होता है इसका अनुभव मेरे सिवा कौन कर सकता है? तथापि कार्य करनेकी दृढ़ भावना वाले निराश हो स्वकर्तव्य से परान्मुख नहीं होते। अन्तमें गुरुदेव की कृपासे मैं कृतकार्य हो आप सज्जनोंके सन्मुख इस ग्रन्थको सुन्दर रूपमें रख सका।

मित्रवर्य यति श्री मनसाचन्द्रजी और मद्रास निवासी श्रावक श्री पुखराजमल जी की प्रेरणा से मैंने यह श्राद्ध विधि नामक ग्रन्थ श्रीयुत चीमनलाल साकलचन्द जी मारफतियां द्वारा संस्कृत से गुजर भाषान्तर परसे हिन्दी अनुवाद किया है अतः मैं उन्हें धन्यवाद देता हूं। प्रथम इस ग्रन्थमें सुज्ञ श्रीमान् बाबू बहादुरसिंह जी सिंघीकी ओरसे सहायता मिली है इसलिये वे भी धन्यवाद के पात्र हैं। कलकत्ता में मेरे कार्यमें श्रीमान् बाबु पूर्णचन्द्रजी नहार बी० ए० एल० एल० बी० वकील तथा यति श्रीयुत सूर्यमलजी तथा वयोवृद्ध पण्डित वर्य श्रीमान् बाबा हेमचन्द्रजी महाराज एवं उनके सुयोग्य शिष्य श्रीयुत यतिवर्य कर्मचन्द्रजी तथा कनकचन्द्रजी आदिसे मुझे बड़ी सरलता प्राप्त हुई है अतः आप सब सज्जनों को मैं साभार धन्यवाद देता हूं।

माघ कृष्ण दशमी, कलकत्ता।

विनीत—तिलक विजय पंजाबी

श्राद्ध-विधि प्रकरण।

(अर्थात् श्रावक विधि)

टीका मंगलाचरण।

अर्हत्सिद्धगणींद्रवाचकमुनिप्रष्ठाः प्रतिष्ठास्पदम्,
पंचश्रीपरमेष्ठिनः प्रददतां प्रोच्चैर्गरिष्ठात्मतां।
द्वैधान् पंचसुपर्वणां शिखरिणः प्रोद्दाममाहात्म्यत-
श्चेतश्चिंतितदानतश्च कृतिनां ये स्मारयंत्यन्वहम् ॥ १ ॥

अर्थ—जो पुण्यवन्त प्राणियों को अपने प्रबल प्रभाव से और मनवांछित देने से निरंतर स्मरण कराता है, दो प्रकार के पांच भेद के देवों में शिरोमणि भाव को धारन करता है और जिस में अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और मुनि ये पांचों मुख्य हैं वह बाह्याभ्यन्तर शोभावान् पंच परमेष्ठी केवलज्ञानादिक प्राप्त कराने वाली आत्मगुणों की स्थिरता की पदवी को समर्पण करो।

श्रीवीरं सगणधरं प्रणिपत्य श्रुतगिरिं च सुगुरुंश्च।
विवृणोमि स्वोपज्ञं श्राद्धविधि प्रकरणं किंचित् ॥ २ ॥

अर्थ—गणधर सहित ज्ञान दर्शन और चारित्ररूप लक्ष्मी के धारक श्री वीर परमात्मा, तथा सरस्वती और सुगुरु को नमस्कार कर के अपने रचे हुवे श्राद्धविधि प्रकरण को कुछ विस्तार से कथन करता हूं॥

युगवरतपागणाधिप, पूज्य श्रीसोमसुन्दर गुरूणाम्।
वचनादधिगततत्वः, सत्वहितार्थं प्रवर्तेऽहम् ॥ ३ ॥

अर्थ—तपगच्छ के नायक युगप्रधान श्री सोमसुन्दर गुरु के वचन से तत्व प्राप्त कर के भव्य प्राणियों के बोध के लिये यह ग्रन्थरचना-विवेचना की प्रवृत्ति करता हूं॥

ग्रंथ मंगलाचरण (मूलगाथा)

सिरि वीरजिणं पणमिअ, सुआओ साहेमि किमविसद्धविहि ।
रायगिहे जगगुरुणा जहभणियं अभयपुट्ठेणं ॥ १ ॥

केवलज्ञान अशोकादि अष्ट प्रातिहार्य पैंतीस वचनातिशय रूप लक्ष्मी से संपन्न चरम तीर्थंकर श्री वीर परमात्मा को उत्कृष्ट भावपूर्वक मन वचन कायासे नमस्कार करके सिद्धांतों और गुरु संप्रदाय द्वारा वारंवार सुना हुवा श्रावकका विधि कि जो अभयकुमार के पूछने पर राजगृह नगर में समवश्रित श्री महावीर स्वामी ने स्वयं अपने मुखारविन्द से प्रकाशित किया था वैसाही मैं भी किंचित् संक्षेप से कथन करता हूं।

इस गाथामें जो वीरपद ग्रहण किया है सो कर्मरूप शत्रुओं का नाश करने से सार्थक ही है। कहा है कि—

विदारयति यत्कर्म, तपसा च विराजते ।
तपोवीर्येण युक्तश्च तस्माद्वीर इति स्मृतः ॥ १ ॥

तप से कर्मों को दूर करते हैं, तप द्वारा शोभते हैं और तपसम्बन्धी वीर्यपराक्रम से संयुक्त हैं इसलिये वीर कहलाते हैं।

रागादि शत्रुओं को जीतने से जिनपद भी सार्थक ही है। तथा दानवीर, युद्धवीर और धर्मवीर एवं तीनों प्रकारका वीरत्व भी तीर्थंकर देव में शोभता ही है। शास्त्र में कहा है कि—

हत्वा हाटककोटिभिर्जगदसद्दारिद्यमुद्राकषम्,
हत्वा गर्भशयानपिस्फुरदरीन् मोहादिवंशोद्भवान् ।
तप्त्वादुस्तपमस्पृहेण मनसा कैवल्यहेतुं तप-
स्त्रेधा वीरयशोदधद्विजयतां वीरस्त्रिलोकीगुरुः ॥ १ ॥

इस असार संसार के दारिद्र्य चिन्ह को करोड़ों सौनैयों के दान द्वारा दूर कर के, मोहादि वंश में उत्पन्न हुए शत्रुओं को समूल विनाश कर तथा निस्पृह हो मोक्षहेतु तप को तप कर एवं तीन प्रकार से वीर यश को धारण करने वाले त्रैलोक्य के गुरु श्री महावीर स्वामी सर्वोत्कर्ष—सर्वोपरी विजयवन्त रहो।

"वीरजिन" इस पद से ही वे चार मूल अतिशय (अपायापगम—जिससे कष्ट दूर रहे, ज्ञानातिशय-उत्कृष्ट ज्ञानवान्, पूजातिशय—सब के पूजने लायक, वचनातिशय—उत्तमवाणी वाले) से युक्त ही हैं ॥

इस ग्रन्थ में जिन जिन द्वारोंका वर्णन किया जायगा उनका नाम बतलाते हैं:—

दिणरत्तिपव्वचउमासग वच्छरजम्मकिच्चिदाराइं ।
सड्ढाणणुग्गहथ्था सड्ढविहिए भणिज्जंति ॥ २ ॥

१ दिन कृत्य, २ रात्रि कृत्य, ३ पर्व कृत्य, ४ चातुर्मासिक कृत्य, ५ वर्ष कृत्य, ६ जन्मकृत्य। ये छह द्वार श्रावकों के उपकारार्थ इस श्रावकविधि नामक ग्रन्थमें वर्णन किये जावेंगे ॥

इस गाथा में मंगल निरूपण करके विद्या, राज्य और धर्म ये तीनों किसी योग्य मनुष्य को ही दिये जाते हैं अतः श्रावक धर्मके योग्य पुरुषका निरूपण करते हैं ॥

सड्ढत्तणस्सजुग्गो भद्दगपगई विसेसनिउणमई ।
नयमग्गरईतह दढनिअवयणठ्ठिइविणिद्दिठ्ठो ॥ १ ॥

१ भद्रक प्रकृति, २ विशेष निपुणमति–विशेष समझदार, ३ न्यायमार्गरति और दृढनिजप्रतिज्ञस्थिति। इस प्रकार के चारगुण संपन्न मनुष्य को सर्वज्ञोंने श्रावक धर्म के योग्य बतलाया है। भद्रक प्रकृति याने माध्यस्थादि गुणयुक्त हो परन्तु कदाग्रह ग्रस्त हृदय न हो ऐसे मनुष्य को श्रावक धर्म के योग्य समझना चाहिये। कहा है कि—

रत्तो दुट्ठो मूढो पुव्वंवुग्गाहिओ अ चत्तारि ।
एए धम्माणरिहा अरिहो पुण होइ मझ्झथ्थो ॥ १ ॥

१ रक्त याने रागीष्ट मनुष्य धर्मके अयोग्य है। जैसे कि भुवनभानु केवली का जीव पूर्वभव में राजा का पुत्र त्रिदण्डिक मत का भक्त था। उसे जैनगुरु ने बड़े कष्टसे प्रतिबोध देकर दृढधर्मी बनाया, तथापि वह पूर्व परिचित त्रिदंडीके वचनों पर दृष्टीराग होने से सम्यक्त्व को वमनकर अनन्त भवोंमें भ्रमण करता रहा। २ द्वेषी भी भद्रबाहु स्वामीके गुरुबन्धु वराहमिहरके समान धर्मके अयोग्य है। ३ मूर्ख याने वचन भावार्थ का अनजान ग्रामीण कुल पुत्र के समान, जैसे कि किसी एक गांवमें रहनेवाले जाटका लड़का किसी राजा के यहां नौकरी करने के लिये चला, उस समय उसकी माताने उसे शिक्षा दी कि बेटा हरएक का विनय करना। लड़के ने पूछा माता! विनय कैसे किया जाता है? माता ने कहा "मस्तक झुकाकर जुहार करना"। माता का वचन मन में धारण कर वह विदेशयात्राके लिये चल पड़ा। मार्गमें हिरनोंको पकड़नेके लिये छिपकर खड़े हुये पारधियोंको देखकर उसने अपनी माताकी दी हुई शिक्षाके अनुसार उन्हें मस्तक झुकाकर उच्च स्वरसे जुहार किया। ऊंचे स्वरसे की हुई जुहार का शब्द सुनकर समीपवर्ती सब मृग भाग गये, इससे पारधियोंने उसे खूब पीटा। लड़का बोला मुझे क्यों मारते हो, मेरी माता ने मुझे ऐसा सिखलाया था, पारधी बोले तू बड़ा मूर्ख है ऐसे प्रसंग पर "चुपचाप आना चाहिये" वह बोला अच्छा अबसे ऐसा ही करूंगा। छोड़ देने पर आगे चला। आगे रास्तेमें धोबी लोग कपड़े धोकर सुखा रहे थे। यह देख वह मार्ग छोड़ उन्मार्गसे चुपचाप धीरे धीरे तस्करके समान डरकर चलने लगा। उसकी यह चेष्टा देख धोबियोंको चोरकी शंका होनेसे पकड़ कर खूब मारा। पूर्वोक्त हकीकत सुनानेसे धोबियोंने उसे छोड़ दिया और कहा कि ऐसे प्रसंग पर "धौले बनो उज्वल बनो" ऐसा शब्द बोलते चलना चाहिये। उस समय वर्षात की बड़ी चाहना थी, रास्तेमें किसान खड़े हुये खेती बोनेके लिये आकाशमें बादलों की ओर देख रहे थे। उन्हें देख वह बोलने लगा कि "धौले बनो उज्वल बनो"। अपशकुनकी भ्रान्तिसे किसानोंने उसे खूब ठोका। वहां पर भी पूर्वोक्त घटना सुना देनेसे कृषकोंने उसे छोड़ दिया और सिखलाया कि ध्यान रखना ऐसे प्रसंग पर "बहुत हो बहुत हो" ऐसा शब्द बोलना।

जब यह आगे एक गांवके समीप पहुंचा तब दैवयोगसे गांवके लोग किसी एक मुरदे को उठाये स्मशान की ओर जा रहे थे। यह घटना देख प्रवासी महाशय जोर जोरसे चिल्लाने लगे कि 'बहुत हो बहुत हो' उसके ये शब्द सुनकर वहां भी लोगोंने उसे अच्छी तरह मेथीपाक चखाया। पूर्वोक्त सर्व वृत्तान्त सुनाने पर छुट्टी मिली और यह शिक्षा मिली की ऐसे प्रसंग यह पर बोलना—"ऐसा मत हो २" गांवमें प्रवेश करते समय रास्तेके पास एक मंडपमें विवाह समारम्भ हो रहा था। औरतें मंगल गीत गा रही थीं, मंगल फेरे फिर रहे थे। यह देख हमारे प्रवासी महानुभाव वहां जा खड़े हुए और उच्चस्वर से पुकारने लगे कि "ऐसा मत हो २।" अपशकुन की बुद्धि से पकड़ कर वहां भी युवकोंने उसकी खूब ही पूजा पाठ की। इस समय भी उसने पहलेकी बनी हुई घटनायें और उनसे प्राप्त किये शिक्षा पाठ सुनाकर छुट्टी पाई। वहांसे भी उसे यह नवीन शिक्षा पाठ सिखाया कि भाई ऐसे प्रसंग पर बोलना कि—"निरन्तर हो २"। अब महाशयजी इस शिक्षापाठको घोखते हुये आगे बढे। आगे किसी एक भले मनुष्य को चोरकी भांति पुलिसवाले हथकड़ियां डाल रहे थे यह देख वह लड़का बोला कि—"निरन्तर हो २" यह शब्द सुन कर आरोपी के सम्बन्धियों ने उसे खूब पीटा वहां से भी पुर्वोक्त वृत्तांत कहकर मुक्ति प्राप्तकर और उनका सिखलाया हुआ यह पाठ याद करता हुआ आगे चला, कि—"जल्दी छूटो जल्दी छूटो" यह सुनकर रास्ते में बहुत दिनों के बाद दो मित्रों का मिलाप हो रहा था और वह अपनी मित्रताकी दृढ़ताकी बातें कर रहे थे यह देख हमारे महाशय उनके पास जा पहुंचे और जोर जोरसे बोलने लगे कि—"जल्दी छूटो जल्दी छूटो" यह सुनकर अपमङ्गलकी बुद्धिसे उन दोनों मित्रोंने भी उसे अच्छी तरह उसकी मूर्खताका फल चखाया परन्तु उनके सामने पूर्वोक्त आद्योपान्त सर्ववृत्तांत कह देनेपर रिहाई पा कर आगे चला। 'किसी एक गांवमें जाकर दुर्भिक्षके समय एक दरोगा के घरपर नौकर रहा' एक रोज दो पहरके वक्त दरोगा साहबके घरमें खानेके लिये राब बनाई थी उस वक्त दरोगा साहिब किसी फौजदारीके मामले की जांच करनेके लिये बहुतसे आदमियोंको लिये चौपाल में बैठे हुये थे राब तयार हो जानेपर दरोगा साहबके नौकर उन्हें बुलाने के लिये चौपाल में जा पहुंचे और सब लोगके समक्ष दरोगा साहबके सन्मुख खड़े होकर बोलने लगे कि साहब जल्दी चलो नहीं तो राब ठंडी होजायगी यह बात सुनकर दरोगा साहबको बहुत ही लज्जा आई और घर आकर उसे खूब शिक्षा दी दरोगा साहबने उसे यह पाठ सिखलाया कि "मूर्ख! ऐसी लज्जा भरी बात गुप्त तौरसे कहनी चाहिये परन्तु दूसरे मनुष्योंके सामने कदापि ऐसी बात न कहना"। कुछ दिनोंके बाद दरोगा साहब के घर में आग लग गई। उस समय दरोगा साहब थानेमें बैठे हुए फौजदारी मामले का कोई मुकदमा चला रहे थे। नौकर साहब दरोगाजीको बुलाने दौडे। परन्तु दरोगा साहबके पास उस समय बहुतसे आदमी बैठे देख वह चुपचाप ही खड़ा रहा। जब सब लोग चले गये तब दरोगा साहबके पास जाकर बोला कि हुजूर घरमें आग लगी है। यह सुन कर दरोगा साहब को बड़ा गुस्सा आया। और वह बोले कि मूर्ख इसमें कहने ही क्या आया है? घरमें आग लगी है और तू इतनी देरसे चुपचाप खड़ा है ऐसे प्रसंग पर धूआं निकलता देख तुरन्त ही धूल (मिट्टी) और पानी डाल कर ज्यों बने त्यों उसे बुझाने का प्रयत्न करना चाहिये जिससे कि अग्नि तुरंत बुझ जाय। एक रोज दरोगा साहब ठंडीके मौसममें जब कि वह अपनी

शय्यामें से सोकर उठे तब उस मूर्खने उनके मुंहसे भाप निकलती देख एक दम मिट्टी और पानी उठा कर लाया दरोगा साहब आखें ही मल रहे थे उसने उनके मुंह पर मिट्टी और पानी डाल दिया और बोला कि हुजूर आपके मुंहमें आग लग गई। इस घटना से दरोगा साहब ने उसे मार पीटकर और मूर्ख समझ कर अपने घरसे निकाल दिया। इस प्रकार वचन का भावार्थ न समझने वाले व्यक्ति भी धर्मके अयोग्य होते है।

४ पहलेसे ही यदि किसीने व्युद ग्राहीत (भरमाया हुआ) हो तो भी गोशालकसे भरमाये हुए नियति वादी प्रमुखके समान उसे धर्मके अयोग्य ही समझना चाहिये। इस प्रकार पूर्वोक्त चार दोष वाले मनुष्य को धर्म के अयोग्य समझना चाहिये।

१ मध्यस्थवृत्ति-समदृष्टि धर्मके योग्य होता है। राग द्वेष रहित आर्द्रकुमार आदिके समान जानना चाहिये। २ विशेष निपुण मति-विशेषज्ञ जैसे कि हेय (त्यागने योग्य) ज्ञेय (जानने योग्य) और उपादेय (अंगीकार करने योग्य) के विवेकको जानने वाली बुद्धिवाला मनुष्य धर्मके योग्य समझना ३ न्याय मार्ग रति न्याय के मार्गमें बुद्धि रखने वाला व्यक्ति भी धर्मके योग्य जानना। दृढ़ निज वचन स्थिति-अपने वचनकी प्रतिज्ञामें दृढ़ रहने वाला मनुष्य भी धर्मके योग्य समझना। इस प्रकार चार गुण युक्त मनुष्य धर्मके योग्य समझा जाता है।

तथा अन्य भी कितनेक प्रकरणों मे श्रावकके योग्य इक्कीस गुण भी कहे हैं सो नीचे मुताबिक जानना।

धम्मरयणस्स जुग्गो, अखुद्दो रूववं पगईसोमो।
लोगप्पियो अकूरो, भीरू असठो सदक्खिण्णो॥ १॥
लज्जालुओ दयालू, मज्झत्थो सोमदिट्ठिगुणरागी।
सकह सुपक्खजुत्तो, सुदीहदंसी विसेसण्णु॥ २॥
वुड्ढाणुगो विणीओ, कयण्णूओ परहिअत्थकारी य।
तह चेव लद्धलक्खो, इगवीस गुणेहिं संजुत्तो॥ ३॥

१ अक्षुद्र-अतुच्छ हृदय (गम्भीर चित्त वाला हो परन्तु तुच्छ स्वभाववाला न हो) २-स्वरूपवान (पाचों इन्द्रियां सम्पूर्ण और स्वच्छ हों परन्तु काना अन्धा तोतला लूला लंगड़ा न हो) ३ प्रकृति सौम्य स्वभावसे शान्त हो किन्तु क्रूर न हो ५ लोक प्रिय (दान, शील, न्याय, विनय, और विवेक आदि गुण युक्त) हो। ५ अक्रूर-अक्लिष्ट चित्त (ईर्ष्या आदि दोष रहित हो) ६ भीरू-लोक निन्दासे पाप तथा अपयशसे डरने वाला हो। ७ असठ-कपटी न हो। ८ सदाक्षिण्य-प्रार्थना भंगसे डरने वाला शरणागत का हित करने वाला हो। ६ लज्जालु-अकार्य्य वर्जक यानी अकार्य्य करनेसे डरने वाला। १० दयालु-सब पर दया रखने वाला। ११ मध्यस्थ-राग द्वेष रहित अथवा सोम दृष्टि अपने या दूसरेका विचार किये बिना न्याय मार्ग में सबका समान हित करने वाला, यथार्थ तत्व के परिज्ञानसे एक पर राग दूसरे पर द्वेष न रखने वाला मनुष्य ही मध्यस्थ गिना जाता है। मध्यस्थ और सोमदृष्टि इन दोनों गुणों को एकही गुण माना है। १२

गुण रागी–गुणवान का ही पक्ष करने वाला। १३ सत्कथा–सत्यवादी अथवा धर्म सम्बन्धी ही कथा वार्ताओं को प्रिय मानने वाला। १४ सुपक्ष युक्त—न्यायका ही पक्षपाती अथवा सुशील, अनुकूल सभ्य समुदायवान् (सुपरिवार युक्त) १५ सुदीर्घदर्शी – सर्वकार्य्य में लम्बाविचार कर के लाभ समझ ने वाला। १६ विशेषज्ञ तत्व के अभिप्राय को जानने वाला अर्थात् गुण और दोष का भेद समझने वाला। १७ वृद्धानुगो—वृद्ध संप्रदाय के अनुसार प्रवृत्ति करने वाला (आचार्य वृद्ध, ज्ञान वृद्ध, वयोवृद्ध, इन तीनों वृद्धोंकी शैलीसे प्रवृत्ति करने वाला) १८ विनीत–गुणी जन का बहुमान करने वाला। १६ कृतज्ञ-किये हुये उपकार को न भूलने वाला २० परहितार्थकारी—निःस्वार्थ हो परका हित करने वाला। २१ लब्ध लक्ष—धर्मादि कृत्यों में पूर्ण अभ्यास करने वाले पुरुषों के साथ परिचय रखने वाला, याने सर्व कार्यो में सावधान हो।

इस प्रकार अन्य ग्रन्थोंमें इक्कीस गुणोंका वर्णन किया है। इन पूर्वोक्त गुणों को संपादन करने वला मनुष्य धर्म रत्न के योग्य होता है,। इस ग्रन्थ के कर्ताने सिर्फ चारही गुणों का वर्णन किया इसका कारण यह है कि इन चार मुख्य गुणों में पूर्वोक्त इक्कीस गुणों का समावेश हो जाता है। इस ग्रन्थ में उल्लेखित चार मुख्य गुणों में इक्कीस गुणोंका समावेश इस प्रकार होता है-प्रथम के भद्रक प्रकृति गुणमें १ अतुच्छत्व, २ प्रकृति सौम्य, ३ अक्रूरत्व, ४ सदाक्षिणत्व, ५ मध्यस्थ–सोम दृष्टित्व, ६ वृद्धानुगत्व, ७ विनीतत्व ८ दयालुत्व। ऐसे आठ गुण समाविष्ट हो जाते हैं। निपुण मति गुणमे ६ रूपवंतत्व, १० सुदीर्घ दर्शित्व, ११ विशेषज्ञत्व १२ कृतज्ञत्व, १३ परहितार्थ कृतत्व, १४ लब्ध लक्षत्व, इन छः गुणोंका समावेश हो जाता है। न्यायमार्गरति गुणमें १५ भीरुत्व, १६ अशठत्व १७ लज्जालुत्व, १८ गुणरागीत्व १६ सत्कथात्व, इन पांच गुणोंका समावेश होता है और चौथे दृढ़ निजवचनस्थिति गुण में शेष रहे २० लोक प्रियत्व तथा सुपक्ष युक्तत्व, ये दोनों गुण समाजाते हैं। इस प्रकार मुख्य चार गुणों में ही पूर्वोक्त गुणोंका समावेश हो जा सकनेके कारण ग्रन्थ कर्ताने यहां पर चार ही गुणोंका उल्लेख किया है और इन चार गुणोंका धारण करने वाला मनुष्य धर्म कर्मके योग्य हो सकता है। इन चारों गुणों में भी अनुक्रम से तीन गुण रहित मनुष्य हठ वादी, मूर्ख एवं अन्यायी होता है, अतः वह धर्म के योग्य नहीं होता। चतुर्थ दृढ़ प्रतिज्ञा गुण रहित मनुष्य धर्म को अंगीकार तो अवश्य करे परन्तु श्रथिल बना हुआ और सुवेष वानर जैसे मोतियों की माला अधिक समय तक न धारण कर सके वैसे वह थोड़े ही समय बाद धर्म भ्रष्ट हो जाता है जैसे श्रेष्ठ भींत पर सुन्दर चित्र और मजबूत घडे हुए गहने में जड़े हुये सुन्दर कीमती रत्न-हीरा जवाहिर सुशोभित रूप में अधिक समय तक ठहर सकता है, वैसे ही दृढ़ प्रतिज्ञ गुण युक्त पुरुषमें ही सम्यक्त्व दर्शनादि धर्म यावज्जीव पर्यन्त टिक सकता है।

इस कथन से यह सिद्ध होता है कि पूर्वोक्त चार गुण युक्त ही मनुष्य श्रावक धर्म के योग्य हो सकता है सम्यग् दर्शनादि श्रावक धर्म चुल्लकादि दस दृष्टान्तों द्वारा दुर्लभ होने पर भी गुर्वादिक के योग से प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु उस धर्मका आजीवन निर्वाह तो शुकराजा ने जैसा पूर्वभव में किया था वैसा करना अत्यंत आवश्यक होने से उनका समूल वृत्तान्त यहां पर संक्षेप से दिया जाता है।

धान्यकी एक सम्पदाके समान दक्षिणार्द्ध भरतक्षेत्र में पूर्वकाल में क्षितिप्रतिष्ठित नामक एक प्रसिद्ध नगर

था, उस नगरमें बड़े ही दयालु लोग रहते थे। हर एक तरह से समृद्धिशाली और सदाचारी मनुष्यों की बस्ती वाले उस नगर में देवकुमार के रूप समान और शत्रुओं को सन्तप्त करने में अग्नि के समान तथा राज्यलक्ष्मी, न्यायलक्ष्मी और धर्मलक्ष्मी एवं तीनों प्रकारकी लक्ष्मी जिस के घर पर स्पर्द्धा से परस्पर वृद्धि को प्राप्त होती है। इस प्रकार का रूपध्वज राजाका प्रतापी पुत्र मकरध्वज नाम का राजा राज्य करता था। एकबार क्रीड़ा रसमय वसंतऋतु में वह राजा अपनी रानियोंके साथ क्रीड़ा करने के लिये बाग में गया। जलक्रीड़ा, पुष्पक्रीड़ा प्रमुख विविध प्रकार की अन्तेउरियों सहित क्रीड़ायें करने लगा। जैसे कि हस्तिनियों सहित कोई हाथी क्रीड़ा करता है। क्रीड़ा करते समय राजा ने उस बाग के अन्दर एक बड़े ही सुन्दर और सघन आम के वृक्ष को देखा। उस वृक्ष की शोभा राजा के चित्त को मोहित करती थी। कुछ देर तक उसकी ओर देखकर राजा उस वृक्षका इस प्रकार वर्णन करने लगा।

छाया कापि जगत्प्रिया दलततिं दत्तेऽतुलं मंगलम्।
मंजर्युद्गम एष निःतुलफले स्फाते निमित्तं परं॥
आकाराश्च मनोहरास्तरुवरश्रेणिषु त्वन्मुख्यता।
पृथ्व्यां कल्पतरो रसालफलदो नूमस्तवैव ध्रुवम्॥ १॥

हे मिष्ट फलके देनेवाले आम्रवृक्ष! यह तेरी सुन्दर छाया तो कोई अलौकिक जगतप्रिय है। तेरी पत्रपंक्तियां तो अतुल मंगलकारक हैं। इन तेरी कोमल मञ्जरियों का उत्पन्न होना उत्कृष्ट बडे फलों की शोभा का ही कारण है, तेरा बाह्य दृश्य भी बड़ा ही मनोहर है, तमाम वृक्षों की पंक्ति में तेरी ही मुख्यता है, विशेष क्या वर्णन किया जाय, तू इस पृथ्वी पर कल्पवृक्ष है।

इस प्रकार राजा आम के पेड़ की प्रशंसा कर के जैसे देवांगनाओं को साथ लेकर देवता लोग नंदनवन में कल्पवृक्षकी छाया का आश्रय लेते हैं वैसे ही आदर आनन्द सहित राजा अपनी पत्नियों को लेकर उस वृक्ष की शीतल छाया में आ बैठा मूर्त्तिवंत शोभासमूह के समान अपने स्वच्छ अन्तेउर वर्ग को देखकर गर्व में आकर राजा ख्याल करने लगा कि यह एक विधाता की बड़ी प्रसन्नता है कि जो तीन जगत से सार का उद्धार करके मुझे इस प्रकारका स्त्रीसमूह समर्पण किया है। जिस प्रकार गृहों में सर्व तारायें चन्द्रमाकी स्त्री रूप हैं वैसे ही वैसा स्वच्छ और सर्वोत्कृष्ट अन्तःपुर मेरे सिवा अन्य किसी भी राजाके यहां न होगा। वर्षाकालमें जैसे नदियों का पानी उमड़कर बाहर आता है वैसे ही उस राजाका हृदय भी मिथ्याभिमान से अत्यन्त बड़प्पन से उमड़ने लगा। इतनेही में समय के उचित बोलनेवाला मानों कोई पंडित ही न हो ऐसा एक तोता उस आमके वृक्षपर बैठा था इसप्रकार श्लोक बोलने लगा।

क्षुद्रस्यापि न कस्य स्याद्गर्वश्चित्त प्रकल्पितः।
शेते पातनयाव्योम्नः पादावुत्क्षिप्यटिट्टिभः॥

जिस प्रकार सोते समय टिटोडी नामक पक्षी अपने मनमें यह अभिमान करता है कि मेरे ऊंचे पैर रखने

से ही सारा आकाश ऊंचा रहा हुआ है, वैसे ही तुच्छहृदयी किस मनुष्य के मन में कल्पित अभिमान पैदा नहीं होता ?

उस तोतेके ये वाक्य सुनकर राजा मनही मन विचार करने लगा कि यह तोता कैसा वाचाल और अभिमानी है कि जो स्वयं अपने वचनसे ही मेरे अभिप्रायका खंडन करता है। अथवा अजाकृपाणी न्याय, काकतालीयन्याय, घुणाक्षर न्याय या बिल्वपतन मस्तक स्फोटन न्याय जैसे स्वभाविक ही होते हैं वैसे यह तोता भी स्वभाविक ही बोलता होगा या मेरे वचनका खंडन करने के लिये ही ऐसा बोलता है ! यह समस्या यथार्थ समझ में नहीं आती। जिस वक्त राजा पूर्वोक्त विचार में मग्न था उस समय वह तोता फिर से अन्योक्ति में बोला—

पक्षिन् प्राप्तः कुतस्त्वं ननु निजसरसः किं प्रमाणो महान्यः।
किं मे धाम्नोऽपि कामं प्रलपसि किमुरे मत्पुरः पापमिथ्या ॥
भेकः किंचित्ततोऽधः स्थित इति शपथे हंससभ्यर्णं गंधिक् ।
इत्यत्यन्येऽपि तुच्छः मनुचितमिति वा तावदेवास्य बोध्दुः ॥ १ ॥

एक कूप मण्डूक हंसके प्रति बोला कि अरे हंस तू कहांसे आया हंसने कहा कि मैं मानसरोवर से आया हूं तब मैंडकने पूछा कि वह कितना बड़ा है ? हंसने कहा कि मानसरोवर बहुत बड़ा है ? मैंढक बोला क्या वह मेरे कुएं से भी बड़ा है, हंसने कहा कि भाई मानसरोवर तो कुएं से बहुत बड़ा है। यह सुनकर मैंढ़क को बड़ा क्रोध आया और वह बोला कि मूर्ख इस प्रकार विचारशून्य होकर मेरे सामने असम्भवित क्यों बोलता है ? इतना बोलकर गर्वके साथ जरा पानी में डूबकी लगाकर समीप के बैठे हुए हंसके प्रति बोला कि हा ! तुझे धिक्कार हो, ऐसा कहकर वह मैंढक टांगे हिलाता हुआ पानी में घुस गया। इस प्रकार तुच्छ प्राणी दूसरों के पास गर्व किये बिना नहीं रहते। क्योंकि उसे उतनाही ज्ञान होता है अथवा जिसने जितना देखा है वह उतना ही मानकर गर्व करता है। अतः रे राजा तू भी कूप मंडूक के समान ही है। कुंए में रहनेवाला बिचारा मैंढक मानसरोवर की बात क्या जाने, वैसे ही तू भी इससे अधिक क्या जान सकता है। तोते के पूर्वोक्त वचन सुन कर राजा विचारने लगा कि सचमुच यह तोता कूपमंडूक की उपमा के समान मुझे गिनकर अन्योक्ति द्वारा मुझे ही कहता है। इस आश्चर्यकारक वृत्तांत से यह तोता सचमुच ही किसी ज्ञानी के समान महा विचक्षण मालूम पड़ता है। राजा इस प्रकार के विचारमें निमग्न था इतने ही में तोता फिरसे बोल उठा कि–

ग्रामीणस्य जडाऽग्रिमस्य नितमां ग्रामीणता कापिया।
स्वग्रामं दिविषत्पुरीयति कुटीमानी विमानीयति ॥
स्वर्भक्षीयति च स्वभक्ष्यमखिलं वेषं सुवेषीयति।
स्वं शक्रीयति चात्मनः परिजनं सर्वसुपर्वीयति ॥ १ ॥

मूर्ख शिरोमणि ग्रामीण मनुष्यों की ग्रामीणपन की विचारणा भी कुछ विचित्र ही होती है। क्योंकि वे

अपने गांवको ही देवलोक की नगरी समान मानते हैं, अपनी झोपड़ो को विमान समान मानते है, अपने कदन्न भोजन को ही अमृत मानते हैं, अपने ग्रामीण वेष को ही स्वर्गीय वेष मानते हैं। वे अपने आप को इंद्र समान और अपने परिवार को ही सर्वसाधारण देव समान मानते हैं। क्योंकि जैसा जिसने देखा हो उसे उतना ही मान होता है।

इतना सुनकर राजाने मनही मन विचार किया कि वचन विचक्षण यह तोता सचमुच ही मुझे एक ग्रामीण के समान समझता है और इसकी इस उक्ति से यह वितर्क होता है कि मेरी रानियो से भी अधिक रूप लावण्य-मयी स्त्री इसने कहीं देखी मालूम होती है। राजा मन ही मन पूर्वोक्त विचार कर रहा था इतने में ही मानों अधूरी बात को पूरी करनेके लिये वह मनोहर वाचाल तोता पुनः मनोज्ञ वाणी बोलने लगा—जबतक तूने गांगी-लेय ऋषि की कन्या को नहीं देखी तबतक ही हे राजन् तू इन अपनी रानियों को उत्कृष्ट मानता है। सर्वाङ्ग सुभगा और समस्त संसार की शोभारूप तथा विधाता की सृष्टि रचना का एक फलरूप वह कन्या है। जिसने उस कन्या का दर्शन नहीं किया उसका जीवन ही निष्फल है। कदाचित् दर्शन भी किया हो परन्तु उसका आलिंगन किये विना सचमुच ही जिन्दगी व्यर्थ है। जैसे भ्रमर मालती को देख कर अन्य पुष्पो की सुगंध लेना छोड़ देता है वैसे ही उस कन्याको देखनेवाला पुरुष क्या अन्य स्त्रियोसे प्रीति कर सकता है? साक्षात् देवराज की कन्या के समान उस कमलमाला नामकी कन्या को देखने की एवं प्राप्त करने की यदि तेरी इच्छा हो तो हे राजन् तूं मेरे पीछे पीछे चला आ, यो कहकर वह दिव्य शुकराज वहां से एक दिशा में उड़ चला। यह देख राजाने बड़ी उत्सुकता पूर्वक अपने नौकरोंको बुलाकर शीघ्र हुकम किया कि पवनगतिके समान शीघ्रगतिगामी पवन वेग अश्वको तैयार करके जल्दी लाओ, जरा भी विलंब मत करो। नौकरोंने शीघ्र ही सर्व साज सहित घोड़ा राजाके सामने ला खड़ा कर दिया। पवनवेग घोड़े पर सवार हो राजा तोतेके पीछे पीछे दौड़ने लगा। इस घटनामे यह एक आश्चर्य था उस दिव्य शुकराजकी सर्व बातें विना राजाके अन्य किसीने भी न सुन पाई थीं। इससे उत्सुकता पूर्वक शीघ्रतासे घोड़े परसवार हो अमुक दिशामे विना कारण अकस्मात् राजाको जाता देख नौकरोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। राजाके जानेका कारण रानियोको भी मालूम न था। अतः नौकरोंमे से कितने एक घोड़ो पर सवार हो राजागया था उस दिशामे उसके पीछे दौडे। परन्तु राजाका पवनवेग घोड़ा बड़ी दूर निकल गया था इसलिये राजाकी शोधके लिये उसके पीछे दौड़ने वाले सवारोंको उसका पता तक नहीं लगा, अन्तमें वे सबके सब राजाका पता न लगने पर शामको वापिस लौट आये।

राजा तोतेके पीछे पीछे बहुत दूर निकल गया था। तोता और घोडे पर चढा हुवा राजा पवनके समान गति करते हुये सैंकड़ों योजन उल्लंघन कर चुके थे तथापि किसी दिव्य प्रभावसे राजाको थाक नहीं लगा था। जिस प्रकार कर्मके सम्बन्धसे आकर्षित हुआ प्राणी क्षणभरमे भवान्तरको प्राप्त होजाता है वैसेही विघ्न निवारक शुकराजसे आकर्षित हुआ राजा भी मानो क्षणभरमें एक महाविकट अटवी को प्राप्त होगया। यह भी एक आश्चर्य जनक घटना है कि पूर्वभवके स्नेह सम्बन्धसे या अभ्याससे ही राजा उस कमलमालाकी प्राप्तिके लिये इतना भयंकर जंगली मार्ग उलंघन कर इस अटवी प्रदेशमे दौड़ा आया। यदि पूर्वभवके संस्कारादि न हों तो जहां

स्थान वगैरहका भी कुछ निश्चित नहीं है वहां जानेके लिये सत्पुरुष एकाएक कदापि प्रवृत्ति न करे। आगे जाते हुये अटवीके मध्यमें सूर्यकी किरणोंसे मनोहर झलकता हुआ कलश वाला और मेरुपर्वतकी टोचके समान तुंग शिखर वाला तथा दर्शन मात्रसे कल्याण करने वाला रत्नजडित सुवर्ण मय एक गगनचुंबी जिनमन्दिर देखनेमे आया, जिसमे कि देवाधिदेव सर्वज्ञ श्री आदीश्वर भगवानकी मूर्ति विराजमान थी। उस मन्दिरके मनोहर शिखर पर बैठ कर शुकराज मधुरवाणीसे बोलने लगाः—

हे राजन्! आजन्मकृत पापशुद्धिके लिये मंदिरमे विराजमान देवाधिदेवको नमस्कार कर। राजाने ये वचन सुन कर शुकराजके उड़जानेके भयसे घोड़े पर चढ़े हुवेही सर्वज्ञदेवको भावसहित नमस्कार किया। राजा के मनोगत भावको जानकर उस परोपकारी दिव्य शुकराजने जिनप्रासादके शिखरसे उड़कर मंदिरमें प्रवेश किया और प्रभुकी प्रतिमाको वन्दन किया। यह देख राजा भी घोड़ेसे नीचे उतरा और शुकराजके पीछे पीछे मंदिर में जाकर प्रभुकी रत्नमयी मूर्तिको नमस्कार कर स्तुति करने लगा कि हे परमात्मन्! एकतो मुझे दूसरे कार्य की जल्दी है और दूसरे आपके गुणोंकी संपूर्ण स्तुति करनेकी मुझमे निपुणता नहीं है इसलिये आपकी भक्तिमें आसक्त होकर मेरा चित्त हिंडोलेके माफक डोलायमान हो रहा है, तथापि जैसे एक मच्छर अपनी शक्तिके अनुसार अनन्त आकाशमें उड़नेका उद्यम करता है वैसेही मैं भी यथा शक्ति आपकी स्तवना करनेके लिये प्रवर्तमान होता हूं।

"अगणित सुखके देनेवाले हे प्रभु! गणना मात्रसे सुख देनेवाले कल्पवृक्षादि की उपमा आपको कैसे दीजाय? आप किसी पर भी प्रसन्न नहीं होते और न किसीको कुछ देते तथापि हे महाप्रभो! सब सेवक आपकी सेवा करते हैं, अहो कैसी आश्चर्य कारक आपकी रीति है! आप ममता रहित होने पर भी जगत्त्रयके रक्षक हो। निःसंगी होनेपर भी आप जगत्के प्रभु हैं अतः हे प्रभो! आप लोकोत्तर स्वरूप हो। हे रूपरहित परमात्मन्! आपको नमस्कार हो!"

कानोंको सुधाके समान प्रभुकी उदारभावसे पूर्ण स्तुतिको सुनकर मंदिर के समीपवर्त्ती आश्रममे रहने वाला गांगील नामक महर्षि आश्रम से बाहर निकला। वह लंबी जटावाला, वृक्ष की छाल पहनने वाला और एक मृगचर्म धारण करनेवाला गांगील महर्षि अपने आश्रम से निकल कर बड़ी त्वरा से जिन मंदिरमें आया और ऋषभदेव स्वामीकी प्रतिमाको भावसहित वन्दन कर अपने भावोल्लास से तुरंत निर्माण की हुई गद्यात्मक अठारह दूषणोंसे रहित श्री जिनेन्द्र भगवान् की स्तुति करने लगा।

"तीन भुवनमे एकही अद्वितीयनाथ, हे प्रभो आप सर्वोत्कृष्ट रहो। जगत्त्रयके लोगों पर उपकार करनेमें समर्थ होने पर भी अनन्तातिशयकी शोभासे आप सनाथ हैं। नाभीराजाके विशाल कुलरूप कमलको विकसित करनेके लिये तथा तीन भुवनके लोकों द्वारा स्तवनाके योग्य मनोहर श्री मारुदेवी माताकी कुक्षीरूप सरोवर को शोभायमान करनेके लिये आप राजहंसके समान हैं। तीनलोकके जीवोंके मनको शोकांधकारसे रहित करनेके लिये हे भगवान् आप सूर्यसमान हैं, सर्व देवोंके गर्वको दूर करनेमे समर्थ ऐसी निर्मल अद्वितीय मनोहर महिमारूप लक्ष्मीको विलास करनेकेलिये कमलाकर (सरोवर) समान हे प्रभो? आप जयवन्ते रहो। आस्तिक्य

स्वभाव (ज्ञान दर्शन-सद्बोध) से उत्पन्न हुवे भक्तिरसमे नल्लीन और देदीप्यमान सेवाकार्यमें एक एकसे अग्र सर हो कर नमस्कार करनेमे तत्पर ऐसे अमर (देवता) तथा मनुष्य समूहके मस्तक पर रहे हुये मुकुटके मणियोंकी कांतिरूप जलतरंगोसे धोये गये हैं चरणारविन्द जिंसके ऐसे हे प्रभो ! आप जयवन्ते वर्त्तो। राग, द्वेष, मद, मत्सर, काम, क्रोधादि सर्व दोषोको दूर करनेवाले, अपार संसार रूप समुद्रमें डूबते हुवे प्राणियोको पंचमगति (मोक्ष) रूप तीरपर पहुचानेमे जहाजके समान हे देव ! आप जयवन्ते वर्तो। हे प्रभो ? आप सुन्दर सिद्धिरूप सुन्दरी के स्वामी हो, अजर, अमर, अचर, अडर, अपर (जिससे बढ़कर अन्य कोई परोपकारी न हो) अपरंपर (सर्वोत्कृष्ट) परमेश्वर, परम योगीश्वर हे श्री युगादि जिनेश्वर ! आपके चरण कमलोंमें भक्ति सहित नमस्कार हो"।

इस प्रकार मनोहर गद्यभाषाकी रचनाम हर्षपूर्वक जिनराजकी स्तुति करके गांगील महर्षि कपट रहित हृदय से मृगध्वज राजाके प्रति बोला-"ऋतुध्वज राजाके कुलमे ध्वजा समान हे मृगध्वज राजा ? आप सुखसे पधारे हो ? हे वत्स ! तेरे अकस्मात् यहां आगमनसे और दर्शनसे मैं अत्यन्त प्रमुदित हुआ हूं । तूं आज हमारा अतिथि है, अतः इस मंदिरके पास रहे हुवे हमारे आश्रममे चल, हम वहां पर तेरा आतिथ्यसत्कार करें। क्योंकि तेरे जैसा अतिथि बड़े भाग्यसे प्राप्त होता है"।

राजा साश्चर्य विचारमग्न हुआ, ऐं यह महर्षि ! मुझे क्यों इतना सराहता है ? मुझे बुलानेके लिये इतना आग्रह क्यों ? यह मेरा नाम कैसे जानता होगा ? इत्यादि विचारोसे विस्मित बना हुआ राजा चुपचाप महर्षि के साथ सानन्द उसके आश्रममे जा पहुचा। क्योंकि गुणीजन गुणवानकी प्रार्थना कदापि भंग नहीं करते। आश्रममें ले जाकर गांगीलेय महर्षिने मृगध्वज राजाका बडे आदरके साथ सत्कार किया। उचित सन्मान करनेके बाद महर्षि राजासे बोला कि हे राजन् ! तेरे इस अकस्मात् समागमसे आज हम हमारा अहोभाग्य मानते हैं। मेरे कुलमें अलंकाररूप और जगज्जनो के चक्षुओ को कामण करनेवाली, हमारे जीवन की सर्वस्व, और देवकन्या के समान रूपगुणशालिनी इस हमारी कमलमाला नामकी कन्याके योग्य आपही देख पड़ते हो, इसलिये हे राजन् हमारी प्राणप्रिय कन्याके साथ पाणीग्रहण करके हमें कृतार्थ करो। गांगीलेय ऋषिका पूर्वोक्त रुचिकर कथन सुनकर राजाने हर्षपूर्वक स्वीकार किया, क्योंकि यह तो इसके लिये मन भाई खोराक थी। राजाकी सहर्ष सम्मति मिलने पर गांगीलेय ऋषिने अपनी नवयौवना कमलमाला कन्याका राजाके साथ पाणी-ग्रहण करा दिया। यह संयोग मिलाकर ऋषि बड़ा प्रसन्न हुआ। जैसे कमलपंक्तियो को देख कर राजहंस प्रसन्न होता है वैसे ही वृक्षोंकी छाल के वस्त्र धारण करनेवाली और अपनी नैसर्गिक रूपलावण्य छटासे युवको के मन को हरण करनेवाली कमलमाला को देखकर राजा अत्यन्त खुशी हुआ। राजाके इस लग्न समा-रंभ में दो चार तापसनियों के सिवाय धवलमंगल गानेवाली अन्य कोई स्त्री वहापर मौजूद न थी। गांगीलेय महर्षिने ही स्वयं लग्नका विधि विधान कराया। कन्याके सिवाय राजाको करमोचनमें अन्य कुछ देनेके लिये ऋषिके पास था ही क्या ? तथापि उन दम्पतीके सत्वर पुत्र प्राप्ति हो इस प्रकारका ऋषिजी ने आशीर्वाद रूप मंत्र समर्पण किया। विवाह कृत्य समाप्त होनेपर मृगध्वज राजा विनम्र भावसे ऋषिजीसे बोला कि अब हमे

विदा करनेकी तैयारी अपनी रीत रिवाजके अनुसार जल्दी ही करनी चाहिये। क्योंकि मैं अपने राज्यको सूनाही छोड़कर आया हूं अतः मुझे सत्वर ही विदा करो। ऋषिजी बोले राजन्! जंगलमें निवास करनेवाले और दिगम्बर धारण करनेवाले (दिशारूप वस्त्र पहनने वाले) हम आपको विदा करनेकी क्या तैयारी करें ? कहां आपका दिव्यवेष और कहां हमारा वनवासी वल्कल परिधान ? (वृक्षोंकी छालका वेष)। राजन्! इस हमारी कमलमाला कन्या ने जन्म धारण कर के आज तक यह तापसी प्रवृत्ति ही देखी है। आश्रम के वृक्षों का सिंचन करनेके सिवाय यह विचारी अन्य कोई कला नहीं जानती। मात्र आप पर एक निष्ट स्नेह रखने वाली यह जन्म से ही सरल हृदया—निष्कपटी और मुग्धा है। राजन्! मेरी इस प्राणाधिका कन्या को सपत्नी—तुम्हारी अन्य स्त्रियोंकी तरफ से किसी प्रकार का दुःख न होना चाहिये। राजा बोला महर्षिजी! इस भाग्य शाली को सपत्नी जन्य जरा भी दुःख न होने दूंगा और मैं स्वयं भी कभी इस देवी का वचन उल्लंघन न करूंगा। यहां पर तो मैं एक मुसाफिर के समान हूं इसलिये इस के वस्त्राभूषण के लिये कुछ प्रबन्ध नहीं कर सकता परन्तु घर जा कर इस के सर्व मनोरथ पूर्ण कर सकूंगा।

राजा के ये वचन सुन कर गांगील महर्षि खेदपूर्वक बोल उठा कि धिक्कार है मुझसे दरीद्री को जो कि जन्मदरीद्री के समान पहले पहल ससुराल भेजते वक्त अपनी पुत्री को वस्त्रवेष तक भी समर्पण नहीं कर सकता है ? इतना बोलते हुए ऋषिजीके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। इतने में ही पासके एक आम्र वृक्ष से सुन्दर रेशमी वस्त्र एवं कीमती आभूषणोंकी परम्परा मेघधारा के समान पड़ने लगी। इस प्रकार चमत्कार देख कर ऋषिजी को अत्यन्त आश्चर्य पूर्वक निश्चय हुआ कि सचमुच इस उत्कृष्ट भाग्यशालिनी कन्या के भाग्योदय से हो इस की भाग्यदेवी ने इसके योग्य वस्तुओंकी वृष्टि की है। फलदायक वृक्ष कदाचित् फल दे सकते हैं, मेघ कदाचित् ही याचना पर वृष्टि कर सकते हैं, परन्तु यह कैसा अद्भुत आश्चर्य है कि इस भाग्यशाली कन्या के भाग्योदय से वृक्ष भी वस्त्रालङ्कार दे रहा है। धन्य है इस कन्याके सद्भाग्य को! सत्य है जो महर्षियोने फरमाया है कि भाग्यशालियोंके भाग्योदयसे असम्भवित भी सुसंभवित हो जाता है। जैसे कि रामचन्द्रजी के समय समुद्र में पत्थर भी तैर सकता था, तो फिर कन्या के पुण्यप्रभाव से वृक्ष वस्त्रालंकार प्रदान करे इसमें विशेष आश्चर्य ही क्या है? इसके बाद हर्ष को प्राप्त हुए महर्षि के साथ कमल-माला सहित राजा जिन मन्दिर में गया और जिनराज को विधिपूर्वक वन्दन कर इस प्रकार प्रभु की स्तवना करने लगा "हे प्रभो! जैसे पाषाण में खुदे हुये अक्षर उस में स्थिर रहते हैं वैसे ही आप का स्वरूप मेरे हृदय में स्थिर रहा हुआ है। अतः हे परमात्मन् आपका पवित्र दर्शन पुनः सत्वर हो ऐसी याचना करता हूं"। इस प्रकार प्रथम तीर्थंपति को सविनय वन्दन स्तवन कर कमलमाला सहित राजा मंदिर से बाहर आकर ऋषिजी से बोला कि अब मुझे रास्ता बतलावें। ऋषिजी बोले—राजन् तुम्हारे नगर का रास्ता मुझे मालूम नहीं है! राजा बोला कि हे देवर्षि ! यदि आप मेरे नगर का मार्ग तक नहीं जानते तो मेरा नामादिक आप को कैसे मालूम हुआ ? ऋषि बोला कि यदि इस बात को जानना हो तो राजन् सावधान होकर सुन—एक दिनका जिकर है कि मै इस अपनी नवयौवना कन्या को देख कर विचार में पड़ा था कि इस अद्भुत रूपवती

भाग्यधन्या कन्या के योग्य वर कहांसे मिलेगा ? इतने में ही इस आम्र के वृक्ष पर बैठे हुये एक शुकराज ने मुझे कहा कि ऋषिवर ! कन्याके वरके लिये तू व्यर्थ चिन्ता न कर, ऋतुध्वज राजा के पुत्र मृगध्वज राजा को मैं इस जिनेश्वर के मंदिरमें लाऊंगा। कल्पवल्लीके योग्यतो कल्पवृक्ष ही होता है, वैसे ही इस कन्याके योग्य सर्वोत्कृष्ट वर वही है, इस लिये तूं इस विषय मे बिलकुल चिन्ता न कर। यों कह कर वह शुकराज यहांसे उड़ गया। तदनंतर थोड़े ही समय में वह आप को यहां ले आया और उस के वचन पर से ही मैने आपके साथ अपनी कन्या का पाणीग्रहण कराया है, बाकी इससे अधिक मैं और कुछ नहीं जानता। ऋषि॰ जी के बोल चुकने पर राजा जब सोच विचार में पड़ा था उसीवक्त तुरन्त वही तोता आम्रकी एक डाल पर बैठा नजर पड़ा और बोला कि राजन् ! चल चल क्यों चिन्तामें पड़ा है ? मेरे पीछे पीछे चला आ। हे राजन् ! यद्यपि मैं एक पक्षी हूं तथापि मैं अपने आश्रितोंको नाराज करनेमे खुश नही हूं। जैसे शशांक (चन्द्रमा) अपने आश्रित शशक (खरगोस) को थोड़े समयके लिये भी दूर नहीं करता वैसे ही मैं भी यदि कोई साधारण मनुष्य मेरे आश्रयमे आया हो तो उसे निराश्रित नही करता, तब फिर तेरे जैसे महान् पुरुषको कैसे छोड़ सकता हूं ? हे आर्य जनोंमे अग्रेसरी धर्मधुरन्धर राजेन्द्र ? यद्यपि मैं लघु प्राणी हूं तथापि मैं आपको भूल न सकूंगा। वैसे ही आप भी मुझे तुच्छ पुरुष के समान भूल न जाना। पूर्व परिचित दिव्य शुकराज की मीठी मधुर वाणी को सुनकर राजा साश्चर्य ऋषिराज को नमस्कार कर और उसकी आज्ञा ले कर राणी कमलमाला सहित घोड़े पर चढ़ कर उड़ते हुए शुकराज के पीछे चल पड़ा।

त्वरित गतिसे शुकराज के पीछे घोडा लगाये राजा थोड़े ही समयमें ऐसे प्रदेश मे आपहुंचा कि जहां मृगध्वज राजाके क्षितिप्रतिष्ठित नगरके गगनचुम्बी प्रासाद देख पड़ते थे। जब राजा को अपना नगर दिखाई देने लगा तब शुकराज मार्गस्थ एक वृक्ष की डाल पर जा बैठा। राजा यह देख कर चिन्तातुर हो उसे आग्रह पूर्वक कहने लगा कि हे शुकराज यद्यपि नगर का किला और राजमहालय आदि बड़े २ प्रासाद यहांसे देख पड़ते हैं तथापि शहर अभी बहुत दूर है अतः थके हुए मनुष्यके समान तू यहां ही क्यों बैठ गया ? शुकराजने प्रत्युत्तर दिया कि राजन् ! समझदार मनुष्योंकी सर्व प्रवृत्तियां सार्थक ही होती हैं इसलिये आगे न जाकर यहां ही ठहरनेका मेरे लिये एक असाधारण कारण हैं। बस इसी से मैं आगे चलना उचित नही समझता। यह सुनकर राजा को कुछ घबराहट पैदा हुई और वह सत्वर बोला—क्या असाधारण कारण ! ऐसा क्या कारण है सो मुझे सुनाने की कृपा कीजिये शुकराज ? तोता बोला अच्छा यदि सुनना ही चाहते हो तो सुनो—चंद्रपुरी नगरी के राजा चंद्रशेखर की बहिन चंद्रवती नामकी जो तुम्हारी प्यारेमे प्यारी रानी है वह तुम्हारे महल में तुम्हारे विपत्तिका जासूस हैं। ऊपर से वह आप को कृत्रिम प्रेम बतलाती है परन्तु अन्दर से आप की तरफ उसका अभिप्राय अच्छा नही है। आपके लिये वह रानी गोमुखी देख पड़ती हुई भी व्याघ्रमुखी है। जब तुम कमलमाला को प्राप्त करनेके लिए मेरे पीछे पीछे चले गये थे उसवक्त उसने आप पर रुष्टमान होकर याने अवसर देख कर अपने भाई चन्द्रशेखर को तुम्हारा राज्य स्वाधीन कर लेनेका मोका मालूम कर दिया। क्योंकि अपने इच्छित कार्यको पूरा करनेके लिये स्त्रियोमें छल कपटादि अतुल बल होता है। अनायास प्राप्त होनेवाली राज्यस-

मृद्धिके लिये किस को लालच न हो ?। खबर मिलते ही चंद्रशेखर राजा तुम्हारा राज्य लेनेकी आशासे चतुरंग सैन्य साथ लेकर तुम्हारे नगर के पास आ पहुचा। यह समाचार मालूम होने पर तुम्हारे मंत्री सामन्तोंने नगरके दरवाजे बन्द कर दिये हैं, इससे चन्द्रशेखर राजा निधि पर सर्पके समान अतुल सैन्य द्वारा आपके नगरको घेर कर पड़ा है। किले पर चढ़ कर तेरे वीर सुभट चारों तरफसे चंद्रशेखर के साथ युद्ध कर रहे हैं। परन्तु "हतं सैन्यमनायकम्" इस लौकिक कहावतके अनुसार स्वामी बिना की सैना शत्रुओंको कैसे जीत सकती है ?। जहां इस प्रकार का युद्ध मच रहा है वहां पर हम किस तरह जा सकते हैं ?। यह सब जानकर ही मैं मनमें खेद करता हुआ आगे न जाकर इस वृक्षकी टहनी पर बैठ गया हूं। आगे न जानेमें यही असाधारण कारण है।

यह समाचार सुनते ही राजाका मुंह सूख गया। उसके हृदय में हर्ष के बदले विषाद छा गया उसके चेहरे की प्रसन्नता चिन्ता ने छीन ली। वह मन ही मन विचारने लगा कि धिक्कार हो ऐसी दुराचारिणी स्त्री के दुष्ट हृदय को! आश्चर्य है इस स्वामीद्रोही चन्द्रशेखर की साहसिकता को। खैर इसमे अन्य का दोष ही क्या है ? सूने राज्य पर कौन न चढाई करे ? इसमे सब मेरी ही विचारशून्यता और अविवेक है, यदि मैं अविवेकी के समान मोह ग्रस्त होकर एकदम मंत्री सामन्तों को सूचित किये बिना अनिश्चित कार्य के लिये साहस करके न दौड़ जाता तो आज मुझे इस आपत्ति का अनुभव क्यो करना पड़ता ? विद्वानों का कथन है कि अविचारित कार्य के अन्त में पश्चात्ताप हुआ ही करता है। इस भयंकर परिस्थिति में राज्य को स्वाधीन करना बड़ा कठिन कार्य है। यद्यपि चन्द्रशेखर मेरे सामने कोई चीज नहीं है परन्तु ऐसी दशा में जब कि घर के भेदी द्वारा उसने सारे शहर को घेर लिया है, एकाकी निःसहाय उसका सामना करके पुनः राज्य प्राप्त करने की चेष्टा करना सर्वथा अशक्य है। इस समय राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिये कोई भी उपाय नहीं सूझता।

राज्य को अपने हाथों से गया समझ कर राजा पूर्वोक्त चिन्ता में निमग्न था। मन ही मन चारों ओर से निराशा के स्वप्न देख रहा था, इतने में शुकराज बोला—राजन्! इतनी चिन्ता करने का कारण नहीं। चतुर वैद्य के कथनानुसार वर्तने वाले रोगी की व्याधि क्या दूर नहीं हो सकती ? मैं तुझको एक उपाय बतलाता हूं, वैसा करने से तेरा श्रेय अवश्य होगा। तू यह न समझना कि तेरा राज्य गया। नहीं अभी तो तू बहुत वर्ष तक सुखपूर्वक राज्य भोगेगा। अमृत समान शुकराजके वचन सुन कर राजा को बड़ा आनन्द हुआ। कमलमालाकी पूर्वोक्त घटना उसके कथनानुसार यथार्थ बनने से राजा शुकराज के वचन पर ज्ञानी के वचन समान श्रद्धा रखता था। राजा मन ही मन विचार करता था कि शुकराज के कथनानुसार चाहे जिस उपाय से मेरा राज्य मुझे पुनः अवश्य प्राप्त होगा, इतनेही में सामने देखता है तो सन्नद्धबद्ध चतुरंग सैन्य त्वरित गतिसे राजा के सामने आ रहा है; यह देखकर राजा भयभीत हो विचारने लगा कि जिस चंद्रशेखर राजा की साहसिकता देखकर मेरा हृदय क्षुभित हो रहा था यह उसी की सेना मुझे मारने के लिए मेरे सामने आ रही है। ऐसी परिस्थिति मे इस कमलमाला का रक्षण किस तरह कर

सकूंगा ? और इस स्त्री सहित इन शत्रुओं के साथ मैं युद्ध भी कैसे करूंगा ? राजा इन विचारों की घुलाउ-घेड़ी में लगा हुआ था इतनेही मे "जयजीव" 'चिरंजीव' हे महाराज ! जयहो जय हो' हे महाराज ! इस ऐसी परिस्थिति में हमे आपके दर्शन हुए और आप निज स्थान पर आ पहुंचे इससे हम हमारा अहोभाग्य समझते हैं। जिस प्रकार किसी का खोया हुआ धन पुनः प्राप्त होता है उसी प्रकार हे महाराज ! आज आपका दर्शन आनंददायक हुआ है। आप अब हमें आज्ञा दो तो हम शत्रु के सैन्य को मार भगावें। अपने भक्त स्वसैनिकों का ही यह वचन है ऐसा समझता हुआ राजा सचमुच अपनी ही सेना के पास अपने आपको खड़ा देखता है। यह देखकर अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हो प्रसन्न चित्तसे राजा उनसे पुछने लगा कि, अरे ! इस वक्त तुम यहां कहां से आये ? उन्होने उत्तर दिया कि, स्वामिन् आप यहां पधारे है यह जानकर हम आपके दर्शनार्थ और आपकी आज्ञा लेने के लिए आये हैं। श्रोता, वक्ता, और प्रेक्षक को भी अकस्मात् चमत्कार उत्पन्न करे इस प्रकार का समाचार पाकर राजा विचार कर बोलने लगा कि, आप्तवाक्य (सर्वज्ञवाक्य) अनि-संवाद से (सत्य बोलने से) जैसे सर्वथा माननीय है वैसे ही इस शुकराज का वाक्य भी—अहो आश्चर्य कि अनेक प्रकारके उपकार करने से सर्वथा मानने योग्य है। इस शुकराज के उपकार का बदला मैं किस तरह दे सकूंगा ? इसे किन किन वस्तुओ की चाहना है सो किस प्रकार मालूम होगा ? मैं इसपर चाहे कितना ही उपकार करूं तथापि इसके उपकार का बदला नहीं दे सकता। क्योंकि इसने प्रथम से ही समयानुसार यथोचित् सानुकूल वस्तुप्राप्ति वगैरह के मुझपर अनेक उपकार किये हैं। इसलिए इसके उपकारों का बदला देना मुश्किल है। शास्त्रो मे कहा है कि—

प्रत्युपकुर्वति बह्वपि न भवति पूर्वोपकारिणस्तुल्यः।
एकोनुकरोति कृतं निष्कारणमेव कुरुतेऽन्यः॥ १॥

अर्थ "चाहे जितना प्रत्युपकार करो परंतु पहले किये उपकारी के उपकार का बदला दिया नहीं जा सकता; क्योंकि उसने उपकार करते समय प्रत्युपकारकी आशा न रखकर ही उपकार किया था। इस तरह प्रीतिपूर्वक राजा जब शुकराजके सन्मुख देखता है तो वह अकस्मात विद्याधर तथा दैविक शक्ति धारण करने वाले देवता के समान लोप होगया। मानो राजा प्रत्युपकार द्वारा मेरे उपकार का बदला वापिस देगा इस भय से ही संत पुरुष के समान अदृश्य होगया। शुकराज उस वृक्ष को छोड़कर बड़ी त्वरित गति से एक दिशा की तरफ उड़ता नजर आया। इस लोकोक्ति के अनुसार कि—सज्जनपुरुष दूसरे पर उपकार करके प्रत्युपकार के भयसे शीघ्र ही अपना रास्ता पकड़ते हैं, वह तोता भी राजा पर महान् उपकार करके अनंत आकाशमे उड़ गया। तोते को बहुत दूर उड़ता देख राजा साश्चर्य और खेद पूर्वक विचारने लगा कि यदि ऐसा ज्ञाननिधि शुकराज निरंतर मेरे पास रहता हो तो फिर मुझे किस बात की त्रुटि रहे ? क्योंकि सर्व कार्यो के उपकार एवं प्रत्युपकार के समय को जानने वाले सहायकारी का योग प्रायः सदाकाल सर्वत्र सबको हो नही सकता। कदाचित् किसी को योग बन भी जाय तथापि निर्धन के हस्तगत वित्त के समान चिरकाल तक कदापि नहीं

रह सकता। परंतु वह शुकराज कौन था? उसे इतना ज्ञान कैसे हुआ? वह इतना बड़ा उपकार कैसे कर सका? और वह कहां से आया और कहां गया होगा? उस वृक्षसे वस्त्रालंकार की वृष्टि कैसे हुई? और यह सेना ऐसी परिस्थिति में मेरे पास कैसे आई? इत्यादिक जो मेरे मन में आश्चर्य जनक संदेह हैं उन्हे गुफा के अंधकार को दूर करने के लिये जैसे दीपक ही समर्थ है वैसे ही ज्ञानी के विना अन्य कौन दूर कर सकता है? सब राजाओंमें मुख्य वह मृगध्वज राजा जब पूर्वोक्त विचारोंसे व्यग्रचित्त होकर इधर उधर देख रहा था तब उसके सेनापति ने संमुख आकर राजासे कहा कि स्वामिन् यह सब कुछ क्या व्यतिकर है? राजा ने सब सैनिकों के सामने जहाँ से शुकराज का मिलाप हुआ था वहां से लेकर अदृश्य होने तक का सर्व वृत्तांत कह सुनाया। इस वृत्तांत को सुनकर आश्चर्य निमग्न हो सैनिक बोलने लगे कि महाराजा यह शुकराज आपपर जब इतना अत्यंत वत्सल रखता है तो वह आपको फिर भी अवश्य मिलेगा और आपके मनकी चिन्ता दूर करेगा। क्योंकि इस प्रकार का वात्सल्य रखने वाला ऐसी उपेक्षा करके कदापि नहीं जा सकता। आपके मनोगत संदेह को भी वही दूर करेगा। क्योंकि यह तोता किसी भी कारण से ज्ञानी मालूम होता हैं अतः ज्ञानी को शंका दूर करना यह कुछ बड़ी बात नहीं। अब आप यह सर्व चिन्ता छोड़कर नगर में पधारकर उसे पवित्र करें, और आपका बहुमान करने वाले नागरिकों को अपने दर्शन देकर आनंदित करें।

राजा ने सैनिकों का समयोचित कथन मंजूर किया। हर्ष पैदा करने वाले मंगलकारी वाजिंत्रों का नाद आकाश को पूर्ण करने लगा। बड़े महोत्सव पूवक राजा ने नगरमें प्रवेश किया। मृगध्वज राजा का आगमन सुनते ही चंद्रशेखर का मद इस प्रकार उतर गया जैसे कि गरुड़ को देख कर सर्प का गर्व उतर जाता है। उसने उस वक्त अपना स्वामीद्रोह छिपानेके लिये मृगध्वज राजा के पास भेट लेकर एक भाटको भेजा। भाट राजा के पास आकर प्रणाम कर के बोला—"हे महाराज। आप की प्रसन्नता के लिये चंद्रशेखर राजा ने मुझे आपके पास विशेष विचार ज्ञापित करने के लिये भेजा है। वह विशेष समाचार यह है कि आप किसी छलभेदी के छल से राज्य सूना छोड़ कर उसके पीछे चले गये थे। उसके बाद हमारे राजा चंद्रशेखर को यह बात मालूम होनेसे आपके नगर की रक्षा के लिए वे अपने सैन्य सहित नगर के बाहर पहरा देनेके आशय से ही आ रहे थे; तथापि ऐसे स्वरूप को न जानकर आपके सुभट लोगोंने सन्नद्धबद्ध होकर जैसे कोई शत्रु के साथ युद्ध करनेको तयार होता है वैसे तुमल युद्ध' शुरू कर दिया। महाराज! आपके किसी अन्य शत्रु से आप का राज्य पराभव न हो, मात्र इसी हेतु से रक्षा करने के लिये आये हुए हम लोगोंने आप के इन सैनिकोंकी तरफ से कितने एक प्रहार भी सहन किये है। तथापि स्वामीका कार्य सुधारनेके लिए कितनी एक मुसीबतें भी सहन करनी ही पड़ती हैं। जैसे कि पिता के कार्य में पुत्र, गुरु के कार्य में शिष्य, पति के कार्य में स्त्री, और स्वामीके कार्य मे सेवक, अपने प्राणों को भी तृण समान गिनता है। उस भाट के पूर्वोक्त भेद वचन सुन कर मृगध्वज राजा ने यद्यपि उसके बोलने में सत्यासत्य के निर्णय का भी संशय था तथापि चंद्रशेखर की दाक्षिण्यता से उस वक्त उसे सत्य ही मान लिया। दक्षता में, दाक्षिण्यता में, और गांभीर्यता में अग्रसर मृगध्वज राजा ने अपने पास आये हुए उस चंद्रशेखरराजा को कितना एक मान सन्मान भी

दिया । इसी मे सज्जन पुरुषो की सज्जनता समाई है । इस के बाद लक्ष्मीवती कमलमाला को बड़े-महोत्सव-पूर्वक नगरप्रवेश कराया गया । मानो जिस प्रकार श्री कृष्ण लक्ष्मीको ही नगरमे स्वयं लाता हो, और जिस प्रकार अद्वितीय चंद्रकलाको महादेवजीने अपने भालस्थल पर स्थापन की उसी प्रकार कमलमाला को उचितता पूर्वक अपने राजसिंहासन पर अपने पास ही बैठाई । जैसे पुण्य ही पुत्रादिक की प्राप्ति का मुख्य कारण है और पुण्य ही संग्राम मे राजा को जय की प्राप्ति कराता है, तथापि राजा ने सहायकारी निमित्त मानकर सैनिको की कितनीक प्रशंसा की । एक दिन राजाको एक तापसने एक मंत्र लाकर दिया । राजाने भी बतलाई हुई विधि के अनुसार उस का जाप किया । उस मंत्र के प्रभावसे राजा की सब राणियो को एक एक पुत्र पैदा हुआ । क्योंकि ऐसे बहुत से कारण होते हैं कि, जिन से ऐसे कर्मों की सिद्धि हो सकती है । परंतु यद्यपि राजा की बड़ी प्यारी थी तथापि पतिपर द्रोह का विचार किया था इसीलिए उस पाप के कारण मात्र एक चंद्रवती राणी को ही पुत्र न हुआ ।

एकदिन मध्य रात्रिके समय किंचित् निद्रायमान कमलमाला महाराणीको किसी दिव्य प्रभावसे ही एक स्वप्न देखने में आया । तदनंतर रानी जाग कर प्रातःकाल राजाके पास आकर कहने लगी कि—हे प्राणनाथ ! आज मध्य रात्रि के व्यतीत होनेपर किंचित् निद्रायमान अवस्था मे मैंने एक स्वप्न देखा है और स्वप्नमे ऐसा देखने में आया है कि, 'जिस तपोवन में मेरे पिता श्रीगांगील नामा महर्षि हैं उसमे रहे हुए प्रासादमें हमनेप्रयाणके समय जिनके अन्तिम दर्शन किये थे उन ही प्रथम-तीर्थपति प्रभु के मुझे दर्शन हुए, उसवक्त उन्होंने मुझसे कहा कि: हे कल्याणी । अभी तो तूं इस तोते को लेजा और फिर किसी वक्त हम तुझे हंस देंगे । ऐसा कहकर प्रभुने मुझे हाथोहाथ सर्वांग सुन्दर दिव्य वस्तुके समान देदिप्यमान एक तोता समर्पण किया । उन प्रभुके हाथका प्रसाद प्राप्त कर सारे जगत की मानो ऐश्वर्यता प्राप्त की हो इसप्रकार अपने आप को मानती हुई और अत्यन्त प्रसन्न होती हुई मैं आनंद पूर्वक जाग गई । अचिंत्य और अकस्मात् मिले हुये कल्पवृक्ष के फल के समान हे प्राणनाथ ! इस सुस्वप्नका क्या फल होगा ? रानी का इस प्रकार वचन सुनकर अमृतके समान मीठी वाणीसे राजा स्वप्नका फल इसप्रकार कहने लगा कि हे प्रिये ! जिसतरह देव दर्शन अत्यन्त दुर्लभ होता है, वैसे ही ऐसे अत्युत्कृष्ट स्वप्न का देखना किसी भाग्योदय से ही प्राप्त होता है । ऐसा दिव्य स्वप्न देखने से दिव्यरूप और दिव्य स्वभाव वाले चंद्र और सूर्य के समान उदय को प्राप्त होते हुए तुझे अनुक्रमसे दो पुत्र पैदा होंगे । पक्षी के कुलमे तोता उत्तम है और राजहंस भी अत्युत्तम है, इन दोनोकी तुझे स्वप्नमे प्राप्ति हुई है इसलिए इस स्वप्न के प्रभाव से क्षत्रियकुल में सर्वोत्कर्ष वाले हमे दो पुत्रों की प्राप्ति होगी । परमेश्वरने अपने हाथसे तुझे प्रसन्नता पूर्वक स्वप्नमें प्रसाद समर्पण किया है इससे उनके समान ही प्रतापी पुत्रकी प्राप्ति होगी, इसमें जरा भी संशय नहीं है । राजाके ऐसे वचन सुनकर सानंदवदना कमलमाला रानी हर्षित होकर राजाके वचनोंको हर्ष-पूर्वक स्वीकार करती है । उस रोज से कमलमाला राणी इस प्रकार गर्भको धारण करती है कि जैसे रत्नप्रभा पृथ्वी श्रेष्ट रत्नोको धारण करती हैं और आकाश जैसे जगत् चक्षु सूर्यको धारण करता है । जिसप्रकार उत्तम रसके प्रयोगसे मेरुपर्वतकी पृथ्वीमें रहा हुआ कल्पवृक्ष का अंकुर प्रतिदिन—

बढ़ता है वैसे ही रानी का गर्भरत्न भी प्रतिदिन वृद्धि पाने लगा और उसके प्रभावसे उत्पन्न होनेवाले प्रशस्त धम संबंधी मनोरथों को राजा संपूर्ण सन्मान पूर्वक पूर्ण करने लगा। क्रमसे नव मास पूर्ण होनेपर जिस तरह पूर्व दिशा पुर्णिमाके रोज पूर्ण चंद्रको जन्म देती है वैसेही शुभ लग्न और मुहूर्तमें राणीने अत्युत्तम लक्षण युक्त पुत्र को जन्म दिया। राजा लोगों की यह एक मर्यादा ही होती है कि पटराणी के प्रथम पुत्र का जन्म-महोत्सव विशेषतासे करना। तदनुसार कमलमाला राणी पटराणी होनेके कारण उसके इस बड़े पुत्रका जन्म महोत्सव राजाने सर्वोत्कृष्ट ऋद्धिद्वारा किया। तीसरे दिन उस बालकके चंद्र सूर्य दर्शनका महोत्सव भी अति उमंग से किया गया। एवं छठे दिन रात्रि-जागरण महोत्सव भी बड़े ठाटमाट के साथ मनाया गया। तोतेकी प्राप्ति का स्वप्न आने से ही पुत्रकी प्राप्ति हुई है, इसलिए स्वप्नके अनुसार राजाने उस पुत्रका नाम शुकराज रक्खा। स्नेह पूर्वक उस बालक शुकराजको स्तन्य पान कराना, खिलाना, हलाना, स्नान कराना, प्रेम करना, इस प्रकार पांच धाय माताओं से पालित पोषित होता हुवा इस प्रकार वृद्धिको प्राप्त होने लगा जैसे कि पांच सुमतियोंसे संयमकी वृद्धि होती है। उस बालककी तमाम क्रीडायें माता पिता आदि सज्जन वर्गको आनंद दायक होने लगी। उस बच्चेका तुतलाकर बोलना सचमुच ही एक शोभा रूप हर्षका स्थान था। वस्त्र आदिका पहनना माता पिताके चित्तको आकर्षण करने लगा। इत्यादिक समस्त कृत्य माता पिताके हर्षको दिन दूना और रात चौगुणा बढ़ाने लगे। अब वह राजकुमार सर्व प्रकारके लालन पालनके संयोगो में वृद्धि पाता हुआ पांच वर्षका हुआ। उस पुण्य-प्रकर्ष वाले कुमारका भाग्य प्रताप साक्षात् इंद्रके पुत्रके समान मालूम होता था। वह बालक होनेपर भी उसके वचनकी चातुर्यता और वाणीकी माधुर्यता इस प्रकार मनोज्ञ थी कि प्रौढ़ पुरुषोंके मनको हरण करती थी। वह बचपनसे ही अपने वचन माधुर्य आदि अनेक गुणोंसे सज्जन जनोंको अपनी तरफ आकर्षित करने लगा। अर्थात् वह अपने गुणोंसे समस्त राज्य कुलके दिलमे प्रवेश कर चुका था।

एकदिन वसंत ऋतु मे पुष्पों की सुगंधी से सुगंधित और फूल फलसे अति रमणीय वनकी शोभा देखनेके लिए राजा अपनी कमलमाला महारानी और बालक कुमारको साथ लेकर नगरसे बाहर आ उसी आम्र वृक्षके नीचे बैठा कि जहां पूर्वोक्त घटना घटी थी। उस वक्त राजाको पूर्वकी समस्त घटना याद आ जानेसे प्रसन्न होकर महाराणीसे कहने लगा कि, हे प्रिये! यह वही आम्र वृक्ष है कि जिसके नीचे मैं वसंत ऋतुमे आकर बैठा था और तोतेकी वाणीसे तेरा स्वरूप सुनकर अति वेगसे उसके पीछे पीछे दौड़ता हुआ मैं तेरे पिताके आश्रम तक जा पहुंचा था। वहांपर तेरे साथ लग्न होनेसे मैंने अपने आपको कृतार्थ किया। यह तमाम वृत्तांत अपने पिता मृगध्वज राजाकी गोदमें बैठा हुआ शुकराज कुमार सुन रहा था। यह वृत्तांत सुनते ही शुकराजकुमार चैतन्यता रहित होकर इसप्रकार जमीन पर ढुलक पड़ा कि जैसे अधकटे वृक्षकी शाखा किसी पवन वेगसे गिर पड़ती है। यह देखकर अत्यन्त व्याकुलता और घबराहटको प्राप्त हुए उस बालकके माता पिता कोलाहल करने लगे, इससे तमाम राजवर्गीय लोक वहां पर एकदम आ पहुंचे और आश्चर्य पूर्वक कहने लगे हा! हा! अरे! यह क्या हुआ? इस बनावसे तमाम लोक आकुल व्याकुल हो उठे,

क्योंकि जनताके स्वामीके सुख दुःखके साथ ही सामान्य जनोंका दुःख सुख घनिष्ट संबंध रखता है। चतुर पुरुषों द्वारा चंदनादिके शीतल उपचार करनेसे थोड़े समय बाद उस बालक शुकराज कुमारको चैतन्यता प्राप्त हुई। चैतन्य आनेसे कुमारके चक्षु विकसित कमलके समान खुले परन्तु खेदकी बात है कि कुमारकी वाचा न खुली। कुमार चारों तरफ देखता है परन्तु बोल नहीं सकता। छद्मस्थावस्था में तीर्थंकर के समान मौनधारी कुमार बुलाने पर भी बोल नहीं सकता। यह अवस्था देखकर बहुतसे लोगोंने यह विचार किया कि इस रूप लावण्य युक्त कुमारको किसी देवादिकने छल लिया था। परन्तु दुःख इसी बातका है कि किसी दुष्ट कर्मके प्रभावसे इसकी जबान बंद हो गई। ऐसे बोलते हुए उसके माता पिता आदि संबंधी लोग महा चिंतामें निमग्न हो उसे शीघ्र ही राजदरबार में ले गये। वहां जाकर अनेक प्रकारके उपाय कराये परन्तु जिसप्रकार दुष्ट पुरुषकी दुष्टता दूर करनेके लिए बहोतसे किये हुए उपकार निष्फल होते हैं वैसे ही अन्तमें सर्व प्रकारके उपचार व्यर्थ हुए। कुमारकी यह अवस्था करीब छह महिने तक चली पर इतने अंतरमें उसने एक अक्षर मात्र भी उच्चारण नहीं किया। एवं कोई भी मनुष्य उसके मौनका मूल कारण न जान सका। चंद्रमा कलंकित है, सूर्य तेजस्वी है, आकाश शून्य, वायु चलस्वभावी, चिन्तामणि पाषाण, कल्पवृक्ष काष्ट पृथ्वी रज (धूल), समुद्र खारा, मेघ काला, अग्नि दाहक, जल नीच गति-गामी, मेरु सुवर्णका होनेपर भी कठोर कपूर सुवासित परन्तु अस्थिर (उडजाने वाला), कस्तूरी भी श्याम, सज्जन धन रहित, लक्ष्मीवान् कृपण तथा मूर्ख, और राजा लालची, इसी प्रकार वाम विधिने सर्व गुण संपन्न इस बालक राजकुमारको भी गूंगा बनाया। हा! कैसी खेदकी बात है की रत्न समान सब वस्तुओंको विधाताने एक एक अवगुण लगाकर कलंकित करदिया। बड़े भाग्यशाली पुरुषोंकी दुर्दशा किस सज्जनके मनमें न खटके। अतः उस समय वहांपर एकत्रित हुए सर्व नागरिक लोग अत्यन्त खेद करने लगे। दैवयोगसे इसी समय क्रीड़ारसके सागर समान और जगत् जनोंके नेत्रोंको आनन्द कारी कौमुदी महोत्सव यानी शरद् पूर्णिमाके चंद्रमाके महोत्सव का दिन उपस्थित हुआ। उस समय भी राजा अपने सर्व नागरिकोंके साथ और कमलमाला महाराणी एवं शुकराज कुमार सहित बाह्योद्यानमें आकर उसी आम्र वृक्षके नीचे बैठा। पहिली बात याद आनेसे राजा खिन्न चित्त हो रानीसे कहने लगा "हे देवि! जिस प्रकार विष वृक्ष सर्वथा त्याज्य है वैसे ही हमारे इस शुकराज पुत्र रत्नको ऐसा अत्यन्त विषम दुःख इस आम्रवृक्षसे ही उत्पन्न हुआ है। अतः यह वृक्ष भी सर्वथा त्याज्य है"। राजा इतना बोलकर जब उस वृक्षको छोड़ दूसरे स्थानपर जानेके लिए तैयार होता है इतनेमे ही अकस्मात् उसी आम्रवृक्ष के नीचे अत्यन्त आनंदकारक देवदुंदुभी का नाद होने लगा। यह चमत्कार देखकर राजा पूछने लगा कि यह दैविक शब्द कहांसे पैदा हुआ? तब किसी एक मनुष्य ने आकर कहा कि महाराज! यहांपर श्रीदत्त नामा एक मुनिराज तपश्चर्या करते थे उन्हें इसवक्त केवलज्ञान प्राप्त हुआ है। अतः देवता लोक अपने दैविक वाजित्रों द्वारा उनका महोत्सव करते हैं। इतना सुनकर राजा प्रसन्नचित्त होकर बोला कि हमारे इस पुत्र रत्नके मौनका कारण वे केवली भगवान् ही कह सकेंगे। इसलिए हमें भी अब उनके पास जाना चाहिए ऐसा कहकर राजा परिवार सहित मुनि के पास जाने लगा। वहां जाकर वंदनादिक पर्युपासना कर केवली भग-

वान के सन्मुख बैठा। उस समय केवलज्ञानी महात्मा ने क्लेशनाशिनी अमृतसमान देशना दी। देशना के अंतमे विनयपूर्वक राजा पूछने लगा कि हे भगवान्! इसी शुकराज कुमारकी वाचा बंद क्यों हुई? केवलज्ञानधारी महात्मा ने उत्तर दिया कि "यह बालक अभी बोलेगा"। अमृत के समान केवलज्ञानी का वचन सुनकर प्रसन्नता पूर्वक राजा बोला कि प्रभो! यदि कुमार बोलने लगे तो इससे अधिक हमें क्या चाहिए? केवलीभगवान् बोले कि "हे शुकराज! इन सबके देखते हुए तूं हमें वंदनादिक क्यों नहीं करता? इतना सुनते ही शुकराज ने उठकर सर्वजनसमक्ष केवलीभगवान् को उच्चार पूर्वक खमासमण देकर त्रिधिपूर्वक वंदन किया। यह महा चमत्कार देखें राजा आदि चकित होकर बोलने लगे कि, सचमुच ही इन महामुनिराजकी महिमा प्रगट देखी, क्योंकि जिसे सैकड़ों पुरुषों द्वारा मंत्रतंत्रादिक से भी बुलाने के लिए शक्तिमान न हुये उस-इस शुकराजकुमार की मुनिराज के वाक्यामृत से ही वाचा खुल गई। यहांपर चमत्कारिक बनाव देखकर मुग्ध बने हुए मनुष्यों के बीच राजा साश्चर्य पूछने लगा कि स्वामिन् यह क्या वृत्तांत है? केवलीभगवान् बोले कि इस बालक के मौन धारन करने में मुख्य कारण पूर्व जन्म का ही है। उसे हे भव्यजनो! सावधान होकर सुनो,—

शुकराज के पूर्व भव का वृत्तान्त।

मलय-नामक देशमें पहले एक भद्दिलपुर नामक नगर था। वहां पर आश्चर्यकारी चरित्रवान् जितारी नामा राजा राज्य करता था। वह राजा इसप्रकार का दानवीर एवं युद्धवीर था कि जिसने तमाम याचकों को अलंकार सहित और सर्व शत्रुओं को अलंकार रहित किया था। चातुर्य, औदार्य, और शौर्यादिक गुणों का तो वह स्थान ही था। वह एक रोज अपने सिंहासन पर बैठा था उस समय छड़ीदार ने आकर विनती की—हे महाराजेन्द्र! विजयदेव नामक राजा का दूत आपको मिलकर कुछ बात करने के लिए आकर दरवाजेपर खड़ा है, यदि आपकी आज्ञा हो तो वह दरबारमें आवे। राजाने द्वारपाल को आज्ञा दी कि उसे सत्वर यहां ले आओ। उसवक्त कृत्याकृत्य को जाननेवाला वह दूत राजाके पास आकर विनयपूर्वक नमस्कार कर कहने लगा कि महाराज! साक्षात् देवलोक समान देवपुर नगर में विजयदेव नामा राजा राज्य करता है कि जो इस समय वासुदेव के समान ही पराक्रमी है। उसकी प्रतिष्ठा प्राप्त प्रीतिमति नामा सती महाराणी ने जैसे राजनीति से शाम, दाम, भेद और दंड ये चार उपाय पैदा होते हैं त्योंही चार पुत्रों को जन्म दिये बाद हंसनी के समान हंसी नामा एक कन्यारत्न को जन्म दिया है। यह नीति ही है कि, जो वस्तु अल्प होती है वह अतिशय प्रिय लगती है। वैसे ही कई पुत्रोंपर यह एक पुत्री होने के कारण मातापिता को अत्यंत प्रिय है। वह हंसी बाल्यावस्था को त्यागकर जब आठ वर्ष की हुई उस समय प्रीतिमति महारानी ने एक दूसरी सारसी नामक कन्या को जन्म दिया कि जो साक्षात् जलाशय को शोभायमान करनेवाली सचमुच दूसरी सारसी के समान ही है। पृथ्वी में जो जो सार और निर्मल पदार्थ थे मानो उन्हीं से विधाता ने उनका निर्माण किया हो और जिन्हें किसी की उपमा ही न दी जा सके ऐसी उन दोनों कन्याओं में परस्पर अलौकिक प्रीति है। कामरूप हस्ति को क्रीडावन के समान यौवनवती होनेपर भी हंसी ने अपनी लघुबहिन सारसी के वियोग केभय से अभीतक भी अपना विवाह

करना कबूल नहीं किया। अंत में सारसी भी यौवनावस्था के सम्मुख आ पहुची। उस वक्त दोनों युवती बहिनों ने प्रीति पूर्वक यह प्रतिज्ञा की कि हमसे परस्पर एक दूसरेका वियोग न सहा जायगा इसलिए दोनों का एकही वर के साथ विवाह होना उचित है। उन दोनों को प्रतिज्ञा किये बाद मातापिता ने उनके मनोज्ञ वर प्राप्त कराने के लिये ही वहांपर यथाविधि स्वयंवर मंडप की रचना की है। मंडप में इस प्रकार की अलौकिक मञ्च रचना करने में आई है जिसका वर्णन करने के लिए बडे बड़े कवि भी विचार मे डूब जाते हैं। प्रमाण मे इतना ही कहना बस है कि वहांपर आपके समान अन्य भी बहुत से राजा आवेंगे। तदर्थ वहांपर घास एवं धान्य के ऐसे बडे बडे पुंज सुशोभित किये हैं कि, जिनके सामने बडे बडे पर्वत मात कर दिये गये हैं। अंग, वंग, कलिंग, आंध्र, जालंधर, मारवाड, लाट, भोट, महाभोट, मेदपाट (मेवाड) विराट, गौड, चौड, मराठा, कुरु, गुजराथ, आभीर, काश्मीर, गोयल, पंचाल, मालव, हुण, चीन, महाचीन कच्छ, वच्छ, कर्नाटक, कुंकण, नेपाल, कान्य-कुब्ज, कुंतल, मगध, नैषध, विदर्भ, सिंध, द्राविड, इत्यादिक बहुतसे देशोंके राजा वहांपर आनेवाले हैं। इसलिए हमारे स्वामी ने आप (मलयदेश के महाराजा) को निमंत्रण करने के लिए मुझे भेजा है। इसलिए आप वहां पधारकर स्वयंवर की शोभा बढ़ायेंगे ऐसी आशा है।" दूतके पूर्वोक्त वाक्य सुनते ही राजा का चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ, परंतु विचार करते हुए वहां जाने पर स्वयंवर मे एकत्रित हुए बहुत से राजाओं के बीच वे मुझे पसंद करगी या अन्य को। इस तरह के कन्याओ की प्राप्ति अप्राप्ति सम्बन्धी आशा और संशयरूप विचारों मे राजा का मन दोलायमान होने लगा। अंत में राजा इस विचार पर आया कि आमंत्रण के अनुसार मुझे वहां जाना ही चाहिए। स्वयंवर में जाने को तैयार हो पक्षियों के शुभ शकुन पूर्वक उत्साह के साथ प्रयाण कर राजा देवपुर नगर में जा पहुचा। आमन्त्रण के अनुसार दूसरे राजा भी वहांपर बहुतसे आ पहुचे थे। वहां के विजयदेव राजा ने उन सबको बहुमान पूर्वक नगर में प्रवेश कराया। निर्धारित दिन आनेपर अत्यादर सहित यथायोग्य ऊंचे मंचकों पर सब राजाओं ने अपने आसन अंगीकार कर देव सभा के समान स्वयम्वर मंडप को शोभायुक्त किया। तदनन्तर स्नानपूर्वक शुभ चंदनादिक से अङ्गविलेपन कर शुचिवस्त्रों से विभूषित हो सरस्वती और लक्ष्मी के समान हंसी और सारसी दोनों बहिनें पालखी मे बैठकर स्वयम्वर मंडप में आ विराजीं। उस समय जिस-प्रकार एक अत्युत्तम विक्रीय वस्तु को देखकर बहुत से ग्राहको की दृष्टि और मन आकर्षित होता है उसी-प्रकार उन रूप लावण्यपूर्ण कन्याओं को देख तमाम राजाओ की दृष्टि और मन आकर्षित होने लगा। वे एक दूसरे से बढ़कर अपने मन और दृष्टि को दौड़ाने लगे। एवं कामविवश हो विविध प्रकार की चेष्टाएं तथा अपने स्वभावपूर्वक आशय जनाने के कार्य में लगगये। ठीक इसी समय वरमाला हाथ में लेकर दोनों कन्यायें स्वयंवरमंडप के मध्यगत-भाग में आकर खड़ी हो गई। सुवर्ण छड़ी को धारण करनेवाली कुलंम-हत्तरा प्रथम से ही सर्व वृत्तांत को जानती थी इसलिए सर्व राजवर्गियों का वर्णन करती हुई कन्याओं को विदित करने लगी कि, "हे सखी यह सर्व राजाओं का राजा राजगृही का स्वामी है। शत्रुके सुख को ध्वंस करने के कार्य में अत्यंत कुशल कौशल्य देशमें आई हुई कौशला का राजा है। स्वयंवरमंडप की शोभा का प्रकाशक यह गुर्जर देश का राजा है। सदा सौम्य और मनोहर ऋद्धि प्रापक यह कलिंग देश का राजा है। जिसकी

लक्ष्मी का भी कुछ पार नहीं ऐसा यह मालव देश का राजा है। प्रजा पालने मे दयालु, यह नेपाल भूपाल । जिसके स्थूल गुणों का वर्णन करने में भी कोई समर्थ नहीं है ऐसा यह कुरु देशका नरेश है। शत्रु की शोभा का निषेध करनेवाला यह नैषध का नृपाल है। यशरूप सुगन्धो को वृद्धि करनेवाला यह मलय देश का नरेश है" इसप्रकार सखियों द्वारा-नाम उच्चारपूर्वक राजमंडल की पहिचान कराने से जिस तरह इन्दुमती ने अज राजा को हो वरमाला डाली थी वैसेही हंसी और सारसी कन्याओ ने जितारी राजा के ही कंठ में वरमाला आरोपण की इससमय लालचीपन, औत्सुक्यता, संशय, हर्ष, आनन्द, विषाद, लज्जा, पश्चाताप, ईर्षा प्रमुख गुण-अवगुण से अन्य सब राजा व्याप्त होगये। ऐसे स्वयम्वर में कई राजा अपने आगमन को कई अपने भाग्य को, और कई अपने अवतार को धिक्कारने लगे। जितारी राजा का महोत्सव और दान सन्मान पूर्वक शुभ मुहूर्त में लग्नसमांरभ हुआ। भाग्य विना मनोवांच्छित की प्राप्ति नहीं होती, इस बात का निश्चय होनेपर भी कितनेक पराक्रमी राजा आशारहित उदास बन गये। कितने ही राजा ईर्षा और द्वेष धारणकर जितारी राजा को मार डालने तकके कुत्सित कार्य में प्रवृत्त होने लगे। परन्तु उस यथार्थ नामवाले जितारी राजा का वढ़ता पुण्य होने के कारण कोई भी वालबांका न कर सका। रति प्रीति सहित कामदेव के रूप को जीतनेवाला जितारी राजा उस समय अपने शत्रुरूप वने हुए सर्व राजमंडलके गर्व को चूर्ण करता हुआ अपनी दोनो स्त्रियों सहित निर्विघ्नतापूर्वक स्वराजधानी मे जा पहुचा। तदनन्तर बड़े आडम्बर सहित अपनी दोनो राणियों को समहोत्सव नगर प्रवेश कराकर अपनी दोनो आंखो के समान समझकर उनके साथ सुख से समय व्यतीत करने लगा। हंसी राणी प्रकृति से सदैव सरल स्वभावी थी। परन्तु सारसी राणी राजा को प्रसन्न करने के लिए बीच मे प्रसंगोपात कुछ कुछ कपट भी करती थी। यद्यपि वह अपने पति को प्रसन्न करने के लिए ही कपट सेवन करती थी तथापि उसने स्त्रीगोत्र कर्म का दृढ़तया बंधन किया। हंसी ने अपने सरल स्वभाव से स्त्रीगोत्र विच्छेद कर डाला इतना ही नहीं परंतु वह राजा के भी अत्यन्त मानने योग्य हो गई। अहो! आश्चर्य की बात है कि, इस छोटा बहिन ने अपनी मूर्खता से व्यर्थ ही अपनी आत्मा को कपट करने से नीचगति गामी बनाया।

एक दिन राजा अपनी दोनों स्त्रियों सहित राजमहल में गवाक्ष के पास बैठा था इस समय उसने नगर से बाहर मनुष्यो के बड़े समुदाय को जाते देखा उसी वक्त एक नौकर को बुलाकर उसका कारण जानने की आज्ञा की। नौकर शीघ्र ही बाहर गया और कुछ देर बाद आकर बोला-"महाराज! शंखपुरी नगरीसे एक बडा संघ आया है और वह सिद्धाचल तीर्थ की यात्रा करने के लिए जाता है। अपने नगर के बाहर आज उस संघ ने पड़ाव किया है"। यह बात सुनकर बडे कौतुक से राजा संघ के पड़ाव में गया और वहां रहे हुए श्रीश्रुतसागर सूरि को राजा ने वंदन किया। सरलाशयवाला राजा आचार्य महाराज से पूछने लगा कि यह सिद्धाचल कौन-सा तीर्थ है? और उस तीर्थ का क्या महात्म्य है? क्षीरास्रव लब्धिके पात्र वे आचार्य महाराज बोले कि, राजन्! इस लोक में धर्म से ही सब इष्ट सिद्धि प्राप्त होती है। और इस विश्व में धर्म ही एक सार भूत है। नाम धर्म तो दुनिया में बहुत ही हैं, परंतु अर्हत् प्रणीत धर्म ही अत्यन्त श्रेयस्कर है। क्योंकि सम्यक्त्व (सद्धर्मश्रद्धा) ही

उसका मूल है, जिसके बिना प्राणी जो कुछ तप, जप, व्रत, कष्टानुष्ठानादिक करता है, वह सब वंध्य वृक्ष के समान व्यर्थ हैं। वह सम्यक्त्व भी तीन तत्त्व सद्दहणारूप है। वे तीन तत्व-देव, गुरू, और धर्म शुद्ध तत्वरूप है। उन तीनों तत्वोंमें भी प्रथम देवतत्व अरिहंत को समझना चाहिए, अरिहन्त देव में भी प्रथम अरिहन्त श्री युगादिदेव (ऋषभदेव) हैं। अत्यंत महिमावन्त ये देव जिस तीर्थपर विराजते हैं वह सिद्धाचल नामा तीर्थ भी महाप्रभाविक है। यह विमलाचल नामा तीर्थ तमाम तीर्थो मे मुख्य है; ऐसा सब तीर्थकरो ने कथन किया है। इस तीर्थ के नाम भी जुदे जुदे कार्यो के भेद से इक्कीस कहे जाते हैं। जैसे कि, १ सिद्धक्षेत्रकूट, २ तीर्थराज, ३ मरुदेवीकूट, ४ भगीरथकूट, ५ विमलाचलकूट, ६ बाहुबलीकूट, ७ सहस्रकमलकूट, ८ तालध्वजकूट, ९ कदम्बगिरिकूट, १० दशशतपत्रकूट, ११ नागाधिराजकूट, १२ अष्टोत्तरशतकूट, १३ सहस्रपत्रकूट, १४ ढंककूट, १५ लोहित्यकूट, १६ कपर्दिनिवासकूट, १७ सिद्धिशेखरकूट, १८ पुंडरिक, १९ मुक्तिनिलयकूट, २० सिद्धिपर्वतकूट, २१ शत्रुंजयकूट। इसप्रकार के इक्कीस नाम कितनेएक मनुष्यकृत, कितनेएक देवकृत, और कितनेएक ऋषिकृत मिल कर इस अवसर्पिणी में हुए हैं। गत अवसर्पिणी में भी इसीप्रकार दूसरे इक्कीस नाम हुए थे और आगामी अवसर्पिणीमे भी प्रकारांतरसे ऐसे ही नूतन इक्कीस नाम इस पर्वतके होंगे। इस वर्तमान अवसर्पिणी मे जो इक्कीस नाम आपके समक्ष कहे उनमे से शत्रुंजय जो इक्कीसवां नाम आया है वह तेरे आगामी भवसे तेरेसे ही प्रसिद्ध होगा। इसप्रकार भी हमने ज्ञानी महात्मा के पास सुना हुवा है। सुधर्मा स्वामी के रचे हुए महाकल्प नामक ग्रन्थमें इस तीर्थ के अष्टोत्तरशत (एक सो आठ) नाम भी सुने हैं, और वे इसप्रकार हैं। १ विमलाचल, २ देवपर्वत, ३ सिद्धिक्षेत्र, ४ महाचल, ५ शत्रुंजय, ६ पुंडरिक, ७ पुण्यराशि, ८ शिवपद, ९ सुभद्र, १० पर्वतेन्द्र, ११ दृढ़शक्ति, १२ अकर्मक, १३ महापद्म, १४ पुष्पदंत, १५ शाश्वतपर्वत, १६ सर्वकामद, १७ मुक्तिगृह, १८ महातीर्थ, १९ पृथ्वीपीठ, २० प्रभुपद, २१ पातालमूल, २२ कैलासपर्वत, २३ क्षितिमण्डल, २४ रैवतगिरि, २५ महागिरि, २६ श्रीपदगिरि, २७ इन्द्रप्रकाश, २८ महापर्वत, २९ मुक्तिनिलय, ३० महानंद, ३१ कर्मसूदन, ३२ अकलंक, ३३ ३३ सुंदर्य, ३४ विभासन, ३५ अमरकेतु, ३६ महाकर्मसूदन, ३७ महोदय, ३८ राजराजेश्वर, ३९ ढीक, ४० मालव्रतोय, ४१ सुरगिरि, ४२ आनन्दमन्दिर, ४३ महाजस, ४४ विजयभद्र, ४५ अनन्तशक्ति, ४६ विजयानन्द ४७ महाशैल, ४ भद्रंकर, ४९ अजरामर, ५० महापीठ, ५१ सुदर्शन, ५२ अर्चगिरि, ५३ तालध्वज, ५४ खेमंकर, ५५ अनन्तगुणाकर, ५६ शिवंकर, ५७ केवलदायक, ५८ कर्मक्षय, ५९ ज्योतिस्वरूप, ६० हिमगिरि, ६१ नागाधिराज, ६२ अचल, ६३ अभिनन्द, ६४ स्वर्ण, ६५ परमब्रम, ६६ महेंद्रध्वज, ६७ विश्वाधीश, ६८ कादम्बक, ६९ महीधर, ७० हस्तगिरि, ७१ प्रियंकर, ७२ दुखहर, ७३ जयानन्द, ७४ आनन्दधर, ७५ जसोदर, ७६ सहस्रकमल, ७७ विश्वप्रभावक, ७८ तमोकन्द, ७९ विशालगिरि, ८० हरिप्रिय, ८१ सुरकांत, ८२ पुन्यकेस, ८३ विजय, ८४ त्रिभुवनपति, ८५ वैजयन्त, ८६ जयन्त, ८७ सर्वार्थसिद्ध, ८८ भवतारण, ८९ प्रियंकर, ९० पुरुषोत्तम, ९१ कयम्बू, ९२ लोहिताक्ष, ९३ मणिकांत, ९४ प्रत्यक्ष, ९५ असीविहार, ९६ गुणकन्द, ९७ गजचन्द्र, ९८ जगतरणी, ९९ अनन्तगुणाकर, १०० नगश्रेष्ठ, १०१ सहेजानन्द, १०२ सुमति, १०३ अभय, १०४ भव्यगिरि, १०५ सिद्धशेखर, १०६ अनन्तरलेस, १०७ श्रेष्ठगिरि, १०८ सिद्धाचल।

इस अवसर्पिणी में पहले चार तीर्थंकरों (ऋषभदेव, अजितनाथ, संभवनाथ और अभिनन्दन स्वामी) के समवसरण इस तीर्थपर हुए हैं। एवं अठारह तीर्थंकरों (सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चंद्रप्रभ, सुविधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, नमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीरस्वामी) के समवसरण भी यहां होनेवाले हैं। एक नेमनाथ बिना इस चोवीसी के अन्य सब तीर्थंकर इस तीर्थ पर समवसरेंगे। इस तीर्थपर अनन्त मुनि सिद्धिपद को प्राप्त हुए हैं इसीलिये इस तीर्थ का नाम सिद्धिक्षेत्र प्रसिद्ध हुआ है। सर्व जगत् के लोक जिनकी पूजा करते हैं ऐसे तीर्थंकर भी इस तीर्थ की बड़ी प्रशंसा करते हैं एवं महाविदेहक्षेत्र के मनुष्य भी इस तीर्थ की निरन्तर चाहना करते हैं। यह तीर्थ प्रायः शाश्वता ही है। दूसरे तीर्थोंपर जो तप जप दानादिक तथा पूजा स्नात्रादिक करने-पर फल की प्राप्ति होती है उससे इस तीथपर तप, जप, दानादिक किये हुए धर्मकृत्य का फल अनन्तगुणा अधिक होता है। कहा भी है कि—

पल्योमसहस्रं च ध्यानाल्लक्षमभिग्रहात् ।
दुष्कर्म क्षीयते मार्गे सागरोपम संमीतम् ॥ १ ॥
शत्रुंजये जिने दृष्टे दुर्गतिद्वितीयं क्षिपेत् ।
सागराणां सहस्रं च पूजास्नात्रविधानतः ॥ २ ॥

"अपने घरमें बैठा हुआ भी यदि शत्रुंजय का ध्यान करे तो एकहजार पल्योपम के पाप दूर होते हैं, और तीर्थ यात्रा न हो तबतक अमुक वस्तु न खाना ऐसा कुछ भी अभिग्रह धारण करे तो एकलाख पल्योपम के पाप नष्ट होते हैं। दुष्कर्म निकाचित हो तथापि शुभ भाव से क्षय कर सकता है। एवं यात्रा करने के लिए अपने घर से निकले तो एक सागरोपम के पापको दूर करता हैं। तीर्थ पर चढ़कर मूलनायक के दर्शन करे तो उसके दो भव के पाप क्षय होते हैं। यदि तीर्थनायक की पूजा तथा स्नात्र करे तो एकहजार सागरोपमके पाप कर्म क्षय किए जा सकते हैं! इस तीर्थ की यात्रा करने के लिए एक एक कदम तीर्थ के सन्मुख जावे वह एक एक कदम पर एक एक हजार भवकोटि के पाप से मुक्त होता है। अन्य स्थानपर पूर्व करोड़ वर्ष तक क्रिया करने से जिस शुभ फल की प्राप्ति होती है वह फल इस तीर्थ पर निर्मल भाव द्वारा धर्मकृत्य करनेपर अंतर्मुहूत में प्राप्त किया जा सकता है। कहा है कि,—

जं कोडिए पुण्णं कामिअआहारभोइआएउं ।
तं लहइ तित्थपुण्णं एगो वासेण सत्तुंजे ॥ १ ॥

अपने घर बैठे इच्छित आहार भोजन कराने से क्रोड़ बार स्वामिवात्सल्य करने पर जो पुण्य प्राप्त होता है उतना पुण्य शत्रुंजय तीर्थ पर एक उपवास करने से होता है।

जंकिंचि नाम तित्थं सग्गे पायाले माणुसे लोए ।
तं सव्वमेवदिट्ठं पुंडरिए वंदिए संते ॥ २ ॥

जितने नामांकित तीर्थ, स्वर्ग, पाताल और मनुष्यलोक में हैं, उन सबके दर्शन करने की अपेक्षा एक सिद्धाचल की यात्रा करे तो सर्व तीर्थों की यात्रा का फल पा सकता है।

पडिलामंते संघे दिट्ठमदिट्ठेअ साहू सत्तुंजे।
कोडि गुणंच अदिट्ठे, दिठ्ठे णंतगुणं होई ॥ ३ ॥

शत्रुंजय तीर्थपर श्री संघ का स्वामिवात्सल्य कर जिमावे तो मुनि के दर्शन का फल होता है, मुनि को दान देने से तीर्थयात्रा का फल मिलता है; तीर्थनायक के दर्शन किये पहले भी श्री संघ को जिमाने से क्रोड़ गुणा फल होता है और यदि तीर्थ की यात्रा करके जिमावे तो अनन्त गुणा फल प्राप्त होता है।

नवकारसहिए पुरिमड्ढेगासणं च आयामं।
पुंडरियं समरंतो फलकंखीकुणइ अभसट्ठं ॥ ४ ॥

नवकारसी, पोरिसी, पुरीमढ़, एकासना, आयंबिल, उपवास, प्रमुख तप करते हुये यदि अपने घर बैठा हुआ भी तीर्थ का स्मरण करे तो,—

छट्ठट्ठमदसमदुवालसाण मासद्धमासखमणाण।
तिगरणसुद्धीलहइ सत्तुंजे संभरंतोअ ॥ ५ ॥

नवकारसी से छट्ठका, पोरिसी से अट्ठम का, पुरीमढ से चार उपवास का, एकासनसे छह उपवास का, आंबिलसे पन्द्रह उपवास का और एक उपवास से मासक्षपण (महीनेके उपवास) का फल प्राप्त होता है। यानी पूर्वोक्त तप करके घर बैठे भी—"शत्रुंजयाय नमः" इस पद का जाप करे तो पूर्वोक्त गाथा मे बतलाया हुआ फल मिलता है।

न वित्तं सुवण्णभूमि भूसणदाणेण अन्न तित्थसु।
जं पावइ पुण्णफलं पूआनमणेण सत्तुंजे ॥ ६ ॥

एक शत्रुंजय तीर्थपर मूलनायक की स्नात्र पूजा नमस्कार करने पर जो पुण्य उत्पन्न होता है सो पुण्य अन्य तीर्थोंपर सुवर्णभूमि तथा आभूषण का दान करने पर भी प्राप्त नहीं होता!

धुवे पक्खुववासे मासक्खमणं कपुर धुवंमि।
कत्तियमासक्खवणं साहु पडिलभीए लहइ ॥ ७ ॥

इस तीर्थपर धूप पूजा करे तो पंद्रह उपवास का फल मिलता है, यदि कपूर का धूप करे तो मासक्षपण का फल होता है और यदि एक भी साधु को अन्नदान दे तो कितने एक महीनों के उपवास का फल मिलता है।

यद्यपि पानी के स्थान बहुत ही हैं तथापि सबसे अधिक समुद्र ही है वैसेही अन्य सब लघु तीर्थ हैं परंतु सबसे अधिक तीर्थ श्री सिद्धिक्षेत्र ही है। जिसने ऐसे तीर्थ की यात्रा करके स्वार्थ सिद्धि नहीं की ऐसे मनुष्य के मनुष्यजन्म से क्या फायदा? अधिक जीने से क्या? धनप्राप्ति से क्या? और बड़े कुटुम्ब से

क्या ? कुछ लाभ नहीं। जिस मनुष्य ने इस पवित्र तीर्थ की यात्रा न की उसे जन्मे हुये को भी गर्भावास में ही समझना चाहिये, उस का जीना भी नहीं जीने के बराबर और विशेष जानकार होने पर भी उसे अनजान ही समझना चाहिये। दान, शील, तप, कष्टानुष्ठान ये सर्व कष्टसाध्य हैं अतः बने उतने प्रमाण में करने योग्य हैं तथापि सुख पूर्वक सुसाध्य ऐसी इस तीर्थ की यात्रा तो आदरपूर्वक अवश्य ही करनी चाहिये। संसारी प्राणियों में वही मनुष्य प्रशंसनीय है और माननीय भी वही है कि जिसने पैदल चलकर सिद्धिक्षेत्र की छहरी पालते हुये सात यात्रा की हो। पूर्वाचर्यों ने भी कहा है कि—

छठ्ठेणं भत्तेणं अप्पाणएणं तु सत्तजत्ताओ।
जोकुणइसत्तुंजे सो तइयभवे लहइ सिद्धिं ॥ १ ॥

जो शत्रुंजय तीर्थ की चोविहार सात छट्ठ करके सात बार यात्रा करता है वह प्राणी निश्चय से तीसरे भव में सिद्धि पद को प्राप्त करता है।

इस प्रकार भद्रकत्वादि गुणयुक्त उन गुरु की वाणी से जिस तरह वृष्टि पडने से काली मिट्टी द्रवित हो हो जाती है वैसे ही उस जितारी राजा का हृदय कोमल होगया। जगत् मित्र सदृश उन केवलज्ञानी गुरु ने अपनी अमोघ वाणी के द्वारा लघुकर्मी जितारी राजा को उस वक्त सम्यकत्व युक्त बना था। जितारी राजा के अंतःकरण पर गुरु की अमोघ वाणी का यहां तक शुभ परिणाम हुआ कि उसने तत्काल ही तीर्थयात्रा करने की अभिरुचि उत्पन्न होने से अपने प्रधानादिक को बुला कर आज्ञा की कि हाल तुरन्त हो यात्रार्थ जाने का सामग्री तैयार करो। इतना ही नहीं बल्कि उसने इस प्रकार का अत्युग्र उत्कृष्ट अभिग्रह धारण किया कि जब तक उस तीर्थ की यात्रा पैदल चलकर न कर सकूं वहां तक मुझे अन्न पानी का सर्वथा त्याग है। राजा की इस प्रकार की कठोर प्रतिज्ञा सुनकर हंसिनी तथा सारसी ने भी उसी वक्त कुछ ऐसी ही प्रतिज्ञा ग्रहण का। "यथा राजा तथा प्रजा" इस न्याय के अनुसार प्रजावर्ग में से भी कितने एक मनुष्यों ने कुछ वैसी ही प्रकारांतर की प्रतिज्ञा धारण की। ऐसा क्या कारण बना कि, जिससे कुछ भी लम्बा विचार किये बिना राजा ने ऐसा अत्यन्त कठोर अभिग्रह धारण किया! अहो! यह तो महा खेदकारक वार्ता बनी है कि, वह सिद्धाचल तीर्थ कहां रहा ? और इतना दूर होनेपर भी ऐसा अभिग्रह महाराज ने क्यों धारण किया ? प्रधानादिक पूर्वोक्त प्रकार से खेद पूर्वक सोच करने लगे। जब मन्त्री सामन्त इस प्रकार खेद कर रहे थे तब गुरु महराज बोले कि जो जो अभिग्रह ग्रहण करना वह पूर्वापर विचार करके ही करना योग्य है। विचार किये बिना कार्य करते हुए पीछे से बड़ा पश्चात्ताप करना पड़ता है और उस कार्य में लाभ की प्राप्ति तो दूर रही परन्तु उससे उलटा नुकसान ही भोगना पड़ता है। यह सुनकर अतिशय उत्साही राजा बोलने लगा कि हे भगवन्! अभिग्रह धारण करने के पहिले ही मुझे विचार करना चाहिए था। परन्तु अब तो उस विषय में जो विचार करना है सो व्यर्थ है। पानी पीने बाद जाति पूछना या मस्तक मुंडन कराने बाद तिथी, वार, नक्षत्र, पूछना यह सब कुछ व्यथ ही है। अब तो जो हुआ सो हुआ। मैं पश्चात्ताप बिना ही इस अभिग्रह का गुरु महाराज के चरण पसाय से निर्वाह करूंगा। यद्यपि सूर्य का सारथी पग रहित है तथापि क्या वह आकाश का अन्त नहीं पा

सकता ? ऐसा कहकर श्री संघ के साथ चतुरंगिनी सेना लेकर राजा यात्रा के मार्ग में चलने लगा। मानों कर्म रूप शत्रु को ही हनन करने को जाता हो। इस प्रकार बड़ी शीघ्र गति से चलता हुआ राजा कितने एक दिनों में काश्मीर देश की एक अटवी में जा पहुंचा। क्षुधा, तृषा, पैरों से चलना, एवं मार्ग में चलने के परिश्रम के कारण राजा रानी अत्यन्त आकुल व्याकुल होने लगे। उस वक्त सिंह नामक विचक्षण मन्त्रीश्वर चिंतातुर होकर गुरु महाराज के पास आकर कहने लगा कि महाराज! राजा को किसी भी प्रकार से समझाइये, यदि धर्म के कार्य में समझपूर्वक कार्य न करेंगे और एकान्त आग्रह किया जायगा तो इसके परिणाम में जैनशासन की उलटी निंदा होगी। ऐसा बोलता हुआ मन्त्री वहां से राजा के पास आकर कहने लगा कि, हे राजन्! लाभालाभ का तो विचार करो! सहसात्कार से जो काम अविचार से किया जाता है प्रायः वह अप्रमाण ही होता है। उत्सर्ग में भी अपवाद मार्ग सेवन करना पडता है और इसीलिये "सहस्सागारेणं" का आगार (पाठ) सिद्धांतकारों ने बतलाया हुआ है। मन्त्री के पूर्वोक्त वचन सुनकर शरीर से अतिशय आकुलता को प्राप्त हुआ है तथापि मन से सर्वथा सत्कार्य में उत्साही राजा गुरु महाराज के समीप बोलने लगा कि, हे प्रभो! असमर्थ परिणामवंत को ही ऐसा उपदेश देना चाहिए। मैं तो अपने बोले हुए वचन को पालने में सचमुच ही शूरवीर हूं। यदि कदाचित् मैं प्राण से रहित भी हो जाऊं तथापि मेरी प्रतिज्ञा तो निश्चय ही अभंग रहेगी। अपने पति का उत्साह बढ़ाने के लिये वे वीर पत्नियां भी वैसे ही उत्साह वर्धक वचन बोलने लगीं। राजा रानी के उत्साहवर्धक वचन सुनकर संघ के मनुष्य आश्चर्य में निमग्न हुये। और एक दूसरे से बोलने लगे कि, देखो कैसा आश्चर्य है कि राजा ऐसे अवसर पर भी धर्म में एकाग्र चित्त है। अहो! धन्य है ऐसे सात्विक पुरुषों को! सब मनुष्य इस प्रकार राजा की प्रशंसा करने लगे। अब क्या होगा या क्या करना चाहिये? इस प्रकार की गहरी आलोचना में आकुल हृदय वाला सिंह नामक मन्त्री चिन्ता निमग्न हो रात्रि के समय तंबू में सो रहा था उस समय विमलाचल तीर्थ का अधिष्ठायक गोमुख नामा यक्ष स्वप्न में प्रकट होकर कहने लगा कि "हे मन्त्रीश्वर! तूं किसलिये चिंता करता है? जितारी राजा के धैर्य से वश होकर मैं प्रसन्नता पूर्वक विमलाचल तीर्थ को यहां ही समीपवर्ती प्रदेश में लाऊंगा, अतः तूं इस चिन्ता को दूर कर। मैं कल प्रभात के समय विमलाचल तीर्थ के सन्मुख चलते हुए श्री समस्त संघ को विमलाचल तीर्थ की यात्रा कराऊंगा। जिससे सबका अभिग्रह पूर्ण हो सकेगा। उसका इस प्रकार हर्षदायक वचन सुनकर मन्त्री यक्षराज को प्रणाम पूर्वक कहने लगा कि "हे शासनरक्षक! इस समय आकर आपने जैसे मुझे स्वप्न में आनन्द कारक वचन कहे वैसे ही इस संघ में गुरु प्रमुख अन्य भी कितने एक लोगों को स्वप्न देकर ऐसे ही हर्षदायक वचन सुनाओ कि जिस से संपूर्ण लोगों को निश्चय हो जाय"। मंत्री के कथनानुसार गोमुखयक्ष ने भी उसी प्रकार श्री संघ में बहुत से मनुष्यों को स्वप्नांतर्गत वही अधिकार विदित किया। तदनन्तर दूसरे दिन प्रभात समय ही उसने उस महा भयंकर अटवी में एक बड़े पर्वत पर कृत्रिम विमलाचल तीर्थ की रचना की। देवता को अपनी दिव्य शक्तिके द्वारा यह सब कुछ करना असंभवित न था। देवता की वैक्रियशक्ति से रचित वस्तु मात्र पंद्रह दिन ही रह सकती है। परन्तु औदारिक परिणाम से परिणत हो तो गिरनार तीर्थ

पर श्री नेमिनाथ स्वामी की मूर्ति के समान असंख्यात काल पर्यंत भी रह सकती है। प्रभात समय होने पर राजा, आचार्य, मंत्री, सामन्त वगैरह बहुतसे मनुष्य परस्पर अपने स्वप्न सम्बन्धी बातें करने लगे। तदनन्तर सर्व जन प्रमुदित होकर अविवाद पूर्वक तीर्थ के सन्मुख चलने लगे। कुछ दूर जानेपर रास्ते में ही विमलाचल तीर्थ को देखकर संघ को अत्यन्त हर्ष हुआ। तीर्थ पर चढ कर राजा आदि भक्त जन दर्शन पूजा करके अपने अभि-ग्रह को पूर्ण करने लगे। एवं हर्ष से रोमांचित हो अपने आत्मा को पुण्य रूप अमृत से पूर्ण पुष्ट करने लगे। स्नात्रपूजा, ध्वजपूजा, आदि कर्तव्य क्रिया करके माला प्रमुख पहन कर सर्व मनुष्य प्रमुदित हुए। इस प्रकार अपने अभिग्रह को पूर्ण कर वहां से मूल शत्रुंजय तीर्थ की तरफ यात्रार्थ संघ ने प्रस्थान किया। परन्तु राजा भगवान् के गुण रूप चूर्ण से मानों वशीभूत हुआ हो त्यों वारंवार फिर वहीं जाकर मूलनायक भगवान् को नमन वन्दन करता है। ऐसा करते हुए अपनी आत्मा को सातों नरक में पडने से रोकने के लिये ही प्रवृ-त्तिमान हुआ हो त्यों राजा सातवार तीर्थपर से उतर कर सातवीं वार फिर से तीर्थ पर चढ़ा। उस वक्त सिंह नामक मन्त्री पूछने लगा कि, हे राजेन्द्र! आप इस प्रकार वार वार उतर कर फिर क्यों चढते हो? राजा ने जवाब दिया कि जैसे माताको बालक नहीं छोड़ सकता वैसेही इस तीर्थ को भी छोड़ने के लिये मैं असमर्थ हूं। अतः यहां ही नवीन नगर बसाकर रहने का मेरा विचार है क्योंकि निधान के समान इस पवित्र स्थान को प्राप्त करके मैं किस तरह छोड़ूं?

अपने स्वामी की आज्ञा को कौन विचक्षण और विवेकी पुरुष लोप कर सकता है? इसलिए उस मन्त्री ने राजा की आज्ञा से उसी पर्वत के समीप वास्तुक शास्त्र की विधि पूर्वक एक नगर बसाया। इस नगर में जो निवास करेगा उससे किसी प्रकार का कर न लिया जायगा ऐसी आज्ञा होने से कितने एक लोभ से, कितने एक तीर्थ की भक्ति से, कितने एक सहज स्वभावसे ही उस संघ के मनुष्य एवं अन्य भी बहुत से वहां आकर रहने लगे। पास में ही नवीन विमलाचल तीर्थ होने के कारण और निर्मल परिणाम वालों का ही अधिक भाग वहां आकर निवास करने के कारण उस नगरका नाम भी विमलापुर सार्थक हुवा। नई द्वारामती नगरी बसाकर जैसे श्रीकृष्ण वासुदेव रहे थे वैसे ही बड़ी राजरिद्धि सहित एवं श्री जिनेश्वर भगवान् का धर्मध्यान करते हुये वह राजा भी सुख से वहां निवास करने लगा। मीठे स्वर का बोलनेवाला एक शुक (तोता) राजाहंस के समान उस जितारी राजा को परमानन्दकारी क्रीड़ा का स्थानरूप प्राप्त हुवा। जब २ राजा जिन मन्दिर में जाकर अर्हत् दर्शन ध्यान में निमग्न होता था तब तब उस शुकराज के मीठे वचन सुनने में उसका मन लगता था। जिस प्रकार चित्र पर धूम्र लगनेसे उसपर कालिमा छा जाती है उसी प्रकार उसके शुभ ध्यान में उस पोपट के मिष्ट वचनों पर प्रीति होने के कारण मलीनता छा जाती थी। इसी तरह कितनाक समय व्यतीत होने पर राजाने अन्त समय जिन मंदिर के समीप अनशन धारण किया। क्योंकि ऐसे विवेकी पुरुष अन्तिम अवस्था में समाधि मरण कीही चाहना रखते हैं। समय को जानने वाली और धैर्यवती वे हंसी और सारसी दोनों रानियां उस समय राजाको निर्यामना (शुभध्यान) कराती हुई नवकार मंत्र श्रवण कराना आदि कृत्य कर रही हैं, ठीक उसी समय पर वह तोता उसी जिन मन्दिर के शिखर पर चढ़कर मिष्ट

वचन उच्चारण करने लगा। इससे राजा का ध्यान इस तोते पर ही लग गया। उसी समय राजाका आयुष्य भी परिपूर्ण होने से तोते के वचनों पर राग होनेके कारण उसे तोते की जातिमें ही जन्म लेना पड़े इस प्रकार का कर्म बन्धन किया। अहा हा!! भवितव्यता कैसी बलवान है! "अन्त समयमें जैसी मति होती है वैसी ही इस आत्मा की गति होती है" ऐसी जो पण्डित पुरुषों की उक्ति है मानो वही इस शुकवचन की रागिष्टता से सिद्ध होती है। तोता, मैना, हंस, और कुत्ता वगैरह की क्रीडाओं को तीर्थंकरों ने सर्वथा अनर्थदण्डतया बतलाई है यह बिल्कुल सत्य है! अन्यथा ऐसे सम्यक्त्ववंत राजा को ऐसी नीच गति क्यों प्राप्त हो। इस भांतिका इस राजा को धर्म का योग होते हुए भी जब उसकी ऐसी दुष्ट गति हुई तब ही तो ऐसे अनेकांतिक मार्ग से यह सिद्ध होता है कि जीव की गति की अतिशय विचित्रता ही है। नरक और तिर्यंच इन दो गतियों का प्राणी ने जिस दुष्ट कर्म से बन्ध किया हो उस कर्म का क्षय विमलाचल तीर्थ की यात्रा से ही हो जाता है। परन्तु इसमें विशेष इतना ही विचार करने योग्य है कि फिर भी यदि तिर्यंच गतिका बन्ध पड़ गया तो वह भोगने से भी क्षय किया जा सकता है परन्तु जो बन्ध पड़ा वह बिना भोगे नहीं छूट सकता। यहां इतना जरूर स्मरण रखना चाहिये कि तीर्थ की भक्ति सेवा से तो दुर्गति नहीं किंतु शुभ गति ही होती है। ऐसी इस तीर्थ की महिमा होने पर भी उस जितारी राजा की तिर्यंच गति रूप दुर्गति हुई इसमें कुछ तीर्थ के महिमा की हानि नहीं होती। क्योंकि यह तो प्रमादाचरण का लक्षण ही है कि शीघ्र दुर्गति प्राप्त हो। जैसे कि किसी रोगी को वैद्य ने योग्य औषधि से निरोगी किया तथापि यदि वह कुपथ्यादिक का सेवन करे तो फिर से रोगी हो जाय इसमें वैद्य का कुछ दोष नहीं दोष तो कुपथ्य का ही है, वैसे ही इस राजा की भी प्रमादवश से दुर्गति हुई। यद्यपि पूर्वभवकृत कर्मयोग से उत्पन्न हुए दुर्ध्यान से कदाचित् वह शुकरूप तिर्यंच हुवा तथापि सर्वज्ञ का वचन ऐसा है कि एक बार भी सम्यक्त्व प्राप्ति हुई है वह सर्वोत्कृष्ट सफल है इसलिए उसका फल उसे मिले बिना न रहेगा"।

तदनंतर जितारी राजा को मृत्यु सम्बन्धी सर्व संस्कार कराने के पश्चात् उसकी दोनों राणियों ने दीक्षा अंगीकार करके तपश्चर्या करना शुरू की। विशुद्ध संयम पालकर सौधर्म नामा प्रथम देवलोक में दोनों देवियां हुई। देवलोक मे दोनों देवियों को अवधिज्ञान से मालूम हुवा कि उनके पूर्वभव का पति तिर्यंच गति में उत्पन्न हुवा है। इससे उन्होंने उस तोते के पास आकर उसे उपदेश दे प्रतिबोध किया। अन्त में उसी नवीन विमलाचल तीर्थ के जिनमंदिर के पास उन्होने पूर्व के समान उसे अनशन कराया। जिसके प्रभाव से उन्हीं देवियों का पति वह तोता—जितारी राजा का जीव प्रथम देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुआ। उसने अपनी दोनों देवियों के देवलोक से च्यवन होने के पहले ही उसने किसी केवलज्ञानी से पूछा कि स्वामिन्! मैं सुलभबोधि हूं या दुर्लभबोधि? केवली ने कहा कि तूं सुलभबोधि है। उसने पूछा कि महाराज! मैं किस तरह सुलभबोधि हो सकूंगा? महात्मा बोले कि इन तेरी देवियों के बीच में जो पहली देवी हंसी का जीव है, वह च्यव कर क्षितिप्रतिष्ठित नगर में ऋतुध्वज राजा का मृगध्वज नामक पुत्र होगा और दूसरी देवी सारसी का जीव च्यव कर काश्मीर देश में नवीन विमलाचल तीर्थ के समीप ही तापसों के आश्रममें पूर्वभव में

किये हुए कपट के स्वभाव से गांगील नामक ऋषि की कमलमाला नाम की कन्या होगी इन दोनों का विवाह सम्बन्ध हुवे बाद तूं च्यव कर जातिस्मरणज्ञान को प्राप्त करनेवाला उनका पुत्र होवेगा। तदनंतर अनुक्रम से च्यवकर हंसी का जीव तूं मकरध्वज राजा और सारसी का जीव कमलमाला कन्या (यह तेरी रानी) उत्पन्न हुये बाद उस देवता ने स्वयं शुक का रूप बनाकर मिठी वाणी द्वारा तुझें तापसों के आश्रम में लेजाकर उसका मिलाप करवा दिया। वहां से पीछे लाकर तेरे सैन्य के साथ तेरा मिलाप कराकर वह पुनः स्वर्ग में चला गया। तथा देवलोक से च्यव कर उसी देवका जीव यह तुम्हारा शुकराज कुमार उत्पन्न हुआ है। इस पुत्र को लेकर तूं आम्रवृक्ष के नीचे बैठकर कमलमाला के साथ जब तूं शुक की वाणी संबंधी बात चीत करने लगा उस वक्त वह बात सुनते ही शुकराज को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुवा इससे यह विचारने लगा कि इसवक्त ये मेरे माता पिता हैं परन्तु पूर्वभव में तो ये दोनों मेरी स्त्रियां थीं, अतः इन्हें माता पिता किस तरह कहा जाय? इस कारण मौन धारण करना ही श्रेयस्कर है। भूतादिक का दोष न रहते भी शुकराज ने पूर्वोक्त कारण से ही मौन धारण किया था परन्तु इस वक्त इससे हमारा वचन उल्लंघन न किया जाय इसी कारण यह मेरे कहने से बोला है। यह बालक होने पर भी पूर्वभव के अभ्यास से निश्चय से सम्यक्त्व पाया है। शुकराज कुमार ने भी महात्मा के कथनानुसार सब बातें कबूल कीं। फिर श्रीदत्त केवलज्ञानी बोले कि हे शुकराज! इसमें आश्चर्य ही क्या है? यह संसाररूप नाटक तो ऐसा ही है। क्योंकि इस जीवने अनन्त भवों तक भ्रमण करते हुये हरएक जीव के साथ अनंतानंत संबंध कर लिये है। शास्त्र में कहा है कि जो पिता है वही पुत्र भी होता है और जो पुत्र है वही पिता बनता है। जो स्त्री है वही माता होती है और जो माता है वही स्त्री बनती है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है कि;—

न सा जाइ न सा जोणी न तं ठाणं न तं कुलं। न जाया न मुआ जत्थ सव्वे जीव अनंतसो ॥ १ ॥

ऐसी कोई जाति, योनि, स्थान, कुल बाकी नहीं रहा है कि जिसमें इस जीव ने जन्म और मरण प्राप्त न किया हो क्योंकि ऐसे अनंत बार हर एक जीव ने अनंत जीवों के साथ संबंध किये हैं। इसलिए किसी पर राग एवं किसीपर द्वेष भी करना उचित नहीं है समयज्ञ पुरुषों को मात्र व्यवहार मार्ग का अनुसरण करना चाहिये। महात्मा (श्रीदत्त केवली) फिर बोले कि मुझे भी ऐसा ही केवल वैराग्य के कारण जैसा संबंध बना है वा जिस प्रकार बनाव बना है वह मैं तुम्हारे समक्ष विस्तार से सुनाता हूं।

कथांतर्गत श्रीदत्त केवली का अधिकार।

लक्ष्मी निवास करने के लिए स्थान रूप श्रीमंदिर नामक नगर में स्त्रीलंपट और कपटप्रिय एक सुरकांत नामक राजा राज्य करता था। उसी शहर में दान देने वालों में एवं धनाढ्यों में मुख्य और राज्यमान्य सोम-सेठ नामक एक नगर सेठ रहता था। लक्ष्मी के रूप को जीतने वाली सोमश्री नामा उसकी स्त्री थी। उसके श्रीदत्त नामक एक पुत्र और श्रीमती नामा उसके पुत्र की स्त्री थी। इन चारों का समागम सचमुच में पुण्य के योग से ही हुवा था।

यस्य पुत्रा वशे भक्त्या भार्याछंदानुवर्त्तिनी ।
विभवेष्वपि संतोषस्तस्य स्वर्ग इहैव हि ॥ १ ॥

जिसके पुत्र आज्ञा में चलनेवाले हों और स्त्री चित्त के अनुकूल वर्तती हो और वैभव में संतोष हो-उसके लिए सचमुच ही यह लोक भी स्वर्ग के सुख समान है ।

एक दिन सोम सेठ अपनी स्त्री सोमश्री को साथ लेकर उद्यान में क्रीडा करने के लिए गया । उस वक्त सुरकांत राजा भी दैवयोग से वहां आ पहुंचा । वह लंपटी होने के कारण सोमश्री को देखकर तत्काल ही रागरूप समुद्र में बहने लगा, इससे उसने कामांध हो उसी समय सोमश्री को बलात्कार से अपने अंतःपुर में रख लिया । कहा भी है कि—

यौवनं धनसंपत्ति प्रभुत्वमविवेकता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयं ॥ २ ॥

यौवन, धनसंपदा, प्रभुता और अविवेकता, ये एक एक भी अनर्थकारक हैं, तो जहां ये चारों एकत्रित हों वहां तो कहना ही क्या है ? अर्थात् ये महा अनर्थ करा सकतीं हैं ।

राज्य लक्ष्मी रूप लता को अन्याय रूप अग्नि भस्म कर देने वाली है तो राज्य की वृद्धि चाहने वाला पुरुष परस्त्री की आशा भी कैसे कर सकता है । दूसरे लोग अन्याय में प्रवृत्ति करें तो उन्हें राजा शिक्षा कर सकता है परन्तु यदि राजा ही अन्याय में प्रवृत्ति करे तो सचमुच वह *मत्स्यगलागल न्यायके समान ही गिना जाता है । बिचारा सोमश्रेष्ठि प्रधान आदि के द्वारा शास्त्रोक्ति एवं लोकोक्ति से राजा को समझाने का प्रयत्न करने लगा परन्तु वह अन्यायी राजा इससे उलटा क्रोधित हो सेठ को गालियां सुनाने लगा किंतु स्त्री को वापिस नहीं दी । सचमुच ही राजा का इस प्रकार का अन्याय महा दुःखकारक और धिःकारने के योग्य है । समझाने वाले पर भी वह दुष्ट ग्रीष्म ऋतु के सूर्य की किरणों के समान अग्नि की वृष्टि करने लगा । उस समय मंत्री सामंत आदि सेठ को कहने लगे कि जिस तरह सिंह या जंगली हाथी का कान नहीं पकड़ा जा सकता वैसे ही इस अन्यायी राजा को समझाने का कोई उपाय नहीं । क्यों कि खेत के चारों तरफ बाड़ खेत की रक्षा के लिए की जाती है परन्तु जब वह बाड़ ही खेत को खाने लगे तो उसका कुछ भी उपाय नहीं हो सकता । लौकिक में भी कहा है कि—

माता यदि विषं दद्यात् विक्रीणीत सुतं पिता ।
राजा हरति सर्वस्वं का तत्र परिवेदना ॥ ३ ॥

यदि माता स्वयं पुत्र को विष दे, पिता अपने पुत्र को बेचे, और राजा प्रजा का सर्वस्व लूटे तो यह दुःखदाई वृत्तान्त किसके पास जाकर कहें ?

---

* मत्स्यगलागलन्याय—समुद्र मे रहे हुए बड़े मत्स्य अपनी ही जाति के छोटे मत्स्यों को निगल जाते हैं ।

सोमश्रेष्ठि उदास होकर अपने पुत्र के पास आकर कहने लगा बेटा! सचमुच कोई अपने दुर्भाग्य का उदय हुआ है कि जिससे इस प्रकार की विडंबना आ पड़ी है। कहा है कि:—

सह्यंते प्राणिभिर्बाढं पितृमातृपराभवः।
भार्यापरिभवं सोढुं तिर्यंचोपि नहि क्षमः॥ ४॥

प्राणी अपने माता पिता के वियोगादि बहुत से दुःखों को सहन कर सकते हैं। परन्तु तिर्यच जैसे भी अपनी स्त्री का पराभव सहन नहीं कर सकते तब फिर पुरुष अपनी स्त्री का पराभव कैसे सहन कर सके?

चाहे जिस प्रकार से इस राजा को शिक्षा करके भी स्त्री पीछे लेनी चाहिये और उसका उपाय मात्र इतना ही है कि उसमें कितना एक द्रव्य व्यय होगा। हमारे पास छह लाख द्रव्य मौजूद है उसमेंसे पांच लाख लेकर मैं कहीं दूर देश में जाकर किसी अतिशय पराक्रमी राजा की सेवा करके उसके बलकी सहायता से तेरी माता को अवश्य ही पीछे प्राप्त करूंगा। कहावत है कि:—

स्वयं प्रभुत्वं स्वकहस्तगं वा, प्रभुं विना नो निजकार्यसिद्धिः।
विहाय पोतं तदुपाश्रितं वा, वारानिधिं कः क्षमते तरीतुम्॥ ५॥

अपने हाथ में वैसी ही कुछ बड़ी सत्ता हो कि जिस से स्वयं समर्थ हो तथापि किसी अन्य बड़े आदमी का आश्रय लिये बिना अपने महान् कार्य की सिद्धि नहीं होती। जैसे कि मनुष्य स्वयं चाहे कितना ही समथ हो तथापि जहाज या नाव आदि साधन का आश्रय लिये बिना क्या बड़ा समुद्र तरा जा सकता है?

ऐसा कहकर वह सेठ पांच लाख द्रव्य साथ लेकर किसी दिशा में गुप्त रीति से चला गया। क्योंकि पुरुष अपनी प्राण प्यारी पत्नी के लिए क्या क्या नहीं करता? कहा है कि:—

दुष्कराण्यपि कुर्वंति, जनाः प्राणप्रियाकृते।
किं नाब्धिं लंघयामासुः पाण्डवा द्रौपदीकृते॥ ६॥

मनुष्य अपनी प्राणप्रिया के लिये दुष्कर कार्य भी करते हैं। क्या पांडवों ने द्रौपदी के लिये समुद्र उल्लंघन नहीं किया।

अब सोमसेठ के परदेश गये बाद पीछे श्रीदत्त की स्त्री ने एक पुत्री को जन्म दिया। अहो! अफसोस! दुःख के समय भी दैव कैसा वक्र है? श्रीदत्त अति शोकातुर होकर विचार करने लगा कि धिःकार हो मेरे इस दुःख की परंपरा को माता पिता का वियोग हुवा; लक्ष्मी की हानि हुई; राजा द्वेषी बना और अंत में पुत्री का जन्म हुआ। दूसरे का दुःख देखकर खुशी होने वाला यह दुर्दैव न जाने मुझ पर क्या २ करेगा? श्रीदत्त ने इसी प्रकार चिंता में अपने दिन व्यतीत किये। उसे एक शंखदत्त नामक मित्र था, वह श्रीदत्तको समझाकर कहने लगा कि हे मित्र! लक्ष्मी के लिये इतनी चिंता क्यों करता है? चलो हम दोनों समुद्र पार परद्वीपमें जाकर व्यापार द्वारा द्रव्य संपादन करें और उसमें से आधा २ हिस्सा लेकर सुखी हों। मित्र के इस विचार से श्रीदत्त अपनी स्त्री और पुत्री को अपने सगे संबंधियों को सोंपकर उस मित्र के साथ जहाज में बैठ सिंहल नामा

द्वीप में चला गया। वहांपर दोनों मित्रों ने दो वर्ष तक व्यापार कर अनेक प्रकार के लाभ द्वारा बहुतसा द्रव्य संपादन किया। विशेष लाभ की आशा से वे वहां से कटाह नामक द्वीपमें गये और वहां भी दो वर्ष तक रह कर न्याय पूर्वक उद्यम करने से उन्हों ने आठ करोड़ द्रव्य प्राप्त किया। क्योंकि जब कर्म और उद्यम ये दोनो कारण बलवान होते हैं तब धन उपार्जन करना कुछ बड़ी बात नहीं।

अब वे अगम्य पुण्य वाले दोनों मित्र बड़े बड़े जहाजों में श्रेष्ठ और कीमती किरयाणा भरकर सानंद पीछे अपने देश को लौटे। उन्होंने जहाज में बैठे हुये समुद्र में तैरती हुई एक पेटी देखी। उसे खलासी द्वारा पकड़ मंगवा कर जहाज में बैठे हुये सर्व मनुष्यों को साक्षीभूत रखकर उस पेटी मे का द्रव्य दोनों मित्रों को आधा आधा लेना ठहरा कर उस पेटी को खोलने लगे। पेटी खोलते ही उसमें नीम के पत्तों से लिपटाई हुई और जहर के कारण जिसके शरीर का हरित वर्ण होगया है ऐसी मूर्छागत एक कन्या देखने में आई। यह देख तमाम मनुष्य आश्चर्य चकित होगये। शंखदत्त ने कहा कि सचमुच ही इस कन्या को किसी दुष्ट सर्प ने डस-लिया है और इसी कारण इसे किसी ने इस पेटी में, डालकर समुद्र में छोड़ दी है यह अनुमान होता है। तद-नंतर उसने उस लड़की पर पानी के छांटे डाले और अन्य उपचार करने से तुरंत ही उस कन्या की मूर्च्छा दूर होगयी। लड़की के स्वस्थ हो जाने पर शंखदत्त खुशी होकर कहने लगा कि इस मनोहर रूपवती कन्या को मैंने संजीवन किया है इसलिए मैं इस के साथ शादी करूंगा। श्रीदत्त कहने लगा कि ऐसा मत बोलो! हम दोनों ने पहले ही यह सब की साक्षी से निश्चय किया है कि इस पेटी में जो कुछ निकले वह आधा आधा बांट लेना इसलिए तेरे हिस्से के बदले में तूं मेरा सर्व द्रव्य ग्रहण कर! और इस कन्या को मुझे दे। इस प्रकार आपस में विवाद करने से उन की पारस्परिक मैत्री टूट गई। कहा है कि:—

रमणीं विहाय न भवति विसंहतिःस्निग्धबन्धुजनमनसाम्।
यत्कुंचिका सुदृढमपि तालकबन्धं द्विधा कुरुते ॥ ६ ॥

जिस प्रकार कूंची अति कठिन होने पर भी लगाये हुए ताले को उघाड़ देती है, उसी प्रकार सच्चे स्नेह-वंत पुरुषों के मन की प्रीति में स्त्री के सिवाय अन्य कोई भेद नहीं डाल सकता।

इस प्रकार दोनों मित्र कदाग्रह द्वारा अतिशय क्लेश करने लगे। तब खलासी लोको ने उन्हें समझाकर कहा कि अभी आप धीरज धरो। यहां से नजदीक ही सुवर्णकुल नामक बंदर है; वहांपर हमारे जहाज दो दिन में जा पहुचेंगे, वहां के बुद्धिमान पुरुषो के पास आप अपना न्याय करा लेना। खलासियों की सलाह से शंखदत्त तो शांत होगया, परंतु श्रीदत्त मन में विचारने लगा "यदि अन्य लोगों के पास न्याय कराया जायगा तो सचमुच ही शंखदत्त ने कन्या को सजीवन किया है, इसलिये वे लोग इसे ही कन्या दिलावेंगे, इसलिये ऐसा होना मुझे सर्वथा पसंद नहीं। खैर वहांतक पहुचते ही मैं इसका रास्ते में घाट घड़ डालूं तो ठीक हो।" इस प्रकार के दुष्ट विचार से कितने एक प्रपंचों द्वारा अपने ऊपर विश्वास जमाकर एक दिन रात्रि के समय श्रीदत्त जहाज की गोखपर चढ़कर शंखदत्त को बुलाकर कहने लगा कि "हे मित्र! वह देख! अष्टमुखी मत्स्य जा रहा है, क्या ऐसा मगरमच्छ तूने कहीं देखा है"? यह सुन कौतुक देखने की आशा से जब शंखदत्त जहाज की गोख-

पर चढ़ता है उतने में ही श्रीदत्त ने शत्रु के समान उसे ऐसा धक्का मारा कि जिससे शंखदत्त तत्काल ही समुद्र में जा पड़ा। अहा कैसी आश्चर्य की घटना है कि तद्भव मोक्षगामी होनेपर भी श्रीदत्त ने इस प्रकार का भयंकर मित्रद्रोह किया। अपने इच्छित कार्यों की सिद्धि होने से वह दुर्बुद्धि श्रीदत्त हर्षित हो प्रातःकाल उठ कर बनावटी पुकार करने लगा कि अरे! लोकों! मेरा प्रिय मित्र कहीं पर भी क्यों नहीं देख पड़ता? इस प्रकार कृत्रिम आडंबरों से अपने दोष को छिपाता हुआ वह सुवर्णकुल बंदरपर आ पहुंचा। उसने सुवर्णकुल में आकर वहां के राजा को बड़े बड़े हाथी समर्पण किये। राजा ने उनका उचित मूल्य देकर श्रीदत्त के अन्य किरियाणे वगैरह का कर माफ़ किया और श्रीदत्त को उचित सन्मान भी दिया। अब श्रीदत्त बड़े बड़े गुदामों में माल भरके आनंद सहित अपना व्यापार धंदा वहां ही करने लगा और उस कन्या के साथ लग्न करके सुखमें समय व्यतीत करने लगा। श्रीदत्त हमेशा राजदरबार में भी आया जाया करता था अतः राजा पर चामर वींजनेवाली को साक्षात् लक्ष्मी के समान रूपवती देखकर उस सुवर्णरेखा वेश्या पर वह अत्यंत मोहित हो गया। श्रीदत्त ने किसी राजपुरुष से पूछा कि यह औरत कौन है? उससे जवाब मिला कि यह राजा की रखी हुई सुवर्णरेखा नामा मानवंती वेश्या है, परन्तु यह अर्धलक्ष द्रव्य लिये बिना अन्य किसी के साथ बात चीत नहीं करती। एक दिन अर्धलक्ष द्रव्य देकर श्रीदत्त ने उस गणिका को बुलाकर रथ मंगवाया और रथ में एक तरफ उसको एवं दूसरी तरफ अपनी स्त्री (उसी कन्या को) को बैठाकर तथा स्वयं बीच में बैठ शहर के बाग बगीचों की विहार क्रीड़ा करके पास के एक वन में एक चंपे के वृक्ष की उत्तम छाया में विश्राम लिया। श्रीदत्त उन दोनों स्त्रियों के साथ स्वच्छंद हो कामकेलि, हास्य विनोद करने लगा इतने ही में वहां पर अनेक वानरियों के वृन्द सहित कामकेलि में रसिक एक विचक्षण वानर आकर वानरियों के साथ यथेच्छ क्रीड़ा करने लगा। यह देख श्रीदत्त उस वेश्या को इशारा करके कहने लगा कि हे प्रिये! देख यह वानर कैसा विचक्षण है और कितनी स्त्रियों के साथ काम क्रीड़ा कर रहा है। उसने कहा कि ऐसे पशुओं की क्रीड़ा में आश्चर्यजनक क्या है? और इस में इसकी प्रशंसनीय दक्षता ही क्या है? इनमें कितनी एक तो इसकी माता ही होंगी, कितनी एक इसकी बहिनें तथा कितनी एक इसकी पुत्रियां और कितनी एक तो इस की पुत्री की भी पुत्रियां होंगी कि जिनके साथ यह कामक्रीडा कर रहा है। यह वाक्य सुनकर श्रीदत्त ऊंचे स्वर से कहने लगा "यदि सचमुच ऐसा ही हो तो यह सर्वथा अति निन्दनीय है। अहा! धिक्कार है! ये तिर्यंच इतने अविवेकी हैं, कि जिन्हें अपनी माता, बहिन या पुत्री का भी भान नहीं! अरे ये तो इतने मूर्ख हैं कि जिन्हें कृत्याकृत्य का भी भान नहीं! ऐसे पापियों का जन्म किस काम का? श्रीदत्त के पूर्वोक्त वचन सुनकर जाता हुआ पीछे ठहर कर श्रीदत्त के सन्मुख वह वानर कहने लगा कि अरे रे! दुष्ट दुराचारी! दूसरों के दूषण निकाल कर बोलने में ही तू वाचाल मालूम होता है। पर्वत को जलता देखता है, परन्तु अपने पैर के नीचे जलती हुई आग को नहीं देखता। कहा है कि—

राइ सरिसव मित्ताणि, परछिद्दाणि गवेसई।
अप्पणो बिल्लमित्ताणि, पासंतो वि न पासई॥ १॥

राई, सरसव जितने पर के लघु छिद्र देखने के लिये मूर्ख प्राणी यत्न करता है, परन्तु बिल्व फल के समान बड़े बड़े अपने छिद्रों को देखने पर भी नहीं देखता।

अरे मूर्ख! तू अपनी ही माता और पुत्री को दोनों तरफ बैठाकर उनके साथ काम क्रीड़ा करता है और अपने मित्र को स्वयं समुद्र में डालने वाला तू अपने आप पापी होने पर भी हम निरापराधी पशुओं की क्यों निंदा करता है। तेरे जैसे दुष्ट को धिःकार है! ऐसा कह कर वह बंदर छलांग मारता हुआ अपनी वानरियो सहित जंगल में दौड़ गया। वानर के वचनो ने श्रीदत्त के हृदय पर वज्राघात का कार्य किया। वह सखेद अपने मन में विचारने लगा कि यह वानर ऐसे अघटित वाक्य क्यो बोल गया? यह कन्या तो मुझे समुद्र मे से प्राप्त हुई है, तब यह मेरी पुत्री किस तरह हो सकती है? एवं यह स्वर्णरेखा गणिका भी मेरी जनेता कैसे हो सकती है? मेरी माता सोमश्री तो इसकी अपेक्षा कुछ सांवली है। उमर के अनुमान से कदाचित् यह कन्या मेरी पुत्री हो सकती है परन्तु यह वेश्या तो सर्वथा ही मेरी माता नहीं हो सकती। संशयसागर मे डूबे हुए श्रीदत्त को पूछने पर गणिका ने उत्तर दिया कि, तू तो कोई मूर्ख जैसा मालूम पड़ता है। मैंने तो तुझे आज ही देखा है। पहले कदापि तू मेरे देखने में नहीं आया, तथापि ऐसे पशुओं के वचन से शंकाशील होता है, इसलिये तू भी पशु के समान ही मुग्ध मालूम होता है। सुवर्णरेखा का वचन सुनकर भी उसके मनका संशय दूर न हुआ। क्योंकि बुद्धिमान पुरुष किसी भी कार्य का जब तक संशय दूर न हो तब तक उसमें प्रवृत्ति नहीं कर सकता। इस प्रकार संशय में दोलायमान चित्तवाले श्रीदत्त ने वहांपर इधर उधर घूमते हुए एक जैन मुनि को देखा। भक्तिभाव सहित नमस्कार कर श्रीदत्त पूछने लगा कि महाराज! वानर ने मुझे जिस संशय रूप समुद्र में डाल दिया है, आप अपने ज्ञान द्वारा उससे मेरा उद्धार करें। मुनि महाराज ने कहा कि सूर्य के समान, भव्य प्राणी रूप पृथ्वी में उद्योत करने वाले केवल ज्ञानी मेरे गुरु महराज इस निकट प्रदेश में ही विराजमान हैं। उनके पास जाकर तुम अपने संशय से मुक्त बनो। यदि उनके पास जाना न बन सके तो मैं अपने अवधिज्ञान के बल से तुझे कहता हूं कि जो वाक्य वानर ने तुझे कहा है वह सर्वज्ञ वचन के समान सत्य है। श्रीदत्त ने कहा कि महाराज! ऐसा कैसे बना होगा? मुनि महाराज ने जवाब दिया कि मैं पहले तेरी पुत्री का संबंध सुनाता हूं। सावधान होकर सुन।

तेरा पिता सोमसेठ अपनी स्त्री सोमश्री को छुड़ाने के आशय से किसी बलवान राजा की मदद लेने के लिए परदेश जा रहा था उस वक्त रास्ते में संग्राम करने में क्रूर ऐसे समर नामक पल्लीपति (भीलों का राजा) को देखकर और उसे समर्थ समझकर साढ़े पांच लाख द्रव्य समर्पण कर बहुत से सैन्य सहित उसे साथ ले श्री-मंदिरपुर तरफ लौट आया। असंख्य सैन्य को आते हुए देखकर उस नगर के लोक भयभीत हो जैसे संसार रूप कैदखाने में से दुःखित हो भव्यप्राणी मोक्ष जानेका उद्यम करता है उसी प्रकार निरुपद्रव स्थान तरफ दौड़ने लगे। उस वक्त तेरी सुमुखी मनोहर स्त्री गंगा महानदी के किनारे बसे हुए सिंहपुर नगर में अपनी पुत्री सहित अपने पिता के घर जा रही। क्यों कि पतिव्रता स्त्रियों के लिए अपने पति के वियोग समय में भाई या पिता के सिवाय अन्य कोई आश्रय करने योग्य स्थान नहीं है। अतः वह पीहर में अपने दिन बिताने लगी।

एक दिन अषाढ़ के महीने में दैवयोग से विषयुक्त सर्प ने तेरी पुत्री को डस लिया, इससे चेतना रहित बनी हुई उस कन्या को उसकी माता तथा मामा के बहुत से उपचार करनेपर भी जब वह निर्विष न हुई तब विचार किया कि, यदि सर्पदंशित दीर्घ आयु वाला हो तो प्रायः जी सकता है इसलिए इसे अकस्मात् अग्निदाह करने की अपेक्षा नीम के पत्तों में लपेटकर और एक सुंदर पेटी में रखकर गंगानदी के प्रवाह में तैरती हुई छोड़ देना विशेष श्रेयस्कर है। उन सब ने पूर्वोक्त विचार निश्चयकर वैसा ही किया। परन्तु चातुर्मास के दिन होने से अतिशय वृष्टि होने के कारण गंगा नदी के जलप्रवाह ने जैसे पवन जहाज को खींच ले जाता है वैसे ही किनारे के वृक्षों के साथ उस पेटी को समुद्र में ले जा छोड़ी। वह पेटी जल पर तैरती हुई तेरे हाथ आई। इसके बाद का वृत्तांत तो तू स्वयं जानता है अतः सचमुच ही यह तेरी पुत्री है।

अब तेरी माता का आश्चर्यजनक वृत्तांत सावधान होकर सुन।

उस समर नामा पल्लिपति के सैन्य से सुरकांत राजा निस्तेज बन गया यानी वह उसके सामने युद्ध करने के लिए समर्थ न हो सका। उसने अपने नगर के दरवाजे बंद करके पर्वत समान ऊंचे किले को सज्ज करके जल, ईंधन, धान्य तृणादिक का नगर में संग्रह कर लिया और किलेपर ऐसे शूर वीर सुभटों को आयुध सहित खड़े कर रक्खा कि कोई भी साहसिक होकर नगर के सामने हल्ला न कर सके। यद्यपि इस प्रकार का शूरकांत राजा ने अपने नगर का बंदोबस्त कर रक्खा है तथापि पल्लीपति के सुभट उसी प्रकार भेदन करने का दाव तक रहे थे कि जिस प्रकार महामुनि मोहराजा को भेदन करने के लिए दाव तकते हैं। यद्यपि वे किले पर रहे हुए सुभट बाणों की वृष्टि करते थे तथापि जैसे मदोन्मत्त हाथी अंकुश को नहीं गिनता, वैसे ही समर का सैन्य उस आती हुई बाणावलि को तृण समान समझता था। एक दिन समर पल्लिपति के सैनिकों ने धावा करके नगरके दरवाजे को इस प्रकार तोड़ डाला कि जैसे किसी पत्थर से मिट्टी के घड़े को फोड़ दिया जाता है। समर का सैन्य नगर के उस बड़े दरवाजे का चूरा चूरा करके नदी के प्रवाह के समान एकदम नगर मे प्रवेश करने लगा। उस समय तेरा पिता सोमसेठ अपनी स्त्री को प्राप्त करने की उत्कंठा से सैन्य के अग्रभाग में था इसलिये प्रवेश करते समय शत्रुसैन्य की ओर से आने वाले बाणों के प्रहार द्वारा वह तत्काल ही मरण के शरण हुवा। मनुष्य मन में क्या क्या सोचता है और दैव उसके विपरीत क्या २ कर डालता है! स्त्री के लिए इतना बड़ा समारंभ किया परन्तु उसमें से अपना ही मरण प्राप्त हुवा।

अब परदारा गमन करने वाला और बहुत से भव भमने वाला सुरकांत राजा भी अपना नगर छोड़ कर प्राण बचाने की आशा से कहीं भाग गया, क्योंकि "पाप में जय कहां से हो ?" जिस प्रकार शिकारी के त्रास से मृगी कंपायमान होती है वैसे ही सुभटों के भय से धूजती हुई सोमश्री को ज्यों श्मशान के कुत्ते मुरदे को झपाटे में पकड़ लेते हैं त्यों ही पल्लिपति के सुभटों ने पकड़ लिया। तदनंतर सारे नगर के लोगों को लूट कर सुभट अपने देश तरफ जाने की तैयारी करते थे, ठीक इसी समय सोमश्री भी अवसर पाकर उनके पंजे से निकल भागी। सोमश्री अन्य कहीं आश्रय न मिलने से दैवयोग से वह वन में चली गई। वहां पर भ्रमण करते

हुए नाना प्रकार के वृक्षों के फलों का भक्षण करने से वह थोड़े ही समय में नवयौवना और गौरांगी बन गई। सचमुच मणिमंत्र और औषधियों की महिमा कुछ अचिंत्य प्रभावशाली है। एक दिन कितने एक व्यापारी उस वन मार्ग से जा रहे थे। दैवयोग से उन्हों ने सोमश्री को देखकर आश्चर्य पूर्वक पूछा कि तू देवांगना, नागकन्या, जलदेवी, या स्थलदेवी, कौन है? क्योंकि मनुष्यो मे तो तेरे समान मनोहर सौंदर्यवती कन्या कहीं भी नहीं हो सकती। उसने दुए दबे स्वर से उत्तर दिया कि मैं देवांगना या नागकन्या नही परन्तु एक मनुष्य प्राणी हूं। और मुझ पर दैव का कोप हुआ है। क्योकि मेरे रूप ने ही मुझे दुःखसागर में डाला है। सचमुच किसी वक्त गुण भी दोष रूप बन जाता है। उसके ये करुणाजनक वचन सुनकर उन व्यापारियो ने कहा कि, जब तू ऐसी रूपवती होने पर भी दुःखी है तो हमारे साथ रहकर सुख से समय व्यतीत कर। उसने उनके साथ रहना खुशी से मंजूर कर लिया। अब वे व्यापारी उसे अपने साथ ले अपने निर्धारित शहर की तरफ चल पड़े।

रास्ते में चलते समय सोमश्री के रूप लावण्यादि गुणों से रंजित हो वे उसे अपनी स्त्री बनाने की अभिलाषा करने लगे, क्योंकि भक्षण करने लायक पदार्थ को देखकर कौन भूखा मनुष्य खाने की इच्छा न करे? प्रत्येक मनुष्य उस पर अपने मन में अभिलाषा रखते हुए सुवर्णकुल नामा शहर में आ पहुंचे। वह बंदर व्यापार का मथक होने के कारण वे माल लेने और वेचने के कार्य में वहां पर लग गये, क्योंकि वे इसी आशय से वहां पर अति प्रयास करके आये थे। जो माल अच्छा और सस्ता मिलने लगा वे उसे एकदम खरीदने लग गये। व्यापारियों की यही रीति है जो वस्तु मिले उस पर बहुतों की रुचि उत्पन्न होती है। पूर्व भव में उपार्जन किये हुए पुण्य के प्रमाण मे जिस के पास जितना धन था वह सब माल खरीदने में लग जाने के कारण उन्हों ने विचार किया कि अभी माल तो बहुतसा खरीदना बाकी है और धन तो खलास होगया, इसलिये अब क्या करना चाहिए? अन्त में वे इस निश्चय पर आये कि इस सोमश्री को किसी वेश्या के घर बेच कर इसका जो द्रव्य मिले उसे परस्पर बांट ले। लोभ भी कोई अलौकिक वस्तु है कि प्राणी तत्काल ही उसके वश हो जाता है। उन्होंने उस नगर में रहने वाली बड़ी धनवान विभ्रवती नामा वेश्या के घर सोमश्री को एक लाख द्रव्य लेकर बेच डाली और उस धन का माल खरीद कर सहर्ष वे अपने देश में चले गये। इधर उस वेश्या ने सोमश्री का नाम बदल कर दूसरा सुवर्णरेखा नाम रखा। अपनी कला सिखाने में निपुण उस विभ्रवती गणिका ने सुवर्णरेखा को थोड़े ही समय में गीत, नृत्य, हाव भाव, कटाक्ष, विक्षेपादि अनेक कलाएं सिखला दीं। क्योंकि वेश्याओं के घर पर इनही कलाओ के रसिक आया करते हैं। जिस प्रकार वेश्या के घर जन्म लेने वाली बचपन मे ही उस प्रकार के संस्कार होने से वह प्रथम से ही कुटिलता वगैरह मे निपुण होती है, वैसा न होने पर भी यह सुवर्णरेखा थोड़े ही समय में ठीक वैसी ही बन गई, क्योकि पानी में जो वस्तु मिलाई जाती है वह तद्रूप ही हो जाती है। सोमश्री ऐसी कलाकुशल निकली कि राजा ने उसके गीत नृत्यादिक कला से अत्यन्त प्रसन्न होकर उसे बहुत सत्कार पूर्वक अपनी मानवन्ती चामर वींजने वाली बना ली।

मुनि महाराज श्रीदत्त को कहते हैं कि हे श्रीदत्त ! यही तेरी माता है कि जो आकार और रूप रंग से भवांतर के समान जुदी ही मालूम देती है। इसके रूप रंग में जो परिवर्तन हुआ है वह जंगल में रहकर खाई हुई औषधियों (वनस्पति) का ही प्रभाव है। इस बात में तू जरा भी संशय न रखना, वह तुझे बराबर पहिचानती है परन्तु लज्जा और लोभ के कारण उसने तुझे इस बात से अनजान रखा है।

सचमुच ही वेश्याओं का व्यवहार सर्वथा धिःकारने योग्य है कि जिसमे बुरे कृत्य की जरा भी मर्यादा नहीं। उनमें इतना लोभ है कि अपने पुत्र के साथ कुकर्म करने मे जरा भी नहीं शरमाती। पंडित पुरुषों ने वारांगनाओं का समागम अहर्निश निंदने योग्य और विशेषतः त्यागने योग्य कहा है।

मुनि के पूर्वोक्त वचन सुनकर खेदयुक्त आश्चर्य में निमग्न हो श्रीदत्त पूछने लगा कि, हे त्रिकालज्ञानी महाराज ! वह वानर कौन था ? और उसे ऐसा क्या ज्ञान था कि जिससे मेरी पुत्री और माता को जान कर मेरी हंसी करके भी सद्वक्ता के समान वाक्य बोला ? वह सचमुच ही उपकारी के समान मुझे अंधकूप में पड़ते हुए को बचाने वाला है। तथा उसे मनुष्य वाचा बोलना कैसे आया ? मुनिराज ने जवाब दिया कि हे भव्य श्रीदत्त ! तू इस वृत्तांत को सुन।

सोमश्री में एकाग्र चित्त रखने वाला तेरा पिता श्रीमंदिर नगर में प्रवेश करते समय शत्रु के बाण प्रहार से मृत्यु पाकर तत्काल वहां ही व्यंतरिक देव में उत्पन्न हुआ। वह वन में भ्रमर के समान फिरता २ यहां आया था। उसने तुझे देख विभंग ज्ञान से पहचान कर कुकर्म में डूबे हुए को तुझे भवांतर हुवा था तथापि अपने पुत्र पर पिता सदैव हित कारक होता है ! अतः तेरा उद्धार करने की इच्छा से वह किसी वानर में अधिष्ठित होकर तुझे इस बात का इशारा कर और बोध करके चला गया। परन्तु इस तेरी माता सोमश्री पर पूर्वभव का अति प्रेम होने के कारण वह अभी यहां आकर तेरे समक्ष सोमश्री को अपने स्कंध पर बैठा कर कहीं भी ले जायगा।

यह वाक्य मुनिराज पुरा कर पाये थे कि इतने मे तुरन्त ही वहां पर वही वानर आकर जैसे सिंह अंबिका को अपने स्कंध पर चढ़ा कर ले जाता है वैसे ही सोमश्री को स्कंध पर बैठा कर चलता बना। इस प्रकार संसार की विटंबना साक्षात् देख और अनुभव कर खेद युक्त मस्तक धुनता हुवा श्रीदत्त वहां से मुनिराज को नमस्कारादि करके अपनी पुत्री को साथ लेकर नगर मे गया। तदनंतर सुवर्णरेखा की अक्का (विभ्रवती गणिका) ने दासियों से पूछा कि "आज सुवर्णरेखा कहां गई है ?" दासियों ने कहा "श्रीदत्त सेठ आधालाख द्रव्य देकर सुवर्णरेखा को साथ ले बाग बगीचों में फिरने गया है।" अक्का ने सुवर्णरेखा को बुलाने के लिए श्रीदत्त के घर दासी को भेजा। वह श्रीदत्त की दुकान पर जाकर उसे पूछने लगी कि हमारी बाई सुवर्णरेखा कहां है ? उसने गुस्से में आकर उत्तर दिया कि क्या हम तुम्हारे नौकर हैं ? जिससे उसकी निगरानी रखें ! क्या मालूम वह कहां गई है ! यह वचन सुन कर दोष का भंडार रूप उस दासी ने घर जाकर सर्व वृत्तांत अक्का को कह सुनाया। इससे वह साक्षात् राक्षसी के समान क्रोधायमान हो राजा के पास गई और खेद युक्त पुकार करने लगी। राजा ने कहा—"तू किस लिए खेदकारक पुकार करती है ?" उसने जवाब दिया कि

"चोरों में शिरोमणि श्रीदत्त ने सुवर्णपुरुष के समान आज सुवर्णरेखा को चुरा लिया है।" राजा विचार ने लगा जैसे उंट की चोरी छिप नही सकती वैसे ही वेश्या की चोरी भी बिलकुल छिपाने पर भी नहीं छिप सकती। राजा ने श्रीदत्त को बुलाकर पूछा उस वक्त उसने भी कुछ सत्य उत्तर न देकर उलझन भरा जवाब दिया।

असंभाव्यं न वक्तव्यं प्रत्यक्ष यदि दृश्यते।
यथा वानर संगीतं यथा तरती सा शिला ॥ १ ॥

"वानर ताल सूर के साथ संगीत गाता है और पत्थर की शिला पाणी में तैरती है, उसी के समान असंभवित (किसी को विश्वास न आवे) ऐसा वाक्य प्रत्यक्ष सत्य देख पड़ता हो तथापि नहीं बोलना चाहिये।

श्रीदत्त सत्य उत्तर नहीं देता इसलिये इसमें कुछ भी प्रपंच होना चाहिए। यह विचार कर राजा ने जैसे पापी को परमाधामी नरक में डालता है वैसे ही उसे कैद में डाल दिया, इतना ही नहीं किन्तु क्रोधायमान होकर राजा ने उसकी माल मिलकत जप्त करने के उपरांत उसकी पुत्री दास दासी आदि को अपने स्वाधीन कर लिया। क्योंकि जिस पर दैवका कोप हो उस पर राजा की कृपा कहां! नरक वास के समान कारागार के दुःख भोगता हुवा श्रीदत्त विचार करने लगा कि मैंने राजा को सत्य वृत्तांत न सुनाया इसी कारण मुझ पर राजा के क्रोध रूप अग्नि की वृष्टि हो रही है। यदि मैं उसे सत्य घटना कह दूं तो उस का क्रोधाग्नि शांत हो कर मुझे कारागार के दुःख से मुक्ति प्राप्त हो। यह विचार कर उसने एक सिपाही के साथ राजा को कहलाया कि मैं अपनी सत्य हकीकत निवेदन करना चाहता हूं। राजा ने उसे बुला कर पूछा तब उसने सर्व सत्य वृत्तांत कह सुनाया और अन्त में विदित किया कि, सुवर्णरेखा को एक वानर अपने स्कंध पर चढ़ाकर ले गया। यह बात सुनकर सभाके लोग विस्मय मे पड़कर खिल खिलाकर हंस पड़े और कहने लगे कि देखो इस कपटी की सत्यता! कैसी चालाकी से अपने आप छूटना चाहता है! इससे राजा ने उलटा विशेष क्रोधायमान हो उसे फांसी लगाने की कोतवाल को आज्ञा की, क्योंकि बड़े पुरुषो का रोष और तोष शीघ्र ही फलदायक होता है। जिस प्रकार कसाई बकरे को वध स्थान पर ले जाता है वैसे ही कोतवाल के दुष्ट सुभट श्रीदत्त को बधस्थान पर ले जा रहे हैं, इस समय वह विचार करने लगा कि माता और पुत्री के साथ संभोग करने की इच्छा से एवं मित्र का वध करने से उत्पन्न हुए पाप का ही प्रायश्चित मिल रहा है। अतः धिक्कार है मेरे दुष्कर्म को! मुझे आश्चर्य सिर्फ इसी बात का है कि सत्य बोलने पर भी असत्य के समान फल मिलता है। अस्तु! सब कुछ कर्माधीन है। कहा है कि—

धारिज्जइ जइ जलनिहीवि कल्लोलभिन्नकुलसेलो।
नहुअण्ण जम्मणिम्मिअ सुहासुहो दिव्व परिणामो॥ २॥

"जिसके कल्लोल से बड़े पाषाण भी टूट जाते हैं ऐसे समुद्र को भी सामने आते पीछे फेरा जा सकता है। परन्तु पूर्वभव में उपार्जन किए शुभाशुभ कर्मों का दैविक परिणाम दूर करने के लिये कोई भी समर्थ नहीं हो सकता।

ऐसे अवसर में मानो श्रीदत्त के पुण्य से ही आकर्षित हो विहार करते हुए श्री मुनिचन्द्र नामा केवली महाराज वहां पर आ पधारे। बहुत से मुनियों के साथ वे महात्मा नगर के बाह्योद्यान में आकर ठहरे। उद्यान पालक द्वारा राजा को खबर मिलते ही वह अपने परिवार सहित केवली सन्मुख आकर वंदन-नमस्कार कर योग्य स्थान पर आ बैठा। तदनंतर जैसा भूखा मनुष्य भोजन की इच्छा करे वैसे राजा देशना की याचना करने लगा। जगद्बंधु केवली महाराज बोले—"जिस पुरुष में धर्म या न्याय नहीं उस अन्यायी को वानर के गले में जैसी रत्न की माला शोभा नहीं देती वैसे ही देशना देने से क्या लाभ ? चकित होकर राजा ने पुछा कि भगवन् मुझे अन्यायी क्यों कहते हो ? केवली महराज ने उत्तर दिया कि सत्यवक्ता श्रीदत्त को वध करने की आज्ञा दी इसलिये। यह वचन सुन कर लज्जित हो राजा ने आदर सन्मान पूर्वक श्रीदत्त को अपने पास बैठा कर कहा कि तू अपनी सत्य हकीकत निवेदन कर। जब वह अपनी सत्य घटना कहने लगा उतने में हा सुवर्णरेखा को अपनी पीठ पर बैठाये वही वानर वहां पर आ पहुचा और उसे नीचे उतार कर केवली भगवान् को नमस्कार कर सभा में बैठ गया। यह देख सब लोग आश्चर्य चकित हो उसकी प्रशंसा कर बोलने लगे कि सचमुच ही श्रीदत्त सत्यवादी है। इस सर्व वृत्तांत में जिसे जो जो संशय रहा था सो सब केवली भगवान् को पूछ कर दूर किये। इस समय सरल परिणामी श्रीदत्त केवलज्ञानी महराज को वंदन कर पूछने लगा कि हे भगवन्! मेरी पुत्री और माता पर मुझे स्नेह उत्पन्न क्यों हुआ ? सो कृपाकर फरमाइये। महात्मा श्री बोले पूर्वभव का वृत्तांत सुनने से सर्व बातें तुझे स्पष्टतया मालूम हो जावेंगी।"

पंचाल देश के काम्पिल पुर नगर में अग्निशर्मा ब्राम्हण को चैत्र नामक एक पुत्र था। उस चैत्र को भी महादेव के समान गौरी और गंगा नाम की दो स्त्रियां थी। ब्राम्हणों को सदैव भिक्षा विशेष प्रिय होती है, अतः एक दिन चैत्र अपने मैत्र नामक ब्राम्हण मित्र के साथ कोंकण देश में भिक्षा मांगने गया। वहां बहुत से गांवों में बहुतसा धन उपार्जन कर वे दोनों स्वदेश तरफ आने को निकले। रास्ते में धन लोभी हो खराब परिणाम से एक दिन चैत्र को सोता देख मैत्र विचार करने लगा कि इसे मार कर मैं सर्व धन लेलूं तो ठीक हो। इस विचार से वह उसका वध करने के लिए उठा, क्योंकि अर्थ अनर्थ का ही मूल है। जैसे दुष्ट वायु मेघ का विनाश करता है वैसे ही लोभी मनुष्य तत्काल विवेक, सत्य, संतोष, लज्जा, प्रेम, कृपा, दाक्षिण्यता आदि गुणों का नाश करता है। दैवयोग से उसी वक्त उसके हृदय में विवेक रूप सूर्योदय होने से लोभरूप अन्धकार का नाश हुआ। अतः वह विचारने लगा कि धिःकार है मुझे कि जो मुझ पर पूर्ण विश्वास रखता है उसी पर मैंने अत्यन्त निंदनीय संकल्प किया! अतः मुझे और मेरे दुष्कृत्य को धिःकार है। इस तरह कितनीक देर तक पश्चात्ताप करने के बाद उसने अपने घातकीपन की भावना को फिरा डाला। कहा है कि, ज्यों ज्यों दाद पर खुजाया जाय त्यों त्यों वह बढ़ती ही जाती है वैसे ही ज्यों २ मनुष्य को लाभ होता जाता है त्यों २ लोभ भी बढ़ता ही जाता है। इसके बाद इसी प्रकार दोनों के मन मे परस्पर घातकीपन की भावना उत्पन्न होती और शांत हो जाती। इन्हीं विचारों में कितनेक दिन तक उन्होंने कितनी एक पृथ्वी का भ्रमण किया। परन्तु अन्त में वे अति लोभ के वशीभूत होकर वे दोनों मित्र तृष्णा रूप वैतरणी नदी के प्रवाह में बहने लगे।

वे अति लोभ के कारण स्वदेश न पहुंच सके और तृष्णा के आर्तध्यान में लीन हो परदेश में ही मृत्यु के शरण हुए। वे कितने ही भवों तक तिर्यंच गति मे परिभ्रमण करके अन्त मे तुम दोनों श्रीदत्त और शंखदत्त तया उत्पन्न हुये हो। यानी मैत्र का जीव शंखदत्त और चैत्र का जीव तू श्रीदत्त हुवा है। पूर्वभव मे मैत्र ने तुझे पहिले ही मार डालने का संकल्प किया था इससे तूने इस भव में शंखदत्त को प्रथम से ही समुद्र में फेंक दिया। जिसने जिस प्रकार का कर्म किया है उसे उसी प्रकार भोगना पड़ता है। इतना ही नहीं किंतु जिस प्रकार देने योग्य देना होता है वह जैसे व्याज सहित देना पड़ता है वैसे ही उसके सुख या दुःख उससे अधिक भोगना पड़ता है। तेरी पूर्वभव की गंगा और गौरी नामा दो स्त्रियां तेरी मृत्युके बाद तेरे वियोग के कारण वैराग्य प्राप्त कर ऐसी तापसनियां बनी कि जिन्होंने महीने २ के उपवास करके अपने शरीर को और मन को शोषित बना दिया। कुलवंती स्त्रियो का यही आचार है कि वैधव्य प्राप्त हुये बाद धर्म का ही आश्रय ले। क्योंकि उससे उसका यह भव और परभव दोनो सुधरते हैं। यदि ऐसा न करें तो उन्हें दोनों भव मे दुःख की प्राप्ति होती है। उन दोनो तापसनियों मे से गौरी को एक दिन मध्याह्न काल के समय पानी की अति तृषा लगने से उसने अपने काम करनेवाली दासीसे पानी मांगा, परन्तु मध्याह्न समय होनेके कारण निद्रावस्थासे जिसके नेत्र मिल गये हैं ऐसी वह दासी आलस्यमे पड़ी रही, परंतु दुर्विनीतके समान वह कुछ उत्तर या पानी न दे सकी। तपस्वी व्याधिवंत (रोगी) क्षुधावंत (भूखा) तृषावंत (प्यासा) और दरिद्री इतने जनो को प्रायः क्रोध अधिक होता है। इससे उस दासीपर गौरी एकदम क्रोधायमान होकर उसे कहने लगी कि तू जवाब तक भी नहीं देती? उस वक्त दासीने तत्काल उठकर मीठे वचनपूर्वक प्रसन्नताके साथ पानी लाकर दिया और अपने अपराध की माफी मांगी। परंतु गौरीने उसे दुर्वचन बोलकर महा दुष्ट (निकाचित) कर्म बंधन किया, क्योंकि यदि हंसी मे भी किसी को खेदकारक वचन कहा हो तो उससे भी दुष्ट कर्म भोगना पड़ता है, तब फिर क्रोधावेश मे उच्चारण किये हुये मार्मिक वचनों का तो कहना ही क्या? गंगा तपस्विनी भी एक दिन कुछ काम पड़ने पर दासी कहीं बाहर गई हुई होने के कारण उस काम को स्वयं करने लगी। काम होजाने पर जब दासी बाहर से आई तब उसे क्रोधायमान होकर कहने लगी कि क्या तुझे किसी ने कैदखाने में डाला था कि जिससे काम के वक्त पर भी हाजर न रह सकी? ऐसा कहने से उसने भी मानो गौरी की ईर्षा से ही निकाचित कर्म बंधन किया हो इस प्रकार गंगा ने महा अनिष्टकारी कर्म का बंधन किया। एक समय किसी वेश्या को किसी कामी पुरुष के साथ भोग विलास करते देख गंगा अपने मन मे विचारने लगी कि "धन्य है! इस गणिका को जो अत्यंत प्रशंसनीय कामी पुरुषोंके साथ निरन्तर भोग विलास करती है! भ्रमरके सेवनसे मानो मालती ही शोभायमान देख पड़ती हो ऐसी यह गणिका कैसी शोभ रही है और मैं तो कैसी अभागिनी मे भी अभागिनी हूं! धिःक्कार है मेरे अवतार को कि जो अपने भर्तार के साथ भी संपूर्ण सुख न भोग सकी! अब अन्त मे विधवा बनकर ऐसी वियोग अवस्था भोग रही हूं"। ऐसे दुर्ध्यान से उस दुर्बुद्धि गंगाने जैसे वर्षा ऋतु मे लोहा मलिनता को प्राप्त होता है वैसे ही दुष्ट कर्म बन्धन से अपनी आत्मा को मलिन किया। अनुक्रम से वे दोनों स्त्रियां मर कर ज्योतिषी देवता के विमान मे देवीतया उत्पन्न हुई। वहां से च्यवकर गौरी तेरी पुत्री और गंगा तेरी माता

पणें उत्पन्न हुई। गौरी ने पूर्वभव में दासी को दुर्वचन कहा था उससे इस तेरी पुत्री को सपदंश का उपद्रव हुवा और पूर्वभव में गंगा ने जो दुर्वचन कहा था उस से उसे पल्लीपति के कब्जे में कई दिनो तक चिन्तातुर रहना पड़ा। तथा गणिका की प्रशंसा की थी इससे इस भव में तेरी माता होने पर भी इसे गणिका अवस्था प्राप्त हुई। क्योंकि कर्म को कुछ असंभवित नहीं। तेरी पुत्री और माता पूर्वभव में तेरी स्त्रियां थीं और उन पर तुझे अति प्रेम था इसलिए इस भव मे भी तुझे मन से उन्हें भोगने की इच्छा पैदा हुई। क्योकि पूर्वभव में जो पापारंभ संबंधी संस्कार होता है वही संस्कार भवांतर में भी प्रायः उसे उदय में आता है, परन्तु इस विषय में इतना अधिक समझना चाहिये कि यदि धर्म सम्बन्धी संस्कार मन्द परिणाम से हुआ हो तो वह किसी को उदय में आता है और किसी को नहीं भी आता, किन्तु तीव्र परिणाम से उपार्जन किए संस्कार तो भवांतर में अवश्य ही साथ आते हैं। केवली भगवान् के पूर्वोक्त वचन सुन कर संसार पर सखेद वैराग्य पा श्रीदत्त ने विज्ञप्ति की कि भगवन्! जिस संसार मे वारंवार ऐसी दुर्घट कर्म विडंबनायें भोगनी पडती हैं उस श्मशान रूप संसार में कौन विचक्षण पुरुष सुख पा सकता है! इसलिये हे जगदुद्धारक! संसाररूप अन्धकूप मे पड़ते हुए का उद्धार करने के लिए मुझे इस पाप से मुक्त होने का कुछ उपाय बतलाओ। केवल ज्ञानी ने कहा यदि इस अपार संसार का पार पाने की इच्छा हो तो चारित्ररूप सुभट का आश्रय ले। श्रीदत्त ने कहा कि महाराज आप जो फरमाते हैं सो मुझे मंजूर है परन्तु इस कन्या को किसे दूं, क्योंकि संसाररूप समुद्र से पार होने की उत्कण्ठा वाले मुझे इस कन्या की चिन्तारूप पाषाणशिला कंठ मे पड़ी है। ज्ञानी बोले—"पुत्री के लिये तू व्यर्थ ही चिन्ता करता है क्यों कि तेरा मित्र शङ्खदत्त ही तेरी पुत्री के साथ शादी करने वाला है यह सुन खेदयुक्त गद्गदित कंठ से और नेत्रों से अश्रु टपकाते हुए श्रीदत्त कहने लगा कि, हे जगद्बंधु! मैंने दुष्टबुद्धि से अपने प्रिय मित्र उस शङ्खदत्त को तो अगाध समुद्र मे फेंक दिया है तब फिर अब उसके मिलने की आशा कहां? ज्ञानी ने कहा कि हे भद्र! तू खेद मत कर! मानो बहुमान से बुलाया हो इस प्रकार तेरा मित्र अभी यहां पर आवेगा। यह वचन सुन वह आश्चर्यपूर्वक विचार करता है इतने में ही तत्काल वहां पर शङ्खदत्त आया और श्रीदत्त को देखते ही कराल मुख बनाकर क्रोधायमान हो यमराज के समान उसे मारने के लिए दौड़ा। परन्तु राजा आदि की बड़ी सभा देखकर उसके नेत्र क्षोभायमान होने से वह जरा अटका। इतने मे ही उसे केवली महराज कहने लगे—"हे शङ्खदत्त! क्रोधाग्नि की तीव्रता दूसरे के हृदय को भस्म करती है, तब फिर जहां से पैदा होती है उस हृदय को भस्म करे इसमें आश्चर्य ही क्या? अतः तू ऐसे हानिकारक क्रोध को दूर कर"। जिस प्रकार जांगुली विद्या के प्रभाव से तत्काल ही सर्प का जहर उतर जाता है उसी प्रकार केवली भगवान के मधुर वचन सुनकर शङ्खदत्त का क्रोध शांत हो गया। तदनन्तर श्रीदत्त ने उसका हाथ पकड़ कर उसे अपने पास बैठा कर पश्चाताप पूर्वक अपने अपराध की क्षमा याचना की।

श्रीदत्त ने मुनिराज से पूछा "हे पूज्य! यह शङ्खदत्त समुद्र में गिरे बाद किस तरह निकल कर यहां पर आया? सो कृपा कर फरमावें। ज्ञानी गुरु ने उत्तर दिया कि, शङ्खदत्त समुद्र में पड़ा उसी वक्त जैसे क्षुधातुर को खाने के लिए श्रेष्ठ फल मिले त्यों उसके हाथ में एक काष्ट का तख्ता आगया। अनुकूल पवन की प्रेरणा से

समुद्र में तैरता हुआ यह सातवें दिन समुद्रको पार कर किनारे पर आया । उस जगह नजदीक में सारस्वत नामा गांव था उस गांव में जाकर जब इसने विश्राम लेने की तैयारी की इतने में इसपर स्नेह रखने वाला इसका संवर नामक मामा वहां पर आ मिला। सात रोज तक समुद्र जल के झकोरे लगने से शङ्खदत्त का शरीर काला और फीका पड़ गया था इसलिए इसे पहचानने वाला भी उस समय बड़े प्रयत्न से पहचान सकता था। इस का मामा इसे पहचान कर अपने घर ले गया और वहां पर खान, पान, औषधी वगैरह तथा तैलादिक का मर्दन करके उसने इसे अच्छा किया। एक दिन इसने अपने मामा से पूछा कि यहां से सुवर्ण-कुल बन्दर कितनी दूर है ? जवाब मिला कि यहां से वीस योजन दूर है और वहां पर आज कल किसी धन-वान व्यापारी के कीमती माल से भरे हुए जहाज आये हुये हैं। ऐसा सुनते ही यह रोष और तोष पूर्ण हो अपने मामा को आज्ञा ले सत्वर यहां आया है और इस वक्त तुझे देखकर क्रोधायमान हुआ। कथा के समुद्र वह केवली भगवान् पूर्वभव का सम्बन्ध सुनाकर शङ्खदत्त को शांत करके पुनः कहने लगे—"जिस प्रकार कोई मनुष्य किसी को गाली देता है तब उसे बदले में वही वस्तु मिलती है, तदनुसार तू ने पूर्वभव में श्रीदत्त को मारने का विचार किया था इससे इस भव मे इसने तुझे धक्का मारकर समुद्र में फेंक दिया। अब तुम दोनों परस्पर ऐसी प्रीति रखना कि जिससे तुम दोनों को इस भव और परभव मे सुख की प्राप्ति हो, क्योंकि सर्व प्राणियों पर मैत्रीभाव रखना यह सचमुच ही मोक्ष मार्ग की सीढ़ी है"।

ऐसे ज्ञानी गुरु के पूर्वोक्त मधुर वचन सुनकर वे दोनों परस्पर अपने अपराध की क्षमापना कर निरपराधी बनकर उस दिन को सफल गिनने लगे। केवली भगवान् धर्मदेशना देते हुए कहने लगे, हे भव्य जीवों! जिस के प्रभाव से सर्व प्रकार की इष्ट सिद्धि प्राप्त होती है, ऐसे सम्यक्त्व, देशविरति और सर्वविरति वगैरह गुणो का अभ्यास करो! क्योंकि सम्यक्त्व की करणी सर्व प्रकार के सुखों को प्राप्त कराने में समर्थ है। ऐसी देशना सुनकर उन दोनो मित्रों सहित राजा आदि अन्य कितने एक मोक्षाभिलाषी मनुष्यों ने सम्यक्त्व मूल श्रावकधर्म को अंगीकार किया। इतना ही नहीं किन्तु वानररूप में आये हुये उस व्यंतर ने भी सम्यक्त्व प्राप्त किया। इसके बाद ज्ञानी गुरु ने फर्माया कि, यद्यपि सुवर्णरेखा का औदारिक और व्यन्तर का वैक्रिय शरीर है, तथापि पूर्वभव के स्नेह के कारण इन में परस्पर बहुत काल तक स्नेह भाव रहेगा। तदनन्तर राजा ने सन्मान पूर्वक श्रीदत्त को नगर मे ले जाकर उस की सर्व ऋद्धि समर्पण की। श्रीदत्त ने भी अपनी आधी समृद्धि और पुत्री शङ्खदत्त को देकर बाकी का धन सात क्षेत्रो मे नियोजित किया और उन ज्ञानी गुरू महाराज के पास समहोत्सव दीक्षा अंगीकार की। तदनन्तर निर्मल चारित्र पालन करने से मोह को जीतकर मैं केवलज्ञान को प्राप्त हुआ हूं। इसलिए हे शुकराज! मुझे भी पूर्वभव के माता और पुत्री पर स्नेह भाव उत्पन्न होने से मानसिक दोष लगा था अतः संसार मे जो कुछ आश्चर्यकारी स्वरूप मालूम हो उसे मन मे रख कर व्यवहार मे जो सत्य गिना जाता हो तदनुसार वर्तना चाहिये, क्यों कि जगत के व्यवहार भी सत्य हैं।

सिद्धांत में दस प्रकार के सत्य नीचे लिखे मुजब बतलाये है।

जणवय संमय ठवणा । नामे रूवे पडुच्च सच्चेअ ॥

ववहार भावयोगे । उसमे उवम्म सच्चेअ ॥ १ ॥

(१) जनपद सत्य—कोंकण देश में पानी को पिच्च, नीर और उदक कहते हैं, अतः जिस देश में जिस वस्तु को जिस नाम से बुलाया जाता हो उस देश की अपेक्षा जो बोला जाता है उसे "जनपद सत्य" कहते हैं।

(२) संमत सत्य—कुमुद, कुवलय, आदि अनेक प्रकार के कमल कादव में उत्पन्न होते हैं उन सबको पंकज कहना चाहिये, परंतु लौकिक शास्त्र ने अरविंद को पंकज गिना है। दूसरे कमलों को पंकज में नहीं गिना। इस सत्य को "संमत सत्य" कहते हैं।

(३) स्थापना सत्य—काष्ट, पाषाण वगैरह की अरिहंत प्रभु की प्रतिमा, एक, दो, तीन, चार वगैरह अंक, पाई, पैसा, रुपया, महोर आदि में राजा वगैरह का सिक्का, इस सत्य को "स्थापना सत्य" कहते है।

(४) नाम सत्य—दरिद्री होने पर भी धनपति नाम धारण करता हो, पुत्र न होने पर भी कुलवर्धन नाम धारण करता हो उस सत्य को "नाम सत्य" कहते है।

(५) रूप सत्य—वेष मात्र के धारण करने वाले यति को भी व्रती कहा जाता है, इस सत्य को "रूप सत्य" कहते हैं।

(६) प्रतित्य सत्य—जैसे कनिष्ठा अंगुली की अपेक्षा अनामिका अंगुली लंबी है और अनामिका की अपेक्षा कनिष्ठा छोटी है, इस तरह एक एक की अपेक्षा जो वाक्यार्थ बोला जाता है उसे "प्रतीत्य सत्य" कहते हैं।

(७) व्यवहार सत्य—पर्वत पर घांस जलता हो तथापि पर्वत जलता है, घड़े में से पानी झरता हो तथापि घड़ा झरता है, इस प्रकार बोल ने का जो व्यवहार है इसे "व्यवहार सत्य" कहते हैं।

(८) भाव सत्य—बगुली पक्षी को न्यूनाधिक प्रमाण में पांचों ही रंग होते हैं परंतु सफेद रंग की अधिकता से वह सफेद ही गिनी जाती है, एवं वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, इनमे से जो जिसमे अधिक हो उस से वह उसी रूप गिना जा सकता है और इसे "भाव सत्य" कहते है।

(९) योग सत्य—जिसके हाथ में दंड हो वह दंडी और जिसके पास धन हो वह धनी कहलाता है। एव जिसके पास जो वस्तु हो उस परसे उसी नाम से बुलाया जा सकता है। इसे "योग सत्य" कहते हैं।

(१०) उपमा सत्य—यह तालाब समुद्र के समान है, इस प्रकार जिसे उपमा दी जाय उसे "उपमा सत्य" कहते हैं।

केवली महाराज के पूर्वोक्त वचन सुनकर सावधान हो शुकराजकुमार अपने माता पिता को प्रकटतया माता पिता कहकर बोलने लगा। इससे राजा आदि सर्व परिवार बड़ा प्रसन्न हुआ। राजा श्रीदत्त केवली से कहने लगा कि, स्वामिन्! धन्य है आपको कि जिसे इस यौवनावस्था में वैराग्य प्रगट हुआ। भगवन्! ऐसा वैराग्य मुझे कब उत्पन्न होगा? केवली महाराज ने उत्तर दिया कि "राजन्! जब तेरी चन्द्रवती रानी का पुत्र तेरी दृष्टि में पड़ेगा उसी वक्त तुझे वैराग्य उत्पन्न होगा"। केवली के वचनों को सराहता हुवा और उन्हें प्रणाम कर अपने परिवार सहित प्रसन्नता पूर्वक राजा अपने राजमहल में आया। दया और सम्यक्त्वरूप दो

नेत्रों से मानो अमृत की वृष्टि ही करता हो, ऐसे शुकराजकुमार की उम्र जब दस वर्ष की हुई उस वक्त कमलमाला रानी ने दूसरे पुत्ररत्न को जन्म दिया। उसकी माता को देव सूचित स्वप्न के अनुसार राजाने उस लड़के का नाम महोत्सव पूर्वक हंसराज रक्खा। द्वितीया के चन्द्रमा के समान प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होता हुआ वह पांच बरस का हुआ। अब वह राजकुल के सर्व मनुष्यों को आनंदित करता हुआ रामचन्द्र जी के साथ ज्यों लक्ष्मण खेलता त्यों शुकराजकुमार के साथ विविध प्रकार की क्रीड़ा करता है। अर्थवर्ग और कामवर्ग के साथ क्रीड़ा करते हुए दोनों पुत्रों को धर्मवर्ग को भी मुख्यतया सेवन करना ही चाहिये, मानो यह बात विदित करने के लिये ही न आता हो, ऐसे एक दिन राजसभा मे सिंहासन पर बैठे हुये राजा के पास आकर छड़ीदार ने विनय पूर्वक अर्ज की कि, महाराज ! कोई गांगिल नामा महर्षि पधारे है और वे आपसे मिलना चाहते हैं। यदि आपकी आज्ञा हो तो दरबार में आने दूं ? यह सुनते ही हर्षचकित हो राजा ने आज्ञा दी कि महात्मा को हमारे पास ले आओ। महर्षि के राजसभा मे पधारते ही राजा ने उठ कर उन्हें सन्मान देकर आसन पर बैठाया और विनय भक्ति पुरःसर क्षेम कुशल पूछने पूर्वक उन्हें अत्यंत आनंदित किया। महर्षि ने भी राजा को शुभाशिर्वाद देकर तीर्थ, आश्रम, एवं तापसो आदिका क्षेमकुशल समाचार दिया। राजा ने पूछा कि महाराज ! आपका यहां पर शुभागमन किस प्रकार हुआ ?

ऋषिजी उत्तर देने लगे इतने ही मे कमलमाला रानी को भी राजा ने अपने नजदीक में बंधवाये हुए परदे में बुलवा लिया, तदनन्तर गांगिल महर्षि अपनी पुत्री को कहने लगा कि, गोमुख नामक यक्षराज ने आज रात्रि मे मुझे स्वप्न द्वारा विदित किया है कि मैं मूल शत्रुंजय तीर्थ पर जाता हूं। उस वक्त मैंने पूछा कि इस कृत्रिम शत्रुंजय तीर्थ की रक्षा कौन करेगा ? तब उसने कहा कि, निर्मल चरित्रवान जो तेरे दोनों दौहित्र (लड़की के लड़के) भीम और अर्जुन जैसे बलवंत शुकराज और हंसराज नामक हैं उनमे से एक को यहां पर लाकर तीर्थ की रक्षा के लिये रखेगा तो उसके माहात्म्य से यह तीर्थ भी निरुपद्रव रहेगा। मैंने पूछा कि, उस क्षितिप्रतिष्ठित नगर का मार्ग बड़ा लंबा होने से मुझे वहांतक पहुचने मे बहुतसा समय व्यतीत हो जायगा, उतने समय तक इस शत्रुंजय तीर्थ का रक्षण कौन करेगा ? तब गोमुख यक्ष ने कहा यद्यपि वहां जाने आने मे बहुतसा समय लग सकता है तथापि यदि तू सुबह यहां से जायगा तो मध्याह्न तक ही मेरे प्रभाव (दिव्य शक्ति) से उसे लेकर तू वापिस यहां आ सकेगा। ऐसा बोलकर यक्षराज तो चला गया और मैं यह बात सुनकर बड़ा आश्चर्य में पड़ा। यक्ष के वचन के अनुसार मै आज ही सुबह वहां से यहां आने के लिये निकला। परंतु अभी तक एक प्रहर दिन नहीं चढ़ा है कि इतने में ही मैं यहां आ पहुचा हूं। दिव्यशक्तिसे संसार मे क्या नहीं बन सकता ? इसलिए हे दक्ष दंपति दक्षिणा के समान इन तुम्हारे दो पुत्र रत्नो में से एक पुत्र को मुझे तीर्थ रक्षण के लिये समर्पण करो कि जिससे हम दोपहर होने से पहले ही बिना परिश्रम के हमारे आश्रम में जा पहुचें। यह वचन सुन कर दूसरे की अपेक्षा छोटा होने पर भी पराक्रमी हंसराज राजहंस की ध्वनी से बोला- "हे पिता जी ! उस तीर्थ की रक्षा करने के लिए तो मैं ही जाऊंगा। अतः आप खुशी से मुझे ही आज्ञा दो।" अतुल पराक्रमी उस बालक के ऐसे साहसिक उद्गार सुनकर उसके माता पिता ने कहा कि-"हे पुत्र ! तेरी

लघुवय होने पर भी धैर्यवान और विचक्षण पंडितों के समान तेरे साहसिक वचन कहां से" ? गांगिल महर्षि बोला—"क्षत्रिय वंश का ऐसा वीर्य और अहो बाल्यावस्था में भी इस प्रकार का तेज! सचमुच यह आश्चर्यकारक होने पर भी सत्य ही है। प्रातःकाल नूतन ऊगते हुये सूर्य का तेज किसी से देखा नहीं जा सकता इस प्रकार का होता है। यह कुमार यद्यपि उमर से बालक है परन्तु इस का बल और शक्ति महा प्रशंसा पात्र हैं। अतः इसको ही मेरे साथ तीर्थ रक्षा के लिए भेजो"। राजा ने कहा—"हे महाराज! इतने छोटे बालक को वहां किस तरह भेजा जाय? यद्यपि यह बालक शक्तिवान है तथापि इस अवस्था में भेजने के लिये माता पिता का मन किस तरह मान सकता है? क्या उस तीर्थ की रक्षा करने में किसी प्रकार का भय नहीं है? यद्यपि सिंह यह जानता है कि मेरी गुफा में से मेरे बच्चे को ले जाने के लिये अन्य कोई शक्तिवान नहीं है तथापि वह अपने बच्चे को सदैव अपनी नजर के सामने रखता है और उसे किसी वक्त कोई ले न जाय इस प्रकार का भय सदैव कायम रहता है। वैसे ही स्नेहियों को स्नेही के विषय में पद पद पर भय मालूम पड़े बिना नहीं रहता। इसलिए ऐसे छोटे बच्चे को क्यों कर भेजा जाय?।" माता पिता के पूर्वोक्त वचन सुनकर समय सूचक शुकराज उत्साह पूर्वक उन्हें कहने लगा कि, हे पूज्य! यदि आप मुझे आज्ञा दो तो मैं तीर्थ की रक्षा के लिए जाऊं! मैं पवित्र तीर्थ की रक्षा करने के लिए अपने आप को बड़ा भाग्यशाली समझता हूं। तीर्थरक्षा की बात सुनकर मैं बड़ा ही प्रसन्न हुवा हूं, इसलिए मेरे पूज्य प्रिय माता पिता आप मुझे तीर्थभक्ति करने की आज्ञा देकर तीर्थसेवा में सहायक बनो"। ऐसे वचन सुनकर राजा मंत्री के सामने देखने लगा। तब उसने कहा कि "आज्ञा देने वाले आप हैं, ले जाने वाले महर्षिजी हैं, रक्षा भी तीर्थ की ही करनी है, रक्षण करने वाला शूर, वीर और पराक्रमी शुकराज कुमार है और गोमुख यक्ष की सम्मति भी मिल चुकी है। यह तो दूध में शर्करा डालने के समान है, इसलिये आप आज्ञा देने मे क्यों विलंब करते हैं" ? मंत्री का वचन सुनकर शुकराज को माता पिता ने सहर्ष जाने की आज्ञा दी। इसलिए प्रसन्न होकर शुकराज स्नेहपूर्ण नेत्रों से आंसू टपकाते हुए माता पिता को नमस्कार कर के गांगील महर्षि के साथ चलता हुआ।

महा पराक्रमी धनुर्धर अर्जुन के समान बाणों से भरे हुए तर्कस को स्कंध में बांधकर ऋषि के साथ तत्काल ही शत्रुंजय के समीप ऋषि के तपोवन में शुकराजकुमार जा पहुंचा और शत्रुंजय तीर्थ की सेवा, भक्ति और रक्षण के लिये सावधान रहने लगा। शुकराज के महिमा से ऋषियों के आश्रय में लगे हुये बाग बगीचों में फूल फल की वृद्धि होने लगी। इतना ही नहीं बलकि शेर, चिता, सूअर आदि सर्व प्रकार के उपद्रव उसके प्रभाव से शांत हो गये। सचमुच यह उसके पूर्वभव में सेवन किये हुए धर्म का ही आश्चर्य कारक और अलौकिक प्रभाव है। तापसों के साथ सुख से समय निर्गमन करते हुये एक दिन रात्रि के समय एक रुदन करती हुई स्त्री के शब्द सुनकर दया और धैर्य के निधान उस शुकराज ने उस स्त्री के पास जाकर मधुर वचन से आश्वासन दे उसके दुःख का कारण पूछा; उसने कहा कि—चंपा नगरी मे शत्रुओं को मर्दन करने वाला अरिदमन नामा राजा है। उस की गुणयुक्त साक्षात् लक्ष्मी के समान पद्मावती नामा पुत्री की मैं धाय माता हूं। उस लड़की को मैं अपनी गोद में लिये प्यार करती थी उस समय जैसे केसरी सिंह बछड़ी सहित गाय को

ले जाता है वैसे ही किसी पापी विद्याधर ने विद्या के बल से लडको सहित मुझे वहां से उठाकर यहां पर फक मुझे फेंक कर जैसे कौवा खाद्य पदार्थ को लेकर उड़ जाता है त्यो वह पद्मावती राजपुत्री को लेकर न जाने कहां भाग गया ? बस इसी दुःख से मैं रुदन कर रही हूं। यह सुनकर शुकराज ने उसे सांत्वना दे वहां ही रक्खी और स्वयं पिछली रात को कितने एक घासके झोपड़ों मे विद्याधर को ढूंढने लगा। इतने मे ही वहां किसी पुरुष को रुदन करते देख वह शीघ्र ही उसके पास जाकर दया से उसके दुःख का कारण पूछने लगा। दयालु को कहे बिना दुःखका अंत नहीं आ सकता; ऐसा समझकर उसने कहा कि -हे वीरकुमार ! मैं गगनवल्लभपुर नगर के राजा का वायु समान गति करने वाला वायुवेग नामक पुत्र हूं। किसी राजा की पद्मावती नामा कन्या को हरण कर ले जाते हुए तीर्थ के मन्दिर पर आते ही मेरा विमान तीर्थ महिमा के लिये गतिरुद्ध हो गया; मैं उसे उल्लंघन न कर सका इतना ही नही किंतु मेरी विद्या खोटी हो जाने से मैं तत्काल ही जमीन पर गिर पड़ा। दूसरे की कन्या हरण करने के पाप के कारण मैं पुण्यरहित मनुष्य के समान जब जमीन पर गिर पड़ा तब तुरंत ही मैने उस कन्या को छोड़ दिया, तब जैसे चील के पंजे से छूटकर पक्षिणी जीव लेकर भाग जाती है वैसे ही वह कन्या कहीं भाग गई। धिःकार है मुझ पापी को कि अघटित लाभ की वांछा से उद्यम किया तो उल्टा कितना बड़ा अलाभ हुआ। विद्याधर के ये वचन सुनकर सर्व वृत्तांत का पता लग जाने से प्रसन्नता प्राप्त शुकराज उस कन्या को वहां ही ढूंढने लगा। देवांगना के समान रूप लावण्ययुक्त उस कन्या को शुकराज ने मंदिर मे से प्राप्त किया। तदनन्तर उस कन्या का उसकी धाय माता के साथ मिलाप करा दिया और उस विद्याधर को भी नाना प्रकार के औषधादिक उपचार कर शुकराज ने अच्छा किया। विद्याधर पर उपकार करके उसे जीवदान देने के कारण वह शुकराज का प्रीति पूर्वक उपकार मानने लगा और कहने लगा कि मैं जब तक जीवित रहूंगा आप का उपकार न भूलूंगा। सचमुच ही पुण्य की महिमा कैसी अगाध और आश्चर्यजनक है ! शुकराज ने विद्याधर से पूछा "तेरे पास आकाशगामिनी विद्या विद्यमान है या नहीं ? उसने कहा विद्या तो अक्षर मात्र (मुखपाठ मात्र) है परन्तु चलती नही ; परन्तु जिस पुरुष ने इस विद्या को सिद्ध किया हो, यदि वह पुरुष मेरे सिर पर हाथ रखकर फिर से शुरू करावे तो चल सकती है,अन्यथा अब यह मेरी विद्या चल नहीं सकती। समय सूचक शुकराज ने कहा कि ऐसा तो यहां पर अन्य कोई नहीं है, इसलिए तू इस तेरी विद्या को पहले मुझे सिखा दे फिर तेरे बतलाये मुजब इसे सिद्ध करके जैसे किसी का कुछ उधार लिया हो और वह पीछे दिया जाता है वैसे तुझे मैं ही वापिस दूंगा, यानी तुझे वही विद्या फलीभूत होगी। विद्याधर ने प्रसन्नता पूर्वक वह विद्या शुकराज कुमार को सिखलाई। शुकराज ने उस विद्या को विमलाचल तीर्थ और अपने पुण्य के बलसे तत्काल सिद्ध करके उस विद्याधर को सिखाई। जिससे उसे वह पाठ सिद्ध विद्या के समान तत्काल ही सिद्ध हो गई। फिर वे दोनो पुरुष खेचर और-भूचर सिद्ध विद्या वाले बन गये। विद्याधर ने अन्य भी कई एक विद्याएं शुकराज कुमार को सिखलाई। अगणित पुण्य का संचय करने वाले मनुष्य को क्या दुर्लभ है ? अब शुकराज कुमार गांगिल ऋषि की आज्ञा लेकर नवीन रचित विमान में उन दोनों स्त्रियों (राजकन्या पद्मावती तथा उसकी धाय माता) को बैठाकर विद्याधर

को साथ ले चंपापुरी नगरी में आया। इधर कन्या को कोई हरण कर ले गया यह समाचार राजकुल में विदित हो जाने के कारण समस्त राजकुल चिन्ता रूप अन्धकार मे व्याप्त हो रहा था। इस अवसर में राजा के पास जाकर शुकराज ने उस लड़की को समर्पण कर राजा की चिंता दूर की और अरिदमन राजा को तत्सम्बन्धी सर्व वृत्तान्त कह सुनाया। शुकराज का परिचय मिलने पर राजा को विदित हुआ कि यह मेरे मित्र का पुत्र है। शुकराज के परोपकारादि गुणों से प्रसन्न हो अत्यन्त हर्ष और उत्साह सहित अरिदमन राजा ने अपनी पद्मावती पुत्री का उसके साथ विवाह कर दिया। विवाह के समय शुकराजको बहुत सा द्रव्य देकर राजा ने उसकी प्रीति में वृद्धि की। राजा की प्रार्थना से कितने एक समय तक शुकराज ने पद्मावती के साथ संसारसुख भोगते हुए वहां पर ही काल निगमन किया। विवेकी पुरुष के लिए संसार सुख के काय करते हुए भी धर्म कार्य करते रहना श्रेयस्कर है, यह विचार कर शुकराज एक दिन राजा की आज्ञा ले अपनी स्त्री सहित उस विद्याधर के साथ शाश्वती और अशाश्वती जिन प्रतिमाओं को वन्दन करने के लिए वैताढ्य पर्वत पर गया। रास्ते की अद्भुत नैसर्गिक रचनाओं का अवलोकन करते हुए वे सुखपूर्वक गगनवल्लभ नगर मे पहुंच गये। वायुवेग विद्याधर ने अपने माता पिता से अपने उपर किये हुए शुकराज के उपकार का वणन किया। इससे उन्हों ने हर्षित हो उसके साथ अपनी वायुवेगा नामा कन्या की शादी कर दी। यद्यपि शुकराज को तीर्थयात्रा करने की बड़ी जल्दी थी, तथापि लग्न किये बाद अंतरंग प्रीतिपूवक अत्याग्रह से उसे उन्होने कितने एक समय तक अपने घर पर ही रक्खा। एक दिन अट्ठाई म यात्रा का निश्चय करके देव के समान शोभते हुए साला और बहनोई (वायुवेग विद्याधर और शुकराज) विमान में बैठकर तीर्थवंदन के लिए निकले। रास्ते में जाते हुए 'हे शुकराज! हे शुकराज!' इस प्रकार किसी स्त्री का शब्द सुनने मे आया; इससे उन दोनों ने विस्मित हो उसके पास जाकर पूछा कि तू कौन है? उसने जबाब दिया कि मैं चक्र को धारण करने वाली चक्रेश्वरी देवी हूं। गोमुख नामा यक्ष के कहने से मैं काश्मीर देश मे रहे हुये शत्रुंजय तीथ की रक्षा करने के लिए जा रही थी, रास्ते में क्षितिप्रतिष्ठित नगर में पहुंची तब वहां पर मैंने उच्च स्वर से रुदन करती हुई एक स्त्री को देखा। उसके दुःख से दुखित हो मैं आकाश से नीचे उतर कर उसके पास गई; अपने महल के समीप एक बाग में साक्षात् लक्ष्मी के समान परंतु शोक से आकुल व्याकुल बनी हुई उस स्त्री से मैंने पूछा—हे कमलाक्षी! तुझे क्या दुःख है? तब उसने कहा कि गांगिल नामक ऋषि शुकराज नामक मेरे पुत्र को शत्रुंजय तीर्थ की रक्षा करने के लिए बहुत दिन हुये ले गया है, परन्तु उसका कुशल समाचार मुझे आजतक नहीं मिला। इसलिये मैं उसके वियोग से रुदन करती हूं। तब मैंने कहा हे भद्रे तू रुदन मत कर! मैं वहां ही जा रही हूं। वहां से लौटते समय तुझे तेरे पुत्र का कुशल कहती जाऊंगी। इस प्रकार मैं उसे सांत्वना देकर काश्मीर के शत्रुंजय तीर्थ पर गई, परन्तु वहांपर तुझे नहीं देख पाया इससे अवधिज्ञान द्वारा तेरा वृत्तांत जान कर मैं तुझे यहां कहने के लिए आई हूं। इसलिये हे विचक्षण! तेरे वियोगसे पीड़ित तेरी माताको अमृत वृष्टि के समान अपने दर्शन देने रूप अमृतरस से शांत कर। जैसे सेवक स्वामी के विचारानुसार वर्तता है वसेही सुपात्र पुत्र, सुशिष्य और सपात्र वधू भी वर्तते हैं। माता पिता को पुत्र सुख के लिये ही होते हैं परंतु यदि

उनके तरफ से ही दुःख उत्पन्न हो तो फिर पानी में से अग्नि उत्पन्न होने के समान गिना जाय। पिता से भी माता विशेष पूजने योग्य है। ज्ञानी पुरुषों ने भी यही फरमाया है कि—पिता की अपेक्षा माता सहस्रगुणी विशिष्ट मानने योग्य है।

ऊढो गर्भः प्रसव समये सोढ मत्युग्रशूलम्।
पथ्याहारैः स्नपनविधिभिः स्तन्यपानप्रयत्नैः ॥
विष्टा मूत्र प्रभृति मलिनैः कष्टमासाद्य सद्य।
स्त्रातः पुत्रः कथमपि यया स्तूयतां सैव माता ॥ १ ॥

"नौ महीनेपर्यंत जिस का भार उठा कर गर्भ धारण किया, प्रसव के समय अतिशय कठिन शूल वगैरह की दुःसह वेदना सहन की, रोगादिक के समय नाना प्रकार के पथ्य सेवन किये, स्नान कराने में, स्तनपान कराने में और रोते हुए को चुप रखने मे बहुतसा प्रयत्न किया, तथा मल मूत्रादि के साफ करने आदि में बहुतसा कष्ट सहन कर जिसने अपने बालकका अहर्निश पालन पोषण किया सचमुच उस माता की ही स्तवना करो"।

ऐसे वचन सुनकर मानो शोक के विंदु हा न हों, आंखों में से ऐसे अश्रुकण टपकाते हुये शुकराज ने चक्रेश्वरी से कहा—"इन अमूल्य तीर्थों के नजदीक आकर उनकी यात्रा किये विना किस तरह पीछा फिरूं? चाहे जैसा जल्दी का काम हो तथापि यथोचित अवसर पर आए हुए भोजन को कदापि नहीं छोड़ना चाहिये, वैसे ही यथोचित धर्म कार्य को भी नहीं छोड़ना चाहिए। तथा माता तो मात्र इस लोक के स्वार्थ का कारण है परन्तु तीर्थ सेवन इस लोक और परलोक के अर्थ का कारण है, इसलिये तीर्थयात्रा करके मैं शीघ्रही मातुश्री से मिलनार्थ आऊंगा यह बात तू सत्य समझना। तू अव यहां से पीछी जा! मैं तेरे पीछे २ ही शीघ्र आ पहुंचूंगा। मेरी माता को भी यही समाचार कहना कि 'शुकराज अभी आता है'।" यह समाचार ले वह देवी क्षितिप्रतिष्ठित नगर तरफ चली गई। शुकराज कुमार यात्रार्थ गया। जहां शाश्वती प्रतिमायें हैं वहां जाकर तत्रस्थ चैत्यों को भक्तिभाव पुरस्सर वन्दन पूजन कर शुकराज ने अपनी आत्मा को कृतार्थ किया; यात्रा कर वहां से लौटते हुए सत्वर हो अपनी दोनों स्त्रियों को साथ ले अपने श्वसुर एवं गांगिल ऋषि की आज्ञा लेकर और तीर्थपति को नमस्कार कर एक अनुपम और अतिशय विशाल विमान मे बैठकर बहुत से विद्याधरों के समुदाय सहित शुकराज बड़े आडंबर के साथ अपने नगर के समीप आ पहुंचा। खबर मिलने पर राजकुल एवं सर्व नागरिक लोक शुकराज के सामने आये। राजा की आज्ञा से नगर जनों ने शुकराज का बड़ा भारी नगरप्रवेश महोत्सव किया! शुकराज का समागम वर्षाऋतु के समान सब को अत्यानन्दकारी हुवा। अब शुकराज युवराज के समान अपने पिता का राज कार्य सम्हालने लगा। एक समय जब कि सर्व पुरुषों को आनंद देने वाली वर्षा ऋतु का समय था तब राजा अपने दोनो पुत्रो एवं परिवार सहित शहर से बाहर क्रीड़ार्थ राज बगीचे में गया। वहां पर सब लोग अपने समुदाय से स्वच्छंदतया आनंद क्रीडा मे प्रवृत्ति करने लगे कि इतने में बड़ा भारी कोलाहल सुन पड़ा। राजा ने पूछा कि यह कोलाहल कैसे हो रहा है? तब एक सुभट ने वहां आकर कहा हे महाराज! सारंगपुर नगर के वीरांग नामक राजा का पराक्रमी सूर नामा पुत्र

पूर्वभव के वैरभाव के कारण क्रोधायमान होकर हंसराजकुमार को मारने के लिये आया है। यह बात सुनते ही राजा विचारने लगा कि मैं तो मात्र नाम का ही राजा हूं, राज्य कार्य और उसकी सार सम्हाल तो शुकराज कुमार करता है। आश्चर्य तो इस बात का है कि वीरांग राजा मेरा सेवक होने पर भी उस के पुत्र का मेरे पुत्र पर क्या वैरभाव हो सकता है? राजा हंसराज और शुकराज को साथ ले त्वरा से जब उसके सामने जाने का उपक्रम करता है उसी समय एक भाट आकर बोला कि महाराज हंसराज ने उसे पूर्वभव में कुछ पीड़ा पहुंचाई थी उस वैर के कारण वह हंसराज के ही साथ युद्ध करना चाहता है। यह सुनकर युद्ध करने के लिये तत्पर हुये अपने पिता और बड़े भाई को निवारण कर वीरशिरोमणि हंसराज स्वयं सन्नद्धबद्ध हो कर उसके सामने युद्ध करने के लिये गया। उधर से सूर भी युद्ध की पूर्ण तैयारी करके आया था इसलिये वहां पर सब के देखते हुये अर्जुन और कर्ण के समान बड़ा आश्चर्यकारी घोर युद्ध होने लगा। जैसे श्राद्ध में भोजन करने वाले ब्राह्मणों को भोजन की तृप्ति नहीं होती वैसे ही उन दोनों को बहुत समय तक युद्ध की तृप्ति न हुई! दोनों ही समान बली, महोत्साही, धैर्यवान, शूरवीरों की जय श्री भी कितनेक वक्त तक संशय को ही भजती रही। कुछ समय के बाद जैसे इन्द्र महाराज पर्वतों की पांखें छेदन कर डालते हैं वैसे ही हंसराज ने सूरकुमार के सर्व शस्त्रों को छेदन कर डाला। उस वक्त मदोन्मत्त हाथी के समान क्रोधायमान हो सूरकुमार हंसराज को मारने के लिए वज्र के समान मुष्टि उठाकर उसके सामने दौड़ा। इस समय शंकाशील हो राजा ने तत्काल ही शुकराज की तरफ दृष्टिपात किया। अवसर को जानने वाले शुकराज ने उसी वक्त हंसराजकुमार के शरीरमें बड़ी बलवती विद्या संक्रमण की, जिस के बल से हंसराजकुमार ने जैसे कोई गेंद को उठा कर फेंकता है उसी तरह सूरकुमार को तिरस्कार सहित उठा कर इतनी दूर फेंक दिया कि वह अपने सैन्य को भी उल्लंघन कर पिछली तरफ की जमीन पर जा गिरा। जमीन पर गिरते ही सूरकुमार को इस प्रकार की मूर्च्छा आई कि उसके नौकरों द्वारा बहुत देर तक उपचार होने पर भी उसे बड़ी कठिनाई से चेतना प्राप्त हुई। अब वह अपने मन मे विचार करने लगा कि मुझे धिःक्कार है, मैंने व्यर्थ ही इसके साथ युद्ध किया, इस प्रकार के रौद्र ध्यान से तो मुझे और भी अनंत भवों तक संसार में भ्रमण करना पड़ेगा। इन विचारो से उसे कुछ निर्मल बुद्धि प्राप्त हुई, अतः वैरभाव छोड़कर दोनों पुत्रो सहित नजदीक मे खड़े हुये मृगध्वज राजा के पास जाकर अपने अपराध की क्षमा याचना करने लगा। राजा ने क्षमा कर उसे पूछा कि "तूने पूर्वभव का वैर किस प्रकार जान लिया?" तब उसने कहा कि—"ज्ञान दिवाकर श्रीदत्त केवलज्ञानी जब हमारे गांव में आये थे तब मैंने उनसे अपना पूर्व भव का हाल पूछा था। इस पर से उन्होंने मुझे कहा था कि—

हे सूर! भद्दिलपुर नगर में जितारी नामा राजा था उसे हंसी तथा सारसी नाम की दो रानी तथा सिंह नामा प्रधान था। उन्हें साथ में लेकर जितारी राजा कठिन अभिग्रह धारण कर सिद्धाचल की यात्रा करने जा रहा था, मार्ग में गोमुख नामक यक्ष ने काश्मीर देश मे बनाये हुये सिद्धाचल को यात्रा करके वहां पर ही विमलपुर नगर बसाकर कितने एक समय रहकर राजा ने अंत मे वहां ही मृत्यु प्राप्त की। बाद मे सिंह नामा प्रधान उस नूतन विमलपुरी के लोगों को साथ लेकर अपनी जन्म भूमि भद्दिलपुर नगर तरफ चला। जब

वह आधा रास्ता तै कर चुका उस वक्त त्रिमलपुरी मे कुछ सार वस्तु भूली हुई उसे याद आई। इससे उसने अपने चरक नामा सेवक को आज्ञा की कि विमलपुर नगरमे अमुक जगह अमुक वस्तु भूल आये हैं, तू उसे जाकर अभी शीघ्र ले आ। उसने कहा कि, स्वामिन्! मैं अकेला अब उस शून्य स्थान पर किस तरह जा सकूंगा? यह सुनकर प्रधान ने उसे क्रोधपूर्ण वचनो से धमकाया इस से वह बिचारा वहां पर गया। बतलाये हुए स्थान पर जाकर उसने उस वस्तु की बहुत ही खोज की परन्तु पीछे से तुरत ही कोई भील वगैरह उठा ले जाने के कारण वह वस्तु उसे वहां पर न मिली। सेवक ने पीछे आकर प्रधान से कहा कि आपके बतलाये हुये स्थान मे बहुत ढूंढने पर भी वह वस्तु नहीं मिली इसलिये शायद उसे वहां से कोई भील उठा ले गया है। इस से प्रधान ने क्रोधित हो कहा कि, बस! तू ही चोर है। तूने ही वस्तु छिपाई है, ऐसा कहकर उसे अपने सुभटों द्वारा खूब पिटवाया। मार्मिक स्थानों में चोट लगने के कारण वह बहुत समय तक अचेत हो जमीन पर पड़ा रहा। इधर उस बेचारे को मूर्च्छागत पड़ा छोड़कर सब लोग प्रधान के साथ भद्दिल-पुर नगर की तरफ चले गये कुछ देरके बाद पवन लगने से उसे चेतना प्राप्त हुई। जब वह उठकर इधर उधर देखने लगा तो उसे वहांपर कोई भी नजर नही आया, इस वक्त वह विचार करने लगा अहा हा! कैसे स्वार्थी लोग हैं कि जो अपना स्वार्थ साध कर मुझे अकेला जङ्गल में छोड़कर चले गये। अहो! धिःक्कार है ऐसी प्रभुता के गर्व से गर्वित उस प्रधान को! कहा है किः—

चोरा चिल्लकाइ, गंधिअ भट्टाय विज्ज पाहुलया।
वेसा धूआ नरिंदा, परस्सपीडं न याणंति ॥ १ ॥

"चोर, बालक, गन्धी, मांगने वाला, मेहमान, वेश्या, लडकी और राजा इतने मनुष्य दूसरे की पीड़ा का विचार कदापि नहीं करते।"

इस प्रकार विचार किये बाद चरक भद्दीलपुर का रास्ता न मालूम होने से वहांपर मार्ग उन्मार्ग में भटक ने लगा। इस तरह भूख और प्यास से पीड़ित हो आर्त रौद्र ध्यान मे लीन हो वह जंगल मे ही मृत्यु प्राप्त कर भद्दिलपुर नगर के समीप वाले वन में देदिप्यमान विषपूर्ण सर्पतया उत्पन्न हुवा। उस ने प्रसंग आने पर उसी पूर्वभव के वैर के कारण उसी सिंह नामा प्रधान को डंक मारा इससे वह तत्काल मरण के शरण हुवा। वह सर्प भी आयु पूर्ण कर नरक गति में पैदा हो वहां बहुतसी दुःसह वेदनायें भोगकर अब वीरांग राजा का सूर मामक तू पुत्र उत्पन्न हुवा है और सिंह नामक प्रधान मृत्यु पाकर काश्मीर के विमलाचल तीर्थ पर के सरोवर में हंस उत्पन्न हुवा है। वहां पर उसे जाति स्मरण होने से उसने विचार किया कि, पूर्वकाल में प्रधान के भव मे शत्रुंजय तीर्थ को पूर्ण भावयुक्त सेवा न की इस से इस भव में तिर्यंच गति को प्राप्त हुवा हूं, इसलिये अब मुझे तीर्थ की सेवा करनी चाहिये। इस प्रकार की धारणा कर वह चोंच मे पुष्प ले प्रभु की पूजा करता है, एवं दोनों पांखों में पानी भर कर प्रभु को प्रक्षालन करता है। इस प्रकार अनेक तरह से उसने प्रभुभक्ति की। अन्त में मृत्यु को प्राप्त हो सौधर्म स्वर्ग में उत्पन्न हुवा। वहां से च्यवकर पूर्व के पुण्य के प्रभाव से मृगध्वज राजा का पुत्र हंसराज नामक उत्पन्न हुवा है।

केवली भगवान के ये वचन सुनकर पूर्वभव का वैर याद आने से मुझे हंसराज को मार डालने की बुद्धि सूझी थी, इसी से मैं यहां पर आया था। यद्यपि मेरे पिता ने वहां से निकलते समय मुझे बहुत कुछ समझाया और रोका था, तथापि मैं रोकने से न रुका। अन्त में संग्राम में मुझे आपके हंसराज पुत्र ने जीत लिया, इसीलिये पूर्व के पुण्य से अब मुझे वैराग्य उत्पन्न हुवा है। इससे मैं उन श्रीदत्त नामा केवली भगवान के पास जाकर दीक्षा ग्रहण करूंगा। ऐसा कहकर सूरकुमार अपने नगर को चल दिया। वहां जाकर अपने माता पिता की आज्ञा ले उसने गुरु महाराज के पास दीक्षा ग्रहण की। कहा है कि "धर्मस्य त्वरितागतिः"।

मृगध्वज राजा अपने मन मे विचार करने लगा, जिस का मन जिस पर लगता है उसे उसी वस्तु पर अभिरुचि होती है। मुझे भी दीक्षा लेने की अभिरुचि है, परन्तु उत्कृष्ट वैराग्य न जाने मुझे क्यों नहीं उत्पन्न होता! यह विचार करते हुये राजा मन मे केवलज्ञानी के वचनों को स्मरण करता है। उन्होंने कहा था कि, जब तू चंद्रवती के पुत्र को देखेगा तब तुझे तत्काल ही वैराग्य प्राप्त होगा। परंतु वंध्या स्त्री के समान उसे तो अभी तक पुत्र हुवा ही नहीं, तब मुझे अब क्या करना चाहिये! राजा मन में इन विचारो की बुना उधेड़ी मे लगा हुवा है ठीक उसी समय एक पवित्र पुण्यशाली युवा पुरुष उसके पास आकर नमस्कार कर खड़ा रहा। राजा ने पूछा कि तुम कौन हो? जब वह राजा को उत्तर देने के लिये तैयार होता है उतने मे ही आकाशवाणी होती है कि हे राजन्! सचमुच यह चंद्रवती का पुत्र है। यदि इस मे तुझे संशय हो तो यहां से ईशान कोण में पांच योजन पर एक पर्वत है उस पर एक कदली नामक वन है वहां जाकर यशोमति नामा ज्ञानवती योगिनी को पूछेगा तो वह तुझे इस का सर्व वृत्तांत कह सुनायेगी। ऐसी देववाणी सुनकर साश्चर्य मृगध्वज राजा उस पुरुष को साथ ले पूर्वोक्त वन मे गया। वहां पर पूछने पर योगिनी ने भी राजा से कहा कि हे राजन्! जो तू ने देववाणी सुनी है वह सत्य ही है। इस संसार रूप अटवी का बड़ा महा विकट मार्ग है कि जिसमे तुम्हारे जैसे वस्तुस्वरूप के जानने वाले पुरुष भी उलझन मे पड़ जाते है। इसका वृत्तांत आद्योपांत तुम ध्यान पूर्वक सुनोः—

चंद्रपुरी नगरी में चंद्र समान उज्वल यशस्वी सोमचंद्र नामा राजा की भानुमती नामा रानी की कुक्षी में हेमन्त क्षेत्र से एक युगल (दो जीव) सौधर्म देवलोक मे जाकर वहां के सुख भोग कर वहां से च्यवकर उत्पन्न हुये। नौ मास के बाद एक स्त्री और पुरुष तया जन्म लिया। इन का चंद्रशेखर और चंद्रवती नाम रक्खा गया। अब वे दिनोंदिन वृद्धि को प्राप्त होते हुए यौवन अवस्था को प्राप्त हुये। चंद्रवती को तेरे साथ और चंद्रशेखर को यशोमति के साथ व्याह दिया गया। यद्यपि पूर्वभव के स्नेह भाव से वे दोनों (चंद्रशेखर और चंद्रवती बहन भाई थे तथापि उनमें परस्पर रागबंधन था। धिःक्कार है काम विकार को! जब तुम पहले गांगिल ऋषि के आश्रम में गये थे उस समय तेरी मुख्य रानी चंद्रवती ने चंद्रशेखर को अपना मनोवांछित पूर्ण करने के लिये बुलाया था। वह तो तेरा राज्य ले लेने की बुद्धि से ही आया था, परंतु तेरे पुण्य जल से जैसे अग्नि बुझ जाता है वैसे ही उसका निर्धारित पूरा न होने के कारण अपना प्रयास वृथा समझ कर वह पीछे लौट गया। उस वक्त उन दोनों ने तेरे जैसे विचक्षण मनुष्य को भी नाना प्रकार की वचन युक्तियों से ठंडा

कर दिया, यह बात तू सब जानता ही है । इस के बाद चंद्रशेखर ने कामदेव नामक यक्ष को आराधना की। इस से वह प्रत्यक्ष होकर पूछने लगा कि मुझे क्यो याद किया है ? चंद्रशेखर ने चंद्रवती का मिलाप करा देने को कहा, उस वक्त यक्ष ने उसे अदृश्य होने का अंजन दिया और कहा कि जब तक चन्द्रवती से पैदा हुए पुत्र को मृगध्वज राजा न देखेगा तब तक तुम दोनों को पारस्परिक गुप्त प्रीति को कोई भी न जान सकेगा ! जब चन्द्रवती के पुत्र को मृगध्वज राजा देखेगा उस वक्त तुम्हारी तमाम गुप्त बातें खुली हो जायेंगी। यक्ष के ऐसे वचन सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हो चंद्रशेखर चन्द्रवती के पास गया और बहुत से समय तक गुप्त रीति से उस के साथ कामक्रीड़ा करता रहा। परंतु उस अदृश्य अंजन के प्रभाव से वह तुझे एवं अन्य किसी को भी मालूम न हुवा। चन्द्रशेखर के संयोग से चन्द्रवती को चन्द्रांक नामक पुत्र हुवा तथापि यक्ष के प्रभाव से उस के गर्भ के चिन्ह भी किसी को मालूम न दिये। पैदा होते ही उस बालक को ले जाकर चन्द्रशेखर ने अपनी पत्नी यशोमति को पालने के लिए दे दिया था। उसने भी अपने ही बालक के समान उसका पालन पोषण किया। प्रति दिन वृद्धि को प्राप्त होते हुए चन्द्रांक यौवनावस्था के सन्मुख हुआ। चन्द्रांक के रूप लावण्य से मोहित हो पतिवियोगिनी यशोमति विचारने लगी कि, मेरा पति तो अपनी बहिन चन्द्रवती के साथ इतना आसक्त हो गया कि मेरे लिये उस का दर्शन भी दुर्लभ है । अब मुझे अपने हो लगाये हुये आम्र के फल आप ही खाना योग्य हैं। अतिशय रमणिक चन्द्रांक के साथ क्रीड़ा करने में मुझे क्या दोष है ? इस प्रकार विचार कर विवेक को दूर रख के उसने एक दिन मीठे वचनों से हाव भाव पूर्ण चन्द्रांक से अपना अभिप्राय मालूम किया। यह सुन कर वज्राहत हुये के समान वेदना पूर्ण चन्द्रांक कहने लगा कि माता ! न सुनने योग्य वचन मुझे क्यों सुनाती हो ? यशोमति बोली कि हे कल्याणकारी पुरुष ! मैं तेरी जननी माता नहीं हूं, तुझे जन्म देने वाली तो मृगध्वज राजा की रानी चन्द्रवती है। सत्यासत्य का निर्णय करने में उत्सुक मन वाला यह चन्द्रांक यशोमति का वचन कबूल न करके अपने माता पिता की खोज करने के लिए निकल पड़ा, परन्तु सब से पहले यह आप को ही मिला। दोनो से भ्रष्ट हुई यशोमति पति पुत्र के वियोग से वैराग्य को प्राप्त हो कोई जैन साध्वी का सयोग न मिलने पर योगिनि का वेश धारण कर फिरने वाली मैं स्वयं ही (यशोमति) हूं। सचमुच धिःक्कारने योग्य स्वरूप का विचार करने से मुझे जितना ज्ञान उत्पन्न हुवा है, उससे मैं जानकर कहती हूं कि, हे मृगध्वज राजा ! यह चन्द्रांक जब तुम्हें मिला तब उसी दक्ष यक्ष ने आकाश वाणी द्वारा तुम्हें कहा कि यह तेरा ही पुत्र है तथा तत्संबंधी सत्य घटना विदित कराने के लिये तुझे मेरे पास भेजा है। इसलिये तू सत्य ही समझना कि यह तेरी स्त्री चन्द्रवती के पेट से पैदा होने वाला तेरा ही पुत्र है।

योगिनी के वचन सुनकर राजा को अत्यन्त क्रोध और खेद उत्पन्न हुवा। क्योंकि अपने घर का दुराचार देख कर या सुन कर किसे दुःख नही होता। तदनन्तर राजा को प्रतिबोध देने के लिए योगिनी बोधवचन पूर्ण गीत सुनाने लगी।

गीत

कवण केरा पुत्ता मित्ता, कवण केरी नारी;
मोहे मोह्यो मेरी मेरी, मूढ गणे अविचारी ॥ १ ॥

जाग जागने जोगी हो, जोई ने जोग विचारा; (ये आंकणी)
मेली अमारग मारग आदर, जिमि पामे भव पारा ॥ २ ॥
अति हे गहना अति हे कुडा, अतिहि अथिर संसारा;
भांमो छांडी जोगने मांडी, कीजे जिन धर्म सारा ॥ जाग० ॥ ३ ॥
मोहे[1] मोह्यो[2] कोहे[3] खोह्यो[4] लोहे वाह्यो ध्याये;
मुहिआ[5] बिहु भव अवरा कारण[6] मूरख दुहियो[7] थाये ॥ जाग० ॥ ४ ॥
एकने[8] कारण बेने[9] खेंचे[10] त्रण[11] संचे चार[12] वारे;
पांचे[13] पाले छ[14] ने टाले[15] आपे आप उतारे ॥ जाग० ॥ ५ ॥

ऐसा वैराग्यमय उसका गायन सुन वैराग्यवंत शांत कषाय होकर राजा चन्द्रांक को साथ ले अपनी नगरी के बाह्योद्यान मे (नगर के पास बगीचे में) आया। नगर बाहर ही रहकर संसार से विरक्त राजा ने अपने दोनों पुत्रों तथा प्रधान को बुलवा कर कहा कि, मेरा चित्त अब संसार से सर्वथा उठ गया है और उस से मैं बड़ा पीड़ित हुआ हूं, इसलिये मेरे राज्य की धुरा शुकराजकुमार को सुपुर्द की जाय। अब मैं यहां से ही दीक्षा लेकर चलता बनूंगा। अब मैं राजमहल मे बिल्कुल न आऊंगा। राजा के ये वचन सुनकर मन्त्री वगैरह कहने लगे कि स्वामिन्! आप एक बार राजमहल मे तो पधारो! उसने तो गुनाह नहीं किया है? क्यों कि बंध तो परिणाम से ही होता है, निर्मोही मन वालों के लिये घर भी अरण्य के समान है और मोहवन्त के लिये अरण्य भी घर समान है। राजा लोगों के अत्याग्रह से अपने परिवार सहित तथा चंद्रांक सहित नगर में आया। राजा के साथ चन्द्रांक को वहां आया देख कामदेव यक्ष का कहा हुवा वचन याद आने से अंजन के प्रभाव से कोई भी न देख सके इस प्रकार समय प्रच्छन्नतया चन्द्रवती के पास रहा हुवा चन्द्रशेखर तत्काल ही वहां से अपने प्राण लेकर स्वनगर मे भाग गया। बड़े महोत्सव सहित मृगध्वज राजा ने शुकराज को राज्याभिषेक किया और दीक्षा लेनेके लिये उस की अनुमति ली। अब रात्रिके समय मृगध्वज राजा वैराग्य और ज्ञानपूर्ण बुद्धि से विचार करता है कि कब प्रातःकाल हो और कब मैं दीक्षा अंगीकार करूं। कब वह शुभ समय आवे कि, जब मैं निरतिचार चारित्रवान होकर विचरूंगा, एवं कब वह शुभ घडी और शुभ मुहूर्त आयेगा कि जब मैं संसार में परिभ्रमण कराने वाले कर्मो का क्षय करूंगा। इस प्रकार उत्कृष्ट शुभध्यान के चढते परिणाम से तल्लीन हो राजा किसी ऐसी एक अलौकिक भावना को भाने लगा कि जिसके प्रभाव से प्रातःकालके समय मानो स्पर्धा से ही चार कर्म नष्ट होने पर सूर्योदय के साथ ही उसे अनन्त केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। लोकालोक की समस्त वस्तु को जानने वाले मृगध्वज केवली के केवलज्ञान की महिमा करने वाले देवताओ ने बड़े हर्ष के साथ प्रातःकाल में उन्हें साधू वेष अर्पण किया। यह व्यतिकर सुन कर साश्चर्य और सहर्ष शुकराज आदि

---

१ क्रोध २ दुखी भया, ३ लोभसे ४ लग गया ५ छमत ६ अज्ञानसे, ७ दुखी ८ आत्म शुद्ध करनेके लिये ९ राग द्वेषको १० छोड दो ११ रत्नत्रयी १२ कषाय १३ महाव्रत १४ क्रोध, लोभ, मोह, हास्य, मान, हर्ष, १५ इन अन्तरंग शत्रुओं को टालनेसे।

सब परिवार ने तत्काल आकर केवली महाराज को वन्दन किया। उस वक्त केवली महाराज भी उन्हें अमृत के समान देशना देने लगे कि हे भव्य जीवों! साधु और श्रावक का धर्म ये दोनो संसार रूप समुद्र से पार होने के लिये सेतु (पुल) के समान है। साधु का मार्ग सीधा और श्रावक का मार्ग जरा फेर वाला है। साधु का धर्म कठिन और श्रावक का धर्म सुकोमल है, अतः इन दोनो धर्म (मार्ग) मे से जिस से जो बन सके उसे आत्मकल्याणार्थ अंगीकार करना चाहिये। ऐसी वाणी सुन कर कमलमाला रानी, हंस के समान स्वच्छ स्वभावी हंसराज और चन्द्रांक इन तीनों ने उत्कट वैराग्य प्राप्त कर तत्काल ही उन के पास दीक्षा अङ्गीकार की और निरतिचार चारित्र द्वारा आयु पूर्ण कर मोक्ष मे सिधारे। शुकराज ने भी सपरिवार साधुधर्म पर प्रीति रख कर सम्यक्त्व मूल श्रावक के बारह व्रत अङ्गीकार किये। दुराचारिणी चंद्रवती का दुराचार मृगध्वज केवली और वैसे ही वैरागी चंद्रांक मुनि ने भी प्रकाशित न किया। क्योंकि दूसरे के दूषण प्रकट करनेका स्वभाव भवाभिनंदी (भव बढाने वाले) का ही होता है इसलिये ऐसे वैराग्यवंत और ज्ञानभानु होने पर वे दूसरे के दूषण क्यों प्रगट करें। कहा भी है कि अपनी प्रशंसा और दूसरे की निंदा करना यह लक्षण निर्गुणो का है और दूसरे की प्रशंसा एवं स्वनिंदा करना यह लक्षण सद्गुणो का है। तदनन्तर ज्यों सूर्य अपनी पवित्र किरणों द्वारा पृथ्वी को पावन करता हैं त्यों वह मृगध्वज केवली अपने चरण कमलो से भूमि को पवित्र करते हुए वहां से अन्यत्र विहार कर गये और इन्द्र के समान पराक्रमी शुकराज अपने राज्य को पालन करने लगा। धिक्कार है कामी पुरुषोंके कदाग्रह को! क्यो कि पूर्वोक्त घटना बनने पर भी चन्द्रवती पर अति स्नेह रखने वाला अन्याय शिरोमणि चन्द्रशेखर शुकराज कुमार पर द्रोह करने के लिए अपनी कुल देवी के पास बहुत से कष्ट करके भी याचना करने लगा। देवी ने प्रसन्न होकर पूछा कि, तू क्या चाहता है? उसने कहा कि, मैं शुकराज का राज्य चाहता हूं। तब वह कहने लगी कि शुकराज दृढ़ सम्यक्त्वधारी है, इसलिए जैसे सिंह का सामना मृगी नही कर सकती, वैसे ही मैं भी तुझे उस का राज्य दिलाने के लिये समर्थ नहीं, चन्द्रशेखर बोला तू अचिन्त्य शक्ति वाली देवी है तो बल से या छल से उस का राज्य मुझे जरूर दिला दे। ऐसे अत्यंत भक्ति वाले वचनों से सुप्रसन्न हो देवि कहने लगी कि, छल करके उसका राज्य लेने का एक उपाय है, परंतु बल से लेने का एक भी उपाय नही। यदि शुकराज किसी कार्य के प्रसंग से दूसरे स्थान पर जाय तो उस वक्त तू वहां जाकर उसके सिंहासन पर चढ़ बैठना। फिर मेरी दैविक शक्ति से तेरा रूप शुकराज के समान ही बन जायगा। फिर तू वहां पर सुखपूर्वक स्वेच्छाचारी सुख भोगना। ऐसा कह कर देवि अदृश्य हो गई। चन्द्रशेखर ने ये सब बातें चन्द्रवती को विदित कर दीं। एक दिन शुकराज को शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा जाने की उत्कंठा होने से वह अपनी रानियों से कहने लगा कि, मैं शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा करने के लिए उन मुनियों के आश्रम मे जाता हूं। रानियां बोली–"हम भी आपके साथ आवेंगी, क्योंकि हमारे लिए एक पन्थ दो काज होगा, तीर्थ की यात्रा और हमारे माता पिता का मिलाप भी होगा। तदनंतर प्रधान आदि अन्य किसी को न कह कर अपनी स्त्रियो को साथ ले शुकराज विमान मे बैठकर यात्रा के लिये निकला। यह वृत्तांत चन्द्रवती को मालूम पड़ने से उसने तुरत ही चन्द्रशेखर को विदित किया। अब वह तत्काल ही वहां आकर परकाय प्रवेश विद्या वाले के

समान राज्य सिंहासन पर बैठ गया। रामचन्द्र के समय जैसे चक्रांक विद्याधर का पुत्र साहसगति सुग्रीव बना था वैसे ही इस वक्त चन्द्रशेखर शुकराज रूप बना। चन्द्रशेखर को सब लोग शुकराज ही समझते है। वह एक दिन रात्रो के समय ऐसा पुकार कर उठा अरे सुभटो! जल्दी दौड़ो! यह कोई विद्याधर मेरी स्त्रियो को ले जा रहा है। यह सुनते ही सुभट लोग इधर उधर दौड़ने लगे। परन्तु प्रधान आदि उसी के पास आकर बोलने लगे कि, स्वामिन्! आपकी वे सब विद्याएं कहां गई? उस वक्त वह कृत्रिम शुकराज खेद प्रगट करते हुए बोला –"हा! हा! क्या करूं? इस दुष्ट विद्याधर ने मेरी स्त्रियो के साथ प्राण के समान मेरी विद्याएं भी हरण कर लीं। उस वक्त उन्होने कहा कि महाराज! आपकी स्त्रियो सहित विद्याएं गई तो खैर जाने दो आपका शरीर कुशल है तो बस है। इस प्रकार के कपटो द्वारा उसने सारे राजमंडल को अपने वश कर लिया। और चन्द्रवती के साथ पूर्ववत् कामक्रीडा करने लगा।

कितने एक दिनों के बाद शुकराज तीर्थ यात्रा कर रास्ते मे लौटते हुये अपने श्वसुर वगैरह से मिल कर पीछा स्त्रियो सहित अपने नगर के उद्यान में आया। इस समय अपने किये हुए कुकर्म से शका युक्त चन्द्रशेखर अपने गवाक्ष मे बैठा था। वह असलो शुकराज को आते देख कर कपट से अकस्मात् व्याकुल बन कर पुकार करने लगा कि, अरे सुभटो! प्रधान! सामन्तो! यह देखो! जो दुष्ट मेरी विद्याओ और स्त्रियो का हरण कर गया है, वही दुष्ट विद्याधर मेरा रूप बना कर मुझे उपद्रव करने के लिये आ रहा है। इसलिये तुम उसके पास जल्दी जाओ और उसे समझा कर पीछा फेरो। क्योंकि कोई कार्य सुसाध्य होता है और दुःसाध्य भी होता है। इसलिए ऐसे अवसर पर तो बड़े यत्न से या युक्ति से ही लाभ उठाया जा सकता है। उसने प्रधानादि को पूर्वोक्त वचन कहकर उसके सामने भेजा। मंत्री सामन्तो को सामने आता देख असली शुकराज ने अपने मन मे विचार किया कि ये सब मेरे सन्मान के लिए आ रहे हैं तब मुझे भी इन्हें मान देना उचित है। इस विचार से वह अपने विमान में से नीचे उतर वह एक आम्र वृक्ष के तले जा बैठा उसके पास जाकर प्रधानादि पुरुष वंदन स्तवना कर कहने लगे कि "हे विद्याधर! वाद कारक के समान अब आपकी विद्याशक्ति को रहने दो। हमारे स्वामी की विद्या और स्त्रियो को भी आप ही हरण कर गये हैं। इस के विषय मे हम इस समय आपको कुछ नहीं कहते इसलिये अब आप हम पर दया करके तत्काल ही अपने स्थान पर चले जाओ। क्या ये किसी भ्रम में पड़े हैं? या बिलकुल शून्य चित्त बने हैं? या किसी भूत प्रेत पिशाच आदि से छले गये हैं? ऐसे अनेक प्रकार के संकल्प विकल्प करता हुआ विस्मय को प्राप्त हो शुकराज कहने लगा कि "अरे प्रधान! मैं स्वयं ही शुकराज हूं। तू मेरे सामने क्या बोल रहा है"? प्रधान बोला–"क्या मुझे भी ठगना चाहते हो? मृगध्वज राजा के वंशरूप सहकार मे रमण करने वाला शुकराज (तोता) के समान हमारा स्वामी शुकराज राजा तो इस नगर में रहे हुये राजमहल मे विराजता है और आप तो उसी शुकराज का रूप धारण करने वाले कोई विद्याधर हो। अधिक क्या कहें परन्तु असली शुकराज तो बिल्ली को देख कर ज्यों तोता भय पाता है वैसे ही तुम्हारे दर्शन मात्र का भी भय रखता है। इसलिये हे विद्याधर श्रेष्ठ! अब बहुत हो चुका, आप जैसे आये हो वैसे ही अपने स्थान पर चले जाओ"।

प्रधान के ऐसे वचन सुनकर ज़रा चित्त में दुःखित हो शुकराज विचारने लगा कि सचमुच ही कोई मेरा रूप धारण कर शून्य राज्य का स्वामी बन बैठा है। राज्य, भोजन, शय्या, सुंदरस्त्री, सुंदर महल और धन, इतनी वस्तुओं को शास्त्रों में सूनी छोड़ने की मनाई की है। क्योंकि इन वस्तुओं के सूनी रहने पर कोई भी जबर्दस्त दबाकर उन का स्वामी बन सकता है। खैर अब मुझे क्या करना चाहिये ? अब तो इसे मारकर अपना राज्य पीछा लेना योग्य है। यदि मैं ऐसा न करूं तो लोक में मेरा यह अपवाद होगा कि, मृगराज के पुत्र शुकराज को किसी क्रूर पापिष्ठ मनुष्य ने मार कर उस का राज्य स्वयं अपने बल से ले लिया है। यह बात मुझ से किस तरह से सुनी जायगी। अब सचमुच ही बड़े विकट संकट का समय आ पहुंचा है। मैंने और मेरी स्त्रियों ने अनेक प्रकारसे समझा कर बहुतसी निशानियां बतलाईं तथापि प्रधानने एक भी नहीं सुनी। आश्चर्य है उस कपटी के कपट जाल पर ! मन में कुछ खेद युक्त विचार करता हुवा अपने विमान में बैठ आकाशमार्ग से शुकराज कहीं अन्यत्र चला गया। यह देख नगर में रहे हुए बनावटी शुकराज को प्रधान कहने लगा कि, स्वामिन् ! वह कपटी विद्याधर विमानमें बैठ कर पीछे जा रहा है। यह सुन कर वह कामतृषातुर अपने चित्त में बड़ा प्रसन्न हुवा। इधर उदास चित्त वाला असली शुकराज जंगलों में फिरने लगा। उसे उस की स्त्रियों ने बहुत ही प्रेरणा की तथापि वह अपने श्वसुर के घर न गया। क्योंकि दुःख के समय विचारशील मनुष्यों को अपने किसी भी सगे सम्बन्धी के घर न जाना चाहिये और उसमें भी श्वशुर के घर तो बिना आडम्बर के जाना ही न चाहिये। ऐसा नीतिशास्त्र में लिखा है। कहा है कि,—

> सभायां व्यवहारे च वैरिषु श्वशुरौकसि।
> आडंबराणि पूज्यंते स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥ १ ॥

सभा में, व्यापारियों में, दुश्मनों में, श्वशुर के घर, स्त्रीमण्डल में और राजदरबार मे आडम्बर से ही मान मिलता है।

शून्य जंगल के वास में यद्यपि विद्या के बल से सर्व सुख की सामग्री तयार कर ली है, तथापि अपने राज्य की चिन्ता में शुकराज ने छह मास महा दुःख में व्यतीत किये। आश्चर्य की बात है कि, ऐसे महान पुरुषों को भी ऐसे उपद्रव भोगने पड़ते हैं। किस मनुष्य के सब दिन सुख में जाते हैं ?

> कस्य वक्तव्यता नास्ति को न जातो मरिष्यति।
> केन न व्यसनं प्राप्तं कस्य सौख्यं निरंतरं ॥ १ ॥

कथन करना किसे नहीं आता, कौन नहीं जन्मता, कौन न मरेगा, किसे कष्ट नहीं है और किसे सदा सुख रहता है ?।

एक दिन सौराष्ट्र देश में विचरते हुये आकाशमार्ग में एकदम शुकराज कुमार का विमान अटका। इस से वह एकदम नीचे उतरा और चलते हुये विमान के अटकने का कारण ढूंढने लगा उस समय वहां पर देवताओं से रचित सुवर्णकमल पर बैठे हुये शुकराजकुमार ने अपने पिता मृगध्वज केवली महात्माको देखा। उसने

तत्काल ही भक्तिभाव पूर्वक नमस्कार कर उन्हें अपना सर्व वृत्तांत कह सुनाया। केवली महाराज ने कहा—"यह सब कुछ पूर्वभव के पाप कर्म का विपाकोदय होने से ही हुवा है।" मुझे किस कर्म का विपाकोदय हुवा है? यह पूछने पर ज्ञानी गुरु बोले—तू सावधान होकर सुन—

पहले तेरे जितारी के भव से भी पूर्व में किसी भवमें तू भद्रक प्रकृतिवान और न्यायनिष्ठ श्री नामक गांव में ग्रामाधीश एक ठाकुर था, तुझे तेरे पिता ने अपना छोटा राज्य समर्पण किया था। तेरा आतंकनिष्ठ नामक एक सौतिला छोटा भाई था, वह प्रकृति से बड़ा क्रूर था, उसे कई एक गांव दिये गए थे। अपने गांवसे दूसरे गांव जाते हुए एक समय आतंकनिष्ठ तुझे तेरे नगर में मिलने के लिए आया। तू ने उसे प्रेम पूर्वक बहुमान दे कितने एक समय तक अपने पास रक्खा। एक दिन प्रसंगोपात हंसी में ही तू ने उसे कहा कि, तू कैसा कैदीके समान मेरे पास पकड़ाया है, अब तुझे मेरे रहते हुए राज्यकी क्या चिंता है? अभी तू यहां ही रह! क्योंकि बड़े भाई के बैठे हुए छोटे भाई को क्लेश कारक राज्य की खटपट किस लिए करना चाहिए? सौतेले भाई के पूर्वोक्त वचन सुनते ही वह भीरु होने के कारण मन में विचारने लगा कि, अरे! मेरा राज्य तो गया! हा! हा! बड़ा बुरा हुआ कि जो मैं यहां पर आया। हाय अब मैं क्या करूंगा? मेरा राज्य मेरे पास रहेगा या सर्वथा जाता ही रहेगा! इस प्रकार आकुल व्याकुल होकर वह बार २ उस बड़े भाई के पास अपने गांव जाने की आज्ञा मांगने लगा। जब उसे स्वस्थान पर जाने की आज्ञा मिली उस वक्त वह प्राणदान मिलने समान मानकर वहां से शीघ्र ही अपने गांव तरफ चल पड़ा। जिस वक्त तू ने उसे पूर्वोक्त वचन कहे उस समय पूर्वभव में तू ने यह निकाचित कर्मबंधन किया था। बस उसी के उदय से इस समय तेरा राज्य दूसरे के हाथ गया है। जिस तरह वानर छलांग चूकने से दीन बन जाता है वैसे ही प्राणी भी संसारी क्रिया कर कर्मबंधन करता है और वह उस वक्त बड़ा गर्वित होता है परन्तु जब उस कर्मबंध का उदय आता है तब सचमुच ही वह दीन बन जाता है।

यद्यपि उस चन्द्रशेखर राजा का तमाम दुराचरण सर्वज्ञ महात्मा जानते थे तथापि न पूछने के कारण उन्होंने इस विषय में कुछ भी न कहा। बालक के समान अपने पिता मृगध्वज केवली के पैरों में पड़ कर शुकराज कहने लगा—"हे स्वामिन्! आपके देखते हुए यह राज्य दूसरे के पास किस तरह जाय! धन्वंतरी वैद्य के मिलने पर रोग का उपद्रव किस तरह टिक सकता है? आंगन में कल्पवृक्ष होने पर घर में दरिद्रता किस प्रकार रह सकती है? सूर्योदय होने पर क्या अंधकार रह सकता है? इसलिए हे भगवान्! कोई ऐसा उपाय बतलाओ कि जिस से मेरा कष्ट दूर हो। ऐसी अनेक प्रार्थनायें करने पर केवली बोले—"चाहे जैसा दुःसाध्य कार्य हो तथापि वह धर्मक्रिया से सुसाध्य बन सकता है, इसलिए यहां पर नजदीक में ही विमलाचल नामा तीर्थ पर विराजमान श्री ऋषभदेव स्वामी की भक्ति सहित यात्रा करके उसी पर्वत की गुफा में सर्व कार्यों की सिद्धि करने में समर्थ पंचपरमेष्ठी नमस्कार मंत्र का षट मास तक ध्यान कर! इससे तेरे शत्रु का कपट जाल खुला हो जाने से वह अपने आपही दूर हो जायगा। गुफा में रह कर ध्यान करते समय जब तुझे विस्तृत होता हुवा तेज पुंज कपटतया मालूम दे उस वक्त तू अपना कार्य सिद्ध हुवा समझना। दुर्जय शत्रु को भी जीतने

का यही उपाय है। जैसे अपुत्र मनुष्य पुत्र प्राप्ति की वात सुन कर वड़ा प्रसन्न होता है वैसे शुकराज भी साधु महाराज के वचन सुनकर वड़ा प्रसन्न हुवा। तदनन्तर वह उन्हें विनय पूर्वक वंदन कर विमान पर बैठ कर विमलाचल तीर्थ पर गया। वहां प्रथम उसने तीर्थनायक श्री ऋषभदेव स्वामी की भक्तिभाव पूर्वक यात्रा की। तत्पश्चात् ज्ञानी गुरु के कथन किये मुजव महिमावंत नवकार मंत्र का जाप शुरू किया। योगियों के समान निश्चलवृत्ति से उसने छह महीने तक परमेष्टी मंत्र का जाप किया, इस से उसके आस पास विस्तार को प्राप्त होता हुवा तेज पुंज प्रकट हुवा। ठीक इसी अवसर पर चन्द्रशेखर की गोत्र देवी उसके पास आकर कहने लगी कि हे चन्द्रशेखर! अव वहुत हुआ, अव तू अपने स्थान पर चला जा! क्योंकि मेरे प्रभाव से जो तेरा शुकराज के समान रूप बना हुवा है अव उसे वैसा रखने के लिए मैं समर्थ नहीं हूं। अव मैं स्वयं ही निःशक्त वन जाने से मेरे स्थान पर चली जाती हूं। यदि अव तू शीघ्र ही अपने स्थान पर न चला जायगा तो तत्काल ही तेरा मूल रूप वन जायगा। ऐसा कह कर जव देवी पीछे लौटती है उतने में ही उस का स्वाभाविक रूप वन गया। देवी के वचन सुन कर चंद्रशेखर लक्ष्मी से भ्रष्ट हुए मनुष्य के समान हर्ष रहित चिंता निमग्न हुवा। अव वह अपने पाप को छिपाने के लिये चोर के समान जव वहां से भागता है ठीक उसी समय शुकराज वहां पर आ पहुचा। पहले शुकराज के ही समान असली शुकराज का रूप देख कर दीवान वगैरह उसे वहुमान देकर उसके विशेष स्वरूप से वाकिफगार न होने पर भी सहर्ष विचारने लगे कि, सचमुच कोई कपट से ही वह इस शुकराज का रूप धारण करके आया हुवा था, इसी से अव डर कर भाग गया।

शुकराजको अपना राज्य मिलने पर निश्चिन्त हो वह पूर्ववत् अपने प्रजाके पालन करनेमें लग गया। शत्रुंजय के सेवन का फल प्रत्यक्ष देख कर राज्य करते हुए वह इंद्र के समान संपदावान् वनकर दैविक कांति वाला नये वनाये हुये विमान् के आडंवर सहित सर्व सामंत, प्रधान, विद्याधर, वगैरह के वड़े परिवार मंडल को साथ लेकर महोत्सव पूर्वक विमलाचल तीर्थ पर यात्रा करने को आया। उस के साथ मनमे यह समझता हुवा कि मेरा दुराचार किसी को भी मालूम नहीं है ऐसा सदाचार सेवन करता हुवा शंकारहित हो चंद्रशेखर भी विमलाचल की यात्रा के लिए आया था। शुकराज सिद्धाचल आकर तीर्थनायक की वंदना, स्तवना एवं पूजा महोत्सव करके सवके समक्ष वोलने लगा कि, इस तीर्थ पर पंच परमेष्टी का ध्यान धरने से मैंने शत्रुओं पर विजय प्राप्तकी। इसलिए इस तीर्थका शत्रुंजय यह नाम सार्थक ही है और इसी नामसे यह तीर्थ महा महिमावंत होगा। इसके वाद यह तीर्थ इस नाम से पृथवी पर वहुत ही प्रसिद्धि को प्राप्त हुवा है। ऐसे अवसर पर चंद्रशेखर भी शांत परिणाम से तीर्थनायक को देख कर रोमांचित हो अपने किये हुये कपट और पाप की निंदा करने लगा। वहां पर उसे महोदय पद धारी मृगध्वज केवली महाराज मिले। उसने उनसे पूछा कि हे स्वामिन्! किसी भी प्रकार मेरा कर्म से छुटकारा होगा या नहीं? केवली महाराज ने कहा कि यदि इस तीर्थ पर मन वचन कायाकी शुद्धि से आलोचना ले पश्चात्ताप करके वहुत सा तप करेगा तो तेरे भी पाप कर्म तीर्थ की महिमा से नष्ट होंगे। कहा है कि—

जन्मकोटिकृतमेकहेलया, कर्म तीव्रतपसा विलीयते ॥

किं न दाह्यमति बह्वपि क्षणादुच्चिल्खेन शिखिनात्र दह्यते ॥ १ ॥

तीव्र तप करने से करोड़ों भवों के किये हुये पाप कर्म नष्ट हो जाते हैं। क्या प्रचंड अग्नि की ज्वाला में बड़े बड़े लक्कड़ नहीं जल जाते?

यह वचन सुन कर उसी मृगध्वज केवली के पास अपने सर्व पापों की आलोचना (प्रायश्चित्त) ले मास क्षपण आदि अति घोर तपस्या कर के चंद्रशेखर उसी तीर्थ पर सिद्धि गति को प्राप्त हुवा।

निष्कंटक राज्य भोगता हुवा परमार्हत् (शुद्ध सम्यक्त्व धारी) पुरुषों में शुकराज एक दृष्टांत रूप हुवा। उसने बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकार के शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। रथयात्रा, तीर्थयात्रा, संघयात्रा, एवं तीन प्रकार की यात्रा उसने बहुत ही बार की। और साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका एवं चार प्रकारके श्रीसंघ की भी समय समय पर उसने खूब ही भक्ति की। धर्मकरणी से समय निर्गमन करते हुये उसे प्रभावती पटरानी की कुक्षी से पद्माकर नामक और वायुवेगा लघु रानी की कुक्षी से वायुसार नामा पुत्र की प्राप्ति हुई। ये दोनों कृष्ण के पुत्र सांब और प्रद्युम्न कुमार के समान अपने गुणोंसे शुकराज के जैसे ही पराक्रमी हुवे। एक दिन शुकराजने पद्माकर को राज्य और वायुसार को युवराज पद समर्पण किया। तदनंतर दोनों रानियों सहित दीक्षा लेकर भाव शत्रु का जय और चित्तको स्थिर करनेके लिए वह शत्रुंजय तीर्थपर आया। परन्तु आश्चर्य है कि वह महात्मा शुकराज ज्यों गिरिराज पर चढ़ने लगा त्यों शुक्लध्यान के उपयोग से क्षपकश्रेणि रूप सीढ़ी पर चढ़ते चढ़ते ही केवलज्ञान को प्राप्त हुवा। अब बहुत काल तक पृथ्वी पर विचरते हुए अनेक प्राणियों के अज्ञान और मोहरूप अन्धकार को दूर करके अनुक्रम से दोनों साध्वियों सहित शुकराज केवली ने मोक्षपद को प्राप्त किया।

१ भद्रप्रकृति, २ न्यायमार्गरति, ३ विशेष निपुणमति, ४ दृढ़निजवचनस्थिति, इन चार गुणों को प्रथम से ही प्राप्त करके सम्यक्त्व रोहण कर शुकराज ने उसका निर्वाह किया। जिस से वह अंत में सिद्धि गति को प्राप्त हुवा।

यह आश्चर्य कारक शुकराज का चरित्र सुन कर हे भव्य प्राणियों! पूर्वोक्त चार गुण पालन करने में उद्यमवंत बनो!

॥ इति शुकराज कथा समाप्त ॥

श्रावक का स्वरूप (मूल ग्रन्थ ४ थी गाथा)

नामाई चउभेओ। सड्ढा भावेण इथ्थ अहिगारो॥
तिविहो अ भावसड्ढो। दंसण वय उत्तरगुणेंहिं॥ ४॥

श्रावक चार प्रकार के हैं। १ नाम श्रावक, २ स्थापना श्रावक, ३ द्रव्य श्रावक, ४ भाव श्रावक, ये चार निक्षेपे गिने जाते हैं।

१ नाम श्रावक—जो अर्थशून्य हो यानी जिस का जो नाम रक्खा हो उस में उस के विपरीत ही गुण हों, अर्थात् नामानुसार गुण न हों, जैसे कि लक्ष्मीपति नाम होते हुए भी निर्धन हो, ईश्वर नाम होते हुवे भी वह स्वयं किसी दूसरे का नौकर हो, इस प्रकार केवल नामधारी श्रावक समझना। इसे नाम निक्षेप कहते हैं।

२ स्थापना श्रावक—किसी गुणवंत श्रावक की काष्ट या पाषाणादि की प्रतिमा या मूर्ति जो बनाई जाती है उसे स्थापना श्रावक कहते हैं। यह स्थापना निक्षेप गिना जाता है।

३ द्रव्य श्रावक—श्रावक के गुण तथा उपयोग से शून्य। जैसे कि चंडप्रद्योतन राजा ने जाहिर कराया था कि, जो कोई अभयकुमार को बांध लावेगा उसे मुंह मांगा इनाम दिया जायगा। एक वेश्याने यह बीड़ा उठाकर विचार किया कि, अभयकुमार शुद्ध श्रावक होने के कारण वह उसी प्रकार के प्रयोग बिना अन्य किसी भी प्रकार से न ठगा जायगा, यह विचार कर उसने श्राविका का रूप धारण कर अभयकुमार के पास जाकर कितनी एक श्राविका की करणी की और अंतमें उसे अपने कब्जे किया। इस संबंध में वेश्याने श्रावक का आचार पालन किया परंतु सत्य स्वरूप समझे बिना बाह्य क्रिया द्वारा दूसरे को ठगने के लिए पाला था, इस से वह दंभपूर्ण आचार उसे निर्जरा का कारण रूप न बन कर उलटा कर्मबंधन का हेतु हुवा। इसे 'द्रव्य-श्रावक' समझना चाहिए। यह द्रव्य निक्षेप गिना जाता है।

४ भावश्रावक—परिणाम शुद्धि से आगम सिद्धांत का जानकार (नवतत्त्व के परिज्ञानवंत) तथा चौथे गुणस्थान से लेकर पांचवें गुणस्थान तक के परिणाम वाला ऐसा भावश्रावक समझना। यह भावनिक्षेप गिना जाता है।

जैसे नाम गाय होने पर उस से दूध नहीं मिलता और नाम शर्करा होने पर मिठास नहीं मिलती, वैसे ही नाम श्रावकपन से कुछ भी आत्मा की सिद्धि नहीं होती। एवं श्रावक की मूर्ति या फोटो (स्थापना निक्षेपा) हो तो भी उस से उस के आत्मा को कुछ फायदा नहीं होता तथा द्रव्य श्रावक से भी कुछ आत्मकल्याण नहीं होता। इसलिये इस ग्रन्थ में भावश्रावक का अधिकार कथन किया जायगा।

भावश्रावक के तीन भेद हैं। १ दर्शनश्रावक, २ व्रतश्रावक, और ३ उत्तरगुणश्रावक।

१ दर्शन श्रावक—मात्र सम्यक्त्वधारी, चतुर्थ गुणस्थानवर्ती, श्रेणिक तथा कृष्ण जैसे पुरुष समझना।

२ व्रत श्रावक—सम्यक्त्वमूल स्थूल अणुव्रत धारी। (पांच अणुव्रत धारण करने वाला १ प्राणातिपात त्याग, २ असत्य त्याग, ३ चोरी त्याग, ४ मैथुन त्याग, ५ परिग्रह त्याग, ये पांचों स्थूलतया त्यजे हैं।

इसलिए इन्हें अणुव्रत कहते हैं और इसके त्यागने वाले को व्रतश्रावक कहते हैं) इस व्रतश्रावक के संबंध में सुन्दरकुमार सेठ की पांच स्त्रियों का वृत्तांत जानने योग्य होने से यहां दृष्टांत रूप दिया जाता है।

एक समय सुन्दरकुमार शेठ अपनी पांचों स्त्रियों की परीक्षा करने के लिए गुप्त रहकर किसी छिद्र में से उनके चरित्र देखता था। इतने में ही गोचरी फिरता हुवा वहां पर एक मुनि आया। उसने उपदेश करते हुए स्त्रियों से कहा कि यदि तुम हमारे पांच वचन अंगीकार करो तो तुम्हारे सब दुःख दूर होंगे। (यह बात गुप्त रहे हुए सुन्दर सेठ ने सुनी। इसलिए वह मनमें विचार करने लगा कि, यह तो कोई उलुंठ मुनि मालूम पड़ता है, क्योंकि जब मेरी स्त्रियों ने अपना दुःख दूर होने का उपाय पूछा तब यह उन्हें वचन में बांध लेना चाहता है। इसलिए इस उलुंठ को मैं इसके पांचों अंगों में पांच २ दंडप्रहार करूंगा) स्त्रियों ने पूछा कि-"महाराज आप कौन से पांच वचन अंगीकार कराना चाहते हैं?" मुनि ने कहा—"पहला तुम्हें किसी भी त्रस (हल चल सकने वाले) जीव को जीवनपर्यंत नहीं मारना, ऐसी प्रतिज्ञा करो। उन पांचो स्त्रियों ने यह पहला व्रत अंगीकार किया। (यह जान कर सुन्दरकुमार विचारने लगा कि यह तो कोई उलुंठ नहीं मालूम देता, यह तो कोई मेरी स्त्रियों को कुछ अच्छी शिक्षा दे रहा है। इस से तो मुझे भी फ़ायदा होगा, क्योंकि प्रतिज्ञा के लिए ये स्त्रियां किसी समय भी मुझे मार न सकेंगी। अतः इस से इस ने मुझ पर उपकार ही किया है। इसके बदले में मैंने जो इसे पांच दंड प्रहार करने का निश्चय किया है उनमें से एक २ कम कर दूंगा यानी चार चार ही मारूंगा) मुनि बोला—दूसरा तुम्हें कदापि झूठ न बोलना चाहिये ऐसी प्रतिज्ञा लो! उन्होंने यह मंजूर किया। (इस समय भी सेठ ने पूर्वोक्त युक्ति पूर्वक एक एक दंडप्रहार कम करके तीन तीन ही मारने का निश्चय किया) मुनि बोला कि "तीसरे तुम्हें किसी भी प्रकार की चोरी न करना ऐसी प्रतिज्ञा लेनी चाहिए।" यह भी प्रतिज्ञा स्त्रियों ने मंजूर की। (तब सुन्दरकुमार ने एक २ प्रहार कम कर दो दो मारने के बाकी रक्खे)। मुनि ने शीलव्रत पालने की प्रतिज्ञा के लिए कहा सो भी स्त्रियों ने स्वीकार किया। (यह सुनकर सेठ ने एक २ कम करके फक्त एक २ ही मारने का निश्चय किया)। परिग्रह परिमाण करने के लिए मुनिराज ने फर्माया उन्होंने सो भी अंगीकार किया। (सुन्दरकुमार सेठने शेष रहे हुए एक २ प्रहार को भी इस वक्त बंद किया)। इस प्रकार मुनिराज ने सेठ की पांचों स्त्रियों को पांचों व्रत ग्रहण कराये जिससे उनके पति ने पांचों दण्डप्रहार बंद किये। सुन्दरकुमार सेठ अंत में विचार करने लगा कि हा! हा! मैं कैसा महा पापी हूं कि अपने पर उपकार करने वाले का ही घात चिंतन किया। इस प्रकार पश्चात्ताप करता हुवा वह तत्काल ही मुनि के पास आया और नमस्कार कर अपना अपराध क्षमा कराकर पांचों स्त्रियों सहित संयम ले स्वर्ग को सिधारा।

इस दृष्टांत में सारांश यह है कि, पांचों स्त्रियों ने व्रत अंगीकार किए। उस से उन के पति ने भी व्रत लिये। इस तरह जो व्रत अंगीकार करे उसे व्रतश्रावक समझना चाहिये।

उत्तरगुण श्रावक—व्रत श्रावक के अधिकार में बतलाए मुजब पांच अणुव्रत, छठा परिमाणव्रत, सातवां भोगोपभोग व्रत आठवां अनर्थदंड परिहार व्रत, (ये तीन गुणव्रत कहलाते हैं) नवमां सामायिक व्रत दसवां देशावकाशिक व्रत, ग्यारहवां पौषधोपवास व्रत, बारहवां अतिथिसंविभाग व्रत, (ये चारों शिक्षाव्रत

कहलाते हैं) यानी पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत एवं सम्यक्त्व सहित बारह व्रतों को धारण करे वह सुदर्शन के समान उत्तरगुणश्रावक कहलाता है।

अथवा ऊपर कहे हुए बारह व्रतों में से सम्यक्त्व सहित एक, दो अथवा इस से अधिक चाहे जितने व्रत धारण करे उसे भी व्रतश्रावक समझना और उत्तरगुणश्रावक को निम्न लिखे मुजब समझना।

सम्यक्त्व सहित बारह व्रतधारी, सर्वथा सचित्त परिहारी, एकाहारी, (एक बार भोजन करने वाला) तिविहार, चौविहार, प्रत्याख्यान करने वाला, ब्रह्मचारी, भूमिशयनकारी, श्रावक की ग्यारह प्रतिमा* धारण करने वाला एवं अन्य भी कितने एक अभिग्रह के धारण करने वाला उत्तरगुणश्रावक कहलाता है। आनंद कामदेव और कार्तिक सेठ जैसे को उत्तरगुणश्रावक समझना।

व्रत श्रावक में विशेष बतलाते हैं कि, द्विविध यानी करूं नहीं कराऊं नहीं, त्रिविध यानी मन से, वचन से और शरीर से, इस प्रकार भङ्ग की योजना करते हुए एवं उत्तरगुण अविरति के भङ्ग से योजना करने से एक संयोगी, द्विकसंयोगी, त्रिकसंयोगी और चतुष्क संयोगी, इस तरह श्रावक के बारह व्रतों के मिलकर नीचे मुजब भङ्ग (भांगा) होते हैं।

तेरस कोडी सयाइं। चुलसीइ जुयाइं बारसय लक्खा॥
सत्तासीइ सहस्सा। दुन्नि सया तह दुरगाय॥

तेरहसो चौरासी करोड़, बारहसौ लाख सत्ताइस हजार दो सौ और दो भांगें समझना चाहिए। यहां पर किसी को यह शङ्का उत्पन्न हो सकती है कि मन से, वचन से, काया से, न करूं, न कराऊं, न करते की अनुमोदना करूं! ऐसे नव कोटिका भङ्ग उपर किसी भी भङ्ग में क्यों नहीं बतलाया? उसके लिये यह उत्तर है कि श्रावक को द्विविध त्रिविध भङ्ग से ही प्रत्याख्यान होता है, परन्तु त्रिविध त्रिविध भङ्ग से नहीं होता क्योंकि व्रत ग्रहण किए पहिले जो जो कार्य जोड़ रक्खें हों तथा पुत्र आदि ने व्यापार में अधिक लाभ प्राप्त किया हो एवं किसी ने ऐसा बड़ा अलभ्य लाभ प्राप्त किया हो तो श्रावक से अन्तजल्प रुप अनुमोदन हुए बिना नही रहता, इसीलिये त्रिविध २ भङ्ग का निषेध किया है। तथापि 'श्रावक प्रज्ञप्ति' ग्रन्थ मे त्रिविधत्रिविध श्रावक के लिये प्रत्याख्यान कहा हुवा है, परन्तु वह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आश्रयी विशेष प्रत्याख्यान गिनाया हुवा है। महाभाष्य में भी कहा है कि—

केइ भणंति गिहिणो। तिविहं तिविहेण नत्थि संवरणं॥
तं न जओ निद्दिट्ठं। पन्नत्तीए विसेसाओ॥ १॥

---

* श्रावक की प्रतिमा याने श्रावकपन मे उत्कृष्ट रीति से वर्तना, (प्रतिमा समान रहना) उसके ग्यारह प्रकार हैं। १ समकित प्रतिमा, २ व्रतप्रतिमा, ३ सामायिकप्रतिमा, ४ पौषधप्रतिमा, ५ कायोत्सर्गप्रतिमा, ६ अब्रह्मवर्जकप्रतिमा (ब्रह्मचर्यव्रत-पालना) ७ सचित्त वर्जक प्रतिमा (सचित्त आहार न करे), ८ आरम्भ वर्जक प्रतिमा, ९ प्रेष्य वर्जक प्रतिमा, १० उद्दिष्ट वर्जक प्रतिमा, ११ श्रमणभूत प्रतिमा।

कितनेक आचार्य ऐसा कहते हैं कि गृहस्थों के लिये त्रिविध २ प्रत्याख्यान नहीं हैं। परन्तु श्रावकपन्नत्ती में नीचे लिखे हुये कारण से श्रावक को त्रिविध २ प्रत्याख्यान करने की जरूरत पड़े तो करना कहा है।

पुत्ताइ संतति निमित्त। मत्तमेक्कारसिं पवण्णस्स।
जंपंति केइ गिहिणो। दिक्खाभि मुहस्स तिविहंपि ॥ २ ॥

कितनेक आचार्य कहते हैं कि ग्रहस्थ को दीक्षा लेने की इच्छा हुई हो परन्तु किसी कारण से या किसी के आग्रह से पुत्रादिक सन्तति को पालन करने के लिये यदि कुछ काल विलम्ब करना पड़े तो श्रावक की ग्यारहवीं प्रतिमा धारण करे उस वक्त बीच कारण में-जो कुछ भी त्रिविध २ प्रत्याख्यान लेना हो तो लिया जा सकता है।

जइकिंचि दप्पओअण। मप्पप्पवा विसेसीउवथ्थुं ॥
पचक्खेज्जन दोसो। सयंभूरमणादि मच्छुव्व ॥ ३ ॥

जो कोई अप्रयोजनीय वस्तु यानी कौवे वगैरह के मांस भक्षण का प्रत्यख्यान एवं अप्राप्य वस्तु जैसे कि मनुष्य क्षेत्र से बाहर रहे हुये हाथियों के दांत या वहां के चीते प्रमुख का चर्म उपयोग में लेने का, स्वयंभूरमण समुद्र में उत्पन्न हुवे मच्छों के मांस का भक्षण करने का प्रत्याख्यान यदि त्रिविध २ से करे तो वह करने की आज्ञा है क्योंकि यह विशेष प्रत्याख्यान गिना जाता है, इसलिए वह किया जा सकता है। आगम में अन्य भी कितनेक प्रकार के श्रावक कहे हैं।

"श्रावक के प्रकार"।

स्थानांग सूत्र में कहा है कि—

चउव्विहा समणोवासगा पन्नत्ता तंजहा ॥
१ अम्मापिइसमाणे २ भायसमाणे ३ मित्तसमाणे ४ सव्वत्तिसमाणे ॥

१ माता पिता समान—यानी जिस प्रकार माता पिता पुत्र पर हितकारी होते हैं वैसे ही साधु पर हितकर्ता २ भाई समान—यानी साधु को भाई के समान सर्व कार्य में सहायक हो। ३ मित्र समान—यानी जिस प्रकार मित्र अपने मित्र से कुछ भी अंतर नहीं रखता वैसे ही साधु से कुछ भी अन्तर न रखे और ४ शोक समान:- यानी जिस प्रकार सौत अपनी सौत के साथ सब बातों में ईर्षा ही किया करती है वैसे ही सदैव साधु के छल छिद्र ही ताकता रहे।

अन्य भी प्रकारांतर से श्रावक चार प्रकार के कहे हैं—

चउव्विहासमणो वासगा पन्नत्ता तंजहा ॥
१ आयंससमाणे २ पडागसमाणे ३ थाणुसमाणे ४ खरंटयसमाणे ॥

१-दर्पण समान श्रावक—जिस तरह दर्पण में सर्व वस्तु सार देख पड़ती है वैसे ही साधु का उपदेश सुनकर

अपने चित्तमें उतार ले। २ पताका समान श्रावक—जिस प्रकार पताका पवनसे हिलती रहती है वैसे ही देशना सुनते समय भी जिसका चित्त स्थिर न हो। ३ खानसमान श्रावक—खूंटे जैसा, जिस प्रकार गहरा खूंटा गाडा हुवा हो और वह खींचने पर बड़ी मुश्किल से निकल सकता है वैसे ही साधु को किसी ऐसे कदाग्रह मे डाल दे कि, जिसमे से पीछे निकलना बड़ा मुश्किल हो और ४ खरंटक समान श्रावक—यानी कंटक जैसा अपने कदाग्रह को (हठ को) न छोड़े और गुरू को दुर्वचन रूप कांटों से बींध डाले।

ये चार प्रकार के श्रावक किस नय में गिने जा सकते हैं ? यदि कोई यह सवाल करे तो उसे आचार्य उत्तर देते हैं कि व्यवहार नय के मत से श्रावक का आचार पालने के कारण ये चार भावश्रावकतया गिने जाते हैं, और निश्चय नय के मत से सौत समान तथा खरण्टक समान ये दो प्रकार के श्रावक प्रायः मिथ्यात्वी गिनाये जाने से द्रव्य श्रावक कहे जा सकते हैं। और दूसरे दो प्रकार के श्रावकों को भावश्रावक समझना चाहिये। कहा है कि—

चिंतई जई कज्जाई। नदिट्ठ खलिओ विहोई निन्नेहो ॥
एगंत वच्छलोजई। जणस्स जणणि समोसड्ढो ॥ १ ॥

साधु के काम (सेवा भक्ति) करे, साधु का प्रमादाचरण देख कर स्नेह रहित न हो, एवं साधु लोगों पर सदैव हितवत्सल रक्खे तो उसे "माता पिता के समान श्रावक" समझना चाहिये।

हियए ससिणेहोच्चिअ। मुणिजण मंदायरो विणयकम्मे ॥
भायसमो साहूणं। परभवे होई सुसहाओ ॥ २ ॥

साधु का विनय वैय्यावच्च करने मे अनादर हो परन्तु हृदय में स्नेहवन्त हो और कष्ट के समय सच्चा सहायकारी होवे, ऐसे श्रावक को "भाई समान श्रावक" कहा है।

मित्त समाणो माणा। इसिं रूसई अपुच्छिओ कज्जे ॥
मन्नंतो अप्पाणं। मुणीण सयणाओ अब्भहिअं ॥ ३ ॥

साधु पर भाव (प्रेम) रक्खे, साधु अपमान करे तथा विना पूछे काम करे तो उनसे रूठ जाय परन्तु अपने सगे संबंधियोंसे भी साधु को अधिक गिने उसे "मित्र समान श्रावक" समझना चाहिये।

थद्धो छिद्दप्पेही। पमाय खलिआइ निच्च मुच्चरइ ॥
सड्ढो सवत्ति कप्पो। साहुजणं तणसमं गणइ ॥ ४ ॥

स्वयं अभिमानी हो, साधुके छिद्र देखता रहे, और जरा सा छिद्र देखने पर, सब लोग सुने इस प्रकार जोरसे बोलता हो, साधुको तृण समान गिनता हो उसे "सौतसमान श्रावक" समझना।

दूसरे चतुष्कमें कहा है कि—

गुरु भणिओ सुत्तथ्थो। बिंबिज्जइ अवितहमणे जस्स ॥
सो आयंस समाणो सुसावओ वन्निओ समए ॥ १ ॥

गुरुने देशनामें सूत्र या अर्थ जो कहा हो उसे सत्य समझ हृदयमें धारण करे, गुरू पर स्वच्छ हृदय रक्खे, ऐसे श्रावक को जैनशासन में दर्पण समान श्रावक कहा है।

पवणेण पडागा इव । भामिज्जइ जो जणेण मुढेण ॥
अविणिच्छिअं गुरुवयणो । सो होइ पडाइआ तुल्लो ॥ २ ॥

जिस प्रकार पवनसे ध्वजा हिलती रहती है, वैसेही देशना सुनते समय भी जिस का चित्त स्थिर नहीं रहता और जो गुरुके कथन किये वचन का निर्णय नहीं कर सकता उसे पताका समान श्रावक समझना।

पडिवन्न मसग्गाहं । नमुअइ गीयथ्थ समणु सिट्ठोवि ॥
थाणु समाणो एसो । अपओसि मुणिजणे नवरं ॥ ३ ॥

इसमें इतना विशेष है कि, गीतार्थ (पण्डित) द्वारा बहुतसा समझाया जाने पर भी अपने कदाग्रह को बिलकुल न छोड़ने वाला श्रावक खूंटे के समान समझना चाहिये।

उमग्गदेसओ निन्हवोसि । मूढोसि मंद धम्मोसि ॥
इय सम्मंपि कहंतं । खरंटए सो खरंट समो ॥ ४ ॥

यद्यपि गुरु सच्चा अर्थ कहता हो तथापि उसे न मानकर अंत में उन्हें उलटा यों बोलने लग जाय तू उन्मार्गदर्शक है, निह्नव (धर्मलोपी) है, मूर्ख है, धर्म से शिथिल परिणामी है। ऐसे दुर्वचन रूप मेल से गुरु को लोपित करे उसे खरंटक (कांटेके समान) श्रावक समझना।

जहसिढिल मसूई दव्वं । छुप्पं तं पिहुनरं खरंटेई ॥
एवं मणुसा सगपिहु । दुसंतो भन्नई खरंटो ॥ ५ ॥

जिस तरह प्रवाही, अशुचि, पदार्थ को अड़ने पर मनुष्य सन जाता है वैसे ही शिक्षा देनेवाले को ही जो दुर्वचन बोले वह खरंटक श्रावक समझा जाता है।

निच्छयओ मिच्छत्ती । खरंटतुल्लो सवित्ति तुल्लोवि ॥
ववहारओ य सड्ढा । वयंति जं जिणगिहाईसु ॥ ६ ॥

खरंटक और सपत्नी (सौत समान) श्रावक इन दोनों को शास्त्रकारों ने निश्चयनय मत से मिथ्यात्वी ही कहा है, परंतु जिनेश्वर भगवान के मन्दिर आदि की सारसंभाल रखता है इससे उसे व्यवहार नय से श्रावक कहना चाहिये।

"श्रावक शब्द का अर्थ"

दान, शील, तप और भावना आदि शुभ योगों द्वारा आठ प्रकार के कर्म समय समय निर्जरित करें (पतले करे या कम करे वा निर्बल करे) उसे और साधु के पास सम्यक् समाचारी सुनकर तथैव वर्तन करे उसे श्रावक कहा जा सकता है। यहां पर श्रावक शब्दका अभिप्राय (अर्थ) भी भावश्रावक में संभवित होता है। कहा है कि—

श्रवंति यस्य पापानि । पूर्वबद्धान्यनेकशः ॥
आवृतश्च व्रतैर्नित्यं । श्रावकः सोऽभिधीयते ॥ १ ॥

पूर्व कालीन बांधे हुये बहुत से पापों को कम करे और व्रत प्रत्याख्यान से निरंतर वेष्टित रहे वह श्रावक कहलाता है ।

समत्तदंसणाइ । पइदी अहंजई जणापुणेइअ ॥
सामायारी परमं । जो खलु तं सावगं विंति ॥ २ ॥

समकित व्रत प्रत्याख्यान प्रति दिन करता रहे यति उनके पास से उत्कृष्ट सामाचारी (आचार) सुने उसे श्रावक कहते हैं ।

श्रद्धालुतां श्राति पदार्थचिंतनाद्धनानि पात्रेषु वपत्यनारतं ॥
किरत्य पुण्यानि सुसाधुसेवनादतोपि तं श्रावकमाहुरुत्तमाः ॥ ३ ॥

नव तत्वों पर प्रीति रक्खे, सिद्धांतको सुने, आत्मस्वरूप का चिंतन करे, निरंतर पात्रमें धन नियोजित करे, सुसाधुकी सेवा कर पाप को दूर करे, इतने आचरण करने वाले को भी श्रावक कहते हैं ।

श्रद्धालुतां श्राति शृणोति शासनं । दानं वपत्याशु वृणोति दर्शनं ॥
क्षिपत्य पुण्यानि करोति संयमं । तं श्रावकं प्राहुरमी विचक्षणाः ॥ ४ ॥

इस गाथा का अर्थ उपरोक्त गाथा के समान ही समझना ।

इस प्रकार "श्रावक" शब्द का अर्थ कहे बाद दिनकृत्यादि छ कृत्यों में से प्रथम कौनसा कर्तव्य करना चाहिये सो कहते हैं ।

"प्रथम दिनकृत्य"

नवकारेण विबुद्धो । सरेइसो सकुल धम्मनियमाई ॥
पडिकमि अपुइपुइअ । गिहे जिणं कुणइसंवरणं ॥ १ ॥

नमो अरिहंताणं अथवा सारा नवकार गिनता हुवा श्रावक जागृत होकर अपने कुल के योग्य धर्मकृत्य नियमादिक याद करे । यहां पर यह समझना चाहिये कि, श्रावकको प्रथमसे ही अल्प निद्रावान् होना चाहिये । जब एक प्रहर पिछली रात रहे उस वक्त अथवा सुबह होने से पहिले उठना चाहिये। ऐसा करने से इस लोक में यश, कीर्ति, बुद्धि, शरीर, धन, व्यापारादिक का और पारलौकिक धर्मकृत्य, व्रत, प्रत्याख्यान, नियम वगैरह का प्रत्यक्ष ही लाभ होता है । ऐसा न करनेसे उपरोक्त लाभ की हानि होती है ।

लौकिक शास्त्र में भी कहा हुवा है कि;—

कम्मीणां धनसंपजे । धम्मीणां परलोय ॥
जिहिं सूता रविउगमे बुद्धि आउ न होय ॥

काम काज करने वाले मनुष्य यदि जल्दी उठें तो उन्हें धन की प्राप्ति होती है और यदि धर्मी पुरुष जल्दी उठे तो उन्हें अपने परलौकिक कृत्य, धर्मक्रिया आदि शांति से हो सकते हैं। जिस प्राणी के प्रातः काल में सोते हुये ही सूर्य उदय होता है, उसकी बुद्धि, ऋद्धि और आयुष्य की हानि होती है।

यदि किसी से निद्रा अधिक होने के कारण या अन्य किसी कारण से यदि पिछली प्रहर रात्रि रहते न उठा जाय तथापि उसे अंत में चार घडी रात बाकी रहे उस वक्त 'नमस्कार' उच्चारण करते हुए उठ कर प्रथम से द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का उपयोग करना चाहिये। यानी द्रव्य से विचार करना कि मैं कौन हूं? श्रावक हूं या अन्य? क्षेत्र से विचार करना क्या मैं अपने घर हूं या दूसरे के, देश में हूं या परदेश में, मकान के ऊपर सोता हूं या नीचे? काल से विचार करना चाहिये कि, बाकी रात कितनी है, सूर्य उदय हुवा है या नहीं? भाव से विचार करना चाहिये कि मैं लघु नीति (पिशाव) बड़ी नीति (टट्टी जाना) की पीड़ा युक्त हुवा हूं या नहीं? इस प्रकार विचार करते हुये निद्रा रहित हो, फिर दरवाजा किस दिशा मे है, लघुनीति आदि करने का स्थान कहां है? इत्यादि विचार करके नित्य की क्रिया में प्रवृत्त हो।

साधु को आश्रित करके ओघर्युक्ति ग्रन्थ मे कहा है कि—

दव्वाइ उवओगं उस्सास निरूंमणालोयं ॥

लघु नीति पिछली रात में करनी हो तब द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका विचार उपयोग किये बाद नासिका बंद करके श्वासोश्वास को दबावे जिससे निद्रा विच्छिन्न हुवे बाद लघु नीति करे। यदि रात्रि को कुछ भी जनाने का प्रयोजन पड़े तो मन्द स्वर से बोले तथा यदि रात्री में खांसी या खुंकारा करना पड़े तथापि धीरे से ही करे किन्तु जोरसे न करे! क्यों कि ऐसा करने से जागृत हुवे छिपकली, कोल, न्योला (नकुल) आदि हिंसक जीव माखी वगैरह के मारने का उद्यम करते है। यदि पड़ोसी जागे तो अपना आरंभ शुरू करे, पानी वाली, रसोई करने वाली, चक्की पीसने वाली, दलने वाली, खोदने वाली, शोक करने वाली, मार्गमें चलने वाला, हल चलाने वाला, वन में जाकर फल फूल तोड़ने वाला, कोल्हु चलाने वाला, चरखा फिराने वाला, धोबी, कुम्हार, लुहार, सुत्रधार (बढ़ई) जुवारी (जुवा खेलने वाला) शस्त्रकार, मद्यकार, (दारू की भट्टी करनेवाला) मछलियां पकड़ने-वाला, कसाई, वागुरिक, (जङ्गल में जाकर जालमें पक्षियों को पकड़नेवाला) शिकारी, लुटारा, पारदारिक, तस्कर, कुव्यापारी, आदि एक एक की परंपरा से जागृत हो अपने हिंसा जनक कार्य में प्रवर्तते हैं इस से सब का कारणिक दोष का हिस्सेदार स्वयं बनता है, इस से अनर्थ दण्ड की प्राप्ति होती है।

भगवति सूत्र में कहा है कि—

जागरिआ धम्मीणं। अहम्मीणं तु सुत्तयासेया।
वच्छाहिव भयणीए अकहिंसु जिणोजयंतीए ॥ १ ॥

वच्छ देश के अधिपति की बहिन को श्री वर्धमान स्वामी ने कहा है कि- हे जयन्ति श्राविका, धर्मवंत प्राणियों का जागना और पापी प्राणियों का सोना कल्याणकारी होता है।

निद्रा में से जागृत होते ही विचार करना कि, कौन से तत्व के चलते हुये निद्रा उच्छेद हुई है। कहा है कि—

अंभोभूतत्वयोर्निद्रा विच्छेदः शुभहेतवे ॥
व्योमवाय्वग्नितत्वेषु स पुनर्दुःखदायकः ॥ १ ॥

जल और पृथ्वी तत्व में निद्रा विच्छेद हो तो श्रेयस्कर है और यदि आकाश, वायु और अग्नि तत्व में निद्रा विच्छेद हो तो दुःखदाई जानना।

वामा शस्तोदयेपक्षे । सिते कृष्णे तु दक्षिणा ॥
त्रिणि त्रिणि दिनानींदु सूर्ययोरुदयः शुभः ॥ २ ॥

शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से तीन दिन प्रातःकाल में सूर्योदय के समय चन्द्र नाड़ी श्रेयस्कर है और कृष्ण-पक्षमे प्रतिपदा से तीन दिन सूर्योदय के समय सूर्य नाड़ी श्रेष्ठ है।

शुक्लप्रतिपदो वायुश्चंद्रेऽथार्के त्र्यहं त्र्यहं ।
वहन् शस्तोऽनया वृत्त्या, विपर्यासे तु दुःखदः ॥ ३ ॥

प्रतिपदा से लेकर तीन दिन तक शुक्ल पक्ष में सूर्योदय के समय चन्द्र नाड़ी चलती हो और कृष्ण पक्ष में सूर्य नाड़ी चलती हो उस वक्त यदि वायु तत्त्व हो तो वह दिन शुभकारी समझना। और यदि इससे विपरीत हो तो दुःखदाई समझना।

शशांकेनोदयो वायोः । सूर्येणास्तं शुभावहं ॥
उदये रविणा त्वस्य । शशिनास्तं शुभावहं ॥ ४ ॥

यदि वायु तत्व में चंद्र नाड़ी वहते हुये सूर्योदय और सूर्य नाड़ी चलते हुये सुर्यास्त हो एवं सूर्य नाड़ी चलते हुवे सूर्योदय और चन्द्र नाड़ी चलते हुये सूर्यास्त हो तो सुखकारी समझना।

कितनेक शास्त्रकारों ने तो वार का भी अनुक्रम बांधा हुवा है और वह इस प्रकार—रवि, मंगल, गुरु, और शनि ये चार सूर्य नाड़ी के वार और सोम बुध तथा शुक्र ये तीन चंद्र नाड़ी के वार समझना।

कितनेक शास्त्रकारों ने संक्रांति का भी अनुक्रम बांधा हुवा है। मेष संक्रांति सूर्य नाडी की और वृष संक्रांति चन्द्र नाडी की है। एवं अनुक्रम से बारह ही संक्रांतियों के साथ सूर्य और चन्द्र नाडी की गणना करना।

सार्द्धघटीद्वयं नाडिरेकैकार्कोदयाद्वहेत् ॥
अरघट्टघटीभ्रांतिन्यायो नाड्योः पुनः पुनः ॥ ५ ॥

सूर्योदय के समय जो नाड़ी चलती हो वह ढाई घड़ी के बाद बदल जाती है। चंद्रसे सूर्य और सूर्य से चन्द्र इस प्रकार कुवे के अरहट्ट समान सारे दिन नाड़ी फिरा करती हैं।

षट्त्रिंशद्गुरुवर्णानां या वेला भणने भवेत् ॥
सा वेला मरुतो नाड्या नाड्यां संचरतो लगेत् ॥ ६ ॥

छत्तीस गुरु अक्षर उच्चार करते हुए जितना समय लगता है, उतना ही समय वायु को एक नाड़ी से दूसरी नाड़ी के जाने में लगता है। (अर्थात् सूर्य से चंद्र और चंद्र से सूर्य नाड़ी में जाते वक्त वायु को पूर्वोक्त टाइम लगता है)।

'पांच तत्वों की समझ'

ऊर्ध्वं वन्हिरधस्तोयं । तिरश्चीनः समीरणः ॥
भूमिर्मध्यपुटे व्योम सर्वांगं वहते पुनः ॥ ७ ॥

पवन ऊंचा चढे तब अग्नितत्व, पवन नीचे उतरे तब जलतत्व, तिरछा पवन बहे तब वायुतत्व, नासिका के दो पड़ में पवन रहे तब पृथ्वीतत्व और जब पवन सब दिशाओं में पसरता हो तब आकाश तत्व समझना।

'तत्व का अनुक्रम'

वायोर्वन्हेरपां पृथ्व्या । व्योम्नस्तत्वं वहेत्क्रमात् ॥
वहत्योरुभयो नाड्योर्ज्ञातव्योयं क्रमः सदा ॥ ८ ॥

सूर्य नाड़ी और चंद्र नाडी में प्रथम अनुक्रम से वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी और आकाश ये तत्व निरंतर वहन करते हैं।

'तत्व का काल'

पृथ्व्याः पलानि पंचाशच्चत्वारिंशत्तथांभसः ॥
अग्ने स्त्रिंशत्पुनर्वायोर्विंशतिर्नभसो दशः ॥ ९ ॥

पृथ्वी तत्व पचास पल, जल तत्व चालीस पल, अग्नि तत्व तीस पल, वायु तत्व बीस पल, आकाशतत्व दस पल, (अर्थात् पृथ्वी तत्व पचास पल रह कर फिर अग्नि, जल, वायु, आकाश तत्व वहते हैं)। इस प्रकार तत्त्व बदलते रहते हैं,।

"तत्व में करने के कार्य"

तत्वाभ्यां भूजलाभ्यां स्याच्छांते कार्ये फलोन्नतिः ॥
दीप्ता स्थिरादिके कृत्ये तेजो वाय्वंबरैः शुभम् ॥ १० ॥

पृथ्वी और जल तत्व में शांति, शीतल (धीरे धीरे करने योग्य कार्य करते हुये फल की प्राप्ति होती है) और अग्नि, वायु तथा आकाश तत्व में तीव्र तेजस्वी और अस्थिर कार्य करना लाभ कारक हैं।

"तत्वों का फल"

जीवितव्ये जये लाभे सस्योत्पत्तौ च वर्षणे ॥
पुत्रार्थे युद्धप्रश्ने च गमनागमने तथा ॥ ११ ॥
पृथ्व्यप्तत्वे शुभे स्यातां वन्हिवातौ च नो शुभौ ॥
अर्थसिद्धिःस्थिरोर्व्यांतु शीघ्रमंभसि निर्दिशेत् ॥ १२ ॥

जीवितत्व, जय, लाभ, वृष्टि, धान्य की उत्पत्ति, पुत्र प्राप्ति, युद्ध, गमन, आगमन, आदि के प्रश्न समय यदि पृथ्वी या जल तत्व चलता हो तो श्रेयकारी और यदि वायु, अग्नि या आकाश तत्व हो तो श्रेयकारी न समझना। तथा अर्थ सिद्धि या स्थिर कार्य में पृथ्वीतत्व और शीघ्र (जल्दी से करने लायक) कार्य में जल तत्व श्रेयकारी है।

"चन्द्रनाडी के वहते समय करने योग्य कार्य"

पूजाद्रव्योर्जनोद्वाहे दूर्गादि सरिदागमे ॥
गमागमे जीविते च, गृहे क्षेत्रादि संग्रहे ॥ १३ ॥
क्रयाविक्रयणे वृष्टौ, सेवाकृषी द्विषज्जये ॥
विद्या पट्टाभिषेकादौ, शुभेऽर्थे च शुभः शशी ॥ १४ ॥

देव पूजन, द्रव्योपार्जन, व्यापार, लग्न, राज्यदुर्ग लेना, नदी उतरना, जाने आने का प्रश्न, जीवित का प्रश्न घर क्षेत्र खरीदना बांधना, कोई वस्तु खरीदना या वेचने का प्रश्न, वृष्टि आने का प्रश्न, नौकरी, खेतीवाड़ी, शत्रुजय, विद्याभ्यास, पट्टाभिषेक पद प्राप्ति, ऐसे शुभ कार्य करते समय चन्द्र नाड़ी वहती हो तो उसे लाभकारी समझना।

प्रश्ने प्रारंभणे चापि कार्याणां वामनाशिका ॥
पूर्णवायोः प्रवेशश्चेत्तदासिद्धिरसंशयः ॥ १५ ॥

किसी भी कार्य का प्रारंभ करते समय या प्रश्न करते समय यदि अपनी चन्द्र (बांई) नाड़ी चलती हो, या बांई नासिका में पवन प्रवेश करता हो तो उस कार्य की तत्काल सिद्धि ही समझना।

"सूर्य नाडी बहते हुए करने योग्य कार्य"

बद्धानां रोगमुक्तानां। प्रभ्रष्टानां निजात्पदात् ॥
प्रश्नैर्युद्धविधौ वैरि। संगमे सहसा भये ॥ १६ ॥
स्थाने पानेऽशने नष्टान्वेषे पुत्रार्थमैथुने ॥
विवादे दारुणेर्थे च सूर्यनाडी प्रशस्यते ॥ १७ ॥

कैद मे पड़ने के, रोगी के, अपना पद खोने मे, भ्रष्ट होने में, युद्ध करने में, शत्रु को मिलने मे, अकस्मात् भय में, स्नान करने में, पानी पीने में भोजन करने में, गत वस्तु के ढूंढ़ने मे, द्रव्य संग्रह में, पुत्र के लिये मैथुन करने में, विवाद करने में, कष्ट पाने में, इतने कार्यों में सूर्य नाडी श्रेष्ट समझना।

कितनेक आचार्य ऐसा भी कहते हैं कि—

विद्यारंभे च दीक्षायां, शस्त्राभ्यासविवादयो ॥
राजदर्शनगीतादौ, मन्त्रतन्त्रादि साधने ॥ १८ ॥ (सूर्यनाडी शुभा)

विद्यारंभ, दीक्षा, शस्त्राभ्यास, विवाद, राजदर्शन, गायनारंभ, मंत्र तंत्र यंत्रादि के साधने में सूर्यनाड़ी श्रेष्ट मानी है।

सूर्य चन्द्र नाडी में विशेष करने योग्य कार्य।

दक्षिणे यदि वा वामे, यत्र वायु निरंतरं ॥
तं पादमग्रतः कृत्वा, निःसरेन्निजमन्दिरात् ॥ १९ ॥

यदि बाएं नासिका का पवन चलता हो तो बांया पैर और यदि दाहिने नासिका का पवन चलता हो तो दाहिना पैर प्रथम उठाकर कार्य में प्रवर्तमान हो तो वह अविलंब से सिद्ध ही होता है।

अधर्मण्यारि चौराद्या विग्रहोत्पातिनोऽपि च ॥
शून्यांगे स्वस्य कर्तव्याः सुखलाभजयार्थिभिः ॥ २० ॥

अधर्मी, पापी, चोर, दुष्ट, वैरी और लड़ाई करने वाले को शून्यांग (बांया) करने से सुख लाभ और जय की प्राप्ति होती है।

स्वजनस्वामिगुर्वाद्या ये चान्ये हितचिंतकाः,
जीवांगे ते ध्रुवं कार्याः, कार्यसिद्धिमभीप्सुभिः ॥ २१ ॥

स्वजन, स्वामी, गुरु, माता, पिता, आदि जो अपने हितचितक हों उन्हें दाहिनी तरफ रखने से जय, सुख और लाभ की प्राप्ति होती है।

प्रविशत्पवनापूर्णः नाशिका पक्षमाश्रितं ॥
पादं शय्योत्थितो दद्यात्प्रथमं पृथिवीतले ॥ २२ ॥

शुक्लपक्ष हो या कृष्णपक्ष परंतु दक्षिण या बायें जो नासिका पवन से परिपूर्ण होती हो वही पैर जमीन पर रख कर शय्या को छोड़ना चाहिये।

उपरोक्त बताई हुई रीति से निद्रा को त्याग कर श्रावक अत्यन्त बहुमान से परम मंगलकारी नवकार मंत्र का मन में स्मरण करे। कहा है कि—

परमिट्ठि चिंतणं माणसंमि, सिज्जागएणकायव्वं।

सुत्ताविणय साविची, निवारिया होइ एवंतु ॥

शय्या मे बैठे हुए नवकार मंत्र गिनना हो तो सूत्र का अविनय दूर करने के लिए मन मे ही चितन करना चाहिए।

कितनेक आचार्यों का मत है कि, कोई भी ऐसी अवस्था नहीं हैं कि जिसमें नवकार मंत्र गिनने का अधिकार न हो, इसलिए हर समय नवकार मंत्र का पाठ करना श्रेयकारी है (इस प्रकार के दो मत पहिले पंचाशक की वृत्ति में लिखे हुये हैं)।

श्राद्ध दिनकृत्य में ऐसा कहा है कि—

सिज्जा ट्ठाणं पमत्तुणं चिट्ठिज्जजा धरणितले,
भाववंधु जगन्नाहं नमुकारं तओ पढे ॥

शय्या स्थान को छोड़कर पवित्र भूमि पर बैठ कर फिर भाव धर्मबंधु जगन्नाथ नवकार मंत्र का स्मरण करना चाहिये।

यति दिन चर्या में लिखा है कि—

जामिणि पच्छिम जामे, सव्वे जग्गंति वालवुड्ढाई।
परमिट्ठि परम मंतं, भणंति सत्तठ्ठ वाराओ ॥

रात्रि के पिछले प्रहर बाल वृद्ध आदि सब लोग जागते हैं उस वक्त परमेष्ठी परममंत्र का सात आठ वक्त पाठ करना।

"नवकार गिनने की रीति"

मन में नमस्कार का स्मरण करते हुये सोता उठ कर पलंग से नीचे उतर कर पवित्र भूमि पर खड़ा रह पद्मासन वगैरह आसन से बैठकर या जिस प्रकार सुख से बैठा जाय उस तरह बैठ कर पूर्व या उत्तर दिशा में जिन प्रतिमा या स्थापनाचार्य के सन्मुख मानसिक एकाग्रता करने के लिये कमलबंध करके नवकार मंत्र का जाप करें।

"कमलबंध गिनने की रीति"

अष्टदलकमल (आठ पंखड़ी वाले कमल) की कल्पना हृदय में करें। उसमे बीच की कर्णिका पर "णमो अरिहंताणं" पद स्थापन करे (ध्याये) पूर्वादि चार दिशाओं में "णमो सिद्धाणं" "णमो आयरियाणं" "णमो उवज्झायाणं" "णमो लोए सव्वसाहूणं" इन पदों को स्थापन करे। और चार चूलिका के पदों को (एसोपंच णमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो, मंगलाणंच सव्वेसि पढम हवइ मंगलं) चार कोनों में (विदिशाओं में) स्थापन कर गिने (ध्याये)। इस प्रकार नवकार का जाप कमलबंध जाप कहलाता है।

श्री हेमचन्द्राचार्य ने योगशास्त्र के आठवे प्रकाश मे भी उपरोक्त विधि बतला कर इतना विशेष कहा है कि—

त्रिशुध्ध्या चिंतयन्नस्य शतमष्टोत्तरं मुनिः ।
भुंजानोऽपि लभेतैव चतुर्थतपसः फलं ॥

मन, वचन, काया की एकाग्रता से जो मुनि इस नवकार का १०८ दफे जाप करता है वह भोजन करते हुए भी एक उपवास के तप का फल प्राप्त करता है। कर आवर्त 'नंदावर्त' के आकार में, शंखावर्त के आकार मे करे तो उसे वांछित सिद्धि आदि बहुत लाभ होता है कहा है कि—

कर-आवत्ते जो पचमंगलं, साहूपडिम सखाए ।
नववारा आवत्तइ, छलंति नो तं पिसायाई ॥

कर आवत्त से (यानी अंगुलियों से) नवकार को बारह की संख्या से नव दफा गिने तो उसे पिशाचादिक नहीं छल सकते ।

शंखावर्त, नंदावर्त, विपरीताक्षर विपरीत पद, और विपरीत नवकार लक्षवार गिने तो बंधन, शत्रुभय आदि कष्ट सत्वर नष्ट होते हैं ।

जिससे कर जाप न हो सके उसे सूत, रत्न, रुद्राक्ष, चन्दन, चांदी, सोना आदि की जपमाला अपने हृदय के पास रख कर शरीर या पहने हुये वस्त्र को स्पर्श न कर सके एवं मेरु का उल्लंघन न कर सके इस प्रकार का जाप करने से महा लाभ होता है। कहा है कि—

अंगुल्यग्रेण यज्जप्तं, यज्जप्तं मेरुलंघने ।
व्यग्रचित्तेन यज्जप्तं तत्प्रायोऽल्पफलं भवेत् ॥ १ ॥

अंगुलियों के अग्रभाग से, मेरु उल्लंघन करने से और व्यग्र चित्तसे जो नवकार मंत्र का जाप किया जाता है वह प्रायः अल्प फलदायी होता है ।

संकुलाद्विजने भव्यः सशब्दान्मौनवान् शुभः ।
मौनजान्मानसः श्रेष्ठो, जापः श्लाघ्यपरः परः ॥ २ ॥

बहुत से मनुष्यों के बीच में बैठ कर जाप करने की अपेक्षा एकांत में करना श्रेयकारी है। बोलकर जाप करने की अपेक्षा मौन जाप करना श्रेयकारी है। और मौन जाप करने की अपेक्षा मन में ही जाप करना विशेष श्रेयस्कर है।

जापश्रांतो विशेध्ध्यानं, ध्यानश्रांतो विशेज्जपं ।
द्वाभ्यां श्रांतः पठेत्स्तोत्र, मित्येवंगुरुभिः स्मृतं ॥ ३ ॥

यदि जाप करने से थक जाय तो ध्यान करे, ध्यान करते थक जाय तो जाप करे, यदि दोनों से थक जाय तो स्तोत्र गिने, ऐसा गुरू का उपदेश है ।

श्री पादलिप्त सूरि महाराज की रची हुई प्रतिष्ठा पद्धति मे कहा है कि जाप तीन प्रकार का है-। १ मानस जाप, २ उपांशु जाप, ३ भाष्य जाप। मानस जाप यानी मौनतया अपने मन मे ही विचारणा रूप (अपना ही

आत्मा जान सके ऐसा) २ उपांसुजाप-यानी अन्य कोई न सुन सके परन्तु अंतर जल्प रूप (अंदर से जिस मे बोला जाता हो ऐसा) जाप। ३ भाष्य जाप—यानी जिसे दूसरे सब सुन सके ऐसा जाप। इस तीन प्रकार के जाप मे भाष्य से उपांसु अधिक और उपांसु से मानस अधिक लाभ प्रद है। ये इसी प्रकार शांतिक पुष्टिक आकर्षणादिक कार्यो की सिद्धि कराते हैं। मानस जाप रत्नसाध्य (बड़े प्रयास से साध्य किया जाय ऐसा) है और भाष्य जाप सम्पूर्ण फल नही दे सकता इसलिये उपांसु जाप सुगमता से बन सकता है अतः उसमें उद्यम करना श्रेयकारी है।

नवकार की पांच पदकी या नवपद की अनुपूर्वी चित्त की एकाग्रता रखने के लिए साधनभूत होने से गिनना श्रेयस्कर है। उसमे भी एक २ अक्षर के पद की अनुपूर्वी गिनना कहा है। योगप्रकाश के आठवें प्रकाश मे कहा है कि—

गुरुपंचकनामोथ्था, विद्यास्यात् षोडशाक्षरा।
जपन् शतद्वयं तस्याश्चतुर्थस्याप्नुयात्फलं ॥ १ ॥

अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उवज्झाय, साहू, इन सोलह अक्षरोंकी विद्या २०० वार जपे तो एक उपवास का फल मिलता है।

शतानित्रीणि षड्वर्ण, चत्वारिंशचतुरक्षरं।
पंचवर्णजपन् योगी, चतुर्थफलमश्नुते ॥ २ ॥

"अरिहन्त, सिद्ध, इन छह अक्षरों का मंत्र तीन सो वार और 'असिआउसा' इन पांच अक्षरों का मंत्र (पंचपरमेष्ठी के प्रथमाक्षर रूप मंत्र) और 'अरिहंत' इन चार अक्षरों का मंत्र चारसो दफा गिनने वाला योगी एक उपवास का फल प्राप्त करता है।

प्रवृत्तिहेतुरेवैत, दमीषां कथितं फलं।
फलं स्वर्गापवर्गं च, वदंति परमार्थतः ॥ ३ ॥

नवकार मंत्र गिनना यह भक्ति का हेतु है। और उसका सामान्यतया स्वर्ग फल बतलाया है, तथापि आचार्य उसका मोक्ष ही फल बतलाते हैं।

"पांच अक्षर का मंत्र गिनने की विधि"

नाभिपद्मे स्थितं ध्यायेदकारं विश्वतोमुख।
सिवर्णं मस्तकांभोजे, आकारं वदनांबुजे ॥ ४ ॥

नाभि कमल में स्थापित 'अ' कार को ध्याओ, मस्तक रूप कमल मे विश्व में मुख्य ऐसे 'सि' अक्षर को ध्याओ, और मुख रूप कमल में 'आ'कार को ध्याओ!

उकारं हृदयांभोजे, साकारं कंठपंजरे ॥
सर्वकल्याणकारीणि, बीजान्यन्यापि समंत् ॥ ५ ॥

हृदय रूप कमल में 'उ'कार का चिंतन करो ! और कंठ पर 'सा' कार का चिंतन करो। सर्व कल्याणकारी अन्य भी 'सर्वसिद्धेभ्यः नमः, ऐसे भी मंत्राक्षर स्मरण करना।

मन्त्रः प्रणवपूर्वोयं, फलमैहिकमिच्छुभिः।
ध्येयः प्रणवहीनस्तु, निर्वाणपदकांक्षिभिः ॥ ६ ।

इस लोक के फल की वांछा रखने वाले साधक पुरुष को नवकार मंत्र की आदि मे "ॐ" अक्षर उच्चार करना चाहिये। और मोक्ष पद की आकांक्षा रखने वाले को उसका उच्चार न करना चाहिये ।

एवं च मन्त्रविद्यानां वर्णेषु च पदेषु च ।
विश्लेषः क्रमशः कुर्यात्लक्ष्यभावोपपत्तये ॥ ७ ॥

इस प्रकार मंत्र के वर्ण में और पद मे अरिहन्तादि के ध्यान में लीन होने के लिए यदि फेर फार करना मालूम दे तो करना चाहिये। जाप आदि के करने से महा लाभ की प्राप्ति होती है; कहा भी है कि—

पूजाकोटि समं स्तोत्रं, स्तोत्रकोटि समो जपः ।
जपकोटि समं ध्यानं, ध्यानकोटि समो लयः ॥ १ ॥

पूजा की अपेक्षा करोड़ गुना लाभ स्तोत्र गिनने में, स्तोत्र से करोड़ गुना लाभ जाप करने मे, जाप से करोड़ गुना लाभ ध्यान में, और ध्यान से करोड़ गुना अधिक लाभ लीनता मे है।

ध्यान ठहराने के लिये जहां जिनेश्वर भगवान का जन्म कल्याणक हुवा हो तद्रूप तीर्थस्थान तथा जहां पर ध्यान स्थिर हो सके ऐसे हर एक एकांत स्थान में जाकर ध्यान करना चाहिए।

ध्यान शतक में कहा है कि, ध्यान के समय साधु पुरुष को स्त्री, पशु, नपुंसक कुशील, (वेश्या, रंडा, नट वीट, लंपट) वर्जित एकांत स्थान का आश्रय लेना चाहिये। जिसने योग स्थिर किया है ऐसे निश्चल मन वाले मुनि को चाहिये कि जिसमें बहुत से मनुष्य ध्यान करते हों ऐसा गांव अटवी वन और शून्य स्थान जो ध्यान करने योग्य हो उसका आश्रय ले (ध्यान करे)। जहां पर अपने मन की स्थिरता होती हो। (मन वचन काया के योग स्थिर रहते हों) जहां बहुत से जीवोका घात न होता हो ऐसे स्थान में रह कर ध्यान करना चाहिए। ध्यान करने का समय भी यही है कि, जिस वक्त अपना योग स्थिर रहे वही समय उचित है बाकी ध्यान करने वाले के मन की स्थिरता रखने के लिए रात्रि या दिन का कुछ काल नियत नहीं है। शरीर की जिस अवस्था में जिनेश्वर भगवान का ध्यान किया जा सके उसी अवस्था में ध्यान करना योग्य है। इस विषय में सोते हुए, या बैठे हुए या खड़े हुए का कोई नियम नहीं है। देश, काल की चेष्टा से सर्व अवस्थाओं से मुनि जन उत्तम केवलज्ञानादि का लाभ प्राप्तकर पाप रहित बनें, इसलिए ध्यान करने में देश काल का भी किसी प्रकार का नियम नहीं है। जहां जिस समय त्रिकर्ण योग स्थिर हो वहां उस समय ध्यान में प्रवर्तना श्रेयस्कर है।

"नवकार महिमा फल"

नवकार मंत्र इस लोक और परलोक इन दोनों में अत्यन्त उपकारी है। महानिशीथ सूत्र में कहा है कि.

नासेइ चोर सावय, विसहर जल जलण बन्धण भयाइं।
चिंतिज्जंतो रख्खस, रण राय भयाइं भावेण ॥ १ ॥

भावसे नवकारमंत्र गिनते हुये चोर, सिंह, सर्प, पानी, अग्नि, बंधन, राक्षस, संग्राम, राज आदि भय दूर होते हैं।

दूसरे ग्रन्थों मे कहा है कि, पुत्रादि के जन्म समय भी नवकार गिनना चाहिये, जिससे नवकार के फल से वह ऋद्धिशाली हो। मृत्यु के समय भी नवकार गिनना चाहिये कि जिससे मरने वाला अवश्य सद्गति में जाता है। आपदा के समय भी नवकार गिनना चाहिये कि, जिससे सैकडों आपदायें दूर होती हैं। धनवंत को भी नवकार गिनना चाहिये कि, जिससे उसकी ऋद्धि वृद्धि को प्राप्त होती है। नवकार का एक अक्षर सात सागरोपम का पाप दूर करता हैं। नवकार के एक पद से पचास सागरोपम मे किये हुये पाप का क्षय होता है। और सारा नवकार गिनने से पांचसों सागरोपम का पाप नाश होता है।

विधि पूर्वक जिनेश्वर की पूजा करके जो भव्य जीव एक लाख नवकार गिनता है वह शंकारहित तीर्थंकर नाम गोत्र बांधता है। आठ करोड, आठ लाख, आठ हजार, आठ सो, आठ, नवकार गिने तो सचमुच ही तीसरे भव में मोक्षपद को पाता है।

"नवकार से पैदा होने वाले इस लोक के फल पर शिवकुमार का दृष्टांत"

जुवा खेलने आदि व्यसन में आसक्त शिवकुमार को उसके पिता ने मृत्यु समय शिक्षा दी कि जब कभी कष्ट का प्रसंग आवे तो नवकार गिनना। पिता की मृत्यु के बाद वह अपने दुर्व्यसन से निर्धन हो किसी धनार्थी दुष्ट परिणामवाले त्रिदंडी के भरमाने से उस का उत्तर साधक बना, काली चतुर्दशी की रात्रि मे उसके साथ श्मशान में आकर हाथ मे खड्ग ले योगी द्वारा तयार रखे हुए मुर्दे के पैर को मसलने लगा। उस समय मन में कुछ भय लगने के कारण वह नवकार का स्मरण करने लगा। दो तीन दफा वह मुर्दा उठ कर उसे मारने आया परंतु नवकार मंत्र के प्रभाव से उसे मार न सका। अंत मे तीसरी दफे उस मुर्दे ने उस त्रिदण्डी योगी का ही वध किया। इससे वह योगी ही सुवर्ण पुरुष बन गया, उससे उसने बहुत सी ऋद्धि प्राप्त की। उसके द्वारा उसने बहुतसा धर्मकृत्य कर अंत में स्वर्गगति प्राप्त की। इस प्रकार नवकार मंत्र के प्रभाव से शिवकुमार जीवित रहा और बड़ा धनवान होकर वहां से जिनमंदिर आदि शुभ कृत्य करके अंत में वह देव लोक में गया। ऐसे जो प्राणी नवकार मंत्र का ध्यान स्मरण करता है उसे इस लोक के भय हरकत नही करते।

"नवकार से पैदा होते पारलौकिक फल पर बड़ की समली का दृष्टांत"

भरुच नगर के पास जंगल में एक बड के वृक्ष पर बैठी हुई किसी एक चील को किसी शिकारी ने बाण

से वींध डाली थी, उसके समीप रहे हुए किसी एक साधु ने उसे नवकार मंत्र सुनाया। उससे वह चील मृत्यु पाकर सिंहलद्वेश के राजा की मानवंती पुत्री पने उत्पन्न हुई। जब वह यौवनावस्था को प्राप्त हुई उस समय उसे एक दिन छींक आने पर पास रहे हुये किसी ने "णमो अरिहंताणं" ऐसा शब्द उच्चारण किया इससे उस राजकुमारी को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुवा। इससे उसने अपने पिता को कह कर पांच सौ जहाजों में माल भर कर भरुच नगर के पास आकर उस जंगल में उसी वड़ वृक्ष के पास (जहांपर स्वयं मृत्यु को प्राप्त हुई थी) 'समली विहार उद्धार' इस नाम का मुनिसुव्रत स्वामी का बड़ा मंदिर बनवाया। इस प्रकार जो प्राणी मृत्यु पाते समय भी नवकार का स्मरण करता है उसे पर लोक में भी सुख और धर्म की प्राप्ति होती है।

इसलिए सोते उठकर तत्काल नवकार मंत्र का ध्यान करना श्रेयस्कर है। तथा धर्म जागरिका करना (पिछली रात मे विचार करना) सो भी महा लाभ कारक है। कहा है कि,—

> कोहं का मम जाइ, किं च कुलं देवयाव के गुरुणा।
> को मह धम्मो के वा, अभिग्गहा का अवथ्था मे ॥ १ ॥
> कि मकडं किच्च मकिच्चसेसं, किं सक्कणिज्जंनसमायरामि।
> किंमे परोपासइ किं च अप्पा, किं वा खलिअं न विवज्जयामि ॥ २ ॥

मैं कौन हूं, मेरी जाति क्या है, मेरा कुल क्या है, मेरा देव कौन है, गुरु कौन है, मेरा धर्म क्या है, मेरा अभिग्रह क्या है, मेरी अवस्था क्या है, मेरा कर्तव्य क्या है, मैंने क्या किया और क्या करना बाकी है, मैं क्या करणी कर सकता हूं, और क्या नहीं कर सकता, क्या मुझ पापी को ज्ञानी नहीं देखते? क्या मैं अपने किये हुए पाप को नहीं जानता?।

इस प्रकार प्रति दिन सोकर उठते समय विचार करना चाहिये। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का भी इस प्रकार विचार करना चाहिये कि द्रव्य से मैं कौन हूं। नर हूं या नारी, क्षेत्र से मैं किस देश में हूं, किस नगर मे हूं, किस ग्राम में हूं, अपने स्थान में हूं या अन्य के, काल से इस वक्त रात्रि है या दिन, भाव से मैं धर्मी हूं या अधर्मी। इस प्रकार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों का विचार करते हुये मनुष्य सावधान होता है। अपने किये हुए पाप कर्म याद आने से उन्हें तजने की तथा अंगीकार किए हुए नियम को पालन करने की और नये गुण उपार्जन करने की बुद्धि उत्पन्न होती है; ऐसा करने से महा लाभ की प्राप्ति होती है। सुना जाता है कि आनन्द कामदेवादिक श्रावक भी पिछली रात्रि में धर्मजागरिका करते हुए प्रतिबोध पाकर श्रावकी पडिमा वहन करने की विचारणा करने से उसके लाभ को भी प्राप्त हुए थे। इसलिए धर्म जागरिका जरूर करनी चाहिए। धर्म जागरिका किए बाद यदि प्रतिक्रमण करना हो तो वह करे, प्रतिक्रमण न करना हो तो उसे भी (राग, मोह, माया, लोभ से उत्पन्न हुए) कुस्वप्न और (द्वेष यानी जो क्रोध, मान, ईर्षा, विषाद से उत्पन्न हुवा) दुःस्वप्न ये दोनों प्रकार के स्वप्न अपमांगलिक होने से इनका फल नष्ट करने के लिए जागृत हो तत्काल ही कायोत्सग जरूर करना चाहिए। उसमे यदि कुस्वप्न (यानी स्वप्न में स्त्री सेवन की हो ऐसा देखा हो तो

एक सौ आठ श्वासोश्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करना चाहिए। और यदि दुःस्वप्न (लड़ाई, क्रोध, वैरी, विघातका स्वप्न) देखा हो तो एक सौ श्वासोश्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करना चाहिए।

व्यवहार भाष्यमें कहा है कि स्वप्नमें १ जीवघात किया हो, २ असत्य बोला हो, ३ चोरी की हो, ४ परिग्रह उपर ममता की हो, ऐसा स्वप्न देखा हो अथवा अनुमोदन किया हो तो एकसौ श्वाश्वोच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करना चाहिये।

"कायोत्सर्ग करने की रीति"

"चंदेसु निम्मलयरा" तक एक लोगस्सके पचीस श्वासोच्छ्वास गिने जाते हैं, ऐसे चार लोगस्स का कायोत्सर्ग करनेसे एकसो श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग किया जाता है। यदि एकसो आठ श्वासोश्वास का कायोत्सर्ग करना हो तो चार लोगस्स गिने जाते हैं। लोगस्स चार दफे पूरा गिनने से होता है।

दूसरी रीति—महाव्रत दशवैकालिक प्रतिवद्ध है, उसका कायोत्सर्गमे ध्यान करे, क्योंकि उसका भी प्रायः पच्चीस श्लोक का मान है। सो कहना अथवा चाहे जो सज्झाय करने योग्य पच्चीस श्लोक का ध्यान करे। इस प्रकार दशवैकालिक की वृत्तिमें लिखा हुआ है। पहिले पंचाशककी वृत्तिमे लिखा है कि, कदाचित् मोह के उदय से स्त्रीसेवनरूप कुःस्वप्न आया हो तो तत्कालही उठकर इर्यावही करके एकसो आठ श्वासोच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करे। इस तरह एकवार कायोत्सर्ग करता है तो भी अति निद्रादिक के प्रमाद मे होने से दूसरी दफे प्रतिक्रमण करते समय पहले कायोत्सर्ग करना श्रेयस्कर है। यदि दिन मे सोते समय कुःस्वप्न आया हो तथापि कायोत्सर्ग करना चाहिये, परन्तु उसी समय करना या संध्याके प्रतिक्रमण समय इस वातका निर्णय किसी ग्रन्थ में देखने मे न आने से वहुश्रुत के कहे मुजव करे।

विवेकविलास में स्वप्नविचार के विषय में लिखा है कि, अच्छा स्वप्न देखकर फिर सोना न चाहिये, और दिन उदय होने पर उत्तम गुरू के पास जाकर स्वप्न निवेदन करना चाहिये। एवं खराव स्वप्न देख कर फ़िर तुरंत ही सो जाना चाहिये और उसे किसी के भी सामने कहना न चाहिये। समधातु (वायु, पित्त, कफ, ये तीनों ही जिसे वरावर) हों, प्रशांत हो, धर्म प्रिय हो, निरोगी हो, जितेंद्रिय हो, ऐसे पुरुष को अच्छे या बुरे स्वप्न फल देते हैं। १ अनुभव करने से, २ सुनने से, ३ देखने से, ४ प्रकृतिके वदलने से, ५ स्वभाव से, ६ अधिक चिंता से, ७ देव के प्रभाव से, ८ धर्म की महिमा से, ९ पापकी अधिकता से, एवं नव प्रकार के स्वप्न आते हैं। इन नव प्रकार के स्वप्नों मे से पहले ६ प्रकार के स्वप्न शुभ हो या अशुभ परन्तु वे सव निरर्थक समझना चाहिये। और पीछे के तीन प्रकार के स्वप्न फल देते हैं। यदि रात्रि के पहिले प्रहर मे स्वप्न देखा हो तो वारह महीनेमें फल मिलता है, दूसरे प्रहरमे देखा हो तो वह छ महीने मे फलदायक होता है, तीसरे प्रहरमें देखा हो तो तीन मास मे फल देता है, और यदि चौथे प्रहर मे देखा हो तो एक मास मे फलदायी होता है, पिछली दो घडी रात्रि के समय स्वप्न देखा हो तो सचमुच दस दिन मे फलदायक होता है और यदि सूर्योदय के समय देखा हो तो तत्काल ही फल देता है। वहुत से स्वप्न देखे हो, दिन मे स्वप्न देखा हो, चिंता या व्याधि से स्वप्न देखा हो और मल मूत्रादि की पीड़ा से उत्पन्न हुवा स्वप्न देखा हो तो वह सर्व

निरर्थक जानना। यदि पहिले अशुभ स्वप्न देखकर फिर शुभ, या पहिले शुभ देखकर फिर अशुभ स्वप्न देखे तो उसमें पिछला ही स्वप्न फलदायक होता है। अशुभ स्वप्न देखा हो तो शांतिक कृत्य करना चाहिये। स्वप्न देखे बाद तुरंत ही उठकर जिनेश्वर भगवान का ध्यान करे या नवकार मंत्रका स्मरण करे तो वह शुभ फलदायक हो जाता है। भगवान की पूजा रचावे, गुरु भक्ति करे, भक्ति के अनुसार निरंतर धर्म में तत्पर हो तप करे तो खराब स्वप्न भी सुस्वप्न बन जाता है। देव, गुरु, तीर्थ और आचार्य का नाम लेकर या स्मरण करके सोवे तो वह किसी समय भी खराब स्वप्न नहीं देखता, प्रातःकाल में पुरुष को अपना दाहिना हाथ और स्त्री को अपना बांया हाथ अपने पूज्य प्रकाशक होने से देखना चाहिये।

मातृप्रभृतिवृद्धानां, नमस्कारं करोति यः।
तीर्थयात्राफलं तस्य तत्कार्योऽसौ दिने दिने ॥
अनुपासितवृद्धानामसेवितमहीभुजां।
अवारमुख्या सुहृदां दूरे धर्मार्थसुखयः ॥

माता पिता और वृद्ध भाई आदि को जो नमस्कार करता है, उसे तीर्थयात्रा का फल होता है, इसलिये सुबह प्रतिदिन वृद्ध वंदन करना चाहिये। जिसने वृद्ध पुरुषों की सेवा नहीं की उसे धर्म की प्राप्ति नहीं, जिसने राजा की सेवा नहीं की उसे सम्पदा नहीं। और जिसने चतुर पुरुषों की सीख नहीं मानी उसे सुख नहीं।

प्रतिक्रमण करनेवाले को प्रत्याख्यान करने से पहिले सचित्तादि चौदह नियम ग्रहण करने पड़ते हैं सो करे एवं जो प्रतिक्रमण न करता हो उसे भी सूर्योदय से पेश्तर अपनी शक्ति के अनुसार चौदह नियम अंगीकार करना उचित है शक्ति के प्रमाण मे 'नमुक्कारसहि' आदि प्रत्याख्यान करना चाहिये। गंठसही, एकाशन, द्वासन करना योग्य है। चौदह नियम धारण किये हों उसको देशावगाशिक का प्रत्याख्यान करना चाहिये। विवेकी पुरुष को सद्गुरु के पास सम्यक्त्व मूल यथाशक्ति श्रावक के एकादि बारह व्रत अंगीकार करने चाहिये। बारह व्रतों का अंगीकार करना यह सर्वप्रकार से विरतिपन गिना जाता है। विरती को महाफलकी प्राप्ति होती है अविरती को तो निगोद के जीवोंके समान मानसिक, वाचिक, शारीरिक व्यापार न होने पर भी अधिक कर्मबंधादि महा दोष का संभव होता है। कहा है कि जिस भाववाले भव्य प्राणी ने थोड़ीभी विरति की है तो उसे देवता भी चाहते हैं क्योंकि देवता स्वयं विरति नहीं कर सकते। एकेंद्रिय जीव कवलाहार नहीं करते परन्तु विरति (त्याग) परिणाम के अभाव से उन्हें उपवास का फल नहीं मिलता। मन, वचन, काया से पाप न करनेपर भी अनंत कालतक जो एकेन्द्रि जीव एकेन्द्रिय पने रहते है सो भी अविरती का ही फल है। पशु (अश्वादिक) चाबुक, आर, भार वहन, वध, बंधन, वगैरह सैकड़ों प्रकार के दुःख पाते हैं, यदि पूर्वभव में विरती की होती तो इन दुःखों का सामना क्यों करना पड़ता।

अविरती नाम कर्म के उदय से देवताओं के समान गुरु उपदेश आदि का योग होने पर भी नवकारसी मात्रका प्रत्याख्यान न किया ऐसे श्रेणिक राजा ने क्षायिक समकितवंत और भगवंत महावीर स्वामी की

वारंवार अमृतमय वाणी सुनते हुये भी कौवे आदि के मांसमात्र का प्रत्याख्यान न किया। प्रत्याख्यान करने से ही अविरती को जीता जाता हैं। प्रत्याख्यान भी अभ्याससे होता है। अभ्यास द्वारा ही सर्व क्रियाओं में कुशलता आती है। अनुभव सिद्ध है कि लेखनकला पठनकला, गीतकला, नृत्यकला, आदि सब कलायें बिना अभ्यासके सिद्ध नहीं होती। इसलिये अभ्यास करना श्रेयस्कर है। कहा है कि—

अभ्यासेन क्रियाः सर्वा। अभ्यासात्सकलाः कलाः ॥
अभ्याद्ध्यानमौनादिः किमभ्यासस्य दुष्करम् ॥ १ ॥

अभ्याससे सब क्रिया, सब कला, और ध्यान मौनादिक सिद्ध होते हैं। अभ्यासको क्या दुष्कर है ?

निरंतर विरति परिणामका अभ्यास रक्खा हो तो परलोकमें भी वह साथ आती है कहा है कि,—

जं अभ्भसेइ जीवो। गुणं च दोसं च एथ्थ जम्मंमि।
तं पावइ परलोए तेणय अभ्यासजोएण ॥ १ ॥

गुण अथवा दोषका जीव जैसा अभ्यास इस भवमें करता है वह अभ्यास (संस्कार) उसे परलोकमें भी उदय आता है।

इसलिये अपनी इच्छानुसार यथाशक्ति बारह व्रतके साथ सम्बन्ध रखनेवाले व्रत नियम वगैरह विवेकी पुरुषको अंगीकार करने चाहिये। श्रावक श्राविकाके योग्य इच्छा परिमाण व्रत लेनेसे पहिले खूब विचार करना चाहिए कि जिससे भलीभांति पल सके वैसा ही व्रत अंगीकार किया जाय। यदि ऐसा न करे तो व्रत भंगादि अनेक दोषोंका संभव होता है। अर्थात् जो जो नियम अंगीकार करने हों वे प्रथम विचार पूर्वक ही अंगीकार करने चाहिए जिससे कि वे यथार्थ रीति से पाले जा सकें। सर्व नियमोंमें "सहस्सागारेणं" अनथ्थणा भोगेणं, महत्तरागारेणं सव्व समाहिवत्तिया गारेणं, " इन चारों आगारोंको खुला रखना चाहिये। यदि पहिले से ऐसा किया हुवा हो तो किसी कम वस्तु के खुला रखने पर भी अनजानतया विशेष सेवन की गई हो तथापि व्रतभंगका दोष नहीं लगता। फक्त अतिचार मात्र लगता है परन्तु यदि जानकर एक अंश-मात्र भी सेवन की जाय तो व्रतभंगका दूषण लगता है। कदापि कर्म दोषसे या परवशतासे व्रतभंग हुवा जानकर भी पीछेसे विवेकी पुरुषको उस अपने नियमको पालन ही करना चाहिये। जैसे कि, पंचमी या चतुर्दशी आदि तिथिके दिन तिथ्यंतरकी भ्रांतिसे सचित्त या सब्जी त्याग करनेका नियम होनेपर वह वस्तु मुखमें डाल दिये बाद मालूम हो जाय कि आज मेरे नियमका पंचमी दिन या चौदस है तो उस वक्त मुख में रहे हुये उस वस्तुके एक अंशमात्रको भी न सटके किन्तु वापिस थूककर अचित्त जलसे मुखशुद्धि करके पंचमी या चतुर्दशीके नियमके दिन समान ही वर्ते। उस दिन भूलसे ऐसा भोजन संपूर्ण किया गया हो तो दूसरे दिन उसके प्रायश्चित्तमें उस नियमका पालन करे। जबतक अपने व्रतवाले दिनका संशय हो, या काल्पनिक वस्तुका संशय हो तबतक यदि उसे गृहण करे तो दोष लगता है, जैसे कि, है तो सप्तमी तथापि अष्टमीकी भ्रांति हुई, तब अष्टमी का निर्णय न हो तबतक सब्जी वगैरह ग्रहण नहीं की जा सकती यदि

खाय तो व्रतभंगका दूषण लगता है) अधिक बिमारी हुई या भूतादि दोष की परवशतासे या सर्प दंशादि असमाधी होनेसे यदि उस दिन तप न किया जा सके तथापि चार आगार खुले रहते हैं इसलिये व्रतभंग दोष नहीं लगता। सब नियमों मे ऐसा ही समझना चाहिये। कहा है ;कि—

वयभंगे गुरुदोसो। थोवस्स विपालणा गुणकरीअ ॥
गुरुलाघवं च नेयं। धम्ममि अओअ आगारा ॥

थोड़ा भी व्रतका पालन करना बहुत ही गुणकारी है और व्रतभंगसे बड़ा दोष लगता है। नियम धारण करनेका बड़ा फल है, जैसे कि किसी वणिक पुत्रने अपने घरके नजदीक रहने वाले कुम्हारके मस्तककी ताल देखे बिना भोजन न करना, ऐसा नियम कौतुक मात्रसे लिया था तथापि वह उसे लाभकारी हुवा। इस प्रकार पुण्य की इच्छा करने वाले मनुष्यको अल्प मात्र अंगीकार किया हुवा नियम महान लाभकारी होता है।

"नियम लेनेका विधि"

प्रथमसे मिथ्यात्व का त्याग करना, जैन धर्मको सत्य समझना, प्रति दिन यथाशक्ति तीन दफा या दो दफा अथवा एकबार जिन पूजा या जिनेश्वर भगवान के दर्शन करना या आठों थुइयों से या चार थुइयो से चैत्यवंदन करना वगैरहका नियम लेना इस प्रकार करते हुए यदि गुरुका जोग हो तो उन्हे वृद्धवंदन, या लघुवंदन, (द्वादशवर्त वंदन) से नमस्कार करना, और गुरुका जोग न हो तो भी अपने धर्माचार्य (जिससे धर्मका बोध हुवा हो) का नाम लेकर प्रतिदिन वंदन करने का नियम रखना चाहिये। चातुर्मास में पांच पर्वमें अष्टप्रकारी पूजा या स्नात्रपूजा करनेका, यावज्जीव प्रतिवर्ष जब नवीन अन्न आवे उसका नैवेद्य कर प्रभुके सन्मुख चढ़ा कर बादमे खाने का, एवं प्रति वर्ष जो नये फल फूल आवें उन्हें प्रथम प्रभु को चढ़ाकर बादमे सेवन करनेका, प्रतिदिन सुपारी, बादाम वगैरह फल चढ़ाने का, आषाढ़ी, कार्तिकी और फाल्गुनी, पूर्णिमा तथा दीवाली पर्युसण वगैरह बड़े पर्व दिनों मे प्रभु के आगे अष्टमङ्गलिक करने का निरन्तर पर्वमें या वर्षमें, कितनी एक दफा या प्रतिमास अशन, पान, खादिम, स्वादिमादिक उत्तम वस्तुयें जिनराजके सन्मुख चढ़ाकर या गुरुको अन्नदान देकर बादमें भोजन करनेका प्रतिमास या प्रतिवर्ष अथवा मन्दिरकी वर्षगांठ अथवा प्रभुके जन्म कल्याणक आदिके दिनोंमे मंदिरोंमें बड़े आडम्बर महोत्सव पूर्वक ध्वजा चढानेका, एवं रात्री जागरण करने का, निरन्तर या चातुर्मासमे मन्दिर में कितनी एक दफा प्रमार्जन करनेका, प्रतिवर्ष या प्रतिमास जिन मंदिरमे अंगलूना, दीपकके लिए सूत या रुईकी पूनी, मंदिरके गुभारेके बाहरके कामके लिये तेल, अन्दर गुभारे के लिये घी, और दीपक आच्छादक, प्रमार्जनी, (पूंजनी) धोतियां उत्तरासन, वालाकूंची, चंदन, केशर, अगर, अगरबत्ती वगैरह कितनी एक वस्तुयें सर्वजनों के साधारण उपयोगके लिये रखनेका, पोषधशालामें कितनी एक धोतियां, उत्तरासन, मोहपत्ती, नवकार वाली, प्रोछना, चर्वला, सूत, कंदोरा, रुई, कंबली, वगैरह रखने का, बरसात के समय श्रावक वगैरहको बैठनेके लिए कितने एक पाट, पाटले, चौकी, बनवाकर शाला मे रखने का प्रतिवर्ष वस्त्र आभूषणादिक से या अधिक न

बन सके तो अंतमें सुनकी नवकार वाली से भी संघ पूजा करने का, प्रतिवर्ष प्रभावना कर के या पोषा करने वालों को जिमा के या कितने एक श्रावको को जिमा कर यथा शक्ति साधर्मिक वात्सल्य करनेका या प्रतिवर्ष दीन, हीन, दुःखित श्रावक का यथा शक्ति उद्धार करने का प्रतिदिन कितने एक लोगस्सका कायोत्सर्ग करनेका, नवीन ज्ञानके अभ्यास करने का, या बैसा बन सके तो तीनसौ आदि नवकार गिनने का निरन्तर दिन में नोकारसी वगैरह और रात्रि को दिवसचरिम (चौविहार) आदि प्रत्याख्यानके करनेका, दो दफा (सुबह शाम) प्रतिक्रमण करनेका, जबतक दीक्षा अंगीकार न की जाय तबतक अमुक वस्तु खानेका इत्यादि सबका नियम रखना चाहिये।

तदनन्तर ज्यों बने त्यों यथाशक्ति श्रावकके बारह व्रत अंगीकार करने चाहियें, उस में सातवें भोगोपभोग व्रतमें सचित्त, अचित्त, मिश्र वस्तु का यथार्थ स्वरूप जानना चाहिये।

"सचित्त अचित्त मिश्र वस्तुओंका स्वरूप"

प्रायः सब प्रकारके धान्य, धनियां, जीरा, अजवायन, सोफ, सुवा, राई, खसखस, आदि सर्व जातिके दाने सर्व जातिके फल, पत्र, नमक, क्षार, लाल सेंधव, संचल, मट्टी, खड़ी, हिरमिजी, हरी दतवण, ये सब व्यवहार से सचित्त जानना। पानी मे भिगोये हुये चणे, गेहूं, वगैरह कण तथा मूंग उड़द चणे आदिकी दाल भी यदि पानीमें भिगोई हो तो मिश्री समझना, क्योंकि कितनी एक दफा भिगोई हुई दाल वगैरह में थोड़े ही समय बाद अंकूर फूटते हैं। एवं पहले नमक लगाये बिना या बफाये बगैर या रेती बिना सेके हुये चणे, गेहूं, ज्वार वगैरह धान्य, खार आदि दिये बिनाके सेके हुये तिल, होले, पोंख, सेकी हुई फलीं, एवं कालीमिरच, राई हींग, आदिका छोंक देनेके लिये, रांधा हुवा खीरा, ककड़ी तथा सचित्त बीज हों जिसमें ऐसे सर्व जातिके पके हुये फल इन सबको मिश्र जानना। जिस दिन तिलसकी बनाई हो उस दिन मिश्र समझना। यदि रोटी, पुरी, वगैरह मे जो तिलवट डालकर सेकी हुई हो तो वह रोटी आदि दो घड़ीके बाद अचित्त समझना। दक्षिण देशमे या मालवा आदि देशो में बहुतसा गुड़ डालकर तिलवट को बहुत सेक डालते हैं इससे उसे अचित्त गिनने का व्यवहार है। वृक्षसे तत्काल निकला, लाख, गोंद, खाख, छाल, तथा नारियल, नीबू, जामुन, आंब, नारंगी, अनार, ईख, वगैरह का तत्कालिक निकाला हुवा रस या पानी, तत्काल निकाला हुवा तिल वगैरहका तेल, तत्काल फोडे हुये नारियल, सिंगाड़े, सुपारी, प्रमुखफल, तत्काल बीज निकाल डाले हुये पके फल, बहुत दबाकर कणिकारहित किया हुवा जीरा, अजवायन वगैरह दो घड़ी तक मिश्र समझना। तदनंतर अचित्त होते हैं, ऐसा व्यवहार है। अन्य भी कितने एक प्रबल अग्निके योग बिना प्रायः जो अचित्त किये हुवे होते हैं उन्हें भी दो घडी तक मिश्र और उसके बाद अचित समझने का व्यवहार है। जैसे कि कच्चा पानी, कच्चा फल, कच्चा धान्य, इन्हें खूब मसलकर नमक डालकर खूब मर्दन किया हो तथापि अग्नि वगैरह प्रबल शस्त्रके बिना अचित्त नहीं होता इस विषयमे भगवती सूत्रके ८१ वें शतकमें तीसरे उद्देशमे कहा हुवा है कि "वज्रमय शिलापर वज्रमय पीसनेके पथ्थरसे पृथ्वीकायके खंडको बलवान पुरुष ८१ दफा जोरसे पीसे तथापि कितने एक जीव पीसे और कितने एक जीवोको खबर तक

नहीं पड़ी" (इस प्रकार का सूक्ष्म पना होता है, इसलिए प्रबल अग्निके शस्त्र विना वह अचित्त नहीं होता), सौ योजनसे आई हुई हरडे, छुवारे, लालद्राक्ष किसमिस, खजूर, कालीमिरच, पीपल, जायफल, बादाम, वायविडंग, अखरोट, नीलजां, जरदालु, पिस्ते, चणकबोबा; (कबाब चिनी) फटक जैसा उज्वल सिंधव आदि क्षार, बीडलवण (भट्टीमें पकाया हुवा), बनावटसे बना हुवा हरएक जातिका क्षार, कुंभार द्वारा मर्दन की हुई मट्टी, इलायची, लवंग जावंत्री, सूकी हुई मोथ, कौंकण देश के पके हुवे केले, उबाले हुये सिंगाडे, सुपारी आदि सर्व अचित्त समझना ऐसा व्यवहार है। व्यवहार सूत्रमें कहा है:—

जोयण सयंतु गंतु । अणाहारेण भंडसंकंती ॥
वायागणि धुमेणय । विद्धत्थं होइ लोणाइं ॥ १ ॥

नमक वगैरह सचित्त वस्तु जहां उत्पन्न हुई हो वहांसे एकसो योजन उपरान्त जमीन उल्लंघन करने पर वे आपसे आप ही अचित बन जाती हैं। यदि यहांपर कोई ऐसी शंका करे कि, किसी प्रबल अग्निके शस्त्र विना मात्र सौ योजन उपरांत गमन करनेसे ही सचित वस्तु अचित किस तरह हो सकती हैं ? इस का उत्तर यह है कि, जिस स्थानमें जो जो जीव उत्पन्न होते हैं वे उस देशमें ही जीते हैं, वहांका हवा पानी बदलनेसे वे विनाशको प्राप्त होते हैं। एवं मार्गमें आते हुए आहारका अभाव होनेसे अचित होजाते हैं। उनके उत्पत्ति स्थानमें उन्हें जो पुष्टि मिलती है वह उन्हें मार्गमें नहीं मिलती, इससे अचित्त हो जाते हैं। तथा एक स्थानसे दूसरे स्थानमें डालते हुये, पारस्परिक अथडाते हुये, डालते हुये उथल पुथल होनेसे वे सब वस्तुयें सचित्तसे अचित हो जाती हैं। सौ योजनसे आते हुये बीचमें अति पवनसे, तापसे, एवं धूम्र वगैरहसे भी वे सब वस्तुयें अचित हो जाती हैं।

"सर्व वस्तुको सामान्यसे बदलनेका कारण"

आरूहणे ओरुहणे । निसिअणे गोणाईणं च गाउम्हा ॥
भूमाहारेच्छेए । उपक्कमेणं च परिणामो ॥ १ ॥

गाड़ीपर या किसी गधे, घोड़े, बैलकी पीठ पर वारंवार चढाने उतारने से या उन वस्तुओंपर दूसरा भार रखने से या उन पर मनुष्यों के चढने बैठने से या उनके आहार का विच्छेद होनेसे उन क्रियाणा रूप वस्तुओंके परिणाममें परिवर्तन होता है।

जब उन्हें कुछ भी उपक्रम (शस्त्र) लगता है उस वक्त उनका परिणामान्तर होता है। वह शस्त्र तीन प्रकारका होता है। स्वकाय शस्त्र, २ परकाय शस्त्र, ३ उभयकाय शस्त्र,। स्वकाय शस्त्र जैसे कि, खारा पानी मीठे पानीका शस्त्र, काली मिट्टी पीली मिट्टीका शस्त्र, परकाय शस्त्र जैसे कि, पानीका शस्त्र अग्नि और अग्निका शस्त्र पानी। उभयकाय शस्त्र—जैसे कि, मिट्टीमें मिला हुवा पानी निर्मल जलका शस्त्र, इस प्रकार सचित्त को अचित्त होनेके कारण समझना। कहा है कि:—

उप्पल पउमाईपुण, उन्हे दिन्नाइं जाम न धरंति,

मोगरग जुहिआओ, उन्हेच्छूढा चिरं हुंति ॥ १ ॥
मगदंति अ पुप्फाइं उदयेच्छुढा जाम न धरंति ॥
उप्पल पउमाइपुण, उदयेच्छूढा चिरं हुंति ॥ २ ॥

उत्पल कमल उदक योनीय होनेसे एक प्रहर मात्र भी आताप सहन नही कर सकता। वह एक प्रहरके अन्दर ही अचित हो जाता है। मोगरा, मचकुन्द, जुईके फूल उष्णयोनिक होनेसे बहुत देर तक आतापमें रह सकते हैं (सचित रहते हैं) मोगरेके फूल पानीमें डाले हों तो प्रहर मात्र भी नहीं रह सकते, कुमला जाते हैं। उत्पल कमल (नील-कमल) पद्मकमल (चन्द्रविकाशी) पानीमें डाले हों तथापि बहुत समय तक रहते हैं। (सचित रहते हैं परन्तु कुमलाते नहीं) कल्प व्यवहारकी वृत्तिमें लिखा है कि:—

पत्ताणं पुप्फाणं । सरडु फलाणं तहेव हरिआणं ॥
बिंढंमि मिलाणंमि । नायव्वं जीव विप्पजढं ॥

पत्रके, पुष्पके, कोमल फलके एवं बाथुल आदि सर्व प्रकारकी भाजियोंके, और सामान्यसे सर्व वनस्पतियोंके ऊगते हुये अंकूर, मूल नाल वगैरह कुमला जायें तब समझना कि अब वह वनस्पति अचित हुई है। चावल आदि धानके लिये भगवती सूत्रके छठे शतकमें पांचवें उद्देश्यमें सचित अचितके विभाग बतलाते हुये कहा है कि—

अहणं भंते सालीणं वीहीणं गोहुमाणं जवाणं जवजवाणं एणसिणं धन्नाणं कोट्ठा ऊत्ताणं पल्लाउत्ताणं मंचाउत्ताणं। मालाउत्ताणं ओलित्ताणं लित्ताणं पिहिआणं मुद्दिआणं लेछिआणं केवइयं कालं जोणीसं विट्ठई। गोयमा जहण्णेणं अंतो मुहुत्तं उक्कोसेण तिन्नि संवच्छराइं तेणपरं जोणि पमिलाइ विद्धंसइ वीरा अवीरा भवई।

(भगवान् से गौतम ने पूछा कि,) "हे भगवन्! शालिकमोदके चावल, कमलशालि चावल, व्रीहि याने सामान्य से सर्व जाति के चावल, गेहूं, जौ, सब तरहके जव, जवजव याने बड़े जव, इन धान्यों को कोठारमें भर रक्खा हो, कोठीमें भर रक्खा हो, माचे पर बांध रक्खे हों, ठेकेमे भर रक्खे हों, कोठीमें डाल कर कोठीके मुख बंद कर लींप दिये हों, चारों तरफ से लीप दिये हों, ढकनेसे मजबूत कर दिये हों, मुहर कर रक्खे हों या ऊपर निशाण किये हों, ऐसे संचय किये हुये धान्य की योनि (ऊगनेकी शक्ति) कितने वक्त-तक रहती है,?" (भगवान् ने उत्तर दिया कि,) "हे गौतम! जघन्य से-कम से कम अंतर्मुहूर्त (दो घड़ीके अन्दरका समय) तक योनि रहती है, इसके बाद योनि कुमला जाती है, नाशको प्राप्त होती है, बीज अबीज रूप बन जाता है।" फिर पूछते हैं कि,

अहभंते कलाय मसूर, तिल मुग्ग मास निप्फा व कुलथ्थ अलिसंदग सइण पलिमंथग माइण एएसिणं धन्नाणं जहा साली तहा एयाणविणवरं पंच संवच्छराइं सेसं तंचेव ॥

"हे भगवन्! कलाय, (मिवुड नामका धान्य या त्रिपुरा नामका धान्य, किसी अन्य देशमें होता है सो)

मसूर, तिल, मूग, उडद, वाल, कुलथी, चोला, अरहर, इतने धान्यों को पूर्वोक्त रीतिसे रक्खे हों तो उनकी योनि कितने समय तक रहती है ?" उत्तर—जघन्य से अंत मुहूर्त और उत्कृष्टसे पाँच वर्षतक रहती है ? उसके बाद पूर्वोक्तवत् अचित्त अबीज हो जाती हैं।

अहभंते ! अयसि कुसंभग कोद्दव कंगु वरट्ट रालग कोडुसग सण सरिसव मूलबीअ माईणं धण्णाणं तहेव नवरं सत्त संवच्छराइं ॥

"हे भगवन् ! अलसी, कसुंबा, कोन्द्रा, कंगनी, वंटी, राला, कोडसल, सण, सरसव, मूली के बीज इत्यादि धान्य की योनि कितने वर्ष तक रहती है ?" उत्तर—"हे गौतम ! जघन्य से अंतमुहूर्त और ज्यादा से ज्यादा रहे तो सात वर्षतक उनकी योनि सचित्त रहती है। इसके बाद बीज अबीज रूप हो जाता है।" (इस विषयमें पूर्वाचार्यों ने भी उपरोक्त अर्थ की तीन गाथायें बनाई हुई हैं)।

कपास के बीज तीन वर्षतक सचित्त रहते हैं; इसलिये कल्प व्यवहार के भाष्य में लिखा है कि,

सेडुगंति वरिसाइयं गिन्हंति सेडुकं त्रिवर्षातीतं विध्वस्तयोनिकमेव ग्रहितुं कल्पते। सेडुक कर्प्पास इति तेडुंहृत्तौ ॥

बिनौले तीन वर्षके बाद अचित्त होते हैं, तदनन्तर ग्रहण करना चाहिये।

आटेके मिश्र होनेकी रीति।

पणदिण मिस्सो लुट्टो, अचालियो सावणे अ भद्दवए।
चउ आसोए कत्तिअ, मिगसिरपोसेसु तिन्नि दिणा ॥ १ ॥
पण पहर माह फग्गणि, पहरा चत्तारि चित्तवईसाहे।
जिट्ठासाढे ति पहरा, तेणपर होइ अचित्तो ॥ २ ॥

"न छाना हुवा आटा श्रावण और भाद्रव मासमें पांच दिन तक, आश्विन और कार्तिक मासमे चार दिन तक, मार्गशीर्ष और पौष मासमें तीन दिन तक, माह और फाल्गुन मासमें पांच प्रहर तक, चैत्र और वैशाख में चार प्रहर तक, और जेठ एवं अषाढमें तीन प्रहर तक मिश्र रहकर बादमें अचित्त गिना जाता है। और छाना हुवा आटा दो घड़ीके बाद ही अचित्त हो जाता है।" यदि यहांपर कोई शंकाकार यह पूछे कि, अचित्त हुवा आटा आदि अचित्त भोजन करने वालेको कितने दिन तक कल्पता है ? (उत्तर देते हुये गुरु श्रावक आश्रयी कहते हैं कि,) इसमें दिनका कुछ नियम नहीं परन्तु सिद्धान्त में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, आश्रयी नीचे मुजब व्यवहार बतलाया है। "द्रव्य से नया पुराना धान्य, क्षेत्र से अच्छे खराब क्षेत्र में पैदा हुवा धान्य, कालसे वर्षा, शीत, उष्ण काल के उत्पन्न हुये धान्य, भावसे जो स्वाद भ्रष्ट न हुवा तो वह धान, पक्ष मासादिक की अवधि बिना जबसे वह धान्यके वर्ण, गंध, रस, स्पर्शमें परिवर्तन हुवा तबसे ही वह धान्य त्यागने योग्य समझना चाहिये। साधु आश्रयी कल्प व्यवहार की वृत्ति के चौथे खंड में लिखा है कि, "जिस देशके आटेमें थोडे समय में विशेष जीव न पड़ते हों, वैसे देशका आटा लेना,

परन्तु जिस देशके आटेमे थोडे समय में हों जीव पड़ते हो उस देशका आटा न लेना। यदि ऐसा करने से संयम निर्वाह न हो याने बहुत दूर जाना हो और मार्ग मे श्रावक के घर वाले गांव न आते हों तो जिसके घरसे आटा लेना पड़े वहांसे उसी दिनका पीसा हुवा ले। यदि ऐसा करते हुये भी निर्वाह न हो तो दो दिन का लेवे, ऐसा करते हुये भी निर्वाह न हो तो तीन दिनका एवं चार दिनका भी पीसा हुआ आटा लेवें। परन्तु सबको जुदा २ रखकर जिस दिन उपयोगमे लेना हो उस दिन नीचे लिखे मुजब विधि से उपयोग में ले। नीचे एक वस्त्र बिछाकर उसपर पात्र कम्बल करके उसपर आटेको बिछा दे, उसमे यदि कदाचित जीव उत्पन्न हुये हों तो वे कम्बल में आ जायगे उन्हें लेकर एक वस्त्रमे रख एवं नव दफा देख देख कर तलास करने से यदि जीव न मालूम दे तब उसे उपयोगमे ले। कदाचित् जीवकी संभावना हो तो फिर भी नव वार गवेषणा करे। तथापि यदि जीवका सम्भव मालूम हो तो तीसरी दफा नव वार गवेषणा करे; इस तरह जबतक जीवके रहनेका सम्भव हो तबतक गवेषणा करके जब बिलकुल निर्जीव मालूम हो तब आहार करे। जो जीव उद्धृत किये हुये हो उन्हें जहांपर उनकी यतना हो सके उन्हें पीड़ा न पहुंचे ऐसे स्थान पर रखना उचित है।

"पक्कान आश्रयी काल नियम"

वासासु पनर दिवसं, सीओ ण्इ कालेसु मास दिणवीसं।
ओगाहिमं जइणं, कप्पइ आरम्भ पढम दिणा ॥ १ ॥

"सब जातिके पक्वान्न वर्षाऋतु में बनानेसे पन्द्रह रोज तक, शीतमें एक महीना और उष्ण काल में वीस दिन तक कल्पते हैं ऐसा व्यवहार है।" यह गाथा किस ग्रन्थकी है इस बातका निश्चय न होनेसे कितनेक आचार्य कहते हैं कि, जबतक वर्ण, रस, गंध स्पर्श, न बदले तबतक कल्पनीय है, बाकी दिन वगैरह का कुछ नियम नहीं।

"दहि, दूध और छासका विनाश काल"

जइ मुग्ग मासप्पभई, विदलं कच्चंमि गोरसे पडई।
ता तस्स जीवुप्पत्तिं, भणंति भणंति दहिए विदुदिणूवरिं ॥ ३ ॥

यदि कच्चे गोरस गरम किये विना (दूध, दहि, छास)में मूंग, उडद, चोला, मटर, वाल, वगैरह द्विदल पड़े तो उसमें तत्काल ही त्रस जीवकी उत्पत्ति हो जाती है, और दहि मे तो दो दिनके उपरान्त होने पर त्रस जीवकी उत्पत्ति हो जाती है।" "दध्यहर्द्वितयातीतमिति हैमवचनात्" दहि दो दिनतक कल्पता है तीसरे दिन न कल्पे इसलिये उसे तीसरे दिन वर्जनीय समझना।

"द्विदल"

जिस धान्य को पीलने से उसमें तेल न निकले और सरीखी दो पड़ हो जायें उसे द्विदल कहते हैं। दो पड़ होते हों परन्तु जिसमें से तेल निकलता हो वह द्विदल नहीं समझा जाता।

"अभक्ष्य किसको कहते हैं"

बासी अन्न, द्विदल, नरम पूरी आदि, एक पानी से रांधा हुवा भात आदि दूसरे दिन सर्व प्रकारके खराब अन्न, जिसमें निगोद लगी हो वैसा अन्न, काल उपरान्त का पक्वान्न, बाइस अभक्ष्य, बत्तीस अनंतकाय, इन सबका स्वरूप हमारी की हुई वंदिता सूत्र की वृत्ति से जान लेना। विवेकवन्त प्राणी को जैसे अभक्ष्य वर्जनोय हैं वैसे ही बहुत जीवोंसे व्याप्त बहु बीज वाले फल भी वर्जनीय हैं। वैसे ही निंदा न होने देने के लिये, रांधा हुवा सूरण, अद्रक, बैंगन, वगैरह यद्यपि अचित हुये हों और उसे प्रत्याख्यान भी न हों तथापि वर्जनीय हैं, तथा मूली तो पत्तों सहित त्याज्य है। सोंठ, हलदी, नाम मात्र स्वाद के बदलने से सुखाये बाद कल्पते हैं।

"गरम किये पानीकी रीति"

पानीमें तीन दफा उबाल आ जाय तबतक मिश्र गिना जाता है, इसलिये पिंडनिर्युक्ति में कहा है:—

उसिणोदग मणुवत्ते तिदंड वासेअ पडिअ मित्तंमि।
मुत्तुणा देसतिगं चाउल उदगं बहु पसन्नं ॥ १ ॥

जब तक तीन बार उबाल न आवे तब तकका गरम पानी भी मिश्र गिना जाता है (इसके बाद अचित गिना जाता है) जहां पर बहुत से मनुष्यों का आना जाना होता हो ऐसी भूमि पर पड़ा हुवा बरसाद का पानी जब तक वहां की जमीन के साथ परिणत न हो तब तक वह पानी मिश्र गिना जाता है, तदनंतर सचित्त हो जाता है। जंगलकी भूमिपर बरसाद का जल पड़ते ही मिश्र होता है उसके बाद तत्काल ही सचित बन जाता है। चावलों के धूवन का पानी आदेश त्रिक को छोड़ कर जिसका उल्लेख आगे किया जायगा तंदुलोदक जब तक गदला रहता है तब तक मिश्र गिना जाता है परंतु जब वह निर्मल हो जाता है तब से अचित्त गिना जाता है। (आदेश त्रिक कहते हैं) कोई आचार्य फर्माते हैं कि, चावलोंके धोवनका पानी एक बरतनमें से दूसरे बरतनमें डालते हुये जो छींटे उड़ते हैं वे दूसरे बरतनको लगते हैं। वे छींटें जब तक न सूख जाय तब तक चावलोंका धोवन मिश्र गिनना। कोई आचार्य यों कहते हैं कि, वह धोवन एक बरतनमेंसे दूसरे बरतनमें ऊंचेसे डालनेसे उसमें जो बुलबुले उठते हैं वे जब तक न फूट जायें तब तक उसे मिश्र गिनना। कोई आचार्य कहते हैं कि, जब तक वे चावल गले नहीं तब तक वह चावलोंका धोवन मिश्र गिना जाता है; (इस ग्रंथ के कर्ता आचार्य का सम्मत बतलाते हैं) ये तीनों आदेश प्रमाण गिने जायें ऐसा नहीं मालूम होता है-क्योंकि यदि कोई बरतन कोरा हो तो उसमें धोवन के छींटे तत्काल ही सूख जायें और चिकने बरतन में धोवन डालें तो उसमें लगे हुये छींटोंको सूखते हुये देर लगे, एवं कोई बरतन पवन में या अग्नि के पास रक्खा हो तो तत्काल ही सूख जाय और दूसरा बरतन वैसे स्थान पर न हो तो विशेष देरी लगे, इसलिये यह प्रमाण असिद्ध गिना जाता है। बहुत ऊंचे से धोवन बरतन में डाला जाय तो बहुत से बुलबुले उठें, नीचे से डाला जाय तो कमती उठें; वह थोड़े समयमें मिट जायें या अधिक समयमें मिटें इससे यह हेतु भी सिद्ध नहीं

हो सकता। एवं चुल्हेमे अग्नि प्रबल हो तो थोड़ी ही देर मे चावल गल जायें और यदि मंद हो तो देरी से गलें, इस कारण यह हेतु भी असिद्ध ही है। क्योंकि इन तीनों हेतुओं में काल का नियम नहीं रह सकता; इसलिये ये तीनों ही हेतु असिद्ध समझना। सच्चा हेतु तो यही है कि जब तक चावल का धोवन निर्मल न हो तब तक मिश्र समझना और तदनंतर उसे अचित गिनना। बहुत से आचार्यों का यही मत होने से यही व्यवहार शुद्ध है। एवं पहिली दफा, दूसरी दफा, और तीसरी दफाके धोवन में थोड़े ही टाईम तक चावल भिगोये हों तो मिश्र, बहुत देरतक चावल भिगोये हों तो अचित्त होता है; और चौथी दफाके धोवन में बहुत देर तक भी चावल रखें हो तो भी सचित्त ही गिनना ऐसा व्यवहार है। विशेषता इतनी है कि, पहले तीन दफा का चावलोंका धोवन जब तक मलिन रहता है तब तक मिश्र रहता है परंतु जब वह बिलकुल निर्मल स्वच्छ बन जाता है तब अचित्त हो जाता है परंतु चौथी दफाका धोवन चावलोंसे मलिन ही नहीं होता इसलिये वह जैसा का तैसा ही पूर्व रूप में रहता है।

तिव्वोदगस्स गहणं, केइ भाणेसु असुइ पडिसे हो।
गिहि भायणेसु गहणं, ठियवासे मीसगच्छारो ॥ १ ॥

अग्नि पर तपाये हुये पानी में से जब तक धुवां निकलता हो तब तक अथवा सूर्य की किरणोंसे अत्यंत तपा हुवा जो पानी होता है, उसे तीव्र उदक कहते हैं। वैसे तीव्र उदक को जब शस्त्रका अधिक संबंध होता है तब वह पानी अचित्त हो जाता है। उसे ग्रहण करने मे किसी प्रकार की विराधना नहीं होती। कितने एक आचार्य कहते हैं, उपरोक्त पानी अपने पात्रमें ग्रहण करना। इस विषय में बहुत से विचार होने से आचार्य उत्तर देते हैं। उस पानीमें अशुचि पन है इसलिये अपने पात्रमें लेनेका निषेध है, इसी कारण गृहस्थकी कुंडी वगैरह बरतनमें लेना। तथा बरसाद बरसता हो तो उस समय मिश्र गिना जानेसे वह पानी नहीं लेना; परंतु बरसाद रुके बाद भी अंतमुहूर्त काल बीतने पर ग्रहण करने योग्य है। जो पानी बिलकुल प्रासुक हुवा है (अचित्त हुवा है) वह चातुर्मास में तीन पहर के उपरांत पुनः सचित हो जाता है, इसीलिये उस तीन पहर के अन्दर भी अचित्त जल में क्षार, कलि चूना, वगैरह डालना कि, जिस से पानी भी निर्मल हो रहता है।

"अचित जल का कालमान"

उसिणोदगं तिदंडु, कलियं फासुजलं जइ कप्पं।
नवरं गिलाणाइकए, पहर तिगोवरींवि धरियव्वं ॥ १ ॥
जायइ सचित्तासे, गिम्हासु पहर पंचगस्सुवरिं।
चउपहरूवरिं सिसिरे, वासासुजलं तिपहरूवरिं ॥ २ ॥

प्रासूक जलके कालमान के लिये प्रवचन सारोद्धार के १३२ वें द्वार में कहा है कि:—

"तीन उबाल वाला पानी अचित्त और प्रासूक जल कहलाता है, वह साधुजन को कल्पनीय है, परंतु ऊष्ण समय अधिक सुश्क होने से ऊष्ण ऋतु के दिनों में पांच पहर उपरांत समय होने पर वह जल पुनः सचित्त हो

जाता है, परंतु कदाचित् रोगादि के कारण से पांच प्रहर उपरांत भी साधू को रखना पड़े तो रक्खा जा सकता है, और शीतकाल स्निग्ध होने से जाड़े के मौसम में वह चार प्रहर उपरांत सचित्त हो जाता है। एवं वर्षाकाल अति स्निग्ध होने से चातुर्मास मे वह तीन प्रहर उपरांत सचित्त हो जाता है। इसलिये उपरोक्त काल से उपरान्त यदि किसी को अचित्त जल रखनेकी इच्छा हो तो उसमें क्षार पदार्थ डाल कर रखना कि जिस से वह अचित्त जल सचित्त न हो सके"। किसी भी बाह्य शस्त्रके लगे बिना स्वभाव से ही अचित्त जल है ऐसा यदि केवली, मनपर्यव ज्ञानी, अवधिज्ञानी, मतिज्ञानी, या श्रुतज्ञानी, अपने ज्ञान बलसे जानते हों तथापि वह अन्य व्यवस्था प्रसंग के (मर्यादा टूटने के) भय से उपयोग में नहीं लेते, एवं दूसरे को भी व्यवहार में लेने की आज्ञा नहीं करते। सुना जाता है कि, एक समय भगवान वर्धमान स्वामी ने अपने अद्वितीय ज्ञानबल से जान लिया था कि, यह सरोवर स्वभाव से ही अचित्त जल से भरा हुवा है तथा शैवाल या मत्स्य कच्छपादिक त्रस जीवसे भी रहित है, उस वक्त उनके कितने एक शिष्य तृषा से पीडित हो प्राणसंशय में थे तथापि उन्होंने वह प्रासूक जल भी ग्रहण करनेकी आज्ञा न दी। एवं किसी समय शिष्य जन भूखकी पीड़ासे पीडित हुये थे उस वक्त अचित्त तिल सकट, (तिलसे भरी गाडियां) नजदीक होने पर भी अनवस्था दोष रक्षा के लिये या श्रुतज्ञान का प्रमाणिकत्व बतलाने के लिये उन्हें वह भक्षण करने की आज्ञा न दी। पूर्वधर बिना समान्य श्रुतज्ञानी बाह्य शस्त्र के स्पर्श हुये बिना पानी आदि अचित्त हुवा है ऐसा नहीं जान सकते। इसीलिये बाह्य शस्त्रके प्रयोगसे वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, परिणामांतर पाये बाद ही पानी आदि अचित्त होने पर ही अंगीकार करना। कोरडू मूंग, हरडे की कलियां वगैरह यद्यपि निर्जीव हैं तथापि उन की योनी नष्ट नहीं हुई उसे रखने के लिये या निःशुकता परिणाम निवारण करने के लिये उन्हें दांत वगैरह से तोड़ने का निषेध है। ओघनिर्युक्ति की पिचहत्तरवीं गाथा की वृत्तिमें किसी ने प्रश्न किया है कि, हे महाराज ! अचित्त वनस्पति की यतना करने के लिये क्यों फरमाते हो? आचार्य उत्तर देते हैं कि, यद्यपि अचित्त वनस्पति है तथापि कितनी एक की योनि नष्ट नहीं हुई, जैसे कि गिलोय, कुरडु मूंग (गिलोय सूखी हुई हो तो भी उस पर पानी सींचने से पुनः हरी हो सकती है) योनि रक्षाके लिए अचित्त वनस्पति की यतना करना भी फलदायक है।

इस प्रकार सचित्त अचित्तका स्वरूप समझ कर फिर सप्तम व्रत ग्रहण करनेके समय सबका पृथक पृथक नाम ले कर सचित्तादि जो जो वस्तु भोगने योग्य हों उसका निश्चय कर के फिर जैसे आनन्द कामदेवादिक श्रावकों ने ग्रहण किया वैसे सप्तम व्रत अंगीकार करना। कदाचित् ऐसा करने का न बन सके तथापि सामान्यसे प्रतिदिन एक दो, चार, सचित्त, दस, बारह आदि द्रव्य; एक, दो, चार, विगय आदिका नियम करना। ऐसे दस रोज सचित्तादि का अभिग्रह रखते हुए जुदे जुदे दिन रोज फेरने से सर्व सचित्त के त्याग का भी फल मिल सकता है। एकदम सर्व सचित्तका त्याग नहीं हो सकता; परन्तु थोड़ा थोड़ा अदल बदल त्याग करने से यावज्जीव सर्व सचित्त के त्याग का फल प्राप्त किया जा सकता है।

पुप्फफलाणं च रसं। सुराइ मंसाणं महिलीयाणं च ॥

जाणंता जे विरया। ते दुक्कर कारए वंदे ॥ १ ॥

फूल फल के रस को, मांस मदिरा के स्वाद को, तथा स्त्रीसेवन क्रिया को, जानता हुवा जो वैरागी हुवा ऐसे दुष्कर कारक को वंदन करता हूं।

. सचित्त वस्तुओं में भी नागरवेल के पान दुःस्त्याज्य हैं, अन्य सब सचित्तको अचित्त किया हो तथापि उसका स्वाद लिया जा सकता है तथा आमका स्वाद भी सुकाने पर भी ले सकते हैं। परन्तु नागरवेल के पान निरंतर पानीमें ही पडे रहने से लील फूल कुंथु आदिक की बहुत ही विराधना होती है इसलिये पाप से भय रखने वाले मनुष्यों को रात्रि के समय पान सर्वथा न खाना चाहिये। कदाचित् किसीको उपयोग में लेने की जरूरत हो तो उसे प्रथम सेही दिनमें शुद्ध कर रखना चाहिये, परन्तु शुद्ध किये बिना प्रयोग में न लेना। पान कामदेवको उत्पन्न होने के लिये एक अंगरूप होनेसे और उसके प्रत्येक पत्र में असंख्य जीवकी विराधना होनेसे वह ब्रह्मचारियो को तो सचमुच ही त्याग ने लायक है। कहा है कि,—

जं भणियं पज्जत्तग। निस्साएवुक्कमंतपज्जत्ता ॥
जथ्थेगो पज्जत्तो। तथ्थ असंखा अपज्जत्ता ॥ ३ ॥

'जो इस तरह कहा है कि, पर्याप्ति के निश्राय मे (साथ ही) अपर्याप्ता उत्पन्न होते हैं सो भी जहां अनेक पर्याप्त उपजें वहां असंख्यात् अपर्याप्त होते हैं।" जब बाहर एकेन्द्रियमें ऐसा कहा है एवं सूक्ष्म एकेन्द्रिय में भी ऐसा ही समझना; ऐसा आचारांग प्रमुख की वृत्ति में कहा है।' इस प्रकार एक पत्रादिक से असंख्य जीव की विराधना होती है, इतना ही नहीं परन्तु उस पानके आश्रित जलमें नील फुलका संभव होनेसे अनंत जीवका विधान भी हो सकता है। क्योंकि, जल, लवणादिक असंख्य जीवात्मक ही हैं यदि उनमें शैवाल आदि हों तो अनंत जीवात्मक भी समझना; इसलिये सिद्धान्त में कहा है कि,:—

एगम्मि उदग बिंदुम्मि। जे जीवा जिणवरेहिं पण्णत्ता ॥
ते जइ सरिसव मित्ता। जंबुदीवे न मायंति ॥ १ ॥

पानीके एक बिंदुमें तीर्थंकरने जितने जीव फरमाये हैं यदि वे जीव सरसव प्रमाण शरीर धारण करें तो सारे जंबुद्वीपमें नहीं समा सकते।

अद्दामलग प्पमाणे। पुढवीकाए हवंति जे जीवा ॥
ते पारेवय मित्ता। जंबुदीवे न मायंति ॥ २ ॥

आमलक फल प्रमाण पृथ्वी कायके एक खंडमें जितने जीव होते हैं, वे कदाचित् कबूतरके समान कल्पित किये जायें तो सारे जंबूद्वीपमें भी नहीं समा सकते। पृथ्वीकाय और अपकायमें ऐसे सूक्ष्म जीव रहे हैं इसलिये पान खानेसे असंख्यात जीवोंकी विराधना होती है। इसलिये विवेकी पुरुषको पान सर्वथा त्याग करने योग्य है।

"सर्व सचित्तके त्यागपर अंबड परिव्राजकके सातसौ शिष्योंका दृष्टान्त"

अंबड नामा परिव्राजकके सातसो शिष्य थे। उसने श्रावकके बारहव्रत लेते हुये ऐसा नियम किया था कि, अचित्त और किसीने दिया हुवा हो ऐसा अन्नपाणी उपयोगमें लूंगा। परन्तु सचित्त और किसीने न दिया हो तो ऐसा अन्न जल न लूंगा। वे एक समय गंगा नदीके किनारे होकर उष्णकालके दिनोंमें चलते हुये किसी गांवमें जा रहे थे, उस समय सबके पास पानी न रहा इससे वे तृषासे बहुतही पीडित हुवे। परन्तु नदीके किनारे तापसे तपा हुवा अचित्त पानी भरा हुवा था, तथापि किसीके दिये विना अपने नियमके अनुसार उन्होंने वह अंगीकार न किया। इससे उन तमाम सातसौ परिव्राजकोंने वहां ही अनशन किया। इस प्रकार अदत्त या सचित्त किसीने अंगीकार न किया। अन्तमें वहां पर ही मृत्यु पाकर पांचवें ब्रह्म देवलोकमें सामानिक देवतया उत्पन्न हुये। इस तरह जो प्राणी सर्व सचित्तका त्याग करता है वह महात्मा महासुखको प्राप्त करता है।

"चौदह नियम धारण करनेका व्योरा"

जिसने पहले चौदह नियम अंगीकार किये हों उसे प्रतिदिन संक्षिप्त करने चाहिये, और जिसने न अंगीकार किये हों उसे भी अंगीकार करके प्रतिदिन संक्षिप्त करने चाहिये। उसकी रीति नीचे मजुब है।

१ सचित्त २ द्रव्व, ३ विगई, ।२ उवाण, ५ तंबोल, ६ वथ्थ, ७ कुसुमेसु ॥

८ वाहण ९ सयण १० विलेवण ११ बंभ १२ दिसि १३ न्हाण १४ भत्तेसु ॥

१ सचित्त—मुख्यवृत्तिसे सुश्रावकको सर्वदा सचित्तका त्याग करना चाहिये। यदि ऐसा न बन सके ... साधारणतः एक, दो या तीन आदि सचित्त वस्तु खुली रखकर बाकीके सर्व सचित्तका प्रतिदिन त्याग करना चाहिये। शास्त्रमें लिखा है कि "प्रमाणवंत निर्जीव निरवद्य (पाप रहित) आहार करनेसे श्रावक अपने आत्माका उद्धार करनेमें तत्पर रहने वाला सुश्रावक होता है"।

२ द्रव्य—सचित्त और विगय इन दो वस्तुओंको छोड़कर अन्य जो कुछ मुखमें डाला जाय वह सब द्रव्यमें गिना जाता है। जैसे कि खिचड़ी, रोटी, नियथाता लड्डू, लापसी, पापडी, चूर्मा, करंबा, पूरी, क्षीर, दूधपाक। इस प्रकार बहुतसे पदार्थ मिलनेसे भी जिसका एक नाम गिना जाता हो वह एक द्रव्य गिना जाता है। यदि धान्यके जुदे २ पदार्थ बने हुये हों, तथापि वह जुदा २ द्रव्य गिना जायगा। जैसे कि, रोटी, पुरी, मठडी, फुलका, धूलि, राब, वगैरह एक जातिके धान्यके होनेपर भी जुदा २ स्वाद और नाम होनेसे जुदा २ द्रव्य गिना जाता है। इसी प्रकार स्वादकी भिन्नतासे या परिणामांतर होनेसे जुदे २ द्रव्य गिने जाते हैं। ऐसे द्रव्य गिननेकी रीति विपक्षो संप्रदायके प्रसंगसे भिन्न होती है, सो गुरु परंपरासे जानलेना। इन द्रव्योंमेंसे एक दो, चार, या जितने उपयोगमें लेने हों उतने खुले रखकर अन्य सबका त्याग करना चाहिये।

३ विगई (विगय)—विगय खाने योग्य छ प्रकारकी हैं १ दूध, २ दही, ३ घी, ४ तेल, ५ गुड़, ६ सब प्रकारके पक्वान। इन छह प्रकारकी विगयोंसे जो जो विगय ग्रहण करनी हो वह खुली रखकर अन्य सबका प्रतिदिन त्याग करना चाहिये।

४ उवाण (उपानह)—पैरोंमें पहननेका जूता तथा कपड़ोंके मोजे और काष्ठकी पावडी तो अधिक जीवकी विराधना होनेके भयसे श्रावकको पहरनी उचित ही नहीं। तथापि (यदि न छुटके पहरनी पडे तो) जितनीं जोड़ी पहरनी हों उतनी खुली रखकर अन्यका त्याग करना।

५ तंबोल (तांबुल)—पान, सुपारी, खैरसाल, या कथ्थेकी गोली, इलायची, लौंग, वगैरह स्वादीय वस्तुओंका नियम करना। जैसे कि पानके वीड़ेमें जितनी वस्तु डालता हो उतनी वस्तु वाला एक, दो, चार, या अमुक वखत वीडा खाना। तदुपरांत उसका नियम करना।

६ वत्थ (वस्त्र) पांचों अंगमे पहननेके वेष—वस्त्रका परिमाण करना और तदुपरांतका त्याग करना। इसमें रात्रिके समय पहननेका धोती न गिनना।

७ कुसुम—अनेक जातिके फूल सूंघनेका, माला पहननेका या मस्तकमें रखनेका, या शय्यामें रखनेका नियम करना (फूलका अपने सुख भोगके लिए नियम किया जाता है परन्तु देव पूजामें उपयुक्त फुलोंका नियम नही किया जाता।

८ वाहन – रथ, गाड़ी, अश्व, पालखी, सुखपाल, गाड़ी, वगैरह पर वैठकर जाने आनेका नियम करना अपने या दूसरेके वाहन पर जितनी दफां वैठना पडे उतनी छूट रखकर वाकीका नियम रखना।

९ शयन (शय्या)–पल्यंक, खाट, कोंच खूरसी, वांक, पाट, वगैरह पर वैठनेका नियम रखना।

१० विलेवन (विलेपन)—अपने शरीरको सुशोभित करनेके लिए चंदन, अतर, कस्तूरी वगैरहका नियम करना (नियमके उपरांत ये सब वस्तु देव पूजाके लिए उपयोगमें लाई जा सकती हैं।

११ वंभ (ब्रह्मवर्य)—दिनमें या रात्रिके समय स्त्री भोगका नियम करना।

१२ दिशि—दिशा परिमाण। अमुक २ दिशामें अमुक वाजार तक या अमुक दूर तक जानेका नियम करना।

१३ न्हाण—(स्नान) एक दो दफे तेल मसलकर नहानेका नियम रखना।

१४ भात—पकाये हुये धान्य वगैरह भोज्यका शेर वा दो शेर आदिका नियम रखना।

यहांपर सचित्त या अचित्त वस्तुओंको खानेकी छूठ रखनेमें उनके जुदे २ नाम लेकर रखनी, अथवा ज्यों वन सके त्यों यथाशक्ति नियम रखना। उपलक्षणसे अन्य भी फल, शाक, वगैरहका यथाशक्ति नियम करना। इस प्रकार नियम धारण किये वाद यथाशक्ति प्रत्याख्यान करना चाहिये।

"प्रत्ख्यान करनेकी रीति"

यदि नवकारसही सूर्यके उदय होनेसे पहले उचरी हो तो पूरी हुये वाद भी पोरशी, साढपोरशी आदि काल प्रत्याख्यान भी सवमें किया जाता है। जिस २ प्रत्यख्यानका जितना २ समय है उसके अन्दर णमुकारसही उच्चार किये वगैर सूर्य के उदय पीछे काल प्रत्याख्यान शुद्ध नहीं होता, यदि सूर्यके उदयसे पहले णमुकारसही विना पोरशी आदिक प्रत्याख्यान किया हो तो प्रत्याख्यानकी पूर्तिपर दूसरा कालका प्रत्याख्यान शुद्ध नहीं होता, परन्तु उसके अन्दर शुद्ध होता है। इस प्रकारका वृद्ध व्यवहार है। णवकारसही प्रत्याख्यानका

प्रमाण मुहूर्त मात्र (दो घड़ी) का है। एवं उसका आगार भी थोडा ही है, इसलिए नवकारसही प्रत्याख्यान की तो श्रावकको आवश्यकता ही है। दो घडी काल पूर्ण हुये बाद भी यदि नवकार गिने बिना ही भोजन करे तो उसके प्रत्याख्यानका भंग होता है, क्योंकि, "उग्गएसूरे नमुकारसहिअं" पाठमें इसप्रकार नवकार गिननेका अंगीकार किया हुआ है।

प्रमाद त्याग करनेवाले को क्षण मात्र भी प्रत्याख्यान बिना नहीं रहना चाहिये। नवकारसही आदि-काल प्रत्याख्यान पूरा हो उसी समय ग्रन्थीसहितादि प्रत्याख्यान कर लेना उचित है। ग्रन्थीसहित प्रत्याख्यान बहुत दफा औषधि सेवन करनेवाले तथा बाल वृद्ध बिमार आदिसे भी सुखपूर्वक बन सकता है। निरंतर अप्रमाद कालका निमित्त होनेसे यह महा लाभकारक है। जैसे कि, मांसादिकमें नित्य आसक्त रहने वाले वणकरने (जुलाहेने) मात्र एक दफा ग्रन्थी सहित प्रत्याख्यान किया था इससे वह कपर्दिक नामा यक्ष हुआ। कहा है कि, "जो मनुष्य नित्य अप्रमादि रहकर ग्रंथीसहित प्रत्याख्यान पारनेके लिये ग्रन्थी बांधता है उस प्राणीने स्वर्ग और मोक्षका सुख अपनी ग्रन्थी (गांठमें) बांध लिया है। जो मनुष्य अचूक नवकार गिन कर गंठसहित प्रत्याख्यान पालता है (पारता है) उन्हें धन्य है, क्योंकि, वे गंठसहित प्रत्याख्यानको पारते हुये अपने कर्मकी गांठको भी छोड़ते हैं। यदि मुक्ति नगरमें जानेके उद्यमको चाहता है तो ग्रंथसहित प्रत्याख्यान कर! क्योंकि, जैनसिद्धांतके जाननेवाले पुरुष ग्रंथीसहित प्रत्याख्यानका अनशनके समान पुण्य प्राप्ति बतलाते हैं"

रात्रिके समयमें चार प्रकारके आहारका त्याग करनेवाला एक आसनपर बैठकर भोजनके साथ ही तांबूल या मुखवास ग्रहण कर विधि पूर्वक मुखशुद्धि किये बाद जो ग्रंथीसहित प्रत्याख्यान पारनेके लिये गांठ बांधता है, उसमें प्रतिदिन एक दफा भोजन करनेवालेको प्रतिमास २६ दिन और दो दफा भोजन करनेवाले को अट्ठाईस चोविहारका फल मिलता है ऐसा वृद्धवाक्य है। (भोजनके साथ तांबूल, पानी वगैरह लेते हुये हररोज सचमुच दो घड़ी समय लगता है, इससे एक दफा भोजन करनेवालेको प्रत्येक महिने २६ उपवासका फल मिलता हैं, और दो दफा भोजन करने वालेको प्रतिदिन चार घड़ी समय जीमते हुये लगनेसे हरएक मासमें अट्ठाईस उपवासका लाभ होता है, ऐसा वृद्ध पुरुष बतलाते हैं) इस विषयमें रामचरित्रमें कहा है कि, जो प्राणी स्वभावसे निरंतर दो ही दफा भोजन करता है उसे प्रतिमास अट्ठाईस उपवासका फल मिलता है। जो प्राणी हररोज एक मुहूर्त मात्र चार प्रकारके आहारका त्याग करता है उसे दर महिने एक उपवासका फल स्वर्ग लोकका मिलता है। इस तरह प्रति दिन एक, दो, या तीन मुहूर्तकी सिद्धि करनेसे एक उपवास, दो उपवास, या तीन उपवासका फल बतलाया है"।

इस तरह जो यथा शक्ति तप करता है उसे वैसा फल बतलाया है। इस युक्ति पूर्वक ग्रन्थीसहित प्रत्याख्यानका फल ऊपर लिखे मुजब समझना। जो जो प्रत्याख्यान किया हो सो बारंबार याद करना, एवं जो २ प्रत्याख्यान हो उसका समय पूरा होनेसे मेरा अमुक प्रत्याख्यान पूरा हुआ ऐसा विचार करना। तथा भोजनके समय भी याद करना। यदि भोजनके समय प्रत्याख्यान याद न किया जाय तो कदापि प्रत्याख्यानका भंग होजाता है।

"अशन, पान, खादिम, स्वादिमका स्वरूप"

१ अशन—अन्न, पक्वान, मंडा, सत्तू, वगैरह जिसे खानेसे क्षुधा शांत हो वह अशन कहलाता है।

२ पान—छास, मदिरा, पानी ये पान कहलाते हैं।

३ खादिम—सर्व प्रकारके फल, मेवा, सुखड़ी, इक्षु वगैरह खादिम कहलाते हैं।

४ स्वादिम—सुंठ, हरडे, पीपर, कालोमिरच, जीरा, अजवायन, जायफल, जावंत्री, कपेल, कत्था, खैरसाल, मुलहटी, दालचीनी, तमालपत्र, इलायची, लौंग, कूट, वायविडंग, बीडलवण, अजमोद, कुलंजन, पीपलीमूल, चणकबाव, कपुरा, मोथा, कपूर, संचल, बड़ी हरड़ें, बेहडा, कैंत, घव, खैर, खिजडा, पुष्करमूल, धमासा, बावची, तुलसी, सुपारी, वगैरह वृक्षोंकी छाल और पत्र। ये भाष्य तथा प्रवचन सारोद्धार आदिके अभिप्रायसे खादिम गिने जाते हैं, और कल्प व्यवहारकी वृत्तिके अभिप्रायसें खादिम गिने जाते हैं। कितनेक आचार्य यही कहते हैं कि अजवायन खादिम ही है।

सर्व जातिके स्वादिम, इलायची, या कपूरसे वासित किये हुये पानीको दुविहारके प्रत्याख्यानमें ग्रहण किया जा सकता है। सौंफ, सुवा, आमलकंठी, आमकी गुठली, कैंतपत्र, नीबूपत्र आदि खादिम होनेसे भी दुविहारमें नही ली जा सकती। तिविहारमें तो सिर्फ पानी ही खुला रहता है। परन्तु कपूर, इलायची, कत्था, खैरसाल, सेलुक, वाला, पाडल, वगैरहसे सुवासित किया पानी नितरा हुवा और छाना हुवा हो तो खप सकता है, परन्तु वगैर छाना न खपे। यद्यपि कितने एक शास्त्रोंमें मधू, गुड़, शक्कर, खांड, बतासा, स्वादिम तया गिनाये हुए हैं। और द्राक्षका पानी, शक्करका पानी, एवं छास, पाणकमे (पानीमे) गिनाये हुये हैं। तथापि ये दुविहार आदिमे नहीं खप सकते ऐसा व्यवहार है। नागपुरीय गच्छके किये हुये भाष्यमे कहा है कि,—

दक्खापाणइयं पाणं तह साइयं गुडाइमं ॥
पठिअं सुअंमि तहविहु। तित्ति जणगं ति नायरिअं ॥

द्राक्षका पानी और गुड वगैरहको स्वादिमतया सिद्धान्तमे कहा है। तथापि वह तृप्ति करने वाला होनेसे उसे अंगीकार करनेकी आज्ञा नहीं दी गई है।

स्त्री संभोग करनेसे चोविहार भंग नहीं होता परन्तु स्त्री या बालक आदिके होठ चूसनेसे चोविहार भंग होता है। दुविहार करने वालेको ही चुंबन खुला है। जैसे कि, जो प्रत्याख्यान है वह लोम आहार (शरीर की त्वचासे शरीर पोषक आहारका प्रवेश होना) से नहीं, किन्तु सिर्फ कवलाहार कर मुखमें (आहार प्रवेश करनेका) करनेका ही प्रत्याख्यान किया जाता है। यदि ऐसा न हो तो उपवास, आंबिल और एकासनमे भी शरीर पर तेल मर्दन करनेसे या गांठ गुमडे पर आटेकी पुलस्ट आदि बांधनेसे भी प्रत्यख्यान भंग होनेका प्रसंग आयेगा, परन्तु ऐसा व्यवहार नहीं है। तथा लोम आहारका तो निरंतर ही संभव होता है, इससे प्रत्यख्यान करनेके अभावका प्रसंग आयेगा। (स्नान करनेसे और हवा खानेसे भी शरीरको सुख मिलता है और वह लोम आहार गिना जाता है)।

"अनाहारिक वस्तुओंके नाम"

नीमका पंचांग (मूल, पत्र, फूल, फल, और छाल), मूत्र, गिलोय, कडु, चिरायता, अतिविष, कडेकी छाल, चंदन, चिमेड, राख, हलदी, रोहिणी, (एक प्रकारकी वनस्पति,) उपलेट, घोडावच, खुरासानीवच, त्रिफला, हरडे, बहेडा, आंवला तीनों इकट्ठे हों तो कीकरकी छाल; (कोई आचार्य कहते हैं) धमासा, नाव्य, (कोई दवा हैं) अश्वगंध, कटहली, (दोनों तरहकी,) गूगल, हरडेदल, वन, (कपासका पेड) कंथेरी, कैर मूल, पवांड, बोडथोडी, आछी, मंजिठ, बोल, काष्ट, कुंवार, चित्रा, कंदरूक, वगैरह कि जिनका स्वाद मुखको रुचिकर न हो ये सब अनाहारमे समझना। ये चौविहार उपवास वालेको भी रोगादिके कारण वशात् ग्राह्य हो सकतीं हैं। व्यवहार कल्पकी वृत्तिके चौथे खंडमें कहा है कि:—

परिवासिअ आहारस्स। मग्गणा को भवे अणाहारो ॥
आहारो एगंगिओ। चउविहु जं वायइ इ तहिं ॥ १ ॥

सर्वथा क्षुधाको शांत करे उसे आहार कहते हैं। जैसे कि, अशन पान, खादिम, स्वादिममें जो नमक जीरा वगैरह पडता है सो भी आहार कहलाता है।

कुरो नासेइ छूह एगंगी। तक्काउदगमज्जाई ॥
खादिम फल मंसाइ। साइम महु फाणिताइणि ॥ २ ॥

कूर (भात) सर्व प्रकारसे क्षुधाको शांत करता है, छास मदिरादिक, सो पान, खादिम सो फल, मांसादिक, स्वादिम सो सहद, खांड आदि, यह चार प्रकारका आहार समझना।

जं पुण खुहा पसमणे। असमथ्थेगागि होइ लोणाइ ॥
तंपि अहो आहारो। आहार जुअंवा विजुअंवा ॥ ३ ॥

तथा क्षुधा शांत करनेमें असमर्थ आहारमें मिले हुवे हों या न मिले हों ऐसे नमक, हींग, जीरा, वगैरह सब हों वह आहार समझना।

उदए कप्पुराइ फले सुत्ताइण सिंगबेर गुडे ॥
नयनाणी खविंति खुहं। उपगारित्ताओ आहारो ॥ ४ ॥

पानीमें कपूरादिक और फलमें हींग, नमक, संगवेर, सोंठ, गुड, खांड वगैरह डाला हुवा हो तो वह कुछ क्षुधाको शांत नहीं कर सकता, परंतु आहारको उपकार करने वाले होनेसे वे आहारमें गिने गये हैं।

जिससे आहारको कुछ उपकार न हो सके उसे अनाहार गिनाया है। कहा है कि:—

अहवा जं भुजंतो। कमद उवमाई पक्खिवई कोट्ठे ॥
सव्वो सो आहारो। ओसह माई पुणो भणिओ

अथवा जैसे कादव डालनेसे खड्डा भरता है वैसे ही औषधादिक खानेसे यदि पेट भरे तो वह सब आहार कहलाता है।

(औषधादिकमें शक्कर वगैरह होती है वह आहारमें गिनी जाती है और सर्प काटे हुयेको मुक्तिक नींव पत्रादिक जो औषध है वह अनाहार है)।

जं वा खुहावंतस्स । संकमाणस्स देई आसायं ॥
सव्वो सो आहारो । अकाम्मणिट्ठं च णाहारो ॥ ६ ॥

अथवा जो पदार्थ क्षुधावानको अपनी मर्जीसे खाते हुये स्वाद देता है वह सब आहार गिना जाता है। और क्षुधावन्तको खाते हुवे जो मनको अप्रिय लगता है वह अनाहार कहलाता है।

अणाहारो मोअ छल्ली।। मूलं च फलं च होइ अणाहारो ॥

अणाहार मूत्र या नींबकी छाल या फल, या आंवला, हरडे, बहेड़ादिक, और मूल, पंच मूलका काढ़ा (जो बड़ा कडवा होता है) ये सब वस्तुयें अनाहारमें समझना। (उपरोक्त गाथाके दो पदका आशय नीशीथ चूर्णीमें इस प्रकार लिखा है "मूल, छाल, फल और पत्र ये सब नींमके अनाहार समझना")

"प्रत्याख्यानके पांच स्थान"

प्रत्याख्यानमें पांच स्थान (भेद) कहे हैं। पहले स्थानमें नवकार सही, पोरशी, वगैरह, प्रायः काल प्रत्याख्यान, चोविहार करना। दूसरे स्थानमें विगयका, आंबिलका, नीवीका, प्रत्याख्यान करना। उसमें जिसे विगयका त्याग न करना हो उसे भी विगयका प्रत्याख्यान लेना चाहिये, क्योंकि प्रत्याख्यान करनेवालेको प्रायः महाविगय (दारू, मांस, मक्खन, मधू) का त्याग ही होता है, इससे विगयका प्रत्याख्यान सबको लेना योग्य है। तीसरे स्थानमें एकासन, द्विआसन, दुविहार, तिविहार, चोइहारका प्रत्याख्यान करना। चौथे स्थानमें पाणस (पानीके आगार लेना) का प्रत्याख्यान करना। पांचवें स्थानमें देशावकासिकका प्रत्याख्यान लेना। प्रथम ग्रहण किये हुवे सचित्तादिक चौदह नियम सुबह, शाम, संक्षेप करने रूप उपवास, आंबिल, नीवी, प्रायः तिविहार, चोविहार होते हैं परन्तु अपवादसे तो नीवी प्रमुख पोरशी आदिके प्रत्याख्यान दुविहारके भी होते हैं, कहा कि:—

साहुणं रयणीए। नवकार सहिअ चउव्विहाहारं॥
भवचरिमं उपवासो। आंबिल विवि हो चउव्विहोवावि ॥ १ ॥
सेसापचक्खाणा। दुह तिह चउहावि हुन्ति आहारे ॥
इअ पचक्खाणेसु। आहार-विगप्पा विणेयव्वा ॥ ॥

साधूको रात्रीके अन्तमें नवकार सहिं भवचरिम (अनशन करते समय) चोविहार, उपवास, आंबिल, प्रत्याख्यान, तिविहार, कल्पता है। अन्य सब प्रत्याख्यान, दुविहार, तिविहार और चोविहार कल्पते हैं। इस प्रकार प्रत्याख्यानके भेद जानना। नीवी तथा आंबिलमें 'कल्पनीय, अकल्पनीय' (अमुक खपे अमुक न खपे) का विचार अपनी अपनी सामाचारी, सिद्धांत, भाष्य, चूर्णि नियुक्ति, वृत्ति, प्रकरण वगैरहसे समझ लेना। एवं सिद्धांतके अनुसार या प्रत्याख्यान भाष्यसे अनाभोग (भूलसे मुखमें पडे हुये). सहस्सागारेणं

(अकस्मात मुखमें पड़ा हुवा) ऐसे पाठका आशय समझना, यदि ऐसे न करे तो प्रत्याख्यानकी निर्मलता नहीं होती (और प्रत्याख्यान न बने तो दोष लगे) (ऐसा पडिक्कमियं इस पदका अभिप्राय बतलाया)

"जिन-पूजा करनेके लिए द्रव्य-शुद्धि"

"सूइ पुइअ" इस पदका व्याख्यान बतलाते हैं। सूचि याने मलोत्सर्ग (लघु और बड़ी नीति) करना, दतवन करना, जीभका मैल उतारना, कुल्ला करना, सर्वस्नान, देशस्नान, आदिसे पवित्र होना, यह अनुवाद लोक प्रसिद्ध ही है। इसी कारण इस विषयमें विशेष कहनेकी जरूरत नहीं, तथापि अनजानको जानकर करना पंडितोंका यही आशय है। जैसे कि, जहांपर अभिप्राय न समझा जा सकता तो वह अर्थ शास्त्रकार समझाते हैं। उदाहरणके तौर पर "मलिन पुरुषने स्नान न करना, भूखेने भोजन न करना ऐसे अर्थमें शास्त्रकी जरूरत पड़ती है।" इसलिए जो लौकिक व्यवहार संपूर्णतया न जानता हो उसे उपदेश करना सफल है। यह उपदेश करनेवालेका धर्म है; परन्तु आदेश करना धर्म नहीं। इसलिए उपदेश द्वारा सर्व व्यवहार बतलाया जायगा। सावद्य आरंभमें शास्त्रकारको अनुमोदन करना योग्य नहीं परन्तु उपदेशकी मनाई नहीं है तदर्थ कहा है कि:—

सावज्जण वज्जाणं। वयणाणं जो न जाणइ निसेसं॥
वोत्तुं पि तस्स न खमं। किमंगपुण देसणं काउं॥ १॥

जो पाप वर्जित वचनकी न्यूनाधिकताके अन्तरको न समझ सके याने यह बोलनेसे मुझे पाप लगेगा या न लगेगा ऐसा न समझ सके उसे बोलना भी योग्य नहीं, तब फिर उपदेश देना किस तरह योग्य हो? इसलिये विवेक धारण कर उपदेश देना कि, जिससे पाप न लगे।

मौनधारी होकर निर्दोष योग्य स्थानमें विधि पूर्वक ही मलोत्सर्गका त्याग करना उचित है। इसके लिए विवेक विलासमें कहा है कि—(मौनतया करने योग्य कर्तव्य)

मूत्रोत्सर्गं मलोत्सर्गं मैथुनं स्नानभोजनं॥
संध्यादिकर्म पूजां च कुर्याज्जापं च मौनवान्॥ १॥

लघुनीति, वड़ीनीति, मैथुन, स्नान, भोजन, संध्यादिकी क्रिया, पूजा और जाप इतने कार्य मौन होकर करना।

"लघुनीति और वडी नीति करनेकी दिशा"

मौनीवस्त्रावृतः कुर्यादिनसंध्या द्वयोपि च॥
उत्तरायां सकृन्मूत्रे रात्रौयाम्याननं पुनः॥ २॥

वस्त्र पहन कर मौनतया दिनमें और दोनों संध्या समय (सुबह, शाम) यदि मल मूत्र करना हो तो उत्तर दिशा सन्मुख करना और यदि रात्रिमें करना हो तो दक्षिण दिशा सन्मुख करना।

"प्रभातकी संध्याका लक्षण"

नक्षत्रेषु समग्रेषु भ्रष्टतेजस्सु भास्वतः ॥
यावदर्धोदयस्तावत्प्रातःसंध्याभिधीयते ॥३॥

सर्व नक्षत्र तेज रहित बन जांय और जबतक सूर्यका अर्द्ध उदय हो तब तक प्रभातकी संध्याका समय गिना जाता है।

"सायंकालकी संध्याका लक्षण"

अर्केर्धास्तमिते यावन्नक्षत्राणि नभस्तले ॥
द्वित्रीणि नैव दृश्यन्ते। तावत्सायं विदुर्बुधाः ॥ ४ ॥

जिस समय अर्ध सूर्य अस्त हुवा हो और आकाशतलमें जबतक दो तीन नक्षत्र न दीख पड़े हो तबतक सायंकाल (संध्या) गिना जाता है।

"मलमूत्र करनेके स्थान"

भस्मगोमयगोस्थानवल्मीकसकृदादिमत् ॥
उत्तमद्रुमसद्वह्निमार्गनीराश्रयादिमत् ॥ ५ ॥
स्थानं चिलादिविवकृतं। तथा कुलकषातटं ॥
स्त्रीपूज्यगोचरं वर्ज्यं। वेगाभावेन्यथा न तु ॥ ६ ॥

राखका या गोबरका पुंज पडा हो उसमें, गायके बैठने बांधनेकी जगह, बल्मिक पर, जहांपर बहुतसे मनुष्य मल मूत्र करते हों वहांपर, आंब, गुलाब, आदिकी जडमें, अग्निमें, सूर्यके सामने मार्गमें, पानीके स्थानमें, श्मशान आदि भयंकर स्थानमें, नदी किनारे नदीमें, स्त्री तथा अपने पूज्यके देखते हुए यदि मल मूत्रकी अत्यन्त पीड़ा न हुई हो तो पूर्वोक्त स्थानोंको छोड़ कर मल मूत्र करना। परन्तु यदि अत्यन्त पीड़ा और हाजत हुई हो तो पूर्वोक्त स्थानोंमें भी करना, किन्तु मल मूत्रको रोकना नहीं। ओघनिर्युक्ति आदि आगममें भी साधुको आश्रित करके ऐसा कहा है कि,

अणावाय मसंलोए। परस्साणुवघाइए ॥
समे अभ्भुसिरेवावि। अचिरकाल कयंमिश्र ॥ १ ॥
विच्छिन्ने दुरसोगाढे। नासन्ने बिलवज्जिए ॥
तस्स पाणवीअ रहिए उच्चाराईणि वोसिरे ॥ २ ॥

जहांपर दूसरा कोई न आसके एवं अन्य कोई न देख सके ऐसे स्थानमें, जहां बैठनेसे निन्दा न हो या किसीके साथ लड़ाई न हो ऐसे स्थानमें, पंक सरखी भूमिमें, घास आदिसे ढकी हुई भूमि वर्जित स्थानमें, क्योंकि ऐसी भूमिमें बैठते हुये घास वगैरहमें यदि कदाचित् विच्छु, सर्प, कीड़ा वगैरह हो तो व्याघातका

संभव बने, थोडे समय की की हुई भूमिमें, विस्तीर्ण भूमिमें जघन्यसे एक हाथकी जमीनमें, जघन्यसे भी चार अंगुल जमीन अग्नि तापादिकसे अचित हुई हो ऐसे स्थानमें, अतिशय आसन्न याने नजीक न हो (द्रव्यसे धवल घर आरामादिकके नजीक न हो और भावसे यदि अत्यन्त हाजत हुई हो तो वैसे स्थानके पास भी त्याग करे) बिल वर्जित स्थानमें, बीज, सब्जी, त्रस जीव रहित स्थानमें ऐसे स्थानमें मल मूत्रका त्याग करे।

दिसि पवण ग्राम सूरिय। छायाई पमाज्जिऊणतिखुत्तो॥
जस्सुग्गहुत्ति काऊण वोसिरे आयमि सुद्धाए॥ ३॥

दिशी, पवन, ग्राम, सूर्य, छाया आदिकी सन्मुखताको वर्ज कर एवं जमीनको शुद्ध करके तीन दफा "अणुजाणह जस्सग्गो" ऐसा पाठ कहकर शरीरकी शुद्धिके लिए मलमूत्रादि विसर्जन करे।

उत्तर पुव्वा पुज्जा। जम्माए निसिअरा अहिवडंति॥
धाणारिसाय पवणे। सूरिअ गामे अवन्नोअ॥ ४॥

उत्तर, और पूर्व दिशा पूज्य हैं, अतः उनके सन्मुख मल मूत्र न करना। दक्षिण दिशाके सामने बैठने भूत पिशाचादिका भय होता है। पवन सन्मुख बैठने नासिकामें पवन आनेसे रोगकी वृद्धि होती है। सूर्य तथा गांमके सन्मुख बैठनेसे उसकी आसातना होती है।

संसत्तग्गहणीपुण। छायाए निग्गयाइ वोसिरई॥
छायासइ उन्हंमिवि। वोसिरिअ मुहुत्तगं चिट्ठे॥ ५॥

छायामें जानेसे बहुतसे जीवोंका संशय रहता है; इसलिये छायाकी अपेक्षा तापमें विसर्जन करना योग्य है। ताप होने पर भी जहां छाया आने वाली हो वैसे स्थानमें बैठे तो दो घड़ी तक तलाश रखना।

मुत्त निरोहे चक्खु। वच्च निरोहे अ जीवियं चयई॥
उड्ढ निरोहे कुट्ठंगे। लन्नं वा भवे तिसुवि॥ ६॥

मूत्र रोकने से चक्षुतेज नष्ट होता है; मल रोकने से मनुष्य जीवितव्य से रहित होता है, श्वास (ऊर्ध्व वायु) को रोकने से कोढ होता है और इन तीनोंको रोकने से बीमारी की प्राप्ति होती हैं। इसलिये किसी भी अवस्थामें मलमूत्रको न रोकना श्रेयकारी है।

मलमूत्र, थूंक, खंकार, श्लेष्म आदि जहां डालना हो वहां पहलेसे 'अणुजाणह अस्सग्गो' ऐसा कह कर त्यागना; और त्यागेबाद तत्काल तीन दफा मनमें वोसरे शब्द चिंतन करना, श्लेष्म आदिको तो तत्काल, धूल, राख वगैरहसे यतनापूर्वक ढक देना चाहिये। यदि ऐसा न किया जाय और वह खुलाही पड़ा रहे उसमें तत्कालही असंख्य समूर्च्छिम (माता पिताके संयोग बिना पैदा होने वाले नव प्राण वाले मनुष्य) तथा बे-इन्द्रियादिक जीव उत्पन्न हों और उनका नाश होनेका संभव है। इसलिये पन्नवणा सूत्रके प्रथम पदमें कहा है कि, "हे भगवन्! समुर्च्छिम मनुष्य कहां पैदा होते हैं?" (उत्तर) 'हे गौतम! मनुष्यक्षेत्रमें ४५ लाख योजन में अढीद्वीपमें जो द्वीपसमुद्र हैं उनमें पन्द्रह कर्मभूमि (जहांपर असि, मसि, कृषी कर्म करके लोग

आजीविका करते हैं) में, छपन्न अंतर्द्वीप मनुष्य (युगलिक); गर्भज, (गर्भ से उत्पन्न होने वाले) मनुष्य के मल में, पेशाबमें, थूंक खंखारमें, नासिकाके श्लेष्ममें, वमनमें, मुखमें से पड़ने वाले पित्तमें, वीर्यमें, वीर्य और रुधिर एकत्रित हो उसमें, सुके हुये वीर्यमे या वीर्य जहां पर रहा हो उसमें, निर्जीव कलेवरमें, स्त्री पुरुषके संयोग में, नगरकी गटर में, मनुष्य संबंधी सर्व अपवित्र स्थानमें सन्मुच्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं। (वे कैसे पैदा होते हैं ? इसका उत्तर) एक अंगुल के असंख्यभाग मात्र शरीरकी अवगाहना वाले असंगी (मनविनाके), मिथ्यात्वी, अज्ञानी, सर्व पर्याप्तिसे अपर्याप्ता, और अंतर्मुहुर्त काल आयुष्य भोगकर मृत्यु पाने वाले ऐसे समुच्छिम जीव उपजते हैं। अतः खंखार, थूंक, या श्लेष्म पर धूल या राख डालकर उसे जरूर ढक देना उचित है।

दतवन करना सो भी निर्दूषण स्थानमें अचित्त और परिचित्त वृक्षका कोमल दतवन करके दांत दाढ दृढ करनेके लिए तर्जनी अंगुलिसे घिसना। जहांपर दांतका मैल डाले वहां उसपर धूल डालकर यतना पूर्वक ही प्रतिदिन दंतधावन करना। व्यवहार शास्त्रमें भी कहा है कि:—

दंतदार्ढ्याय तर्जन्या। घर्षयेद् दंतपीठिकां॥
आदावतः परं कुर्या। दंतधावनमादरात्॥ १॥

दांत दृढ करनेके लिए दांत की पीठिका (मसूडे) प्रथम तर्जनी अंगुलिसे घिसना, फिर आदरपूर्वक दतवन करना।

"दतवन करते हुए शुभ सूचक अगमचेति"

यद्यात्मवारिगंडूषा, द्विन्दुरेकः प्रधावति॥
कंठे तदा नरैर्ज्ञेयं, शीघ्रं भोजनमुत्तमं॥ २॥

दतवन करते समय जो पानीका कुल्ला किया जाता है उसमें पहला कुल्ला करते हुए यदि उसमेंसे एक बिन्दु गले में उतर जाय तो उस दिन उत्तम भोजन प्राप्त हो।

"दतवनका प्रमाण और उसके करनेकी रीति"

अवक्राग्रंथिसत्कूर्च, सूक्ष्माग्रं च दशांगुलं॥
कनिष्ठाग्रसमं स्थौल्यं, ज्ञातवृक्षं सुभूमिजं॥ ३॥
कनिष्ठिकानामिकयोरन्तरे दंतधावनं॥
आदाय दक्षिणां दंष्ट्रां वामां वा संस्पृशेच्चले॥ ४॥
तल्लीनमानसः स्वस्थो, दन्तमांस व्यथां त्यजन्॥
उत्तराभिमुखः प्राची, मुखो वा निश्चलासनः॥ ५॥
दन्तान् मौनपरस्तेन, घर्षयेद्वर्जयेत्पुनः॥
दुर्गंधं शुषिरं शुष्कं, स्वाद्वम्लं लवणं च तत्॥ ६॥

सरल गांठ रहित, जिसका कुंचा अच्छा हो सके वैसा, जिसकी अणी पतली हो, दस अगुंल लंबा, अपनी कनिष्ठा अगुंली जैसा मोटा, परिचित वृक्षका, अच्छी जमीनमें उत्पन्न हुये दतवनसे कनिष्ठा और दैव पूजिनी अंगुलिके बीचमें रख कर पहले उपर की दाहिनी दाढ और फिर उपरकी बांई दाढ को घिसकर फिर दोनों नीचे की दाढांओं को घिसना। उत्तर या पूर्व दिशाके सन्मुख स्थिर आसन पर दंतवन करनेसे ही चित्त स्थापित कर दांत और मसूडों को कुछ पीड़ा न हों एवं मौन रहकर दतवनके कूंचे से सुकी हुई मिस्सी स्वादिष्ट नमक या खट्टे पदार्थ से दांतोंके पोलारको घिसकर दांतके मैल या दुर्गन्धको दूर करना।

"दतवन न करनेके संबंधमें"

व्यतिपाते रविवारे, संक्रांतौ ग्रहणे न तु ॥
दन्तकाष्ठं नवाष्टैक, भूतपक्षात षडद्युषु ॥ ७ ॥

व्यतिपातको, रविवार को, संक्रांति के दिन, ग्रहण के दिन और प्रतिप्रदा, चौथ, अष्टमी, नवमी, पुनम अमावस्या, इन छह तिथियों के दिन दतवन न करना।

"विना दतवन मुख शुद्धि करनेकी रीति"

अभावे दंतकाष्ठस्य, मुखशुद्धिविधिः पुनः।
कार्यो द्वादशगंडूष, जिन्होल्लेखस्तु सर्वदा ॥ ८ ॥
विलिख्य रसनां जिह्वा, निर्लेखिन्याः शनैः शनैः।
शुचिप्रदेशे प्रक्षाल्य, दंतकाष्ठं पुरस्त्यजेत् ॥ ९ ॥

जिस दिन दतवन न मिले उस दिन मुखशुद्धि करनेका विधि ऐसा है कि, पानीके बाहर कुल्ले करना, और जीभका मैल तो जरूर ही प्रतिदिन उतारना। जीभ परसे मैल उतारने की दतवन की चीर या बेंत-की फाडसे जीभको धीरे २ घिस कर वह चीर या फाड़ अपने सन्मुख शुचिप्रदेशमें फेंकदेना।

"दतवनकी चीरी फेंकनेसे मालूम होनेवाली आगम चेती"

सन्मुखं पतितं स्वस्य, शांतानां ककुनांचतत् ॥
उर्द्धस्थं च सुखायस्या, दन्यथा दुखहेतवे ॥ १० ॥
उर्द्धं स्थित्वा सणं पश्चा, त्पततयेतधदा पुनः,
मिष्ठाहारस्तदादेश्या, स्तद्दिने शास्त्रकोविदैः ॥ ११ ॥

यदि वह फेंकी हुई दतवन की चीर अपने सन्मुख पड़े तो सर्व दिशाओंमें सुख शांति मिले। एवं वह जमीन पर खडी रहे तो सुख के लिए हो यदि इसके विरुद्ध हो तो दुःख प्रद समझना। यदि क्षणवार खड़ी रह कर फिर वह गिर जाय तो शास्त्र जाननेवालेको कहना चाहिये कि, आज उसे जरूर मिष्ट भोजन मिलेगा।

"दतवन करनेके निषेधके संवन्धमें"

कासश्वासज्वराजीर्णं, शोकतृष्णास्यपाकयुक्,
तन्न कुर्याच्छिरोनेत्र, त्यत्कर्णामयवानपि ॥ १२ ॥

खांसीका रोगी, श्वासरोगी, अजीर्णरोगी, शोकरोगी, तृष्णारोगी, मुखपाकरोगी, मस्तकरोगी, नेत्ररोगी, हृदयरोगी, कर्णरोगी, इतने रोगवालेको दतवन करना निषेध है।

"वाल संवारनेके विषयमें"

केशप्रसाधनं नित्यं, कारयेद्थ निश्चलः;
कराभ्यां युगपत्कुर्यात, स्त्रोत्तमांगे स्वयं न तत् ॥ १३ ॥

शिरके वाल नित्य स्थिर हो कर दो हाथसे अन्य किसीके पास साफ करना परन्तु अपने हाथसे न संवारना। (कंगीसे या कंघेसे किम्वा हाथसे दूसरेके पास वाल ठीक कराना)

"दर्पण देखनेमें आगमचेति"

तिलक करनेके लिए या मंगलको निमित्त रोज दर्पण देखना चाहिये, परंतु दर्पणमें जिस दिन अपना मस्तक रहित धड़ देखपड़े उस दिनसे पंद्रहवें दिन अपनी मृत्यु समझना।

जिस दिन उपवास, आंविल, या एकासन आदिका प्रत्याख्यान किया हुवा हो उस दिन दतवन या मुख-शुद्धि किये विना भी शुद्ध ही समझना। क्योंकि, तप यह एक महा फलकारी शुद्धि है। लौकिकमें भी यही व्यवहार है कि, उपवास आदि तपमें दतवन किये विना ही देवपूजन वगैरह करना। लौकिक शास्त्रमें भी उपवास आदिके दिन दतवन का निषेध किया है। विष्णुभक्ति चन्द्रोदयमें कहा है कि—

प्रतिपद्दर्शषष्ठी, मध्यांते नवमीतिथौ ;
संक्रांतिदिवसे प्राप्ते, न कुर्याद्दन्तधावनं ॥ १ ॥
उपवासे तथा श्राद्धे न कार्यादन्तधावनं,
दन्तानां काष्ठसंयोगे, हन्ति सप्तकुलानि वै ॥ २ ॥
ब्रह्मचर्यमहिंसा च' सत्यमामिषवर्ज्जनं ।
व्रते चैतानि चत्वारि, चरितव्यानि नित्यसः ॥ ३ ॥
असकृत् जलपानात्तु, तांबुलस्य च भक्षणात ।
उपवासः प्रदुष्येत, दिवास्वापाच्च मैथुनात ॥ ४ ॥

प्रतिपदा, आमावस्या, छट, नवमी और संक्रांतिके दिन दतवन न करना। उपवासमें या श्राद्धमें दतवन न करना, क्योंकि, दांतको दतवनका संयोग सात कुलको हणता है। (सात अवतार, दुर्गतिमें जायें) ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, मांसत्याग, ये चार हर एक व्रतमें अवश्य पालन करना। वारवार पानी पीनेसे,

तांबुल खानेसे, दिनमें सोनेसे और मैथुन सेवन करनेसे उपवासका फल नष्ट होता है। स्नान करना होतो भी जहां लीलफूल, शैवाल, कुंथुजीव, बहुत न होते हों, जहां विषम भूमि न हो, जहां जमीनमें खोकलापन न हो, ऐसी जमीन पर ऊपरसे उड़कर आ पड़ने वाले जीवोंकी यातना पूर्वक प्रमाण किये हुये पानीसे छान कर स्नान करना। श्रावक दिनकृत्यमें कहा है कि;—

तस्साइजीवरहिए, भूमिभागे विसुद्धए।
फासुएणंतुनीरेण, इयरेण गलिएण ओ॥

त्रसादि जीव रहित समतल पवित्र भूमि पर अचित्त और उष्ण छाने हुये प्रमाण वंत पानी से विधि पूर्वक स्नान करे। व्यावहारम कहा है कि—

नग्नार्त्तप्रोषितायातः सचेलोभुक्तभूषितः।
नैव स्नायादनुव्रज्य, बन्धून् कृत्वा च मंगलं॥ १॥
अज्ञाते दुष्प्रवेशे च, मलिनैर्दूषितेथवा;
तरुच्छन्ने सशेवाले, न स्नानं युज्यते जले॥ २॥
स्नानं कृत्वा जलैः शीतै, र्भोक्तुमुष्णं न युज्यते;
जलैरुष्णैस्तथा शीतं, तैलाभ्यंगश्च सर्वदा॥ ३॥

नग्न होकर, रोगी होने पर भी, परदेशसे आकर, सब-वस्त्र सहित भोजन-किये बाद, आभूषण पहन कर, और भाई आदि सगे संबंधीको मंगलनिमित्त बाहर जाते हुए को विदा करके वापिस आ कर तुरंत स्नान करना। अनजान पानीसे, जिसमें प्रवेश करना मुश्किल हो ऐसे जलाशयमें प्रवेश करना, मलिन लोगोंसे मलिन किये हुए पानीमें दूषित पानीसे और शेवाल या वृक्षके पत्तों, गुच्छोंसे ढके हुए पानीमें घुस कर स्नान न करना चाहिये। शीतल जलसे स्नान करके तुरंत उष्ण भोजन, एवं उष्ण जलसे स्नान कर के तुरंत शीतल अन्न न खाना चाहिये।

"स्नान करनेमें आगमचेति"

स्नातस्य विकृताच्छाया, दंतघर्षः परस्परं;
देहश्च शवगंधश्च न्मृत्युस्तद्दिवसत्रये॥ ४॥
स्नानमात्रस्यचेच्छोशो, वक्षस्यंह्रिद्वयेपि च;
षष्ठे दिने तदा ज्ञेयं; पंचत्वं नात्रसंशयः॥ ५॥

स्नान करके उठे बाद तुरंत ही अपने शरीरकी कांति बदल जाय, परस्पर दांत घिसने लग जायं, और शरीरमेंसे मृतक के समान गंध आवे तो वह पुरुष तीसरे दिन मृत्यु को प्राप्त हो। स्नान किये बाद तुरंत ही यदि हृदय और दोनों पैरोंमें शोष होनेसे एकदम सूक जाय तो वह छठे दिन मरणके शरण होगा, इसमें संशय नहीं।

"स्नान करनेकी आवश्यकता"

रतेवांते चिताधूम, स्पर्शे दुःस्वप्नदर्शने ;
क्षौरकर्मण्यपि स्नाया, दूगलितैः शुद्धवारिभिः ॥ ६ ॥

मैथुन सेवन किये वाद, वमन किये वाद, श्मशानके धूम्रका स्पर्श हुये वाद, खराब स्वप्न आने पर, और क्षौरकर्म (हजामत किये) वाद छाने हुये निर्मल पवित्र जलसे अवश्य स्नान करना।

"हजामत न करानेके संबन्धमें"

आश्यक्तस्नाताशित, भूषितयात्रारणोन्मुखैः क्षौरं ॥
विद्यादिनिशासंध्या, पर्वसु नवमेन्हो न कार्य च ॥ १ ॥

तेलादि मर्दन किये वाद, स्नान किये वाद, भोजन किये वाद, वस्त्राभूषण पहने वाद, प्रयाण करनेके दिन संग्राममे जाते समय, विद्या, यंत्र, मंत्रादिके प्रारंभ करते समय, रात्रिके समय, संध्याके समय, पर्व के दिन और नवमें दिन क्षौरकर्म (हजामत) न कराना चाहिये।

कल्पयेदेकशः पक्षे रोमस्मश्रुक चान्नखान् ॥
न चात्मदशनाग्रे ण, स्वपाणिभ्यां च नोत्तमः ॥ २ ॥

उत्तम पुरुषको दाढी और मूंछके वाल तथा नख एक पक्षमें एक ही दफा कटवाने चाहिये, और अपने दांतसे या हाथसे अपने नख न तोडने चाहिये।

"स्नानके विषयमें"

स्नान करना, शरीरकी पवित्रताका और सुखका एवं परिणाम शुद्धिको प्राप्त करनेका तथा भाव शुद्धिका कारण है। दूसरे अष्टक प्रकरणमें कहा है कि—

जलेन देहदेशस्य, क्षणं यच्छुद्धिकारणं ॥
प्रायो जन्यानुरोधेन, द्रव्यस्नानं तदुच्यते ॥ १ ॥

देह देश याने शरीरके एक भागको ही, सोभी अधिक टाईम नहीं किन्तु क्षणवार ही, (अतिसारादिक-रोगियोंको क्षणवार भी शुद्धिका कारण न होनेके लिए) प्रायः शुद्धिका कारण है, परन्तु एकांत शुद्धिका कारण नहीं है। धोने योग्य जो शरीरका मैल है उसे दूर करने रूप परन्तु कान नाकके अन्दर रहा हुवा मैल जिससे दूर न किया जा सके ऐसे अल्प प्रायः जलसे दूसरे प्राणियोंका बचाव करते हुए जो होता है, उसे द्रव्य स्नान कहते हैं। (अर्थात् जलके द्वारा जो क्षणवार देह देशकी शुद्धिका कारण है उसे द्रव्यस्नान कहते हैं।

कृत्वेदं यो विधानेन, देवतातिथिपूजनं ॥
करोति मलिनारंभी, तस्यैतदपि शोभनं ॥ २ ॥

जो गृहस्थ उपरोक्त युक्तिपूर्वक विधिसे देव गुरुकी पूजा करनेके लिए ही द्रव्य स्नान करता है उसे वह भी शोभनीय है। द्रव्यस्नान शोभनीय है, इसका हेतु बतलाते हैं।

भावशुध्दे निमित्तंत्वा, त्तथानुभवसिद्धितः ॥
कथंचिद्दोष भावेपि, तदन्यगुणभावतः ॥ ३ ॥

भावशुद्धि (परिणाम शुद्धि) का कारण है। एवं अनुभव ज्ञानसे देखने पर कुछ अपकाय विराधनादि दोष देख पड़ता है, परन्तु उससे जो दर्शनशुद्धि (समकितकी प्राप्ति) होती है; यही गुण है इसलिये भावसे लाम· कारी है।

पूआए कायवहो, पडिकुट्ठो सोउ किंतु जिणपूआ ॥
सम्मत्त सुद्धि देउत्ति, भावणीआओ निरवज्जा ॥ ४ ॥

पूजा करनेमें अपकायादिका विनाश होता है, इसलिए ही पूजा न करना ऐसी शंका रखने वालेको उत्तर देते हुए गुरू कहते हैं कि, 'पूजा' यह समकितकी शुद्धि करने वाली है। इसलिए पूजाको दोष रहित ही समझना चाहिये।

ऊपर लिखे प्रमाणसे देवपूजा आदिके लिए ग्रहस्थको द्रव्यस्नान करनेकी आज्ञा है, अतः 'द्रव्य स्नानसे कुछ भी लाभ नहीं होता, ऐसे बोलनेवाले लोगोंका मत असत्य समझना। तीर्थ पर स्नान किया हो तो फक्त देहकी कुछ शुद्धि होती है परन्तु आत्माकी एक अंश मात्र भी शुद्धि नहीं होती। इस विषयमें स्कंधपुराणके छठे अध्ययनमें कहा है कि,:—

मृदोभार सहस्रे ण, जलकुम्भशतेन च, न शुध्यंति दुराचारा स्नातास्तीर्थ शतैरपि ॥ १ ॥
जायन्ते च म्रियन्ते च जलेष्वेव जलौकसः ॥ न च गच्छंति ते स्वर्ग मत्रि शुद्धमनोमलाः ॥ २ ॥
चित्तं शमादिभिः शुद्ध वदनं सत्यभाषणैः ॥ ब्रह्मचर्यादिभिः काय, शुद्धो गंगां विनाप्यसौ ॥ ३ ॥
चित्तं रागादिभिः क्लि, ष्टलीकवचनैर्मु खं ॥ जीवहिंसादिभिः कायो, गंगा तस्य पराङ्मुखी ॥ ४ ॥
परदारपरद्रव्य, परद्रोहपराङ्मुखः ॥ गंगाप्याह कदागत्य, मामयं पावयिष्यति ॥ ५ ॥

हजार बार मिट्टीसे, पानीसे भरे हुये सैकड़ों घड़ोंसे, या सतगमे तीर्थके स्नान करनेसे भी दुराचारी पुरुषोंके दुराचार पाप शुद्ध नहीं होते, जलजंतू जलमें ही उत्पन्न होते हैं और उसमें ही मृत्यु पाते हैं परन्तु उनका मन मैल दूर न होनेसे वे देवगतिको प्राप्त नहीं होते। गंगामें स्नान किये बिना भी शम, दम संतोषादिसे मन निर्मल होता है, सत्य बोलनेसे मुख शुद्ध होता है, ब्रह्मचर्यादिसे शरीर शुद्ध होता है। रागादिसे मन मलिन होता है, असत्य बोलनेसे मुख मलिन होता है और जीवहिंसासे काया मलिन होती है, तो इससे गंगा भी दूर रहती है। गंगा भी यही चाहती है कि; पर स्त्रीसे, पर द्रव्यसे, और पर द्रोहसे दूर रहनेवाले पुरुष मेरे पास आकर मुझे कब पावन करेंगे। (गंगा कैसे पुरुषोंको पवित्र करती है इस विषयमें दृष्टान्त)

कोई एक कुलपुत्र अपने घरसे गंगा आदि तीर्थयात्रा करने चला, उस वक्त उसकी माताने कहा कि हे पुत्र! तूं मेरा यह तुम्बा भी साथ लेजा और जहां २ तीर्थ पर तू स्नान करे वहां २ इसे भी स्नान कराना। कुलपुत्रने मांका कहना मंजूर कर जिस २ तीर्थ पर गया उस २ तीर्थमें उस तुंबेको भी अपने साथ स्नान कराया। अन्तमें गंगा आदि तीर्थकी यात्रा कर अपने घर आया और माताका तूंबा उसे समर्पण किया। उस·

वक्त उसने उस तुम्बेका शाक बनाकर पुत्रको ही परोसा। वह उस शाकको मुखमें डालते ही थू थूकार करने लगा और बोला—"अरी, इतना कड़वा शाक कहांसे निकाला?" माताने कहा, क्या अभी भी इसकी कड़वास नहीं गई! अरे! यह क्या तूने इसे इतने सारे तीर्थोंपर स्नान कराया तथापि इसकी कड़वास न गई तो तूने इसे सचमुच स्नान ही नहीं कराया होगा? पुत्र बोला—"नहीं, नहीं मैंने सचमुच ही इसे सब तीर्थोंपर मेरे साथ ही स्नान कराया है। माता बोली—"यदि इतने सारे तीर्थोंपर इसे निलहाने पर भी इसकी कड़वास नहीं गई, तब फिर सचमुच ही तेरा भी पाप नहीं गया। क्या कभी तीर्थ पर न्हानेसे ही पाप जा सकते हैं? पाप तो धर्मक्रिया और तप, जप, द्वारा ही जाते हैं। यदि ऐसा न हो तो इस तूंबेका कडवापन क्यों न गया? माताकी इस युक्तिसे प्रतिबोधको प्राप्त हो कुलपुत्र तप, करनेमें श्रद्धावन्त हुआ।

स्नान करनेमें असंख्य जीवमय जलकी और उसमें शैवाल आदि हो तो अनन्त जन्तूकी विराधना और विना छाने जलमें पूरे दो इन्द्रियादि जीवोंकी विराधनाका भी संभव होनेसे व्यर्थ स्नान करनेमें दोष प्रख्यात ही है।

जल, यह जीवमय ही है, इस विषयमें लौकिक शास्त्रके उत्तर भी मीमांसामें कहा है कि:—

लूतास्यतंतु गलिते ये बिंदौ सांति जंतवः॥
सूक्ष्मा भ्रमरमानास्ते नैवमांतित्रिविष्टपे॥ ६॥

मकड़ीके मुखमें जो तंतू है वैसे तंतूसे बनाये हुए वस्त्रमेंसे छाने हुए पानीके एक बिन्दुमें जितने जीव है उनकी सूक्ष्म भ्रमरके प्रमाणमें कल्पना की जाय तो तीनों जगतमें भी नहीं समा सकते।

"भावस्नानका स्वरूप"

ध्यानांभस्यातुजीवस्य, सदा यच्छुद्धिकारणं।
मलम् कर्म समाश्रित्य भावस्नानंतदुच्यत। ७॥

जीवको ध्यानरूप जलसे जो सदैव शुद्धिका कारण हो और जिसका आश्रय लेनेसे] कर्मरूप मल धोया जाय उसे भावस्नान कहते हैं।

"पूजाके विषयमें"

जिस मनुष्यको स्नान करनेसे भी यदि गूमडा घाव, वगैरहमेंसे पीव या रसी भरती हुई बन्द न होनेके कारण द्रव्यशुद्धि न हो तो उस मनुष्यको अंग पूजाके लिये अपने फूल चंदनादिक दूसरे किसीको देकर उसके पास भगवानकी पूजा कराना, और स्वयं दूसरे अग्र पूजा (धूप, अक्षत, फल, चढ़ाकर) तथा भाव-पूजा करना, क्योंकि शरीर अपवित्र हो उस वक्त पूजा करे तो लाभके बदले आशातनाका संभव होता है, अतः उसे अंगपूजा करनेका निषेध है। कहा है कि;:—

निःशुकत्वादशौचोपि देवपूजा तनोति यः॥
पुष्पेर्भू पतितैर्यश्च भवतश्वपचादिमौ॥ ८।

आशातनाके होनेका भय न रखकर अपवित्र अंगसे (शरीरके किसी भी भागमेंसे रसी या राद वगैरह वहती हो तो) देव पूजा करे अथवा जमीन पर पडे हुये फूलसे पूजा करे तो वह भवांतरमें नीच चांडालकी गतिको प्राप्त करता है।

"पूजामें आशातना करनेसे प्राप्त फलके विषयमें दृष्टांत"

कामरूप पट्टन नगर में किसी एक चंडालके घर एक पुत्रका जन्म हुवा। उसका जन्म होते ही उसके पूर्वभव वैरी किसी व्यंतर देवने उसे वहांसे हरन कर कहीं जंगलमें रख दिया। उस समय कामरूप पट्टनका राजा फिरता हुआ उसी जंगलमें जा निकला। उस बालकको जंगलमें पड़ा देख स्वयं अपुत्र होनेसे उसे उठा लिया और अपने घर लाकर उसका पुण्यसार नाम रक्खा। अब वह पोषण होते हुए यौवनावस्थाको प्राप्त हुवा। अन्तमें उसे राज्य देकर राजाने दीक्षा अंगीकार की और संयम पालते हुवे कितने एक समय बाद उसे केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई। अब वह केवलज्ञानी महात्मा पुनः उस नगरमें पधारे तब पुण्यसार राजा एवं नागरिक लोक उन्हें वंदन करनेको आये। इस अवसर पर पुण्यसारको जन्म देनेवाली जो चांडाली उसको माता थी वह भी वहां पर आई। सब सभा समक्ष राजाको देखते ही उस चांडालीके स्तनमेंसे दूधकी धार छूटकर जमीन पर पडने लगी। यह देख राजाके मनमें आश्चर्यता प्राप्त होनेसे वह केवलज्ञानीसे पूछने लगा कि "हे महाराज! मुझे देखकर इस चांडालीके स्तनसे दूधकी धार क्यों बहने लगी?" केवलीने उत्तर दिया "हे राजन्! यह तेरी माता है, मैंने तो तुझे जंगलमें पड़ा देख उठा लिया था"। राजा पूछने लगा "हे स्वामिन्! मैं किस कर्मसे चंडालके कुलमें उत्पन्न हुआ?" केवलीने कहा—"पूर्वभवमें तू व्यापारी था। तूने एक दिन जिनेश्वरकी पूजा करते हुए पुष्प जमीन पर पड़ा था वह चढाने लायक नही है ऐसा जानते हुये भी इसमें क्या है ऐसी अवज्ञा करके प्रभु पर चढाया था। इसीसे तू नीच गोत्रमें उत्पन्न हुआ है। कहा है कि:—

उचिट्ठं फलकुसुमं, नेवज्जं वा जिणस्स जो देइ॥
सो निअगोअं कम्मं, बंधइ पायन्न जंम्मंमि॥ १॥

अयोग्य फल या फूल या नैवेद्य भगवान पर चढावे तो परलोकमें पैदा होनेका नीच गोत्र बांधता है।

तेरे पूर्व भवकी जो माता थी उसने एक दिन स्त्रीधर्म (रजःस्वला) में होने पर भी देवपूजाकी उस कर्मसे मृत्यु पाकर वह चांडाली उत्पन्न हुई। ऐसे वचन सुनकर वैराग्यको प्राप्त हो राजाने दीक्षा ग्रहण करके देवगति को प्राप्त किया। अपवित्र पुष्पसे पूजा करनेके कारण नीचगोत्र बांधा इस पर यह मातंगकी कथा बतलाई।

ऊपरके दृष्टांतमें बतलाये मुजब नीच गोत्र बंधता है इसलिये गिरा हुवा पुष्प यदि सुगंधी युक्त हो तथापि प्रभुपर न चढाना। जरा मात्र भी अपवित्र हो तो भी वह प्रभुपर चढाने योग्य नहीं। स्त्रीधर्ममें आई हुई स्त्रियोंको किसी वस्तुको स्पर्श न करना चाहिये।

"पूजा करते समय वस्त्र पहननेकी रीति"

पूर्वोक्त रीतिसे स्नान किये बाद पवित्र, सुकुमाल, सुगंधी, रेशमी या सूती सुंदर वस्त्र रूमाल आदिसे

अंगलुहन करके दूसरे शुद्ध वस्त्र पहनते हुए भीने वस्त्र युक्तिपूर्वक उतार कर भीने पैरोंसे मलिन जमीनको स्पर्श न करते हुये पवित्र स्थान पर जाकर उत्तर दिशा सन्मुख खड़ा रह कर मनोहर, नवीन, फटाहुवा, या सांधेवाला न हो ऐसा विस्तीर्ण सुफेद वस्त्र पहनना। शास्त्रमें कहा है कि:,—

विशुद्धं वपुषः कृत्वा, यथायोगं जलादिभिः॥
धौतवस्त्रे च सीतेन्द्रे, विशुद्धे धूपधूपिते॥१॥
(श्लौकिकमां) न कुर्यात्संधितं वाक्यं, देवकर्माणि भूमिप॥
न दग्धं न च वैच्छिन्नं, परस्य न तु धारयेत्॥२॥
कटिस्पृष्टं तुयद्वस्त्रं, पुरीषं येन कारितं॥
समूत्रं मैथुनं वापि, तद्वस्त्रं परिवर्जयेत्॥३॥
एकवस्त्रो न भुंजीत, न कार्याद्देवतार्चनं॥
न कुंचुकं विना कार्या, देवार्चा स्त्री जनेनच॥४॥

योग समाधिके समान निर्मल जलसे शरीरको शुद्ध करके, निर्मल धूपसे धूपित-धोये हुये दो वस्त्र पहरे। लौकिकमें भी कहा है कि, "हे राजन्! देव पूजाके कार्यमें सांधा हुवा, जला हुवा, फटा हुवा या दूसरेका वस्त्र न पहनना। एक दफा भी पहना हुवा या जिसे पहन कर लघुनीति, वडीनीति, या मैथुन किया हो वैसा वस्त्र न पहनना। एक ही वस्त्र पहन कर भोजन न करना, एवं देवपूजा भी न करना। स्त्रियोंको भी कंचुकी पहिने विना पूजा न करनी चाहिए।

इस प्रकार पुरुषको दो और स्त्रीको तीन वस्त्र पहने विना पूजा करना नहीं कल्पता। देवपूजन आदिमें धोये हुए वस्त्र मुख्यवृत्तिसे अति विशिष्ट क्षीरोदकादि धवले ही उपयोगमें लेना। जिस तरह उदायन राजाकी रानी प्रभावती आदिने भी धवले ही वस्त्र उपयोगमें लिये थे वैसे ही अन्य स्त्रियोंको भी धवले ही वस्त्र देव पूजामें धारण करना चाहिए। पूजाके वस्त्र निशीथ सूत्रमें भी सफेद ही कहे हैं। 'सेय वच्छ नियसणो, सफेद वस्त्र पहन कर (पूजा करना) ऐसा श्रावक दिनकृत्यमें भी कहा है।

क्षीरोदक वस्त्र पहननेकी शक्ति न हो तो हीरागल (रेशमी) धोती सुन्दर पहनना। पूजा, षोडशकमें भी "सितशुभवस्त्रेण" सफेद शुभ वस्त्र, ऐसा लिखा है। उसीकी वृत्तिमें कहा है कि, सितवस्त्रेण शुभवस्त्रेण च शुभमिह सितादन्यदपि पट्ट युग्मादिरक्त पीतादि वर्ण परिग्रिहते, सफेद और शुभ वस्त्र पहनना, यहां पर शुभ किसे कहना? सुफेदकी अपेक्षा जुदे भी पटोला वगैरह खपता है। लाल, पीले वर्णवाले भी ग्रहण किये जाते हैं।

"उत्तरासन धारण करनेके विषयमें

'एग साडीयं उत्तरासंग करेइ, आगमके ऐसे प्रमाणसे उत्तरासन अखंड एक ही करना परंतु दो खंड जोड़कर न करना चाहिये। एवं दुकूल (रेशमी वस्त्र) भी भोजनादिकमें सर्वदा धारण करनेसे अपवित्र ही गिना जाता है इसलिये वह न धारण करना। यदि लोकमें ऐसा मानाहुवा हो कि, रेशमीवस्त्र भोजन और मलमूत्रादिसे अपवित्र नहीं होता तथापि वह लोकोक्ति जिनराजकी धारण चरितार्थ न करना,

किन्तु अन्य धोतीके समान मलमूत्र अशुचि स्पर्श वर्जने आदिकी युक्तिसे देवपूजामें धारण करना, अर्थात् देवपूजाके उपयोगमें आनेवाले वस्त्र देवपूजा सिवाय अन्य कहीं भी उपयोगमें न लेना, देवपूजाके वस्त्रोंको वारंवार धोने धूप देने वगैरह युक्तिसे सदैव साफ रखना तथा उन्हें थोड़े ही टाइम धारण करना। एवं पसीना, श्लेष्म थूंक, खंखार, वगैरह उन वस्त्रोंसे न पोछना; तथा हाथ, पैर, मुख, नाक, मस्तक भी उनसे न पोछना। उन वस्त्रोंको अपने सांसारिक कामके वस्त्रोके साथ या दूसरे बाल, वृद्ध, स्त्री आदिके वस्त्रोंके साथ न रखना, तथा दूसरेके वस्त्र न पहनना। यदि वारंवार पूजा वस्त्रोंको पूर्वोक्त युक्तिसे न संभाला जाय तो अपवित्र होनेके दोषका संभव है।

इस विषय पर दृष्टान्त सुना जाता है कि, कुमारपाल राजाने प्रभुकी पूजाके लिये नवीन वस्त्र मांगा उस वक्त मंत्री वाहड अंबडके छोटे भाई चाहडने संपूर्ण नया नहीं परन्तु किंचित् वर्ता हुवा वस्त्र ला दिया। उसे देख राजाने कहा नहीं नहीं! पुराना नहीं चाहिए। किसीका भी न वर्ता हुवा ऐसा नवीन ही वस्त्र प्रभुकी पूजाके लिए चाहिये, सो ला दो। उसने कहा कि, महाराज! ऐसा साफ नया वस्त्र तो यहां पर मिलता ही नहीं। परन्तु सवालाख द्रव्यके मूल्यसे नया वस्त्र वंबेरा नगरीमें बनता है, पर वहांका राजा उसे एक दफा पहनकर बाद ही यहां भेजता है। यह वचन सुनकर कुमारपाल राजाने वंबेरा नगरीके अधिपतिको सवालाख द्रव्य देना विदित कर बिलकुल नया वस्त्र भेजनेको कहलाया। परन्तु उसने नामंजूर किया। इससे कुमारपाल राजाको बड़ा बुरा मालूम दिया। कोपायमान हो कुमारपालने चाहडको बुलाकर कहाकि, अपना बड़ा सैन्य लेकर तू बंबेरे नगरमे जाकर जय प्राप्त कर वहांके पटोलके कारीगरोंको (रेशमी कपड़े बुनने वालोंको) यहाँ ले आ। यद्यपि तू दान देनेमें बड़ा उदार है तथापि इस विषयमें विशेष खर्च न करना। यह वचन अंगीकार कर वहांसे बड़ा सैन्य साथ ले तीसरे प्रयाणमें चाहड बंबेरा नगर जा पहुंचा। बंबेराके स्वामीने उसके पास लाख द्रव्य मांगा; परन्तु कुमारपालकी मनाई होनेसे उसने देना मंजूर न किया और अन्तमें वहांके राज भंडारके द्रव्यको व्यय कराकर (जिसने जैसे मांगा उसे वैसे देकर) चौदहसो सांडणीयोंपर चढ़े हुवे दो दो शस्त्रधारी सुभटोंको साथ ले अकस्मात रात्रिके समय बंबेरा नगरको वेष्टित कर संग्राम करनेका विचार किया परन्तु उस रातको वहांके नागरिक लोकोंमें सातसौ कन्याओंका विवाह था यह खबर लगनेसे उन्हें विघ्न न हो, उस रात्रीको विलंब कर सुबहके समय अपने सैनिक बलसे उसने वहांके किलेका चुरा २ कर डाला। और किलेमें घुसकर वहांके अधिपतिका दरबारका गढ (किला) अपने ताबे किया। तदनंतर अपने राजा कुमारपालकी आज्ञा मनवाकर वहांके खजानेमेंसे सात करोड़ सुवर्ण महोरें और ग्यारह सो घोड़े तथा सातसौ कपड़े बुनने वालोंको साथ ले बड़े महोत्सव सहित पाटण नगरमें आकर कुमारपाल राजाको नमस्कार किया। यह व्यतिकर सुनकर कुमारपालने कहा "तेरी नजर बडी है वह बड़ी ही रही; क्योंकि, तूने मेरेसे भी ज्यादह खर्च किया; यदि मैं स्वयं गया होता तो भी इतना खर्च न होता।" यह वचन सुनकर चाहड बोला—"महाराज! जो खर्च हुवा है उससे आपकी ही बड़ाई है। मैंने जो खर्च किया है सो आपकेही बलसे किया है, क्योंकि; बड़े स्वामीका कार्य भी बड़ेही खर्चसे होता है। जो खर्च होता है उसीसे बड़ोंकी बड़ाई है। मैंने जो खर्च किया

है सो मेरे ऊपर बड़ा स्वामी है तभी किया है न ? यह वचन सुनकर राजा बड़ा खुशी हुवा और अपने राज्यमें उसे राज्यधरद्ध ऐसा विरुद् देकर बड़ा सन्मानशाली किया। पूजामें दूसरे किसीसे वर्ता हुवा वस्त्र धारण न करना इस बात पर कुमारपालका दृष्टान्त वतलाया (इस दृष्टांतका तात्पर्य यह है कि, पूजाके काम लायक कुमारपालको नया वस्त्र न मिला इससे दूसरे राज्य पर चढाई भेजकर भी नया उत्तम वस्त्र वनाने वाले कारीगरोंको लाकर वह तैयार कराया)

"पूजाकी द्रव्य सामग्री"

अच्छी जमीनमें पैदा हुये, अच्छे गुणवान परिचित मनुष्य द्वारा मंगाये हुये, पवित्र वरतनमें भरकर ढक कर लाये हुये, लाने वालेको मार्गमें नीच जातिके साथ स्पर्श न होते हुये वड़ो यतना पूर्वक लाये हुये, लानेवालेको यथार्थ प्रमाणमे मूल्य दे प्रसन्न करके मंगाये हुये, (किसीको ठगकर या चुराकर लाये हुये फूल पूजामें अयोग्य गिने जाते हैं) फूल पूजाके उपयोगमें लेना। (अर्थात् ऐसी युक्ति पूर्वक मंगाये हुए फूल भगवानकी पूजामें चढाने योग्य हैं) इस प्रकार पवित्र स्थान पर रक्खा हुवा शुद्ध किया हुवा केशर कपूर, (वरास) जातिवान चंदन, धूप, गायके घीका दीपक, अखण्ड अक्षत, (समूचे चावल), तत्कालके वनाये हुये और जिन्हें चूहे, बिल्ली आदि हिंसक प्राणीने सूंघा या खाया, स्पर्श न किया हो ऐसे पक्वान, आदि नैवेद्य; और मनोहर सुस्वादु मनगमते सचित्त अचित्त वगैरह फल उपयोगमें लेना। इस प्रकार पूजाकी द्रव्य सामग्री तैयार करनी चाहिये। इस तरह सर्व प्रकारसे द्रव्य शुद्धि रखना।

"पूजाके लिए भावशुद्धि"

पूजामें भावशुद्धि—किसी पर राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्षा, स्पर्धा, इस लोक परलोकके सुख, यश और कीर्तिकी वांछा, कौतुक, क्रीड़ा, व्यवहार, चपलता, प्रमाद, देखादेखी, वगैरह कितने एक लौकिक प्रवाह दूर करके चित्तकी एकाग्रता, प्रभुभक्तिमें रखकर जो पूजा की जाती है उसे भावशुद्धि कहते हैं। जैसे कि शास्त्रमें कहा है:—

मनोवाक्कायवस्त्रोर्वी, पूजोपकरण स्थितः।
शुद्धिसप्तविधा कार्या, श्री अर्हत्पूजनक्षणे ॥ १ ॥

मनकी शुद्धि, वचनकी शुद्धि, शरीरकी शुद्धि, वस्त्रकी शुद्धि, भूमिकी शुद्धि, पूजाके उपकरणकी शुद्धि, इस तरह भगवानकी पूजाके समय सात प्रकारकी शुद्धि, करना। ऐसे द्रव्यसे और भावसे शुद्धि करके पवित्र हो मन्दिरमें प्रवेश करे।

"मंदिरमें प्रवेश करनेका क्रम"

आश्रयन् दक्षिणां शाखां, पुमान् योषित्वदक्षिणां;
यतः पूर्वं प्रविश्यांत, दक्षिणेनांहिणा ततः ॥ १ ॥

मंदिरकी दाहिनी दिशाकी शाखाको आश्रित कर पुरुषोंको मंदिरमें प्रवेश करना चाहिये और बांई तर-

फकी शाखाको आश्रय कर स्त्रियोंको प्रवेश करना चाहिये परन्तु मन्दिरके दरवाजेके सन्मुख पहिली पावड़ीपर स्त्री या पुरुष को दाहिना ही पग रखकर चढना चाहिये। (यह अनुक्रम स्त्री पुरुषोंके लिए समान ही है)

सुगंधि मुधुरैः द्रव्यैः प्राङ्मुखो वाप्युदमुखः
वामनाड्यां पट्टत्तायां मौनेवान् देव मर्चयेत् ॥ २ ॥

पूर्व दिशा या उत्तर दिशा सन्मुख बैठकर चंद्रनाड़ी चलते हुये सुगन्ध वाले मीठे पदार्थोंसे देवपूजा करना। समुच्चयसे इस युक्ति पूर्वक देवपूजा करना सो विधि बतलाते हैं—तीन निःसही चिंतवना, तीन प्रदक्षिणा फिरना, त्रिकरण, (मन, वचन, शरीर) शुद्धि करना इस विधिसे शुद्ध पवित्र चौकी आदि पर पद्मासनादिक सुखसे बैठा जासके ऐसे आसनसे बैठकर चन्दनके वर्तनमेंसे दूसरे वरतन (कचोली) वगैरहमें या हाथकी हथैलीमें चन्दन लेकर मस्तक पर तिलक कर हाथमें कंकन, या नाडा छड़ी बांध कर हाथकी हथैली चन्दनके रससे विलेपन वाली करके धूपसे धूपित कर फिर भगवंतकी वक्षमाण (इस पुस्तकमें आगे कही जायगी) विधि पूर्वक पूजात्रिक) अंगपूजा, अग्रपूजा, भाव-पूजा,) करके संवरण करे (यथाशक्ति प्रातःकाल धारण किया हुवा प्रत्याख्यान प्रभुके सन्मुख करे) (यह सब पांचवी मूल गाथाका अर्थ बतलाया)

"मूल गाथा"

विहिणां जिणं जिणगेहे। मतां मच्चेई उचिय चिंत्तरओ ॥
उच्चरई चच्चवाणं। हृदृढ पंचाचार गुरुपाशे ॥ ३ ॥

विधि पूर्वक जिनेश्वर देवके मंदिर जाकर विधिपूर्वक उचित चिंतवन करके (मंदिरको देखरेख करके) विधि पूर्वक जिनेश्वरकी पूजा करे। यह सामान्य अर्थ बतला कर अब विशेष अर्थ बतलाते हैं।

"मंदिर जानेका विधि"

यदि मंदरि जानेवाला राजा आदि महर्धिक हो तो "सव्वाए रिद्धिए सव्वाए दित्तिए सव्वाए जुइए सव्वबलेणं सव्वबलेणं। सर्वसिद्धिसे, सर्व दीप्ति—कान्तिसे, सर्व युक्तिसे, सर्वबलसे, सर्वपराक्रमसे (आगमके ऐसे पाठसे) जैन शासनका महिमा बढ़ानेके लिये ऋद्धिपूर्वक मंदिर जाय। जैसे दशार्णभद्र राजा श्रीवीतराग वीर प्रभुको वंदन करने गया था उस प्रकार जाय।

"दशार्णभद्र राजाका दृष्टांत"

दशार्णभद्र राजा ने अभिमान से ऐसा विचार किया था कि, जिस प्रकार किसी ने भी भगवान को वंदन न किया हो वैसी ऋद्धि से भगवानको वंदन करने जाऊं। यह विचार कर वह अपनी सर्व ऋद्धि सहित, अपने सर्व पुरुषोंको यथायोग्य श्रृंगार से सजा कर तथा हर एक हाथि के दंतशूल पर सुवर्ण और चाँदीके जेवर पहना कर चतुरंग सेना सहित अपनी अन्ते उरियोंको सुवर्ण चाँदी की पालखियों या अंबारियों

में (हाथीके हौदोंमें) बैठा कर सबको साथ ले बड़े भारी जुलूसके साथ भगवंत को वंदन करने आया। उस समय उसे अत्यंत अभिमान आया जान कर उसका अभिमान उतारनेके लिये सौधर्मेंद्रने श्री वीरप्रभुको वंदन करने आते हुये ऐसी दैविक ऋद्धि की विकूर्वणा—रचना की सो यहां पर वृद्ध ऋषिमंडल स्तोत्र वृत्ति से बतलाते हैं:—

चउसट्ठि करि सहस्सा, वरणसय बारस्स सिराइं पत्तेयं ; कुंभे अडअड दंते, तेसुअवावोवि अठ्ठठ्ठ ॥१॥
अठ्ठठ्ठ लक्खपत्ताइं, तासु पउमाइं हुंति पत्तेयं ; पत्ते पत्ते वत्तीस, बद्ध नाड्य विहि दिव्वो ॥२॥
एगेग कणिणआए, पासाय, वडिसआअ पइपउमं ; अग्गमहिसिहि सद्धिं, उवभिज्जइ सोतहि सक्को ॥३॥
एयारिस इड्ढिए विलग्ग मेरावणंमि दठ्ठ हरिःराया दसन्नभद्दो, निक्खंतो पुरण सपइन्नो ॥४॥

प्रत्येकको पांचसों, बारह, मस्तक ऐसे ६४ हजार हाथी बनायें। उसके एकेक मस्तक पर आठ २ दंतुशल, एकेक दंतुशल पर आठ २ हौद ; एकेक हौद में एक लाख पंखड़ीवाले आठ २ कमल, और एकेक कमलमें एकेक लाख पंखड़ियाँ रचीं। उन एकेक पंखडियों पर प्रासादवतंस (महल) की रचना की। उन प्रत्येक महल में बत्तीस बद्ध नाटक के साथ गीत गान हो रहा है। ऐसे नाना प्रकार के आश्चर्यकारक दिखाव से अपनी आठ २ अग्रमहिषियोंके साथ प्रत्येकमें एकेक रूप से ऐरावत हाथी पर बैठा हुवा सौधमेन्द्र अत्यानंदपूर्वक दिव्य बत्तीसबद्ध नाटक देखता है। इस प्रकार अत्यंत रमणीय रचना कर के जब अनेक रूपको धारण करने वाला इन्द्र आकाशसे उतर कर समवसरण के नजीक अपनी अतुल दिव्य ऋद्धि सहित आ कर भगवान को वंदन करने लगा तब यह देख दशार्णभद्र राजाका सारा अभिमान उतर गया। वह इन्द्रकी ऋद्धि देख लज्जासे खिसयाना हो कर विचारने लगा कि, अहो आश्चर्य! ऐसी ऋद्धिके सामने मेरी ऋद्धि किस गिनती में है! अहा! मैंने यह व्यर्थ ही अभिमान किया कि जैसी ऋद्धि सिद्धि सहित भगवानको किसीने वंदन न किया हो उस प्रकारके समारोहसे मैं वंदन करूंगा। सचमुच ही मेरा पुरुषाभिमान असत्य है। ऐसे समृद्धिवालों के सामने मैं क्या हिसाब में हूं? यह विचार आते ही उसे तत्काल वैराग्य प्राप्त हुआ और अन्तमें उसने भगवानके पास आकर हाथ जोड़ कर कहा कि, स्वामिन्! आपका आगमन सुन कर मेरे मनमे ऐसी भक्ति उत्पन्न हुई कि, किसीने भी ऐसी विस्तृत ऋद्धि के साथ भगवान को वंदन न किया हो वैसी बड़ी ऋद्धिके विस्तारसे मैं आपको वंदन करूं। ऐसी प्रतिज्ञा करके ऐसे ठाठमाटसे याने जितनी मेरी राजऋद्धि है वह सब साथ ले कर बड़े उत्साह पूर्वक आपके पास आकर, वंदना की थी, इससे मैं कुछ देर पहले ऐसे अभिमान में आया था कि, आज मैंने जिस समृद्धि सहित भगवनको वंदन किया है वैसे समारोहसे अन्य कोई भी वंदन न कर सकेगा परन्तु वह मेरी मान्यता सचमुच वंध्यापुत्र के समान असत्य ही है। इस इंद्रमहाराजने अपनी ऐसी दिव्य अतुल समृद्धिके साथ आ कर आपको वंदन किया। इसकी समृद्धिके सामने मेरी यह तुच्छ ऋद्धि कुछ भी हिसाबमें नहीं; यह दृश्य देख कर मेरे तमाम मानसिक विचार बदल गये हैं। सचमुच इस असार संसारमे जो २ कषाय हैं वे आत्माको दुःखदायक ही हैं। जब मैंने इतना बड़ा अभिमान किया तब मुझे उसीके कारण इतना खेद करना

पड़ा। यह मेरी राजऋद्धि और यह मेरा परिवार अन्तमें मुझे दुःख का ही कारण मालूम होगा, इसलिये इससे अब मैं बाह्य और आभ्यंतरसे मुक्त होना चाहता हूं, अतः "हे स्वामिन्! अब मुझे अपनी चरणसेवा दे कर मेरा उद्धार करें।"

भगवन्त बोले—"हे दशार्णभद्र! यह संसार ऐसा ही है। इसका जो परित्याग करता है वही अपनी आत्माका उद्धार करता है; इसलिये यदि तेरा सचमुच ही यह विचार हुआ है तो अब संसारके किसी भी प्रतिबन्धमें प्रतिबन्धित न होना।" राजाने 'तथास्तु' कहकर तत्काल दीक्षा अंगीकार की। यह बनाव देख सौधर्मेन्द्र उठकर दशार्णभद्र राजर्षिको वंदन कर बोला—"सचमुच आपका अभिमान उतारनेके लिये ही मैंने यह मेरी दिव्य शक्तिसे रचना कर आपका अभिमान दूर किया सही परन्तु हे मुनिराज! आपने जो प्रतिज्ञा की थी वह सत्य ही निकली। क्योंकि, आपने यह प्रतिज्ञा की थी जिस रीतिसे किसीने वन्दन न किया हो उस रीति से करूंगा। तो आप वैसा ही कर सके। आप ने अपनी प्रतिज्ञा सिद्ध ही की। मैं ऐसी ऋद्धि बनाने मे समर्थ हूं परन्तु जैसे आपने बाह्याभ्यंतर परिग्रह का त्याग कर दिया वैसे मैं त्याग करने के लिये समर्थ नहीं हो सकता। अब मैं आप से बढकर कार्य कर या आपके जैसा ही काम कर के आप से आगे निकलनेमें सर्वथा असमर्थ हूं; इसलिए हे मुनिराज! धन्य है आपको और धन्य है आपकी प्रतिज्ञा को।

समृद्धिवान पुरुषको अपने व्यक्तित्वके अनुसार समारोह से जिन-मंदिर में प्रवेश करना चाहिये।

"सामान्य पुरुषोंके लिये जिनमन्दिर जानेका विधि"

सामान्य संपदावाले पुरुषोंको विनय नम्र हो कर जिस प्रकार दूसरे लोग हंसी न करें ऐसे अपने कुलाचारके या अपनी संपदाके अनुसार वस्त्राभूषणका आडंबर करके अपने भाई, मित्र, पुत्र, स्वजन समुदाय को साथ ले जिन मंदिरमें दर्शन करने जाना चाहिये।

"श्रावकके पंचाभिगम"

१ पुष्प, तांबुल, सरसवद्रोछुरी, तरवार, आदि सर्व जाति के शस्त्र, मुकुट, पादुका, (पैरों मे पहनने के जूते,) बूट, हाथी, घोड़ा, गाड़ो, वगैरह सचित्त और अचित्त वस्तुयें छोड़ कर (२) मुकुट छोड़ कर बाकी के अन्य सब आभूषण आदि अचित्त द्रव्य को साथ रखता हुआ (३) एक पनेहके वस्त्रका उत्तरासन कर के (४) भगवान् को दृष्टि से देखते ही तत्काल दोनों हाथ जोड़कर जरा मस्तक झुकाते हुए "नमो जिणाणं" ऐसा बोलते हुए, (५) मानसिक एकाग्रता करते हुये (एक वीतरागके स्वरूप में ही या गुणग्राम में तल्लीन बना हुआ) और पूर्वोक्त पांच प्रकार के अभिगम को पालते हुवे "निःसिही" इस पद को तीन दफा उच्चारण करते हुवे श्रावक जिनमंदिरमें प्रवेश करें। इस विषयमें आगममें भी यही कहा है कि, १ सचित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए, २ अचित्ताणं दव्वाणं अविउसरणयाए, ३ एगल्ल साडएणं उत्तरासंगेणं, ४ चक्खुफासेणं अंजलि पग्गहेणं ५ मणसो एगत्ति करणेणं (इस पाठका अर्थ ऊपर लिखे मुजब ही है इसलिये पिष्टपेषण नहीं किया जाता।

"राजाके पंचाभिगम"

अवहट्टु रायककुहाइं। पंच नरराय ककुहाइं॥
खग्गं छत्तो वाहण। मउड तह चामए ओअ॥ १॥

राजा जब मंदिर मे प्रवेश करे तब राज्यके पांच चिन्ह—१ खड्गादि सर्वशस्त्र, २ छत्र, ३ वाहन, ४ मुकुट और ५ दो चामर छोड़कर (वाहर रख कर) अन्दर जाय।

यहां पर यह समझना चाहिये कि, जब श्रावक मंदिर के दरवाजे पर जाय तब मन, वचन, कायासे अपने घर संबन्धी व्यापार (चिंतवन) छोड़ देता है, और यह भी समझ लेना चाहिये कि जिनमंदिर द्वारमें प्रवेश करते ही या ऊपर चढ़ते ही प्रथम तीन दफा निःसिही शब्द उच्चारण करना, ऐसा विधि है। यह तीन दफा उच्चारण किया हुआ निःसिही शब्द अर्थकी दृष्टिसे एक ही गिना जाता है क्योंकि, इस प्रथम निःसिहीसे गृहस्थका सिर्फ घरका ही व्यापार त्यागा जाता है, इसलिये तीन दफा वोला हुवा भी यह निःसिही शब्द एक ही गिना जाता है।

इसके वाद मूल नायकको प्रणाम कर के जैसे चतुर पुरुष, हर एक शुभकार्य को करते हुये दाहिने हाथ तरफ रखकर करते हैं वैसे प्रभुको अपने दाहिने अंग रख कर ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी, प्राप्तिके लिये प्रभु को तीन प्रदक्षिणा दे। ऐसा शास्त्रमें भी कहा है कि,:—

तओ नमो जिणाणंति। भणिअद्धोणयं पणामं च॥ काउं पंचागं वा। भत्तिभर निब्भर मणेणं॥ १॥ पूअग पाणिपरिवार। परिगओ सुहिर महिर घोसेण॥ पढमाणो जिणगुणगण। निवद्ध मंगल्ल सुत्ताइं॥ २॥ करधरिअ जोगमुद्दो। परा परा पाणि रक्खणाउत्तो॥ दिज्जा पयाहिणातिगं एगग्गमणो जिणगुणेसु॥ ३॥ गिहचेइएसु न घडइ। इअरेसुविजइवि कारणावसेण॥ तहवि न मुंचइ मइमं सयावि तक्करण परिणामं॥ ४॥

तदनन्तर 'नमोजिणाणं' ऐसा पद कहकर अर्ध अवनत (जरा नमकर) प्रणाम कर के अथवा भक्तिके समुदायसे अत्यंत उल्लसित मन वाला होकर पंचांग प्रणाम करके पूजाके उपकर्ण जो केशरचंदनादिक हों वे सब साथ ले कर गंभीर मधुर ध्वनिसे जिनेश्वर भगवंत के गुण समुदाय से संकलित मंगल, स्तुति स्तोत्र, वोलता हुवा दो हाथ जोड़ कर पद पदमे जीव रक्षाका उपयोग रखता हुवा जिनेश्वरके गुणोमे एकाग्र मन वाला हो तीन प्रदक्षिणा दे, यद्यपि प्रदक्षिणा देना यह अपने घर मन्दिरमे भमति न होनेके कारण नहीं वन सकता अथवा वड़े मन्दिर में भी किसी कार्यकी उतावल से प्रदक्षिणा न कर सके तथापि बुद्धिमान पुरुष सदैव वैसा विधि करनेके उपयोग से शून्य नहीं होता।

"प्रदक्षिणा देनेकी रीति"

प्रदक्षिणा देते समवशरणके समान चाररूपमे श्रीवीतरागका ध्यान करना। गभारे के पीछे एवं दाहिने वांये तरफ तीन दिशामे रहे हुए तीन जिनबिम्बोंको वन्दन करे। इसी कारण सब मन्दिरोंके मूल

गभारेमें तीन दिशामें मूल नायक के नामके बिम्ब प्रायः स्थापन किये होते है। और यदि ऐसा किया हुवा न हो तथापि अपने मनमें वैसी कल्पना करके मूल नायकके नामसे ध्यान करे। "वर्जयेदर्हत्पृष्ठ" (अरिहन्तका पृष्ठभाग वर्जना) ऐसा जो शास्त्र वाक्य है सो भी यदि भमतीमें तीन दिशाओंमें बिम्ब स्थापन किये हुए हों तो वह दोष चारों दिशाओंमें से दूर होता है।

इसके बाद मन्दिरके नोकर चाकर मुनीम आदिकी तलाश करना (इसकी रीति आगे बतलायेंगे)। यथोचित चिंतवन करके वहां से निवृत्त हुये बाद समग्र पूजाकी सामग्री तैयार करना। फिर मन्दिर के कामकाज त्यागने रूप दूसरी "निःसिही" मन्दिर के मूल मंडप मे तीन दफा कहना। तदनंतर मूल नायकको प्रणाम करके पूजा करना ऐसा भाष्य में भी कहा है—

तत्तो निसीहि आए। पविसित्ता मंडवंमि जिणुणरश्रो॥
महिनिहि अजाणुपाणी। करेइ विहिणापणामतिगं॥ १॥
तयणु हरिसुल्लसंतो। कयमुहकोसो जिणंदपडिमाणं॥
अवणेइ रयणिवसिअं। निम्मल्लं लोम हथ्थेणं॥ २॥
जिणगिह पमज्ज यंतो। करेइ कारेइ वा वि अन्नाणं॥
जिण बिंबाण पुअंतो। विहिणाकुणइ जहजोगं॥

निःसीही कह कर मन्दिरमें प्रवेश कर मूलमंडपमें पहुंच कर प्रभुके आगे पंचांग नमाकर विधिपूर्वक तीन दफा नमस्कार करे। फिर हर्ष और उल्हास प्राप्त करता हुवा मुखकोष बांधके जिनराजकी प्रतिमा पर पहले दिनके चढ़े हुये निर्माल्यको उतारे फिर मयूरपिच्छसे प्रभुकी परिमार्जना करे। फिर जिनेश्वरदेवके मन्दिरको परिमार्जना करे और दूसरेके पास करावे, फिर विधिपूर्वक यथायोग्य अष्ट पट मुखकोष बांध कर जिनबिम्बकी पूजा करे। मुखका श्वास, निश्वास दुर्गंध तथा नासिकाके श्वास, निःश्वास, दुर्गंध रोकनेके निमित्त अष्टपट— आठ पडवाला मुखकोष बांधनेकी आवश्यकता है। जो अगले दिनका निर्माल्य उतारा हो वह पवित्र निर्जीव स्थानमे डलवाना। वर्षाऋतुमें कुंथु आदिकी विशेष उत्पत्ति होती हैं; इसलिए निर्माल्य तथा स्नात्र जल जुदे २ ठिकाने पवित्र जमीन पर डलवाना कि जिससे आसातनाका संभव न हो। यदि घर मंदिरमें पूजा करनी हो तो प्रतिमाको पवित्र उच्च स्थान पर विराजमान करके भोजन वगैरहमें न वर्त्ता जाता हो ऐसे पवित्र बरतनमे प्रभुको रख कर सन्मुख खडा रह कर हाथमे उत्तम अंतरासनके वस्त्रसे ढके हुए कलशको धारण कर शुभ परिणामसे निम्न लिखी गाथाके अनुसार चिंतवन करता हुआ अभिषेक करे।

बालत्तणमिसामिअ। सुमेरुसिहरंमि कणयकलसेंहि॥
तिअसा सुरेंहि न्हवीओ। ते धन्ना जेहि दिठ्ठोसि॥

"हे स्वामिन्! बाल्यावस्थामें सुन्दर मेरुशिखर पर सुवर्ण प्रमुख आठ जातिके कलशोंसे सुरेश्वरने (इंद्रने) आपका अभिषेक किया उस वक्त जिसने आपके दर्शन किये हैं वे धन्य हैं;" उपरोक्त गाथा बोल कर उसका अभिप्राय चिंतवन कर मौनतासे भगवंतका अभिषेक करना। अभिषेक करते समय अपने मनमें जन्माभिषेक

संबन्धी सर्व वितार चिंतवन करना। फिर यत्न पूर्वक वाला कूंचीसे चंदन, केशर पहले दिनके लगे हुये हों सो सब उतारना। तथा दूसरी दफा भी जलसे प्रक्षालन कर दो कोमल अंगलून्होंसे प्रभुका अंग निर्जल करना। सर्वाङ्ग निर्जल करके एक अंगके बाद दूसरे अंगमे इत्यादि अनुक्रमसे पूजा करे।

"चन्दनादिकसे नव अंगकी पूजा"

दो अंगूठे, दो जानू, दो हाथ, दो कन्धे, एक मस्तक। इस तरह नव अंगों पर भगवंतकी केसर, चंदन, बरास, कस्तूरीसे पूजा करे। कितनेक आचार्य कहते हैं कि, प्रथम मस्तक पर तिलक करके फिर दूसरे अंगोंमें पूजा करना। श्री जिनप्रभसूरिकृत पूजाविधिमे निम्न लिखे पाठके अनुसार अभिप्राय है:—

सरस सुरहि चंदणेण देवस्स दाहिणजाणु दाहिणखंध निलाड वामखंध वामजाणु लख्खणेसु पंचसु हि अणहि सह छसुवा अंगेसु पुअं काऊण पच्चग्ग कुसुमेहि गंधवासेहिं च पुइयं॥

सरस सुगंधित चंदनादि द्वारा देवाधिदेवको प्रथम दहिने जानू पर पूजा करनी, फिर दाहिने कन्धे पर, फिर मस्तक पर, फिर बांये कन्धे पर, फिर बांये जानू पर, इन पांच अंगोंमे तथा हृदय पर तिलक करे तो छह अंग पूजा मानी जाती है। इस प्रकार सर्वाङ्ग पूजा करके ताजे विकस्वर पुष्पोंसे सुगन्धी वाससे प्रभुकी पूजा करे, ऐसा कहा है।

"पहलेकी की हुई पूजा या आंगी उतार कर पूजा हो सके या नहीं"

यदि किसीने पहले पूजा की हुई हो या आंगीकी रचना की हुई हो और वैसी पूजा या आंगी न बन सके वैसी पूजाकी सामग्री अपने पास न हो तो उस आंगीके दर्शनका लाभ लेनेसे उत्पन्न होने वाले पुण्यानुबंधी पुण्यके अंतराय होनेके कारणिकपन के लिए उस पूर्व रचित आंगी पूजाको न उतारे। परन्तु उस आंगी पूजा की विशेष शोभा बन सके ऐसा हो तो पूर्व पूजा पर विशेष रचना करे। परन्तु पूर्व पूजाको विच्छिन्न न करे। तदर्थ भाष्यमें कहा है कि,

अह पुव्वं चिअ केणइ। हविज्ज पूआ कथा सुविहवेण॥
तंपि सविसेससोहं। जह होइ तह तहा कुज्जा॥१॥

"यदि किसी भव्य जीवने बहुतसा द्रव्य खर्च करके देवाधिदेवकी पूजा की हो तो उसी पूजाकी विशेष शोभा हो सके तो वैसा करे।" यहां पर कोई यह शंका करे कि पूर्वकी आंगी पर दूसरी आंगी करे तो पूर्वकी आंगी निर्माल्य कही जाय। इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि,

निम्मल्लं पि न एवं। भण्णइ निम्मल्लं लख्खणाभावा॥
भोग विणठ्ठं दव्वं। निम्मल्लं विंति गीयथ्था॥२॥

यहां पर निर्माल्यके लक्षणका अभाव होनेसे पूर्वकी आंगी पर दूसरी आंगी करे तो वह पूवकी आंगी निर्माल्य नहीं गिनी जाती। जो पूजा किये बाद नाशको प्राप्त हुवा; पूजा करने योग्य न रहा वह द्रव्य निर्माल्य गिना जाता है, ऐसा गीतार्थोंका कथन है।

इत्तो चेव जिणाणं । पुणरवि आरोवणं कुणंवि जहा ॥
वथ्था हरणाईणं । जुगलिअ कुंडलिअ माईणं ॥ ३ ॥
कइयवह एगाए । कासाइए जिणंद पडिमाणं ॥
अठ्ठसयं लुहंता । विजयाई वन्नीया समए ॥ ४ ॥

जैसे एक दिन चढाये हुए वस्त्र, आभूषणादि कुंडल जोडी एवं कंठा वगैरह दूसरे दिन भी पुनः आरोपण किये जाते हैं वैसे ही आंगीकी रचना तथा पुष्पादिक भी एक दफा चढाये हों तो उन पर फिरसे दूसरे चढाने हों तो भी चढाये जा सकते हैं; और वे चढाने पर भी पूर्वमें चढ़ाये हुए पुष्पादिक निर्माल्य नहीं गिने जाते। यदि ऐसा न हो तो एक ही गंध कासायिक (रेशमी वस्त्र) से एक सौ आठ जिनेश्वरदेवकी प्रतिमाओं को अंगलुंछन करने वाला विजयादिक देवता जंबूद्वीप पन्नत्तिमें क्यों वर्णित किया हो ?

"निर्माल्यका लक्षण"

जो वस्तु एक दफा चढाने पर शोभा रहित होजाय, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, बदला हुवा देख पडता हो, देखने वाले भव्य जीवोंको आनन्द दायक न हो सकता हो उसे निर्माल्य समझना। ऐसा संघाचारकी वृत्तिमें बहुश्रुत पूर्वाचार्योंने कहा है। तथा प्रद्युम्न सूरि महाराज रचित विचार सारमें यहां तक कहा है कि,

चेइअदव्वं दुविहं । पूआ निम्मल्ल भेअओ इथ्थ ।
आयाणाइ दव्वं । पूयारिथ्थ मुणेयव्वं ॥ १ ॥
अख्खय फलवलि वथ्थाई । संतिअं जं पुणो दविण वणजायं ॥
तं निम्मलं वुच्चइ । जिणगिह कम्मंमि उवओगो ॥ २ ॥

देव द्रव्यके दो भेद होते हैं। १ पूजाके लिए संकल्पित, २ निर्माल्य बनाहुवा। १ जिन पूजा करनेके लिए केशर चंदन, पुष्प, वगैरह तयार किया हुवा द्रव्य पूजाके लिये संकल्पित कहलाता है याने वह पूजाके लिए कल्पित किये बाद फिर दूसरे उपयोगमें नहीं लिया जा सकता, याने देवकी पूजामें ही उपयोगी है। २ अक्षत, फल, नैवेद्य, वस्त्रादिक जो एक दफा पूजाके उपयोगमें आचुका है, ऐसे द्रव्यका समुदाय पूजा किये बाद निर्माल्य गिना जाता है।

यहां पर प्रभु पर चढाये हुये चावल, बादाम भी निर्माल्य होते हैं ऐसा कहा, परन्तु अन्य किसी भी आगममे या प्रकरणमें अथवा चरित्रोंमें इस प्रकारका आशय नहीं बतलाया गया है, एवं वृद्ध पुरुषोंका संप्रदाय भी वैसा किसीके गच्छमें मालूम नहीं होता। जिस किसी गांवमें आयका उपाय न हो वहां पर अक्षत बादाम, फलादिसे उत्पन्न हुए द्रव्यसे प्रतिमाकी पूजा करानेका भी संभव है। यदि अक्षतादिकको भी निर्माल्यता सिद्ध होती हो तो उससे उत्पन्न हुये द्रव्यसे जिनपूजा संभवित नहीं होती। इसलिए हम पहले लिख आये हैं कि, जो उपयोगमे लाने लायक न रहा हो वही निर्माल्य है। बस यही उक्ति सत्य ठहरती है। क्योंकि शास्त्रमें लिखा ही है कि,—"भोगविणट्ठं दव्वं निम्मल्लं बिंति गीयत्था"

इस पाठसे मालूम होता है कि, जो उपयोगमे लेने लायक न रहा हो वही द्रव्य निर्माल्य समझना चाहिये। विशेष तत्व सर्वज्ञ गम्य है।

केशर चंदन पुष्पादिक पूजा भी ऐसे ही करना कि, जिससे चक्षु, मुख आदि आच्छादन न हों और शोभाकी वृद्धि हो एवं दर्शन करने वालेको अत्यन्त आल्हाद होनेसे पुण्यवृद्धिका कारण बन सके। इस लिए अंगपूजा, अग्रपूजा, भावपूजा, ऐसे तीन प्रकारकी पूजा करना। उसमे प्रथमसे निर्माल्य दूर करना, परिमार्जन करना, प्रभुका अंग प्रक्षालन करना, वाला कूंची करना, फिर पूजन करना, स्नात्र करते कुसुमांजलिका छोड़ना, पंचामृत स्नात्रका करना, निर्मल जल धारा देना, धूपित स्वच्छ मृदु गंध कासायिक वस्त्रसे अंग लुंछन करना, बरास; केसर, चांदी, सोनेके, वर्क, आदिसे प्रभुकी आंगी वगैरहकी रचना करना, गो चंदन, कस्तूरी, प्रमुखसे तिलक करना, पत्र रचना करना, बीचमे नाना प्रकारकी भांतिकी रचना करना, बहु मूल्यवान् रत्न, सुवर्ण, मोतीसे या सुवर्ण चांदिके फूलसे आंगीकी सुशोभित रचना करना, जिस प्रकार वस्तुपाल मंत्रीने अपने भराये हुये सवा लाख जिनबिम्बोंको एवं शत्रुंजय तीर्थ पर रहे हुए सर्व जिनबिम्बोंको रत्न तथा सुवर्णके आभूषण कराये थे। एवं दमयंतीने पूर्व भवमे अष्टापद पर्वत पर रहे हुये चौवीस तीर्थकरोंके लिए रत्नके तिलक कराये थे। इस प्रकार जिसे जैसो भाव वृद्धि हो वैसे करना श्रेयकारी है। कहा है कि:—

पवरेहि कारणेहि। पायं भावोवि जायए पवरो ॥
नय अन्नो उपयोगो। एएसि सयाण लट्ठयरो ॥ १ ॥

उत्तम कारणसे प्रायः उत्तम कार्य होता है वैसे ही द्रव्य पूजाकी रचना यदि अत्युत्तम हो तो बहुतसे भव्य प्राणियोंको भावकी भी अधिकता होती है। इसका अन्य कुछ उपयोग नही, (द्रव्य पूजामें श्रेष्ठ द्रव्य लगानेका अन्य कुछ कारण नहीं परन्तु उससे भावकी अधिकता होती है) इसलिए ऐसे कारणका सदैव स्वीकार करना जिससे पुष्टतर पुण्य प्राप्ति हो।

तथा हार, माला, प्रमुख विधि पूर्वक युक्तिसे मंगाये हुये सेवति, कमल, जाई, जूई, केतकी, चंपा आदि फूलोंसे मुकुट पुष्प पगर (फूलोंके घर) वगैरहकी रचना करना। जिनेश्वर भगवानके हाथमें सुवर्णका बिजोरा, नारियल, सुपारी, नागरवेलके पान, सुवर्ण महोर, चांदि महोर, अगूंठी, लड्डू आदि रखना, धूप देना, सुगंध-वास प्रक्षेप करना। ऐसे ही सब कारण हैं, जो सब अंग पूजामें गिने जाते हैं। वृहत् भाष्यमें भी कहा है कि:—

न्हवण विलेवण आहरण। वथ्थफल गंध धूव पुप्फेहि ॥
किरई जिणंगपूआ। तथ्थ विहीए नायव्वा ॥ १ ॥
वथ्थेणं बंधीउणं। नासं अहवा जहा समाहिए ॥
वज्जे अवंतुनया देहंमिवि कंडु अणमाई ॥ २ ॥

स्नान, विलेपन, आभरण, वस्त्र, बरास, धूप, फूल, इनसे पूजा करना अंग पूजामे गिना जाता है। वस्त्र द्वारा नासिकाको बांधकर जैसे चित्त स्थिर रहे वैसे वर्तना। मंदिरमे पूजा करते समय खुजली होने पर भी अपने अंगको खुजाना न चाहिये। अन्य शास्त्रोंमें भी कहा है कि:—

काय कंडुयणं वज्जं । तहारवेल विगिंचणं ॥
थुइथुत्त भणणं च । पूअं तो जग बंधुणो ॥ १ ॥

जगद्बन्धुप्रभु की पूजा करते वक्त या स्तुति स्तोत्र पढते हुए अपने शरीरमें खुजली या मुखसे थूक खंकार डालना आदि, आसातनाके कारण वर्जना।

देवपूजाके समय मुख्यवृत्तिसे तो मौन ही रहना चाहिये, यदि वैसा न बन सके तो भी पाप हेतुक वचन तो सर्वथा त्यागना चाहिये। क्योंकि 'निःसहि' कहकर वहांसे घरके व्यापार भी त्यागे हुए हैं इसलिए वैसा करनेसे दोष लगता हैं। अतः पाप हेतुक कायिक संज्ञा (हाथका इसारा या नेत्रोंका मटकाना) भी वर्जना चाहिये।

"देव-पूजाके समय संज्ञा करनेसे भी पाप लगता है तिसपर जिनहांकका दृष्टान्त"

धौलका निवासी जिनहांक नामक श्रावक दरिद्रपनसे घी तेलका भार वहन कर आजीविका चलाता था। वह भक्तामरस्तोत्र पढ़नेका पाठ एकाग्र चित्तसे करता था। उसकी लवलीनता देखकर चक्रेश्वरी देवीने प्रसन्न होकर उसे एक वशीकरण कारक रत्न दिया, उससे वह सुखी हुआ। उसे एकदिन पाटन जाते हुए मार्गमें तीन प्रसिद्ध चोर मिले, उन्हें रत्नके प्रभावसे वश कर मार पीटकर वह पाटन आया। उस वक्त वहांके भीमदेव राजाने वह आश्चर्य कारक बात सुनकर उसे बुलाकर प्रसंन्न हो बहुमान देकर उसके देहकी रक्षा निमित्त उसे एक तलवार दी। यह देख ईर्षासे शत्रुशल्य नामक सेनापति बोला कि "महाराज!

खाडा तास समप्पिए जसु खाडे अभ्यास ॥
जिणहाणेतो दीजिए तोला चेल कपास १
जिणहा—असिधर धनुधर कुन्तधर सत्तिधरा सबकोय ॥
शत्रुशल्ल रण शूर नर जननी विरल ही होय ॥ २ ॥
अश्वं शस्त्रं शास्त्रं । वीणावाणी नरश्च नारी च ॥
पुरुष विशेषे प्राप्ता । भवन्ति योग्या अयोग्याश्च ॥ ३ ॥

घोड़ा, शस्त्र, शास्त्र, वीणा, वाणी, पुरुष, नारी, इतनी वस्तुयें यदि अच्छेके पास आवें तो अच्छी बनतीं हैं और खराबके पास जायें तो खराब फल पाती हैं। उसके ऐसे वचन सुनकर प्रसन्न हो राजाने जिनहाकको सारे देशकी कोतवाल पदवीसे विभूषित किया। जिनहाकने भी ऐसा पराक्रम बतलाया कि, सारे देशमें चोरका नाम तक न रहने दिया। एक समय सोरठ देशका चारण जिनहाककी परीक्षा करनेके लिए पाटनमें आया। उसने उसी गांवमेंसे ऊंटकी चोरी कर अपने घासके बनाये हुए झोंपड़ेके आगे ला बाँधा। अन्तमें कोतवालके सुभट पता लगनेसे उसे पकड कर जिनहाकके पास लाये। उस समय जिनहाक देवपूजा करनेमें लगाहुवा होनेसे मुखसे कुछ न बोला परन्तु अपने हाथमें फूल ले मसलकर सुभटोंको इसारेसे जतलाया कि, इसे मारडालो। सुभट भी उसे लेजाने लगे, उस वक्त चारण बोलने लगा कि—

जिणहाने तो जिनवरा नमिला तारोतार ।
जिऐ करी जिनवर पूजिये सो किम मारनहार ॥ १ ॥

चारणका यह वचन सुनकर जिनहाक लज्जित होगया और उसका गुन्हा माफ कर उसे छोड़देनेकी आज्ञा देकर कहने लगा जा फिर ऐसी चोरी न करना। यह बात सुन चारण बोला —

एका चोरी सा किया, जाखो लडे न माय।
दूजी चोरी किमि करे चारण चोर न थाय ॥

उसके पूर्वोक्त वचनसे उसे चारण समझकर बहुमान देकर पूछा "तू यह क्या बोलता है ?" उसने कहा, कि, "क्या चोर कभी ऊंटकी चोरी करता है ? कदापि करे तो क्या उसे अपने खोलने याने अपने झोपड़ेमे बांधे ? यह तो मैंने आपके पास दान लेनेके लिए ही युक्ति की है। उस वक्त जिणहाकने खुशी हो कर उसे दान दे विदा किया। तदनंतर जिणहाक तीर्थ यात्रा, चैत्य, पुस्तक भंडार आदि बहुतसे शुभ कृत्य करके शुभ गति-को प्राप्त हुवा।

मूल बिम्बकी पूजा किये बाद अनुक्रमसे जिसे जैसे संघटित हो वैसे यथाशक्ति सब बिम्बोंकी पूजा करे।

"द्वारबिम्ब और समवशरण बिम्ब पूजा"

द्वारबिम्ब और समवशरणबिम्ब (दरवाजेके ऊपरकी और अवासनके बीचकी प्रतिमा) की पूजा मूल नायककी थोर दूसरे बिम्बकी पूजा किये बाद ही करना, परन्तु गभारेमें प्रवेश करते ही करना संभवित नहीं। कदाचित गभारेमें प्रवेश करते ही द्वार बिम्बकी पूजा करे और तदनन्तर ज्यों २ प्रतिमायें अनुक्रमसे हों त्यों २ उनकी पूजा करता जाय तो बड़े मन्दिरमें बहुतसा परिवार हो इससे बहुतसे बिम्बोंकी पूजा करते पुष्प-चन्दन धूपादिक सर्व पूजन सामग्री समाप्त हो जाय। तब फिर मूलनायककी प्रतिमाकी पूजा, पूजनद्रव्य सामग्री, बची हो तो हो सके और यदि समाप्त हो गई हो तो पूजा भी रह जाय। ऐसे ही यदि शत्रुंजय, गिरनार, आदि तीर्थों पर ऐसा किया जाय याने जो २ मन्दिर आवे वहां २ पर पूजा करता हुआ आगे जाय तो अंतमें तीर्थनायकके मन्दिरमें पहुंचने तक सर्व सामग्री समाप्त हो जाय, तब तीर्थनायककी पूजा किस तरह करी जा सके। अतः मूलनायककी पूजा करके यथायोग्य पूजा करने जाना उचित है। यदि ऊपर लिखे मुजब करे तो उपाश्रयमें प्रवेश करते समय यथाक्रमसे जिन २ साधुओंको बैठा देखे उनको 'खमासमण' देकर वन्दन करता जाय तो अन्तमें आचार्य प्रमुखके आगे पहुंचते बहुतसा समय लग जाय और यदि वहां तक थक जाय तो अन्तमें आचार्य प्रमुखको वन्दना कर सकनेका भी अभाव हो जाय; इसलिए उपाश्रयमें प्रवेश करते वक्त जो २ साधु पहले मिले या बैठे हों उन्हें मात्र प्रणाम करते जाना और पहले आचार्य आदिको विधि-पूर्वक वन्दन करके फिर यथानुक्रमसे सब साधुओंको यथाशक्ति वन्दन करना; वैसे ही मन्दिरमें भी प्रथम मूलनायककी पूजा किये बाद, सर्व परिकर या परिवारकी पूजा करना समुचित है ? क्योंकि जिवाभिगम सूत्रम कथन किये मुजब ही संघाचारमें कही हुई विजय देवकी वक्तव्यताके विषयमें भी द्वार बिम्बकी और समवशरणकी पूजा सबसे अन्तिम यही बतलाई है और सो ही कहते हैं।

तो गंतु सुहम्मसहं, जिणेस कहा दंसणं मि पणमित्ता ॥
उग्घाडितुं समग्गे, पमज्जए लोमहत्थेणं ॥ १ ॥
सुरहि भलेणिगवीसं, वारं पक्खालि आणु लिपित्ता ।
गोसीसचन्दणेणं, तो कुसुमाइहिं अच्चेइ ॥ २ ॥
तो दार पडिमपूअं, सहासु पंच सुवि करेइ पूव्वं च ॥
दारच्चणाइ सेसं, तइआ उवंगाओ नायव्वं ॥ ३ ॥

सुधर्म सभामें जाकर वहां जिनेश्वर भगवानकी दाढोंको देखकर प्रणाम करके फिर डब्बा उघाड कर मयूर पिच्छिसे प्रमार्जन करे। फिर सुगंध जलसे इक्कीस दफा प्रक्षालन कर गोशीर्ष चंदन और फूलोंसे पूजा करे। ऐसे पांचों सभामें पूजा करके फिर वहांकी द्वार प्रतिमाकी पूजा करे, ऐसा जीवाभिगम सूत्रमें स्पष्ट क्षरसे कहा है। इसलिए द्वारप्रतिमाकी पूजा सबसे अन्तिम करना, त्यों मूल नायककी पूजा सबसे पहले और सबसे विशेष करना। शास्त्रोंमें भी कहा है—

उचिअत्तं पूआए, विसेस करणं तु मूलविम्बस्स,
जंपडइ तथ्थपढमं, जणस्स दिट्ठी सहमणेणं ॥ १ ॥

पूजा करते हुये विशेष पूजा तो मूलनायक बिम्बकी घटती है क्योंकि, मन्दिरमें प्रवेश करते ही सब लोगोंकी दृष्टि प्रथमसे ही मूलनायक पर पडती है, और उसी तरफ मनकी एकाग्रता होती है।

"मूलनायककी प्रथम पूजा करनेमें शंका करनेवालेका प्रश्न"

पूआ वंदणमाइ, काउणेगस्स सेस करणंपि,
नायक सेवक भावो, होइ कओ लोगनाहाणं ॥ १ ॥
एगस्सायर सारा, कीरइ पूआवरेसि थोवयरी,
एसाविमहावन्ना, लाक्खिज्जइ निउणा बुद्धीहिं ॥ २ ॥

शंकाकार प्रश्न करता है कि, यदि मूलनायककी पूजा पहले करना और परिवारकी पीछे करना ऐसा है तो सब तीर्थंकर सरीखे ही हैं तब फिर पूजामें स्वामी-सेवक भाव क्यों होना चाहिये? जैसे कि, एक बिम्बकी आदर, भक्ति बहुमानसे पूजा करना और दूसरे बिम्बकी कम पूजा करना, यदि ऐसा ही हो तो यह बड़ी भारी आशातना है, ऐसा निपुण बुद्धिवालोंके मनमे आये बिना न रहेगा, ऐसा समझने वालोंको गुरु उत्तर देते हैं—

"मूलनायककी प्रथम पूजा करनेमें दोष न होनेके विषयमें उत्तर"

नायक सेवक बुद्धी, न होइ एएसु जाणगजणस्स,
पिच्छंसस्स समाणं, परिवारं पारिहेराइं ॥ ४ ॥
व्यवहारो पुण पढमं, पइट्ठिओ मूलनायगो एसो,
अवणिज्जा सेसाणं नायगभावो निउणतेण ॥ ५ ॥

वंदन पूआवलि, ठीयरोसु एगस्स वरिमारोसु,
आसायणा नदिठ्ठा, उचिय पवत्तस्स पुरिसस्स ॥ ६ ॥
जह मिम्मय पडिमाणं, पूआ पुप्फाइ इणांहि खलु उचिआ,
कणगाइ निम्मियाणं उचियतमा मज्जणाइवि ॥ ७ ॥
कल्लाणगाइ कज्जा एगस्स विसेअ पूअ करणेवि,
नावन्ना परिणामो, जह धम्मि जणस्स सेसेसु ॥ ८ ॥
उचिअ पवित्ती एवं, जहा कुणंतस्स होइ नावन्ना,
तह मूल विम्ब पूआविसेस करणिवि तं नथ्थि ॥ ९ ॥
जिणभवण विन पूआ, कोरन्ति जिणाण नोकए किन्तु ॥
सुह भावणा निमित्तं बुद्धाण इयराण बोहथ्थं ॥ १० ॥
चेइ हरेण केइ, पसंत रूवेण केइ विम्वेण,
पूयाइ सया अन्ने अन्ने बुझ्झन्ति उवएसा ॥ ११ ॥

मूलनायक और दूसरे जिनविम्ब ये सब तीर्थंकर देखनेमें एक सरीखे ही हैं, इसलिए बुद्धिमान मनुष्यको उनमें स्वामी, सेवक भावकी बुद्धि होती ही नहीं। नायक भावसे सब तीर्थंकर समान होने पर भी स्थापन करते समय ऐसी कल्पना की है कि, इस अमुक तीर्थंकरको मूलनायक बनाना। बस इसी व्यवहारसे मूल नायककी प्रथम पूजा की जाती है, परन्तु दूसरे तीर्थंकरोंकी अवज्ञा करनेकी बुद्धि बिलकुल नहीं है। एक तीर्थंकरके पास वंदना, स्तवना पूजा करनेसे या नैवेद्य चढानेसे भी उचित प्रवृत्तिमें प्रवर्त्तते हुये, पुरुषोंकी कोई आसातना ज्ञानिओंने नहीं देखी। जैसे मिट्टीकी प्रतिमाकी पूजा अक्षत, पुष्पादिकसे करनी उचित समझी है। परन्तु जल चन्दनादिसे करनी उचित नहीं समझी जाती और सुवर्ण चांदी, आदि धातुकी या रत्न पाषाणकी प्रतिमाकी पूजा, जल, चंदन, पुष्पादिसे करनी समुचित गिनी जाती है। उसी प्रकार मूल-नायकको प्रतिमाकी प्रथम पूजा करनी समुचित गिनी जाती है। जैसे धर्मवान् मनुष्योंकी पूजा करते समय दूसरे लोगोंका आना जाना नहीं किया जाता वैसे ही जिस भगवानका जिस दिन कल्याण हो उस दिन उस भगवानकी विशेष पूजा करनेसे दूसरी तीर्थंकर प्रतिमाओंका अपमान नहीं होता। क्योंकि दूसरोंकी आशा-तना करनेका परिणाम नहीं है। उचित प्रवृत्ति करते हुए दूसरोंका अपमान नहीं गिना जाता। वैसे ही मूल नायककी विशेष पूजा करनेसे दूसरे जिन विम्बोंकी अवज्ञा या आसातना नहीं होती।

जो भगवानके मन्दिर या बिम्बकी पूजा करता है वह उन्हींके लिए परन्तु शुभ भावनाके लिये ही करता है। जिन भवन आदि निमित्तसे आत्माका उपादान याद आता है। एवं अबोध जीवको बोधकी प्राप्ति होती है तथा कितने एक मन्दिरकी सुन्दर रचना देख ज्ञान प्राप्त करते हैं। कितने एक जिनेश्वरकी प्रशान्त मुद्रा देख बोधको प्राप्त होते हैं। कितने एक पूजा आदि आंगीका महिमा देख और स्तवादि स्तवनेसे एवं कितने एक उपदेशकी प्रेरणासे प्रतिबोध पाते हैं। सर्व प्रतिमायें एक जैसी प्रशान्त मुद्रावाली नहीं होतीं परन्तु

मूलनायककी प्रतिमाजी विशेष करके प्रशान्त मुद्रा वाली होती हैं। इससे शीघ्र ही बोध किया जा सकता है। (इसलिए प्रथम मूलनायककी ही पूजा करना योग्य है) इसी कारण मन्दिर या मंदिरोंकी प्रतिमा देश कालकी अपेक्षा ज्यों बने त्यों यथाशक्ति, अतिशय विशेष सुन्दर आकार वाली ही बनवाना।

घर मन्दिरमें तो पीतल, तांबा, चांदि, आदिके जिन घर (सिंहासन) अभी भी कराये जा सकते हैं। परन्तु ऐसा न बन सके तो हाथीदांतके या आरसपान के अतिशोभायमान दीख पड़ें ऐसी कोरणी या चित्रकारी युक्त कराना, यदि ऐसा भी न बन सके तो पीतलकी जाली पट्टी वाले हिंद लोक प्रमुख चित्रित रंग चित्रसे अत्यन्त शोभायमान अत्युत्तम काष्ठका भी करवाना चाहिये। एवं मन्दिर तथा घरमन्दिरको साफ सूफ करा कर रंग रोगन चित्र युक्त, सुशोभनीय कराना। तथा मूलनायक या अन्य जिनके जन्मादिक कल्याणक या विशिष्ट पूजा रचना प्रमुख कराना। पूजाके उपकरण स्वच्छ रखना एवं पडदा, चन्द्रवा पुठिया आदि हमेशा या महोत्सवादिके प्रसंग पर बांधना कि जिससे विशिष्ट शोभामें वृद्धि हो। घरमन्दिर पर अपने पहननेके कपड़े धोती वगैरह वस्त्र न सुखाना। बड़े; मन्दिरके समान घर मन्दिरकी भी चौरासी आसातनायें दूर करना। पीतल पाषाणकी प्रतिमाओंका अभिषेक किये बाद एक अंगलुहणसे पुंछन किये बाद (निर्जल किये बाद) भी दूसरी दफा कोरे स्वच्छ अंगलुहणसे सर्व प्रतिमाओंको लुंछन करना, ऐसा करनेसे तमाम प्रतिमायें उज्वल रहती हैं। जहांपर जरा भी पानी रहजाता है तो प्रतिमाको श्यामता लग जाती है। इसलिये सर्वथा निर्जल करके ही केशर, और चंदनसे पूजा करना।

यह धारणा ही न करना कि चौबीसी और पंचतीर्थी प्रतिमाओंके स्नान करते समय स्नान जलका अरसपरस स्पर्श होनेसे कुछ दोष लगता है, क्योंकि यदि ऐसे दोष लगता हो तो चौबीसी गट्टामें या पंचतीर्थीमें ऊपर व नीचेकी प्रतिमाओंका अभिषेक करते समय एक दूसरेके जलका स्पर्श जरूर होता है। 'रायपसेणि सूत्रमें कहा है कि—

> रायप्पसेणइज्जे, सोहम्मे सुरियाभदेवस्स,
> जीवाभिगमेविजया, पुरीअ विजयाई देवाणं ॥ १ ॥
> भिंगार लोमहथ्थय, लूहया धूव दहण माइअं,
> पडिमाणं सकहाणय पूआए इक्कयं भणियं ॥ २ ॥
> निव्वुअ जिणंद सकहा, सग्ग समुग्गेसु तिसु विलोएसु,
> अन्नोनं संलग्गा, न्हवण जलाइं हि संपुट्ठा ॥ ३ ॥
> पूव्वधर काल विहिआ पडिआइ संति केसुविपरेसु,
> वत्तख्खा खेतख्खा, महख्खया गंथ दिट्ठाय ॥ ४ ॥
> मालाधराइआणवि, अवण जलाई पुसेइ, जिणबिम्बे,
> पुथ्थय पंत्ताइणवि, उवरुवरि फरिसणाइअ ॥ ॥ ५ ॥
> ता नज्जइ नादोपो करणे चउव्विस वट्टयाइणं,

आयरणा जुतीओ, गंथेसु अदिस्स माणत्ता ॥ ६ ॥

रायपसेणी सूत्रमें सूर्याभि देवका अधिकार है और जीवाभिगम सूत्र तथा जम्बूद्वीपपणत्ती सूत्रमें विजया पुरी राजधानी पोलिया देवका और विजयादिक देवताका अधिकार है। वहां अनेक कलश, मयूरपिच्छी अंगलुहन धूपदान वगैरह उपकरण सब जिन प्रतिमा और सर्व जिनकी दाढाओंकी पूजा करनेके लिए बतलाए हुये हैं। मोक्ष जिनेश्वरोंकी दाढा इन्द्र लेकर देव लोकमें रहे हुये शिकामे डब्बोंमें तथा तीन लोकमें जहां २ जिनकी दाढायें हैं वे सब उपरा उपरी रक्खी जाती हैं। वे एक दूसरेसे परस्पर संलग्न हैं। उन्हें एक दूसरेके जलादिकका स्पर्श अंगलहुणेका स्पर्श एक दूसरेको हुये बाद होता है। (ऊपरको दाढाको स्पर्शा हुवा पानी नीचेकी दाढाको लगता है) पूर्वधर आचार्योंने पूर्व कालमें प्रतिष्ठा की है ऐसी प्रतिमायें कितने एक गांव, नगर और तीर्थादिकमें हैं। उसमें कितनी एक एक ही अरिहंतकी और दूसरी क्षेत्रा (एक पाषाण या धातुमय पट्टक पर चोविस प्रतिमा भरतक्षेत्र ऐरावत क्षेत्रकी प्रतिमायें की हों वे) नामसे, तथा महल्ल्या (उत्कृष्ट कालके अपेक्षा एकसो सत्तर प्रतिमायें एक ही पट्टक पर कीं हो सो) नामसे, ऐसे तीनों प्रकारकी प्रतिमायें प्रसिद्ध ही हैं। तथा पंचतीर्थी प्रतिमाओंमें फूलकी वृष्टी करने वाले मालाधर देवताके रूप किये हुए होते हैं, उन प्रतिमाओंका अभिषेक करते समय मालाधर देवताको स्पर्श करने वाला पानी जिनबिम्ब पर पड़ता है। पुस्तकमें जो चित्रित प्रतिमा होती है वह भी एकेक पर रहती है। चित्रित प्रतिमायें भी एक एकके ऊपर रहती हैं (तथा बहुतसे घर मन्दिरोंमें एक गभारे पर दूसरा गभारा भी होता है उसकी प्रतिमायें एकेकके ऊपर होती हैं) तथा पुस्तकमें पन्ने ऊपरा ऊपरी रहते हैं, परस्पर संलग्न होते हैं उसका भी दोष लगना चाहिए, परन्तु वैसे कुछ दोष नहीं लगता। इसलिए मालाधर देवको स्पर्श कर पानी जिनबिम्ब पर पड़े तो उसमें कुछ दोष नहीं लगता, ऐसे ही चौवीस गट्टामें भी ऊपरके जिनबिम्बको स्पर्श करके ही पानी नीचेके जिनबिम्बको स्पर्श करता है, उसमें कुछ पूजा करने वाले या प्रतिमा भराने वालेको निर्माल्यता आदिका दोष नहीं लगता। इसप्रकारका आचरण और युक्तियें शास्त्रोंमे मालूम होती हैं, इसलिए मूलनायक प्रतिमाकी पूजा दूसरे बिम्बोंसे पहले करनेमें कुछ भी दोष नहीं लगता और स्वामी सेवक भाव भी नहीं गिना जाता। वृहद्द भाष्यमें भी कहा है। कि—

जिणरिद्धि दंसणथ्थं, एकं कारेइ कोइ भत्तिजुओ ॥
पायडिअ पाडिहरं देवागम सोहियं चेव ॥ १ ॥
दंसण णाण चरित्ता, राहण कज्जे जिणत्तिअ कोइ ॥
परमेट्ठी नमोक्कारं, उज्जमिउं कोइ पंचजिणे ॥ २ ॥
कल्लाणय तवमहवा, उज्जमिऊं भरहवास भावीत्ति ॥
बहुमाण विसेसाओ, केइ कारेइ चउव्वीसं ॥ ३ ॥
उक्कोस सत्तरि सयं, नरलोए विरइत्ति भत्तिए ॥
सत्तरिसयं वि कोइ बिम्बाण कारइ धणड्ढो ॥ ४ ॥

कोई भक्तिवान् श्रावक जिनेश्वर देवकी अशोकादि अष्ट महाप्रातिहार्यकी रिद्धि दिखानेके लिये अष्ट महा प्रातिहार्यके चित्र सहित प्रतिमा भरवाता है। (बनवाता है) तथा देवताओंके आवागमनका भी दृश्य दिखला कर प्रतिमा भरवाता है। तथा कोई दर्शन ज्ञान, चरित्रकी आराधना निमित्त एक पट्टकमें तीन प्रतिमाय भरवाता है। कोई पंच परमेष्ठीके आराधन निमित्त एक पट्टक पर पंचतीर्थी या पंच परमेष्ठीकी प्रतिमा भरवाता है, अथवा कोई नवकारका उद्यापन करनेके लिए पंचपरमेष्ठी की प्रतिमा बनवाता है। कोई चौविस तीर्थंकरके कल्याणक तपके आराधन निमित्त एक पट्टक पर चोविस ही तीर्थंकरोंकी चोविसी भरवाता है। तथा भक्तिके बहुमानसे भरतक्षेत्रमें हुये, होनेवाले और वर्तमान तीर्थंकरोंकी तीनों ही चोविसीकी प्रतिमायें भरवाता है। कोई अत्यन्त भक्तिकी तीव्रतासे ढाई द्वीपमें उत्कृष्ट कालमे विचरते १७० तीर्थंकरोंकी प्रतिमायें एक ही पट्टक पर भरवाता है।

इसलिए तीन तीर्थी, पंचतीर्थी, चोविसी प्रमुखमें बहुतसे तीर्थंकरोंकी प्रतिमायें होती हैं। उनके स्नानक जल एक दूसरेको स्पर्श करता है इससे कुछ आसातनाका संभव नहीं होता, वैसे ही मूलनायककी प्रथम पूजा करते हुए भी दूसरे जिनबिम्बोंकी आसातना नहीं होती। पूर्वोक्त रीतिसे तीर्थंकरोंकी प्रतिमायें भरवाना भी उचित ही है। यह अंगपूजाका अधिकार समाप्त हुवा।

"अग्रपूजा अधिकार"

सोने चांदीके अक्षत कराकर या उज्वल शालिप्रमुखके अखंड चावलोंसे या सुफेद सरसोंसे प्रभुके सन्मुख, अष्टमंगलका आलेखन करना। जैसे श्रेणिक राजाको प्रतिदिन सुवर्णके जपसे श्रीवीरप्रभुके सन्मुख जाकर स्वस्तिक करनेका नियम था, वैसे करना। अथवा रत्नत्रयी (ज्ञान, दर्शन, चारित्र) की आराधनाके निमित्त प्रभुके सन्मुख तीन पुञ्ज करके उत्तम पट्टक पर उत्तम अक्षत रखना।

ऐसे ही विविधप्रकार के भात आदि रांधे हुये अशन, शक्करका पानी, गुडका पानी, गुलाबजल, केवड़ाजल वगैरहका पानी, पक्वान, फलादिक खादिम तंबोल, पानके बीडे वगैरह स्वादिम ऐसे चारप्रकार के आहार जो पवित्र हों प्रतिदिन प्रभुके आगे चढाना। एवं गोशीर्ष चंदनका रस करके पंचांगुलिके मंडल तथा फुलके पगार भरना, आरती उतारना, मंगल दीपक करना, यह सब कुछ अग्रपूजामें गिना जाता है। भाष्यमें कहा हैं कि—

> गंधव्व नट्ट वाइअ, लवणजलारत्ति आई दीवाई।
> जं किच्चं तं सव्वंपि, अवअरइ अग्गपूआए॥

गायन करना, नाटक करना वाद्य बजाना लोन उतारना, पानी ऊहारना, आरती उतारना, दीया करना, ऐसी जो करनी है वे सब अगूपूजामें गिनी जाती है।

"नैवेद्यपूजा रोज अपने घर रांधेहुए अन्नसे भी करनेके विषयमें"

नैवेद्य पूजा प्रतिदिन करना, क्योंकि सुखसे भी हो सकती है और महाफलदायक है। रंधा हुवा

अन्न सारे जगत्का जीवन होनेसे सबसे उत्कृष्ट रत्न गिना जाता है; इसी कारण वनवाससे आकर श्रीराम चन्द्रजीने अपने महाजनोंको अन्नका कुशलत्व इच्छा था। तथा कलहकी निवृत्ति और प्रीतिकी परस्पर वृद्धि भी रंधेहुए अन्नके भोजनसे होती है, रंधेहुए अन्नके नैवेद्यसे प्रायः देवता भी प्रसन्न होते हैं। सुना जाता है कि, आगिया वैताल देवता प्रतिदिन सौ मुडे अन्नके पक्वान्न देनेसे राजा श्रीवीरविक्रमके वश हो गया था। भूत, प्रेतादिक भी रंधेहुए क्षीर, खिचड़ी, वड़े, पकौडे, प्रमुखके भोजन करनेके लिये ही उतारेकी याचना करते हैं। ऐसे ही दिग्पालादिक को वलिदान दिया जाता है। तीर्थंकर की देशना हो रहे बाद भी ग्रामाधिपति सूके धान्यकी वलि करके उछालता है, कि जो वलिके दाने सर्व श्रोताजन ऊपरसे पड़ते हुए अधर ही ग्रहण कर अपने पास रखते हैं, इससे उन्हें शांतिक पौष्टिक होती है।

"नैवेद्यपूजाके फलपर दृष्टान्त"

एक साधुके उपदेशसे एक निर्धन किसानने ऐसा नियम लिया था कि, इस खेतके नजदीकवाले मन्दिरमें प्रतिदिन नैवेद्य चढ़ाये बाद ही भोजन करूंगा। उसका कितना एक समय प्रतिज्ञा पूर्वक बीते बाद एकदिन नैवेद्य चढ़ानेको देरी हो जानेसे और भोजनका समय हो जानेसे उसे उतावलसे नैवेद्य चढ़ानेकेलिए आते हुए मार्गमें सामने एक सिंह मिला। उसकी अवगणना कर वह आगे चला; परन्तु पीछे न फिरा। ऐसे ही उस मन्दिरके अधिष्ठायकने उसकी चार दफा परीक्षा की परन्तु वह किसान अपने दृढ़ नियमसे चलायमान न हुवा, यह देख वह अधिष्ठायक उस पर तुष्टमान होकर कहने लगा "जा! तुझे आजसे सातवें दिन राज्यकी प्राप्ति होगी।" सातवें दिन उस गांवके राजाकी कन्याका स्वयम्वर मण्डप था इससे वह किसान भी वहां गया था। उससे दैविक प्रभावसे स्वयम्वरा राजकन्याने उसीके गलेमें माला डाली। इस बनावसे बहुतसे राजा क्रोधित हो उसके साथ युद्ध करने लगे। अन्तमें उसने दिव्यप्रभावसे सबको जीतकर उस गांवके अपुत्रिक राजाका राज्य प्राप्त किया। लोगोंमे भी कहा जाता हैं कि,: -

धूपो दहति पापानि, दीपो मृत्योर्विनाशकः ॥
नैवेद्योविपुलं राज्यं, सिद्धिदात्री प्रदक्षिणा ॥ २ ॥

धूपपूजासे पाप चला जाता है, दीप पूजासे अमर हो जाता है, नैवेद्यसे राज्य मिलता है, और प्रदक्षिणासे सिद्धि प्राप्त होती है।

अन्नादि सर्व वस्तुकी उत्पत्तिके कारण रूप और पक्वान्नादि भोजनसे भी अधिक अतिशयवान् पानी भी भगवान्के सन्मुख यदि बन सके तो अवश्य प्रतिदिन एक बरतनमें भरकर चढाना।

"नैवेद्य चढ़ानेमें शास्त्रोंके प्रमाण"

आवश्यक निर्युक्तिमें कहा है कि, "कीरइवली" बली (नैवेद्य) करें। नोषीथमें भी कहा है कि;—
"तओ पभायइए देवीए सव्वं वली माइकाउं भणियं देवाहिदेवो वद्धमाण सामी तस्स पडिमा कीरउत्ति वाहिओ कुहाडोदुहाजायं पिच्छइ सव्वालंकार विभूसिअं भयवओ पडिमं"

फिर प्रभावति रानीने सब बली आदिक—(नैवेद्य वगैरह आदि शब्दसे धूप, दीप, जल, चंदन,) तयार कराके देवाधिदेव वर्धमान स्वामीकी प्रतिमा प्रगट होवो ऐसा कहकर तीन दफा (उस काष्टपर) कुहाडा मारा। फिर उस काष्टके दो भाग होनेसे सर्वालंकार विभूषित भगवन्त की प्रतिमा देखी।

नीषीथ सूत्रकी पीठिकामें भी कहा है कि,:—"बलीत्ति असिवोव समनिमित्तं कुरो किज्जइ' बली याने अशिवकी उपशांतिके लिए कूर करे (भात चढ़ावे)। नीषीथकी चूर्णिमें भी कहा है कि,:—संपइराया रहग्गाओ विविहफले खज्जग भुज्जगअ कवडग वच्छमाइ उक्किरणो करेइ" सम्प्रति राजा उस रथयात्रा के आगे विविध प्रकारके फल, शाल, दाल, शाक, कवडक, वस्त्र आदिका उपहार करता है।

बृहत् कल्पमें भी कहा है कि,:—

"साहम्मिओ न सथ्था। तस्सकयं तेणकप्पई जइणं॥
जं पुन्न पडिमाणकए। तस्सकहाकाअ जीवत्ता॥"

साधु श्रावकके साधर्मिक नहीं (श्रावकका साधर्मी श्रावक होता है) परन्तु साधुके निमित्त किया आहार जब साधुको न खपे,—तब प्रतिमाके लिये किये हुए बलि नैवेद्यकी तो बात ही क्या! अर्थात् प्रतिमा के लिये किया हुवा नैवेद्य साधुको सर्वथा ही नहीं कल्पे।

प्रतिष्ठापाहुडसे श्रीपादलिप्तसूरिद्वारा उद्धृत प्रतिष्ठापद्धतिमें कहा है कि,:—

"आरत्तिअ मवयारणा। मंगल दीवं च निम्मिउं पच्छा॥
चउनारिहिं निवज्जं। विणं विहिणाओ कायव्वं"॥

आरती उतारके मंगल दीया किये बाद चार उत्तम स्त्रियोंको मिलकर नित्य नैवेद्य करना।

महानीषीथके तीसरे अध्यायमें भी कहा है कि,:—

"अरिहंताणं भगवंताणं गंधमल्ल पईव समजिणो विलेवण विचित्तबली वत्थ धूवाइएहिं पूआ-सक्कारेहिं पइदिणमम्भच्चणंपि कुव्वाणा तिथ्थूप्पणं करेमोत्ति॥" अरिहंतको, भगवन्तको, बरास, पुष्प-माला, दीपक, मोरपींछीसे प्रमार्जन, चन्दनादिसे विलेपन, विविध प्रकारके बली—नैवेद्य, वस्त्र, धूपादिकसे पूजा सत्कारसे प्रतिदिन पूजा करतेहुए भी तीर्थकी उन्नति करे। ऐसे यह अग्रपूजा अधिकार समाप्त हुवा।

"भावपूजाऽधिकार"

भावपूजा जिनेश्वर भगवान्की द्रव्यपूजाके व्यापार निषेधरूप तीसरी 'निःसिहि" करने पूर्वक करना। जिनेश्वरदेवको दक्षिण--दाहिनी तरफ पुरुष और बांईं तरफ स्त्रियोंको आसातना दूर करनेके लिये कमसे कम घर मन्दिरमें एक हाथ या आधा हाथ और बड़े मन्दिरमें नव हाथ और विशेषतासे साठ हाथ एवं मध्यम भेद दस हाथसे लेकर ५९ हाथ प्रमाण अवग्रह रखकर चैत्यवंदन करने बैठना (यदि इतनी दूर बैठे तब ही काव्य, श्लोक, स्तुति, स्तोत्र, बोलना ठीक पड़े इसलिये दूर बैठनेका व्यवहार है) शास्त्रमें कहा है कि,—

तइयाओ भावपूआ, ठाउं चिइवन्दणो चिएदेसे॥

जहसत्ति चित्तथुइ, थुत्तमाइरणा देववन्दणायं ॥ १ ॥

तीसरी भावपूजामें चैत्य वन्दन करनेके उचित प्रदेशमें—अवग्रह रखके बैठकर यथाशक्ति स्तुति, स्तोभ स्तवना द्वारा चैत्य वन्दन करे।

नीषीथ सूत्रमे कहा है कि:—"सोउ गंधार सावम्रो थय थुइए भणंतो तथ्थ गिरि गुहाए अहोरत्त निवसिम्रो" वह गंधार श्रावक स्तवन स्तुतियें पढता हुवा उस गिरि गुफामें रात दिन रहा।

वसुदेव हिडमें भी कहा है कि:—

"वसुदेवो पच्चुसे कयसमत्त सावय सामाइयाई नियमो गहिय पचक्खाणो कय काउस्सग थुई वंदणोति" वसुदेव प्रातःकाल सम्यक्त्व की शुद्धि कर श्रावकके सामायिक आदि बारह व्रत धारण कर, नियम (अभिग्रह) प्रत्याख्यान कर काउस्सग, थूइ, देव वन्दन, करके विचरता हैं। ऐसे अनेक श्रावकादिकोंने कायोत्सर्ग स्तुति करके चैत्य वन्दन किये हैं,

"चैत्य वन्दनके भेद"

जघन्यादि भेदसे चैत वन्दनके तीन भेद कहे हैं। भाष्यमें कहा है कि:—

नमुक्कारेण जहन्ना, चिइ वंदण मभ्भदंड थुइजुअला ॥
पणदंडथूइ चउक्कग, थयप्पणिहाणेहि उक्कोसा ॥ १ ॥

दो हाथ जोडकर 'नमो जिणाणं' कहकर प्रभुको नमस्कार करना, अथवा 'नमो अरिहंताणं' ऐसे समस्त नवकार कहकर अथवा एक श्लोक स्तवन वगैरह कहनेसे जातिके दिखलानेसे बहुत प्रकारसे हो सकता है, अथवा प्रणिपात ऐसा नाम 'नमुथ्थुणं' का होनेसे एक वार जिसमे 'नमुथ्थुणं' आवे ऐसे चैत्यवंदन (आजकल जैसे सब श्रावक करते हैं) यह जघन्य चैत्यवन्दन कहलाता है।

मध्यम चैत्यवन्दन प्रथमसे 'अरिहंत चेइयाणं' से लेकर 'काउस्सग' करके एक थूई प्रकटपन कहना, फिरसे चैत्यवन्दन करके एक थूई अन्तमें कहना यह जघन्य चैत्यवन्दन कहलाता है।

पंच दंडक. १ शक्रस्तव (नमुथ्थुणं) २ चैत्यस्तव (अरिहंत चेइयाणं), ३ नामस्तव (लोगस्स) ४ श्रुतस्तव (पुख्खर वरदी), ५ सिद्धस्तव (सिद्धाणं बुद्धाणं), जिसमें ये पांच दंडक आवे ऐसा जो जय वियराय सहित प्रणिधान (सिद्धान्तोंमें बतलाई हुई रीतिके अनुसार बना हुवा अनुष्ठान) है उसे उत्कृष्ट चैत्यवन्दन कहते हैं।

कितनेक आचार्य कहते हैं कि—एक शक्रस्तवसे जघन्य चैत्यवन्दन कहलाता है और जिसमे दो दफा शक्रस्तव आवे वह मध्यम एवं जिसमें चार दफा या पांच दफा शक्रस्तव आवे तब वह उत्कृष्ट चैत्यवन्दन कहलाता है। पहले ईर्यावहि पडिकमके अथवा अन्तमें प्रणिधान जयवियराय, 'नमुथ्थुणं' कहकर फिर द्विगुण चैत्यवन्दन करे फिर चैत्यवन्दन कहकर 'नमुथ्थुणं' कहे तथा 'अरिहंतचेइयाणं' कहकर चार थूइयों द्वारा देव वन्दन करे याने पुनः 'नमुथ्थुणं' कहे, उसमें तीन दफा 'नमुथ्थुणं' आवे तब वह मध्यम चैत्यवन्दना कहलाती

है। एक दफा देव वन्दन करे तब उसमें दो दफा शक्रस्तव आवे एक प्रथम और एक अन्तिम ऐसे सब मिलाकर चार शक्रस्तव होते हैं, दो दफा ऐसा करनेसे तो आठ शक्रस्तव आते हैं, परन्तु चार ही गिने जाते हैं। इसप्रकार चैत्यवन्दन करनेसे उत्कृष्ट चैत्यवन्दन किया कहा जाता है। शक्रस्तव कहना, तथा ईर्यावहि पडिकमके एक शक्रस्तव करे, जहां दो दफा चैत्यवन्दना करे वहां तीन शक्रस्तव होते हैं। फिरसे चैत्यवन्दन कहकर 'नमुथ्थुणं' कहकर अरिहन्त चेइयाणं कहकर चार थुई कहे; फिर चैत्यवन्दन नमुथ्थुणं' कहकर चार थूई कहकर बैठकर 'नमुथ्थुणं' कहकर तथा स्तवन कहकर जयवियराय कहे ऐसे पांच शक्रस्तव होनेसे उत्कृष्ट चैत्यवन्दना कहाती है। साधुको महानीषीथ सूत्रमें प्रतिदिन सात वार चैत्यवन्दन करना कहा है, वैसे ही श्रावकको भी सातवार करनेका भाष्यमें कहा है सो बतलाते हैं:—

पडिक्कमणे चेइय जिमण, चरिम पडिक्कमण सुअण पडिबोहे ॥
चेइ वंदन इयजइणो, सत्तवेलाओ अहोरत्तो ॥ १ ॥
पडिक्कमणओ गिहिणोविहु, सगबेला पंचवेल इयरस्स ॥
पूआसु अतिसंभभ्भासुअ, होइ तिवेला जहन्नेणं ॥ २ ॥

(१) राई प्रतिक्रमणमें (२) मंदिरमें; (३) भोजन पहले, (गोचरी आलो अना करनेकी) (४) दिवस चरिमकी (५) देवसि प्रतिक्रमणमें, (६) शयनके समय संथारा पोरसि पढानेकी (७) जागकर, ऐसे प्रतिदिन साधुको सात दफा चैत्यवन्दन करना कहा है एवं श्रावकको भी नीचे लिखे मुजब सात वार ही समझना। जो श्रावक दो दफा प्रतिक्रमण करने वाला हो उसे पूर्वोक्त रीतिसे अथवा दो वखतके आवश्यकके सोते जागनेके तथा त्रिकाल देववंदनके मिलाकर सात दफा चैत्यवन्दन होते हैं। यदि एक दफा प्रतिक्रमण करने वाला हो तो उसे छह चैत्यवन्दन होते हैं, सोनेके समय न करे उसे पांच दफा होते हैं, और यदि जागनेके समय भी न करे तो उसे चार होते हैं। बहुतसे मन्दिरोंमें दर्शन करने वालेको बहुतसे चैत्यवन्दन हो जाते है। जिससे अन्य न बन सके तथा जिन पूजा भी जिस दिन न होसके उस दिन भी उसे त्रिकाल देव वन्दन तो करना ही चाहिए। श्रावकके लिए आगममें कहा है कि—

भोभो देवाणुप्पिआ अज्जप्पभिइए। जावज्जीवं तिक्कालिअं अणिरलवत्ता चलेगग्गचित्तेणं ॥ चेइए वंदिअव्वे इणमेव कोमणुअत्ताओ असुइ असासय खणभंगराओ सारन्ति। तथ्थ पुव्वण्हे ताव उदग पाणं न कायव्वं॥ जाव चेइए साहुअन वंदिएतहा मभ्भण्हे। ताव असण करिअं न कायव्वं जाव चेइए न वन्दिए तहा अवरहो चेव तहा। कायव्वं जहा अवन्दिएहि चइएहिंतो सिज्जालय मइक्कामिज्जइत्ति ॥

हे देवताओंके प्यारे! आजसे लेकर जीवन पर्यन्त त्रिकाल; अचूक, निश्चल, एकाग्रचित्तसे, देव वंदन करना हे प्राणियों! इस अपवित्र, अशाश्वत, क्षणभंगूर, मनुष्य शरीरसे इतना ही सार है। पहले पहोरमें जबतक देव और साधुको वन्दन न किया जाय तबतक पानी भी न पीना चाहिये। एवं मध्यान समय जबतक देव वन्दन न किया हो तबतक भोजन भी न करना तथा पिछले प्रहरमें जबतक देव वंदन न किया हो तबतक रात्रीमें शय्या पर न सोना चाहिये।

सुप्पभाए समणो वासगस्स, पाणंवि न कप्पए पाऊं ॥
नो जाव चेइयाएहि, साहुवि अवन्दिआ विहिणा ॥ १ ॥
मभ्भणहे पुणरवि, वन्दिउण नियमेय कप्पइ भोत्तं ॥
पुण वन्दिउण ताइं, पओस समयंमि तो सुयइ ॥ २ ॥

इन दो गाथाका अभिप्राय पूर्वोक्त मुजब होनेसे यहांपर नहीं लिखा। गीत, नृत्य, वाद्य, स्तुति तोत्र, ये अग्रपूजामें गिनाये हुए भी भाव पूजामें अवतरते हैं। तथा ये महा फलदायी होनेसे बने वहांतक स्वयं ही करना उचित है यदि ऐसा न बन सके तो दूसरेके पास कराने पर भी अपने आपको तथा दूसरे भी बहुतसे जीवोंको महालाभकी प्राप्ति होनेका संभव है। नीपीथ चूर्णीमें कहा है कि,—

"पभावइ न्हाया कय कोउयमंगल पायच्छित्ता सुकिल्लवासपरिहिआ जाव अट्ठमिचउदसीसुअ भत्तिराएण सयमेव राओ नट्टोवयारं करेइ। रायावि तयाणुवित्तिए मुरयंवाएई इति।

स्नान किये बाद कौतुक मंगल करके प्रभावती रानी सुफेद वस्त्र पहिन कर यावत् अष्टमी चौदसके दिन भक्तिरागसे स्वयं नाटक करती और राजा भी उसकी मर्जीके अनुसार होनेसे मृदंग बजाता। जिन पूजा करनेके समय अरिहन्तकी छद्मस्थ केवली और सिद्ध इन तीन अवस्थाओंकी भावना भाना। इसके लिए भाष्यमें कहा है कि,—

न्हवणच्चगेहिं छनमथ्था। वत्था पडिहारगेहिं केवलिअ ॥
पालिअं कुस्सगेहिअ। जिणस्स भाविज्ज सिद्धत्तं ॥ १ ॥

भगवन्तके स्नान कराने वालेको भगवानके पास रहे हुये परिकर पर खड़े हुए हाथी पर चढ़े हुए देवके हाथमें रहे हुये कलशके दिखावसे तथा परिकरमें रहे हुये मालाधारी देवके रूपसे, भगवन्तकी छद्मस्थावस्थाकी भावना भाना। (छद्मस्थावस्था याने केवलज्ञान प्राप्त करनेसे पहली अवस्था) छद्मस्थावस्था तीन प्रकारकी है। (१) जन्मकी अवस्था, (२) राज्य अवस्था, (३) साधुपनकी अवस्था। उसमें स्नान करते समय जन्मावस्थाकी भावना भाना, मालाधारक देवताके रूप देखकर पुष्पमाल पहिनानेके रूप देखनेसे राज्यावस्थाकी भावना भाना और मुकट रहित मस्तक हो उस वक्त साधुपनकी अवस्थाकी भावना करना। प्रतिहार्यमें परिकरके ऊपरी भागमें कलशके दो तरफ रहे हुये पत्रके आकारको देखकर कल्पवृक्ष भावना, मालाधारी देवके दिखावसे पुष्पवृष्टी भाव भाना। प्रतिमाके दो तरफ रहे हुये दोनों देवताओंके हाथमें रही हुई वंसी वीणाके आकारको देख दिव्यध्वनिकी भावना करना। मालाधर देवके दूसरे हाथमें रहे हुये चामरको देखकर चामर प्रातिहार्यकी रचनाका भाव लाना। ऐसे ही दूसरी भी यथा योग्य सर्व भावनाय प्रकटतया ही हो सकती हैं। इसलिए चतुर पुरुषको वैसी ही भावनायें भाना।

पंचोवयार जुत्ता। पुआ अट्ठी वयर कलिवाय॥
रिद्धि विसेसेण पुणो। नेयासव्वो वयाराचि ॥ १ ॥
तहि पंचुवयारा। कुसुमख्खय गंधधूव दीवेहिं,

कुसुमक्खय गन्धपईव । धूव नैवेज्ज फलजलेहिं पुणो ॥
अठ्ठविह कम्महणनी । अठ्ठवयारा हवइ पूआ ॥ २ ॥
सव्वो वयारपूआ । न्हवणच्चण वच्छ भूसणाईहिं ॥
फलवलि दीवाइ नट्ट । गीअ आरत्ती आइहिं ॥ ३ ॥

(१) पंच उपचारकी पूजा, (२) अष्ट उपचारकी पूजा, और रिद्धिवन्तको करने योग्य (३) सर्वोपचारकी पूजा, ऐसे तीन प्रकारकी पूजा शास्त्रोंमें बतलाई है ।

"पंचोपचारकी पूजा"

पुष्प पूजा, अक्षत पूजा, धूप पूजा, दीप पूजा, चन्दन पूजा, ऐसे पंचोपचारकी पूजा समझना चाहिये ।

"अष्टोपचारकी पूजा"

जल पूजा, चन्दन पूजा, पुष्प पूजा, दीप पूजा, धूप पूजा, फल पूजा, नैवेद्य पूजा, अक्षत पूजा, यह अष्ट प्रकारके कर्मोंको नाश करने वाली होनेसे अष्टोपचारिकी पूजा कहलाती है ।

"सर्वोपचारकी पूजा"

जल पूजा, चन्दन पूजा, वस्त्र पूजा, आभूषण पूजा, फल पूजा, नैवेद्य पूजा, दीप पूजा, नाटक पूजा, गीत पूजा, वाद्य पूजा, आरती उतारना, सत्तर भेदी प्रमुख पूजा, यह सर्वोपचारकी पूजा समझना । ऐसे बृहद् भाष्यमें ऊपर बतलाये मुजब तीन प्रकारकी पूजा कही है तथा कहा है कि—

पूजक स्वयं अपने हाथसे पूजाके उपकरण तयार करें यह प्रथम पूजा, दूसरेके पास पूजाके उपकरण तयार करावे यह दूसरी पूजा और मनमें स्वयं फल, फूल, आदि पूजा करनेके लिए मंगानेका विचार करने रूप तीसरी पूजा समझना । अथवा और भी ये तीन प्रकार हैं, करना, कराना, और अनुमोदन करना तथा

ललितविस्तरा (नुथ्थुणंकी वृत्ति) में कहा है कि:—पूअंमि पुप्फामि सथुई । पडिवत्तिभे अओ-चउविहंपि ॥ जहासत्ती एकुज्जा । पुष्पामिषस्तोत्रप्रतिपत्ति पूजानां यथोतरं प्रधान्यमित्युक्तं । तत्रमिषं प्रधानाशनादिभोग्यवस्तुः ॥ उक्तं गौड शास्त्रे । पललेनस्त्रा आमिषं भोग्यवस्तुनि प्रतिपत्तिः ॥ पूजामें पुष्प पूजा, आमिष (नैवेद्य) पूजा, स्तुति, गायन, प्रतिपत्ति, आज्ञाराधन या विधि प्रतिपालन) ये चार वस्तु यथोत्तर अनुक्रमसे अधिक प्रधान हैं । इसमें आमिष शब्दसे प्रधान अशनादि भोग्यवस्तु समझना । इसके लिये गौड शास्त्रमें लिखा हुवा है कि आमिष शब्दसे मांस, स्त्री, और भोगने योग्य अशनादिक वस्तु समझना ।

"प्रतिपत्तिः पुनरविकलासोपदेशपरिपालना" प्रतिपत्ति सर्वज्ञके वचनको यथार्थ पालन करना । इसलिए आगममें पूजाके भेद चार प्रकारसे भी कहे हैं ।

जिनेश्वर भगवानकी पूजा दो प्रकारकी है एक द्रव्यपूजा और दूसरी भावपूजा । उसमें द्रव्यपूजा शुभ द्रव्यसे पूजा करना और भावपूजा जिनेश्वर देवकी आज्ञा पालन करना है । ऐसे दो प्रकारकी पूजामें सर्व

पूजायें समाजाती हैं। जैसे कि "पुष्फारोहणं" फूल चढ़ाना, 'गंधा रोहणं' सुगन्ध बास चढ़ाना, इत्यादिक सत्रह भेद समझना तथा स्नानपूजा आदिक इक्कीस प्रकारकी पूजा भी होती हैं। अंगपूजा अग्रपूजा, भाव-पूजा, ऐसे पूजाके तीन भेद गिननेसे इसमें भी पूजाके सब भेद समा जाते हैं।

"पूजाके सत्रह भेद"

१ स्नात्रपूजा—विलेपनपूजा, २ चक्षुयुगलपूजा (दो चक्षु चढाना), ३ पुष्पपूजा, ४ पुष्पमालपूजा, ५ पंचरंगी छूटे फूल चढानेकी पूजा, ६ चूर्णपूजा (वरासका चूर्ण चढ़ाना), ध्वजपूजा, ७ आभरणपूजा, ८ पुष्पगृहपूजा, ९ पुष्पप्रगरपूजा (फूलोंका पुंज चढ़ाना, १० आरती उतारना, मंगल दीवा करना, अष्ट मंगलोक स्थापन करना, ११ दीपकपूजा, १२ धूपपूजा, १३ नैवेद्यपूजा, १४ फलपूजा, १५ गीतपूजा, १६ नाटक पूजा, १७ वाद्यपूजा।

"इक्कीस प्रकारकी पूजाका विधि"

उमास्वाति वाचकने पूजाप्रकरणमे इक्कीस प्रकार पूजाकी विधि नीचे मूजब लिखी है।

"पूर्व दिशा सन्मुख स्नान करना, पश्चिम दिशा सन्मुख दंतवन करना, उत्तर दिशा सन्मुख श्वेत वस्त्र धारण करना, पूर्व या उत्तर दिशा खड़ा रहकर भगवानकी पूजा करना। घरमें प्रवेश करते बांयें हाथ शल्य-रहित अपने घरके तलविभागसे देढ हाथ ऊंची जमीन पर घरमंदिर करना। यदि अपने घरसे नीची जमीन पर घरमंदिर या बड़ा मंदिर करे तो दिनपर दिन उसके वंशकी और पुत्र पौत्रादि संततिकी परंपरा भी सदैव नीची पद्धतिको प्राप्त होती है। पूजा करनेवाला पुरुष पूर्व या उत्तर दिशा सन्मुख खड़ा रहकर पूजा करे; दक्षिण दिशा और विदिशा तो सर्वथा ही वर्ज देना चाहिये। यदि पश्चिम दिशा सन्मुख खड़ा रहकर भगवत मूर्तिकी पूजा करे तो चौथी संततिसे (चौथी पीढ़ीसे) वंशका विच्छेद होता है और यदि दक्षिण दिशा सन्मुख खड़ा रहकर पूजा करे तो उसे संतति ही न हो। आग्नेय कोनमें खड़ा रहकर पूजा करे तो दिनो दिन धनकी हानि हो, वायव्य कोनमें खड़ा रहकर पूजा करे तो उसे पुत्र ही न हो, नैऋत्य कोनमें खड़ा होकर पूजा करनेसे कुलका क्षय होता है और यदि ईशान कोनमें खड़ा होकर पूजा करे तो वह एक स्थानपर सुखपूर्वक नहीं रहता।

दो अंगूठोंपर, दो जानू, दो हाथ, दो खवे, एक मस्तक, ऐसे नव अंगोंमें पूजा करनी। चंदन विना किसी वक्त भी पूजा न करना। कपालमें, कंठमें, हृदयकमलमें, पेटपर, इन चार स्थानोंमें तिलक करना। नव स्थानोंमें (१ दो अंगुठे, २ दो जानू, ३ दो हाथ, ४ दो खवे, ५ एक मस्तक, ६ एक कपाल, ७ कंठ, ८ हृदय-कमल, ९ उदर) तिलक करके प्रतिदिन पूजा करना। विचक्षण पुरुषोंको सुबह वासपूजा, मध्याह्नकाल पुष्प-पूजा और संध्याकाल धूप दीप पूजा करनी चाहिये। भगवानके बायें तरफ धूप करना और पासमें रखनेकी वस्तुयें सन्मुख रखना तथा दाहिनी तरफ दीवा रखना और चैत्यवंदन या ध्यान भी भगवंतसे दाहिनी तरफ बैठकर ही करना।

हाथसे लेते हुये फिसलकर गिर गया हुवा, जमीनपर पड़ा हुवा, पैर आदि किसी भी अशुचि अंगसे लग गया हुवा, मस्तक पर उठाया हुवा, मलीन वस्त्रमें रक्खा हुवा, नाभिसे नीचे रक्खा हुवा, दुष्ट लोग या हिंसा करनेवाले किसी भी जीवसे स्पर्श किया हुवा, बहुत जगहसे कुचला हुवा, कीड़ोंसे खाया हुवा, इस प्रकारका फूल, फल या पत्र भक्तिवंत प्राणीको भगवंतपर न चढ़ाना चाहिए। एक फूलके दो भाग न करना, कलीको भी छेदन न करना, चंपा या कमलके फूलको यदि द्विधा करे तो उससे भी बड़ा दोष लगता है। गंध धूप, अक्षत, पुष्पमाला, दीप, नैवेद्य, जल और उत्तम फलसे भगवानकी पूजा करना।

शांतिक कार्यमें श्वेत, लाभकारी कार्यमें पीले, शत्रुको जय करनेमें श्याम, मंगल कार्यमें लाल, ऐसे पांच वर्णके वस्त्र प्रसिद्ध कार्योंमें धारन करने कहे हैं। एवं पुष्पमाला ऊपर कहे हुये रंगके अनुसार ही उपयोगमें लेना। पंचामृतका अभिषेक करना, घी तथा गुड़का दीया करना, अग्निमें नमक निक्षेप करना, ये शांतिक पौष्टिक कार्यमें उत्तम समझना। फटे हुये, सांधे हुये, छिद्रवाले, लाल रंगवाले, देखनेमें भयंकर ऐसे वस्त्र पहिननेसे दान, पूजा, तप, जप, होम, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि साध्यकृत निष्फल होते हैं। पद्मासनसे या सुखसे बैठा जा सके ऐसे सुखासनसे बैठकर नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाकर वस्त्रसे मुख ढककर मौनतया भगवंतकी पूजा करना उचित है।

"इकीस प्रकारकी पूजाके नाम"

"१ स्नात्रपूजा, २ विलेपनपूजा, ३ आभूषणपूजा, ४ पुष्पपूजा, ५ वासक्षेपपूजा, ६ धूपपूजा, ७ दीपपूजा, ८ फलपूजा, ९ तंदुल—अक्षतपूजा, १० नागरवेलके पानकी पूजा, ११ सुपारीपूजा, १२ नैवेद्यपूजा, १३ जलपूजा, १४ वस्त्रपूजा, १५ चामरपूजा, १६ छत्रपूजा, १७ वाद्यपूजा, १८ गीतपूजा, १९ नाटकपूजा, २० स्तुतिपूजा, २१ भंडारवर्धनपूजा।"

ऐसे इक्कीस प्रकारकी जिनराजकी पूजा सुरासुरके समुदायसे की हुई सदैव प्रसिद्ध है। उसे समय २ के योगसे कुमति लोगोंने खंडन की है, परन्तु जिसे जो २ वस्तु प्रिय होती है उसे भावकी वृद्धिके लिये पूजामें जोड़ना।

एवं "ऐशान्यां च देवतागृहम्" ईशान दिशामें देवगृह हो ऐसा विवेकविलासमें कहा है। विवेकविलासमें यह भी कहा है कि,—विषमासनसे बैठकर, पैरों पर बैठ कर, उत्कृष्ठ आसनसे बैठ कर बायां पैर ऊंचा रख कर बायें हाथसे पुजा न करना। सूके हुये, जमीन पर पड़े हुए जिनकी पंखडियां बिखर गईं हों, जो नीच लोगोंसे स्पर्श किए गये हों, जो विक स्वर न हुये हों ऐसे पुष्पोंसे पूजा न करना। कीड़े पड़ा हुआ, कीडोंसे खाया हुआ, डंठलसे जुदा पड़ा हुआ, एक दूसरेको लगनेसे बींधा हुआ, सड़ा हुआ, बासी मकड़ीका जाला लगा हुआ, नाभीसे स्पर्श किया हुवा, हीन जातिका दुर्गंध वाला, सुगंध रहित, खट्टी गंध वाला, मल मूत्र वाली जमीनमें उत्पन्न हुवा, अन्य किसी पदार्थसे अपवित्र हुवा ऐसे फूल पूजामें सर्वथा वर्जना।

विस्तारसे पूजा पढ़ानेके अवसर पर या प्रतिदिन या किसी दिन मंगलके निमित्त, तीन, पांच, सात कुसमांजलि चढ़ाने पूर्वक भगवानकी स्नात्र पूजा पढ़ाना।

"स्नात्र पूजा पढानेकी रीति"

प्रथम निर्माल्य उतारना, प्रक्षालन करना, संक्षेपसे पूजा करना, आरती मंगल दीपक भरके तैयार कर रखना केशर वासित जलसे भरे हुए कलश सन्मुख स्थापन करना फिर हाथ जोड कर:—

मुक्तालंकारविकार, सारसौम्यत्वकांतिकमनीयं ॥
सहजनिजरूपं विनिर्जित, जगत्रयं पातु जिनबिम्ब ॥ १ ॥

"जिसने विभाव दशाके (सांसारिक अवस्थाके) अलंकार और क्रोधादिक विकार त्याग किये हैं इसी कारण जो सार और सम्यक्त्व, सर्व जगजंतुको, वल्लभता; कांतियुक्त शमतामय मुद्रासे मनोहर एवं स्वभावदशा रूप केवलज्ञानसे निरावरण तीन जगतके काम क्रोधादिक दूषणोंको जीतनेवाले जिनबिंब पवित्र करो" ! ऐसा कहकर अलंकार आभूषण उतारना इसके बाद हाथ जोडकर:—

अवणिअ कुसुमाहरणं, पयइ पइट्ठीय मणोहरच्छायं ॥
जिणरूव मज्जणपीठ्ठ, संठिअं वो सिवं दिसओ ॥ २ ॥

"जिसके कुसुम और आभूषण उदार लिए हैं, और जिसकी सहज स्वभाव से भव्य जीवोंके मनको हरन करनेवाली मनोहर शोभा प्रगट हुई है इसप्रकार का स्नात्र करनेकी चौकी पर विराजमान वीतरागका स्वरूप तुम्हें मोक्ष दे ऐसा कहकर निर्माल्य उतारना फिर प्रथमसे तैयार किया हुवा कलश करना, अंगलूहन करके संक्षिप्तसे पूजा करना। फिर निर्मल जलसे धोए हुए और धूपसे धूपित कलशमें स्नात्र करनेके योग्य सुगंधी जल भरके उन कलशोंको श्रेणिवद्ध प्रभुके सन्मुख शुद्ध निर्मल वस्त्रसे ढककर पाटले पर स्थापन करना। फिर अपने निमित्तका चंदन हाथमे लेकर तिलक करके हाथ धो अपने निमित्तके चंदनसे हाथ विलेपित कर हाथ कंकण बांध कर हाथको धूपित कर श्रेणिवद्ध स्नात्र करनेवाले श्रावक कुसुमांजलि (केशरसे वासित छूटे फूल) भरी रकेबी हाथमें ले खडा रहकर कुसुमांजलीका पाठ उच्चारण करे:—

सयवत्त कुन्द मालइ। वहु विह कुसमाइं पञ्चवन्नाइं ॥
जिण नाह न्हवनकाले। दिंति सुरा कुसुमांजली हिट्ठा ॥ ३ ॥

"सेवंती, मचकुन्द, मालती, वगेरह पंचवर्ण वहुत से प्रकारके फूलोंकी कुसुमांजलि स्नात्रके अवसर पर देवाधिदेवको हर्षित हो देवता समर्पण करते हैं" । ऐसा कह कर परमात्माके मस्तक पर फूल चढ़ाना।

गंधाय ठिअअ महुयर। मणहर झमत्कार सद संगीआ ॥
जिण चलणो वारि मुक्का। हरओ तुम्ह कुसमञ्जलि दुरअं ॥ ४ ॥

सुगंधके लोभसे आकर्षित हो आए हुए भ्रमरोंके झङ्कार शब्दसे गायनसे जिनेश्वर भगवंतके चरण पर रक्खी हुई कुसुमांजली तुम्हारे पापको दूर करे। " ऐसे यह गाथा पढ़ कर प्रभुके चरण कमलोंमें हर एक श्रावक कुसुमांजली प्रक्षेप करे। इस प्रकार कुसुमांजलीसे तिलक, धूप पान आदिका आडंबर करना। फिर मधुर और उच्च स्वरसे जो जिनेश्वर पधराये हों उनके नामका जन्माभिषेकके कलशका पाठ बोलना। फिर घी,

गन्नेका रस, दूध, दहि, सुगंधी जल, इस पंचामृतसे अभिषेक करना। प्रक्षालन करते हुये बीचमें धूप देना और भगवानका मस्तक फूलोंसे ढक रखना परन्तु खुला हुवा न रखना। इसलिए वादी वैताल श्री शांतिसूरिने कहा है कि:—"स्नात्र जलकी धारा जबतक पडती रहे तबतक मस्तक शून्य न रक्खा जाय, अतः मस्तक पर फूल ढक रखना।" स्नात्र करते समय चामर ढोलना, गीत वाद्य का यथाशक्ति आडम्बर करना। स्नात्र किये बाद यदि फिरसे स्नात्र करना हो तो शुद्ध जलसे पाठ उच्चारण करते हुए धारा देना।

अभिषेकतोयधारा। धारेव ध्यानमन्डलाग्रस्य॥
भव भवनभित्ति भागान्। भूयोपि भिनत्तु भागवती॥ १॥

ध्यान रूप मंडलके अग्रभागकी धाराके समान भगवानके अभिषेक जलकी धारा संसार रूप घरकी भित्तोंके भागको फिरसे भी भेद करे।" ऐसा कहकर धारा देना। फिर अंगलूहन कर विलेपन आभूषण वगैरहसे आंगीकी रचना करके पहले पूजा की थी उससे भी अधिक करना, सर्व प्रकारके धान्य पक्वांन्न शाक विगय, घी, गुड, शक्कर, फलादि, बलिदान चढ़ाना। ज्ञानादि रत्नत्रयकी आराधनाके लिये अक्षतके तीन पुञ्ज करना। स्नात्र करनेमें लघु वृद्ध व्यवहार उल्लंघन न करना (वृद्ध पुरुष पहले स्नात्र करे फिर दूसरे सब करे और स्त्रियां श्रावकोंके बाद करें) क्योंकि जिनेश्वर देवके जन्माभिषेक समय भी प्रथम अच्युतेन्द्र फिर यथानुक्रमसे अन्तिम सौधर्मेन्द्र अभिषेक करता है। स्नात्र हुये बाद अभिषेक जल शेषके समान मस्तक पर लगाये तो उसमे कुछ भी दोष लगनेका संभव नहीं। जिसके लिए श्री हेमचंद्राचार्यने श्री वीर चारित्रमें कहा है कि, देव मनुष्य, असुर और नागकुमार देवता भी अभिषेक जलको वंदना करके हर्षसहित बारम्बार अपने सर्व अंगमें स्पर्श कराते थे।

पद्मप्रभु चारित्रके उन्नीसवें उद्देश्यमें शुक्ल अष्टमीसे आरम्भ कर दशरथ राजाने कराये हुवे अष्टान्हिका अठाई महोत्सवके अधिकारमे कहा है कि:—वह न्हवन शांति जल, राजाने अपने मस्तक पर लगाकर फिर वह तरुण स्त्रियोंके द्वारा अपनी रानियोंको भेजवाया। तरुण स्त्रियोने वृद्ध कंचुकीके साथ भिजवानेसे उसे जाते हुए देरी लगनेके कारण पट्टरानियां शोक और क्रोधको प्राप्त होने लगीं, इतनेमें बड़ी देरमें भी वृद्ध कंचुकीने नमण जल पटरानियोंको लाकर दिया और कहने लगा कि मैं वृद्ध हूं इसीसे देर लगी अतः माफ करो। तदनन्तर पटरानियोंने वह शांति जल अपने मस्तक पर लगाया इससे उनका मान रूपी अग्नि शान्त होगया और फिर हृदयमें प्रसन्न भावको प्राप्त हुई।

तथा बडी शन्तिमें भी कहा है कि, 'शान्ति पानीयं मस्तके दातव्यं' शांति जल मस्तक पर लगाना और भी सुना जाता है कि, जरासंध वासुदेव द्वारा छोडी हुई जराके उपद्रवसे अपने सैन्यको छुडानेके लिये श्रीनेमिनाथके वचनसे श्रीकृष्ण महाराजने अठ्ठमके तप द्वारा आराधना करके धरणेंद्रके पाससे पाताललोकमेंसे श्रीपार्श्वनाथकी प्रतिमा संखेश्वर गांवमे मंगाई और उस प्रतिमाके स्नात्र जलसे उपद्रव शांत हुआ, इसीलिये वह प्रतिमा आज भी श्री संखेश्वर पार्श्वनाथ इस नामसे संखेश्वर गांवमे प्रसिद्ध है। इसलिए सद्गुरु प्रतिष्ठित बडे महोत्सवके साथ लाये हुए हिरागल आदिके ध्वज पताकाको मन्दिरकी तीन प्रदक्षिणा दिलाकर दिग्पा-

लादिकको बलिदान देकर चतुर्विध श्रीसंघ सहित वाद्य बजते हुये ध्वज चढ़ाना। फिर यथाशक्ति श्री संघको परिधापना, स्वामी वात्सल्य, प्रभावना करके प्रभुके सन्मुख फल वगैरह शेष नैवेद्य रखना। आरती उतारते समय प्रथम मङ्गल दीपक प्रभुके सन्मुख करना। मंगल दीपकके पास एक अग्निका पात्र भरकर रखना उसमें लवण जल डालनेके लिये हाथमें फूल लेकर तीन दफा प्रदक्षिणा भ्रमण कराते हुये निम्न लिखी गाथा बोलना।

उवणेउमंगलंवो। जणाणमुहलालिजाल आवलिआ॥
निध्यपवत्तणसमए। तिअसविमुक्का कुसुमवुट्ठी॥

"केवल ज्ञान उत्पत्तिके समय और चतुर्विध श्री संघकी स्थापना करते समय जिनेश्वर भगवानके मुखके सन्मुख झंकार शब्द करती हुई जिसमें भ्रमरकी पंक्तियां हैं ऐसी देवताओंकी की हुई आकाशसे कुसुम-वृष्टि श्रीसंघको अध्यात्म योग निर्मल करनेके लिए मंगल दो!"

ऐसा कहकर प्रभुके सन्मुख पहले पुष्प वृष्टि करना, लवण, जल, पुष्प, हाथमें लेकर प्रदक्षिणा भ्रमण करते हुये निम्न लिखी गाथा उच्चारण करना।

उअह पडिभग्ग पसरं, पयाहिणं मुणिवइ करिऊणं॥
पडइ सलोणत्तण, लज्जिअं च लोणंहु अवहंमि॥ १॥

जिससे सर्व प्रकारके सांसारिक प्रसार दूर होते हैं ऐसी प्रदक्षिणा करके और श्री जिनराज देवके शरीरको अनुपम लावण्यता देखकर मानो शरमिन्दा होकर लवण अग्निमें पड़कर जल मरता है यह देखो"

उपरोक्त गाथा कहकर जिनेश्वर देवको तीन दफा पुष्प सहित लवण जल उतारना। फिर आरतीकी पूजा करके धूप करना। एक श्रावक मुखकोष बांधकर थालमे रखी हुई आरतीका थाल हाथमें लेकर आरती उतारे। एक उत्तम श्रावक पवित्र जलसे कलश भरकर एक थालमें धारा करे, और दूसरा श्रावक वाद्य बजावे तथा पुष्पोंकी वृष्टि करे। उस समय निम्न लिखी आरतीकी गाथा बोलना

मरगयमणि घडि अविशाल, थालिमाणिक्क मंडिअ पइव्वं॥
न्हवणकार करुक्खित्तं, भमओ जिणारत्तिओ तुम्ह॥ २॥

"मरकत रत्नके घड़े हुये विशाल थालमें माणिकसे मंडित मंगल दीपकको स्नात्र करने वालेके हाथसे ज्यों परिभ्रमण कराया जाता है त्यों भव्य प्राणियोंकी भवकी आरती परिभ्रमण दूर होवो!" इस प्रकार पाठ उच्चारण करते हुए उत्तम पात्रमें रखी हुई आरती तीन दफा उतारना।

ऐसे ही त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्रमें भी कहा है कि, करने योग्य करणी करके कृत कृत्य होकर इन्द्रने अब कुछ पीछे हटकर तीन जगतके नाथकी आरती उतारनेके लिए हाथमें आरती ग्रहण की। ज्योतिवन्त औषधियोंके समुदाय वाले शिखरसे जैसे मेरु पर्वत शोभता है वैसे ही उस आरतीके दीपककी कान्तिसे इन्द्र भी स्वयं दीपने लगा। दूसरे श्रद्धालु इन्द्रोंने जिसवक्त पुष्प बरसाये उस वक्त सौधर्मेन्द्रने तीन जगतके नायककी तीन दफा आरती उतारी।

फिर मंगल दीपक भी आरतीके समान ही पूजना और उस समय निम्न लिखित गाथा बोलना।

कोसंबि संठियस्सव, पयाहिणं कुणई मउलिअ पयावो ॥
जिणसोम दंसणे दिणयरुव्व तुह मंगल पईवो ॥ १ ॥
भामिज्जन्तो सुन्दरीहिं, तुहनाहमंगल पईवो ॥
कणयायलस्स नज्जई, भाणुव्व पयाहिणं दिंतो ॥ २ ॥

"चन्द्र समान सौम्य दर्शनवाले हे नाथ ! जब आप कौसांबी नगरी में विचरते थे उस वक्त क्षीण प्रतापी सूर्य अपने शाश्वते विमानसे आपके दर्शन करनेको आया था उस वक्त जैसे वह आपकी प्रदक्षिणा करता था वैसे ही यह मंगलदीपक भी आपकी प्रदक्षिणा करता है। जैसे मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा करते हुये सूर्य शोभता है वैसे ही हे नाथ ! सुर सुन्दरियोंसे संचरित (प्रदक्षिणा कराते हुये परिभ्रमण कराया हुआ) यह मंगल दीपक भी प्रदक्षिणा करते शोभता है।"

इस प्रकार पाठ उच्चारण करते हुये तीन दफा मंगल दीपक उतार कर उसे प्रभुके चरण कमल सन्मुख रखना। यदि मंगल दीपक उतारते समय आरती बुझ जाय तो कुछ दोष नहीं लगता। आरती मंगल दीपकमें मुख्य बत्तीसे घी, गुड, कपूर, रखना इससे महालाभ प्राप्त होता है। लौकिक शास्त्रमें भी कहा है कि:

प्रज्वाल्य देवदेवस्य, कर्पूरेण तु दीपकं ॥
अश्वमेधमवाप्नोति, कुलं चैव समुद्धरेत ॥ १ ॥

परमेश्वरके पास यदि कपूरसे दीपक करे तो अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। और उसके कुलका भी उद्धार होता है।

हरिभद्र सूरिद्वारा किये हुये समरादित्य केवलीके चरित्रके आदिमें 'उवणेउ मंगल वा' ऐसा पाठ आता है जिससे यह स्नात्र विधानमें प्रदर्शन 'मुक्तालंकार' यह गाथा हरिभद्रसूरिकी रची हुई संभवित है।" इस स्नात्र विधानमें जो जो गाथा आई हुई हैं वे सब तपागच्छमें प्रसिद्ध हैं, इसी लिये नहीं लिखीं, परन्तु स्नात्र पूजाके पाठसे देख लेना।

स्नात्रादिकमें समाचारीके भेदसे विधिमें भी विविध प्रकारका भेद देखा जाता है तथापि उसमें कुछ उलझन नहीं (इस विषयमें दूसरेके साथ तकरार भी न करना) क्योंकि, अरिहंतकी भक्तिसे साधारणतः सबका एक मोक्ष फल ही साध्य है। तथा गणधरादिकी समाचारीमें भी प्रत्येकका परस्पर भेद होता है। इसलिए जिस २ धर्मकार्यमें विरोध न पड़े ऐसी अरिहंतकी भक्तिमें आचरणा, फेरफार हो तथापि वह किसी आचार्यको सम्मत नहीं। ऐसा सभी धर्म-कृत्योंमें समझ लेना।

यहां पर जिनपूजाके अधिकारमें आरती उतारना, मंगल दीपक उतारना, नोन उतारना, इत्यादि कितनी येक करणी कितने एक संप्रदायसे सब गच्छोंमें एक दूसरेकी देखादेखीसे पर दर्शनीयोंके समान चली आती हैं ऐसा देख पड़ता...।

श्री जिनप्रभसूरिकृत पूजाविधिमें तो इस प्रकार स्पष्टाक्षरोंसे लिखा है कि, लवणाई उत्तारणं पयालित्त सूरियाई पुव्वपुरिसेहिं साहारेण अन्नयंपि संपयं सिट्ठिए कारिज्जई। लवण आरतीका उतारना पाद

लित सूरि आदि पूर्व पुरुषोंने एकवार करनेकी आज्ञा की है। परन्तु आज तो देखा देखीसे कराते हैं।

स्नात्र करनेमें सर्व प्रकारके विस्तारसे पूजा प्रभावनादि के संभवसे परलोकके फलकी प्राप्ति स्पष्टतया ही देखी जाती है। जिन जन्मादि स्नात्र चौसठ इन्द्र मिलकर करते थे, उनके समान हम भी करें तो उनके अनुसार किया हुवा कहा जाय। इससे इस लोक फलकी प्राप्ति भी जरूर होती है।

"कैसी प्रतिमा पूजना?"

प्रतिमायें विविध प्रकारकी होती हैं, उनके भेद—पूजाविधि सम्यक्त्व प्रकरणमें कहे हैं।

गुरुकारि आई कई, अन्नेसयकारि आइं तंविंति ॥
विहिकारि आइ अन्ने, परिमाए पूअण विहाणं ॥ १ ॥

कितने आचार्य यों कहते हैं कि, गुरु करिता,—"गुरु याने माता, पिता दादा, परदादा आदि उनकी कराई हुई प्रतिमा पूजना" कितनेक आचार्य ऐसा कहते हैं कि, "स्वयं विधि पूर्वक प्रतिमा बनवाके प्रतिष्ठा कराकर पूजना" और भी कितनेक आचार्य ऐसा कहते हैं कि, 'विधिपूर्वक जिसकी प्रतिष्ठा हुई हो ऐसी प्रतिमाकी पूजा करना, ऐसी प्रतिमाकी पूजा करनेकी रीतिमें बतलाई हुई विधिपूर्वक पूजा करना।

माता पिता द्वारा बनवाई हुई प्रतिमाकी ही पूजा करना चित्तमें ऐसा विचार न करना। ममत्व या आग्रह रखकर अमुक ही प्रतिमाकी पूजा करना ऐसा आशय न रखना चाहिये। जहां जहां पर सामाचारी की प्रभुमुद्रा देखनेमें आवे वहां वहां पर वह प्रतिमा पूजना। क्योंकि सब प्रतिमाओंमें तीर्थंकरोंका आकार दीखनेसे परमेश्वरकी बुद्धि उत्पन्न होती है। यदि ऐसा न हो तो हठवाद करनेसे अर्हन्तबिम्बकी अवगणना करनेसे अनन्त संसार परिभ्रमण करनेका दंड उस पर बलात्कारसे आ पड़ता है। यदि किसीके मनमें ऐसा विचार आवे कि, अविधिकृत प्रतिमा पूजनेसे उलटा दोष लगता है, तथापि ऐसी धारना न करना कि अविधिकी अनुमोदनाके प्रकारसे आज्ञाभंग का दोष लगता है। अविधिकृत प्रतिमा पूजनेसे भी कोई दोष नहीं लगता,' ऐसा आगममें लिखा हुवा है। इस विषयमें कल्पव्यवहार भाष्यमें कहा है कि,—

निस्सकड मनिस्सकडे, चेइए सव्वेहि थुइ तिन्नि
वेलं च केई आणिय, नाउं इक्किक्कि आवावि ॥ १ ॥

निश्राकृत याने किसी गच्छका चैत्य, अनिश्राकृत बगैर गच्छका सर्व साधारण चैत्य, ऐसे दोनों प्रकारके चैत्य याने जिनमन्दिरोंमें तीन स्तुति कहना। यदि ऐसा करते हुये बहुत देर लगे या बहुतसे मन्दिर हों और उन सबमें तीन २ स्तुति कहनेसे बहुत देर लगती हो और उतनी देर न रहा जाय तो एक २ स्तुति कहना। परन्तु जिस २ मन्दिरमें जाना वहांपर स्तुति कहे बिना पीछे न फिरना, इसलिये विधिकृत हो या न हो परन्तु पूजन जरूर करना।

"मन्दिरमेंसे मकड़ीका जाला काढनेके विषयमें"

सीलह मंख फलए, इअर चोइन्ति तं तुमाइसु।
अभिमोइन्ति सवित्तिसु, अणिच्छ फेडन्त दीसन्ता ॥ २ ॥

जिस मन्दिरकी सार संभाल करने वाला श्रावक आदि न हो, उस मन्दिरको असंविग्न, देव, कुलिका कहते हैं। उसमें यदि मकड़ीने जाला पूरा हो, धूल जम गई हो तो उस मन्दिरके सेवकोंको साधु प्रेरणा करे कि मंख चित्रकी पट्टियां सन्दूकडीमें रखकर उन चित्र पट्टियोंको बच्चोंको दिखला कर पैसा लेने वाले लोगोंके समान उनके चित्र पट्टियोंमें रंग विरंगा विचित्र दिखाव होनेसे उनकी आजीविका अच्छी चलती है वैसे ही यदि तुम लोग मन्दिरकी सार संभाल अच्छी रखकर वर्त्तोगे तो तुम्हारा मान-सत्कार होगा। यदि उस मन्दिरके नौकर मन्दिरका वेतन लेते हों या मन्दिरके पीछे गांवकी आय खाते हों या गांवकी तरफसे कुछ लाग बन्धा हुवा हो या उसी कार्यके लिये गांवकी कुछ जमीन भोगते हों तो उनकी निर्भर्त्सना भी करे। (धमकाये) कि, तुम मन्दिरका वेतन खाते हो या इसी निमित्त अमुक आय लेते हो तथापि मन्दिरकी सार संभाल अच्छी क्यों नहीं रखते? ऐसे धमकानेसे भी यदि वे नौकर मन्दिरकी सार संभाल न करें तो उसमें देखनेसे यदि जीव मालूम न दे तो मकड़ीका जाला अपने हाथसे उखेड डाले, इसमें उसे कुछ दोष नहीं। इसप्रकार विनाश होते हुये चैत्यकी जब साधु भी उपेक्षा नहीं कर सकता तब श्रावककी तो बात ही क्या? (अर्थात्-श्रावक प्रमुखके अभावमें जब साधुके लिए भी मन्दिरकी सार संभाल रखनेकी सूचना की गई है। तब फिर श्रावकको तो कभी भी वह अपना कर्तव्य न भूलना चाहिये) यथाशक्ति अवश्य ही मन्दिरकी सार संभाल रखनी चाहिये। पूजाका अधिकार होनेसे ये सब कुछ प्रसंगसे बतलाया गया है।

उपरोक्त स्नात्रादिकी विधिका विस्तार धनवान श्रावकसे ही बन सकता है; परन्तु धन रहित श्रावक सामायिक लेकर यदि किसीके भी साथ तकरार आदि या सिरपर ऋण (कर्ज) न हो तो ईर्यासमिति आदिके उपयोग सहित साधुके समान तीन निःसिहि प्रमुख भाव पूजाकी रीत्यानुसार मन्दिर आवे। कदाचित् वहां किसी गृहस्थका देव पूजाकी सामग्री सम्बन्धी कार्य हो तो सामायिक पार कर वह फूल गूंथने आदिके कार्यमें प्रवर्ते। क्योंकि ऐसी द्रव्यपूजाकी सामग्री अपने पास न हो और गरीबीके लिए उतना खर्च भी न किया जा सकता हो तो फिर दूसरेकी सामग्रीसे उसका लाभ उठावे। यदि यहांपर कोई ऐसा प्रश्न करे कि, सामायिक छोड़ कर द्रव्यस्तव करना किस तरह संघटित हो सकता है? इसका उत्तर यह है कि, सामायिक उसके स्वाधीन है उसे जब चाहे तब कर सकता है। परन्तु मन्दिरमें पुष्प आदि कृत्य तो पराधीन है, वह सामुदायिक कार्य है, उसके स्वाधीन नहीं एवं जब कोई दूसरा मनुष्य द्रव्य खर्च करने वाला हो तब ही बन सकता है। इसलिए सामायिक से भी इसके आशयसे महालाभ की प्राप्ति होनेसे सामायिक छोड़कर भी द्रव्यस्तवम प्रवर्त्तनेसे कुछ दोष नहीं लगता। इसलिये शास्त्रमें कहा है कि:—

जीवाणं बोहिलाभो। सम्मदीठ्ठीण होई पीअकरणं॥
आणा जिणंदभत्ती। तिथ्थस्स प्पभावणा चेव॥ १॥

सम्यकदृष्टि जीवको बोधि बीजकी प्राप्ति हो, सम्यक्त्वको हितकारी हो, आज्ञा पालन हो, प्रभुकी भक्ति हो, जिनशासन की उन्नति हो, इत्यादि अनेक गुणोंकी प्राप्ति होती है; इसलिए सामायिक छोड कर भी द्रव्य स्तव करना चाहिये।

दिनकृत्य सूत्रमें कहा है कि:—इसप्रकार यह सर्व विधि रिद्धिवन्तके लिए कहा और धन रहित श्रावक अपने घरमें सामायिक लेकर यदि मार्गमें कोई देनदार न हो या किसीके साथ तकरार नहीं हो तो साधुके समान उपयोगवंत होकर जिनमंदिरमें जाय। यदि वहांपर शरीरसे ही बन सके ऐसा द्रव्यस्तवरूप कार्य हो तो सामायिकको छोड़कर उस द्रव्यस्तवरूप करणीको करे।

इस श्राद्धविधिकी मूलगाथामें 'विहिणा' विधिपूर्वक इस पदसे दसत्रिक, पांच अभिगम आदि चौवीस मूलद्वारसे दो हजार चुहत्तर बातें जो भाष्यमें गिनाई हैं उन सबको धारना। सो अब संक्षेपसे बतलाते हैं।

"पूजामें धारने योग्य दो हजार चुहत्तर बातें"

(१) तीन जगह तीन दफा निःसिहिका कहना, (२) तीन दफा प्रदक्षिणा देना, (३) तीन दफा प्रणाम करना, (४) तीन प्रकारकी पूजा करना, (५) प्रतिमाकी तीन प्रकारकी अवस्थाका विचार करना, (६) तीन दिशामें देखनेका त्याग करना, (७) पैर रखनेकी भूमिको तीन दफा प्रमार्जित करना, (८) वर्णादिक तीनका आलंबन करना, (९) तीन प्रकारकी मुद्रायें करना, (१०) तीन प्रकारका प्रणिधान, यह दस त्रिक गिना जाता है। इत्यादिक सर्व बातें धारन करके फिर यदि देव वन्दनादिक धर्मानुष्ठान करे तो महाफलकी प्राप्ति होती है। यदि ऐसा न बने तो अतिचार लगनेसे या अविधि होनेसे परलोकमें कष्टकी प्राप्तिका हेतु भी होता है। इसके लिये शास्त्रमें कहा है कि,—

धर्मानुष्ठानैव तथ्यात्। प्रत्यपायो महान् भवेत्॥
रौद्र दुःखौघजननो। दुष्प्रयुक्तादि औषधात्॥ १॥

जैसे अपथ्यसे औषध खानेमे आवे और उससे मरणादिक महाकष्टकी प्राप्ति होती है वैसे ही धर्मानुष्ठान भी यदि अशुद्ध किया जाय तो उससे नरकादि दुर्गतिरूप महाकष्टकी परम्परा प्राप्त होती है।

यदि चैत्यवंदनादिक अविधिसे किया जाय तो करनेवालेको उलटा प्रायश्चित्त लगता है। इसके लिये महानिशीथ सूत्रके सातवें अध्ययन में कहा है—

अविहिए चेइआइं वंदिज्जा। तस्सणं पायच्छित्तं उवइसिज्जाजओ अविहिए चेइआइं वंदमाणो अन्नेसिं असद्धं जणेइ इई काऊणं॥ अविधिसे चैत्योंको वन्दन करते हुये दूसरे भव्य जीवोंको अश्रद्धा (जिन शासनकी अप्रतीत) उत्पन्न होती है, इसी कारण जो अविधिसे चैत्यवंदन करे उसे प्रायश्चित्त देना।

देवता, विद्या और मंत्रादिक भी यदि विधिपूर्वक आराधे जायें तब ही फलदायक होते हैं। यदि ऐसा न हो तो अन्यथा उसे तत्काल अनर्थकी प्राप्तिका हेतु होते हैं। "इसपर निम्न दृष्टान्त दिया जाता है"

"चित्रकारका दृष्टान्त"

अयोध्या नगरीमें सुरप्रिय नामा यक्ष रहता था, प्रतिवर्ष उसकी वर्षगांठकी यात्रा भरती थी। उसमें इतना आश्चर्य था कि, जिस दिन उसकी यात्रा भरनेवाली होती थी उस दिन एक चित्रकार उस यक्षके मन्दिरमें जा कर उसकी मूर्ति चित्रे तब तत्काल ही वह चित्रकार मृत्युके शरण होजाता था। यदि किसी वर्ष यात्राके दिन

कोई चित्रकार वहांपर मूर्ति चितरनेके लिये न जाय तो वह यक्ष गाँवके बहुतसे आदमियोंको मार डालता था। इससे बहुतसे चित्रकार गांव छोड़कर भाग गये थे। अब यह उपद्रव गाँवके सब लोगोंको सहन करना पड़ेगा यह समझ कर बहुतसे नागरिक लोगोंने राजाके पास जा कर पुकार की और पूर्वोक्त वृत्तान्त कह सुनाया। राजाने सब चित्रकारोंको पकड़ बुलवाया और उनकी एक नामावलि तैयार कराकर उन सबके नामकी चिट्ठियें लिखवा कर एक घड़ेमें डाल रक्खीं और ऐसा ठहराव किया कि, निकालने पर जिसके नामकी चिट्ठी निकले उस साल वही चित्रकार यक्षकी मूर्ति चितरने जाय। ऐसा करते हुए बहुतसे वर्ष बीतगये। एक वृद्ध स्त्रीको एक ही पुत्र था, एक साल उसीके नामकी चिट्ठी निकलनेसे उसे वहां जानेका नम्बर आया, इससे वह स्त्री अत्यन्त रुदन करने लगी। यह देख एक चित्रकार जो कि उसके पतिके पास ही चित्रकारी सीखा था, वृद्धाके पास आकर विचार करने लगा कि, ये सब चित्रकार लोग अविधिसे ही यक्षकी मूर्ति चित्रते हैं इसी कारण उनपर कोपायमान हो यक्ष उनके प्राण लेता है; यदि मूर्ति अच्छी चितरी जाय तो कोपायमान होनेके बदले यक्ष उलटा प्रसन्न होना चाहिये। इसलिये इस साल मैं ही वहां जाकर विधि पूर्वक यक्षकी मूर्ति चित्रूं तो अपने इस गुरु भाईको भी बचा सकूंगा, और यदि मेरी कल्पना सत्य होगई तो मैं भी जिन्दा ही रहूंगा। एवं हमेशाके लिए इस गांवके चित्रकारोंका कष्ट दूर होगा। यह विचार कर उस वृद्ध स्त्रीको कहने लगा "हे माता! यदि तुम्हें तुम्हारे पुत्रके लिए इतना दुःख होता है तो इस साल तुम्हारे पुत्रके बदले मैं ही मूर्ति चितरने जाऊंगा" वृद्धाने उसे मृत्युके मुखमें जाते हुए बहुत समझाया परन्तु उसने एक न सुनी। अन्तमें जब मूर्ति चितरनेका दिन आया उस रोज उसने प्रथमसे छठकी तपश्चर्या की और स्नान करके अपने शरीरको शुद्ध कर, शुद्ध वस्त्र पहनकर, धूप, दीप, नैवेद्य, बलिदान, रंग, रोगन, पीछी, ये सब कुछ शुद्ध सामान लेकर यक्षराजके मन्दिर पर जा पहुंचा। वहांपर उसने अष्ट पटका मुखकोष बाँधकर प्रथम शुद्ध जलसे मन्दिरकी जमीनको धुलवाया। पवित्र मिट्टी मंगाकर उसमें गायका गोबर मिलाकर जमीनको लिपवाया, बाद उत्तम धूपसे धूपित कर मन, वचन, काय, स्थिर करके शुभ परिणामसे यक्षको नमस्कार कर सन्मुख बैठकर उसने यक्षकी मूर्ति चित्रित की। मूर्ति तैयार होनेपर उसके सन्मुख फल, फूल, नैवेद्य, रखकर धूप दीप आदिसे उसकी पूजा कर नमस्कार करता हुवा हाथ जोड़कर बोला—"हे यक्षराज! यदि आपकी यह मूर्ति बनाते हुये मेरी कहीं भूल हुई हो तो क्षमा करना। उस वक्त यक्षने साश्चर्य प्रसन्न हो उसे कहा कि, मांग! मांग! मैं तुझपर तुष्टमान हूं। उस वक्त वह हाथ जोड़कर बोला—"हे यक्षराज! यदि आप मुझपर तुष्टमान हैं तो आजसे लेकर अब किसी भी चित्रकारको न मारना।" यक्षने मंजूर हो कहा—"यह तो तूने परोपकारके लिये याचना की परन्तु तू अपने लिए भी कुछ मांग। तथापि चित्रकारने फिरसे कुछ न मांगा। तब यक्षने प्रसन्न होकर कहा" जिसका तू एक भी अंश-अंग देखेगा उसका सम्पूर्ण अंग चितर सकेगा। तुझे मैं ऐसी कलाकी शक्ति अर्पण करता हूं। चित्रकार यक्षको प्रणाम करके और खुश हो अपने स्थानपर चला गया। वह एक दिन कौशाम्बिके राजाकी सभामें गया था उस वक्त राजाकी रानीका एक अंगूठा उसने जालीमेंसे देख लिया था, इससे उसने उस मृगावती रानीका

सारा शरीर चित्रित किया और वह राजाको समर्पण किया। राजा उस चित्रको देख प्रसन्न हुवा परंतु उस चित्र मूर्तिको गौरसे देखते हुए राजाकी दृष्टि जंघापर पड़ी, चित्र-चित्रित मूर्तिकी जंघापर एक बारीक तिल दीख पड़ा। सचमुच ऐसा ही तिल रानीकी जंघापर भी था। यह देख राजाको शंका पैदा हुई इससे उसने चित्रकारको मार डालनेकी आज्ञा फर्मायी। यह सुनकर उस गांवके तमाम चित्रकार राजाके पास जाकर कहने लगे कि स्वामिन्! इसे यक्षने वरदान दिया हुवा है कि जिसका एक अंश-अंग देखे उसका सम्पूर्ण अंग चित्रित कर सकता है। यह सुन राजाने उसको परीक्षा करनेके लिए पड्देमें से एक कुबड़ी दासीका अंगूठा दिखलाकर उसका चित्र चित्रित कर लानेकी आज्ञा दी। उसने यथार्थ अंग चित्रित कर दिया तथापि राजाने उसका दाहिना हाथ काट डालनेकी आज्ञा दी। अब उस चित्रकारने दाहिने हाथसे रहित हो उसी यक्षराजके पास जाकर वैसा ही चित्र बांये हाथसे चितरनेकी कलाकी याचना की, यक्षने भी उसे वह वरदान दिया। अब उसने अपने हाथ काटनेके वैरका बदला लेनेके लिए मृगावतीका चित्र चित्रकर चंडप्रद्योतन राजाको दिखला कर उसे उत्तेजित किया। चंडप्रद्योतन ने मृगावतीके रूपमें आसक्त हो कौशाम्बीके शतानिक राजको दूत भेजकर कहलाया कि, तेरी मृगावती रानीको मुझे समर्पण करदे। अन्यथा जबरदस्तीसे भी मैं उसे अंगीकार करूंगा। शतानिकने यह बात नामंजूर की, अन्तमें चन्डप्रद्योतन राजाने बड़े लश्करके साथ आकर कोशाम्बी नगरीको वेष्टित कर लिया। शतानिक राजा इसी युद्धमे ही मरणके शरण हुवा। चन्डप्रद्योतन ने मृगावतीसे कहलाया कि, अब तुम मेरे साथ प्रेम पूर्वक चलो। उसने कहलाया कि, मैं तुम्हारे वशमे ही हूं, परन्तु आपके सैनिकोंने मेरी नगरीका किला तोड़ डाला है यदि उसे उज्ञयिनी नगरीसे ईंटें मंगाकर पुनः तयार करा दें, और मेरी नगरीमें अन्नपानीका सुभीता कर दें तो मैं आपके साथ आती हूं। चन्डप्रद्योतन ने बाहर रहकर यह सब कुछ करा दिया। इतनेमें ही वहांपर भगवान महावीर स्वामी आ समवसरे। यह समाचार मिलते ही मृगावती रानी, चन्डप्रद्योतन राजा आदि उन्हें वंदन करनेको आये। इस समय एक भीलने आकर भगवानसे पूछा कि, 'या सा' भगवन्तने उत्तर दिया कि 'सा सा' तदनन्तर आश्चर्य पाकर उसने उत्तर पूछा भगवानने यथावस्थित सम्बन्ध कहा, वह सुनकर वैराग्य पाकर मृगावती, अंगारवती, तथा प्रद्योतनकी आठों रानियोंने प्रभुके पास दीक्षा अंगीकार की।

जब अविधिसे ऐसा अनर्थ होता है तब फिर वैसा करनेसे न करना ही अच्छा है; ऐसी धारना न करना; क्योंकि शास्त्रमे कहा है --

अविहिकय वरमकयं। अस्सुय वयणं मणन्ति समयन्नु।
पायच्छित्तं अकए गरुअं। वितहं कए लहु यं ॥ १ ॥

अविधिसे करना इससे न करना ठीक है ऐसा बोलने वालेको जैन शास्त्रका अभिप्राय मालूम नहीं; इसीसे वह ऐसा बोलता है। क्योंकि, प्रायश्चित्त विधानमें ऐसा है कि, जिसने बिलकुल नहीं किया उसे बड़ा भारी प्रायश्चित्त आता है। और जिसने किया तो सही परन्तु अविधिसे किया है उसे अल्प प्रायश्चित्त आता है, इसलिए सर्वथा न करनेकी अपेक्षा अविधिसे करना भी कुछ अच्छा है। अतः धर्मानुष्ठान प्रतिदिन करते

ही रहना चाहिये, और करते समय विधि पूर्वक करनेका उद्यम करते रहना यह श्रेयस्कर है। यही श्रद्धालुका लक्षण है शास्त्रमें भी कहा है कि:—

विहिसारं चिअ सेवई। सद्धालु सत्तिमं अणुट्ठाणं।
दव्वाई दोस निहओ। विपक्खवायं वहइ तंमि ॥ १ ॥

श्रद्धालु श्रावक यथाशक्ति विधिमार्गको सेवन करनेके उद्यमसे अनुष्ठान करता रहे अन्यथा किसी द्रव्यादिक दोषसे धर्मक्रियामें शत्रुभाव पाता है (श्रद्धा उठ जाती है)

धन्नाणं विहिजोगो। विहिपक्खाराहगा सया धन्ना ॥
विहि बहुमाणी धन्ना। विहि पक्खा अदुसगा धन्ना ॥२॥

जिसकी क्रिया विधियुक्त हो उसे धन्य है, विधिसंयुक्त करनेकी भावना रखता हो उसे धन्य है, विधि मार्ग पर आदर बहुमान रखने वालेको धन्य है, विधिमार्गकी निन्दा न करें ऐसे पुरुषोंको भी धन्य है।

आसन्न सिद्धिआणं। विहि परिणामोउहोइ सयकालं॥
विहिचाओ विहिभत्ती। अभव्व जीवाण दुर भव्वाणं ॥ ३ ॥

थोड़े भवमें सिद्धिपद पानेवालेको सदैव विधिसहित करनेका परिणाम होता है, और अभव्य तथा दुर्भव्य को विधिमार्गका त्याग और अविधि मार्गका सेवन बहुत ही प्रिय होता है।

खेतीवाड़ी, व्यापार, नौकरी, भोजन, शयन, उपवेशन, गमन, आगमन, वचन वगैरह भी द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव, आदिसे विचार करके विधिपूर्वक सेवन करे तो संपूर्ण फलदायक होता है और यदि विधि उल्लंघन करके धर्मानुष्ठान करे तो किसी वक्त अनर्थकारी और किसी दफा अल्प लाभकारी होता है।

"अविधिसे होनेवाले अल्प लाभ पर दृष्टान्त"

सुना जाता है कि कोई द्रव्यार्थी दो पुरुष देशान्तरमें जाकर किसी एक सिद्ध पुरुषकी सेवा करते थे। उनकी सेवासे तुष्टमान हो सिद्ध पुरुषने उन्हें देवाधिष्ठित महिमावंत तुम्बेके बीज देकर उसकी आम्नाय बतलाई कि, सौ दफा हल चलाये हुए खेतमें मंडपकी छाया करके अमुक नक्षत्र वारके योगसे इन्हें बोना। जब इनकी बेल उत्पन्न हो तब प्रथमसे फलके बीज ले संग्रह कर रखना और फिर पत्र, पुष्प, फल, डंठल सहित उस बेलको खेतमें ही रखकर नीचे कुछ ऐसा संस्कार करना कि जिससे ऊसपर पड़ी हुई राख व्यर्थ न जाय फिर उस सूकी हुई बेलको जलादेना। उसकी जो राख हो वह सिद्ध भस्म गिनी जाती है। चौंसठ तोले ताम्र गालकर उसमें एक रत्ति सिद्धभस्म डालना उससे, तत्काल ही वह सुवर्ण बन जायगा। इस प्रकार दोनोंको सिखलाकर बिदा किया। वे दोनों अपने अपने घर चले गये। उन दोनोंमेसे एकने यथाविधि करनेसे सिद्ध पुरुषके कथनानुसार सुवर्ण प्राप्त किया और दूसरेने उसकी विधिमें कुछ भूल की जिससे उसे सुवर्णके बदले चांदी प्राप्त हुई परन्तु सुवर्ण न बना। इसलिए जो २ कार्य हैं वे सब यथाविधि होने पर ही संपूर्ण फलदायक निकलते हैं।

हरएक धर्मानुष्ठान अपनी शक्तिके अनुसार यथा विधिकरके अन्तमें भूलसे हुई अविधि आशातनाका दोष निवारणार्थ 'मिच्छामि दुक्कड' देना चाहिए जिससे उसका विशेष दोष नहीं लगता।

"तीन प्रकारकी पूजाका फल"

विग्घो वसामिगेगा। अभ्भुदय पसाहणी भवे बीआ॥
निव्वई करणी तइया। फलाओ जहथ्थ नामेहिं॥ १॥

पहली अंगपूजा, विघ्नोपशामिनी—विघ्न दूर करने वाली, दूसरी अग्रपूजा अभ्युदय देनेवाली और तीसरी भावपूजा–निवृत्तिकारिणी—मोक्षपद देने वाली, इस प्रकार अनुक्रमसे तीनो पूजाका फल यथार्थ समझना चाहिये।

यहांपर पहले कहे गये हैं कि,—अंगपूजा, अग्रपूजा, मन्दिर बनवाना, बिम्ब भरवाना, संघयात्रा, आदि करना, यह समस्त द्रव्य-स्तव है। इसके बारेमें शास्त्रमें लिखा है कि,—

जिणभवणबिम्बठावण। जत्ता पूआई सुत्तओ विहिणा॥
दव्वथ्थ ओत्तिनेयं। भावथ्थय कारणत्तेण॥ १॥

सूत्रमें बतलाई हुई विधिके अनुसार मन्दिर बनवाना, जिनबिम्ब भरवाना, प्रतिष्ठा स्थापना कराना, तीर्थ यात्रा करना, पूजा करना, यह सब द्रव्य स्तव जानना, क्योंकि ये सब भावस्तवके कारण हैं, इसीलिए द्रव्य-स्तव गिना जाता है।

णिच्चं चिअ संपुन्ना। जइविहु एसा न तीरए काउं॥
तहवि अणु चिट्ठि अव्वा। अक्खय दीवाई दाणेण॥ २॥

यदि प्रतिदिन संपूर्ण पूजा न की जा सके तथापि उस २ दिन अक्षत पूजा, दीप पूजा, करके भी पूजाका आचरण करना।

एगंपि उदग बिन्दुए। जहपक्खित्तं महासमुद्दंम्मि॥
जायई अक्खयमेवं। पूआविहु वीयरागेसु॥ ३॥

यदि महासमुद्रमें पानीका एक बिन्दु डाला हो तो वह अक्षयतया रहता है वैसे ही वीतराग की पूजा भी यदि भावसे थोड़ी ही की हो तथापि लाभकारी होती है।

एएणं बीएणं दुःखाई अयाविऊण भवगहणे॥
अच्चन्तदारभोए। भोत्तुं सिज्झन्ति सव्व जीआ॥ ४॥

इस जिन पूजाके कारणसे संसाररूप अटवीमें दुःखादिक भोगे बिना ही अत्यन्त स्त्री-भोग भोगकर सः जीव सिद्धिको पाते हैं।

पूजाए मणसन्ती। मणसन्तीए अ उत्तमं झ्झाणं॥
सुह झाणेणयमुक्खो। मुक्खे मुक्खं निराबाहं॥ ५॥

पूजा करनेसे मन शांत होता है, मन शांत होनेसे उत्तम ध्यान होता है और उत्तम ध्यानसे मोक्ष मिलता है, तथा मोक्षमें निर्बाधित सुख है।

पुष्पाद्यर्चा तदाज्ञा च । तद्द्रव्य परिरक्षणं ॥
उत्सवा तीर्थयात्रा च । भक्तिः पंचविधा जिने ॥ ६ ॥

पुष्पादिकसे पूजा करना, तीर्थंकरकी आज्ञा पालना, देव द्रव्यका रक्षण करना, उत्सव करना, तीर्थ यात्रा करना, ऐसे पांच प्रकारसे तीर्थंकरकी भक्ति होती है।

"द्रव्यस्तवके दो भेद"

(१) आभोग—जिसके गुण जाने हुये हों वह आभोग द्रव्य स्तव, अनाभोग जिसके गुण परिचित न हों तथापि उस कार्यको किया करना, उसे अनाभोग द्रव्यस्तव कहते हैं। इस तरह शास्त्रोंमें द्रव्य स्तवके भेद कहे हैं तदर्थ कहा है कि,—

देवगुण परिन्नाणी । तब्भावाणुगयमुत्तमं विहिणा ॥
आयारसार जिणपूअणेण आभोग दव्वथओ ॥ १ ॥
इत्तोचरित्त लाभो । होइ लहूसयल कम्म निद्दलणो ।
एत्त एथ्य सम्ममेवहि, पयदियव्वं सुदिठ्ठीहि ॥ २ ।

वीतरागके गुण जानकर उन गुणोंके योग्य उत्तम विधिसे जो उनकी पूजा की जाती है वह आभोग द्रव्य स्तव गिना जाता है। इस आभोग द्रव्यस्तवसे सकल कर्मोंका निर्दलन करने वाले चारित्रकी प्राप्ति होती है। इसलिये आभोग द्रव्य स्तव करनेमें सम्यक्दृष्टि जीवोंको भली प्रकार उद्यम करना चाहिये।

पूआ विहिविरहाओ । अन्नाणाओ जिणगयगुणाणं ॥
सुहपरिणाम कयत्ता । एसोणा भोग दव्वथवो ॥ ३ ॥
गुणठाण ठाणगत्ता । एसो एवं प गुणकरो चेव ॥
सुहसुहयरभाव । विसुद्धिहेउओ बोहिलाभाओ ॥ ४ ॥
असुहक्खयएणधाणिअं । धन्नाणं आगमेसि भद्दाणं ॥
असुणिय गुणे विनूणं विसए पीइ समुच्छलई ॥ ५ ॥

जो पूजाका विधि नहीं जानता और शुभ परिणामको उत्पन्न करने वाले जिनेश्वर देवमें रहे हुये गुण के समुदायको भी नहीं जानता ऐसा मनुष्य जो देखा देखी जिन पूजा करता है उसे अनाभोग द्रव्यस्तव कहते हैं। यद्यपि अनाभोग द्रव्यस्तव मिथ्यात्वका स्थानक रूप है तथापि शुभ शुभतर परिणाम की निर्मलता का हेतु होनेसे किसी वक्त बोधि लाभकी प्राप्तिका कारण होता है। अशुभ कर्मका क्षय होनेसे आगामी भवमें मोक्ष पाने वाले कितनेक भव्य जीवोंको वीतरागके गुण मालूम नहीं तथापि किसी तोतेके युग्मको जिन बिम्ब पर प्रेम उत्पन्न हुवा वैसे गुणपर प्रेम उपजता है।

होइ पओसो विसए। गुरुकम्माणं भवाभिनंदीण ॥
पथ्थंमि आउरा एव। उवठिएनिच्छिए मरणे ॥६॥
एत्तोच्चिय तत्तन्नु। जिणविम्वे जिणंद धम्मे वा ॥
असुहब्भास भयाओ। पओस लेसंपि वज्जन्ति ॥७॥

जिस प्रकार मरणासन्न रोगीको पथ्य भोजन पर द्वेष उत्पन्न होता है वैसे ही भारी कर्मी या भवाभि- नन्दी जीवोंको धर्मपर भी अति द्वेष होता है। इसी लिए सत्यतत्व को जानने वाले पुरुष जिनबिम्ब पर या जिन प्रणीत धर्म पर अनादि कालके अशुभ अभ्यासके भयसे द्वेषका लेस भी नहीं रखते।

"धर्म पर द्वेष रखनेके सम्बन्धमें कुन्तला रानीका दृष्टान्त"

पृथ्वीपुर नगरमें जितशत्रु राजा राज्य करता था। उसे कुन्तला नामा पटरानी थी। वह अत्यन्त धर्मिष्ठा थी, तथा दूसरी रानियोंको भी वारम्वार धर्मकार्यमे नियोजित किया करती थी। उसके उपदेशसे उसकी तमाम सौतें भी धर्मिष्ठा होकर उसे अपने पर उपकार करनेके कारण तथा राजाकी बहु माननीया और सबमें अग्रिणी होनेसे अपनी गुरु नीके समान सन्मान देती थीं।

एक समय रानियोंने अपने २ नामसे मन्दिर प्रतिमायें बनवाकर उनकी प्रतिष्ठाका महोत्सव शुरू किया। उसमें प्रतिदिन, गीत, गायन, प्रभावना, स्वामि-वात्सल्य, अधिकाधिकता से होने लगे। यह देख कुन्तला पटरानी सौत स्वभावसे अपने मनमें बड़ी ईर्षा करने लगी। उसने भी सबसे अधिक रचना वाला एक नवीन मन्दिर बनवाया था। इसलिये वह भी उन सबसे अधिक ठाठमाठसे महोत्सव कराती है, परन्तु जब कोई उन दूसरी सौतोंके मन्दिर या प्रतिमाओंकी बहु मान या प्रशंसा करता है तब वह हृदयमें बहुत ही जलती है। जब कोई उसके मन्दिरकी प्रशंसा करता है तब सुनकर बड़ी हर्षित होती है। परन्तु जब कोई सौतोंके मन्दिर- को या उनके किये महोत्सवकी प्रशंसा करता है तब ईर्षासे मानो उसके प्राण निकलते हैं। अहा! मत्सरकी कैसी दुरंतता है! ऐसे धर्म द्वेषका पार पाना अति दुष्कर है। इसीलिए पूर्वाचार्योंने कहा है कि:—

पोता अपि निमज्जन्ति। मत्सरे मकराकरे।
तत्तत्र मज्जनन्येषां। दृषदा मिव किं नवं ॥१॥
विद्यावाणिज्यविज्ञान। वृद्धि ऋद्धि गुणादिषु ॥
जातौ ख्यातौ च ओनत्या। धिक्धिक् धर्मेपि मत्सरः ॥२॥

मत्सररूप समुद्रमें जहाज भीं डूब जाता है तब फिर उसमें दूसरा पाषाण जैसा डूबे तो आश्चर्य ही क्या? विद्यामें, व्यापारमें, विशेष ज्ञानकी वृद्धिमें, संपदामे, रूपादिक गुणोंमें, जातिमें, प्रख्यातिमें, उन्नतिमें, बड़ाईमें, इत्यादिमें लोगोंको मत्सर होता है। परन्तु धिक्कार है जो धर्मके कार्यमे भी ईर्षा करता है।

दूसरी रानियां तो बिचारी सरल स्वभाव होनेसे पटरानीके कृत्यकी बारंवार अनुमोदना करती हैं, परन्तु पटरानीके मनसे ईर्षाभाव नहीं जाता। इस तरह ईर्षा करते हुए किसी समय ऐसा दुर्निवार कोई रोग उत्पन्न हुवा कि जिससे वह सर्वथा जीनेकी आशासे निराश होगई। अन्तमें राजाने भी जो उस पर कीमती सार आभूषण

थे वे सब ले लिए, इससे सौतों परके द्वेष भावसे अत्यन्त दुर्ध्यानमें मृत्यु पाकर सौतोंके मन्दिर, प्रतिमा, महोत्सव, गीतादिक के मत्सर करनेसे अपने बनवाये हुये मन्दिरके दरवाजेके सामने कुत्तीपने उत्पन्न हुई। अब वह पूर्वके अभ्याससे मन्दिरके दरवाजेके आगे बैठी रहती है। उसे मन्दिरके नोकर मारते पीटते हैं तथापि वह वहांसे अन्यत्र नहीं जाती। फिर फिराकर वहीं आबैठती है। इसप्रकार कितना एक काल बीतने पर वहीं पर कोई केवलज्ञानी पधारे, उन्हें उन रानियोंने मिलकर पूछा कि महाराज! कुन्तला महारानी मरकर कहां उत्पन्न हुई है? तब केवली महाराजने यथावस्थित स्वरूप कह सुनाया। वह वृत्तान्त सुनकर सर्व रानियां परम वैराग्य पाकर उस कुत्तीको प्रति दिन खानेको देती हैं, और परम स्नेहसे कहने लगीं कि "हे महाभाग्या! तू पूर्व भवमें हमारी धर्मदात्री महा धर्मात्मा थी। हा! हा! तूने व्यर्थ ही हमारी धर्म करणी पर द्वेष किया कि जिससे तू यहां पर कुत्ती उत्पन्न हुई है। यह सुनकर चैत्यादिक देखनेसे उसे जातिस्मरण ज्ञान हुवा; इससे वह कुत्ती वैराग्य पाकर सिद्धादिकके समक्ष स्वयं अपने द्वेष भावजन्य कर्मको क्षमाकर आलोचित कर अनशन करके अन्तमें शुभध्यानसे मृत्यु पा वैमानिक देवी हुई। इसलिये धर्म पर द्वेष न करना चाहिये।

"भावस्तवका अधिकार"

यहाँ पूजाके अधिकारमें भावपूजा—जिनाज्ञा पालन करना यह भावस्तवमें गिना जाता है। जिनाज्ञा दो प्रकार की है। (१) स्वीकार रूप, (२) परिहार रूप। स्वीकार रूप याने शुभकर्णिका आसेवन करना और परिहार रूप याने निषेधका त्याग करना। स्वीकार पक्षकी अपेक्षा निषिद्ध पक्ष विशेष लाभकारी है। क्योंकि जो तीर्थंकरों द्वारा निषेध किये हुए कारण हैं उन्हें आचरण करते बहुतसे सुकृतका आचरण करने पर भी विशेष लाभकारी नहीं होता। जैसे कि, व्याधि दूर करनेके उपाय स्वीकार और परिहार ये दो प्रकारके हैं याने कितने एक औषधादिके स्वीकारसे और कितने एक कुपथ्यके परिहार-त्यागसे रोग नष्ट होता है। उसमें भी यदि औषध करते हुए भी कुपथ्यका त्याग न किया जाय तो रोग दूर नहीं होता; वैसे ही चाहे जितनी शुभ करनी करे परन्तु जबतक त्यागने योग्य करणीको न त्यागे तबतक जैसा चाहिये वैसा लाभकारक फल नहीं मिलता।

औषधेन विना व्याधिः। पथ्यादेव निवर्तते॥
न तु पथ्यविहीनस्य। औषधानां शतैरपि॥ १॥

विना औषध भी मात्र कुपथ्यका त्याग करनेसे व्याधि दूर हो सकता है। परन्तु पथ्यका त्याग किये विना सैकड़ों औषधियोंका सेवन करने पर भी रोगकी शांति नहीं होती। इसी तरह चाहे जितनी भक्ति करे परन्तु कुशील आसातना आदि न तजे तो विशेष लाभ नहीं मिल सकता। निषेधका त्याग करे तो भी लाभ मिल सकता है याने भक्ति न करता हो, परन्तु कुशीलत्व, आसातना, वगैरह सेवन न करता हो तथापि लाभकारी हैं और यदि सेवा भक्ति करे और आसातना, कुशीलत्व आदिका भी त्याग करे तो महा लाभकारी समझना। इसलिए श्री हेमचन्द्राचार्य ने भी कहा है कि,:—

वीतराग सपर्यात। स्तवाज्ञा पालनं परं॥

आज्ञाराधाद्विराधाच । शिवाय च भवाय च ॥ १ ॥
आकालमियमाज्ञाते । हेयोपादेयगोचराः ॥
आस्रवः सर्वथा हेय । उपादेयश्च संवरः ॥ १ ॥

हे वीतराग ! आपकी पूजा करनेसे भी आपकी आज्ञा पालना महा लाभकारी है। क्योंकि आपकी आज्ञा पालना और विराधना करना इन दोनोंमेसे एक मोक्ष और दूसरी संसारके लिए है। आपकी आज्ञा सदैव हेय और उपादेय है (त्यागने योग्य और ग्रहण करने योग्य) उसमें आस्रव सर्वथा त्यागने लायक और संवर सदा ग्रहण करने लायक है।

"शास्त्रकारोंने बतलाया हुआ द्रव्य और भाव स्तवका फल"

उक्कोसं दव्व थयं । आराहिअ जाई अच्चुंजाव ॥
भावथ्थएण पावई ॥ अंतमुहुत्तेण निव्वाणं ॥ १ ॥

उत्कृष्ट द्रव्य स्तवकी आराधना करने वाला ज्यादहसे ज्यादह ऊंचे बारहवें देवलोकमें जाता है और भावस्तवसे तो कोई प्राणी अंतर्मुहूर्तमें भी निर्वाण पदको पाता है।

यद्यपि द्रव्यस्तव मे षट्कायके उपमर्दनरूप विराधन देख पड़ता है तथापि कूपकके दृष्टान्तसे वह करना उचित ही है। क्योंकि उसमें अलाभकी अपेक्षा लाभ अधिक है (द्रव्यस्तवना करनेवालेको अगण्य पुण्यानुबन्धी पुण्यका बन्ध होता है, इसलिये आस्रव गिनने लायक नहीं)। जैसे किसी नवीन बसे हुये गांवमें स्नान पानके लिये लोगोंको कूवा खोदते हुये प्यास, थाक, अंग मलिन होना, इत्यादि होता है, परन्तु कूवेमें से पानी निकले बाद फिर उन्हे या दूसरे लोगोंको वह कूपक स्नान, पान, अंग, सुचि, प्यास, थाक, अंगकी मलिनता वगैरह उपशमित कर सदाकाल अनेक प्रकारके सुखका देनेवाला होता है, वैसे ही द्रव्यस्तव से भी समझना। आवश्यक निर्युक्तिमे भी कहा है कि, संपूर्ण मार्ग सेवन नहीं कर सकनेवाले श्रावकोंको विरताविरति या देशविरतिको द्रव्यस्तव करना उचित है, क्योंकि संसारको पतला करनेके लिये द्रव्यस्तव के विषयमे कूवेका दृष्टान्त काफी है। दूसरी जगह भी लिखा है कि, 'आरम्भमें आसक्त छह कायके जीवोंके वधका त्याग न कर सकनेवाले संसार रूप अटवीमें पड़े हुये गृहस्थोंको द्रव्यस्तव ही आधार है; (छह कायाके वध किये बिना उससे धर्म करनी साधी नहीं जा सकती)

स्थेयो वायुचलेन निर्वृत्तिकरं निर्वाणनिर्घातिना ।
स्वायत्तं बहुनायकेन सुबहु स्वल्पेन सारं परं ॥
निस्सारेण धनेन पुण्यममलं कृत्वा जिनाभ्यर्चनं ।
यो गृह्णाति विणिक् स एव निपुणो वाणिज्यकमण्यलं ॥

वायुके समान चपल मोक्षपदका घात करनेवाले और बहुत से स्वामीवाले निःसार स्वल्प धनसे जिने-

श्वर भगवानकी पूजा करके जो बनिया सारमें सार मोक्षपदको देनेवाले निर्मल पुण्यको ग्रहण करता है वही सच्चा बनियां व्यापारके काममें निपुण गिना जाता है ।

यास्याम्यायतनं जिनस्य लभते ध्यायंश्चतुर्थं फलं ॥
षष्ठं चोत्थित उद्यतोऽष्टममथो गंतुं प्रवृत्तोऽध्वनि ॥
श्रद्धालुर्दशमं बहिर्जिनगृहात्प्राप्तस्ततो द्वादशं ॥
मध्ये पाक्षिक मीक्षिते जिनपतौ मासोपवासं फलं ॥ १ ॥

उपरोक्त गाथाका अर्थ पहले आ चुका है इसलिये पिष्टपेषणके समान यहां पर नहीं लिखा गया।

पद्मप्रभचरित्र में भी यही बात लिखी है। उसमें विशेषता इतनी ही है कि, जिनेश्वरदेवके मन्दिरमें जानेसे छह मासके उपवासका फल, गभारेके दरवाजे आगे खड़ा रहनेसे एक वर्षके उपवासका फल, प्रदक्षिणा करते हुए सौ वर्षके उपवासका फल और तदनन्तर भगवानकी पूजा करनेसे एक हजार वर्षके उपवासका फल, एवं स्तवन कहनेसे अनन्त उपवासका फल मिलता है ऐसा बतलाया है।

दूसरे भी शास्त्रमें कहा है कि, प्रभुका निर्माल्य उतार कर प्रमार्जना करते हुए सौ उपवासका, चन्दनादिसे विलेपन करते हुए हजार उपवासका और माला आरोपण करनेसे दस हजार उपवासका फल मिलता है।

जिनेश्वरदेवकी पूजा त्रिसंध्य करना कहा है। प्रातःकालमें जिनेश्वरदेवकी वासक्षेप पूजा, रात्रिमें किये हुये दोषोंको दूर करती है। मध्याह्नकालमें चंदनादिक से की हुई पूजा आजन्मसे किये हुए पापोंको दूर करती है, संध्या समय धूप दीपकादि पूजा सात जन्मके दोषोंको नष्ट करती है। जलपान, आहार, औषध, शयन, विद्या, मलमूत्रका त्याग, खेती बाड़ी वगैरह ये सब कालानुसार सेवन किए हों तो ही सत्फलके देनेवाले होते हैं, वैसे ही जिनेश्वर भगवान की पूजा भी उचित कालमें की हो तो सत्फल देती है।

जिनेश्वरदेवकी त्रिसंध्य पूजा करता हुवा मनुष्य सम्यक्त्व को सुशोभित करता है, एवं श्रेणिक राजा के समान तीर्थंकर नाम, गोत्र, कर्म बांधता है। गत दोष जिनेश्वरकी सदैव त्रिकाल पूजा करनेवाला तीसरे भव या सातवें भवमें अथवा आठवें भवमें सिद्धिपदको पाता है। यदि सर्वादरसे पूजा करनेके लिये कदाचित् देवेन्द्र भी प्रवृत्त हो तथापि पूज नहीं सकता; क्योंकि तीर्थंकरके अनन्त गुण हैं। यदि एकेक गुणको जुदा २ गिनकर पूजा करे तो आजन्म भी पूजाका या गुणोंका अन्त नहीं आ सकता, इसलिये कोई भी सर्व प्रकारसे पूजा करनेके लिये समर्थ नहीं। परन्तु सब मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार पूजा कर सकते हैं। हे प्रभु! आप, अदृश्य हो! इसलिये आंखोंसे देख नहीं पड़ते, आपकी सर्व प्रकारसे पूजा करनी चाहिए; परन्तु वह नहीं बन सकती, तब फिर अत्यन्त बहुमानसे आपके वचनको परिपालन करना यही श्रेयकारी है।

"पूजामें विधि बहुमान पर चौभंगी"

जिनेश्वरदेव की पूजामें यथायोग्य बहुमान और सम्यक् विधि ये दोनों हों, तब ही वह पूजा महा लाभकारी होती है। तिस पर चौभंगी बतलाते हैं।

(१) सच्ची चांदी और सच्चा सिक्का, (२) सच्ची चांदी और असत्य सिक्का, (३) सच्चा सिक्का परन्तु खोटी चांदी, (४) खोटा सिक्का और चांदी भी खोटी।

(१) देवपूजामें भी सच्चा बहुमान और सच्चा विधि यह पहला भंग समझना।

(२) सच्चा बहुमान है परन्तु विधि सच्चा नहीं है यह दूसरा भंग समझना।

(३) सच्चा विधि है परन्तु सम्यक् बहुमान नहीं—आदर नहीं है, यह तीसरा भंग समझना।

(४) सच्चा विधि भी नहीं और सम्यक् बहुमान भी नहीं, यह चौथा भंग समझना।

ऊपर लिखे हुये भंगोंमेंसे प्रथम और द्वितीय यथानुक्रम लाभकारी हैं। और तीसरा एवं चौथा भंग बिलकुल सेवन करने लायक नहीं।

इसी कारण बृहद् भाष्यमें कहा है कि, वन्दनके अधिकारमें (भाव पूजामे) चांदीके समान मनसे बहुमान समझना, और सिक्केके समान बाहरकी तमाम क्रियायें समझना। बहुमान और क्रिया इन दोनोंका संयोग मिलनेसे वन्दना सत्य समझना। जैसे चांदी और सिक्का सत्य हो तब ही वह रुपया बराबर चलता है, वैसे ही वन्दना भी बहुमान और क्रिया इन दोनोंके होनेसे सत्य समझना। दूसरे भंग समान वन्दना प्रमादिकी क्रिया उसमें बहुमान अत्यन्त हो परन्तु क्रिया शुद्ध नहीं तथापि वह मानने योग्य है। क्योंकि बहुमान ही कभी न कभी शुद्ध क्रिया करा सकता है। यह दूसरे भंग समान समझना। कोई किसी वस्तुके लाभके निमित्तसे क्रिया अखण्ड करता है परन्तु अन्तरंग बहुमान नहीं, इससे तीसरे भंगकी वन्दना किसी कामकी नहीं। क्योंकि भाव रहित केवल क्रिया किस कामकी? वह तो मात्र लोगोंको दिखलाने रूप ही गिनी जाती है, इसलिये उस नाम मात्रकी क्रियासे आत्माको कुछ भी लाभ नहीं होता। चौथा भंग भी किसी कामका नहीं है, क्योंकि अन्तरंग बहुमान भी नहीं और क्रिया भी शुद्ध नहीं। इस चौथे भंगको तत्वसे विचारें तो यह वन्दना ही न गिनी जाय। देशकालके अनुसार थोड़ा या घना विधि और बहुमान संयुक्त भावस्तव करना तथा जिनशासन में १ प्रीति अनुष्ठान, २ भक्ति अनुष्ठान, ३ वचन अनुष्ठान, ४ असंग अनुष्ठान, ऐसे चार प्रकारके अनुष्ठान कहे हैं। भद्रक प्रकृति-स्वभाव वाले जीवको जो कुछ कार्य करते हुये प्रीतिका आस्वाद उत्पन्न होता है, बालकादि को जैसे रत्न पर प्रीति उत्पन्न होती है वैसे ही प्रीति अनुष्ठान समझना। शुद्ध विवेकवान् भव्य प्राणिको क्रिया पर अधिक बहुमान होनेसे भक्ति सहित जो प्रीति उत्पन्न होती है उसे भक्ति अनुष्ठान कहा है। दोनोंमें (प्रीति और भक्ति अनुष्ठानमें) परिपालना-लेने देनेकी क्रिया सरीखी ही हैं, परन्तु जैसे स्त्रीमें प्रीति-राग और मातामें भक्तिराग ऐसे दोनोंमें भिन्न २ प्रकारका अनुराग होता है वैसे ही प्रीति और भक्ति अनुष्ठान में भी उतना ही भेद समझना। सूत्रमें कहे हुये विधिके अनुसार ही जिनेश्वर देवके गुणोंको जाने तथा प्रशंसा करे, चैत्यवन्दन, देववन्दन, आदि सब सूत्रमें कही रीति मुजब करे, उसे वचनानुष्ठान कहते हैं। परन्तु यह वचनानुष्ठान प्रायः चारित्रवान को ही होता है। सूत्र सिद्धान्त को स्मरण किये बिना भी मात्र अभ्यास की एक तल्लीनता से फलकी इच्छा न रखकर जो क्रिया हुवा करती है, जिन कल्पी या वीतराग संयमीके समान, निपुण बुद्धि वालोंका वह वचनानुष्ठान समझना चाहिये। जो कुम्भकार के चक्रका भ्रमण है,

उसमें प्रथम दण्डकी प्रेरणा होती है, उसे वचनानुष्ठान समझना; और दण्डकी प्रेरणा हुये बाद तुरन्त ही चक्रमेंसे दण्ड निकाल लेनेपर जो चक्र भ्रमण किया करता है उसमें अब कुछ दण्डका प्रयोग नहीं है, उसे असंगानुष्ठान कहते हैं। ऐसे किसी भी वस्तुकी प्रेरणासे जो क्रिया की जाती है उसे वचनानुष्ठान में गिनते हैं और पूर्व प्रयोगके सम्बन्धसे बिना प्रयोग भी जो अन्तरभाव रूप क्रिया हुवा करती है उसे असंगानुष्ठान समझना। इस प्रकार ये दो अनुष्ठान पूर्वोक्त दृष्टान्तसे भिन्न २ समझ लेना। बालकके समान प्रथमसे प्रीति भाव आनेसे प्रथम प्रीतिअनुष्ठान होता है, फिर भक्तिअनुष्ठान, फिर वचनानुष्ठान, और बादमें असंगानुष्ठान होता है। ऐसे एक २ से अधिक गुणकी प्राप्ति होनेसे अनुष्ठान भी क्रमसे होते हैं। इसलिए चार प्रकारके अनुष्ठान पहले रुपयेके समान समझना। विधि और बहुमान इन दोनोंके संयोगसे अनुष्ठान भी समझना चाहिये इसलिए मुनि महाराजोंने यह अनुष्ठान परम पद देनेका कारण बतलाया है। दूसरे भंगके रुपयेके समान (सच्ची चांदी परन्तु खोटा सिक्का) अनुष्ठान भी सत्य है, इसलिए पूर्वाचार्योंने उसे सर्वथा दुष्ट नहीं गिनाया। ज्ञानवन्त पुरुषोंकी क्रिया यद्यपि अतिचारसे मलिन हो तथापि वह शुद्धताका कारण है। जैसे कि रत्न पर मैला चढा हो परन्तु यदि वह अन्दरसे शुद्ध है तो बाहरका मैल सुखसे दूर किया जा सकता है। तीसरे भंग सरीखी क्रिया (सिक्का सच्चा परन्तु चांदी खोटी) माया, मृषादिक दोषसे बनी हुई है। जैसे कि, भोले लोगोंको ठगनेके लिए किसी धूर्तने साहुकार का वेष पहनकर वंचना जाल बिछाई हो, उसकी क्रिया बाहरसे दिखाव में बहुत ही आश्चर्य कारक होती है, परन्तु मनमें अध्यवसाय अशुद्ध होनेसे कदापि इस लोकमें मान, यश, कीर्ति, धन, वगैरहका उसे लाभ हो सकता है परन्तु वह परलोकमें दुर्गतिको ही प्राप्त होता है, इसलिये यह क्रिया बाहरी दिखाव रूप ही होनेसे ग्रहण करने योग्य नहीं है। चौथे भंग जैसी क्रिया (जिसमें चांदी और सिक्का दोनों खोटे हों) प्रायः अज्ञानपन से, अश्रद्धापन से, कर्मके भारीपन से, चोठानिया रससे कुछ भी ओछा न होनेके कारण भवाभिनन्दी जीवोंको ही होती है। यह क्रिया सर्वथा अग्राह्य है। शुद्ध और अशुद्ध दोनोंसे रहित क्रिया आराधना विराधना दोनोंसे शून्य है, परन्तु धर्मके अभ्यास करनेसे किसी वक्त शुभ निमित्ततया होती है। जैसे कि किसी श्रावकका पुत्र बहुत दफा जिनबिम्ब के दर्शन करनेके गुणसे यद्यपि भवमें उसने कुछ सुकृत न किया था तथापि मरण पाकर मत्स्यके भवमें समकित को प्राप्त किया।

ऊपर बतलाई हुई रीति मुजब एकाग्र चित्तसे बहुमान पूर्वक और विधि सहित देवकी पूजा की जाय तो यथोक्त फलकी प्राप्ति होती है, इसलिये उपरोक्त कारणमें जरूर उद्यम करना। इस विषय पर धर्मदत्त राजाकी कथा बतलाते हैं।

"विधि और बहुमानपर धर्मदत्त नृप कथा"

दैदीप्यमान सुवर्ण और चांदीके मन्दिर जिस नगरमे विद्यमान हैं उस राजपुर नामक नगरमें प्रजाको आनन्द देनेवाला चन्द्रमाके समान राज्यन्धर नामक राजा राज्य करता था। उस राजाको देवांगनाके समान रूपवाली पाणिग्रहण की हुई प्रीतिमती आदि पांचसौ रानियां थीं, राजाकी प्रीतिमती रानी पर अति प्रीति होनेसे प्रीतिमती का नाम सार्थक हुवा था परन्तु वह संतति रहित थी। दूसरी रानियोंको एक २ पुत्ररत्न की

प्राप्ति हुई थी। सबकी गोद भरी हुई देखकर और स्वयं वंध्या समान होनेसे प्रीतिमतीके हृदयमें दुःसह्य खेद हुवा करता है, क्योंकि एक तो वह सबमें बड़ी थी, और उसमें भी राजाकी सन्माननीया होते हुये भी वह अकेली ही पुत्र रहित थी; यद्यपि दैवाधीन विषयमें चिन्ता या दुःख करना व्यर्थ है तथापि अपने स्वभावके अनुसार वह रातदिन चिन्तित रहती है। अब वह पुत्र प्राप्तिके लिये अनेक उपाय करने लगी। बहुतसे देवताओंकी मिन्नतें कीं, बहुतसा औषधोपचार किया परन्तु ज्यों २ विशेष उपाय किये त्यो २ वे विशेष चिन्ताकी वृद्धिमें कारण हुये क्योंकि जिसकी जो इच्छा है उसे उस वस्तुकी प्राप्तिके चिन्ह तक न देख पड़नेसे तदर्थ किये हुए उपायकी योजना सार्थक नहीं गिनी जाती। अब वह सर्वथा निरुपाय बन गई इससे उसका चित्त किसीप्रकार भी प्रसन्न नही रहता, वह ज्यों त्यों मनको समझा कर शांतिप्राप्ति करनेका प्रयत्न करती है। एकदिन मध्यरात्रीके समय उसे स्वप्नमें देखनेमे आया कि अपनी चित्तकी प्रसन्नता के लिये उसने एक बड़ा सुन्दर हंसका बच्चा अपने हाथमे लिया। उसे देखकर खुशी हो जब वह कुछ बोलनेके लिए मुख विकसित करती है उस वक्त वह हन्स शिशु प्रगटतया मनुष्यके जैसी वाणीमे बोलने लगा कि,—

'हे कल्याणी तू ऐसी विचक्षणा होकर यह क्या करती है? मैं अपनी मर्जीसे यहा आया हूं। और अपनी इच्छासे फिरता हूं। जो प्राणी अपनी इच्छानुसार विचरनेवाला होता है उसे इस तरह अपने विनोदके लिये हाथमें उठा ले यह उसे मृत्यु समान दुखदायक होता है इसलिये तू मुझे हाथमें लेकर मत सता और छोड़ दे, क्योंकि एकतो तू वन्ध्यापन भोगती है और फिर जिससे नीचकर्म बंधे ऐसा काम करती है, मेरे जेसे पामर प्राणी को तूने पूर्वभवमें पुत्रादिकके वियोग दिये हुए हैं इसीसे तू ऐसा वध्यापन भोगती है अन्यथा तुझे पुत्र क्यों न हो? जब शुभकर्म करनेसे धर्म प्राप्त होता है और धर्मसे ही मनवांछित सिद्धि मिलती है तब वह तेरेमें नहीं मालूम देता, तब तू फिर कैसे पुत्रवती होगी?

उसके ऐसे वचन सुन कर भय और विस्मय को प्राप्त हुई रानी उसे तत्काल छोड कर कहने लगी कि,— हे विचक्षणशिरोमणि! तू यह क्या बोलता है? यद्यपि अयोग्यवचन बोलनेसे तू मेरा अपराधी है तथापि तुझे छोड़ कर मैं जो पूछना चाहती हूं तू उसका मुझे शीघ्र उत्तर दे। मैंने बहुत सी देविदेवताओ की पूजा की, बहुत सा दान दिया, बहुतसे शुभकर्म किये तथापि मुझे संसारमें सारभूत पुत्ररत्न की प्राप्ति क्यों न हुई? यदि उसका उत्तर पीछे देगा तो भी हरकत नहीं परन्तु इससे पहिले तू इतना तो जरूर ही बतला कि मैं पुत्रकी इच्छावाली और चितातुर हूं यह तुझे कैसे खबर पड़ी? तथा तू मनुष्यकी भाषासे कैसे बोल सकता है? हन्स—कहने लगा—"यदि मैं अपनी बात तुझे कहूं तो इससे तुझे क्या फायदा? परन्तु जो तेरे हितकारी बात है मैं वह तुझे कहता हूं तू सावधान होकर सुन!

प्राक्कृत कर्माधीना। धनतनय सुखादि संपदः सकलाः॥
विघ्नोपशमनिमित्तं। त्वत्रापिकृतं भवेत्सुकृतं॥ १॥

धन, पुत्र, सुख, इत्यादि संपदाकी प्राप्ति पूर्व भवमें किये हुए कर्मके आधीन है परन्तु अन्तराय उदय

हुवा हो तो उसे उपशमित करनेके लिये यदि इस लोकमें कुछ भी सुकृत करे तो उसे लाभ मिलता है।

तूने कितनी एक देवता आदिकी पूजा की वह सब व्यर्थ है। क्योंकि पुत्रकी प्राप्तिके लिये देवि देवता-की मानता करना यह मात्र अज्ञानीका काम है। इससे तो प्रत्युत मिथ्यात्व की प्राप्ति होती है। अतः यदि तुझे पुत्रकी इच्छा हो तो इसलोक और परलोक दोनों लोकमें वाँछित सुखके देनेवाले वीतराग प्रणीत धर्मका सेवन कर। यदि जिनप्रणीत धर्मका सेवन करनेसे तेरे अन्तराय कर्मका नाश न हुवा तो अन्य देवी देवताओं की मान्यतासे कैसे होगा? यदि सूर्यसे अन्धकारका नाश न हुवा तो फिर उसे दूर करनेके लिए अन्य कौन समर्थ हो सकेगा। इसलिये तू कुपथ्यके समान मिथ्यात्व को छोड़कर सुपथ्यके समान अर्हतप्रणीत धर्मका सेवन कर, कि, जिससे परलोकमें तो सुखकी प्राप्ति अवश्य ही हो और इस लोकमें भी मनोवांछित पायेगी। ऐसे कह कर वह सुफेद पांखवाला हंसशिशु तत्काल ही वहांसे उड़ गया। इस प्रकारका स्वप्न देख जागृत हो किंचित् स्मितमुखवाली रानी अत्यन्त आश्चर्य पाकर विचारने लगी कि, सचमुच उसके बतलाये हुये उपायसे मुझे अवश्य ही पुत्रकी प्राप्ति होगी। ऐसी आशा बधनेसे उसे धर्मपर आस्था जमी, क्योंकि कुछ भी सांसारिक कार्यकी वांछा होती है तब उस मनुष्यको प्रायः धर्मपर भी शीघ्र ही दृढता होती है। इससे वह उस दिनसे किसी सद्गुरुके चरणकमल सेवन कर श्रावकधर्मका आचार विचार सीखकर त्रिकाल जिनपूजन करने और समकित धारीपन में तो सचमुच ही सुलसा श्राविका के समान शोभने लगी। अनुक्रमसे वह रानी सच-मुच ही बड़े लाभको प्राप्त करनेवाली हुई।

एक दिन उस राज्यन्धर राजाके मनमें ऐसा विचार उत्पन्न हुवा कि, अभीतक पटरानीको पुत्र पैदा नहीं हुवा और अन्य सब रानियों को तो पुत्र पैदा होगया है। तब फ़िर इन बहुतसे पुत्रोंमें राज्यके योग्य कौन होगा। ऐसे विचारकी चिन्तामें राजा निन्द्रावश हो गया। मध्यरात्रिके समय स्वप्नमें उसे साक्षात् एक पुरुषको आये हुये देखा। वह पुरुष राजाको कहने लगा कि, हे राजन्! राज्यके योग्य पुत्रकी चिन्ता क्यों करता है! इस जगत्में चिन्तित फलके देनेवाले जैनधर्मका सेवन कर! कि, जिससे इस लोकमें तेरा मनोवांछित सिद्ध होगा, और परलोक में भी अत्यन्त सुखकी प्राप्ति होगी। यह स्वप्न देख जागृत होकर राजा जैनधर्म पर अत्यः हर्षसे आदरवान् हुवा, क्योंकि ऐसा उत्तम स्वप्न देखकर उसमें बतलाये हुए उपाय करनेके लिये ऐसा कौन मूर्ख है जो आलस्य करे। कुछ दिनों बाद प्रीतिमति रानीके उदररूप सरोवरमें हंसके समान आर्हत् स्वप्न देखनेसे कोई उत्तम जीव आकर उत्पन्न हुवा। गर्भके उदयसे रानीको ऐसे मनोरथ होने लगे कि, मणिमय जिनबिम्ब या मन्दिर कराकर उसमें प्रतिमा पधरा कर नाना प्रकारकी पूजा पढ़ाऊं। जैसा फल उत्पन्न होनेवाला होता है वैसा ही पुष्प होता है। रानीके मनोरथ सिद्ध करनेके लिये राजाने तैयारी शुरू की, क्योंकि देवताकी मनसे ही कार्य सिद्धि होती है; राजाकी वचनसे कार्यसिद्धि होती है, और धनवान् की धनसे कार्यसिद्धि होती है, एवं दूसरे साधारण मनुष्यों की शरीरसे कार्यसिद्ध होती है, अतः राजाने वचनसे वह काम करनेका हुकुम किया। राजाने प्रीतिमतिके अतिकठोर मनोरथ भी सहर्ष पूर्ण किये। जैसे मेरु पर्वत कल्पवृक्षको उत्पन्न करता है त्यों उस रानीने नवमास पूर्ण हुये बाद अत्यन्त महिमावन्त पुत्रको जन्म दिया। उसका जन्म होनेपर राजाने

उसका ऐसा जन्म महोत्सव किया कि जैसा अन्य किसी पुत्रके जन्मसमय न किया था। यह पुत्र धर्मके प्रभावसे प्राप्त हुवा होनेसे सगे सम्बन्धियोंने मिल कर उसका धर्मदत्त यह सार्थक नाम रक्खा। कितनेक दिन बीतने पर एक दिन अत्यन्त आनन्द सहित नवीन कराये हुवे मन्दिरमें उस पुत्ररत्नको दर्शन कराने के लिये समहोत्सव जाकर मानो प्रभुके सन्मुख भेंट ही न करती हो वैसे उसे नये २ प्रकारसे प्रणाम कराकर रानी अपनी सखियोंसे बोलने लगी कि, हे सखी! सचमुच ही आश्चर्यकारी और महाभाग्यशाली यह कोई मुझे उस हंस का ही उपकार हुवा है। उस हंसके वचनके आराधन से जैसे किसी निर्धन पुरुषको निधान मिलता है वैसे ही दुष्प्राप्य और उत्कृष्ट इस जिनधर्मप्रणीत धर्मरत्नकी और इस पुत्ररत्नकी मुझे प्राप्ति हुई है। इस प्रकार रानी जब हर्षित हो पूर्वोक्त वचन बोल रही थी तब तुरन्त ही अकस्मात् जैसे कोई रोगी पुरुष एकदम अवाचक हो जाता है वैसे ही वह पुत्र मूर्छा खाकर अवाचक होगया। उसके दुःखसे रानी भी तत्काल ही मूर्छित हो गई। यह दिखाव देखते ही अत्यन्त खेद सहित पासमें खड़े हुये तमाम दास दासी आदि सज्जनवर्ग हा, हा! हाय हाय! यह क्या हुवा! क्या यह भूतदोष है या प्रेतदोष है? या किसीकी नजर लगी! ऐसे पुकार करने लगे। यह समाचार मिलते ही तत्काल राजा दीवान आदि राजवर्गीय लोक भी वहांपर आ पहुंचे, और शीघ्रतासे बावना, चन्दनादिक का शीतोपचार करनेसे उस बालकको सचेतन किया। एवं रानीको भी चैतन्यता आई। तदनन्तर सब लोग हर्षित होकर महोत्सव पूर्वक बालकको राजभुवन में ले गये। अब वह बालक सारा दिन पूर्ववत् खेलना, स्तन्यपान करना वगैरह करता हुवा विचरने लगा। परन्तु जब दूसरा दिन हुवा तब उसने सुबहसे ही पोरशी प्रत्याख्यान करनेवाले के समान स्तन्यपान तक भी नहीं किया। शरीरसे तन्दुरुस्त होने पर भी स्तन्यपान न करते देख लोगोंने बहुतसे उपचार किये परन्तु वह बलात्कार से भी अपने मुहमें कुछ नहीं डालने देता। इससे राजा रानी और राजवर्गीय लोक अत्यन्त दुःखित होने लगे। मध्यान्ह होनेके समय उन लोगोंके पुण्योदय से आकर्षित अकस्मात् एक मुनिराज वहां पर आकाश मार्गसे आ पहुंचे।

प्रथम उस राजकुमारने मुनिको देख वन्दन किया, फिर राजा रानी आदि सबको नमस्कार किया। मुनिराजको अत्यन्त सत्कार पूर्वक एक उच्चासन पर बैठाकर राजा आदि पूछने लगे कि, "हे स्वामिन् जिसके दुःखसे हम आज सब दुःखित हो रहे हैं ऐसा यह कुमार आज स्तन्यपान क्यों नहीं करता?" मुनिराज बोले—"इसमें और कुछ दोष नहीं है परन्तु तुम इसे अभी जिनेश्वर देवके दर्शन करा लाओ फिर तत्काल ही यह बालक अपने आप ही स्तन्यपान करनेकी संज्ञा करेगा। यह वचन सुनकर तत्काल ही उस बालकको उसी मन्दिरमें दर्शन करा लाये, दर्शन करके राजभुवनमें आते ही वह बालक अपने आप ही स्तन्यपान करने लगा, यह देख सब लोगोंको आश्चर्य हुवा। उससे राजाने हाथ जोड़कर पूछा कि हे मुनिश्रेष्ठ! इस आश्चर्यका कारण क्या है? मुनिराजने कहा कि, इसका पूर्वभव सुननेसे सब मालूम हो जायगा।

दुष्ट पुरुषोंसे रहित और सज्जन पुरुषोंसे भरी हुई एक कापुरिका नामा नगरी थी। उसमें दीन, हीन, और दुःखी लोगों पर दयावंत एवं शत्रुओं पर निर्दयी ऐसा कृपनामक राजा राज्य करता था। इन्द्रके प्रधान

मित्रकी बुद्धिके समान बुद्धिवाला एक चित्रमतिनामक शेठ उस राजाका मित्र था और उस शेठके यहां एक सुमित्र नामका वाणोतर था। सुमित्र वाणोतरने किसी एक धन्नानामक कुलपुत्रको अपना पुत्र मान कर अपने घरमें नौकर रक्खा है। वह एक दिन बड़े २ कमलोंसे परिपूर्ण ऐसे एक सरोवरमें स्नान करनेको गया। उस सरोवरमें क्रीड़ा करते हुये कमलोंके समूहमें से एक अत्यंत परिमलवाला और सहस्र पंखड़ियोंवाला कमल मिल गया। वह कमल अपने साथमें लेकर सरोवरसे अपने घर आ रहा है, इतनेमें ही मार्गमें पुष्प लेकर आती हुई और उसकी पूर्वपरिचित चार मालीकी कन्यायें उसे सामने मिलीं। वे कन्यायें उसे कहने लगीं कि, हे भद्र! जैसे भद्रसाल वृक्षका पुष्प अत्यन्तदुर्लभ है वैसे ही यह कमल भी अत्यन्त दुर्लभ है, इसलिए ऐसे कमलको जहां तहां न डाल देना। इस कमलकी किसी उत्तम स्थान पर योजना करना, या किसी राजा महाराजाको समर्पण करना कि जिससे तुझे महालाभ हो। धन्नाने उत्तरमें कहा कि, यदि ऐसा है तो उत्तम पुरुषके कार्यमें या किसी राजाके मस्तक पर जैसे मुकुट शोभता है वैसे ही वैसेके मस्तक पर मैं इस कमलकी योजना करूंगा। यों कह आगे चलता हुवा विचार करने लगा कि, मेरे पूजनेयोग्य तो मेरा सुमित्र नामक शेठ ही है, क्योंकि जिसकी तरफसे जीवन पर्यंत आजीविका चलती है उससे अधिक मेरे लिये और कौन हो सकता है? ऐसा विचार कर उस भद्रप्रकृतिवाले धन्नाने अपने शेठ सुमित्रके पास आकर, विनययुत नमन कर, उसे वह कमल समर्पण कर, उसकी अमूल्यता कह सुनाई। सुमित्र भी विचार करने लगा कि, ऐसा अमूल्य कमल मेरे क्या कामका है? मेरा वसुमित्र शेठ अत्यन्त सज्जन है और उसने मुझपर इतना उपकार किया है कि, यदि मैं उसकी आजीवन विना वेतन नौकरी करूं तथापि उसके किये हुये उपकारका बदला देनेके लिये समर्थ नहीं हो सकता; इसलिये अनायास आये हुये इस अमूल्य कमलको ही उन्हें भेट करके कृतकृत्य बनूं। यह विचार कर सुमित्रने अपने शेठ वसुमित्रके पास जाकर अत्यन्त बहुमानसे कमल समर्पण कर, उसकी तारीफ कह सुनाई। उस कमलको लेकर वसुमित्र शेठ भी विचार करने लगा कि, ऐसे दुर्लभ कमलको सेवन करनेकी मुझे क्या जरूरत है? मेरा अत्यन्त हितवत्सल चित्रमति प्रधान ही है क्योंकि उसीकी कृपासे मैं इस नगरमें बड़ा कहलाता हूं इसलिये यदि ऐसे अमूल्य कमलको मैं उन्हें भेट करूं तो उनका मुझपर और भी अधिक स्नेह बढेगा। पूर्वोक्त विचार कर वसुमित्र शेठने भी वह कमल चित्रमति दीवानको भेट किया और उसके गुणकी प्रशंसा की। उस कमलको पाकर दीवानने भी विचार किया कि, ऐसा अमूल्य कमल उपयोग में लेनेसे मुझे क्या फायदा? इस कमलको मैं सर्वोत्तम उपकारी इस गांवके राजाको भेट करूंगा, कि जिससे उनका स्नेहभाव मुझपर वृद्धिको प्राप्त हो।

स्रष्टुरिव यस्य दृष्टे। रपि प्रभावोद्भूतो भुवि यथाद्राक्॥
सर्वलघुः सर्वगुरोः। सर्वगुरुः स्याच्च सर्वलघोः॥ १॥

ब्रह्माके समान राजाकी दृष्टिके प्रभावसे भी जगतमें बड़ा महिमा होता है, जो सबसे लघु होता है, वह सबसे गुरु–बड़ा होता है; और जो सबसे बड़ा हो वह सबसे छोटा हो जाता है, ऐसा उसकी दृष्टिका प्रभाव है तब फिर मुझे क्यों न उपकार मानना चाहिये! इस विचारसे उसने वह कमल राज्यन्धर राजाको भेट किया

और उसका वर्णन करके कहा कि, यह उत्तम जातिका कमल अत्यन्त दुष्प्राप्य है। यह सुनकर राजा भी बोलने लगा कि, जिसके चरणकमल में मैं भ्रमरके समान हो रहा हूं ऐसे सद्गुरु यदि इस समय आ पधारें तो यह कमल मैं उन्हें समर्पण करूं, क्योंकि ऐसे उत्तम पदार्थसे ऐसे पुरुषोंकी सेवा की हो तो वह अत्यन्त लाभ कारक होती है। परन्तु ऐसे सद्गुरुका योग स्वाति नक्षत्रकी वृष्टिके समान अत्यन्त दुष्कर और स्वल्प ही होता है। जबतक यह कमल अम्लान है यदि उतनेमे वैसे सद्गुरुका योग बन जाय तो सोना और सुगन्ध के समान कैसा लाभ कारक हो जाय! राजा दीवानके साथ जब यह बात कर रहा है उस समय आकाश-मार्गसे जाज्वल्यमान सूर्यमंडलके समान तेजस्वी चारणर्षि मुनिराज वहाँ पर अवतरे। अहो! आश्चर्य! इच्छा-करनेवाले की सफलता को देखो! जिसकी मनमे धारना की वही सामने आ खडे हुये। प्रथम मुनिराज का बहु-मान किये बाद आसन प्रदान कर राजा आदिने उन्हें वन्दना की तदनन्तर सर्व लोगोंके समुदाय के बीच मानो अपने हर्षके पुंज समान अत्यन्त परिमलसे सर्वसभा को प्रमुदित करता हुवा राजाने वह सहस्र पंखड़ीका कमल मुनिराजको भेट किया। मुनिराजने उसे देखकर कहा कि—"हे राजेन्द्र! इस जगतके तमाम पदार्थ तरतम भावयुक्त होते हैं, किसीसे कोई एक अधिक होता ही है। जब आप मुझे अधिक गुणवन्त जानकर यह अत्युत्तम कमल भेट करते हो तब फिर मेरेसे भी जो अलौकिक और आत्यंतिक गुणवन्त हों उन्हें क्यों नहीं यह भेट करते? जो २ अत्युत्तम पदार्थ हो वह अत्युत्तम पुरुषको ही भेट किया जाता है। इसलिए ऐसा अति मनोहर कमल आप देवाधिदेव पर चढ़ा कर मुझसे भी अधिक फलकी प्राप्ति कर सकोगे। मुझे भेट करने से जितना आपका चित्त शांत होता है उससे विश्वके नायक जिनराजको चढ़ानेसे अत्यन्त अधिकतर आप विश्रांति पावोगे। तीन जगतमें अत्युत्तम कामधेनुसमान मनोवांछित देनेवाली सारे विश्वमे एक ही श्री वीत-रागकी पूजा बिना अन्य कोई नहीं। मुनिके पूर्वोक्त वाक्यसे मुदित हो भद्रक प्रकृतिवाला राजा सावसहित जिनमन्दिर जाकर जिनराज की पूजामें प्रवृत्तमान होता है, उस समय धन्ना भी स्नान करके वहीं आया हुवा है। उस कमलको मुख्य लानेवाला धन्ना है यह जानकर राजाने वह प्रभुपर चढ़ानेके लिये धन्नाको दिया। इससे अत्यन्त बहुमान पूर्वक वह कमल प्रभुके मस्तक पर रहे हुए मुकुट पर चढ़ानेसे साक्षात् सहस्र किरणकी किरणोंके समान झलकता हुवा प्रभुके मस्तकपर छत्र समान शोभने लगा। यह देख धन्ना वगैरहने एकाग्र चित्तसे प्रभुका ध्यान किया। जब एकाग्रचित्त से धन्ना प्रभुके ध्यानमें लीन होकर खड़ा है तब रास्तेमे मिली हुई वे मालीकी चार कन्यायें भी जो प्रभुके मन्दिरमें फूल बेचनेको आईं थीं, प्रभुके मस्तकपर उस कमलको चढ़ा देख अत्यन्त प्रमुदित हो विचारने लगीं कि, सचमुच यह कमल धन्नाने ही चढ़ाया हुवा मालूम होता है। हमने जो धन्नाके पास रास्तेमें कमल देखा था यह वही कमल है। यह धारणा कर कितनी एक अनुमोदना करके मानो संपत्तिके बीज समान उन्होंने कितनेएक फूल प्रसन्नता पूर्वक अपनी तरफसे चढ़ानेके लिये दिये।

पुण्ये पापे पाठे। दानादानादनान्यमानादौ ॥
देवगृहादि कृत्ये। ष्वपि प्रवृत्तिर्हि दृष्टनता ॥

पुण्यके कार्यमें, पापके कार्यमें, देनेमें, लेनेमें, खानेमें, दूसरेको मान देनेमें, मन्दिर आदिकी करणीमें, इतने कार्योंमें जो प्रवृत्ति की जाती है सो देखादेखीसे होती है।

यदि धन्नाने कमलसे पूजा की तो हम भी हमारे फूलोंसे पूजा क्यों न करें! इस धारणासे अपने कितने एक फूलोंसे दूसरेके पास पूजा कराकर उन लड़कियोंने अनुमोदना की। तदनन्तर अपनी आत्माको कृत-कृत्य मानते हुए वे चारों मालीकी कन्यायें और धन्नाजी अपने २ मकान पर चले गये; उस दिनसे उससे बन सके तब धन्ना मन्दिर दर्शन करने आने लगा। वह एक दिन विचारने लगा कि धिक्कार है मुझे कि जिसे प्रतिदिन जिनदर्शन करनेका भी नियम नहीं। मैं पशुके समान, रंक और असमर्थ हूं कि, जिससे इतने नियमसे भी गया! इस प्रकार प्रतिदिन आत्मनिन्दा करता है। अब राजा, चित्रमति प्रधान, वसुमित्र शेठ, सुमित्र वानोतर, ये सब चारण महर्षिकी वाणीसे श्रावकधर्म प्राप्त कर आराधना करके अन्तमें मृत्यु पाकर सौधर्म देवलोक में देवतापने उत्पन्न हुये। धन्ना भी जिनभक्तिके प्रभावसे महर्द्धिक देव हुआ, तथा वे चार कन्यायें भी उसी देवलोकमें धन्ना देवके मित्रदेवतया उत्पन्न हुईं। राज्यन्धर देव देवलोकसे च्यवकर वैताढ्य पर्वत पर गगनवल्लभ नगरमें इन्द्रसमान ऋद्धिवाला चित्रगति नामक विद्याधर राजा उत्पन्न हुवा। चित्रमति दीवान देवताका जीव चित्रगति राजाका अत्यन्त वल्लभ विचित्रगति नामक पुत्र पैदा हुवा, परन्तु वह पितासे भी अधिक पराक्रमी हुवा। अन्तमें उसने अपने पिताका राज्य ले लेनेकी बुद्धिसे पिताको मार डालने की जाल रची, दो चार दिनमें अपनी इच्छानुसार कर डालूंगा यह विचार कर वह स्थिर हो रहा। इसी अवसरमें रात्रीके समय राज्यकी गोत्रदेवीने आकर राजासे सर्व वृतान्त कह सुनाया और कहा कि, अब कोई तुम्हारे बचावका उपाय नहीं। यह बात सुनते ही राजा अकस्मात अत्यन्त संभ्रान्त होकर विचारने लगा कि जब मेरी भाग्यदेवी ही मुझे यह कहती है कि अब तेरे बचावका कोई उपाय नहीं तब फिर मुझे अब दूसरा उपाय ही क्यों करना चाहिये। बस अब मुझे अपने आत्माका ही उद्धार करना योग्य है। इस विचारसे राजा वैराग्यको प्राप्त हुवा। परन्तु अन्त में फिर यह विचार करने लगा—हा हा! अब मैं क्या करूं किसका शरण लूं; मैं किसके पास जाकर मेरा दुःख निवेदन करूं? अहा! यह महा अनर्थ हुवा कि इतने दिनतक मैंने अपनी आत्माकी सुगतिके लिए कुछ भी सुकृत न किया। इन्हीं विचारोंमें गहरा उतरते हुए राजाने अपने मस्तक का पंचमुष्ठि लोच कर डाला, जिससे देवताने तत्काल उसे मुनिवेष समर्पण किया; और अब वह द्रव्यभाव चारित्रवन्त पंच महाव्रतधारी हुवा। अकस्मात् बने हुए इस बनावको सुनकर उसके विचित्रगति पुत्रने एवं स्त्री, परिग्रह, राजवर्गि परिवारने राज्य संभालनेकी बहुत प्रार्थना की, परन्तु वह किसी की भी एक न सुनकर संसारसे सम्बन्ध छोड़कर पवनके समान अप्रतिबद्ध विहारी होकर विचरने लगा। फिर उसे साधुकी क्रियायें विविध प्रकारके दुष्कर तप तपते हुए अवधिज्ञान की प्राप्ति हुई। तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद चतुर्थ मनःपर्यव ज्ञान भी उत्पन्न हुवा। अब ज्ञान-बलसे सर्व अधिकार जान कर मैं वहीं चित्रगति विद्याधर तपी तुम्हें उपकार हो इसलिए यहां आया हूं। इस विषयमें अभी और भी अधिकार मालूम करनेका रहा है, वह तुम्हें सब सुना रहा हूं।

वसुमित्र शेठका जीव देवलोकसे च्यवकर तू राज्यन्धर नामक राजा हुवा है। वसुमित्र शेठका वानोतर

नौकर सुमित्र जब विद्याधर राजर्षिके उपदेशसे श्रावक हुवा था तब उसने अपने मनमें विचार किया कि, इस नगरमें श्रावकवर्ग में मैं अधिक गिना जाऊं तो ठीक हो, इस धारनासे वह अनेक प्रकारके कपटसे श्रावकपनका आडम्बर करता। सिर्फ इतने ही कपटसे वह स्त्री गोत्रबांध कर मृत्यु पाके उस पूर्वभवके आचरित कपट भावसे यह तेरी प्रीतिमति रानी हुई है। धिःकार है अज्ञानता को कि जिससे मनुष्यके हृदयमें हिताहितके विचारको अवकाश नहीं मिलता। इसने सुमित्रके भवमें प्रथम यह विचार किया था कि, जबतक मेरी स्त्रीको पुत्र न हो तबतक मेरे दूसरे लघु बान्धवोंके घर पुत्र न हो तो ठीक हो। मात्र ऐसा विचार करनेसे ही उसने अन्तराय कर्म उपार्जन किया था वह कर्म इस भवमें उदय आनेसे इस प्रीतिमति रानीको सर्व रानियोंसे पीछे पुत्र हुवा है। क्योंकि यदि एक दफा भी विचार किया हो तो उसका उदय भी अवश्य भोगना पड़ता है। यदि साधारण विचार करते हुये भी उसमें तीव्रता हो जाय और उसकी अनुमोदना की जाय तो उससे निकाचित कर्म बन्ध होजाता है। उससे इसका उदय कदापि बिना भोगे नहीं छूटता। एक दफा नवमे सुविधिनाथ तीर्थंकर को वन्दन करने गये हुए धन्ना नामक देवताने (जिस धन्नाने कमल चढ़ाया था) प्रश्न किया कि मैं यहांसे च्यवकर कहां पैदा होऊंगा? उस वक्त सुविधिनाथ तीर्थंकरने तुम्हारे दोनोंका पुत्र होनेका बतलाया। धन्ना देवने विचार किया कि, राज्यन्धर राजा और प्रीतिमति रानी ये दोनों बिना पुण्य पुत्ररूप संपदा कैसे पायेंगे? यदि कुवेमें पानी हो तो हौदमें आवे, वैसे ही यदि धर्मवन्त हो तो उसके प्रभावसे उसे पुत्रप्राप्ति हो और मैं भी वहां उत्पन्न होऊंगा तब मुझे भी बोधिबीज की प्राप्ति होगी। मनमें यह विचार कर धन्नादेव स्वयं हंसशिशु का रूप बना कर प्रीतिमति रानीको स्वप्नमें धर्मका उपदेश कर गया। इससे यह तेरी रानी और तू, दोनों धर्मवान् हुवे हो। अहो! आश्चर्य कि यह जीव कितना उद्यमी है कि जिसने देवभवमें भी अपने परभवके लिए बोधिबीज प्राप्तिका उद्यम किया। इससे विपरीत ऐसे भी अज्ञानी प्राणी हैं कि जो मनुष्य भव पाकर भी चिन्तामणि रत्नके समान अमूल्य धर्मरत्नको प्रमादसे व्यर्थ खोते हैं। सम्यक्दृष्टि देवता धन्नाका जीव यह तुम्हारा पुत्र उत्पन्न हुवा है कि जिसके प्रभावसे रानीने श्रेष्ठ स्वप्न देखा और श्रेष्ठ मनोरथ भी इसीके प्रभावसे उत्पन्न हुये हैं। जैसे छाया कायाको; सती पतिको, चन्द्रकान्ति चन्द्रमाको, ज्योति सूर्यको बिजली मेघको अनुसरती है, वैसे ही जिनभक्ति भी जीवके साथ आती है। कल जब तुम इस बालकको जिनमन्दिर में ले गये थे उस वक्त जिनेश्वरदेव को नमस्कार कराकर यह सब हंसका उपकार है इत्यादि जो रानीकी वाणी हुई थी वह सुनकर इसे तत्काल ही जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हुवा, उससे पूर्वभवमें जो धर्मकृत्य किये थे वे सब याद आनेसे वहांपर ही इसने ऐसा नियम लिया था कि, जबतक प्रतिदिन प्रभुका दर्शन न करूं तबतक कुछ भी मुखमें न डालूंगा, इसी कारण इसने आज स्तनपान बन्द किया था। इस प्रकार जीवन पर्यन्त अरिहन्तकी साक्षी लिये हुए नियमको अपने मनसे पालनेका उद्यम किया परन्तु जब जो नियम लेता है तब उस नियमके फलकी अधिकता न लिएहुए नियमसे अनन्तगुणी होती है। धर्म दो प्रकारका होता है, एक नियम लिया हुवा और दूसरा वगैर नियमका। उसमें नियम रहित धर्म बहुतसे समय तक पालन किया हो तथापि वह किसीको फलदायक होता है और किसीको नहीं भी होता। दूसरा सनियम धर्म थोड़ा

पालन किया हो तो भी विना नियमके धर्मसे अनन्तगुण फलदायक हो सकता है। जैसे कि, किसीको कितनेक रुपये व्याज कहे विना ही दिये हों तब फिर उन रुपयोंको जब पीछे लें उस वक्त उनका कुछ व्याज नहीं मिलता, परन्तु यदि व्याज कह कर दिये हों तो सदैव सूद चढ़ा करता है और जब पीछे लें तब सूद सहित मिलते हैं। कोई ऐसा भी भव्य जीव श्रेणिकादिक के समान होता है कि जिससे अविरतिपनका उदय होनेसे कुछ भी सनियम धर्म आराधन नहीं करा जा सकता, परन्तु वह ऐसा दृढधर्मी होता है कि, सनियमवाले से भी कष्टके समय ऐसा प्रयत्न करता है कि उससे भी अधिक नियमवान्‌के जैसा फल प्राप्त करता है। ऐसे जीव आसन्नसिद्धिक कहलाते हैं। पूर्वभवमें इसने प्रभुको कमल चढ़ाया उस दिनसे यद्यपि यह नियमवान् नहीं था तथापि सनियमवाले से भी अधिकतर उत्साह पाकर सनियमके समान ही पालन किया था।

एक मासकी उमरवाले इस बालकने जो कल नियम धारण किया उस दर्शनका नियम पालनेसे इसने कल स्तनपान किया था, परन्तु आजके दिन दर्शनका योग न बननेसे लिये हुये नियमको टूटने के भयसे भूखा होने पर भी स्तन्यपान न किया और हमारे वचनसे दर्शन कराए बाद इसने स्तन्यपान किया। क्योंकि इसका अभिग्रह पूरा हुवा इसलिये स्तन्यपान किया है। पूर्वभवमें जो कुछ शुभाशुभ कर्म किया हो वह अवश्यमेव जन्मान्तर में प्राणियोंके साथ आता है। पूर्वभवमें जो भक्ति की थी वह अनजानपन की थी, परन्तु उसीके महिमासे इस भवमें ज्ञानसहित वह भक्ति प्रकट हुई है इससे वह सबप्रकार की इसे रिद्धि और संपदा देनेवाली होगी। जो चार मालीकी कन्यायें मिली थीं वे देवत्व भोगकर किसी बड़े राजाके कुलमें राजकन्यातया उत्पन्न हुई हैं, वे भी इस कुमारकी स्त्रियाँ होनेवाली हैं, क्योंकि साथमें किया हुवा पुण्य साथमें ही उदय आता है।

मुनि महाराज की पूर्वोक्त वाणी सुनकर वैसे लघु बालकको भी वैसा आश्चर्य कारक नियम और उस नियमका वैसा कोई अलौकिक फल जानकर राजा रानी आदि सब लोग नियम पालनमें निरन्तर कटिबद्ध हुये। फिर मुनिराज बोले कि अब मैं अपने संसारपक्षके पुत्रको प्रतिबोध देनेके लिए उद्यम करूंगा, ऐसा कह;कर मुनिराज आकाश मार्गसे गरुड़के समान उड़ गये। उस दिनसे आश्चर्यकारक जाति स्मरण ज्ञानवन्त धर्मदत्त अपने दृढ़ नियमको मुनिराजके समान सात्विक हो अपने रूप, गुण, सम्पदा की वृद्धि पानेके समान प्रवर्धमान भावसे पालने लगा। उस दिनसे निरन्तर प्रवर्धमान शरीरके समान प्रतिदिन उस लघु राजकुमारके लोकोत्तर गुणका समुदाय भी बढ़ने लगा। धर्मदत्तकुमार धर्मके प्रभावसे जिन गुणोंका अभ्यास करता है उनमें निपुणता प्राप्त करता जाता है। अपने नियमको पालन करतेहुए जब वह तीन वर्षका हुवा तबसे नाना प्रकारकी कलाओंका अभ्यास करने लगा। पुरुषोंकी लिखनेकी कला, गणितकी कला, वगैरह बहत्तर कलाओं में उसने क्रमसे निपुणता प्राप्त की। सुगुरुका योग मिलने पर धर्मदत्तकुमार लघु वयसे ही श्रावक के व्रत अंगीकार करने लगा। गुरुमहाराज के पास विधिविधान का अभ्यास करके वह विधिपूर्वक जिनेश्वरदेव की त्रिसन्ध्य पूजा करने लगा। जिस प्रकार गन्नेका मध्यभाग बड़ा मधुर होता है वैसे ही वह राजकुमार सब

लोगोंको प्रियकारी तारुण्यको प्राप्त हुवा। एक दिन किसी एक अनंजान परदेशी मनुष्यने आकर राजाको धर्मदत्तकुमार के लिये सूर्यके अश्व समान एक अश्वरत्न भेट किया। उस वक्त धर्मदत्तकुमार उसे अपने समान अद्वितीय योग्य समझ कर उस पर चढ़नेके लिए उत्सुक हुवा, पिताने भी उसे इस विषयमें आज्ञा दी। घोड़े पर सवार होते ही वह तत्काल मानो अपनी गतिका अतिशय वेग दिखलाने के लिये ही एवं वह मानो इन्द्रका घोड़ा हो और अपने स्वामीसे मिलने ही न जाता हो इस प्रकार शीघ्र गतिसे वह अश्व आकाशमार्ग से एकदम उड़ा। (आकाशमार्ग से कहीं उड़ नहीं गया, वह स्वयं अपनी शीघ्र गतिसे ही चलता है परन्तु उसकी ऐसी शीघ्र गति है कि जिससे दूरसे देखनेवाले को यही मालूम होता है कि वह आकाशमे ऊंचे जा रहा है) एक क्षणमात्र मे उसने ऐसी आकाशगति की कि, अदृश्य होकर वह एक हजार योजनकी विकट और भयानक अटवीमे जा पहुचा। उस अटवीमे बड़े २ सर्प फूंकार कर रहे हैं, स्थान २ पर बन्दर बारम्बार हिन्कार शब्द कर रहे हैं, सूअर घुरघुराहट कर रहे हैं, चीते चीत्कार कर रहे हैं, चमरी गायोंके भांकार शब्द हो रहे हैं, गीदड़ फेत्कार कर रहे हैं। यद्यपि वहांका ऐसा भयंकर दिखाव है तथापि वह स्वभावसे ही धैर्यको धारन करनेवाला राजकुमार जरा भी भयके स्वाधीन न हुवा। क्योंकि जो धीर पुरुष होते हैं उन पर चाहे जैसा विकट संकट आ पड़े तो उसमे भय और चाहे जैसी संपदाकी वृद्धि हुई हो तथापि उसमें उन्मादको प्राप्त नहीं होते, इतना ही नहीं परन्तु शून्य वनमें उनका चित्त शून्य नहीं होता। उजाड़ अटवीमे भी अपने आराम बगीचेके माफक वह राजकुमार निर्भय होकर वनमें फिरता है। उस जंगलमें उसे किसी प्रकारका भय वगैरह मालूम नहीं दिया, परन्तु उस दिन उसे जिनपूजा करनेका योग न मिलनेसे वनमें नाना प्रकारके वनफल खाने योग्य तैयार होनेपर भी सर्व पापोंको क्षय करनेवाले चोविहार, उपवास करनेकी जरूर पडी। जहां बहुतसा शीतल जल भरा है और अनेक उत्तम जातिके सुस्वादु फल जगह २ देख पड़ते हैं एवं पेटमे भूखसे उत्पन्न हुई अत्यन्त हुई अत्यन्त पीड़ा सता रही है, ऐसी परिस्थिति मे भी उस दृढ़प्रतिज्ञ कुमारका अपना नियम पालन करनेमें ऐसा निर्मल चित्त रहा कि जिसने अपने नियमके विरुद्ध मनसे भी किसी वस्तुकी चाहना न की। इस तरह उसने तीन दिनतक उपवास किये, इससे अत्यन्त ताप और ऊष्ण पवनसे जैसे मालतीका फूल कुमला जानेसे निर्माल्यं देख पड़ता है वैसे ही राजकुमार के शरीरका बाहरी दिखाव बिलकुल बदल गया, परन्तु उसका मन जरा भी न कुमलाया। उसकी दृढ़ताके कारण प्रसन्न होकर अकस्मात् उसके सामने एक देवता प्रगट हुवा। प्रत्यक्ष जाज्वल्यमान दिखावसे प्रकट होकर प्रशंसा करते हुए बोला—"धन्य धन्य! हे धैर्यवन्त! तुझे धन्य है। ऐसे दुःसह कष्टके समय भी ऐसा दुःसाध्य धैर्य धारन कर अपने जीवितकी भी अपेक्षा छोड़कर अपने धारण किये दृढ़ नियमको पालन करता है। सचमुच योग्य ही है कि, जो इन्द्र महाराज ने सब देवताओं के समक्ष अपनी सभामें तेरी ऐसी अत्यन्त प्रशंसा करी कि, राज्यन्धर राजाका धर्मदत्त कुमार वर्तमान कालमे अपने लिये हुये नियमको इतनी दृढ़तासे पालता है कि, यदि कोई देवता आकर उसे उसके सत्वसे चलायमान करना चाहे तथापि जबतक प्राणान्त उपसर्ग हो तबतक वह अपने नियमसे भ्रष्ट नहीं हो सकता। इन्द्र महाराज ने आपकी ऐसी प्रशंसा की वह सुनकर मै सहन न कर सका, इसीसे मैं तेरी परीक्षा करनेके लिये घोड़े पर

बैठा कर यहां पर हरन कर लाया हूं। ऐसे भयंकर वनमें भी तू अपने नियमकी प्रतिज्ञासे भ्रष्ट न हुवा, इसीसे मैं बड़ी आश्चर्यता पूर्वक तुझ पर प्रसन्न हुवा हूं। इसलिए हे शिष्टमति! तुझे जो इच्छा हो वह मांग ले। देवता द्वारा की हुई अपनी प्रशंसासे नीचा मुख करके और कुछ विचार करके कुमार कहने लगा कि जब मैं तुझे याद करूं तब मेरे पास आकर जो मैं कहूं वह मेरा कार्य करना। देवता बोला—हे अद्भुत भाग्यशाली! जो आपने मांगा सो मुझे सहर्ष प्रमाण है, क्योंकि तू अद्भुत भाग्यके निधान समान होनेसे मैं तेरे वशीभूत हूं, इसलिये जब तू याद करेगा तब मैं आकर अवश्य तेरा काम करूंगा, यों कह कर देवता अन्तर्धान हो गया। अब धर्मदत्त राजकुमार मनमें विचारने लगा कि मुझे यहांपर हरन कर लानेवाला देव तो गया; अब मैं राजभुवनमें कैसे जा सकूंगा? ऐसा विचार करते ही अकस्मात् वह अपने आपको अपने राजभुवन में ही खड़ा देखता है। इस दिखावसे वह विचारने लगा कि, सचमुच यह भी देवकृत्य ही है। इसके बाद राजकुमार अपने माता पिता एवं अपने परिवार परिजन, सगे सम्बन्धियोंसे मिला, इससे उन्हें भी बड़ी प्रसन्नता हुई। राजकुमार आज तीन दिनका उपवासी था और उसे आज अट्ठमका पारना करना था तथापि उसमें जरा मात्र उत्सुकता न रखके उसने अपनी जिनपूजा करनेका जो विधि था उसमें सम्पूर्ण उपयोग रखकर विधिपूर्वक यथाविधि पूजादि विधान किये बाद पारना करके सुखसमाधि पूर्वक राजकुमार पहलेके समान सुख विलाससे अपना समय व्यतीत करने लगा।

पूर्वादिक दिशामें राज करनेवाले चार राजाओंको बहुतसे पुत्रों पर वे चार मालीकी कन्यायें पुत्रीपने उत्पन्न हुईं। धर्मरति, धर्ममति, धर्मश्री, और धार्मिणि, ये चार नाम वालीं वे कन्यायें साक्षात् लक्ष्मी के समान युवावस्था के सन्मुख हो शोभने लगीं। वे चारों कन्यायें एक दिन कौतुक देखनेके निमित्त अनेक प्रकारके पुण्यसमुदाय के और महोत्सवके स्थानरूप जिनमन्दिरमें दर्शन करनेको आईं। वहां प्रतिमाके दर्शन करते ही उन चारोंको जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न होनेसे अपना पूर्वभव वृतान्त जानकर उन्होंने जिनपूजा दर्शन किये बिना मुखमें पानी तक भी न डालना ऐसा नियम धारण किया। अब वे परस्पर ऐसी ही प्रतिज्ञा करने लगीं कि, अपने पूर्वभवका मिलापी, जब धन्ना मित्र मिले तब उसीके साथ शादी करना, उसके बिना अन्य किसीके साथ शादी न करना। उनकी यह प्रतिज्ञा उनके माता पिताको मालूम होनेसे उन्होंने अपनी २ पुत्रीका लग्न करनेके लिये स्वयंवर मंडपकी रचना करके सब देशके राजकुमारों को आमंत्रण दिया। उसमें राज्यन्धर राजाको पुत्र सहित आमंत्रण किया गया था परन्तु धर्मराजकुमार वहां जानेके लिये तैयार न हुवा और और उलटा यों कहने लगा कि, ऐसे सन्देह वाले कार्यमें कौन बुद्धिमान् उद्यम करे?

अब अपने पिता चित्रगति विद्याधरके उपदेशसे दीक्षा लेनेको उत्सुक विचित्रगति विद्याधर (चित्रगति विद्याधर साधुका पुत्र) विचारने लगा कि, इस मेरे राज्य और इकलौति पुत्रीका स्वामी कौन होगा? इसलिए प्रज्ञप्ति विद्याको बुलाकर पूछ देखूं। फिर प्रज्ञप्ति विद्याका आव्हान कर, उसे पूछने लगा कि, "इस मेरी राज्य ऋद्धि और पुत्रीका स्वामी बननेके योग्य कौन पुरुषरत्न है?" वह बोली—"तेरा राज्य और पुत्री इन दोनोंको राज्यन्धर राजाके पुत्र धर्मदत्त कुमारको देना योग्य है। यह सुनकर प्रसन्न हो विचित्रगति विद्याधर धर्मदत्त

कुमारको बुलानेके लिए स्वयं राजपुरनगर आया। वहां उस कुमारके मुखसे स्वयम्वर के आमन्त्रण का वृतान्त सुन उसे अदृश्यरूप धारण कराकर साथ लेकर विचित्रगति विद्याधर स्वयं भी अदृश्यरूप धारण कर स्वम्वर मंडपमें आया। वहां बहुतसे राजाओंके बीच जाकर उसने अपनी विद्याके बलसे स्वयम्वर मंडपमें बैठे हुए तमाम राजा और राजकुमारों के मुख बिलकुल श्याम बना दिये, इससे तमाम राजा और राजकुमार मनमें विचारने लगे कि, अरे! यह क्या हुवा? और क्या होगा? यह किसने किया? जब वे यह विचार कर रहे हैं उस वक्त साक्षात् उगते हुए नूतन सूर्यके समान तेजस्वी धर्मदत्तकुमार को स्वयम्वरा कन्याने देखा; उसे देखते ही पूर्वभव के प्रेमकी प्रेरणासे उसने उसके कंठमें वर-माला डाल दी तथा तीन दिशाके राजा भी वहां आये हुए थे उनकी भी कन्यायें धर्मदत्त के साथ ही व्याह देनेकी मरजी उनके पूर्वभव के प्रेमके सम्बन्धसे हो गई, इससे उन्होने विचित्रगति विद्याधर के विद्याबल से अपनी २ कन्याओंको वहां ही बुलवा कर फिर विचित्रगति विद्याधर द्वारा विद्याके योग्यसे की हुई अति मनो-हर सहायता से वहांपर ही चारों कन्याओंकी शादी धर्मदत्तके साथ कर दी। फिर वह विचित्रगति विद्याधर सब राजाओंके समुदाय सहित धर्मदत्तकुमार को वैताढ्य पर्वत पर आये हुए अपने राज्यमें ले गया। वहां अपनी राज्यरिद्धि सहित उससे अपनी कन्याकी शादी की। तथा एक हजार सिद्ध विद्यायें भी उसे दी। ऐसा भाग्यशाली पुरुष बड़े पुण्यसे मिलता है यह जानकर अन्य भी पांचसौ विद्याधरों ने अपने २ ग्राममें ले जाकर धर्मदत्तको अपनी पांचसौ कन्यायें व्याहीं। ऐसी बड़ी रोजरिद्धि और पांचसौ पांच रानियों सहित धर्मदत्तकुमार अपने पितासे मिलनेके लिये आया। उसके पिताने भी प्रसन्न होकर जैसे उत्तम लता उत्तम क्षेत्रमें ही बोई जाती है वैसे अपनी बारसौ निन्यानवें रानियोंके जो पुत्र थे उनका मन मनाकर अपना राज्य उसे ही समर्पण किया। फिर अपने सर्वपुत्र तथा रानियोंकी अनुमति ले अपनी प्रीतिमति पटरानी के सहित; राज्यन्धर राजाने चित्रगति विद्याधर ऋषिके पास दीक्षा ग्रहण की। क्योंकि जब अपने राज्यके भारको उठानेवाला धुरंधर पुत्र मिला तब फिर ऐसा कौन मूर्ख है कि, जो अपने आत्माके उद्धार करनेके अवसर को चूके। विचित्रगति विद्याधर ने भी धर्मदत्तकी रजा लेकर अपने पिताके पास दीक्षा ली। चित्रगति, विचित्रगति, राज्यन्धर, और प्रीतिमति ये चारों जने शुद्ध संयमकी आराधना कर सम्पूर्ण कर्मोंको नष्ट कर उसी भवमें मोक्षपद को प्राप्त हुये।

धर्मदत्तने राजा हुये बाद एक हजार देशके राजाओंको अपने वशमें किया। अन्तमें वह दशहजार हाथी, दसहजार रथ, दस लाख घोड़े, और एक करोड़ पैदल सैन्यकी ऐश्वर्यवाला राजाधिराज हुवा। अनेक प्रकारकी विद्यावाले मदोन्मत हजारों विद्याधरों को भी उसने अपने वश किये। अन्तमें देवेन्द्रके समान अखंड बड़े राज्यका सुख भोगते हुए उसपर जो पहले देव प्रसन्न हुवा था। और जिस-ने उसे वरदान दिया था। उस देवका कुछ भी काम न पड़नेसे जब उसे कभी भी याद न किया गया तब उस देव ने स्वयं आकर देवकुरु क्षेत्रकी भूमिके समान उस राजाकी जितनी भूमिमें आज्ञा मानी जाती है उन देशोंमें और उसके सामंत राजा एवं उसे खंडणी देनेवाले राजाओंके देशोमें मारी वगैरह सर्व प्रकारके उपद्रव दूर किये;

जिससे उन सब देशोंकी प्रजा सब प्रकारसे सुखमें ही रहती थी, पूर्वभवमें एक लाख पंखड़ीवाला कमल भगवान पर चढाया था उससे ऐसी बड़ी राज्यसंपदा पाया है तथापि त्रिकाल पूजा करनेवाले पुरुषोंमें धर्मदत्त अग्रणी पद भोगता है। इतना ही नहीं परन्तु अपने उपकारी का अधिक सन्मान करना योग्य समझ कर उसने उस त्रिकाल पूजामें वृद्धि की, बहुतसे मन्दिर बनवाये; बहुतसी संघयात्रायें कीं बहुतसी रथयात्रा, तीर्थयात्रा, स्नात्रादिक महोत्सव करके उसने अधिकाधिक प्रकारसे अपने उपकारी धर्मका सेवन किया, इससे वह दिनों दिन अधिकाधिक सर्व प्रकारकी संपदायें पाता गया। 'यथा राजा तथा प्रजा' जैसा राजा वैसी ही प्रजा होती है, ऐसी न्यायोक्ति होनेसे उसकी सर्व प्रजा भी अत्यंत नीति मार्गका अनुसरण करती हुई जैनधर्मी होनेसे दिन पर दिन सर्व प्रकारसे अधिकाधिक कलाकौशल्यता और ऋद्धि समृद्धिवाली होने लगी। धर्मदत्त राजाने योग्य समयमें अपने बड़े पुत्रको राज्य समर्पण कर के अपनी कितनी एक रानियों सहित सद्गुरुके पास दीक्षा लेकर अरिहंत की भक्तिमें अत्यंत लीन हो वर्तनेसे अन्तमें तीर्थंकर गोत्र उपार्जन किया। वह अपना दो लाख पूर्वका सर्वायु पूर्णकर अन्तमें समाधीमरन पा के सहस्रार नामा आठवें देवलोक में महर्धिक देव उत्पन्न हुवा, इतना ही नहीं परंतु उसकी चार मुख्य रानियां शुद्ध संयम पाल कर उसी तीर्थंकर के गणधर होनेका शुभ कर्म निकाचित बंधन करके काल कर उसी देवलोकमें मित्रदेव तया उत्पन्न हुई। ये पाचों जीव वहांसे च्यव कर महाविदेह क्षेत्रमें तीर्थंकरगणधर पद भोग कर साथ ही मोक्ष पदको प्राप्त हुये।

इस प्रकार श्री जिनराजदेव की विधिपूर्वक बहुमान से की हुई पूजाका फल प्रकाशित हुवा, ऐसा जानकर जो पुरुष ऐसे शुभ कार्योंमें विधि और बहुमान से जिनराज की पूजामें उद्यम करता है सो भी ऐसाही उत्तम फल पाता है। इसलिये भव्यजीवोंको देवपूजादि धर्मकृत्य विधि और बहुमान पूर्वक करना चाहिये

"मन्दिरकी उचित चिन्ता-सार संभाल"

"उचिय चिन्त रओ" उचितःचिन्तामें रहे। मन्दिरकी उचित चिन्ता याने वहांपर प्रमार्जना करना कराना विनाश होते हुए मन्दिरके कोने या दीवार तथा पूजाके उपकरण, थाली, कचोली, रकेबी, कुंडी, लोटा कलश वगरह की संभाल रखना, साफ कराना, शुद्ध कराना, प्रतिमाके परिकर को उगटन कराकर निर्मल कराना, दीपकादि साफ रखने, जिसका स्वरूप आगे कहा जायगा ऐसी आशातना वर्जना। मंदिरके बादाम, चावल, नैवेद्यको, संभाल कर रखना, बेचनेकी योजना करना, उसका पैसा खातेमें जमा करना, चन्दन केशर, धूप,घी, तेल प्रमुखका संग्रह करना; जो युक्ति आगे बतलायी जायगी वैसी युक्तिसे चैत्य द्रव्यकी रक्षा करना, तीन या चार या इससे अधिक श्रावकोंको साक्षी रखकर मन्दिरका नांवा लेखा और उघरानी करना कराना उस द्रव्यको यतनासे सबकी सम्मति हो ऐसे उत्तम स्थान पर रखना, उस देव द्रव्यकी आय, और व्यय वगैरह का साफ हिसाब रखना और रखाना। तथा मन्दिरके कार्यके लिए रक्खे हुए नौकरोंको भेज कर देवद्रव्य वसूल कराना, उसमे देवद्रव्य कहीं दब न जाय ऐसी यतना रखना, उस काममें योग्य पुरुषोंको रखना, उघरानीके योग्य देवद्रव्य की रक्षा करनेके योग्य, देवका कार्य करनेके योग्य, पुरुषोंको रखकर उन पर निगरानी

रखना। यह सब मन्दिरकी उचित चिन्ता गिनी जाती है, इसमें निरन्तर यत्न करना चाहिये। यह चिन्ता अनेक प्रकारकी है, जो श्रावक सम्पदावान हो वह स्वयं तथा अपने द्रव्यसे एवं अपने नोकरोंसे सुखपूर्वक तलाश रखावे और जो द्रव्यरहित श्रावक है वह अपने शरीरसे मन्दिरका जो कार्य बन सकें सो करे अथवा अपने कुटुम्ब किसी अन्यसे कराने योग्य हो तो उससे करावे। जिस प्रकारका सामर्थ्य हो तदनुसार कार्य करावे, परन्तु यथा शक्तिको उल्लंघन न करे। थोड़े टाइममें बन सके यदि कोई ऐसा मन्दिरका कार्य हो तो उसे दूसरी निःसिही करनेके पहले करले, और यदि थोड़े टाईममें न बन सके ऐसा कार्य हो तो उसे दूसरी निःसिही क्रिया किये बाद यथायोग्य यथाशक्ति करे। इसी प्रकार धर्मशाला, पोषधशाला, गुरुज्ञान वगैरह की सार सम्भाल भी यथाशक्ति प्रतिदिन करनेमें उद्यम करे। क्योंकि देव, गुरु धर्मके कामकी सार सम्भार श्रावकके बिना अन्य कौन कर सकता है? परन्तु चार ब्राह्मणोंके बीच मिली हुई एक सारन गौके समान आलस्यमें उपेक्षा न करना। क्योंकि देव, गुरु, धर्मके कार्यकी उपेक्षा करे और उसकी यथशक्ति सार सम्भाल न करे तो समकितमें भी दूषण लगता है। यदि धर्मके कार्यमें आशातना होती हो तथापि उसे दूर करनेके लिए तैयार न हो या आशातना होती देख कर जिसके मनमें दुःख न हो ऐसे मनुष्यको अर्हत पर भक्ति है यह नहीं कहा जा सकता। लौकिकमें भी एक दृष्टान्त सुना जाता है कि, कहीं पर एक महादेव की मूर्ति थी उसमेंसे किसीने आंख निकाल ली उसके भक्त एक भीलने देख कर मनमें अत्यन्त दुःखित हो तत्काल अपनी आंख निकाल कर उसमें चिपकादी। इसलिए अपने सगे सम्बन्धियों का कार्य हो उससे भी अधिक आदर पूर्वक मन्दिर आदिके कार्यमें नित्य प्रवृत्तमान रहना योग्य है। कहा भी है कि:—

देहे द्रव्ये कुटुम्बे च सर्व साधारणारति।
जिने जिनमते संघे पुनर्मोक्षाभिलाषिणां ॥ १ ॥

शरीर पर, द्रव्य पर और कुटुम्ब पर सर्व प्राणियोंको साधारण प्रीति रहती है, परन्तु मोक्षाभिलाषी पुरुषोंको तीर्थंकर पर, जिनशासन पर, और संघपर अत्यन्त प्रीति होती है।

"आशातना के प्रकार"

ज्ञानकी, देवकी, और गुरुकी, इन तीनोंकी आशातना जघन्य, मध्यम, और उत्कृष्ट, एवं तीन प्रकारकी होती है।

ज्ञानकी जघन्य आशातना—पुस्तक, पट्टी, टीपन, जयमाल वगैरह को मुखमेंसे निकला हुवा थूक लगानेसे, अक्षरोंका न्यूनाधिक उच्चारण करनेसे, ज्ञान उपकरण अपने पास होने पर भी अधोवायु सरनेसे होती है यह सर्व प्रकारकी ज्ञानकी जघन्य आशातना समझना।

अकालमें पठन, पाठन, श्रवण, मनन करना, उपधान; योगवहे बिना सूत्रका अध्ययन करना, भ्रान्तिसे अशुद्ध अर्थकी कल्पना करना, पुस्तकादि को प्रमादसे पैर वगैरह लगाना, जमीन पर डालना, ज्ञानके उपकरण पास होते पर, आहार-भोजन करना या लघुनीति करना, यह सब प्रकारकी ज्ञानकी मध्यम आशातना समझना।

पट्टी पर लिखे हुए अक्षरोंको थूंक लगाकर मिटाना, ज्ञान अथवा ज्ञानके उपकरण पर बैठना, सोना, ज्ञान या ज्ञानके उपकरण अपने पास होते हुए बड़ी नीति करना टट्टी जाना, ज्ञानकी या ज्ञानीकी निन्दा करना, उसका सामना करना, ज्ञानका, ज्ञानीका नाश करना, सूत्रसे विपरीत भाषण करना; यह सब ज्ञानकी उत्कृष्ट आशातना गिनी जाती है।

"देवकी आशातना"

देवकी जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट एवं तीन प्रकारकी आशातना हैं। जघन्य आसातना—वासक्षेपकी, वरासकी, और केशरकी डब्बी, तथा रकेबी कलश प्रमुख भगवान के साथ अथड़ाना या पछाड़ना। अथवा नासिका, मुखको स्पर्श किये हुये वस्त्र प्रभुको लगाना। यह देवकीजघन्य आशातना समझना।

मुख कोष बांधे विना या उत्तम निर्मल धोती पहने बिना प्रभुकी पूजा करना, प्रभुकी प्रतिमा जमीन पर डालना, अशुद्ध पूजन द्रव्य प्रभु पर चढ़ाना, पूजाकी विधिका अनुकम उल्लंघन करना। यह मध्यम आशातना समझना।

"उत्कृष्ट आशातना"

प्रभुकी प्रतिमाको पैर लगाना, श्लेष्म, खंकार, थूंक वगैरह के छींटे उड़ाना, नासिका के श्लेष्मसे मलीन हुये हाथ प्रभुको लगाना, अपने हाथसे प्रतिमाको तोड़ना, चुराना, चोरी कराना, बचनसे प्रतिमाके अवर्णवाद बोलना, इत्यादि उत्कृष्ट आशातना जानना।

दूसरे प्रकारसे मन्दिरकी जघन्यसे १०, मध्यमसे ४०, और उत्कृष्टसे ८४, आसातना वर्जना सो बतलाते हैं।

१ मन्दिरमें तंबोल पान सुपारी खाना. २ पानी पीना, ३ भोजन करना, ४ जूता पहन कर जाना, ५ स्त्री भोग करना, ६ शयन करना, ७ थूंकना, ८ पिशाब करना, ९ बड़ी नीति करना, १० जुआ वगैरह खेल करना, इस प्रकार मन्दिरके अन्दरकी दस जघन्य आसातना वर्जना।

१ मन्दिरमें पिशाब करना, २ बड़ीनीति करना, ३ जूता पहरना, ४ पानी पीना, ५ भोजन करना, ६ शयन करना, ७ स्त्रीसंभोग करना, ८ पान सुपारी खाना, ९ थूंकना, १० जुवा खेलना, ११ जूं खटमल वगैरह देखना, या चुनना, १२ विकथा करना, १३ पल्होटी लगाकर बैठना, १४ पैर पसार कर बैठना, १५ परस्पर विवाद करना, (वड़ाई करना) १६ किसीकी हंसी करना, १७ किसीपर ईर्षा करना, १८ सिंहासन, पाट, चौकी वगैरह उंचे आसन पर बैठना, १९ केश शरीरकी विभूषा करना, २० छत्र धारण करना, २१ तलवार पास रखना, (किसी भी प्रकारका शस्त्र रखना) २२ मुकुट रखना, २३ चामर धारण करना, २४ धरना डालना, (किसीके पास लेना हो उसे मन्दिरमें पकड़ना,) २५ स्त्रियोंके साथ कामविकार तथा हास्य विनोद करना, २६ किसी भी प्रकारकी क्रीड़ा करना, २७ मुखकोष बांधे बिना पूजा करना, २८ मलिन वस्त्र या मलिन शरीरसे पूजा करना, २९ भगवान की पुजा करते समय भी चंचल चित्त रखना, ३० मन्दिरमें प्रवेश करते समय सचित्त वस्तुका त्याग न करना, ३१ अचित्त वस्तु शोभाकारी हो उसे दूर रखना, ३२ एक अखंड वस्त्र

का उत्तरासन किये विना मन्दिरमे जाना, ३३ प्रभुकी प्रतिमा देखने पर भी हाथ न जोड़ना, ३४ शक्ति होनेपर भी प्रभुकी पूजा न करना, ३५ प्रभुपर चढ़ाने योग्य न हों ऐसे पदार्थ चढ़ाना, ३६ पूजा करनेमें अनादर रखना, भक्ति बहुमान न रखना, ३७ भगवान की निन्दा करने वाले पुरुषोंको न रोकना, ३८ देव द्रव्य का विनाश होता देख उपेक्षा करना; ३९ शक्ति होनेपर भी मन्दिर जाते समय सवारी करना, ४० मन्दिरमे बड़ोसे पहले चैत्य-वन्दन या पूजा करना, जिन भुवनमें रहते हुए उपरोक्त कारणोंमे से किसी भी कारणको सेवन करे तो वह मध्यम आशातना होती है उसे वर्जना।

१ नासिकाका मैल मन्दिरमे डालना, २ जुवा, तास, सतरंज, चौपड़ वगैरह खेल मन्दिरमे करना, ३ मन्दिरमें लड़ाई करना; ४ मंदिरमें किसी कलाका अभ्यास करना ५ कुल्ला करना; ६ तांबूल खाना, ७ तांबूल खाकर मन्दिरमे कुवा डालना, ८ मन्दिरमे किसीको गाली देना, ९ लघु नीति वड़ी नीति करना, १० मन्दिरमे हाथ पैर मुख शरीर धोना, ११ केस संवारना, १२ नख उतारना, १३ रक्त डालना, १४ सूखड़ी वगैरह खाना, १५ गूमड़ा, चाठें वगैरह की चमडी उखाड कर मन्दिरमें डालना; १६ मुखमेंसे निकला हुवा पित्त वगैरह मन्दि-रमें डालना, १७ वहांपर वमन करना, १८ दांत टूट गया हो सो मन्दिरमें डालना, १९ मन्दिरमें विश्राम करना, २० गाय, बैल, भैंस, ऊंट, घोड़ा, बकरा. वगैरह पशु मन्दिरमें बांधना, २१ दांतका मैल डालना, २२ आंखका मैल डालना, २३ नख डालना, २४ गाल बाजना, २५ नासिकाका मैल डालना, २६ मस्तकका मैल डालना, २७ कानका मैल डालना, २८ शरीरका मैल डालना, २९ मन्दिरमें भूतादिक निग्रहके मंत्रकी साधना करना, अथवा राज्यप्रमुख के कार्यका विचार करनेके लिये पंच इकट्ठे होकर बैठना, ३० विवाह आदिके सांसारिक कार्योंके लिये मन्दिरमें पंचोंका मिलना, ३१ मन्दिरमें बैठ कर अपने घरका या व्यापार का नावाँ लिखना, ३२ राजाके विभागका कर या अपना सगे सम्बन्धियों को देने योग्य विभागका बांटना मन्दिरमें करना, ३३ मन्दिरमें अपने घरका द्रव्य रखना, या मन्दिरके भंडारमे अपना द्रव्य साथ रखना, ३४ मन्दिरमें पैर पर पैर चढ़ाकर बैठना ३५ मन्दिरकी भींत पर या चौंतरे वा ज़मीन पर उपले पाथ कर सुखाना, ३६ मन्दिरमे अपने वस्त्र सुखाना, ३७ मूंग, चणे, मोठ, अरहरकी दाल, वगैरह मन्दिरमें सुखाना, ३८ पापड़, ३९ वड़ी, शाक, अचार वगैरह करनेके लिये किसी भी पदार्थको मन्दिर में सुखाना, ४० राजा वगैरहके भयसे मन्दिरके गुभारे, भोंरे, भण्डार वगैरह में छिपना, ४१ मन्दिरमें बैठे हुए अपने किसी भी सम्बन्धिकी मृत्यु सुन कर रुदन करना, ४२ स्त्रीकथा राजकथा, देशकथा, भोजनकथा, मन्दिरमें ये चार प्रकारकी विकथा करना, ४३ अपने गृहकार्यके लिये मंदिरमें किसी प्रकार के यंत्र वगैरह शस्त्रादि तैयार कराना, ४४ गौ, भैंस बैल, घोड़ा, ऊंट वगैरह मंदिरमें बांधना, ४५ ठंडी आदिके कारणसे मन्दिरमें बैठकर अग्नि तापना, ४६ मन्दिरमें अपने सांसारिक कार्यके लिये रन्धन करना, ४७ मन्दिर में बैठकर रुपया, महोर, चांदी, सोना, रत्न वगैरह की परीक्षा करना, ४८ मन्दिरमें प्रवेश करते और निकलते हुए निःसिही और आवस्सिही न कहना, ४९ छत्र, ५० जुता, ५१ शस्त्र, चामर वगैरह मन्दिरमें लाना, ५२ मानसिक एकाग्रता न रखना, ५३ मन्दिरमें तेल प्रमुखका मर्दन कराना, ५४ सचित्त फूल वगैरह मन्दिरसे बाहर न निकाल डालना, ५५ प्रतिदिन पहरनेके आभूषण मन्दिर जाते हुये न पहनना, जिससे आशा-

तना हो क्योंकि लौकिक में भी निन्दा होती है कि, देखो यह कैसा धर्म है कि, जिसमें रोज पहरनेके आभूषणों की भी मन्दिर जाते मनाई है। ५६ जिनप्रतिमा देखकर हाथ न जोड़ना, ५७ एक पनेहवाले उत्तम वस्त्रका उत्तरासन किये विना मन्दिरमें जाना, ५८ मस्तक पर मुकुट बांध रखना, ५६ मस्तक पर मोली वेष्टित रखना (वस्त्र लपेट रखना), ६० मस्तक पर पगड़ी वगैरह में रक्खा हुवा फल निकाल न डालना, ६१ मन्दिरमें सरत करना, जैसे कि एक मुष्टोसे नारियल तोड़ डाले तो अमुक दूंगा। ६२ मन्दिरमें गेंदसे खेलना, ६३ मन्दिरमें किसी भी वड़े आदमीको प्रणाम करना, ६४ मन्दिरमें जिससे लोक हसें, ऐसी किसी भी प्रकारकी भांड चेष्टा करना, ६५ किसीको तिरस्कार वचन बोलना, ६६ किसीके पास लेना हो उसे मन्दिरमें पकड़ना अथवा मन्दिरमें लंघन कर उसके पाससे द्रव्य लेना, ६७ मन्दिरमें रणसंग्राम करना, ६८ मन्दिरमें केश संभारना, ६६ मंदिरमें पलौथी लगाकर बैठना, ७० पैर साफ रखनेके लिये मन्दिरमें काष्ठके खड़ाऊं पहरना, ७१ मन्दिरमें दूसरे लोगोंके सुभीतेकी अवगणना करके पैर पसारकर बैठना, ७२ शरीरके सुख निमित्त पैर दबवाना, ७३ हाथ, पैर धोनेके कारणसे मन्दिरमें बहुतसा पानी गिराकर जाने आनेके मार्गमें कीचड़ करना, ७४ धूळ वाले पैरोंसे आकर मन्दिरमे धूल झटकना, ७५ मन्दिरमें मैथुनसेवा कामकेलि करना, ७६ मस्तक पर पहनी हुई पगड़ीमें से या कपड़ोंमें से खटमल, जूं वगैरह चुनकर मन्दिरमें डालना, ७७ मन्दिरमे बैठकर भोजन करना, ७८ गुह्यस्थानको बराबर ढके बिना ज्यों त्यों बैठकर लोगोंको गुह्यस्थान दिखाना, तथा मन्दिरमें दृष्टि युद्ध या बाहु युद्ध करना, ७६ मन्दिरमें बैठकर वैद्यक करना, ८० मन्दिरमें बेचना, खरीदना करना, ८१ मन्दिरमें शय्या करके सोना, ८२ मन्दिरमें पानी पीना या मन्दिरकी अगाशी अथवा परनालेसे पड़ते हुए पानीको ग्रहण करना, ८३ मन्दिरमें स्नान करना, ८४ मन्दिरमें स्थिति करना रहना। ये देवकी चौरासी उत्कृष्ट आशातनायें होती हैं।

"बृहत् भाष्यमें निम्नलिखी मात्र पांच ही आशातना बतलाई हैं ?"

१ किसी भी प्रकार मन्दिरमें अवज्ञा करना, २ पूजामें आदर न रखना, ३ देवद्रव्यका भोग करना, ४ दुष्ट प्रणिधान करना, ५ अनुचित प्रवृत्ति करना। एवं पांच प्रकारकी आसातना होती है।

१ अवज्ञा आशातना—पलौथी लगाकर बैठना, प्रभूको पोठ करना, पैर दबवाना, पैर पसारना, प्रभूके सन्मुख दुष्ट आसन पर बैठना।

२ आदर न रखना, (अनादर आशातना, जैसे तैसे वेषसे पूजा करना, जैसे तैसे समय पूजा करना और शून्य चित्तसे पूजा करना।

३ देवद्रव्यका भोग (भोग आशातना) मन्दिरमें पान खाना, जिससे अवश्य प्रभुको आशातना हुई कही जाय, क्योंकि ताम्बूल खाते हुए ज्ञानादिकके लाभका नाश हुवा इसलिये आशातना कही जाती है।

४ दुष्ट प्रणिधान आशातना—राग द्वेष मोहसे मनोवृत्ति मलीन हुई हो वैसे समय जो क्रिया की जाती है उस प्रकारकी पूजा करना।

५ अनुचित प्रवृत्ति आशातना—किसीपर धरना देना, संग्राम करना, रुदन करना, विकथा करना, पशु

बांधना, रांधना, भोजन करना, कुछ भी घर सम्बन्धी क्रिया करना, गाली देना, वैद्यक करना, व्यापार करना, पूर्वोक्त कार्योंमें से मन्दिर में कोई भी कार्य करना उसे अनुचित प्रवृत्ति नामक आशातना कहते हैं। इसे त्यागना योग्य है।

ऊपर लिखी हुई सर्व प्रकारकी आशातनाके विषयोंमें अत्यन्त लोभी, अविरति, अप्रत्याख्यानी, ऐसे देवता भी वर्जते हैं, इसलिए कहा है कि:—

देव हरयंमि देवा विसयविस। विमोहि आवी न कयावि ॥
अच्छर साहिं पिस महा। संखिड्डाइं वि कुणन्ति ॥

विषय रूप विषसे मोहित हुये देवता भी देवालयमें किसी भी समय आशातनाके भयसे अप्सराओंके साथ हास्य, विनोद नहीं करते।

"गुरुकी ३३ आशातना"

१ यदि गुरुके आगे चले तो आशातना होती है; क्योंकि मार्ग बतलाने वगैरह किसी भी कार्यके विना गुरुके आगे चलनेसे अविनय का दोष लगता है।

२ यदि गुरुके दोनों तरफ बराबरमें चले तो अविनीत ही गिना जाय इसलिए आशातना होती है।

३ गुरुके नजीक पीछे चलनेसे भी खांसी छींक वगैरह आवे तो उससे श्लेष्म आदिके छींटे गुरुपर लगनेके दोषका संभव होनेसे आशातना होती है।

४ गुरुकी ओर पीठ करके बैठे तो अविनय दोष लगनेसे आशातना होती है।

५ यदि गुरुके दोनों तरफ बराबरमें बैठे तो भी अविनय दोष लगनेसे आशातना समझना।

६ गुरुके पीछे बैठनेसे थूक श्लेष्मके दोषका संभव होनेसे आशातना होती है।

७ यदि गुरुके सामने खड़ा रहे तो दर्शन करने वालेको हरकत होनेसे आशातना समझना।

८ गुरुके दोनों तरफ खड़ा रहनेसे समासन होता है अतएव यह अविनय है इसलिये आशातना समझना।

९ गुरुके पीछे खड़ा रहनेसे थूंक, श्लेष्म लगनेका संभव होनेसे आशातना होती है।

१० आहार पानी करते समय यदि गुरुसे पहले उठ जाय तो आशातना गिनी जाती है।

११ गमनागमन की गुरुसे पहले आलोचना ले तो आशातना समझना।

१२ रात्रिको सोये वाद गुरु पूछे कि कोई जागता है? जागृत अवस्थामें ऐसा सुनकर यदि आलस्यसे उत्तर न दे तो आशातना लगती है।

१३ गुरु कुछ कहते ही हों इतनेमें ही उनसे पहले आप ही बोल उठे तो आशातना लगती है।

१४ आहार पानी लाकर पहले दूसरे साधुओंसे कहकर फिर गुरुसे कहे तो आशातना लगती है।

१५ आहार पानी लाकर पहले दूसरे साधुओंको दिखला कर फिर गुरुको दिखलावे तो आशातना लगती है।

१६ आहार पानीका निमंत्रण पहले दूसरे साधुओंको फिर गुरुको करे तो आशातना लगती ।
१७ गुरुको पूछे विना अपनी मर्जीसे स्निग्ध, मधुर आहार दूसरे साधुको दे तो आशातना लगती है।
१८ गुरुको दिये बाद स्निग्धादिक आहार विना पूछे भोजन करले तो आशातना लगती है।
१९ गुरुका कथन सुना न सुना करके जवाब न दे तो आशातना समझना।
२० यदि गुरुके सामने कठिन या उच्च स्वरसे बोले, जवाब दे तो आशातना समझना।
२१ गुरुके बुलाने पर भी अपने स्थानपर बैठा हुआ ही उत्तर दे तो वह आशातना होती है।
२२ गुरुके किसी कार्यके लिए बुलाने पर भी दूरसे ही उत्तर दे कि क्या कहते हो?' तो आशातना लगती है।
२३ गुरुने कुछ कहा हो तो उसी वचनसे जवाब दे कि आप ही करलेना! तो आशातना समझना।
२४ गुरुका व्याख्यान सुन कर मनमें राजी न होकर उलटा दुःख मनाये तो आशातना होती है।
२५ गुरु कुछ कहते हों उस वक्त बीचमें ही बोलने लग जाय कि नहीं ऐसा नहीं है मैं कहता हूं वैसा है, ऐसा कहकर गुरुसे अधिक --विस्तारसे बोलने लग जाय तो आशातना होती है।
२६ गुरु कथा कहता हो उसे भंग कर बीचमें स्वयं बात करने लग जाय तो आशातना होती है।
२७ गुरुकी मर्यादा तोड़ डाले, जैसे कि अब गोचरीका समय हुवा है या पडिलेहन का वक्त हुवा है ऐसा कहकर सबको उठा दे तो गुरुका अपमान किया कहा जाय, इससे भी आशातना होती है।
२८ गुरुके कथा किये बाद अपनी अकलमन्दी बतलाने के लिए उस कथाको विस्तारसे कहने लग जाय तो गुरुका अपमान किया गिना जानेसे आशातना लगती है।
२९ गुरुके आसनको पग लगानेसे आशातना होती है।
३० गुरुकी शय्या, संथाराको पग लगानेसे आशातना होती है।
३१ यदि गुरुके आसन पर स्वयं बैठ जाय तो भी आशातना गिनी जाती है।
३२ गुरुसे ऊंचे आसन पर बैठे तो आशातना होती है।
३३ गुरुके समान आसन पर बैठे तो भी आशातना होती है।

आवश्यक चूर्णीमें तो 'गुरु कहता हो उसे सुनकर बीचमें स्वयं बोले कि हां! ऐसा है' तो भी आशातना होती है। यह एक आशातना बढ़ी, परन्तु इसके बदलेमें उसमें उच्चासन और समासन (बत्तीस और तेतीसवीं) इन दो आशातना को एक गिनाकर तेतीस रक्खीं है।

गुरुकी जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट ऐसे तीन प्रकारकी आशातना हैं।

१ गुरुको पैर वगैरहसे संघट्टन करना सो जघन्य आशातना। २ श्लेष्म खंकार और थूककी छींटें उड़ाना यह मध्यम आशातना और ३ गुरुका आदेश न मानना अथवा विपरीत मान्य करना उनके वचनको न सुनना, यदि सुने तो सन्मुख उत्तर देना या अपमान पूर्वक बोलना, यह उत्कृष्ट आशातना समझना।

"स्थापनाचार्यकी आशातना"

स्थापनाचार्य की आशातना भी तीन प्रकारकी हैं ? जहां स्थापन किया हो वहांसे चलाना, वस्त्रस्पर्श या अंगस्पर्श या पैरका स्पर्श करना यह जघन्य आशातना गिनी जाती हैं। २ भूमि पर गिराना, बेपर्वाई से रखना, अवगणना करना वगैरहसे मध्यम आशातना समझना। ३ स्थापनाचार्य को गुम कर देवे या तोड़ डाले तो उत्कृष्ट आशातना समझना।

इसी प्रकार ज्ञानके उपकरण के समान दर्शन, चारित्रके उपकरणकी आशातना भी वर्जना। जैसे कि रजोहरण (ओघा) मुखपट्टी, दंडा, आदि भी 'अहवानाणा इति अ' अथवा ज्ञानादिक तीनके उपकरण भी स्थापनाचार्य के स्थानमें स्थापन किये जा सकते हैं। इस वचनसे यदि अधिक रक्खे तो आशातना होती है। इसलिए यथायोग्य ही रखना। एवं जहां तहां रखड़ता न रखना। क्योंकि रखड़ता हुवा रखनेसे आशातना लगती है और फिर उसकी आलोचना लेनी पड़ती है। इसलिए महानिषीथ सूत्रमें कहा है कि,—"अवि हिए निअं सणुचरिअं रयहरणं दंडगं वा परिभुञ्जे चउथ्थं" यदि अविधिसे ऊपर ओढ़नेका कपड़ा रजोहरण, दण्डा, उपयोग मे ले तो एक उपवास की आलोयण आती है" इसलिए श्रावक को चर्वला मुह पती वगैरह विधि पूर्वकही उपयोग में लेना चाहिये। और उपयोग में लेकर फिर योग्य स्थान पर रखना चाहिये। यदि अविधि से वर्ते या जहाँ तहाँ रखड़ता रक्खे तो चारित्रके उपकरण की अवगणना करी कही जाय, और इससे आशातना आदि दोपकी उत्पत्ति होती है, इसलिए विवेक पूर्वक विचार करके उपयोग में लेना।

"उतसूत्रभापण आशातना"

आशातना के विपयमें उत्सूत्र (सूत्रमें कहे हुये आशयसे विपरीत) भापण करनेसे अरिहन्त की या गुरुकी अवगणना करना ये बड़ी आशातनायें अनन्त संसारका हेतु है। जैसे कि उत्सूत्र प्ररूपण से सावद्याचार्य, मरीचि जमाली, कुलवालुक, साधु, वगैरह बहुतसे प्राणी अनन्त संसारी हुए हैं। कहा है कि—

उत्सूत्र भासगाणं। बोहिनासो अणंत संसारो ॥
पाणच्चए विधिए। उस्सुत्तं ता न भासन्ति ॥ १ ॥
तिथ्थयर पवयण सूअं। आयरिअं गणहरं महढ्ढीअं।
आसायन्तो बहुसो। अणंत संसारिओ होई ॥ २ ॥

उत्सूत्र भापकके बोधि बीजका नाश होता है और अनन्त संसारकी वृद्धि होती है, इसलिए प्राण जाते हुए भी धीर पुरुष सूत्रसे विपरीत वचन नहीं बोलते। तीर्थंकर प्रवचन और जैनशासन, ज्ञान, आचार्य, गणधर, उपाध्याय, ज्ञानाधिक से महर्द्धिक साधु इन्होंकी आशातना करनेसे प्राणी प्रायः अनन्त संसारी होता है।

देवद्रव्यादि विनाश करनेसे या उपेक्षा करनेसे भयंकर आशातना लगती हैं सो बतलाते हैं।

इसी तरह देवद्रव्य, ज्ञानद्रव्य; साधारण द्रव्य तथा गुरुद्रव्यका नाश करनेसे या उसकी उपेक्षा करनेसे भी बड़ी आशातना होती है। जिसके लिए कहा है कि:—

चेइअ दव्वविणासे। इसिघाए पवयणस्सउड्डाहे ॥
संजई चउथ्थभंगे। मूलग्गी बोहिलाभस्स ॥

देव-द्रव्यका विनाश करे, साधुका घात करे, जैनशासन की निन्दा करावे, साध्वीका चतुर्थ व्रतभंग करावे तो उसके बोधिलाभ (धर्मकी प्राप्ति) रूप, मूलमें अग्नि लगना है। (ऊपरके चार काम करनेवाले को आगामि भवमें धर्मकी प्राप्ति नहीं होती) देवद्रव्यादि का नाश भक्षण करनेसे या अवगणना करनेसे समझना। श्रावक दिनकृत्य और दर्शनशुद्धि प्रकरण में कहा है:—

चेइअ दव्वं साहारणं च। जो दुहइ मोहिअ मइओ ॥
धम्मं सो न याणाइ। अहवा बद्धाउओ नरए ॥

चैत्यद्रव्य, साधारण द्रव्यका जो मूर्खमति विनाश करता है वह धर्म न पाये अथवा नरकके आयुका बन्ध करता है। इसी प्रकार साधारण द्रव्यका भी रक्षण करना। उसके लक्षण इस प्रकार समझना चाहिये।

देव द्रव्य तो प्रसिद्ध ही है परन्तु साधारण द्रव्य, मन्दिर, पुस्तक निर्धन श्रावक वगैरहका उद्धार करनेके योग्य द्रव्य जो रिद्धिवन्त श्रावकोंने मिलकर इकट्ठा किया हो उसका विनाश करना, उसे व्याज पर दिये हुये या व्यापार करनेको दिये हुएका उपयोग करना वह साधारण द्रव्यका विनाश किया कहा जाता है। कहा है कि,:—

चेइअ दव्व विणासे। तद्दव्व विणासणे दुविहभेए ॥
साहुओ विरूलमाणो। अणंत संसारिओ होई ॥

जिसके दो २ प्रकारके भेदकी कल्पना की जाती है ऐसे देव द्रव्यका नाश होता देख यदि साधु भी उपेक्षा करे तो अनन्त संसारी होता है। यहां पर देव-द्रव्यके दो २ भेदकी कल्पना किस तरह करना सो बतलाते हैं। देवद्रव्य काष्ट पाषाण, ईंट, नलिये वगैरह जो हो (जो देवद्रव्य कहाता हो) उसका विनाश, उसके भी दो भेद होते हैं। एक योग्य और दूसरा अतीतभाव। योग्य वह जो नया लाया हुवा हो, और अतीतभाव वह जो मन्दिरमें लगाया हुवा हो। उसके भी मूल और उत्तर नामके दो भेद हैं। मूल वह जो थंब कुम्भी वगरह है। उत्तर वह जो छाज नलिया वगैरह हैं, उसके भी स्वपक्ष और परपक्ष नामके दो भेद हैं। स्वपक्ष वह कि, जो श्रावकादिकों से किया हुवा विनाश है, और परपक्ष मिथ्यात्वी वगैरहसे किया हुवा विनाश। ऐसे देवद्रव्यके भेदकी कल्पना अनेक प्रकारकी होती है। उपरोक्त गाथामें अपि शब्द ग्रहण किया है, इससे श्रावक भी ग्रहण करना, याने श्रावक या साधु यदि देवद्रव्य का विनाश होते उपेक्षा करे तो वह अनन्त संसारी होता है।

यदि यहांपर कोई ऐसा पूछे कि, मन, वचन, कायसे, सावद्य करना, कराना, अनुमोदना करना भी जिसे त्याग है ऐसे साधुओंको देव द्रव्यकी रक्षा किस लिये करनी चाहिये ? (क्या देवद्रव्य की रक्षा करते हुए साधुको पाप न लगे ?) उत्तर देते हुए आचार्य कहते हैं कि, यदि साधु किसी राजा, दीवान, सेठ, प्रभु-

रके पाससे याचना करके घर, दुकान, गाम, ग्रास ले उसके द्रव्यसे नवीन मन्दिर बन्धावे तो उसे दोष लगता है परन्तु किसी भद्रिक जीवोंने तैयार बनाया हुवा मन्दिर धर्म आदिकी वृद्धिके लिए साधुको अर्पण किया हो या जीर्ण मन्दिर विनाश होता हो और उसका रक्षण करे तो उसमें साधुको किसी प्रकारकी चारित्रकी हानि नहीं होती, परन्तु अधिक वृद्धि होती है। क्योंकि भगवान की आज्ञाका पालन किया गिना जाता है। इस विषयमें आगममें भी कहा है कि:—

चीराइ चेइआणं। खित्त हिरन्ने अ गाय गोवाई।
लग्गं ।स्सउ जईणो तिगरणो सोहि कहंतु भवे॥ १॥
भन्नई इथ्थवि भासा। जो रायाइं सयं वि मग्गिज्जा॥
तस्स न होई सोही अहकोई हरिज्ज एयाइं॥ २॥
तथ्थ करन्तु उवेहं साजा भणिआओ तिगरण विसोहि।
सायन होई अभत्ती अवस्स तम्हा निवारिज्जा॥ ३॥
सव्वथ्थामेण तेहिं संदेणाय होई लग्गि अव्वन्तु॥
सचरित्त चरित्तीणय सव्वेसि होई कज्जन्तु॥ ४॥

मन्दिरके कार्यके लिए देवद्रव्य की वृद्धि करते हुए क्षेत्र, सुवर्ण, चांदी, गांव गाय, बैल, वगैरह मन्दिरके निमित्त उपजानेवाले साधुको त्रिकर्ण योगकी शुद्धि कैसे हो सकती है? ऐसा प्रश्न करनेसे आचार्य महाराज उत्तर देते हैं कि यदि ऊपर लिखे हुए कारण स्वयं करे याने देवद्रव्य की वृद्धिके लिये स्वयं याचना करे तो उसके चारित्र की शुद्धि न की जाय, परन्तु उस देवद्रव्य की (क्षेत्र, ग्राम, ग्रास, वगैरहकी) यदि कोई चोरी करे, उसे खा जाय, या दवा लेता हो तो उसकी उपेक्षा करनेसे साधुको त्रिकर्ण की विशुद्धि नहीं कही जा-सकती। यदि शक्ति होनेपर भी उसे निवारण न करे तो अभक्ति गिनी जाती है, इसलिए यदि कोई देवद्रव्यका विनाश करता हो तो साधु उसे अवश्य अटकावे। न अटकावे तो उसे दोष लगता है। देवद्रव्य भक्षण करनेवाले के पाससे यदि द्रव्य पीछे लेनेके कार्यमें कदापि सर्वसंघका काम पड़े तो साधु श्रावक भी उस कार्यमें लग कर उसे पूरा करना। परन्तु उपेक्षा न करना। दूसरे ग्रन्थों में भी कहा है कि:—

भरकखेइ जो उवेरकखेइ। जिणदव्वं तु सावओ॥
पन्नाहीणो भवे जीअ। लिप्पए पावकम्मुणा॥ १॥

देवद्रव्यका भक्षण करे या भक्षण करने वालेकी उपेक्षा करे या प्रज्ञा हीनतासे देवद्रव्य का उपयोग करे तथापि पापकर्म से लेपित होता है। प्रज्ञा हीनता याने किसीको देवद्रव्य अंग उधार दे, कम मूल्यवाले गहने रखकर अधिक देवद्रव्य दे, इस मनुष्यके पाससे अमुक कारणसे देवद्रव्य पीछे वसूल करा सकूंगा ऐसा विचार किये बिना ही दे। इन कारणोंसे अन्तमें देवद्रव्यका विनाश हो इसे प्रज्ञा हीनता कहते हैं। अर्थात् विना विचार किये किसीको देवद्रव्य देना उसे प्रज्ञाहीनता कहते हैं।

आयाणं जो भंजई पडिवन्न धणं न देइ देवस्य।

नस्संतो समवेरूखई सोविहु परिभवई संसारे ॥ २ ॥

जो श्रावक मन्दिरकी आयका भंग करता हैं, देवद्रव्यमें देना कबूल कर फिर नहीं देता, देवद्रव्य का नाश होते हुये उसकी उपेक्षा करता है वह संसार में अधिक समय तक परिभ्रमण करता है।

जिण पवयण वुढ्ढी करं । पभ्भावगं नाणदंसणगुणाणां।
भख्खन्तो जिणदव्वं अणंत संसारिओ होई ॥ ३ ॥

जिन प्रवचन की वृद्धि करानेवाला (देवद्रव्यसे मन्दिरमें बारम्बार शोभाकारी कार्य होते हैं, बड़ी पूजायें पढाई जाती हैं, उसमें देवद्रव्यका सामान कलशादिक उपयोगी होता है, जिस मन्दिरमें देवद्रव्य का सामान विशेष हो वहांपर बहुतसे लोक आनेसे बहुतोंके मनमें दर्शनका उत्साह भरता है) ज्ञान, दर्शन, चारित्र वगैरह गुणोंकी वृद्धि करानेवाला (मन्दिरमें अधिक मुनियोंके आनेसे उनके उपदेशादिक को सुनकर बहुतसे भव्य जीवोंको ज्ञान दर्शनकी वृद्धि होती है) जो देवद्रव्य है उसे जो प्राणी भक्षण करता है वह अनन्त संसारी होता है।

जिण पवयण वुढ्ढीकरं पभ्भावगं नाण दन्सण गुणाणं॥
रख्खंतो जिणदव्वं परिस संसारिं ओ होई ॥ ४ ॥

जिन प्रवचन की वृद्धि करानेवाला ज्ञान दर्शन गुणको दिपानेवाला जो देवद्रव्य है उसका जो प्राणि रक्षण करता है वह अल्प भवोंमें मोक्ष पदको पाता है।

जिण पवयण वुढ्ढीकरं पभ्भावगं नाणदंसणगुणाणं।
वुड्ढन्तो जिणदव्वं तिथ्थकरत्तं लहई जीवो ॥ ५ ॥

जिन प्रवचनकी वृद्धि करानेवाले और ज्ञान दर्शन गुणको दीपानेवाले देवद्रव्यकी जो प्राणवृद्धि करता है वह तीर्थंकर पदको पाता है। (दर्शन शुद्धि प्रकरणमें इस पदकी वृत्तिमें लिखा है कि देवद्रव्य के बढ़ाने वालेको अरिहंत पर बहुत ही भक्ति होती है, इससे उसे तीर्थंकर गोत्र बंधता है।

"देवद्रव्यकी वृद्धि कैसे करना ?"

जिसमें पंद्रह कर्मादान के कुव्यवहार हैं उनमें देवद्रव्यका लेन देन न करना परन्तु सच्चे मालका लेनदेन करनेवाले सद्व्यापारियों के गहने रख कर उनपर देवद्रव्य सूद पर देकर विधि पूर्वक वृद्धि करना। ज्यों त्यों या विना गहने रक्खे या पन्द्रह कर्मादान के व्यापार करनेवाले को देकर देवद्रव्य की वृद्धि न करना इसके लिए शास्त्रकार ने लिखा है कि, :—

जिणवर आणा रहियं वध्दारन्तावि केवि जिणदव्वं।
वुड्डन्ति भव समुद्दे मूढा मोहेण अन्नाणी ॥ ६ ॥

जिसमें जिनेश्वरदेव की आज्ञा खंडन होती हो उस रीतिसे देवद्रव्य को वृद्धि करनेवाले भी कितने एक मूर्ख मोहसे अज्ञानी जीव भव समुद्रमें डूबते हैं।

कितनेक आचार्य कहते हैं कि, श्रावकके विना यदि दूसरेको देवद्रव्य धीरना हो तो अधिक मूल्यवान

गहना रखकर ही व्याज पर दिये हुये देवद्रव्य की वृद्धि करना उचित है परन्तु वगैर गहना रक्खे देना उचित नहीं। तथा सम्यक्त्व पच्चीसीकी वृत्तिमे आई हुई शंका शेठकी कथामें भी गहने पर ही देवद्रव्य वृद्धि करना लिखा है।

"देवद्रव्य भक्षण करने पर सागरशेठका दृष्टान्त"

साकेत नगरमें सागर शेठ नामक परम दृढधर्मी श्रावक था, उसे उस गांवके अन्य सव श्रावकोंने मिलकर कितनाएक देवद्रव्य दिया और कहा कि, मन्दिरका काम करने वाले सुतार, राज, मजदूरोंको इस द्रव्यमेंसे देते रहना और उसका हिसाव लिखकर हमे वतलाना। अव सागर शेठ लोभान्ध होकर सुतार वगैरहको रोकड़ा द्रव्य न देकर देव द्रव्यके पैसेसे सस्ता मूल्यवान् धान्य, घी, गुड़, तेल, वस्त्र वगैरह खरीद-कर देता है और वीचमें लाभ रहे वह अपने घरमें रख लेता है। ऐसा करनेसे एक रुपयेकी अस्सी कांकनी होती हैं, ऐसी एक हजार कांकनियों का लाभ उसने अपने घरमें रक्खा। फक्त इतने ही देवद्रव्य के उपभोग से उसने अत्यन्त घोरतर दुष्कर्म उपार्जन किया। उस दुष्कर्मकी आलोचना किये विना मृत्यु पाके वह समुद्रमें जल मनुष्य तया उत्पन्न हुवा। वहांपर लाखों जल जन्तुओंका भक्षण करता रहनेसे उन जल जन्तुओंके वचावके लिए और उस जलचर मनुष्यके मस्तकमें रहे हुये एक गोली रूप रत्नको लेनेके लिए उसे वहुतसे प्रपंच द्वारा पकड़ कर समुद्रके किनारे रहने वाले परमाधामी के समान निर्दय लोगोने एक वड़ी वज्रके जैसी कठिन चक्कीमें डालकर कोल्हूके समान पीलनेसे उत्पन्न होती हुई अत्यन्त वेदनाको भोगकर मरण पाकर अन्तमे वह तीसरे नरकमें नारकी उत्पन्न हुवा। वेदान्तमें कहा है कि,

> देवद्रव्येण या वृद्धि। गुरुद्रव्येण यद्धनं॥
> तद्धनं कुलनाशाय मृतोऽपि नरकं व्रजेत्॥

देव द्रव्यसे जो अपने द्रव्यकी वृद्धि करता है और गुरु द्रव्यका जो अपने घरमें संचय करता है, यह दोनों प्रकारका धन कुलका नाश करने वाला होनेसे यदि उसका उपभोग करे तो वह मरकर भी नरकमे ही पैदा होता है।

फिर उस सागर शेठका जीव नरकमे से निकल कर वड़े समुद्रमें पांच सौ धनुष्य प्रमाण वड़े शरीर वाला मत्स्य तया उत्पन्न हुवा। उसे मछयारे लोकोंने पकड़ कर उसका अंगोपांग छेदन कर उसे महा कदर्थना उपजाई। उसे वड़े कष्टसे सहन कर मरण पाकर अन्तमें वह चौथी नरकमें नारकीयतया उत्पन्न हुवा। इस अनुक्रम से वीचमें एकेक तिर्यंचका भव करके पांचवी, छटी, और सातवी नरकमें दो २ दफा उत्पन्न हुवा। फिर देवद्रव्य का मात्र एक हजार कांकनी जितना ही द्रव्य भोगा हुवा होनेसे वह एक हजार दफा मेड़के भवमें उत्पन्न हुवा, हजार दफा खरगोस वना, हजार दफा मृग हुवा, हजार वार वारहसिंगा हुवा, हजार दफा गीदड़ हुवा, हजार दफा विल्ला वना, हजार दफा, चूंहा वना, हजार दफा, न्योल हुवा, हजार दफा कोल हुवा, हजार दफा छपकी वना हजार वार परडा गोय वना, हजार दफा सर्प, हजार दफा विच्छू, हजार वार गंदकीमें कीड़ा, इस प्रकार हजार २ भवकी संख्यासे पृथ्वीमें, पानीमें, अग्निमे, वायुमें, वनस्पतिमे, शंखमें

छीपमें, ओखमें, कीडोंमें, पतंगमें, मक्खीमें, भ्रमरमें, मत्स्योंमें, कछुआमें, भैसोंमें, बैलोंमें, ऊंटमें, खच्चरमें, घोड़ामें, हाथी वगैरहमें लाखों भव करके प्रायः सर्वभवोंमें शस्त्राघात वगैरहसे उत्पन्न होती महावेदनाको भोग कर मृत्यु पाया। ऐसे करते हुये जब उसके बहुतसे कर्म भोगनेसे खप गये तब वह वसन्तपुर नगरमें कोटीश्वर वसुदत्त शेठ और उसकी वसुमति स्त्रीका पुत्र बना; परन्तु गर्भमें आकर उत्पन्न होते ही उसके माता पिताका सर्व धन नष्ट हो गया और जन्मते ही पिताकी मृत्यु होगई। उसके पांचवें वर्ष माता भी चल बसी; इससे लोगोंने मिलकर उसका निष्पुण्यक नाम रक्खा। अब वह रंकके समान भिक्षुक वृत्तिसे कुछ युवावस्थाके सन्मुख हुवा; उस वक्त उसे उसका मामा मिला और वह उसे देख कर दया आनेसे अपने घर ले गया। परन्तु वह ऐसा कमनशीब कि, जिस दिन उसे मामा अपने घर ले गया उसी दिन रातको उसके घरमें चोरी हो गई और चोरीमें जो कुछ था सो सब चला गया। उसने समझा कि, इसके नामानुसार सच मुच यही अभागी है इससे उसे उसने अपने घरसे बाहर निकाल दिया। इसी तरह अब वह निःष्पुण्यक जहां जहां जिसके घर जाकर एक रात या एक दिन निवास करता है वहां पर चोर, अग्नि, राजविप्लव वगैरह कोई भी उपद्रव घरके मालिक पर अकस्मात आ पड़ता है, इससे उस निष्पुण्यक की निःष्पुण्यकता मालूम होनेसे उसे धक्के मिलते हैं। ऐसा होनेसे झुंझला कर लोगोंने मिल कर उसका मूर्तिमान उत्पात ऐसा नाम रक्खा। लोग आकर निन्दा करने लगनेसे वह बिचारा दुखी हो कर देश छोड़ परदेश चला गया। ताम्रलिप्ति पुरीमें आकर वह एक विनयंधर शेठके घर नौकर रहा। वहां पर भी उसी दिन उस शेठका घर जल उठा। यह इस महाशयके चरणकमलोंका ही प्रताप है ऐसा जान कर उसे बावले कुत्तेके समान घरमेंसे निकाल दिया। अन्यत्र भी वह जहां जहां गया वहां पर वैसे ही होने लगा इससे वह दुखी हो विचारने लगा कि, अब क्या करूं! उदर पूरनाका कोई उपाय नहीं मिलता इससे वह अपने दुष्कर्मकी निन्दा करने लगा।

कम्मं कुणंति सवसा। तस्सूदयं मित्र परवसाहुन्ति।
सुख्खं दुरुहइ सवसो। निवडेई परव्वसो तत्तो॥

जैसे वृक्ष पर चढने वाली बेल अपनी इच्छानुसार सुगमतासे चढ़ती है परन्तु जब वह गिरता है तब किसीका धक्का या आघात लगनेसे परवशतासे ही पड़ती है वैसे ही प्राणी जब कर्म करते हैं तब अपनी इच्छानुसार करते हैं परन्तु जब उस कर्मका उदय आता है तब परवशतासे भोगना पड़ता है। वैसे ही निष्पुण्यक मनमें विचारने लगा कि, इस जगह मुझे कुछ भी सुखका साधन नहीं मिल सकता; इसलिये किसी अन्य स्थान पर जाऊं जिससे मुझे कुछ आश्रय मिलनेसे मैं सुखका दिन भी देख सकूं। यह विचार कर वहां पास रहे हुए समुद्रके किनारे गया। उस वक्त वहांसे एक जहाज कहीं परदेशमें लंबी मुशाफरी के लिए जाने वाला था। उस जहाजका मालिक धनावह नामक सेठ था उसने उस निष्पुण्यक को नौकरतया साथमें ले लिया। जहाज समुद्र मार्गसे चल पड़ा और सुदैवसे जहां जाना था अन्तमें वहां जा पहुंचा। निष्पुण्यक विचारने लगा कि, सचमुच हो मेरा भाग्योदय हुवा कि जो

मेरे जहाजमें बैठने पर भी वह न तो डूबा और न उसमें कुछ उपद्रव हुवा, या इस वक्त मुझे दैव भूल ही गया है! जिस तरह आते समय दुर्दैवने मेरे सामने नहीं देखा यदि वैसे ही पीछे फिरते वक्त वह मेरे सामने दृष्टि न करे तो ठीक हो। इसी विचारमे उसे वहांपर बहुतसे दिन बीत गये। यद्यपि वहां पर कुछ उद्यम न करनेसे उसे कुछ अलभ्य लाभ नहीं हुवा; परन्तु उसके सुदैवसे वहांपर कुछ उपद्रव न हुवा उसके लिए यही एक बड़े भाग्यकी बात हैं। वह अपने निर्भाग्यपन की वार्ता कुछ भूल नहीं सकता, एवं उसे भी इस बातकी तसल्ली ही है कि आते समय तो मेरे सुदैवसे कुछ न हुवा परन्तु जाते वक्त परमात्मा ही खैर करें। उसे अपनी स्थितिके अनुसार पद पदमें अपने भाग्य पर अविश्वास रहता था, इससे वह विचार करता है कि, न बोलनेमें नव गुण हैं, यदि मैं यहां किसीसे अपने भाग्यशाली पनकी बात कहूंगा तो मुझे यहांसे कोई वापिस न ले जायगा इसलिये अपने नशीबकी बात किसी पर प्रकट करना ठीक नहीं, अब वह एक दिन पीछे आते हुए एक साहूकारके जहाजमें चढ़ बैठा, परन्तु उसके मनकी दहसत उसे खटक रही थी, मानो उसकी चिन्तासे ही वैसा न हुवा हो समुद्रके बीच जहाज फट गया। इससे सब समुद्रमें गिर पड़े। भाग्यशालियों के हाथमें तख्ते आजानेसे वे ज्यों त्यों कर बाहार निकले। निष्पुण्यको भी उसके नशीबसे एक तख्ता हाथ आ गया, उससे वह भी बड़ी मुष्किलसे समुद्रके किनारे आ लगा। वहांपर नजीकमे रहे किसी गांवमें वह एक जमीनदारके यहां नौकर रहा। उस दिन तो नहीं परन्तु दूसरे दिन अकस्मात वहांपर डांका पड़ा, जिसमें जमीनदार का तमाम माल लुट गया, इतना ही नहीं परन्तु उस डांकेके डाकू लोग उस निष्पुण्यकको भी जमीनदारका लड़का समझ उठा लेगये। जब वे जंगलमें उस धनको बांट रहे थे उस वक्त समाचार मिलनेसे उनके शत्रु दूसरे डांकुओंने उन पर धावा करके तमाम धन छीन लिया और वे जंगलमे भाग गये। इससे उन लुटेरोंने उस महाशय को भाग्यशाली समझ कर अर्थात् यह समझ कर कि इसकी कृपासे हमारा धन पीछे गया; उस निर्भाग्य शेखरको वहांसे भी विदा किया। कहा है कि,:—

> खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः संतापितो मस्तके ॥
> वाञ्छन् स्थानमनातपं विधिवशात् तालस्य मूलंगतः ॥
> तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः ॥
> प्रायो गच्छति यत्र दैवहतकस्तत्रैव यान्त्यापदः ॥

सूर्यके तापसे तपे हुये मस्तकवाला एक खल्वाट (गंजा) मनुष्य शरीरको ताप न लगे इस विचारसे एक बेलके पेडके नीचे आखड़ा हुवा, परन्तु नशीब कमजोर होनेसे बेलके वृक्षपरसे उसके मस्तक पर खडाक-शब्द करता हुवा एक बड़ा बेलफल आ पड़ा जिससे उसका मस्तक फूट गया। इसलिए कहा है कि, "पुण्य हीन मनुष्य जहां जाता है वहां आपदायें भी उसके साथ ही जाती हैं।"

इस प्रकार नौ सौ निन्यानवे जगह वह जहां जहां गया वहां वहां प्रायः चोर, अग्नि, राजभय, परचक्र भय, मरकी वगैरह अनेक उपद्रव होनेसे धक्का मार कर निकाल देनेके कारण वह महादुख भोगता हुवा अन्तमें महा अटवीमें आये हुए महा महिमावन्त एक शैलक नामक यक्षके मन्दिरमें जाकर एकाग्र चित्तसे

उसका आराधन करने लगा। अपना दुःख निवेदन करके उसका ध्यान धरके बैठे हुए जब उसे इक्कीस उपवास होगये तब तुष्टमान होकर यक्षने पूछा मेरी आराधना क्यों करता है ?। तब उसने अपने दुर्भाग्य का वृत्तान्त सुनाते हुये कहा—"अगर कुन्दन उठाता हूं तो मिट्टी हाथ आती है! कभी रस्सीको छूता हूं तो वह भी काट खाती है!" उसका वृत्तान्त सुन यक्ष बोला—"यदि तू धनका आर्थी है तो मेरे इस मन्दिरके पीछे प्रतिदिन एक सुवर्ण मयूर (सोनेकी पांख वाला मोर) सन्ध्या समय नृत्य करेगा वह अपने सोनेके पिच्छ जमीन पर डालेगा उन्हें तू उठा लेना और उनसे तेरा दारिद्र्य दूर होगा। यह वचन सुनकर वह अत्यन्त खुशी हुवा। फिर सन्ध्याके समय मन्दिरके पीछे गया और वहां जितने सुवर्णके मयूरपिच्छ पड़े थे सो सब उठा लिए। इस तरह प्रति दिन सन्ध्या समय मन्दिरके पीछे जाता है, मोरका एक एक सुवर्ण पिच्छ पड़ा हुवा उठा लाता है। ऐसा करते हुए जब नव सौ सुवर्ण पिच्छ इकट्ठे होगये तब कुबुद्धि आनेसे वह विचारने लगा कि अभी इसमें एक सौ पिच्छ बाकी मालूम देते हैं वे सब पड़ते हुए तो अभी तीन महीने चाहिये। अब मैं कब तक यहां जंगलमें बैठा रहूं। यह पिच्छ सब मेरे लिये ही हैं तब फिर मुझे एकदम लेनेमें क्या हरकत है ? आज तो एक हो मुट्ठीसे उन सब पिच्छोंको उखाड़ लूं ऐसा विचार कर जब वह उठ कर सन्ध्या समय उसके पास आता है तब वह सुवर्ण मयूर अकस्मात् काला कौवा बनकर उड़ गया अब वह पहले ग्रहण किये हुये सुवर्ण मयूर पिच्छोको देखता है तो उनका भी पता नहीं मिलता। कहा है कि,:—

दैवमुल्लंघ्य यत्कार्यं। क्रियते फलवन्नतत् ॥
सरोंभश्चातकेनात्तं। गलरंध्रे ण गच्छति ॥

नशीबके सामने होकर जो कार्य किया जाता है उसमे कुछ भी फल नहीं मिल सकता। जैसे कि,:— चातक तलावमेंसे पानी पीता है परन्तु वह पानी उसके गलेमें रहे हुए छिद्रमेंसे बाहर निकल जाता है।

अब वह विचारने लगा कि, "मुझे धिःकार हो, मैंने मूर्खतासे व्यर्थ ही उतावल की, अन्यथा वे सब ही सुवर्ण पिच्छ मुझे मिलते। परन्तु अब क्या किया जाय ?" उदास होकर इधर उधर भटकते हुए उसे एक ज्ञानी गुरु मिले। उन्हें नमस्कार कर अपने पूर्व भवमें किये हुये कर्मका स्वरूप पूछने लगा। मुनिराजने सागर शेठके भवसे लेकर यथानुभूत सबस्वरूप कह सुनाया। उसने अत्यन्त पश्चात्ताप पूर्वक देवद्रव्य भक्षण किये का प्रायश्चित्त मांगा। मुनिराजने कहा कि, जितना देवद्रव्य तूने भक्षण किया है उससे कितना एक अधिक वापिस दे और अबसे फिर देवद्रव्यका यथाविधि सावधान तया रक्षण कर, तथा देव द्रव्य वगेरह की ज्यों वृद्धि हो वैसी प्रवृत्ति कर! इससे तेरा सर्व कर्म दूर होजायगा। तुझे सर्व प्रकार सुख भोगकी संपदाकी प्राप्ति होगी, इसका यही उपाय है। तत्पश्चात उसने जितना द्रव्य भक्षण किया था उससे एक हजार गुना अधिक द्रव्य जब तक पीछे न दे सकूं तब तक निर्वाह मात्र भोजन, वस्त्रसे उपरान्त अपने पास अधिक कुछ भी न रक्खूंगा, मुनिराजके समक्ष यह नियम ग्रहण किया, और इसके साथ ही निर्मल श्रावक व्रत अंगीकार किये, अब वह जहां जाकर व्यापार करता है वहां सर्व प्रकारसे उसे लाभ होने लगा। ज्यों २ द्रव्यका लाभ होने लगा त्यों २ वह देव-द्रव्यके देनेमें समर्पण करता जाता है। ऐसे हजार कांकनी जितना देवद्रव्य भक्षण

किया था उसके बदले में दसलाख कांकनी जितना द्रव्य समर्पण करके देवद्रव्यके देनेसे सर्वथा मुक्त हुवा; अब अनुक्रम से वह ज्यों २ व्यापार करता त्यो २ अधिकतर द्रव्य उपार्जन करते हुये अत्यन्त धनाढ्य हुवा। तब स्वदेश गया वहांके सब व्यापारियोंसे अत्यन्त धनपात्र एवं सर्व प्रकारके व्यापारमें अधिक होनेसे उसे राजाने बड़ा सन्मान दिया। वहां उसने गांव और नगरमें अपने द्रव्यसे सर्वत्र नये जैन मन्दिर बनवाये और उनकी सार संभाल करना, देव द्रव्यकी वृद्धि करना, नित्य महोत्सवप्रमुख करना आदि कृत्योंसे अत्यन्त जिनशासन की महिमा करने और करानेमें सबसे अग्रेसर बनकर अनेक दीन, हीन, दुखी जनोके दुःख दूर कर बहुतसे समय पर्यन्त स्वयं उपार्जन की हुई लक्ष्मीका सदुपयोग किया। नाना प्रकारकी सत्करनियां करके अर्हत् पदकी भक्तिमे लीन हो उसने अन्तमें तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया। उसे बहुतसी स्त्रियाँ तथा पुत्र पौत्रादिक हुए, जिससे वह इस लोकमें भी सर्व प्रकारसे सुखी हुवा। उसने बहुतसे व्रत प्रत्याख्यान पालकर, तीर्थयात्रा प्रमुख शुभ कृत्य करके इस लोकमें कृतकृत्य बनकर अन्तमे समय पर दीक्षा अंगीकार की। गीतार्थ साधुओंकी सेवा करके स्वयं भी गीतार्थ होकर और यथायोग्य बहुतसे भव्य जीवोंको धर्मोपदेश देकर बहुतसे मनुष्योंको देवभक्ति में नियोजित किया। देव भक्तिकी अत्यन्त अतिशयतासे वीस स्थानकके बीचके प्रथम स्थानकको अति भक्ति सह सेवन करनेसे तीर्थंकर नाम कर्मको उसने दृढतया निकाचित किया। अब वह वहां से काल करके सर्वार्थसिद्ध विमानमें देवऋद्धि भोग कर महा विदेह क्षेत्रमे तीर्थंकर ऋद्धि भोग कर बहुतसे भव्य जीवों पर उपकार करके शाश्वत सुखको प्राप्त हुवा। जो प्राणी देव-द्रव्य भक्षण करनेमे प्रवृत्ति करता है उसका उपरोक्त हाल होता है। जबतक आलोयण प्रायश्चित्त न लिया जाय तबतक किसी भी प्रकार उसका उद्धार नहीं होता। इसलिए देवद्रव्य के कार्यमें बड़ी सावधानता से प्रवृत्ति करना। प्रमादसे भी देवद्रव्य दूषणका स्पर्श न हो। वैसा यथाविधि उपयोग रखना।

"ज्ञानद्रव्य और साधारणद्रव्य पर कर्मसार और पुण्यसारका दृष्टान्त"

जोगपुर नगरमें चौवीस करोड सुवर्ण मुद्राओंका मालिक धनावह नामक शेठ रहता था, धनवती नामा उसकी स्त्री थी। उन्हें साथ ही जन्मे हुए कर्मसार और पुण्यसार नामके दो भाग्यशाली लड़के थे। एक समय वहांपर एक ज्योतिषी आया उससे धनावह शेठने पूछा कि, यह मेरे दोनों पुत्र कैसे भाग्यशाली होंगे? ज्योतिषी बोला—"कर्मसार जड़ प्रकृति, अतिशय टेढी बुद्धि वाला होनेसे बहुतसा प्रयास करने पर भी पूर्वका द्रव्य गंवा देगा और नवीन द्रव्य उपार्जन न कर सकनेसे दूसरोंकी नौकरी वगैरह करके दुःखका हिस्सेदार होगा। पुण्यसार भी अपना पूर्वका और नवीन उपार्जन किया हुवा द्रव्य वारंवार खोकर बड़े भाईके समान ही दुःखी होगा। तथापि वह व्यापारादिक में सर्व प्रकारसे कुशल होगा। अन्तमें वृद्धावस्था में दोनों भाई धन संपदा और पुत्र पौत्रादिक से सुखी हो अपनी अन्तिम वयका समय सुधारेंगे। ऐसे कह कर गये बाद धनावह शेठने दोनों लड़कोंको सिखानेके लिए श्रेष्ठ अध्यापकको सोंप दिया। पुण्यसार स्थिरबुद्धि होनेसे थोड़े ही समयमें सुख पूर्वक व्यावहारिक सर्व कलायें सीख गया, और कर्मसार बहुतसा उद्यम करने पर भी चपल बुद्धि होनेसे अक्षर मात्र भी न पढ़ सका, इतना ही नही परन्तु उसे अपने घरका नांवा ठावा लिखने जितनी भी

कला न आई। उसे बिलकुल मन्दबुद्धि देखकर अध्यापक ने भी उसकी उपेक्षा करदी। जब दोनों जने युवावस्था के सन्मुख होने लगे तब उनके पिताने स्वयं ऋद्धिपात्र होनेसे बड़े आडम्बर सहित उनकी शादी करा दी, और आगे इनमें परस्पर लड़ाई होनेका कारण न रहे इसलिए उन्हें बारह २ करोड सुवर्ण मोहरें बाँटकर जुदे २ घरमें रखा। अन्तमें उन्हें सर्व प्रकारकी ऋद्धि सिद्धि यथायोग्य सोंपकर धनावह और धनवती दोनोंने दीक्षा लेकर अपने आत्माका उद्धार किया।

अब कर्मसार उसके सगे सम्बन्धियोंसे निवारण करते हुये भी ऐसे कुव्यापार करता है कि जिससे उसे अन्तमें धनकी हानि ही होती है। ऐसा करनेसे थोड़े ही समयमें उसके पिताके दिये हुए बारह करोड़ सौनय्ये सफा होगये। पुण्यसारका धन भी उसके घरमें डाका डाल कर सब चोरोंने हड़प कर लिया। अन्तमें दोनों भाई एक सरीखे दरिद्री हुए। अब वे सगे सम्बन्धियोंमें भी बिल्कुल साधारण गिने जाने लगे। स्त्रियां भी घरमें भूखी मरने लगीं। इससे उनके पिहरियोंने उन्हे अपने घर पर बुला लिया। नीति शास्त्रमें कहा है कि:—

अलिअम्पिजणो धणवन्तस्स सयणत्तणं पयासेई॥
आसन्नबन्धवेणवि। लज्जिज्जई खीण विहवेण॥ १॥

यदि धनवन्त सगा न भी हो तथापि लोग उसे खींच तान कर अपना सगा सम्बन्धी बतलाते हैं और यदि दरिद्री, खास सगा सम्बन्धी भी हो तथापि लोग उसे देखकर लज्जा पाते हैं।

गुणवंपि निगुणच्चिअ। गणिज्जए परिणेण गय विहवो॥
दख्खत्ताइ गुणेहिं। अलिएहि विगिभ्भमए सधणो॥ २॥

दास, दासी, नौकर सरीखे भी गुणवन्त निर्धनको सचमुच निर्गुण गिनते हैं, और यदि धनवान निर्गुण हो तथापि उसमें गुणोंका आरोप करके भी उसे गुणवान कहते हैं। अब लोगोंने उन दोनोंके निर्बुद्धि और निर्भाग्य शेखर ये नाम रक्खे। इससे वे बिचारे लज्जातुर हो परदेश चले गये। वहां भी दूसरे कुछ व्यापारका उपाय न लगनेसे जुदे २ किसी साहूकार के घर नौकर रहे। जिसके घर कर्मसार रहा है वह भूंठा व्यापारी तथा लोभी होनेसे उसे महीना पूरा होने पर भी वेतन न देता था। आजकल करते हुये उसने मात्र खाने जितना ही देकर उसे ठगता रहता। इस तरह करते हुये उसे कै वर्ष बीत गये तथापि उसे कुछ भी धन न मिला। पुण्यसारने कुछ पैदा किया, परन्तु उसे एक धूर्त मिला जो उसका कमाया हुवा सब धन ले गया। इस तरह बहुत जगह नौकरी की, कीमयागरी की, रत्नखानकी तलास की, सिद्ध पुरुषसे मिलकर उसके साधक बने, रोहणाचल पर्वत पर गये, मन्त्र तन्त्रोंकी साधना की, रौद्रवन्ती औषधी भी प्राप्त की, इत्यादि कारणोंसे ग्यारह बार, बहुतसे उद्यमसे यत्किंचित् द्रव्य कमा कमा कर किसी वक्त कुबुद्धिसे, किसी समय ठग मिलनेसे, किसी वक्त चोरीमें गमानेसे, या विपरीत कार्य हो जानेसे कर्मसारने जो कुछ मिला था सो खो दिया। इतना ही नहीं परन्तु उसने जो २ काम किया उसमें अन्तमें उसे दुःख ही सहन करना पड़ा। पुण्यसारने ग्यारह दफा अच्छी तरह द्रव्य पैदा किया परन्तु किसी वक्त प्रमादसे, किसी समय दुर्बुद्धिसे उसने भी अपना

सर्वस्व गंवा दिया। इससे दोनों जने बड़े खिन्न हुए। अन्तमें दोनों जने एक जहाजमें बैठकर कमानेके लिये रत्नद्वीपमें गये। वहां पर भी बहुतसे उद्यमसे भी कुछ न मिला, तब वहांकी महिमावन्ती रत्नादेवीके मन्दिरमें जाकर अन्न पानीका त्याग कर ध्यान लगाकर बैठ गये। जब आठ उपवास हो गये तब रत्ना-देवी आकर बोली—'तुम किस लिये भूखे मरते हो ? तुम्हारे नशीबमें कुछ नहीं है। यह सुनकर कर्मसार तो उठ खड़ा हुवा परन्तु पुण्यसार वहां ही बैठा रहा और उसने इक्कीस उपवास किये। तब रत्नादेवीने उसे एक चिन्तामणि रत्न दिया। उसे देखकर कर्मसार पश्चात्ताप करने लगा, तब पुण्यसारने कहा—"भाई तू किसलिए विशाद करता है, इस चितामणि रत्नसे तेरा भी दारिद्रय दूर कर दूंगा। अब दोनों जने खुशी होकर वहाँसे पीछे चले और जहाजमें बैठे। जहाज महासमुद्रमें जा रहा था, पूर्णिमाकी रात्रिका समय था उस वक्त पूर्णचन्द्रको देखकर बड़े भाई कर्मसारने कहा कि, भाई चिन्तामणि रत्नको निकाल तो सही, जरा मिलाकर तो देखें, इस चन्द्रमाका तेज अधिक है या चितामणिरत्न का ? कमनशीब के कारण दोनों जनोंका वही विचार होनेसे अगाध समुद्रमें चले जाते हुए जहाजके किनारे पर खड़े होकर वे चिन्ता-मणि रत्नको निकाल कर देखने लगे। क्षणमें चन्द्रमाके सामने और क्षणमें रत्नके सामने देखते हैं। ऐसे करते हुए वह छोटासा चिन्तामणि रत्न अकस्मात् उनके हाथसे छूटकर उनके भाग्यसहित अथाह समुद्रमें गिर पड़ा। अब वे दोनों जने पश्चात्ताप पूर्वक रुदन करने लगे। अब वे जैसे गये थे वैसे ही निर्धन मुफ-लिस होकर पीछे अपने देशमें आये। सुदैवसे उन्हें वहां कोई ज्ञानी गुरु मिल गये; वन्दन पूर्वक उनसे उन्होंने अपना नशीब पूछा तब मुनिराजने कहा कि,—

तुम पूर्वभवमें चन्द्रपुरनगर में जिनदत्त और जिनदास नामक परम श्रावक थे। एक समय उस गांवके श्रावकोंने मिलकर तुम्हें उत्तम श्रावक समझकर जिनदत्त को ज्ञानद्रव्य और जिनदासको साधारण द्रव्य रक्ष-णार्थ सुपूर्द किया, तुम दोनों जने उस द्रव्यकी अच्छी तरह सम्भाल करते थे। एक वक्त जिनदत्तको अपने कार्यके लिये एक पुस्तक लिखवाने की ज़रूरत पड़नेसे लेखकके पाससे लिखा लिया। परन्तु लिखाईका पैसा देनेके लिए अपने पास सुभीता न होनेसे उसने मनमे विचार किया कि यह भी ज्ञान ही लिखाया है इसलिये ज्ञानद्रव्यमें से देनेमें क्या हरकत है ? यह विचार कर अपने कार्यके लिए लिखाये हुए पुस्तकके मात्र बारह रुपये उसने ज्ञानद्रव्यमें से दे दिये। जिनदास ने भी एक समय जब उसे बड़ी हरकत थी विचार किया कि, यह साधारण द्रव्य सातक्षेत्रमें उपयुक्त करने लायक होनेसे मैं भी एक निर्धन श्रावक हूं तो मुझे लेनेमे क्या हरकत है ? यह धारणा कर साधारण की कोथलीमेंसे उसने एक ही दफा सिर्फ बारह रुपये लेकर अपने गृहकार्यमें उपयुक्त किये। ऐसे तुम दोनों जनोंने किसीको कहे विना ज्ञानद्रव्य और साधारण द्रव्य लिया था जिससे वहांसे काल करके तुम पहली नरकमें नारकीतया उत्पन्न हुए थे। वेदान्तमें भी कहा है:—

प्रभासे मामतिं कुर्यात्प्राणैः कंठ गतैरपि ॥
अग्निदग्धा प्ररोहन्ति। प्रभादग्धा न रोहति ॥ १ ॥
प्रभासं ब्रह्महत्या च। दरिद्रस्य च यद्धनं ॥

गुरुपत्नी देवद्रव्यंच । स्वर्गस्थ मपि पातयेत् ॥ २ ॥

कंठगत प्राण हों तथापि साधारण द्रव्य पर नजर न डालना। अग्निसे दग्ध हुवा फिर उगता है परन्तु साधारण द्रव्यभक्षक फिर मनुष्य जन्म नहीं पाता। साधारण द्रव्य, ब्रह्महत्या, दारिद्रीका धन, गुरुकी स्त्रीके साथ किया हुवा संयोग, देवद्रव्य ये इतने पदार्थ स्वर्गसे भी प्राणीको नीचे गिराते हैं। प्रभास नाम साधारण द्रव्यका है।

नरकसे निकल कर तुम दोनों सर्प हुये। वहांसे मृत्यु पाकर फिर दूसरी नरकमें गये वहांसे निकलकर गीद् पक्षी बने, फिर तीसरी नरकमें गये। ऐसे एक भव तिर्यंच और एक नारकी करते हुए सातों ही नरकोंमें भमे। फिर एकेन्द्रीय, दो इन्द्रीय, तीन इन्द्रीय, चार इन्द्रीय, तिर्यंच पंचेन्द्रीय, ऐसे बारह हजार भवमें बहुतसा दुःख भोगकर बहुतसे कर्म खपाकर तुम दोनों जने फिरसे मनुष्य बने हो। तुम दोनों जनोंने बारह रुपयोंका उपयोग किया था इससे बारह हजार भवतक ऐसे विकट दुःख भोगे। इस भवमें भी बारह करोड़ सुवर्ण मुद्रायें पाकर हाथसे खोईं। फिर भी ग्यारह दफा धन प्राप्त कर करके पीछे खोया। तथा बहुत दफे दासकर्म किये। कर्मसारने पूर्व भवमें ज्ञानद्रव्य का उपभोग किया होनेसे उसे इस भवमें अतिशय मन्दमतिपन की और निर्बुद्धिपन की प्राप्ति हुई। उपरोक्त मुनिके वचन सुनकर दोनों जने खेद करने लगे। मुनिने धर्मोपदेश दिया जिससे बोध पाकर ज्ञान द्रव्य और साधारण द्रव्यके भक्षण किये हुये बारह २ रुपयोंके बदले बारह २ हजार रुपये जबतक ज्ञान द्रव्य और साधारण द्रव्यमें न दे दें तबतक हम अन्न वस्त्र बिना अन्य सर्वस्व कमाकर उसीमें देंगे ऐसा मुनिके पास नियम ग्रहण करके श्रावक धर्म अंगीकार किया और अब वे नीतिपूर्वक व्यापार करने लगे। दोनों जनोंके किये हुए अशुभ कर्मका क्षय होजानेसे उन्हें व्यापार वगैरहमें धनकी प्राप्ति हुई, और बारह २ रुपयेके बदलेमें बारह २ हजार सुवर्ण मुद्रायें देकर वे दोनों जने ज्ञानद्रव्य और साधारण द्रव्यके कर्जसे मुक्त हुवे। अब अनुक्रमसे बारह २ करोड़ सुवर्ण मुद्राओंकी सिद्धि उन्हें फिरसे प्राप्त हुई। अब वे सुश्रावकपन पालते हुए ज्ञान द्रव्य और साधरण द्रव्यका रक्षण एवं वृद्धि करने लगे। तथा वारम्बार ज्ञानके और ज्ञानीके महोत्सव करना वगैरह शुभ करणी करके श्रावकधर्म को यथाशक्ति बहुमान पूर्वक पालने लगे। अन्तमें बहुतसे पुत्र पोत्रादिकी संपदाको छोड़कर दीक्षा अंगीकार कर वे दोनों भाई सिद्धगति को प्राप्त हुये।

ऐसे ज्ञान द्रव्य और साधारण द्रव्यके भक्षण पर कर्मसार तथा पुण्यसारका दृष्टान्त सुनकर ज्ञानकी आशातना दूर करनेमें या ज्ञान द्रव्य एवं साधारण द्रव्यका भक्षण करने की उपेक्षा न करनेमें सावधान रहना यही विवेकी पुरुषोंको योग्य है। ज्ञानद्रव्य भी देवद्रव्य के समान ग्राह्य नहीं है। ऐसे साधारण द्रव्य श्रावक को संघ द्वारा दिया हुवा हो ग्राह्य है। संघके विना अगवाओं के दिये विना बिलकुल ग्राह्य नहीं। श्री संघ द्वारा साधारण द्रव्य सात क्षेत्रोंमे ही उपयुक्त होना चाहिए, मांगनेवाले आदिको न देना चाहिए। तथा गुरु प्रमुखका वार फेर किया हुवा द्रव्य यदि साधारणमें गिने तो वैसा द्रव्य श्रावक श्राविकाको अपने उपयोगमे लेना योग्य नहीं है परन्तु धर्मशाला या उपाश्रय प्रमुखमें लगाना योग्य है। ज्ञान सम्बन्धी कागज, पत्र वगैरह साधुको दिये हों तथापि श्रावकको वह अपने घर कार्यमें उपयुक्त न करना चाहिए। अपनी पुस्तकके लिए भी

वह द्रव्य न रखना। मुखपट्टीके मूल्यसे कुछ अधिक मूल्य दिये विना साधुकी मुखपट्टी वगैरह भी श्रावकको लेना उचित नहीं। क्योंकि वह सब कुछ गुरु द्रव्यमें गिना जाता है। स्थापनाचार्य तथा नवकार वाली वगैरह गुरुकी भी श्रावकके उपयोगमें आती हैं। क्योंकि जब ये वस्तुयें गुरुको देनेमे आतीं हैं उस वक्त देनेवाला ये सबके उपयोगमे आयेंगी इस कल्पना पूर्वक ही देता है। तथा साधु भी सबको उपयोगी हों इसी वास्ते उन वस्तुओंको लेता है। इसलिए साधुकी गुरु स्थापना तथा नवकार वाली सबको खपती है परन्तु मुहपट्टी नही खपती।

गुरुकी आज्ञा विना साधु साध्वीको लेखकके पास पुस्तक लिखाना या वस्त्र दिलाना नहीं कल्पता। ऐसी कितनी एक बातें बहुत ध्यानमे रखने लायक हैं। यदि जरा मात्र भी देवद्रव्य अपने उपभोग मे लिया हो तो उतने मात्रसे अत्यन्त दारुण दुःख भोगने पड़ते हैं, इसलिए विवेकी पुरुषको सर्वथा उसे उपयोगमें लेनेका विचार तक भी न करना चाहिए। इसलिए माला उजवनेका, माला पहरने का, या लूंछना वगैरहमे जो द्रव्य देना हो वह उसी वक्त दे देना चाहिए। यदि वैसा न बने तथापि ज्यों जल्दी हो त्यों दे देना चाहिए। उससे अधिक गुण होता है। यदि विलम्ब करे तो फिर देनेकी शक्ति न रहे या कदापि मृत्यु ही आजाय तो वह देना रह जानेसे परलोकमें दुर्गतिकी प्राप्ति हो जाती है।

"देना सिर रखनेसे लगते हुए दोष पर महीषका दृष्टान्त"

सुना जाता है कि, महापुर नगरमे बड़ा धनाढ्य व्यापारी ऋषभदत्त नामक शेठ परम श्रावक था। वह पर्वके दिन मन्दिर गया था। वहां उस वक्त उसके पास नगद द्रव्य न था, इससे उसने उधार लेकर प्रभावना की। घर आये बाद अपने गृहकार्य की व्यग्रतासे वह द्रव्य न दिया गया। एक दफा नशीब योगसे उसके घर पर डाका पड़ा उसमें उसका सब धन लुट गया। उस वक्त वह हाथमें हथियार ले लुटेरोंके सामने गया। इससे लुटेरोंने उसे शस्त्रसे मार डाला। शस्त्राघातसे आर्तध्यान में मृत्यु पाकर उसी नगरमें एक निर्दय और दरिद्री पखालीके घर (सक्केके घर) भैंसा हुवा। वह प्रतिदिन पानी ढोने वगैरह का काम करता है। वह गाम बड़े ऊंचे पर था और गांवके समीप नदी नीचे प्रदेशमें थी। अब उसे रात दिन नदीमें से नीचेसे ऊपर पानी ढोना पड़ता था, इससे उसे बड़ा दुःख सहन करना पड़ता। भूख प्यास सहन करके शक्तिसे उपरांत पानी उठाकर ऊंचे चढ़ते हुए वह पखाली उसे निर्दय होकर मारता है, वह सर्व कष्ट सहन करना पड़ता है। ऐसे करते हुये बहुतसा समय व्यतीत हुवा। एक समय किसी एक नवीन तैयार हुए मन्दिरका किला बन्धता था, उस कार्यके लिए पानी लाते समय आते जाते मन्दिरकी प्रतिमा देखकर उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुवा। अब उसका मालिक उसे बहुत ही मारता पीटता है तथापि वह पूर्व भव याद आनेसे उस मन्दिरका दरवाजा न छोड़कर वहां ही खड़ा होगया। इससे वहां मन्दिरके पास खड़े हुए उस भैंसेको मारते पीटते देख किसी ज्ञानी साधुने उसके पूर्व भवका समाचार सुनाया इससे उसके पुत्र, पौत्रादिक ने वहां आकर पखालीको अपने पिताके जीव भैंसेका धन देकर छुड़ाया, और पूर्व भवका जितना कर्ज था उससे हजार गुना देकर उसे कर्ज

मुक्त किया। फिर अनशन आराध कर वह स्वर्गमें गया और अनुक्रमसे मोक्ष पदको प्राप्त होगा। इसलिए अपने सिर कर्ज न रखना चाहिए। विलम्ब करनेसे ऐसी आपत्तियां आ पड़ती हैं।

देवका, ज्ञानका, और साधारण वगैरह धर्मसम्बन्धी देना तो क्षण वार भी न रखना चाहिए, जब अन्य किसीका भी देना देनेमें विवेकी पुरुषको विलम्ब न करना चाहिए तब फिर देवका, ज्ञानका या साधारण वगैरहका देना देते हुए किस तरह विलम्ब किया जाय? जिस वक्तसे देवका कबूल किया उस वक्तसे ही वह द्रव्य उसका हो चुका, फिर जिती देर लगाये उतना ब्याजका द्रव्य देना चाहिए। यदि ऐसा न करे तो जितना ब्याज हुवा उतना द्रव्य उसमेंसे भोगनेका दूषण लगता है। इसलिए जो देनेका कबूल किया है वह तुरन्त ही दे देना उचित है। कदापि ऐसा न बन सके और कितने एक दिन बाद दिया जाय ऐसा हो तो वह कबूल करते समय ही प्रथमसे यह साफ कह देना चाहिए कि, मैं इतने दिनमें, या इतने पक्ष बाद या इतने महिनोंमें दूंगा। कबूलकी हुई अवधिके अन्दर दे दिया जाय तो ठीक! यदि वैसा न बने तो अन्तमें अवधि आवे तुरन्त दे देना योग्य है। कही हुई मुद्दत उल्लंघन करे तो देवद्रव्य का दोष लगता है। मन्दिर-की सारसंभाल रखनेवाले को अपने घरके समान ही देवद्रव्य की उघरानी शीघ्र वसूल करानी चाहिए। यदि ऐसा न करे तो बहुत दिन हो जानेसे अकाल पड़े या कोई बड़ा उपद्रव आ पड़े तो फिर बहुतसे प्रयाससे भी उस देवद्रव्यके दोषमें से देनदारको मुक्त होना मुश्किल हो जाता है इसलिए देव द्रव्यके देनेमेंसे सबको शीघ्र-तर मुक्त करना। ऐसा न हो तो परंपरासे सारसम्भाल करनेवाले को एवं दूसरे मनुष्योंको भी महादोष की प्राप्ति होती है।

"देवद्रव्य संभालनेवालेको दोष लगने पर दृष्टान्त"

महिन्द्रपुर नगरके प्रभुके मन्दिर सम्बन्धि चन्दन, पुष्प, फल, नैवेद्य, घी दीपकके लिए तेल, मन्दिर भंडार और पूजाके उपकरण सम्भालना, मन्दिरमें रंग कराना, उसे साफ करवाना, तदर्थ नौकर रखना, नौकरोंकी सार सम्भाल रखना, उघरानी कराना, वसूलात जमा कराना, खाता डालना, खाता वसूल कराना, हिसाब करना, कराना, वसूलात आये तो उसका धन सम्भालना, उसके आय व्ययका नावाँ ठावाँ लिखना, तथा नया काम करानेका जुदा २ काम चार जनोंको सौंपा था। तथा उन पर एक अधिकारी नियुक्त किया गया था। श्रीसंघकी अनुमति पूर्वक चार जने समान रीतिसे सारसंभाल करते थे। ऐसा करते हुए एक समय मन्दिरकी सारसम्भाल करनेवाला बड़ा अधिकारी वसूलात करनेमें बहुतसे लोगोंके यथा तथा वचन सुननेसे अपने मनमें दुःख लगानेके कारण अब वसूलात वगैरहके कार्यमें निरादर हो गया। इससे उसके हाथनीचे के चारों जनें बिलकुल ढीले हो गए। इतनेमें ही उस देशमें कुछ बड़ा उपद्रव होनेसे सब लोग अन्य भी चले गए इससे कितना एक देवद्रव्य नष्ट हो गया। उसके पापसे वे असंख्य भव भमे। इसलिए धर्मादे के कार्यमें कभी भी शिथिलादर होना उचित नहीं।

देव वगैरहके देनेमें खरा द्रव्य देना तथा भगवानके सन्मुख भी खरा ही द्रव्य चढाना, घिसा हुवा या खोटा द्रव्य न चढाना। यदि खोटा चढावे या देवके देनेमें दे तो उसे देवद्रव्य के उपभोगका दोष लगता है।

तथा देवसम्बन्धी, ज्ञानसम्बन्धी, और साधारण सम्बन्धी जो कुछ घर, दुकान, खेत, बाग, पाषाण, ईंट, काष्ठ, बांस, खपरैल, मिट्टी, खड़ी, चूना, रंग, रोगन, चन्दन, केसर, बरास, फूल, छाब, रकेबी, धूप धाना, कलश, वासकुम्पी, वालाकूंची, छत्र, सिंहासन, ध्वजा, चामर, चन्द्रवा, झालर, नंगारा, मृदंग, बाजा, समापना, सरावला, पडदा, कम्बलियां, वस्त्र, पाट, पाटला, चौकी, कुम्भ, आरसी, दीपक ढांकना, दियेसे पड़ा हुवा काजल, दीपक, मन्दिरकी छत पर नालसे पडता हुवा पानी, वगैरह कोई भी वस्तु अपने घर कार्यके उपयोग में कदापि न लेना। जिस प्रकार देव द्रव्य उपयोग में लेना योग्य नहीं वैसे ही उपरोक्त पदार्थके जरा मात्र अंशका भी उपयोग एक बार या अनेक बार होनेसे भी देवद्रव्य के उपभोग का दोष अवश्य लगता है। यदि चामर, छत्र, सिंहासन समियाना, वगैरह मन्दिरकी कोई भी वस्तु अपने हाथसे मलीन हो या टूट फूट जाय तो बड़ा दोष लगता है। उपरोक्त मन्दिरकी कोई भी वस्तु श्रावकके उपयोग में नहीं आ सकती इस लिए कहा है कि;—

विधाय दीपं देवानां। पुरस्ते न पुनर्नहि॥
गृह कार्या कार्याणि। तीर्यंचोपि भवेद्यतः॥

घर मन्दिरमे भी देवके पास दीपक किये वाद उस दीपकसे कुछ भी घरके काम न करना। यदि करे तो वह प्राणी मर कर तिर्यंच होता है।

"देव दीपकसे घरका काम करनेमें ऊंटनीका दृष्टान्त"

इन्द्रपुर नगरमें देवसेन नामक एक गृहस्थ रहता था। उसका धनसेन नामक ऊंट संभालने वाला एक नौकर था। उस धनसेन के घरसे एक ऊंटनी प्रतिदिन देवसेन के घर आ खड़ी रहती थी। धनसेन उसे बहुत मारता पीटता परन्तु देवसेन का घर वह नहीं छोडती थी। कदापि मार पीट कर उसे धनसेन अपने घर लेजाय और चाहे जैसे बन्धनसे बांधे तो उसे तोड़ कर भी वह फिर देवसेनके घर आ खड़ी रहती। कदाचित् ऐसा न बन सके तो वह धनसेन के घर कुछ नहीं खाती और डकरा कर सारे घरको गजमजा देती थी। अन्तमें देवसेन के घर आवे तब ही उसे शान्ति मिलती। यह देखाव देख कर देवसेन ने उसका मूल्य दे कर उसे अपने घरके आंगन आगे बांध रक्खी। वह देवसेन को देख कर बड़ी ही प्रसन्न होती। ऐसे करते हुए दोनोंको अरस परस प्रीति हो गई। किसी समय ज्ञानी गुरु मिले तब देवसेन ने पूछा महाराज इस ऊंटनीका मेरे साथ क्या सम्बन्ध है कि जिससे यह मेरा घर नहीं छोड़ती और मुझे देख कर प्रसन्न होती है। गुरुने कहा कि, पूर्व भवमे यह तेरी माता थी, तूने मन्दिरमें प्रभुके आगे दीपक किया था उस दीपकके प्रकाशसे इसने अपने घरके काम किये थे, तथा धूप धानामें सुलगते अंगारसे इसने एक दफा चूल्हा सुलगाया था। उस कर्मसे यह मृत्यु पाकर ऊंटनी उत्पन्न हुई है, इससे तुझ पर स्नेह रखती है कहा है कि:—

जो जिणवराण हेउं। दीवं धूवं च करिअ निअकज्जं॥
मोहेण कुणई मूढो। तिरिअत्तं सो लहइ बहुसो॥

जो प्राणी अज्ञानपन से भी जिनेश्वर देवके पास किये हुए दीपकसे या धूप धानामें रहे हुये अग्निसे अपने घरका काम करता है वह मर कर प्रायः पशु होता है।

इसी लिए देवके दीपकसे घरका पत्र तक न पढ़ना चाहिये, घरका काम भी न करना, रुपया भी न पर खना, दीपक भी न करना, देवके लिए घिसे हुए चन्दनसे अपने मस्तक पर तिलक भी न करना, देवके प्रक्षालन करनेके लिए भरे हुये कलशके पानीसे हाथ भी न धोना, देवकी शेषा (न्हवन) भी नीचे पड़ा हुवा या पड़ता हुवा, स्वल्प मात्र ही लेना परन्तु प्रभुके शरीरसे अपने हाथसे उतार लेना योग्य नहीं, देव सम्बन्धी झालर वाद्य भी गुरुके पास या श्री संघके पास न बजाना। कितनेक आचार्य कहते हैं कि, पुष्टालम्बन हो (जिन शासनकी विशेष उन्नतिका कारण हो) तो देव सम्बन्धि झालर, वाद्य, यदि उसका नकरा प्रथमसे ही देना कबूल किया हो या दे दिया हो तो ही बजाया जा सकता है, अन्यथा नहीं, कहा है कि:—

मूलं विणा जिणाणं। उवगरणं छत्त चमर कलसाई ॥
जो वावरेइ मूढो। निय कज्जे सो हवई दुहिओ ॥

जो मूढ़ प्राणी नकरा दिये बिना छत्र, चामर, कलश वगरह देव द्रव्य अपने गृह कार्यके लिए उपयोगमें लेता है वह परभव में अत्यन्त दुखी होता है।

यदि नकरा देकर भी झालर वगैरह लाया हो और वह यदि फूट टूट जाय या कहीं खोई जाय तो उसका पैसा भर देना चाहिए। अपने गृह कार्यके लिए किया हुवा दीपक यदि मन्दिर जाते हुए प्रकाशके लिए साथ ले जाय तो वह देवके पास आया हुवा दिया देव द्रव्यमें नहीं गिना जा सकता। सिर्फ दीपक पूजाके लिए किया हुवा दीपक देव दीपक गिना जाता है। देव दीपक करनेके कोडिये, दीवट, गिलास, जुदे ही रखना योग्य है। कदापि साधारण के दीवट, कोडीये वगैरह में से यदि देवके लिए दीपक किया हो तो उसमें जब तक घी, तेल बलता हो तब तक श्रावकको अपने उपयोगमें नहीं लेना चाहिये। वह घी, तेल, बले बाद ही साधारण के काममें उपयोग में लेना। यदि किसीने पूजा करने वालेके हाथ पैर धोनेके लिए मन्दिरमें पानी भर रक्खा हो तो वह उपयोग में लेनेसे देव द्रव्यका उपभोग किया नहीं गिना जाता।

कलश, छाब, रकेबी, ओरसिया, चन्दन केशर, बरास, कस्तूरी प्रमुख अपने द्रव्यसे लाया हुवा हो उससे पूजा करना, परन्तु मन्दिर सम्बन्धी पैसेसे लाये हुए पदार्थसे पूजा न करना। पूजा करनेके लिये लाये हुए पदार्थ इनसे सिर्फ पूजा ही करनी है यदि ऐसी कल्पना न की हो तो उसमेंसे अपने गृह कार्यमें भी उपयुक्त किया जा सकता है। झालर, वाद्य वगैरह सर्व उपकरण साधारण के द्रव्यसे मन्दिरमें रक्खे गये हों तो वे सब धर्म कृत्योमें उपयुक्त करने कल्पते है। अपने घरके लिए कराये हुए समियाना, परिचछ, पड़दा, पाटला वगैरह यदि कितनेक दिन मन्दिरके प्रयोजनार्थ वर्तनेको लिए हों तो उन्हें पीछे लेते देवद्रव्य नहीं गिना जाता क्योंकि देवद्रव्य में देनेके अभिप्रायसे ही दिया हुवा द्रव्य देवद्रव्य तया गिना जाता है परन्तु अन्य नहीं। यदि ऐसा न हो तो अपने बर्तनमें नैवेद्य लाकर मन्दिरमे रक्खा हो तो वह बरतन भी देवद्रव्यमें गिना जानेका प्रसंग आवे, परन्तु ऐसा नहीं है।

मन्दिर का या ज्ञान द्रव्यका घर, दुकान भी श्रावकको निःशूकता होनेके कारणसे अपने कार्यके लिये भाड़े रखना भी योग्य नहीं। साधारण द्रव्य सम्बन्धि घर, दुकान; श्री संघकी अनुमतिसे कदाचित् भाड़े रखना हो तो लोक व्यवहार से कम भाड़ा न देना और वह भाड़ा ठराव किये हुए दिनसे पहले विना मांगे दे आना। यदि उस घर या दुकानकी भीत वगैरह पड़ती हो और वह यदि समारनी पड़े तो उसमे खर्च हुये दाम काट कर बाकीका भाड़ा देना, परन्तु लौकिक व्यवहारकी अपेक्षा अपने ही लिए अपने ही काम आसके ऐसा उस घर दुकानमें यदि नया माल या कुछ पोशीदा बांध काम करना पड़े तो उसमें लगाये हुए द्रव्यका साधारण द्रव्य भक्षण कियेका दोष लगनेके सबबसे भाड़ेमें न काट लेना। शक्ति रहित श्रावक श्री संघकी आज्ञासे साधारण के घर दुकानमें विना भाड़े रहे तो उसे कुछ दोष नहीं लगता।

तीर्थादिक मे यदि बहुत दिन रहनेका कार्य हो और वहां उतरने के लिए अन्य स्थान न मिलना हो तो उसे उपयोग में लेनेके लिए लोकव्यवहार के अनुसार यथार्थ नकरा देना चाहिए। यदि लोकव्यवहार की रीतिसे कम भाड़ा दे तथापि दोष लगनेका सम्भव होता है। इस प्रकार पूरा नकरा दिये विना देव ज्ञान साधारण सम्बन्धी कपड़ा, वस्त्र, श्रीफल, सोना चांदि पट्टा, कलश, फूल, पक्वान, सूखड़ी वगैरह अपने घरके उजमने से या ज्ञानकी पूजामें न रखना। क्योंकि बड़े ठाठ माटसे जो अपने नामका उजमना किया हो उसमे कम नकरा देकर मन्दिरमे से लिए हुए उपकरणों द्वारा लोकमे बड़ी प्रशंसा होनेसे उलटा दोषका सम्भव होता है। परन्तु अधिक नकरा देकर उपकरण लिए हो तो उसमें कुछ दोष नहीं लगता।

"कम नकरेसे किये उजमना लक्ष्मीवंती का दृष्टान्त"

लक्ष्मीवती नामक श्राविकाने अत्यन्त ऋद्धिपात्र होने पर भी लोगोंमें अधिक प्रशंसा करानेके लिये थोड़े से नकरेसे देव, ज्ञानके उपकरण से विशेष आडंबर के कितनी एक दफा पुण्यकार्य किए। ऐसा करनेसे मैं देव-द्रव्य ज्ञानकी अधिक वृद्धि करती हूं और जैन शासनकी अत्यन्त उन्नति होती है इस बुद्धिसे उसने दूसरे लोगोंको भी प्रेरणा की एवं कई दफा स्वयं भी अग्रेसरी बनकर पुण्यकार्य कराये। परन्तु थोड़े द्रव्यसे घणी प्रशंसा कराना, यह बुद्धि भी तुच्छ ही गिनी जाती है, इसका विचार न करके बहुत सी दफा ऐसी ही करनियाँ करके श्राविकापन की आराधना कर काल धर्म पाकर वह देवगति को प्राप्त हुई, परन्तु अपनी पुण्य करनियों में हीनबुद्धि का उपयोग करनेसे हीन शक्तिवाली देवी हुई। देवभव से च्यव कर जिसके घर अभी तक बिलकुल पुत्र हुवा ही नहीं ऐसे एक बड़े धनाढ्य व्यापारीके पुत्रीतया उत्पन्न हुई तथापि वह ऐसी कमनशीब हुई कि उसके माता पिताके मनमें निर्धारित मनोरथ मनमें ही रह गये। जब उस बालिकाको गर्भमें आये पांच महीने हुए तब उसके पिताका विचार था कि उसकी माताके पंचमासी सीमन्तका महोत्सव बड़े आडंबर से करे, परन्तु अकस्मात् उस समय परचक्र का (किसी अन्य गांवके राजाका) भय आ पड़ा, इससे वह वैसा न कर सका। वैसे ही जन्मका, छठीका, नामस्थापन का मुंडन करानेका, अन्नप्राशन का, कर्णवेधन का, पाठशाला प्रवेश इत्यादिके महोत्सव करनेकी उसके दिलमें

बड़ी भारी उम्मेद थी, तदर्थ उसने बहुत सी तैयारियां भी पहलेसे की हुई थीं, कितने एक नये मणिमुक्ताफल के नवसरा हार, हीरे रत्नसे जड़ित कितने एक नये आभूषण एवं कितने एक नये २ भांतिके उत्तम वस्त्र भी कराये हुवे थे तथा अन्य भी कई प्रकारकी तैयारियां कराई हुई थीं परन्तु कमनशीब से महोत्सव के दिन कभी राजदरबार में अकस्मात् शोक आजाने से, किसी वक्त दीवानके घर शोक आजाने से, किसी समय नगर शेठके घर शोकका प्रसंग आनेसे, किसी वक्त अपने सम्बन्धियों में शोकका कारण बन जानेसे और किसी समय अपने ही घरमें कुछ अकस्मात् उत्पन्न होनेसे उस महोत्सवका एक चिन्ह मात्र भी न बन सका इतना ही नहीं परन्तु उस बालिकाका महोत्सव करनेके लिए उसके माता पिताने जो २ दिन निर्धारित किये थे उन दिनोंमें उन्हें खुशीके बदले उदासी ही पैदा हुई। तथा उस बालिका को पहराने के लिए जो नये वस्त्राभरण बनाये थे उन्हें सन्दूकमें से बाहर निकालने का प्रसंग ही न आया। वह बालिका उसके माता पिता एवं कितने एक सगे सम्बन्धियों को हद उपरान्त मानीती और प्यारी थी। उसके सगे सम्बन्धी उस बालिकाको सन्मान देनेके लिए अपने घर लेजानेको बहुत ही तलप रहे थे परन्तु उसमेंसे कुछ भी न बन सका। तब इसमें क्या समझना चाहिए? बस उस बालिकाके पूर्वभव के किये हुए अन्तराय का ही प्रसंग समझना चाहिये। शास्त्रमें किसी नीतिज्ञ पुरुषने कहा है:—

सायर तुज्झ न दोषो अम्माण पुव्व कम्माणं

हे सागर! तुझमें रत्नोंका समुदाय भरा हुवा है, परन्तु मैंने तेरे अन्दर हाथ डाल कर रत्न निकालने का उद्यम किया तथापि मेरे हाथमें रत्नके बदले पत्थर आया, इससे मैं समझता हूं कि, यह तेरा दोष नहीं परन्तु मेरे पूर्वभवकृत कर्मका ही दोष है।

अतः यह सब इस बालिकाके कर्मका ही दोष है ऐसा समझा जाता है। बालिका का नाम लक्ष्मीवती रक्खा है। जब उसके माता पिताके सर्व मनोरथ निष्फल हो गये तब अन्तमें उन्होंने यह विचार किया कि अपने सर्व मनोरथ रद्द होगये तो क्या हुवा अब सर्व मनोरथोंका पूर्ण करनेवाला लक्ष्मीवती का लग्न बड़ेठाठ माठसे करके सब मनोरथोंको पूर्ण हुवा समझेंगे। ऐसा समझ कर लग्न आनेके समय आगेसे ही किसी एक महाश्रीमंत के लड़केके साथ उसका लग्न निर्धारित कर लग्नकी तमाम तैयारी करनी शुरू की। सर्व मनोरथ पूर्ण करनेकी आशासे तैयारीमें कुछ बाकी न उठा रख कर लग्नके महोत्सव का आडम्बर पहिले से ही अत्यन्त सुन्दर करना शुरू किया। परन्तु दैवयोगसे मंडप मुहूर्त हुये बाद तुरन्त ही उस लक्ष्मीवतीकी माता अकस्मात् मरनेके शरण होगई। जिससे अत्यन्त आडम्बर की तो बात ही क्या परन्तु अन्तमें उसका महोत्सव रहित गुप चुप ही पाणि ग्रहण मात्र ही लग्न करना पड़ा। लक्ष्मीवती का श्वसुर बड़ा दातार और धनाढ्य होनेसे उसने भी बड़े ठाठ माठसे लग्न करना निर्धारित किया था परन्तु क्या किया जाय? उसके भी सर्व मनोरथ लक्ष्मीवतीके माता पिता समान ही हवाई हो गये। फिर लक्ष्मीवती को बड़े आडम्बर सहित ससुराल भेजूंगा उसके पिताने यह धारणा की। परन्तु वह समय आते हुए भी किसी २ वक्त अनेक प्रकारके शोक बीमारी वगैरह आपत्तियां आ पड़नेसे उसमेंसे कुछ भी न बन सका इसलिये उसे चुपचाप ससुराल भेजना पड़ा। जब वह

ससुराल गई तब कुछ समय तक वहां भी किसी २ वक्त कुछ न कुछ विघ्न होने लगे। ऐसे परम्परा से आपत्तियां आ पड़नेसे उसे अपने पतिसे सचमुच ही संसार सुखका संयोग यथार्थ और अधिक वृद्धि पाता हुवा प्रेमहोने पर भी बन सकनेका प्रसंग न आया। इससे वह स्वयं भी बड़े उद्वेगको प्राप्त हुई। अन्तमें एक ज्ञानी गुरु मिले, उनके पास जाकर उसने अपना नसीब पूछा। ज्ञानी गुरुने कहा कि हे कल्याणी! तूने पूर्व भवमें काम नकरा देकर उजमना वगैरह बहुत सी पुण्य करनियों मे बड़ा आडम्बर कर बतलाया। उस हीनबुद्धि से तूने जो कर्म उपार्जन किया उसीका यह परिणाम है। यह सुन कर वह बड़ा दुःख मनाने लगी। तब गुरुने कहा "ऐसे खेद करनेसे कुछ पाप दूर नही होता। उस पापकी तो आत्मसाक्षी निंदा करना चाहिये।" फिर उसने उन गुरुके पास उस कर्मका आलोयण प्रायश्चित लिया। फिर दीक्षा अंगीकार करके अनुक्रम से सब कर्मोंका नाश कर वह सिद्धि पदको प्राप्त हुई।

इस लिये उजमणा वगैरह मे रखने योग्य जो जो पदार्थ लिया हो उस पदार्थका जितना मूल्य हो उतना अथवा उससे भी कुछ अधिक मूल्य देना, ऐसा करनेसे नकरेकी शुद्धि होती है। इसमें इतना समझना है कि किसीने अपने नामका विस्तारसे उद्यापन शुरू किया हो उसमें जो जो पदार्थ मन्दिरके लेनेकी जरूरत पड़े उसका बराबर नकरा देनेकी शक्ति न हो तो उसका आचार पूरा करनेके लिये जितनी चीजोंका नकरा पूरा दिया जाय उतनी ही चीजें रख कर उद्यापन पूरा करना। इसमें करनेवाले को कुछ भी दोष नहीं लगता।

"घर मंन्दिरमें चढाये हुए चावल वगैरह द्रव्यकी व्यवस्था"

अपने घर-मन्दिरमें चढ़ाये हुए चावल, सुपारी, फल, नैवेद्य वगैरह बेच डालनेसे उत्पन्न हुए द्रव्यके खरीदे हुए फूल वगैरह अपने घर मन्दिरमें पूजा करनेके कार्यमें उपयुक्त न करना एवं गांवके बड़े मन्दिरमें जाकर भी बिना कहे अपने हाथसे न चढ़ाना। तब फिर क्या करना? इस प्रश्नका खुलासा—जो सत्यस्वरूप हो वैसा कह कर वे फूल चढ़ानेके लिए पुजारीको देना, यदि ऐसा न बने तो अपने हाथसे चढ़ाना परन्तु लोगोंसे व्यर्थकी प्रशंसा करानेके दोष लगनेके सबबसे बिना सत्य हकीकत प्रकट किये न चढाना। (यदि सत्य हकीकत कहे बिना चढावे तो लोग वैसा देख कर प्रशंसा करें कि, अहो यह कैसा धार्मिक है कि, जो अपने द्रव्यसे इतने सारे फूल चढ़ाता है; ऐसे व्यर्थ प्रशंसा करानेसे दोष लगता है) घर मन्दिरमें रक्खे हुए नैवेद्यादि, फूल वगैरह ला देनेवाले माली वगैरह को ठहराये हुए मासिक वेतनमें न देना। पहलेसे ही ऐसा ठहराव किया हो कि, तुझे इतना काम घर मन्दिरमें करनेसे प्रतिदिन चढ़ा हुवा नैवेद्यादिक देंगे तो वह देनेसे दोष नही लगता। सत्य बात तो यही है कि; जो मासिक वेतन देना वह जुदा ही देना चाहिए। उसके बदलेमें नैवेद्यादिक देना उचित नहीं। सच पूछो तो घर मन्दिरमें चढाये हुए चावल फल नैवेद्यादिक सब कुछ बड़े मन्दिरमे भिजवा देना ठीक लगता है। यदि ऐसा न करे और नैवेद्यादिक से उत्पन्न हुए द्रव्य द्वारा अपने घर मन्दिरमें पूजा करे तो वह देवद्रव्य से पूजा की गिनी जाय और अनादर प्रमुख दोष लगता है। गृहस्थ स्वयं अपने घरके

खर्चमें कितनी एक छूट रखना है तब फिर देवपूजामें कितने द्रव्यका खर्च बढ़ जाता है? या यथाशक्ति अपने घर मन्दिरमें भी न खर्च सके। इसलिये अपने घर मन्दिरमें रक्खे हुए नैवेद्यादिक से मंगाए हुए पुष्पादिक द्वारा अपने घर मन्दिरमें पूजा, पूर्वोक्त दोष लगनेका सम्भव होनेसे न करना। एवं अपने घरमन्दिर में चढ़ाए हुये नैवेद्यादिक बेचनेसे आया हुवा द्रव्य अपने घरमें अपने निश्रायसे भी न रखना तथा उसे ज्यों त्यों नहीं बेच डालना; यथाशक्ति से जो देवद्रव्यकी बृद्धि हो त्यों बेचना, सर्व प्रकारसे यत्न कर रखने पर भी कदापि किसी चोर या अग्नि प्रमुखसे वह विनाश हो जाय तो रखनेवाले को कुछ दोष नहीं लगता, क्योंकि अवश्य भावी भावको रोकनेमें कोई भी समर्थ नहीं। पर द्रव्यका अपने हाथसे उपयोग करनेका प्रसंग आ जावे तो दूसरेके समक्ष ही करना या दूसरेको विदित करके करना चाहिये ताकि कोई दोष लगनेका संभव न रहे।

देव, गुरु, यात्रा, तीर्थ, स्वामीवात्सल्य, स्नात्रपूजा महोत्सव, प्रभावना, सिद्धान्त लिखाना, पुस्तक लेना वगैरहमें खर्चनेके कारण निमित्त जो दूसरेका धन लेना हो तो बीचमें चार पांच जनोंको साक्षी रखकर लेना और वह खर्चनेके समय गुरु, संघ वगैरह के समक्ष स्पष्टतया कह देना कि यह द्रव्य अमुकका है या दूसरेका है, कहे विना न रहना। यदि विना कहे खर्चे तो उससे भी पूर्वोक्त दोष लगनेका सम्भव है।

तीर्थ पर गया हो, वहाँ पूजामें, स्नात्रमें, ध्वजा चढ़ानेमें पहरावनी में प्रभावना में वगैरह तीर्थ पर अवश्य कृत्योंमें दूसरेका द्रव्य नहीं मिलाना। कदापि किसीने तीर्थ पर खर्चनेके लिये द्रव्य दिया हो और वह दूसरेका धन वहां पर खर्चना हो तो यह दूसरेका है प्रथमसे ही ऐसा कह कर बीचमें दूसरेको साक्षी रखकर उसे जुदा खर्चना, परन्तु अपने द्रव्यके साथ न खर्चना क्योंकि उससे लोकमें व्यर्थ प्रशंसा करानेका दोष लगता है, और यदि पीछेसे किसीको मालूम हो जाय तो मायावी और लोकोपहास्य का पात्र बनना पड़ता है।

यदि किसी समय ऐसा प्रसंग आवे बहुतसे मनुष्य मिलकर स्वामीवात्सल्य, संघपूजा प्रभावना वगैरह करनी हो तो जितना जिसका हिस्सा ले वह सब पहिलेसे ही कह देना। यदि ऐसा न करे तो पुण्य-करनीके कार्यमें खर्चनेमें चोरी करनेके दोषका भागीदार बनता है।

अन्तिम अवस्थामें आये हुए माता, पिता, बहिन, पुत्र, वगैरहके लिये जो खर्चना हो वह उनकी सावधानता में ही गुरु श्रावक या सगे सम्बन्धियोंके समक्ष ही कह देना कि हम तुम्हारे पुण्यार्थ इतने दिनमें इतना द्रव्य अमुक अमुक कार्य करके खर्चेंगे उसकी तुम अनुमोदना करना, ऐसा कह कर वह संकल्पित द्रव्य ठहराई हुई मुद्दतमें सबके समक्ष उसका नाम देकर विदित करना कि, अमुक जनेके पीछे माना हुआ द्रव्य यह अमुक शुभकार्य में खर्चते हैं यदि ऐसा न करे तो उस पुण्य करनीमें चोरी गिनी जाती है। दूसरेके नाम पर किये हुए द्रव्यसे अपने नामसे यश प्राप्त करके पुण्य करनी करे तो भी महा अनर्थ होता है। पुण्यके कार्यमें जो कुछ चोरी की जाती है उससे बडे आदमीकी महत्ता गुणकी हानि होती है। जिसके लिये गणधर भगवानने कहा है:—

तव तेणे वय तेणे । रुव तेणे अ जे नहे ॥
आयार भाव तेणे अ । कुव्वई देव किब्बिसं ॥

तप की, व्रत की, रूप की, आचार भावकी, जो चोरी करता है वह प्राणी किल्विषिया देवका आयुष्य बांधता है। अर्थात् नीचे दरजेकी देवगति में जाता है।

"साधारणद्रव्य खर्चनेके विषयमें"

यदि धर्ममे कुछ खर्चनेकी मर्जी हो तो विशेषता साधारण के नामसे ही खर्चना। फिर जैसे जैसे योग्य लगे वैसे उसमें खर्चना। साधारण द्रव्य खर्चनेके सात क्षेत्र हैं, उनमें से जो २ क्षेत्र खर्चने के योग्य मालूम दे उस क्षेत्रमें खर्च करना। जिसमें थोड़ा खर्चनेसे विशेष लाभ मालूम होता हो उसमें खर्चना, सिदाते क्षेत्रमें खर्चने से बहुत ही लाभ होता है क्योंकि सिदाता श्रावक हो और उसे आधार दिया हो तो वह आश्रय पाकर फिर जब श्रीमन्त हो तब वह उसी क्षेत्रमें विशेष आश्रय देनेवाला होता है, क्योंकि जिससे उपकार हुआ हो उस उपकारी को फिर वह नहीं भूलता। अन्तमें वह उसे सहाय कारक बन सकता है इसलिए सिदाते क्षेत्रमें खर्चना महा लाभ दायक है। लौकिकमें भी कहा है, :—

दरिद्रं भर राजेन्द्र। मासमृद्धं कदाचन।
व्याधितस्यौषधं पथ्यं निरोगस्य किमौषधम् ॥

हे राजेन्द्र! दरिद्रको—निर्धनको दे, रिद्धिवन्त को कभी न देना। व्याधिवान को औषधी हितकारक होती है, परन्तु निरोगीको औषधका क्या प्रयोजन?

इसी लिये प्रभावना संघ पहरावनो समकितके मोदक आदि बांटना वगैरह निर्धन श्रावकको विशेष देना योग्य है। यदि ऐसा न करे तो धर्मके अनादर निन्दा प्रमुख दोषका सम्भव होता है। सगे सम्बधियोंकी अपेक्षा या धनाढ्योंकी अपेक्षा निर्धन श्रावकको अधिक देना योग्य ही है, तथापि यदि ऐसा न बन सके तो सबको समान देना, परन्तु निर्धनको कम न देना। सुना जाता है कि यमलापुर नगरमें ठक्कर जिनदास श्रावकने समकित के मोदककी प्रभावना करनेके प्रसंग पर सबके मोदकमें एक २ सुवर्ण महोर डाली थी और निर्धन श्रावकोंको देनेवाले मोदकोंमें से दो सुवर्ण महोरें डाली थीं।

"माता पिता आदिके पीछे करनेका पुण्य"

विशेषतः पुत्र पौत्रादिको अपने माता पिता या चचा प्रमुखके लिए खर्च करनेकी मानता करना हो सो प्रथमसे ही करना योग्य है, क्योंकि क्या मालूम है कौन कब मरेगा, किसका पहले और किसका पीछे मृत्यु होगा। जिस जिसने जितना २ जिसके पीछे धर्मार्थ खर्च करना कबूल किया हो उसे वह सब कुछ जुदा ही खर्च करना चाहिए। जो अपने लिए स्वयं दानादिक किया जाता है उसमें उसे न गिनना, वैसा करनेसे व्यर्थ ही धर्मके स्थानमें दोषकी प्राप्ति होती है।

बहुतसे श्रावक तीर्थ पर अमुक द्रव्य याने अमुक प्रमाण तक द्रव्य खर्च करनेकी कल्पना प्रथमसे ही कर लेते हैं और तीर्थयात्रा करते समय वे अपने सफरका खर्च भी उसीमें गिन लेते हैं परन्तु ऐसा करना सर्वथा अनुचित है।

श्रावक तीर्थयात्रा करने जाय उस वक्त भोजन खर्च, गाडी भाडा वगैरह, तीर्थ पर खर्च करनेके लिए निर्धारित द्रव्यमेसे न गिनना चाहिए। तीर्थमें ही जितना पुण्य कार्यमें खर्चा हो उतना ही उसमें गिनना योग्य है। क्योंकि जो यात्राके लिए मान्य किया वह तो देवादिक द्रव्य हुवा, तब फिर उस द्रव्यमें अपने भोजन तथा गाड़ी भाडा वगैरहका खर्च गिनना सो कैसे योग्य कहा जाय? वह तो केवल देव द्रव्यका उपभोग करनेके दोषका भागीदार हुवा। इस प्रकार अज्ञानता से या गैर समझसे यदि कहीं कुछ कभी देवादिक द्रव्य का उपभोग हुआ हो उसके प्रायश्चित्तमें जितना उपभोग किया गया हो उसके साथ कितना एक जुदा २ देव द्रव्यमें, ज्ञान-द्रव्यमें और साधारण द्रव्यमें फिरसे खर्चना तथा अन्तिम अवस्थामे तो विशेषतः ऐसे खर्चना कि, पूर्वमें जो धर्म कृत्य किये हों उनमें यदि कदापि भूल चूकसे किसी क्षेत्रका द्रव्य किसी दूसरे क्षेत्रमें या अपने उपभोगमें खर्च किया गया हो तो उसके बदलेमें इतना द्रव्य देव द्रव्यमें इतन ज्ञान द्रव्यमें और इतना साधारण द्रव्यमे देता हूं यों कह कर उतना वापिस दे दे। धर्मके स्थानमें एवं अन्य स्थानमें कदापि विशेष खर्चनेकी शक्ति न हो तो थोड़ा २ खर्चना परन्तु सांसारिक, धार्मिक ऋण तो सिर पर कदापि न रखना। सांसारिक ऋणकी अपेक्षा भी धार्मिक ऋण प्रथमसे ही देना योग्य है। साधारण धार्मिक अपेक्षा से भी देवादिक ऋण तो विशेषतः पहले ही चुकता करना। कहा है कि,—

ऋणं ह्येकक्षणं नैव। धार्यमाणेन कुत्रचित्॥
देवादि विषयं तत्तु। कः कुर्यादतिदुःसहं॥

ऋण तो कभी क्षणमात्र भी अपने सिर न रखना तब फिर अत्यन्त दुःसह देवका, ज्ञानका, साधारण का; और गुरुका ऋण ऐसा कौन मूर्ख है जो अपने सिर रक्खे? इसलिए धर्मके सब कार्योंमे विवेक पूर्वक हिस्सा करके जो अपने पर रहा हुवा कर्ज हो वह दे देना चाहिये।

"प्रत्याख्यानका विधि"

उपरोक्त रीति मुजब जिनेश्वर देवकी पूजा करके फिर पंचाचार गुरु आचार्यके पास जाकर विधि पूर्वक प्रत्याख्यान करे। पंचाचार ज्ञाना चारादिक 'काले विणये बहुमाणे' इत्यादिक जो आगममें कहे हैं उस पंचाचारका स्वरूप हमारे किये हुए आचारप्रदीप नामक ग्रन्थसे जान लेना।

प्रत्याख्यान—आत्मसाक्षी, देवसाक्षी और गुरुसाक्षीएवं तीन प्रकारसे किया जाता है उसका विधि बतलाते हैं। मन्दिरमें देवाधिदेव को वन्दन करने आये हुए, स्नात्रादिक के दर्शन निमित्त आये हुए, धर्म देशना करने आये हुए, अथवा मन्दिरके पास रहे हुए उपाश्रय प्रमुखमें आ रहे हुए सद्गुरुके पास मन्दिर में प्रवेश करते समय संभालने की तीन निःसिही के समान गुरुके उपाश्रय में प्रवेश करते हुए भी तीनही निःसिही और पंच अभिगम (जो पहिले बतलाए गए हैं) संभाल कर यथाविधि आकर धर्मोपदेश दिये बाद प्रत्याख्यान लेना।

यथाविधि पच्चीस आवश्यक पूर्वक द्वादश वन्दन द्वारा गुरुको वन्दन करना। इस प्रकार वन्दन से महालाभ होता है जिसके लिये शास्त्रमें कहा है। कि,—

"गुरु वन्दन विधि"

नीआ गोअं खवे कम्मं। उच्चा गोअं निब्धए॥
सिढिलं कम्म गंठितु। वंदणेण नरो करे॥

गुरु वन्दन करनेसे प्राणी नीच गोत्र खपाता है और उच्च गोत्रका बन्ध करता है एवं निकाचित कर्म ग्रन्थीको भेदन करके शिथिल बन्धन रूप कर डालता है।

तिथ्थयरत्तं समत्तं। खाईअं सत्तमीई तइआए॥
आऊं वंदणएणं वद्धं च दसारसीहेण॥

श्री कृष्णने श्री नेमीनाथ स्वामीको वन्दन करके क्या किया सो बतलाते हैं। तीर्थंकर गोत्र बांधा, क्षायक सम्यक्त्व की प्राप्ति की, सातवीं नरकका बन्ध तोडकर दूसरे नरकका आयुष्य कर डाला। जैसे शीतलाचार्य को वन्दन करने आने वाले चार सगे भाणजे रात्रिमें दरवाजा बन्द हो जानेसे बाहर न जाकर दरवाजेके पास ही खड़े रहे। उनमें एक जनेको गुरु वन्दनाके हर्षसे भावना भाते हुए वहां ही केवल ज्ञान उत्पन्न हुवा और तीन जने परस्पर प्रथम वन्दना करनेकी ईर्षासे ज्यों २ जल्दी उठे त्यों २ वन्दना करनेकी उतावलसे गये और द्रव्य-वन्दन किया। फिर चौथा केवली आया तब पहले तीन जनोंने गुरुसे पूछा कि, स्वामिन्! हमारे चार जनोंकी वन्दनासे विशेष लाभ की प्राप्ति किसको हुई? सीतलाचार्य ने कहा—'जो पीछे आया उसे।" यह सुन कर तीनों जने बोले कि, ऐसा क्यों? गुरु बोले—'इसने रात्रिके समय दरवाजेके पास भावना भाते हुए ही केवलज्ञान प्राप्त किया है। फिर तीनों जनोंने उठके चौथेको वन्दन किया। फिर उसकी भावना भाते हुए उन तीनोंको भी केवलज्ञान प्राप्त हुवा। इस तरह द्रव्य वन्दनकी अपेक्षा भाव वन्दन करनेमें अधिक लाभ है। वन्दना भाष्यमें जो तीन प्रकारकी वन्दना कही है सो नीचे मुजब है:—

गुरुवंदण महति तिहं। तं फिट्टा थोभ बारसावत्तं॥
सिर नमणाइ सुपढमं। पुन्न खमासमण दुगिविअं॥ १॥
तई अन्तु वंदण दुगे। तथ्यमिहो आइमं सयलसंघे॥
बीयंतु दंसणीणय। पयठियाणं च तइयंतु॥ २॥

गुरु वन्दना तीन प्रकार की है। पहली फेटा वन्दना, दूसरी थोभ वन्दना, और तीसरी द्वादशावर्त्त वंदना। मस्तक नमानेसे और दो हाथ जोड़नेसे पहली फेटा वन्दना होती है। संपूर्ण दो खमासमण देकर वन्दना करना वह दूसरी थोभ वन्दना गिनी जाती है। तीसरी द्वादशावर्त वन्दनाका विधि नीचे मुजब है। परन्तु यहां वंदना करनेके अधिकारी बतलाते हैं कि, पहली फेटा वंदना, सर्व श्री संघको की जाती है। दूसरी थोभ वंदना तमाम जैन साधुओंको की जाती है। तीसरी द्वादशावर्त्त वंदना आचार्य, उपाध्याय, वगैरह पदस्थको की जाती है।

"द्वादशावर्त वन्दन विधि"

जिसने गुरुके पास प्रभातका प्रतिक्रमण न किया हो उसे प्रातःकाल गुरुके पास आकर विधि पूर्वक वंदना करनी चाहिए ऐसा भाष्यमें कहा है। प्रातःकाल में गुरुदेव के पास जा कर विधि पूर्वक द्वादशावर्त वन्दन करना चाहिये। द्रव्यके साथ भाव मिल जानेसे वन्दन द्वारा मनुष्य महा लाभ प्राप्त कर सकता है।

इरिश्राकुसुमिणुसग्गो। चिइ वन्दण पुत्ति वंदणालोश्र॥
वंदण खामण वंदण। संवर चउ छोभ दुसम्भाश्रो॥ १॥

प्रथम ईर्यावही करना, फिर कुसुमिण दुसुमिणका चार लोगस्सका काउसग्ग करना। फिर लोगस्स कह कर चैत्यवन्दन करके खमासमण देकर आदेश लेकर मुहपत्ती की प्रति लेखना करना, फिर दो वन्दना देना। फिर 'इच्छा कारेण' कह कर आदेश मांग कर राइ आलोचना करना। फिर दो वंदना देना फिर 'अभुट्ठियो' खमाना और दो वन्दना देना। फिर खड़ा होकर आदेश मांग कर प्रत्याख्यान करना। फिर चार खमासमण देकर भगवान आदि. चारको वन्दन करना। इसके बाद खमासमण दे सज्झाय संदिसाऊं सज्झाय करूं, ऐसा कह कर दो खमासनो दे सज्झाय कहना, (नवकार गिनना)। यह प्रभातका वन्दन विधि है।

"मध्यान्ह हुये बाद द्वादशावर्त्त वन्दन करनेका विधि"

इरिश्रा चिइ वंदण। पुत्ति वंदण चमर वंदण लोश्र॥
वंदण खामण चउ छोभ। दिवसुसग्गो दुसम्भाश्रो॥ २॥

पहले ईर्यावही कह कर चैत्य वन्दन करके खमासमण दे आदेश मांग कर मुख पत्तीकी पढिलेहण करना फिर दो वन्दना देना। फिर खमासमण दे आदेश मांग कर 'दिवस चरिम' प्रत्याख्यान करना। पुनः दो वंदना देना। 'इच्छा कारेण' कह कर देवसि आलोचना करना। फिर दो वन्दना देना। खमासमण देकर 'अभुट्ठियो' खमाना। फिर चार थोक वन्दन करके भगवान आदिक चारको वन्दन करना। तदनन्तर देवसिअ पायच्छित का काउसग्ग करना। खमासमण देकर सज्झाय संदीसाउं, सज्झाय करूं। यह संध्याका वन्दन विधि है।

"हरएक किसी वक्त गुरुको वन्दन करनेका विधि"

जब गुरु किसी कार्यकी व्यग्रतामें हो तब द्वादशावर्त्त वन्दनसे नमस्कार न किया जाय ऐसा प्रसंग हो उस समय थोभ वंदना करके भी वन्दन किया जाता है। उपरोक्त रीतिके अनुसार गुरुको वन्दन करके श्रावकको प्रत्याख्यान करना चाहिये। कहा है कि —

प्रत्याख्यानं यदासीत्त। त्करोति गुरु साक्षिकं॥
विशेषेणाथ गृह्णाति। धर्मोसौ गुरु साक्षिकः॥

पच्चखाण करनेका जो वक्त है उस वक्तमें ही प्रत्याख्यान करना। परन्तु धर्म, गुरु साक्षिक होनेसे

विशेष फलदायक होता हैं, इसलिये फिरसे गुरु साक्षी प्रत्याख्यान करना। गुरु साक्षी किया हुवा धर्म कृत्य दृढ होता है। इससे जिनाज्ञाका आराधन होता है। तथा गुरु वाक्यसे शुभ परिणाम अधिक होता है। शुभ परिणाम की अधिकतासे क्षयोपशम अधिक होता है। क्षयोपशम की अधिकतासे अधिक संवरकी प्राप्ति होती है और संवर ही धर्म है। इत्यादि परम्परासे गुणकी और लाभकी भी वृद्ध होती है। इसके लिए श्रावक प्रज्ञप्तिमें कहा है कि;—

संतंमि वि परिणामे। गुरुमूल पवज्जणंमि एसगुणो ॥
दढया आणाकरणं। कम्मक्खओ वसमवुड्ढीअ ॥

प्रत्याख्यान करनेका परिणाम होनेपर भी गुरुके पास करनेसे अधिक गुणकी प्राप्ति होती है सो बतलाते हैं। दृढता होती है, आज्ञा पालन होता है, विशेष कर्म खपते हैं, परिणामकी शुद्धि होती है, इत्यादि गुण गुरु समक्ष प्रत्याख्यान करनेसे होते हैं।

इसलिए दिनके और चौमासीके नियम प्रमुख गुरुकी जोगवाई हो तब गुरु साक्षी ही ग्रहण करना। ऐसा सब कार्योंमें समझ लेना। यहांपर द्वादशावर्त्त वन्दना करनेका विधि बतलाया परन्तु उसमें पांच वन्दनाके नाम होनेसे मूल द्वारमें बाईस वन्दनामें चारसो बाणवे प्रति द्वारके स्वरूपसे प्रत्याख्यान का विधि और दस प्रत्याख्यान के नव द्वारोंसे ९० प्रतिद्वारमय प्रत्याख्यान का सर्व विधि भाष्यसे जान लेना।

प्रत्याख्यान का स्वरूप प्रथमसे ही कुछ कहा हैं और प्रत्याख्यान के फल पर तो अविछिन्न छह मास तक आंबिलका तप करनेसे बड़े व्यापारियों की, राजाकी और विद्याधरकी बड़ी समृद्धि सहित बत्तीस कन्याओंका पाणिग्रहण करने वाला धम्मिलकुमार आदिके समान इस लोकका फल और पर लोकके फल पाने वाला तथा महा हत्या करने वाले पापीने भी छ महीने तक अविछिन्न नियमसे तप करके उसी भवमें सिद्धि प्राप्त करने वाले दृढ प्रहारी जैसे अनेक दृष्टान्त प्रसिद्ध हैं। शास्त्रोंमें कहा है कि,—प्रत्याख्यान करनेसे आश्रव—पाप द्वार दरवाजा बिलकुल बन्द हो जाता है। आस्रव द्वार रोकनेसे उसका विच्छेद अभाव होता है। आस्रवका उच्छेद होनेसे तृष्णाका नाश होता है। तृष्णाका नाश होनेसे प्राणीको बहुतसा समता भाव प्राप्त होता है। समता भाव प्राप्त होनेसे प्रत्याख्यान शुद्ध होता हैं। प्रत्याख्यान की शुद्धिसे चारित्र धर्मकी प्राप्ति होती है, चारित्र धर्मकी प्राप्तिसे कर्मकी निर्जरा होती है। कर्म निर्जरा होनेसे अपूर्व केवलज्ञान की प्राप्ति होती है, केवल ज्ञानकी प्राप्तिसे शाश्वत सुख मोक्ष पदकी प्राप्ति होती हैं। इसलिए गुरुको वन्दन करे। साधु साध्वी, श्रावक श्राविका, एवं चतुर्विध संघको नमस्कार करे। जब मन्दिर आदिमें गुरु महाराज पधारें तब श्रावकको खड़ा होने वगैरहसे मान देना चाहिए। तदर्थ शास्त्रमें लिखा हैं किः—

अभ्युत्थानं तदा लोके। भियानं च तदागमे ॥
शिरस्यं जलिसं श्लेषः। स्वयमासन ढौकनं ॥

आचार्यादि को आते देख खड़ा होना, सन्मुख जाना, मस्तक पर अंजलीबद्ध प्रणाम करना, उन्हें आसन देना, उनके बैठ जाने बाद सन्मुख बैठना।

गुरुके पास किसी भीत वगैरहका अवलम्बन लेकर न बैठना, एवं हास्य-विनोद न करना तथा जो पहले हम कह आये हैं गुरुकी उन आसातनाओं को वर्ज कर विनयपूर्वक हाथ जोड़कर बैठना चाहिये।

निन्दा, विकथा, छोड़कर, मन, वचन, कायाकी एकाग्रता रखकर, दो हाथ जोड़कर, ध्यान रखकर, भक्ति बहुमान पूर्वक, देशना सुनना। आगममें बतलाई हुई रीतिके अनुसार आसातना तजनेके लिये गुरुसे साढ़े तीन हाथ अवग्रह क्षेत्रसे बाहर रह कर निर्जी स्थान पर बैठकर देशना सुनना। कहा है कि,—

धन्यस्यो परिनिपत। त्यहित समाचरणधर्म निर्वापी॥
गुरुवदनमलय निःसृत। वचनरसश्चंदनस्पर्शः॥

अहित कार्यके समावरण करनेसे उत्पन्न हुये पापरूप तापको समानेवाले, और चन्दनके स्पर्श समान शीतल गुरुके मुखरूप मलयागिरि से निकला हुवा वचनरूप रस प्रशंसा पात्र प्राणियों पर पड़ता है।

धर्मोपदेश सुननेसे अज्ञान और मिथ्यात्व—विपरीत समझका नाश, सत्य तत्त्व की, निःसंशयता की, एवं धर्मपर दृढ़ताकी प्राप्ति, सप्त व्यसनरूप उन्मार्गसे निवृत्ति, और सन्मार्गकी प्रवृत्ति, कषायादि दोषोंका उपशम, विनय, विवेक, श्रुत, तप, सुशीलादिक गुण उपार्जन करनेका उद्यम, कुसंसर्ग का परिहार और सत्समागम का स्वीकार, असार संसारका त्याग एवं वस्तुमात्र पर वैराग्य, सच्चे अंतःकरण से साधु या श्रावक धर्मको आग्रह पूर्वक पालनेकी अभिरुचि, संसारमें सारभूत धर्मको एकाग्रता से आराधन करनेका आग्रह इत्यादिक अनेक गुणकी प्राप्ति, नास्तिकवादी प्रदेशी राजा, आमराजा, कुमारपाल भूपाल, थावच्चापुत्रादिकों को जैसे एक २ दफा धर्म सुननेसे हुई वैसे ही जो सुने उसे लाभकी प्राप्ति होती है। इसके लिये शास्त्रमें कहा है कि:—

मोहंधियो हरति कापथ मुच्छिनत्ति। संवेग मुन्नमयति प्रशमं तनोति॥
सूते विरागमधिकं मुदमादधाति। जैनं वचः श्रवणतः किमुपन्नदत्ते ॥१॥

मोहित बुद्धिको दूर करता है, उन्मार्गको दूर करता है, सम्वेग-मोक्षाभिलाष उत्पन्न करता है, शान्त परिणाम को विस्तृत करता है, अधिक वैराग्यको पैदा करता है, चित्तमें अधिक हर्ष पैदा करता है, इसलिए इस जगतमें ऐसी कौनसी अधिक वस्तु है कि, जो जिनवचन के श्रवण करनेसे न मिल सकती हो?

पिंडः पाती बन्धवो बन्धभूताः सूतेनर्थानर्थं संपद्विचित्रान्॥
संवेगाद्याः जैन वाक्यप्रसूताः किं किं कुर्युनोपकारं नराणां ॥२॥

शरीर अन्तमें विनश्वर ही है, कुटुम्ब बन्धनभूत ही है, अर्थ सम्पदा भी विचित्र प्रकारके अनर्थ उत्पन्न करनेवाली है, ऐसा विदित करानेवाले जिनराज की वाणीसे प्रगट हुए संवेगादि गुण प्राणियों पर क्या २ उपकार नहीं करते? अर्थात् प्रभु वाणी श्रवण करने वाले मनुष्य पर सर्व प्रकारके उपकार करती है।

"प्रदेशी राजाका संक्षिप्त दृष्टान्त"

श्वेताम्बीनगरीमें प्रदेशी राजा राज्य करता था। उसका चित्रसारथी नामक दीवान किसी राजकीय

कार्यवशात् सावस्ती नगरीमें आया हुवा था। वहां पर चार ज्ञानके धारक श्रीकेशी नामा गणधरकी देशना सुनकर वह श्रावक हुवा। फिर अपने नगरकी तरफ जाते हुए उसने श्रीकेशी गणधर को यह विज्ञप्ति की कि, स्वामिन्! प्रदेशी राजा नास्तिक है इसलिये यदि आप वहां आकर उसे उपदेश देंगे तो बड़ा लाभ होगा। कितनेक दिन बाद विचरते हुए श्रीकेशी गणधर श्वेताम्बी नगरीके बाहिर एक बगीचेमें आकर ठहरे। यह जानकर चित्रसारथी दीवान प्रदेशी राजाको घूमने जानेके बहानेसे गुरुमहाराज के पास लाया।

जैन मुनियोंको देखकर गर्वसे राजा उनके सामने आकर कहने लगा कि, हे महर्षि! धर्म तो है ही नहीं, जीवोंका कहीं पता नहीं, परलोक की तो बात ही क्या, तब आप व्यर्थका यह कष्टानुष्ठान किस लिए करते हैं? यदि धर्म हो, जीव हो, परलोक हो, तो मेरी दादी श्राविका थी और दादा नास्तिक था, उन्हें मैंने अन्त समय कहा था कि यदि तुम स्वर्गमें या नरकमें जाओ तो वहांसे आकर मुझे कह जाना कि, हम स्वर्गमें और नरकमें गये हैं इससे मैं भी स्वर्ग और नरकको मान्य करूंगा। उन्हें मैं बहुत ही प्रिय था तथापि वे मुझे कुछ भी कहने न आये। इससे मैं धारता हूं कि स्वर्ग और नरक कुछ भी नहीं हैं। मैंने एक चोरके राईके समान अनेकशः टुकड़े कर डाले परन्तु उसमें कहीं भी आत्मा नजर नहीं आया। एक चोरको जीते हुए तोलकर मार डाला फिर तोल देखा परन्तु दोनोंमें वजन एक समान ही हुवा। यदि आत्मा हो तो जीवित समय हुये तोलकी अपेक्षा मृतकको तोलनेसे वजन कमती क्यों न हुवा? एक चोरको पकड़कर छिद्र रहित कोठीमें डाल कर उस पर मजबूत ढकन देनेसे वह अन्दर ही मर गया। यदि आत्मा हो तो छिद्र हुए विना किस तरह बाहर निकल सके? उस मृतकके शरीरमें असंख्य कीड़े पड़े नजर आये वे कहांसे अन्दर घुसे? ऐसे अनेक प्रकार से मैंने परीक्षा कर देखी परन्तु कहीं भी आत्माको नजरसे न देखा इसमें मैं सचमुच यही धारता हूं कि आत्मा, पुण्य, पाप, कुछ है ही नहीं।

गुरु बोले कि राजेन्द्र! तुमने परीक्षा करनेमें सचमुच भूल की है। आत्मा अरूपी होनेसे वह इस तरह चर्म-चक्षुसे प्रत्यक्ष नहीं दीख पड़ती है परन्तु कालान्तर से जानी जा सकती है। इस लिये आत्मा है एवं पुण्य और पाप भी है। आपकी दादी जो देवता हुई वह वहांके सुखमें लीन होगई, इससे वह तुम्हें पीछे समाचार कहने को न आसकी। तुम्हारा दादा जो मरके नरकमें गया वहांके दुःखोंसे छूट नहीं सकता इसलिये तुझे पीछे कहनेको न आसका। परमाधामी की परवशता से वह तुम्हें कहनेके लिये किस तरह आसके? अरणीके काष्ठमें अग्नि है परन्तु वह आता जाता क्यों नहीं दीखता? वैसे ही शरीरके चाहे जितने टुकड़े करो परन्तु उसमें आत्मा है तथापि अरूपी होनेसे वह किस तरह दीख सके? एक भवनमें पवन भरे विना उसे तोलकर फिर पवन भरके तोलनेसे उसका वजन कुछ हलका भारी नहीं होसकता, वैसे ही जीवित और मृतकको तोलनेसे उसमें आत्माके अरूपीपनसे भारी हलकापन होता ही नहीं। यदि किसी कोठीमें किसी पुरुषको खड़ा रखकर उसका मुख बन्द कर दिया हो वह अन्दर रहा हुवा पुरुष यदि शंखादिक वाद्य बजावे तो उसका शब्द सुननेमें आ सकता है। वह शब्द छिद्र विना किस तरह बाहर निकल सका? वैसे ही कोठीमें डाले हुए पुरुषका आत्मा बाहर निकल जाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या? जैसे कोठीमेंसे शब्द बाहर निकल सका वैसे ही अन्दर भी प्रवेश कर सकता

है, वैसे ही कोठीके अन्दर रक्खे हुए पुरुषके कलेवरमें बाहरसे अन्दर आकर जीव उत्पन्न हुए हैं ऐसा माननेमें क्या हरकत है ? आना जाना करते हुए भी चर्मचक्षु वाला कोई न देख सके ऐसे ही अरूपी जीवको कोठीमें आते जाते कौन रोक सकता है ? इसलिए हे राजन् ! आपके दिये हुए दृष्टान्तोंका हमारे दिये हुए उत्तरके अनुसार विचार करो कि आत्मा है या नहीं। गुरु महाराजका वचन सुनकर राजा बोला स्वामिन् ! आप कहते है उस प्रकार तो आत्मा और पुण्य पाप साबित होता है और यह बात मुझे सत्य जंचती है। परन्तु मेरी कुल परम्परासे आए हुए नास्तिक मतको मैं कैसे छोड़ सकूं ? गुरु बोले कि, यदि कुछ परम्परासे दुख दारिद्र्य ही चला आता हो तो क्या वह त्यागने योग्य नहीं हैं ? यदि वह दुख दारिद्र त्यागने योग्य ही हैं तब फिर जिससे आत्मा अनन्त भव तक दुखी हो ऐसा मत त्यागने योग्य क्यों न हो ? यह वचन सुन राजा बोध पाकर श्रावकके बारह व्रत अंगीकार करके विचारने लगा। कितनेक वर्ष बाद एक दिन प्रदेशी राजा पोषध लेकर पोषधशाला में बैठा था, उस वक्त उसकी सूर्यकान्ता रानी परपुरुष के साथ आसक्त होनेसे उसे भोजनमें जहर मिलाकर दे गई। यह बात उसे मालूम पड़नेसे चित्रसारथिके वचनसे उसी समय अनशन करके समाधि मरण पाकर सौधर्म देवलोकमें सूर्याभ नामा विमान में सूर्याभ नामक देवता उत्पन्न हुवा। जहर देनेवाली सूर्यकान्ता रानी यह मेरी बात जाहिर होगई इस विचारसे भयभीत हो जंगलमें चली गई। वहां अकस्मात् सर्प दंश होनेसे दुर्ध्यानसे मृत्यु पाकर नरकमें नारकीतया उत्पन्न हुई।

आमल कल्पा नामकी नगरीके बाहर श्री महावीर स्वामी समवसरे थे, वहां सूर्याभदेव उन्हें वंदन करने गया और अपनी दिव्य शक्तिसे अपनी दाहिनी और बाईं भुजाओंमें से एक सौ आठ देवकुमार और देवकुमारी प्रगट करके भगवानके पास बत्तीस बद्ध नाटक करके जैसे आया था वैसे ही स्वर्गमें चला गया। उसके गये बाद गौतमस्वामी ने उसका सम्बन्ध पूछा। इससे उपरोक्त अनुसार सर्व हकीकत कहकर भगवान ने अन्तमें विदित किया कि यह महा विदेहमें सिद्धि पदको प्राप्त होगा। श्री आम नामक राजा बप्पभट्ट सूरिके और श्री कुमारपाल राजा श्री हेमचन्द्राचार्य के सदुपदेशसे बोधको प्राप्त हुये थे। इन दोनोंका दृष्टान्त प्रसिद्ध ही है।

"थावच्चा पुत्रका संक्षिप्त दृष्टान्त"

"थावच्चा पुत्र द्वारिका नगरीमें बड़े रिद्धिवाले थावच्चा सार्थवाही का पुत्र और बत्तीस स्त्रियोंका पति था। वह भी नेमिनाथ स्वामीकी वाणी सुनकर बोधको प्राप्त हुवा। उसकी माताने बहुत मना किया तथापि वह न रुका। तब उसकी दीक्षाका महोत्सव करनेके लिए श्रीकृष्ण वासुदेव के पास चामर, छत्र, मुकुट वगैरह लेनेके लिए उसकी माता गई। श्रीकृष्ण उसके घर आकर थावच्चा कुमारको कहने लगा कि तू इस यौवनावस्था में क्यों दीक्षा लेता है ? भुक्तभोगी होकर फिर दीक्षा लेना। उसने कहा भयभीत मनुष्य को भोग सुख कुछ स्वाद नहीं देते। श्रीकृष्णने पूछा—मेरे बैठे हुए तुझे किस बातका भय है ? उसने उत्तर दिया कि मृत्युका। यह वचन सुन उसको सत्य आग्रह जानकर श्रीकृष्णने स्वयं उसका दीक्षा महा-

त्सव किया। थावच्चापुत्र ने एक हजार व्यापारी पुत्रोंके साथ प्रभुके पास दीक्षा ली। फिर, चौदह पूर्व पढ़कर पांच सौ दीवान सहित शेलक राजाको श्रावक करके वे सौगन्धिका पुरीमें पधारे। उस वक्त वहां पर त्रिदंड, २ कुंडिका, ३ छत्र, ४ छं नलीवाल्या तापसका खप्पर, ५ अंकुश, ६ पवित्री, ७ केशरी, हाथमें लेकर गेरुसे रंगे हुए लाल वस्त्रके वेशको धारण करनेवाला, सांख्यशास्त्र के परमार्थ को धारण करने और उपदेश करनेवाला, प्राणातिपात विरमणादिक पांच, और छ शौचयम, ७ सन्तोपयम, ८ तपोयम, ६ स्वाध्याययम, १० ईश्वरप्रणिधानयम, इन पांच यममय दस प्रकारके शौचमूल परिव्राजक का धर्म पालनेवाला और दानादिक धर्मका प्ररूपना करनेवाला, एक हजार शिष्योंके परिवार सहित व्यासका शुक नामक पुत्र परिव्राजक था। उसने प्रथमसे शौचमूल धर्म, अंगीर कराये हुए सुदर्शन नामक नगर शेठको थावच्चा पुत्राचार्यने विनय और सम्यक्त्व मूलश्रावक धर्म अंगीकार कराया। तव सुख परिव्राजक ने थावच्चा पुत्राचार्यको प्रश्न पूछाः—

"सरिसवया भंते भख्खा अभख्खा"। ते दुविहा मित्तसरिसवया। धन्नसरिसवया। पढमा तिविहा सहजाया सहवढ्ढिया सहपंसुकीलिया। ए ए समणाणं अभख्खा॥ धन्नसरिसवया दुव्विहा। सथ्थ परिणया इयरेअ पढमा दुविहा फासुआ अन्नेअफासुआवि जाइया अजाइआयं। जाइ आविं एसणिभ्भा अन्नेअ। एसणिभ्भावि लद्धा अलद्धाय विइअ सव्वथा अभख्खा पढमां भख्खा एवं कुलथ्था वि मासावि नवरं मासा तिविहा काल अथ्थ धन्न ते अ॥

प्रश्न—हे महाराज! सरिसवय भक्ष है या अभक्ष? उत्तरमें थावच्चाचार्यने कहा सरिसवय दो प्रकारके होते हैं। एक मित्र सरिसवय और दूसरा धान्य सरिसवय। यहां आचार्यने सरिसवय के दो अर्थ गिने हैं। एक तो सरिसवय (बराबरी की अवस्था वाले) और दूसरा सरसव नामक धान्य। उसमें मित्र सरिसवय तीन प्रकारके होते हैं। एक साथ जन्मे हुए, दूसरे साथ वृद्धिको प्राप्त हुए, दूसरे साथमें खेल क्रीड़ा की हो वैसे ये तीनों प्रकारके साधुको अभक्ष्य हैं। धान्य सरसव दो प्रकारके होते हैं, एक शस्त्र परिणत दूसरा अशस्त्र परिणत (पेड़ लगे हुए या पौदे वाले) शस्त्र परिणत दो प्रकारके होते हैं; एक मांगे हुए दूसरे अयाचित। याचित भी दो प्रकारके होते हैं, एक एषणीय (४२ दोष रहित) और दूसरे अनेषणीय। उनमें एषणीय भी दो प्रकारके होते हैं, एक लाधे हुए, (थोराये हुए) दूसरे अलाधे हुए (उसीके घरमें पड़े हुए) इस धान्य सरसवमें पीछले २ प्रकार वाले सब अभक्ष और पहले २ भेदवाले सब साधुको शुभ हैं। ऐसे ही कलत्थके भी भेद समझ लें। मापके भी भेद समझना। माप याने उड़द। परन्तु सामान्य माप शब्दके तीन भेद कल्पित किये गये हैं। एक काल माप दूसरा अर्थ माप (मांस) तीसरा धान्य माप। ये तीन भेद कल्पित कर उनमें से धान्य माष भक्ष बतलाया है। ऐसे ही कितनेक अर्थ खुलासे पूछ कर सुखपरिव्राजक ने बोध पाकर हजार शिष्यों सहित थावच्चाचार्य के पास दीक्षा ग्रहण की। थावच्चाचार्य ने सुखपरिव्राजक को आचार्य पदवी देकर शत्रुञ्जय तीर्थ पर जाकर सिद्धि पदको प्राप्त हुए। हजार शिष्य सहित सुकाचार्य भी शेलकपुर के शेलक नामा राजाको पंथकादिक पांच सो प्रधान सहित दीक्षा देकर शेलक मुनिको आचार्य पद समर्पण कर सिद्धाचल पर सिद्ध पदको प्राप्त हुये। अब शेलकाचार्य ग्यारह अंग पढ़कर पंथादिक पांचसौ शिष्यों सहित विचरते हुए, शुष्क आहार

करनेसे शरीरमें खुजली पित्तादिक रोग उत्पन्न हुए थे इससे उसका औषध उपचार करानेके लिये शेलकपुरमें आये। वहांपर उसका पुत्र मंडूक राजा राज्य करता था उसने अपने घोड़े बांधनेकी मालशालामें उन्हें उतरनेकी जगह दी और वैद्योंको बुलाकर औषधोपचार कराया। इससे उनके शरीरके सब रोगोंकी उपशांति होगई तथापि स्नेहवाले सरस आहारके लालचसे उनकी वहांसे विहार करनेकी इच्छा नहीं होती। इससे गुरुकी आज्ञा ले पंथक मुनिको उनकी सेवा करनेके लिये वहां छोड़कर तमाम शिष्य विहार कर गये। एक दिन कार्तिक पूर्णिमाकी चौमासीका दिन होने पर भी यथेच्छ आहार करके शेलकाचार्य सो रहे थे। प्रतिक्रमणका समय होने पर भी जब गुरु न उठे तब पंथिक मुनिने प्रतिक्रमण करते हुये चातुर्मासिक क्षमापना खमानेके समय अवग्रह में आकर गुरुके पैरोंको अपना मस्तक लगाया। गुरु तत्काल जागृत हो कोपायमान हुए, तब पंथक बोला कि स्वामिन्! आज चातुर्मासिक होनेसे चातुर्मासिक प्रतिक्रमण करते हुये चार मासमें ज्ञाताज्ञात हुये अपराधकी क्षमापनाके लिये आपके पैरोंको अपना मस्तक लगाया है। यह वचन सुनकर शेलकाचार्य वैराग्य प्राप्त कर विचारने लगा कि मुझे धिक्कार हो कि आज चातुर्मासिक दिन है मुझे इतनी भी खबर नहीं! सरस आहारको लालचसे मैं इतना प्रमादी बन गया हूं। फिर उन्होंने वहांसे विहार किया, मार्गमें उनके दूसरे शिष्य भी मिले। अन्तमें शत्रुंजय पर्वत पर चढ़कर अपने शिष्यों सहित वे वहां ही सिद्धि पदको प्राप्त हुये।

"क्रिया और ज्ञान"

इसलिये प्रति दिन गुरुके पास धर्मोपदेश सुनना। सुनकर तदनुसार यथाशक्ति उद्यम करने में प्रवृत्त होना। क्योंकि औषधि क्रियाको समझने वाला वैद्य भी रोगोपशांति के लिये जबतक उपाय न करे तबतक कुछ जानने मात्रसे रोगोपशान्ति नहीं होती। इसके लिये शास्त्रकारने कहा है कि, :—

क्रियैव फलदा पुंसां। न ज्ञानं फलदं मतम्॥
यत स्त्री भक्ष्य भोगज्ञो। न ज्ञानात्सुखभाग् भवेत्॥ १॥

क्रिया ही फल दायक होती है, मात्र ज्ञानपन फलदायक नहीं हो सकता। जैसे कि, स्त्री, भक्ष्य, और भोगको जाननेसे मनुष्य उसके सुखका भागीदार नहीं हो सकता, परन्तु भोगनेसे ही होता है।

जाणंतो विहुतरिउं। काईअ जोगं न जुंजई नईए॥
सो बुडडइ सोएणं। एवं नाणी चरण हीणो॥ २॥

तैरनेकी क्रिया जानता हो तथापि नदीमें यदि हाथ न हिलावे, तो वह डूब ही जाता है, और पीछेसे पश्चात्ताप करता है, वैसे ही क्रिया विहीन को भी समझना चाहिये। तथा स्कन्धकी चूर्णिमामें भी कहा है कि,—

"जो अकिरि अवाई सो भविओ अभवि आवा नियमा किण्हपक्खिओ किरिआवाई नियमा भविओ नियमासुक्क पक्खिओ अन्तोपुग्गल परिअट्टस्स निअमा सिज्झई सम्मदिट्ठी मिच्छदिट्ठी

वाहुज्जं ॥" जो अक्रियावादी है वह भवी भी होता है और अभवी भी। परन्तु निश्चयसे कृष्ण पक्षीय गिना जाता है। क्रियावादी तो निश्चयसे भवी ही कहा है। निश्चयसे शुक्ल पक्षीय ही होता है और सम्यक्त्वी हो या मिथ्यात्वी, परन्तु अर्धपुद्गल परावर्त में ही वह सिद्धि पदको प्राप्त होता है। इसलिये क्रिया करना श्रेयस्कारी है। ज्ञान रहित क्रिया भी परिणाममें फलदायक नहीं निकलती। जिसके लिए कहा है कि,:—

अन्नाण कम्मक्खओ। जयई मंडुक चुन्नतुल्लत्ति ॥
सम्मकिरिआई सो पुण। नेओ तच्छार सारिच्छो ॥ १ ॥

अज्ञानसे कर्म क्षय हुवा हो वह मंडूकके चूर्ण सरीखा समझना। जैसे कोई मेंडक मरकर सूक गया हो तथापि उसके कलेवरका जो चूर्ण किया हो तो उससे हजारों मेंडक हो सकते हैं। उस चूर्णको पानीमें डालने से तत्काल ही हजारों मेंडक उत्पन्न हो जाते हैं। याने अज्ञानसे कर्मक्षय हो उसमें भव परंपरा बढ़ जाती है। और सम्यक् ज्ञान सहित जो क्रिया है वह मेडकके चूर्णकी राख समान है (याने उससे फिर भव परंपरा की वृद्धि नहीं हो सकती)

जं अन्नाणी कम्मं। खवेई बहु आहि वासकोडिहि ॥
तं नाणी तिहिंगुत्तो। खवेई उसास मित्तेण ॥ २ ॥

अज्ञानी जितने कर्म करोडों वर्ष तक तप करनेसे नष्ट करता है उतने कर्म मन, वचन, कायाकी गुप्ति-वाला ज्ञानी एक श्वासोच्छ्वास में नष्ट कर देता है। इसीलिए तांवली पूर्णादिक तापस वगैरहको बहुतसा तप क्लेश करने पर भी ईशानेन्द्र और चमरेन्द्रत्व रूप अल्प ही फलकी प्राप्ति हुई। एवं श्रद्धा विना कितने एक ज्ञान वाले अंगारं मर्दकाचार्यके समान सम्यक् क्रियाकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती इसलिये कहा है कि,:—

अज्ञस्य शक्तिरसमर्थविधेर्निवोध। स्तौचारु चेरियमनूतुदतीन किंचित् ॥
अन्धांहि हीनहतवांछित मानसानां। दृष्टानु जातु हितदत्तिरनंतराया ॥ १ ॥

अज्ञानकी अन्धेकी शक्ति—क्रिया और असमर्थ पराक्रम वाले पंगूका ज्ञान, यदि इन दोनोंका मिलाप हो तो उन्हें इच्छित नगरमें जा पहुंचनेके लिये कुछ भी हरकत नहीं पड़ती। परन्तु अकेले अन्धक द्वारा मनो-वांछित पूर्ण होनेमें कुछ भी हरकत हुये बिना वे अपने इच्छित स्थान पर जा पहुंचे हों ऐसा कहीं भी देख-नेमें नहीं आता। यहां पर अन्ध समान क्रिया और पंगू समान ज्ञान होनेसे दोनोंका संयोग होने पर ही इच्छित स्थान पर आया जा सकता है। एवं ज्ञान और क्रिया इन दोनोंका संयोग होनेसे ही मोक्ष पदकी प्राप्ति होती है। अकेले ज्ञानसे या क्रियासे मोक्ष पदकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

ऊपर बतलाये हुये कारणके अनुसार ज्ञान, दर्शन समकित और चारित्र इन तीनोंका संयोग होनेसे ही मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसलिये उन तीनोंकी आराधना करनेका उद्यम करना।

"साधुको सुख साता पूछना तथा वोहराना वगैरह"

इस प्रकार गुरुकी वाणी सुनकर उठते समय साधुके कार्यका निर्वाह करने वाला श्रावक यों पूछे कि,

हे स्वामिन्! आपको संयम यात्रा सुखसे वर्तती है? और गत रात्रि निर्बाध सुखसे वर्त्ती? आपके शरीरमें कुछ पीड़ा तो नहीं? आपके शरीरमें कुछ व्याधि तो नहीं है? किसी वैद्य या औषधादिक का प्रयोजन है? आज आपको कुछ आहारके विषयमें पथ्य रखने जैसा है? ऐसे प्रश्नके करनेसे महा निर्जरा होती है। कहा है कि,:—

अभिगमन वन्दण नमंसणेन। पडिपुच्छणेण साहूणं॥
चिर संचि अम्पि कम्मं। खणेण विरलत्तण मुवेई॥

गुरुके सामने जाना, वन्दन करना, नमस्कार करना, सुख साता पूछना, इतने काम करनेसे बहुत वर्षोंके किये हुवे कर्म भी एक क्षण वारमें बिखर जाते हैं।

गुरुको पहली वन्दना बतलाये मुजब साधारण तया किये वाद विशेषतासे करना। जैसे कि "सुहराई सुहदेवसि सुख, तप, निराबाध." इत्यादि बोलकर साता पूछनेसे विशेष लाभ होता है। यह प्रश्न गुरुका सम्यक् स्वरूप जाननेके लिए है तथा उसके उपायकी योजना करने वाले श्रावकके लिए है। फिर नमस्कार करके "इच्छकारी भगवान् पसाय करी "फासुएणं एसणिज्जेणं असण पाण खाइम साइमेणं वथ्थ पडिग्गह कंवल पायपुच्छणेणं पाडिहारिअ पीठफलगसिज्जा संथारएणं ओसह भेसज्जेणं भयवं अणुग्गहो कायव्वो"

हे इच्छकारी भगवान्! मुझपर दया करके सूजता आहार, पानी, खादिम,—सुकड़ी वगैरह, स्वादिम—मुखवास वगैरह, वस्त्र, पात्र, कम्बल, कटासना, प्रातिहार्य, याने सर्व कार्यमें उपयोग करने योग्य चौकी, पीछे रखनेका पाटिया, शय्या, संथारा शय्याकी अपेक्षा कुछ छोटा औषध, वेसड़, इत्यादि ग्रहण करके हे भगवान् मुझ पर अनुग्रह करो! इस प्रकार प्रगट तया निमन्त्रण करना। ऐसी निमन्त्रणा वर्तमान कालमें श्रावक वृहत् वन्दन किये वाद करते हैं, परन्तु जिसने गुरुके साथ प्रतिक्रमण किया हो वह तो सूर्य उदय हुये वाद जब अपने घर जाय तब निमन्त्रण करे। जिसे गुरुके साथ प्रतिक्रमण करनेका योग न बना हो उसे जब गुरु वन्दन करनेके लिए आनेका बन सके उस वक्त उपरोक्त मुजब निमन्त्रण करना। मन्दिरमें जिन पूजा करके नैवेद्य चढ़ाकर घर भोजन करने जानेके अवसर पर फिरसे गुरुके पास उपाश्रय आकर पूर्वोक्त निमन्त्रण करना। ऐसा श्राद्ध दिन कृत्यमें लिखा है। फिर यथावसर पर यदि चिकित्सा रोगकी परीक्षा करना हो तो वैद्यादिक का उपयोग करादे। औषधादिक वोरावे, ज्यों योग्य हो त्यों पथ्यादिक की जोगवाई करादे, जो २ कार्य हों सो करादे। इस लिए कहा है कि,:—

दाणं आहाराई। ओसह वथ्थाई जस्स जं जोगी॥
णाणाईण गुणाणं। उवठंभ णहेउ साहूणं॥

ज्ञानादि गुण वाले साधुओंको आश्रय कराकर आहारादि औषध खादिक वगैरह जो २ जैसे योग्य लगे वैसे दान देना।

जब अपने घर साधु वोहरने आवे तब हमेशह उसके योग्य जो २ पदार्थ तैयार हों सो नाम ले लेकर

वाहरावे। यदि ऐसा न करे तो उपाश्रयमे निमन्त्रण कर आयेका भंग होता है; और नाम लेकर वोहरानेसे भी यदि साधु न वोहरे तो दूसरे शास्त्रमे कह गये हैं: –

मनसापि भवेत्पुण्यं। वचसा च विशेषतः॥
कर्तव्ये नापि तद्योगे। स्वर्गद्रुमो भूत्फलं ग्रहि॥

मनसे भी पुण्य होता है, तथा वचनसे निमन्त्रण करनेसे अधिक लाभ होता है, और कायासे उसकी जोगवाई प्राप्त करा देनेसे भी पुण्य होता है, इसलिये दान कल्पवृक्ष के समान फलदायक है।

यदि गुरुको निमंत्रण न करे तो श्रावकके घरमे वह पदार्थ नजरसे देखते हुए भी साधु उसे लोभी समझ कर नहीं याचता, इसलिए निमन्त्रण न करनेसें बड़ी हानि होती है। यदि साधुको प्रतिदिन निमंत्रण करने पर भी वह अपने घर वहरनेको न आवे तथापि उससे पुण्य ही होता है। तथा भावकी अधिकता से अधिक पुण्य होता है।

"दान निमन्त्रणा पर जीर्ण सेठका दृष्टान्त"

जैसे विशाला नगरमें छद्मस्थ अवस्था मे चार महीनेके उपवास धारण कर काउसग्ग ध्यानमें खड़े हुए भगवान महावीर स्वामीको प्रति दिन पारनेकी निमन्त्रणा करने वाला जीर्ण सेठ चातुर्मासिक पारनेमें आज तो जरूर ही भगवान पारना करेंगे ऐसी धारना करके बहुत सी निमन्त्रणा कर घर आके आंगनमें बैठ ध्यान करने लगा कि अहो! मैं धन्य हूं! आज मेरे घर भगवान पधारेंगे, पारना करके मुझे कृतार्थ करेंगे, इत्यादि भावना भावते ही उसने अच्युत स्वर्ग बारहवे देवलोकका आयुष्य बांधा और पारण तो प्रभुने मिथ्या-दृष्टि किसी पूर्ण सेठके घर भिक्षाचार की रीतिसे दासीके हाथसे दिलाये हुए उबाले हुये उड़दोंसे किया। वहां पंच दिव्य प्रगट हुए, इतना ही मात्र उसे लाभ हुवा। वाकी उस समय यदि जीर्ण सेठ देवदुन्दुभी का शब्द न सुनता तो उसे केवलज्ञान उत्पन्न होता ऐसा ज्ञानियोंने कहा है। इसलिये भावनासे अधिकतर फल की प्राप्ति होती है।

आहारादिक वहराने पर शालिभद्र का दृष्टान्त तथा औषधके दान पर महावीर स्वामी को औषध देनेसे तीर्थंकर गोत्र बांधने वाली रेवती श्राविका का दृष्टान्त प्रसिद्ध होनेसे यहां पर ग्रन्थ वृद्धिके भयसे नहीं लिखा।

"ग्लान साधुकी वैयावच्च—सेवा"

ग्लान बीमार साधुकी सेवा करनेमें महालाभ है। इसलिए आगममें कहा है कि, :—

गोअम्मा जे गिलाणाणं पडिचरई सेमं दंसणेण पडिई वज्जई।
जेमं दंसणेण पडिवज्जई सेगिलाणाणं पडिचरई॥
आणा करणं सारं खु अरहंताणं दंसणं।

हे गौतम! जो ग्लान साधुकी सेवा करता है वह मेरे दर्शनको अंगीकार करता है। वह ग्लान-बीमारकी सेवा किये विना रहे ही नहीं। अर्हतके दर्शनका सार यह है कि; जिन-आज्ञा पालन करना।

बीमारकी सेवा करने पर कीड़े और कोढसे पीड़ित हुए साधुका उपाय करनेवाले ऋषभदेव का जीव जीवानन्द नामा वैद्यका दृष्टान्त समझना। एवं सुस्थानमें साधुको ठहरानेके लिये उपाश्रय वगैरह दे इसलिए शास्त्रमें कहा है कि, :—

वसहि सयणासण। भत्तपाण भसज्ज वथ्थपत्ताई॥
जइ वि न पज्जत्त धणो थोवाविहु थोवयदेई॥ १॥

वसति, उपाश्रय, सोनेका आसन, भात पानी, औषध, वस्त्र, पात्रादिक यदि अधिक धन न हो तो भी थोड़ेमेसे थोड़ा भी देवे (साधुको वहरावे)

जयन्ती वंकचूलाद्याः कोशाश्रयदानतः॥
अवन्ति सुकुमालश्च। तीर्णाः संसार सागरं॥ २॥

साधुको उपाश्रय देनेसे जयन्ती श्राविका, वंकचूल प्रमुख, अवन्ति सुकुमाल, कोशा श्राविका आदि संसार रूप समुद्रको तर गये हैं।

"जैनके द्वेषी और साधु निन्दकको शिक्षा देना"

श्रावक सर्व प्रकारके उद्यमसे जिन प्रवचनके प्रत्यनीक—जैनके द्वेषीको निवारण करे अथवा साधु वगैरहकी निंदा करनेवालों की भी यथायोग्य शिक्षा करे। तदर्थ कहा है कि, :—

तम्हा सइसामथ्थे। आणाभट्ठं मिनोखलु उवेहो॥
अनुकुलेहिअ इअरेहिंअ। अ णुसट्ठी होइ दायव्वा॥ ३॥

शक्ति होने पर भी आज्ञा भंग करनेवाले को उपेक्षा न करके मीठे वचनसे अथवा कटु वचनसे भी उन्हें शिक्षा देना।

जैसे अभयकुमार ने अपनी बुद्धिसे जैन मुनिके पास दीक्षा लेनेवाले एक भिखारी की निन्दा करने वालोंको निवारण किया था वैसे ही करना।

जैसे साधुको सुख साता पूछना बतलाया वैसे ही साध्वीको सुख साता पूछना। परन्तु इसमें विशेष इतना समझना कि, उन्हें दुःशील तथा नास्तिकोंसे बचाना। अपने घरके चारों तरफसे सुरक्षित और गुप्त दरवाजे वाले घरमें रहनेको उपाश्रय देना। अपनी स्त्रियोंसे साध्वीकी सेवा भक्ति कराना। अपनी लड़की वगैरह को उन्होंके पास नया अभ्यास करनेके लिए भेजना तथा व्रतके सन्मुख हुई स्त्री, पुत्री, भगिनी, वगैरहको उन्हें शिष्यातया समर्पण करना। विस्मृत हुए कर्तव्य उन्हें स्मरण करा देना, उन्हें अन्यान्य की प्रवृत्तिसे बचाना। एक दफा अयोग्य वर्ताव हुवा हो तो तत्काल उन्हें सीख देकर निवारण करना। दूसरी दफा अयोग्य वर्ताव हो तो निष्ठुर वचन बोलकर धमकाना। यदि वैसा करने पर भी न माने तो फिर खर वाक्य कह कर भी ताड़ना तर्जना करना। उचित सेवा भक्तिमें अचित्त वस्तुऐं देकर उन्हें सदैव विशेष प्रसन्न रखना।

गुरुके पास नित्य अपूर्व अभ्यास करना। जिसके लिये शास्त्रमें कहा है कि, :—

अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा। वाल्मीकस्य च वर्द्धनम्॥
अवध्यं दिवसं कुर्या। दानाध्ययन कर्मसु॥

आंखोंसे अञ्जन गया तथा वल्मिकी का बढ़ना देख कर-याने प्रातःकाल हुआ जान कर दान देना और नया अभ्यास करना, ऐसी करनियाँ करनेमें कोई दिन वंध्य न हो वैसे करना। अर्थात् कोई भी दिन दान और अभ्यासके विना न जाना चाहिये।

सन्तोष स्त्रिषु कर्तव्यः। स्वदारे भोजने धने॥
त्रिषु चैव न कर्तव्यो। दाने चाध्ययने तपे॥ २॥

अपनी स्त्री, भोजन और धन इन तीन पदार्थोंमें सन्तोष करना। परन्तु दान, अध्ययन और तपमें सन्तोष न करना—ये तीनों ज्यों २ अधिक हों त्यों २ लाभदायक हैं।

गृहीत इव केशेषु। मृत्युना धर्म माचरेत्॥
अजरामरवत्प्राज्ञो। विद्यामर्थं च चिन्तयेत्॥ ३॥

धर्मसाधन करते समय ऐसी बुद्धि रखना कि मानों यमराजने मेरे मस्तकके केश पकड़ लिये हैं अब वह छोड़नेवाला नहीं है, इसलिये जितना बने उतना जल्दी धर्म कर लूं तो ठीक है। एवं विद्या तथा द्रव्य उपार्जन करते समय ऐसी बुद्धि रखना कि, मैं अजर अमर हूं इस लिए जितना सीखा जाय उतना सीखते ही जाना। ऐसी बुद्धि न रखनेसे सीखा ही नहीं जाता।

जहजह सुअमवगाहई। अइसयरसापसरसञ्जुअमपुव्वं॥
तहतह पल्हाइमुणी। नव नव सम्वेग सद्धाए॥ ४॥

अतिशय रस—स्वादके विस्तारसे भरा हुवा, और आगे कभी न सीखा हुवा ऐसे नवीन ज्ञानके अभ्यास में ज्यों २ प्रवेश करे त्यों २ वह नया अभ्यासी मुनि नये २ प्रकारके सम्वेग-वैराग्य और श्रद्धासे आनन्दित होता है।

जोइह पढई अपुव्वं। स लहई तित्थयरत्त मन्नभवे॥
जो पुण पढ़ेई परं। सम्मुअं तस्स किं भणियो॥ ५॥

जो प्राणी इस लोकमें निरन्तर अपूर्व अभ्यास करता है वह प्राणी आगामी भवमें तीर्थंकर पद पाता है। तथा जो जो स्वयं दूसरे शिष्यादिकों को सम्यक्त्व प्राप्त हो ऐसा ज्ञान पढ़ाता है उसे कितना बड़ा लाभ होगा इस विषयमें क्या कहें? यद्यपि बहुत ही कम बुद्धि थी तथापि नया अभ्यास करनेमें उद्यम रखने से माष तुषादिक मुनियोंके समान उसी भवमें केवल ज्ञान आदिका लाभ प्राप्त किया जा सकता है। इस-लिये नया अभ्यास करनेमें निरन्तर प्रवृत्ति रखना श्रेयस्कर है।

"द्रव्य उपार्जन विधि"

जिन पूजा कर भोजन किये बाद यदि राजा प्रमुख हो तो कचहरीमें, दीवान प्रमुख बड़ा अधिकारी

हो तो राजसभा में, व्यापारी प्रमुख हो तो बाजार या हाट दूकान पर, अथवा अपने २ योग्य स्थान पर जाकर धर्ममें बाधा न आये याने धर्ममें किसी प्रकारका विरोध न पड़े ऐसी रीतिसे द्रव्योपार्जन का विचार करे। राजाओंको यह दरिद्री है या धनवान है, यह मान्य है या अमान्य है, तथा उत्तम, मध्यम, अधम, जातिकुल स्वभावका विचार करके सबके साथ एक सरीखा उचित न्याय करना चाहिये।

"न्याय अन्याय पर दृष्टान्त"

कल्याण कटकपुर नगरमें यशोवर्मा राजा राज्य करता था। वह न्यायमें एक निष्ठ होनेसे उसने अपने न्याय मन्दिरके आगे एक न्याय-घण्टा बन्धा रक्खा था। एक दफा उसकी राज्याधिष्ठायिका देवीको ऐसा विचार उत्पन्न हुवा कि, उस राजाने जो न्याय घण्टा बाँधा है सो सत्य है या असत्य इसकी परीक्षा करनी चाहिए। यह विचार कर वह देवी स्वयं गायका रूप धारण कर तत्काल उत्पन्न हुए बछड़ेके साथ मोहक्रीड़ा करती हुई राजमार्ग के बीच आ खड़ी हुई। इस अवसर में उसी राजाका पुत्र अत्यन्त जोशमें दौड़ते हुए घोड़ों वाली गाड़ीमें बैठकर अतिशय शीघ्रतासे उसी मार्गमें आया। अति वेगसे आती हुई घोड़ा गाड़ीके गड़गड़ाहट से मार्गमें खड़े हुए और आने जानेवाले लोग तो सब एक तरफ बच गये, परन्तु गाय वहाँसे न हटी, इससे उसके बछड़े के पैर पर घोड़ा गाड़ीका पहियाँ आजानेसे वह बछड़ा तत्काल मृत्यु शरण हो गया। अब गाय पुकार करने लगी और जैसे रोती हो वैसे करुणनादसे इधर उधर देखने लगी। उसे रस्ते चलनेवाले पुरुषोंने कहा कि, न्याय दरबारमें जाकर अपना न्याय करा। तब वह गाय चलती हुई दरबारके सामने जहां न्याय घन्टा बंधा हुवा है वहाँ आई और अपने सींगोंके अग्रभाग से उस घन्टेको हिला २ कर बजाने लगी। इस समय राजा भोजन करने बैठता था तथापि वह घन्टा नाद सुनकर बोला—"अरे यह घन्टा कौन बजाता है?" नौकरोंने तलाश करके कहा—"स्वामिन्! कोई नहीं आप सुखसे भोजन करें"। "राजा बोला—घंटानाद का निर्णय हुए बिना भोजन कैसे किया जाय? यों कहकर भोजन करनेका थाल ज्योंका त्यों छोड़ कर स्वयं उठ कर न्याय मन्दिरके आगे आकर देखता है कि वहां पर एक गाय उदासीन भावसे खड़ी है! राजा उसे कहने लगा—"क्या तुझे किसीने दुःख पहुंचाया है? उसने मस्तक हिलाकर हाँ की संज्ञा की, राजा बोला—"चल! मुझे उसे बतला वह कौन है?" यह वचन सुनकर गाय चल पड़ी; और राजा भी उसके पीछे २ चल पड़ा। जिस जगह बछड़ेका कलेवर पड़ा था वहां आकर गायने उसे बतलाया। बछड़े परसे गाड़ीका पहियाँ फिरा देख राजाने नौकरोंको हुक्म दिया कि, जिसने इस बछड़े पर गाड़ीका पहियाँ फिराया हो उसे पकड़ लावो। इस वृत्तान्तको कितनेएक लोग जानते थे, परन्तु वह राजपुत्र होनेसे उसे राजाके पास कौन ले आवे, यह समझ कर कोई भी न बोला। इससे राजा बोला कि, "जबतक इस बातका निर्णय और न्याय न होगा तब तक मैं भोजन न करूंगा।" तथापि कोई न बोला जब राजाको वहां पर ही खड़े एक दो लंघन होगये तबतक भी कोई न बोला। तब राजपुत्र स्वयं आकर राजाको कहने लगा—"स्वामिन्! मैं ही इस बछड़े पर गाड़ीका पहिया चलानेवाला हूं, इसलिये मुझे जो

दण्ड करना हो सो फरमायें । राजाने उसी वक्त स्मृतियों के—अर्हन्नीति वगैरह कायदोंके जानकारोंको बुलवा कर पूछा कि, "इस गुनाहका क्या दण्ड करना चाहिये ?" वे बोले—"स्वामिन् ! राजपद के योग्य यह एकही राजपुत्र होनेसे इसे क्या दण्ड दिया जाय ?" राजाने कहा "किसका राज्य ? किसका पुत्र ? मुझे तो न्यायके साथ सम्बन्ध है । मुझे न्याय ही प्रधान है । मैं किसी पुत्रके लिये या राज्यके लिए हिचकिचाऊं ऐसा नहीं हूं । नीतिमें कहा है:—

दुष्टस्य दंडः स्वजनस्य पूजा । न्यायेन कोशस्य च संप्रवृद्धिः ॥
अपक्षपातो रिपुराष्ट्ररक्षा । पंचैव यज्ञाः कथिताः नृपाणां ॥

दुष्टका दंड, सज्जनका सत्कार, न्याय मार्गसे भंडारकी वृद्धि, अपक्षपात, शत्रुओंसे अपने राज्यकी रक्षा राजाओंके लिए ये पांच प्रकारके ही यज्ञ कहे हैं । सोम नीतिमें भी कहा है कि, 'अपराधानुरूपो ही दंडः पुत्रेऽपि प्रणेतव्यः' पुत्र को भी अपराधके समान दंड करना । इसलिए इसे क्या दंड देना योग्य लगता है सो कहें ! तथापि वे लोग कुछ भी नहीं बोले और चुपचाप ही खड़े रहे । राजा बोला "इसमें किसीका कुछ भी पक्षपात रखनेकी जरूरत नहीं, 'कृते प्रतिकृतं कुर्यात्' इस न्यायसे जिसने जैसा अपराध किया हो उसे वैसा दंड देना चाहिये । इसलिए यदि इसने इस बछड़े पर गाड़ीका चक्र फिराया है तो इस पर भी गाड़ीका चक्र ही फेरना योग्य है । ऐसा कहकर राजाने वहां एक घोड़ा गाड़ी मंगाई और पुत्रसे कहा कि:-तू यहां सो जा ! पुत्रने भी वैसा ही किया । घोड़ा गाड़ी चलाने वालेको राजाने कहा कि, इसके ऊपरसे घोड़ा गाड़ीका पहियां फिरा दो । परन्तु उससे गाड़ी न चलाई गई, तब सब लोगोंके निषेध करने पर भी राजा स्वयं गाड़ीवान को दूर करके गाड़ी पर चढ़कर उस गाड़ी को चलानेके लिए घोड़ोंको चाबुक मार कर उसपर चक्र चलानेका उद्यम करता है, उसी वक्त वह गाय बदल कर राज्याधिष्ठायिका देवीने जय २ शब्द करते हुए उस पर फूलोकी वृष्टि करके कहा कि, 'राजन् ! तुही धन्य है तू ऐसा न्यायनिष्ठ है कि, जिसने अपने प्राण प्रिय इकलौते पुत्रकी दरकार न करते हुए उससे भी न्यायको अधिकतर प्रियतम गिना । इसलिए तू धन्य है । तू चिरकाल पर्यन्त निर्विघ्न राज्य करेगा ! मैं गाय या बछड़ा कुछ नहीं हूं परन्तु तेरे राज्यकी अधिष्ठायिका देवी हूं । और मैं तेरे न्यायकी परीक्षा करनेके लिए आयी थी, तेरी न्यायनिष्ठता से मुझे बड़ा आनन्द और हर्ष हुवा है ।" ऐसा कह कर देवी अदृश्य होगई ।

राजाके कार्य कर्ताओंको ज्यों राजा और प्रजाका अर्थ साधन हो सके और धर्ममें भी विरोध न आवे वैसे अभयकुमार तथा चाणक्यादिके समान न्याय करना चाहिये । कहा है कि,:—

नरपति हितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके । जनपदहितकर्ता मुच्यते पार्थिवेन ।
इति महति विरोधे वर्तमाने समाने । नृपति जनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता ॥

राजाका हित करते हुए प्रजासे विरोध हो, लोगोंका हित करते हुए राजा नोकरीसे रजा दे देवे, ऐसे दोनोंको राजी रखनेमें बड़ा विरोध है (दोनोंको राजी रखना बड़ा मुश्किल है) परन्तु राजा और प्रजा दोनों के हितका कार्य करने वाला भी मिलना मुश्किल है । ऐसे दोनोंका हितकारक बनकर अपना धर्म संभाल कर न्याय करना ।

"व्यापार विधि"

व्यापारियोंको व्यवहार शुद्धि वगैरहसे धर्मका अविरोध होता है। व्यापारमें निर्मलता हो और यदि सत्यतासे व्यापार किया जाय तो उससे धर्ममें विरोध नहीं होता, इसलिए शास्त्रमें कहा है कि;—

ववहार सुद्धि देसाइ। विरुद्धचाय उचिम्र चरणेहि॥
तो कुणाई अथ्थ चिंतं। निव्वाहिंतो निअं धम्मं॥

व्यवहार शुद्धिसे, देशादिके विरुद्धके त्याग करनेसे, उचित आचरणके आचरनेसे, अपने धमका निर्वाह करते हुए तीन प्रकारसे द्रव्योपार्जन की चिन्ता करे। वास्तविक विचार करते व्यवहार शुद्धिमें मन, वचन, कायाकी सरलता युक्त, निर्दोष व्यापार कहा है। इसलिए व्यापारमें मन वचन, कायासे कपट न रखना, असत्यता न रखना, ईर्षा न करना, इससे व्यवहार शुद्धि होती है। तथा देशादिक विरुद्धको त्याग करके व्यापार करते हुए भी जो द्रव्य उपार्जन किया जाता है वह भी न्यायोपार्जित वित्त गिना जाता है। उचित आचारके सेवन करनेसे याने लेने देनेमें जरा भी कपट न रखकर जो द्रव्य उपार्जन होता है सो ही न्यायोपार्जित वित्त गिना जाता है। ऊपर बतलाये हुए तीन कारणोंसे अपने धर्मको बचा कर याने स्वयं अंगीकार किये हुए व्रत प्रत्याख्यान अभिग्रहका बचाव करते हुए धन उपार्जन करना, परन्तु धर्मको किनारे रखकर धन उपार्जन न करना। लोभमें मोहित हो स्वयं लिये हुए नियम व्रत, प्रत्याख्यान भूल कर धन कमानेकी बुद्धि न रखना, क्योंकि, बहुतसे मनुष्योंको प्रायः व्यापारके समय ऐसा हो विचार आ जाता है। इसके लिए कहा है कि, (लोभीष्ट पुरुष बोलते हैं कि,)

नहि तद्विद्यते किंचि। यद्द्रव्येन न सिध्यति॥
यत्नेन मतिमांस्तस्मा। दर्थमेकं प्रसाधयेत्॥

ऐसा जगतमें कुछ नहीं कि, जो धनसे न साध्य होता हो, इसी लिए बुद्धिमान पुरुषको बड़े यत्नसे द्रव्य उपार्जन करना चाहिए, मात्र ऐसे विचारमें मशगूल हो अपने व्रत प्रत्याख्यान को कदापि न भूलना। धन उपार्जन करनेसे भी पहले धर्म उपार्जन करनेकी आवश्यकता है। 'निव्वाहंतो निअं धम्मं' इस गाथाके पदमें बतलाये मुजब विचार करनेसे यही समझा जाता है कि:—

अत्रार्थचिंतामित्यनुवाद्य'। तस्याः स्वयं सिद्धत्वात्॥
धर्मं निर्वाह यन्निति तु। विधेय मप्राप्तत्वात्॥

अर्थ चिन्ता—धनोपार्जन यह पीछे करने लायक कार्य है। क्योंकि अर्थ चिन्ता तो अपने आप ही पैदा होती हैं। इसलिए धर्म निर्वाह करते हुए धन उपार्जन करे; ऐसे पदकी योजना करना। धन नहीं मिला इसलिये धर्म करना योग्य है। यदि धर्म उपार्जन किया होता तो धनकी चिन्ता होती ही क्यों? क्यों कि, धन धर्मके अधीन है, यदि धर्म हो तब ही धनकी प्राप्ति होती है। इसलिये धन उपार्जन करनेसे पहले धर्म सेवन करना योग्य है। क्योंकि उससे धनकी प्राप्ति सुगमता से होती है कहा है कि;—

इह लोइ अंमिकज्जे । सव्वारंभेण जहजणो जणाई ॥
तहजह लख्खंसेणवि । धम्मे ता किं न पज्जत्तं॥

इस लोकमें लौकिक कार्यके लिए लोक जितना उद्यम करके प्रयास करते हैं उसका लाखवाँ अंश भी धर्ममें उद्यम करते हों तो उन्हें क्या नहीं मिल सकता ? इसलिये धनके उद्यमसे भी पहले धर्मके उद्यमकी अत्यन्त आवश्यकता हैं। इसलिए यह बात ध्यानमे रखकर व्यापारादिमें धर्मको हार कर व्यवहार न करना।

"आजीविका चलानेके सात उपाय"

एक व्यापारसे; दूसरा विद्यासे, तीसरा खेतीसे, चौथा पशुओंके पालनेसे, पाँचवां शिल्पसे, (सुतार चित्रकारी) आदिसे छठां नौकरीसे, और सातवां भिक्षासे, ।

१ व्यापार,—घी, तेल, कपास, सूत, वस्त्र, धातु, जवाहरात, मोती, लेनदेन, जहाज चलाना वगैरह व्यापारके अनेक प्रकारके भेद हैं। यदि उनके भेद प्रभेदको गणना की जाय तो उनका पार ही नहीं आ सकता। लौकिकमें किसी ग्रन्थमें तीनसौ साठ कथाने गिना कर व्यापार गिनाये हैं, परन्तु भेद प्रभेद गिनने से उससे भी अधिक भेद होते हैं।

२ विद्यासे—वैद्य, ज्योतिषी, पौराणिक, पण्डित, वकालत, मंत्र तंत्र, मुनीमगिरी, इत्यादि।

३ खेतीसे—किसान, जमीनदार वगैरह (खेत जोतकर धान्य पैदा करनेवाले) इत्यादि।

४ पशुपाल—गोपाल, गड़रिया, घोड़े वाला, ऊंटवाला, वगैरह २।

५ शिल्पसे—चित्रकार, सुनार, छापनेवाला, दरजी, कारीगर का काम करनेवाला इत्यादि।

६ नौकरी तो प्रसिद्ध ही है।

७ भिक्षा—अपमान पूर्वक मांग खाना।

ब्याजके और लेन देनके व्यापारी भी व्यापारियोंमे ही गिने जाते हैं। विद्या भी एक प्रकारकी नहीं है। औषध, रसायन, धातुमारण, चूरण, अंजन, वास्तुशास्त्र का ज्ञान, शकुन शास्त्रका ज्ञान, निमित्त शास्त्र, सामुद्रिक शास्त्र, मुहूर्त शास्त्र, धर्मशास्त्र, व्याकरण शास्त्र, अंक शास्त्र वगैरह अनेक प्रकारकी विद्यायें हैं।

यदि धनवान बीमार होवे तो पनसारी तथा वैद्यको उससे अधिक लाभ हो; तथापि वैद्यक और पन्सारीका व्यापार प्रायः दुर्ध्यानका संभव होनेसे विशेषतः लाभकारी नहीं है (बहुतसे मनुष्य बीमार पड़े तो ठीक हो) प्रायः उसमें इस प्रकारका दुर्ध्यान हुये विना नही रहता। तथा वैद्यका बहुमान भी हो। कहा है कि:—

रोगीणां सुहृदो वैद्याः। प्रभूणां चाटुकारिणः ॥
मुनयो दुःखदग्धानां । गणकाः क्षीणसंपदां ॥

रोगीका वैद्य, श्रीमन्तके लिये उसके कथनानुसार चलने वाला या मिष्ट वचन बोलने वाला, दुःखदग्ध के लिए मुनि और निर्धन पुरुषोंके लिए ज्योतिषी मित्र समान गिने जाते हैं।

पण्यानां गांधिकं पण्यं । किमन्यैः कांचनादिकैः ॥
यत्रैकेन गृहीतेना । तत्सहस्रेण दीयते ॥

क्रयानेमें करियाना पन्सारीपन का हो प्रशंसाके योग्य है। सुवर्ण, चांदी वगैरहसे क्या लाभ है? क्योंकि, जो पन्सारीका क्रयाणा एक रुपयेमें लिया हो वह हजारमे बेचा जा सकता है; वैद्य और पन्सारी के व्यापार पर यद्यपि उपरोक्त विशेष लाभ है तथापि अध्यवसाय की मलीनता के कारणसे वह दूषित तो है ही अर्थात् उस धन्देमें अध्यवसाय खराब हुए विना नहीं रहता। कहा है कि,:—

विग्रहमिच्छन्ति भट्टाः। वैद्याश्च व्याधिपीडितलोकं ॥
मृतकबहुलं विप्रा। क्षेमसुभिक्षं च निग्रथाः ॥

सुभट लोग लड़ाईको, वैद्य लोग व्याधिसे पीड़ित हुए मनुष्योंको, ब्राह्मण लोग श्रीमन्तोंके मरणको और निग्रंथ मुनि जनताकी शांति एवं सुकालको इच्छते हैं।

यो व्याधिभिर्ध्यायति बाध्यमानं। जनौघमादातुमना धनानि ॥
व्याधिन् विरुद्धौषधतोस्यवृद्धिं। नयेत्कृपा तत्र कुतोस्तु वैद्ये ॥

जो व्याधि पोड़ित मनुष्योंके धनको लेना चाहता है तथा जो पहले रूपको शांत करके फिर विपरीत औषध दे कर रोगकी वृद्धि करता है ऐसे वैद्यके व्यापारमे दयाकी गन्ध भी नहीं होती। इसी कारण वैद्य व्यापार कनिष्ठ गिना जाता है।

तथा कितने एक वैद्य दीन, हीन, दुःखो भिक्षुक, अनाथ लोगोंके पाससे अथवा कष्टके समय अत्यन्त रोग पीड़ितसे भी जबरदस्ती धन लेना चाहते हैं एवं अभक्ष्य औषध वगैरह करते हैं या कराते हैं। औषध तयार करनेमें बहुतसे पत्र, मूल, त्वचा, शाखा, फूल, फल, बीज, हरीतकाय, हरे और सूखे उपयोगमें लेनेसे महा आरंभ समारंभ करना पड़ता है। तथा विविध प्रकारकी औषधोंसे कपट करके वैद्य लोग बहुतसे भद्रिक लोगोंको द्वारिका नगरीमें रहने वाले अभव्य वैद्य धन्वन्तरी के समान वारंवार ठगते हैं। इसलिए यह व्यापार अयोग्यमे अयोग्य है। जो श्रेष्ठ प्रकृति वाला हो, अति लोभी न हो, परोपकार बुद्धि वाला हो, ऐसे वैद्यकी वैद्य विद्या, श्री ऋषभदेवजी के जीव जीवानन्द वैद्य के समान इस लोक और परलोक में लाभ कारक भी होती है।

खेती वाड़ीकी आजीविका—वर्षाके जलसे, कुवेके जलसे, वर्षा और कुवेके पानीसे ऐसे तीन प्रकार की होती है। वह आरम्भ समारम्भ की बहुलता से श्रावक जनोंके लिए अयोग्य गिनी जाती है।

चौथी पशुपालसे आजीविका—गाय, भैंस, बकरियाँ, भेड़, ऊंट, बैल, घोड़े, हाथी वगैरहसे आजीविका करना वह अनेक प्रकारकी है। जैसी २ जिसकी कला बुद्धि वैसे प्रकारसे वह बन सकती है। पशुपालन और कृषि, ये दो आजीविकायें विवेकी मनुष्यको करनी योग्य नहीं। इसके लिए शास्त्रमें कहा है कि,:—

रायाणं दंतिदंते। वइल्ल खंधेसु पामर जणाणं ॥
सुहडाण मंडलग्गे। वेसाणं पओहरे लच्छी ॥

राजाओंके संग्राममें लड़ते हुए हाथीके कुम्भस्थल पर, वनजारे वगैरह पामर लोगोंके बैलके स्कन्ध पर सुभट सिपाहियोंके तलवारकी अणी पर और वेश्याके पुष्ट स्तन पर लक्ष्मी निवास करती है। (अर्थात् उपरोक्त कारणसे उनको आजीविका चलती है) इसलिए पशुपाल्य आजीविका पामर जनके उचित है। यदि दूसरे किसी उपायसे आजीविका न चल सकती हो तो कृषि आजीविका भी करे। परन्तु हल चलाने वगैरह कार्यमें ज्यों बने त्यों उसे दयालुता रखनी चाहिये। कहा है कि,:—

वापकालं विजानाति । भूमिभागं च कर्षकः ॥
कृषिसाध्या पथिक्षेत्रं । यश्चोज्झति स वर्द्धते ॥

जो कृषक बोनेका समय जानता हो, अच्छी बुरी भूमिको जानता हो, बिना जोते न बोया जाय ऐसे और आने जानेके मार्गके बीचका जो क्षेत्र हो उसे छोड़े वह किसान सर्व प्रकारसे वृद्धिमान है।

पाशुपाल्यं श्रियो वृद्धयै । कुर्वन्नोज्झेत् दयालुताम् ॥
तत्कृत्येषु स्वयं जाग्र । च्छविच्छेदादि वर्जयेत् ॥

आजीविका चलानेके लिए यदि कदाचित् पशुपाल्य वृत्ति करे तथापि उस कार्यमें दयालुता को न छोड़े, उन्हें बांधने और छोड़नेके कार्यको स्वयं देखता रहे और उन पशुओंमें बैल वगैरह के नाक, कान, मुंड, पूंछ, चर्म, नख वगैरह स्वयं छेदन न करे। पांचवीं शिल्प-आजीविका सौ प्रकारकी है। सो बतलाते हैं।

पंचेवयसिप्पाइ । घयलोहेचित्तऽणंतकासवए ॥
इक्किकस्सयइत्तो । वीसं वीसं भवे भेया ॥

कुंभकार, लुहार, चित्रकार, वणकर—जुलाहा, नाई, ये पांच प्रकारके शिल्प हैं। इनमें एक, एकके बीस २ भेद होनेसे सौ शिल्प होते हैं। यदि व्यक्तिकी व्यवस्था की हो तो इससे भी अधिक शिल्प हो सकते हैं। यहां पर 'आचार्योपदेशजं शिल्पं' गुरुके बतलानेसे जो कार्य हो वह शिल्प कहलाता है। क्योंकि ऋषभदेव स्वामीने स्वयं ही ऊपर बतलाये हुए पांच शिल्प दिखाये हुए होनेसे उन्हें शिल्प गिना है। आचार्यके—गुरुके बतलाये बिना जो परम्परासे खेती, व्यापार वगैरह कार्य किये जाते हैं उन्हें कर्म कहते हैं। इसी लिये शास्त्रमें लिखा है कि—

कम्मं जमणायरिओ । वएसं सिप्पमन्नहा भिहिअं ॥
किसिवाणिज्जाईअं । घडलोहाराई भेअं च ॥

जो कर्म हैं वे अनाचार्योपदेशित होते हैं याने आचार्योंके उपदेश दिये हुए नहीं होते, और शिल्प आचार्योंपदेशित होते हैं। उनमें कृषि वाणिज्यादिक कर्म और कुम्भकार, लुहार, चित्रकार, सुतार, नाई ये पांच प्रकारके शिल्प गिने जाते हैं। यहां पर कृषि, पशुपालन, विद्या और व्यापार ये कर्म बतलाये हैं। दूसरे कर्म तो प्रायः सब ही शिल्प वगैरह में समा जाते हैं। स्त्री पुरुषकी कलायें अनेक प्रकारसे सर्व विद्यामें समा जाती हैं। परन्तु साधारणतः गिना जाय तो कर्म चार प्रकारके बतलाये हैं। सो कहते हैं—

उत्तमा बुद्धिकर्माणः । करकर्मा च मध्यमाः ।

अधमाः पादकर्माणः । शिरः कर्माधमाधमाः ॥

जो बुद्धिसे कर्म करता है वह उत्तम पुरुष है, जो हाथसे कर्म करता है वह मध्यम है, जो पैरसे काम करता है वह अधम है और जो मस्तकसे काम करता है वह अधममें अधम है। याने जो बुद्धिसे कमा खाता है वह उत्तम, हाथसे मेहनत कर कमा खाता है वह मध्यम, पैरोंसे चलकर नौकरी वगैरह करे वह अधम! और मस्तक पर भार उठाकर कुलीकर्म अधममें अधम है।

"बुद्धिसे कमानेवाले पर दृष्टान्त"

चम्पा नामक नगरीमें मदनसुन्दर नामका धनावह शेठका पुत्र रहता था। वह एक दिन बजारमें फिरता हुवा बुद्धि बेचनेवाले की दूकान पर गया। वहांसे उसने पांचसौ रुपये देकर 'जहां दो जने लड़ते हों वहां खड़े न रहना' ऐसी एक बुद्धि खरीदी। घर आकर मित्रसे बात करने पर वह उसकी हंसी करने लगा, अन्तमें जब उसके पिताको मालूम हुवा, तब उसने ताड़न तर्जन करके कहा कि हमें ऐसी बुद्धिका कुछ काम नहीं, अपने पांच सौ रुपये पीछे ले आ। मदनसुन्दर शरमिंदा होता हुवा बुद्धिवालेकी दूकान पर जाकर कहने लगा कि हमें आपकी बुद्धि पसन्द नहीं आई; इसलिये उसे पीछे लो और मेरे पांच सौ रुपये मुझे वापिस दो! क्योंकि मेरे घरमें इससे बड़ा क्लेष होता है। दूकानदार बोला—"तुझे पांचसौ रुपये वापिस देता हूं परन्तु जब कहीं दो जने लड़ते हों और तू वहांसे निकले तो तुझे वहां ही खड़े रहना पड़ेगा और यदि खड़ा न रहा तो हमारी बुद्धिके अनुसार वर्ताव किया गिना जायगा और इससे उस दिन तुझे पांचसौ रुपयेके बदले मुझे एक हजार रुपये देने पड़ेंगे। यह बात तुझे मंजूर है?" उसने हाँ कहकर पांच सौ रुपये वापिस ले अपने पिताको दे दिये। कितनेक वर्ष, महीने बीतने पर, एक जगह राजाके दो सिपाही किसी बातमें मतभेद होनेसे रास्तेमें खड़े लड़ रहे थे, दैवयोग मदनसुन्दर भी उसी रास्ते से निकला। अब उसने विचार किया कि; यदि मैं यहांसे चला जाऊंगा तो उस बुद्धिवालेका गुनहगार बनूंगा, और उसे एक हजार रुपये देने पड़ेंगे। इससे वह कुछ देर वहां खड़ा रहा, इतनेमें वे दोनों सिपाही उसे गवाह करके चले गये। रात्रिके समय उनमेंसे एक सिपाही मदनसुन्दर के पिताके पास आ कर कहने लगा कि, आपके पुत्रको हम दोनों जनोंने साक्षी गवाह किया है, इससे जब वह दरबारमें गवाही देनेको आवे तब यदि मेरे लाभमें नहीं बोला तो यह समझ रखना कि फिर तुम्हारा पुत्र ही नहीं। यों कह-कर उसके गये बाद दूसरा सिपाही भी वहां आया और शेठसे कहने लगा कि, यदि तुम्हारा पुत्र मेरे हितमें गवाही न देगा तो यह निश्चय समझ रखना कि, इसका पुनर्जन्म नजीक ही आया है, क्योंकि, मैं उसे जानसे मार डालूंगा। ऐसी घुड़की दे कर चला गया। इन दोनोंमेंसे किसके पक्षमें बोलना और किसके नहीं, जिसके पक्षमें बोलूंगा उससे विपरीत दूसरेकी तरफसे सचमुच ही मुझपर बड़ा संकट आपड़ेगा। इस विचार से शेठजीके होष हवास उड़ गये और घबरा कर बोलने लगा कि, हा! हा!! अब क्या करना चाहिए? सचमुच ही यह तो व्यर्थ कष्ट आ पड़ा! अन्तमें लाचार हो वह उसी बुद्धि वालेकी दुकान पर आ कर

कहने लगा कि, यह सब तुम्हारी ही छींटें उड़ी हुई मालूम देतीं हैं, परन्तु अब किस तरहसे छुटकारा हो, इसका कोई उपाय है? शेठ बोला—"मेरे एकही लड़का है कुछ उपाय बतलाने से आपको जीवितदान दिये समान पुण्य होगा। आप जो कहैं सो मैं आपको देनेके लिये तैयार हूं, परन्तु मेरा लड़का बच जाय वैसा करो।" बुद्धिधन बोला—"क्यों पांचसौ वापिस न लिये होते तो यह प्रसंग आता? खैर लड़केको बचा दूं तो क्या दोगे?" शेठ बोला —"एक लाख रुपये।" बुद्धिधन—नहीं नहीं इतनेमें कोई बच सकता है? एक करोड़ लूंगा।" अन्तमें हां ना करके १० लाख रुपये ठहरा कर मदनसुन्दर को पास बुलाकर सिखलाया कि जब तुझे कचहरीमे गवाही देनेके लिये खड़ा करें तब तू प्रथम प्रश्न पुछने पर यही उत्तर देना कि आज तो मैंने कुछ नहीं खाया। जब फिरसे पूछे तब कहना कि, अभी तक तो पानी भी नहीं पिया। तब तुझे कहेंगे कि अरे मूर्ख! तू यह क्या बकता है? जो पूछते हैं उसका उत्तर क्यों नहीं देता? उस वक्त तू कुछ भी अण्डबण्ड बकने लगना। तुझसे जो २ सवाल किया जाय तू उसका कुछ भी सीधा उत्तर न देना। मानो यह कुछ समझता ही नहीं ऐसा अनजान बन जाना। यदि तू कुछ भी उसके सवालका उत्तर देगा तो फिर तू स्वयं गुन्हेगार बन जायगा। इसलिये पागलके जैसा बनाव बतलाने से तुझे बेवकूफ जानकर तत्काल ही छोड़ दिया जावेगा। धनावह शेठ बोला—"यह तो ठीक है तथापि ऐसा करते हुए भी यदि बोलनेमें कहीं चूक होगई तो?" बुद्धिधन बोला—"तो हरकत ही क्या है? फिर से फीस भरना तो उसका भी उपाय बतला दूंगा। इसमें क्या बड़ी बात है।" फिर मदनसुन्दर को ज्यों त्यों समझा कर समय पर दरबारमें भेजा। अन्तमें बुद्धिधनके बतलाये हुए उपायका अनुसरण करनेसे वह बच गया। इसलिए जो ऐसी बुद्धिसे कमा खाता है उसे विद्या नामकी अजीविका कहते हैं और वह कमाईके उपायमें उत्तम उपाय गिना जाता है।

करकर्मकारी—हाथसे लेन देन करने वाला व्यापारी। पादकर्मकारी दूतादिक। शिर कर्मकारी-भार वाहक आदि (बोझ उठाने वाले) सेवा–नौकरी नामकी जो आजीविका है सो। १ राजाकी, २ दीवानकी, ३ श्रीमन्त व्यापारी की, ४ लोगोंकी, ऐसे चार प्रकारकी है। राजा प्रमुखकी सेवा नित्य परवश रहने वगैरहके कारण जैसे तैसे मनुष्यसे बननी बड़ी मुश्किल है क्योंकि, शास्त्रमें कहा है,:—

मौनान्मूकः प्रवचनपटु। र्वातुलो जल्पको वा॥
धृष्टः पार्श्वे भवति च तथा दूरतश्चा प्रगल्भः॥
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः॥
सेवाधर्म परमगहनो योगिनामप्यगम्यः॥ १॥

यदि नौकर विशेष न बोले तो शेठ कहेगा कि, यह तो गूंगा है, कुछ बोलता ही नहीं, यदि अधिक बोले तो मालिक कहेगा अरे यह तो वाचाल है, बहुत बड़ बड़ाहट करता है। यदि नौकर मालिकके पास बैठे तो मालिक कहेगा कि, देखो इसे जरा भी शर्म है यह तो बिलकुल धीट है। यदि दूर बैठे तो कहा जाता है कि, अरे! यह तो बिलकुल बे समझ है, मूर्ख है, देखो तो सही कहां जा बैठा, जब काम पड़े तब क्या इसका

बाप इसे दूर बुलाने जायगा। उसे जो कुछ कहा जाय सब सहन करके बैठ रहे तो मालिक कहेगा यह तो बिलकुल डरपोक है डरपोक, देखो तो सही जरा भी उत्तर नहीं दे सकता है ? यदि सामने जबाब देता है तो मालिक कहता है कि, देखो तो सही कुछ सहन कर सकता है ? कैसे सवाल जवाब करता है ? सचमुच जैसी जात हो वैसी ही भांत होनी है। इसलिए योगी पुरुषोंको भी सेवाधर्म बड़ा अगम्य है, क्योंकि, स्थूल बुद्धि वाला नहीं जान सकता इस समय उसके स्वामिका मन कैसा है।

प्रणमात्युन्नतिहेतो। जीवितहेतो विमुंचति प्राणान्॥
दुःखीयति सुखहेतो। को मूर्खः सेवकादन्यः॥ २॥

मुझे मान मिलेगा या शेठ खुशी होंगे इस हेतुसे उठकर शेठको प्रणाम करता है, जीवन पर्यन्त नौकरी मिलेगी इस आशयसे अपने स्वामीके लिए या उसके कार्यके लिए कभी अपने प्राण भी खो देता है, मालिकको खुशी करनेके लिए उसकी तरफसे मिलने वाले अपार दुःख सहन करता है, इसलिए नोकरके बिना दूसरा ऐसा कौन मूर्ख है कि, जो ऐसे दुःसह काम करे।

सेवाश्च वृत्ति यैरुक्ता। नतैः सम्यगुदाहृतं॥
श्वानः कुर्वति पुच्छेन। चाटुमुध्र्नातु सेवकः॥ ३॥

दूसरेकी नोकरी करके आजीविका चलाना सो ठीक नहीं कहा, क्योंकि कुत्ते जैसे पशु भी अपने स्वामी को पूंछ द्वारा प्रसन्न करते हैं, परन्तु नौकर तो मस्तक नमाकर स्वामीको प्रसन्न रखते हैं। (नौकरी कुत्तेसे भी हलकी गिनी जाती है;) इसलिये बने तब तक दूसरेकी नौकरी करके आजीविका करना योग्य नहीं। परन्तु यदि दूसरे किसी उपायसे आजीविका न चले तो फिर अन्तमें दूसरेकी नौकरी करके भी निर्वाह चलाना। इसके लिये शास्त्रमें कहा है कि;—

धणवं ववाखिज्जेणं। थोवधणोकारिसणेण निव्वहई॥
सेवा विच्चिइपुणो। तुद सयलंमि ववसाए॥

धनवान् व्यापार करके, कम धन वाला खेती द्वारा, तथा अन्य कोई भी व्यवसाय न लगे तब दूसरेकी नौकरी करके निर्वाह करे।

"स्वामी कैसा होना चाहिये।"

विशेष जानकार, किये हुये गुणको जानने वाला, दूसरेकी बात सुनकर एकदम न भड़क ने वाला, वगैरह २ गुण वाला हो उसी स्वामीके पास नौकरी करना कहा है। अर्थात् पूर्वोक्त गुणवान् स्वामीकी नौकरी करना योग्य है।

अकार्णो दुर्बलः शूरः। कृतज्ञः सात्विको गुणी॥
वादान्यो गुणरागी च। प्रभुः पुरायैं रवाप्यते॥ १॥

कानका कच्चा—दूसरेकी बात सुनकर एकदम भडक जाने वाला न हो, शूर वीर हो, किये हुए गुणका

जानकार गुणानुरागी हो, धर्मवान्, गंभीर, बुद्धिमान्, उदारता गुण वाला, त्यागी दूसरेका गुण देखकर खुशी होनेवाला, इस प्रकारका स्वामी (मालिक) पुण्यसे ही मिलता है।

क्रूरं व्यसनिनं लुब्ध । मप्रगल्भं सदामयं ॥
मूर्खमन्याय कर्त्तारं । नाधिपत्ये नियोजयेत् ॥ २ ॥

क्रूर प्रकृति वाला, व्यसनी, किसी भी प्रकारके लांछन वाला, या बुरी आदत वाला, लोभी, बेसमझ, जन्म रोगी, मूर्ख, और सदैव अन्यायके आचरण करने वाला ऐसे स्वामीसे सदैव दूर रहना चाहिये। अर्थात् ऐसेकी नौकरी न करना।

अविवेकिनि भूपाले । करोत्याशा समृद्धये ॥
योजनानां शतं गत्वा । करोत्याशा समृद्धये ॥ ३ ॥

अविवेकी राजाके पाससे समृद्धि प्राप्त करनेकी आशा रखना यह सौ योजन दूर जाकर समृद्धि की आशा रखने जैसा है। कमन्दकीय नीतिसारमें कहा है कि:—

वृद्धोपसेवी नृपतिः । सतां भवति संमतं ॥
प्रेर्य्यमाणोप्यसद्वृत्ते । नाकार्येषु प्रवर्त्तते ॥

वृद्ध पुरुषोंसे सेवित राजाकी सेवा सज्जन पुरुषोंको सम्मत है। क्योंकि किसी दुष्टने उसे चढ़ाया हो याने उसके कान भरे हों तथापि वह विना विचारे एक दम आगे कदम नहीं रखता। इसलिए उपरोक्त गुण-वाले ही स्वामीकी सज्जन पुरुषको नौकरी करना योग्य है, स्वामीको भी सेवकको योग्य मान सन्मान आदर प्रमुख देना उचित है, इसके लिए नीतिमें कहा है कि,:—

निर्विशेषं यदा राजा । समं भृत्येषु वर्त्तते ॥
तदोद्यम समर्थाना । मुत्साहः परिहीयते ॥ १ ॥

अधिक कार्य करने वाले और अधिक कार्य न करने वाले ऐसे दोनों पर जब स्वामी समान भावसे वर्ताव करता है तब उद्यम करने वालेकी उमंग नष्ट हो जाती है (इसलिए स्वामीको चाहिए कि वह अधिक उद्यम करने वालेको अधिक मान और अधिक वेतन दे। तथा सेवकको भी उचित है कि, भक्ति और विचक्षणता सहित कार्यमें प्रवृत्त हो) एतदर्थ कहा है कि,—

अप्रज्ञे न च कातरे न च गुणाः स्यात्सानुरागे न कः ।
प्रज्ञा विक्रमसालिनोपि हि भवेत्किंभक्ति हीनात्फलं ॥
प्रज्ञा विक्रम भक्तयः समुदिताः येषां गुणाः भूतये ॥
ते भृत्याः नृपतेः कलत्रमितरे संपत्सु चापत्सु च ॥ २ ॥

जब नौकर मूर्ख और आलसु हो तब स्वामी उसे किस गुणके लिए मान दे? बुद्धिवन्त और पराक्रमी-उद्यमी होने पर भी यदि नम्रता न हो तब वह कहांसे फल पाए? अर्थात् न पाये। इसलिए जिसमें बुद्धि, उद्यम, नम्रता, आदि गुण हों वैसे ही नौकरोंको मान और लाभ मिलता है। भृत्य राजाओं को नौकर समान

गिनने लायक है, और दूसरे कितने एक गुणोंसे अधिक गुणवान संपदामें और आपदामें साथ रहने वाले अपनी स्त्री समान मित्र जैसे गिने जाते हैं।

राजा तुष्टोपि भृत्यानां। मानमात्रं प्रयच्छति ॥
तेतु सन्मानितास्तस्य। प्राणैरप्युप कुर्वते ॥ ३ ॥

जब राजा तुष्टमान हो तब नौकरको मात्र मान देता है परन्तु इतने मान मात्र देनेसे स्वामीका वह अपने प्राण देकर भी उपकार करता है। तथा सेवा करना सो निरन्तर अप्रमादि होकर करना, जिससे लाभ मिल सके। इसके लिये कहा है कि, :—

सर्पान् व्याघ्रान् गजान् सिंहान्। दृष्टोपायै र्वशीकृतान् ॥
राजेति कियति मात्रा। धीमता मप्रमादिनां ॥ ४ ॥

सर्प, व्याघ्र, हाथी, सिंह, ऐसे बलिष्ठोंको भी जब उपायसे वश कर लिया जासकता है तब फिर अप्रमादी बुद्धिमान राजाको वश करले इसमें क्या बडी बात है ?

"राजा या स्वामीको वश करनेकी रीति"

बैठे हुए स्वामीके पास जाकर उसके मुख सामने देख दो हाथ जोड़ कर सन्मुख बैठना स्वामीका स्वभाव पहिचान कर उसके साथ बात चीत करना। जब स्वामी बहुतसे मनुष्यों की सभामें बैठा हो तब उसके अति समीप न बैठना, एवं अति दूर भी न बैठना, तथा बराबर में भी न बैठना, पीछे भी न बैठना, आगे भी न बैठना, क्योंकि मालिकके बिल्कुल पास बराबर बैठनेसे उसे भीड़ होती है, बहुत दूर बैठनेसे अकलमन्दी नहीं गिनी जाती, आगे बैठनेसे मालिकका अपमान गिना जाता है, बहुत पीछे बैठनेसे मालिकको मालूम न रहे कि अपना आदमी यहां है या कहीं चला गया। इसलिये मालिकके पास सामने नजरके आगे बैठना ठीक है। यदि स्वामीके पास कुछ अर्ज करना हो तो निम्न लिखे समय न करना।

थका हुवा हो, भूखा हो, क्रोधायमान हो, उदास हो, सोनेकी तैयारी करते समय, प्यास लगी हो उस समय अन्य किसीने अर्ज की हो उस समय स्वयं अपने मालिकको किसी प्रकारकी अर्ज न करना। क्योंकि वैसे समय अर्ज करनेसे वह निष्फल जाती है।

राजाकी माता, रानी, कुमार, राजमान्य प्रधान, राजगुरु, और दरबान इतने मनुष्योंके साथ राजाके समान ही वर्ताव करना याने उनका हुक्म मानना।

"राजाका विश्वास न होनेपर दीपकोक्ति"

प्रादौ मयैवाय मदिपिनूनं नतद्दहेन्मा मवही लितोपि ॥
इति भ्रमा दङ्गुली पर्वणापि स्पृशेतनो दीप इवावनीपः ॥

यह दीपक सचमुच मैंने ही प्रथमसे प्रगट किया है इस लिये यदि मैं इसकी अवगणना करूंगा तो मुझे यह कुछ हरकत न करेगा, ऐसी भ्रांतिसे अंगुलिमात्र से भी कभी उसका स्पर्श न करना। इसी तरह इस

राजाको भी प्रथमसे मैंने ही पूर्ण प्रसन्न किया हुवा है इस लिये अब यह मुझे किसी प्रकार भी हरकत न पहुं-चायगा, ऐसे विचार रखकर किसी वक्त भी राजाकी अवगणना न करना। क्योंकि राजाका विचार क्षण भरमें ही बदलते देर नहीं लगती, इससे न जाने वह किस समय क्या कर डाले। इस लिए हर वक्त स्वयं जागृत सावधान रहना श्रेयस्कर है।

यदि राजाकी तरफसे किसी कार्यवशात् सन्मान मिला हो तथापि अभिमान बिल्कुल न रखना। क्योंकि नीतिमें कहा है कि, 'गव्वोमूलविणासस्स' गर्व विनाशका मूल है। इस लिये गर्व करना योग्य नहीं। इस पर दृष्टान्त सुना जाता है कि, "दिल्लीमें एक राजमान्य दीवान था। उसने किसीके पास यह कहा था कि, मेरेसे ही राज्यका काम काज चलता है। यह बात मालूम हो जानेसे बादशाहने उसका वह अधिकार छीन कर उसके पास रहने वाले उसे चमार लोगोंका ऊपरी अधिकारी बनाया। और उससे सही सिक्केके लिए चमार लोगोंके रापी नामक शस्त्रके आकार जैसा रखनेमें आया। अन्तमें उसके नामकी यादगारी भी रापीके नामसे ही रखनेमें आई थी। इस लिए राजमान्य होने पर अभिमान रखना योग्य नहीं। उपरोक्त रीतिके अनु-सार नौकरी करते हुए राज्यमान्य और ऐश्वर्यता प्रमुखका लाभ होना भी कुछ असम्भवित नहीं है, जिसके लिए कहा है कि,:—

इक्षुक्षेत्रं समुद्रश्च । योनिपोषणमेवच ॥
प्रसादो भूभुजां चैव । सद्यो घ्नन्ति दरिद्रतां ॥

इक्षु क्षेत्र, जहाजी व्यापार, घोड़ा, वगैरह पशुओंका पोषण, राजाकी मेहरबानी, इतने काम किसी न किसी समय करने वाले या प्राप्त करने वालेका दारिद्र्य दूर कर डालते हैं। राजकीय सेवाकी श्रेष्ठता बतलाते हुये कहते हैं।

निंदन्तु मानिनः सेवां। राजादीनां सुखैषिणः ॥
स्वजनाऽस्वजनोद्धार। संहारौ न विना तया ॥

निर्भय सुखकी इच्छा रखने वाले अभिमानी पुरुष कदापि राजा वगैरहकी सेवाकी निन्दा करें करने दो परन्तु सज्जन और दुर्जन पुरुषका क्रमसे उद्धार और संहार ये राजाकी सेवा किए बिना नहीं किये जा सकते।

"राज सेवाके लाभ पर दृष्टान्त"

एक समय कुमारपाल राजा अपने राज्यकी भीतरी परिस्थिति जाननेके लिये रात्रिके समय गुप्त वेशमें निकला था। उस समय प्रजा द्वारा की हुई प्रशंसासे इसने ही सच्ची राजकीय सेवा बजाई है ऐसे विचारसे राजाने एक वोशीर नामक विप्रको तुष्टमान हो लाट देशका राज्य दे दिया। इसी प्रकार जितशत्रु राजाने अपने पुत्रको सर्पके भयसे बचाने वाले देवराज नामक रात्रिके चौकीदार को तुष्टमान होकर अपना राज्य दे दीक्षा लेकर मोक्ष पदकी प्राप्ति की।

इस तरह जिसने सच्ची राजकीय सेवा की हो, उसे अलभ्य लाभ हुये बिना नहीं रहता। राजकीय सेवा जन्य अनर्थोंको भी न भूलना चाहिये।

दीवान पदवी, सेनापति पदवी, नगर शेठ पदवी, वगैरह सर्व प्रकारकी पदवियां, राजकीय सेवा गिनी जाती है। यह राजकीय व्यापार देखनेमें बड़ा आडम्बर युक्त मालूम होता है, परन्तु वह सचमुच ही पापमय, असत्यमय, और अन्तमें उसमेंसे प्रत्यक्ष दीख पड़ते असार दृश्यसे श्रावकोंके लिए वह प्रायः वर्जने ही योग्य है। क्योंकि, इसके लिए शास्त्रकारोंने लिखा है कि—

नियोगी यत्र यो मुक्त, स्तत्र स्तेयं करोति सः ॥
किं नाम रजकः क्रीत्वा, वासांसि परिधास्यति ॥ १ ॥
अधिकाधिकाधिकाराः, कारएवाग्रतः प्रवर्त्तन्ते ॥
प्रथमं नवं धनं ददतु। बन्धन नृपति नियोगजुषां ॥ २ ॥

जिसे जिस अधिकार पर नियुक्त किया हो वही उसमेंसे चोरी करता है। जैसे कि तुम्हारे मलीन कपड़े धोनेवाला धोबी क्या मोलको लाकर वस्त्र पहनेगा? यहां पर राजकीय बड़े बड़े अधिकार प्रत्येक ही कारागार समान हैं। वे अधिकार प्रथम तो अच्छी तरह पैसा कमवाते हैं परन्तु अन्तमें बहुत दफा जेलखाने की हवा भी खिलवाते हैं।

"सर्वथा वर्जने योग्य राज-व्यापार"

यदि राजकीय व्यापार सर्वथा न छोड़ा जाय तथापि दरोगा, फौजदार, पुलिस अधिकार वगैरह पदवियां अत्यन्त पाप मय निर्दयी लोगोंके ही योग्य होनेसे श्रावकके लिए सर्वथा वर्जनीय हैं। कहा है कि—

गोदेव करणारक्त, तलवत्तक पट्टकाः ॥
ग्रामोत्तरश्च न प्रायः। सुखाय भवभवंत्यमी ॥ १ ॥

दीवान, कोतवाल, फौजदार, दरोगा, तलावर्त्तक, नम्बरदार, मुखी, पुरोहित, इतने अधिकारोंमें से मनुष्योंके लिए प्रायः एक भी अधिकार सुखकारी नहीं होता। ऊपर लिखे हुए कोतवाल, नगर रखवाल, सीमा पाल, नम्बरदार वगैरह कितने एक सरकारी पदवियोंके अन्य अधिकार यदि कदाचित् स्वीकार करे तो वह मन्त्री वस्तुपाल साह श्री पृथ्वीधर, आदिके समान ज्यों अपनी कीर्ति बढ़े त्यों पुण्य कीर्ति रूप कार्य करे। परन्तु अन्यायके वर्तावसे जिसके पीछेसे जैनधर्म की निन्दा हो वैसा कार्य न करे। इस विषयमें कहा है कि,:—

नृपव्यापारपापेभ्यः, स्वीकृतं सुकृतं न यैः ॥
तान् धूलिधावकेभ्योपि। मन्ये मूढतरान् नरान् ॥ २ ॥

पापमय राज व्यापारसे भी जिसने अपना सुकृत न किया तो मैं धारता हूं कि, वह धूल धोने वालोंसे भी अत्यन्त मूर्ख शिरोमणि है।

प्रभोः प्रसादे प्राप्येपि। प्रकृतिर्नैव कोपयेत्॥
व्यापारितश्च कार्येषु। याचेताध्यक्षपुरुषं॥ ३॥

राजाने बड़ा सन्मान दिया हो तथापि उससे अभिमानमें न आना चाहिए। यदि किसी कार्यमें उसे स्वतन्त्र नियुक्त किया हो तथापि उसके अधिकारी पुरुषोंको पूछ कर कार्य करना चाहिए, जिससे बिगड़े सुधरेका वह भी जवाबदार हो सके।

इन युक्तियोंके अनुसार राज नौकरी करना, परन्तु जो राजा जैनी हो उसकी नौकरी करना योग्य है, किन्तु मिथ्यात्वी की नहीं।

सावय घरंमि वरहुज्ज, चेड श्रोनाण दंसण समेओ।
मिच्छत्तमोहि अमई, माराया चक्कवट्टीवि॥ १॥

ज्ञान दर्शन संयुक्त श्रावकके घरमें नौकर होके रहना श्रेष्ठ है, परन्तु मिथ्यात्वी तथा मोह विकलित मति वाला चक्रवर्ती राजा भी कुछ कामका नहीं।

यदि किसी अन्य उपायसे आजीविका न चले तो सम्यक्त्व ग्रहण करनेसे 'वित्ति कंतारेणं' [आजीविका रूप कान्तार—अटवी तद्रूप दुःख दूर करनेके लिए यदि मिथ्यात्वी की सेवा चाकरी करनी पड़े तथापि सम्यक्त्व खंडित न हो ऐसे आगारकी छूट रखनेसे) कदापि मिथ्यात्वीकी सेवा करनी पड़े तो करना। तथापि यथाशक्ति धर्ममें त्रुटि न आने देना। यदि मिथ्यात्वीके वहांसे अधिक लाभ होता हो और श्रावक स्वामीके वहांसे थोड़ा भी लाभ होता हो और यदि उससे कुटुम्ब निर्वाह चल सकता हो तथापि मिथ्यात्वी नौकरी न करना। क्योंकि, मिथ्यात्वी नौकरी करनेसे उसकी दाक्षिण्यता वगैरह रखनेकी बहुत ही जरूरत पड़ती है, इससे उसे नौकरी करने वालेको कितनी एक दफा व्रतमें दूषण लगे बिना नहीं रहता। यह छट्ठी आजीविका समझना।

सातवीं आजीविका भिक्षा वृत्ति—धातूकी, रांधे हुए धान्यकी, वस्त्रकी, द्रव्य वगैरहकी भिक्षासे, अनेक भेदवाली गिनी जाती है। उसमें भी धर्मोपष्टम्भ मात्रके लिए ही (धर्मको आश्रय देनेके लिए और शरीरका बचाव करनेके लिए ही) आहार, वस्त्र, पात्रादिक की भिक्षा, जिसने सर्व प्रकारसे संसारका त्याग किया हो और जो वैराग्यवन्त हो उसे ही उचित है क्योंकि; इसके लिए शास्त्रमें लिखा है,

प्रतिदिन प्रयत्नलभ्ये, भिक्षुकजन जननिसाधु कल्पलते।
नृपनमनि नरकवारिणि, भगवति भिक्षे! नमस्तुभ्यं॥

निरन्तर बिना प्रयास मिल सकनेवाली, उत्तम लोगोको माता समान हितकारिणी, श्रेष्ठ पुरुषोंको सदा कल्पलता समान, राजाको भी नमानेवाली नरकके दुःख दूर करानेवाली हे भगवती (हे ऐश्वर्यवती) भिक्षा! तुझे नमस्कार है। दूसरी भिक्षा (प्रतिमाधर श्रावक तथा जैनमुनि सिवाय दूसरेकी भिक्षा) तो अत्यन्त नीच और हलकी है। जिसके लिए कहा है कि—

तारुवं ताव गुणा, लज्जा सच्च कुलकम्मोचाव।

तावंचिश्र अभिमाणं, देही तिन जंपए जाव ॥ १ ॥

मनुष्य रूप, गुण, लज्जा, सत्य, कुलक्रम, पुरुषाभिमान; तब तक ही रख सकता है कि, जब तक वह देही, ऐसे दो अक्षर नहीं बोलता।

तृणं लघु तृणात्तूलं, तूलादपिहि याचकः।
वायुना किं न नीतोसौ, मामपि याचयिष्यति ॥ २ ॥

सबसे हलकेमें हलका तृण है, उससे भी आकके रूईका फोया अधिक हलका गिना जाता है। परन्तु याचक उससे भी हलका है। इसमें कोई शंका करता है कि, यदि सबसे हलका याचक—भिक्षुक है तो फिर उसे वायु क्यों नहीं उड़ाता ? क्योंकि, जो २ हलके पदार्थ हैं उन्हें वायु आकाशमें उड़ा ले जाता है तब याचकको क्यों नहीं उड़ाता ? इसका उत्तर यह है कि, वायुको भी याचकका भय लगा इस लिए नहीं उड़ाता। वायुने विचार किया कि, यदि मैं इसे उड़ाऊंगा तो मेरे पाससे भी यह कुछ याचना करेगा, क्योंकि जो याचक होता है उसे याचना करनेमें कुछ शरम नहीं होती, इससे वह हरएकके पास मांगे बिना नहीं रहता।

रोगी चिरप्रवासी, परान्नभोजी च परवशः शायी।
यज्जीवति तन्मरणं, यन्मरणं सो तस्य विश्रामः ॥ ३ ॥

रोगी, चिरप्रवासी, (कासिद, दूत वगैरह या जिनकी सदैव फिरनेसे ही आजीविका है ऐसे लोग) परान्नभोजी—दूसरेके घरसे माँग खानेवाला, दूसरेकी अधीनतामें सो रहनेवाला, यद्यपि इतने जने जीते हैं तथापि उन्हें मृतक समान ही समझना। और उन्हें जो मृत्यु आती है वही उनके लिए विश्राम है क्योंकि इस प्रकार दुःखसे पेट भरना उससे मरना श्रेयस्कर है।

जो भिक्षा भोजी है वह प्रायः निश्चिंत होनेसे उसे आलस्य अधिक होता है। भूख बहुत होती है, अधिक खाता है, निद्रा बहुत होती है, लज्जा, मर्यादा कम होती है वगैरह इतने कारणोंसे विशेषतः वह कुछ काम भी नहीं कर सकता। भिक्षा मांगनेवाले को काम न सूझे परन्तु ऊपर लिखे हुए अवगुण तो उसमें जरूर ही होते हैं।

"भिक्षान्न खानेमें अवगुण"

कई योगी हाथमें मांगनेका खप्पर लेकर, कन्धे पर झोली लटका कर भिक्षा मांगता हुवा, चलती हुई एक तेलीकी घाणी पर आ बैठा। उस वक्त उसकी झोलीमें मुंह डाल कर तेलीका बैल उसमें पड़े हुए टुकड़े खाने लगा, यह देख हा हा ! करके वह योगी उठकर बैलके मुंहमेंसे टुकड़े खींचने लगा। यह देख तेली बोला—महाराज भीखको क्या भूख है ? इतने टूकड़ों पर तुम्हारा जी ललचा जाता है कि, जिससे बैलके मुंहमेंसे पीछे खींच रहे हो। भिक्षु बोला—भीखको कुछ भूख नहीं थामे मुझे तो टुकड़े बहुत ही मिलते हैं और मिलेंगे भी, परन्तु यह बैल भीखके टुकड़े खाने लगेगा तो इससे यह आलसु न हो जाय। क्योंकि

भीखका अन्न खानेवाले के गोड़े गल जाते हैं इसीलिए मुझे दुःख होता है कि, यह बैल यदि भिक्षाके टुकड़े खायगा तो विचारा आलसु बन जानेसे काम न कर सकेगा। यदि काम नही कर सका तो तू भी फिर इसे किस लिए खानेको देगा! इससे अन्तमें यह दुःखी हो कर मर जायगा। इसी कारण मैं भिक्षाके टुकड़े इसके मुंहसे वापिस लेता हूं। भिक्षान्न खानेसे उपरोक्त अवगुण जरूर आते हैं इस लिए भिक्षान्न न खाना चाहिये। हरिभद्रसूरिने पांचवें अष्टकमें निम्न लिखे मुजब तीन प्रकारकी भिक्षा कही है।

सर्वसंपत्करी चैका। पौरुषघ्नी तथापरा॥
वृत्तिभिक्षा च तत्वज्ञै। रितिभिक्षा त्रिधोदिता॥१॥

पहली सर्वसंपत्करी (सर्व सम्पदाकी करनेवाली), दूसरी पौरुषको नष्ट करनेवाली, तीसरी वृत्ति-भिक्षा, इस प्रकार तत्वज्ञ पुरुषोंने तीन प्रकारकी भिक्षा कही हैं।

यतिर्ध्यानादियुक्तो यो। गुर्वाज्ञायां व्यवस्थितः॥२॥
सदानारंभिणस्तस्य। सर्वसंपत्करी मता॥

जो जितेन्द्रिय हो, ध्यानयुक्त हो, गुरुकी आज्ञामे रहता हो, सदैव आरंभसे रहित हो, ऐसे पुरुषोंकी भिक्षा सर्व संपत्करी कही है।

प्रव्रज्यां प्रतिपन्नोय। स्तद्विरोधने वर्त्तते॥
असदारंभिणस्तस्य। पौरुषघ्नी तु कीर्त्तिता॥३॥

प्रथमसे दीक्षा ग्रहण करके फिर उस दीक्षासे विरुद्ध वर्तन करने वाले खराब आरंभ करने वाले (गृहस्थके आचारमें छह कायाका आरंभ करने वाले) की भिक्षा पुरुषार्थ को नष्ट करने वाली कही है।

धर्मलाघवकृन्मूढो। भिक्षयोदरपूरणं॥
करोति दैन्यात्पीनांगः। पौरुषं हन्ति केवलं॥४॥

जो पुरुष धर्मकी लघुता कराने वाला, मूर्ख, अज्ञानी, शरीरसे पुष्ट होने पर भी दीनतासे भीक माँग कर पेट भरता है ऐसा पुरुष केवल अपने पुरुषाकार-आत्मशक्ति को हनन करने वाला है।

निःस्वान्ध पंगवो ये तु। न शक्ता वै क्रियान्तरे।
भिक्षामटन्ति वृत्त्यर्थं। वृत्ति भिक्षेयमुच्यते॥५॥

निर्धन, अंधा, पंगु, लूला, लंगड़ा वगैरह जो दूसरे किसी आजीविका चलानेके उपाय करनेमे असमर्थ हों वह अपना उदर पूर्ण करनेके लिए जो भिक्षा मांगता है उसे वृत्तिभिक्षा कहते हैं।

निर्धन, अन्धे वगैरह को धर्मकी लघुता करानेके अभावसे और अनुकंपाके निमित्त होनेसे उन्हें वृत्ति नामकी भिक्षा अति दुष्ट नहीं है। इसी लिए गृहस्थको भिक्षावृत्ति का त्याग करना चाहिये। धर्मवन्त गृहस्थ को तो सर्वथा त्याग करना चाहिये। जैसे कि, विशेषतः धर्मानुष्ठान की निन्दा न होने देनेके लिए दुर्जन पुरुष सज्जनका दिखाव करके इच्छित कार्य पूर्ण कर लें और उसके बाद उसका कपट खुला हो जानेसे वह जैसे निन्दा अपवाद के योग्य गिना जाता है वैसे यदि धर्मवन्त हो कर गुप्त भिक्षासे आजीविका चलावे तो

जब उसका दंभ खुल जायगा तब वह धर्मकी निन्दा कराने वाला हो सकता है। विशेषतः धर्मानुष्ठान की निन्दा अपवाद न होने देनेके लिए सज्जन दुर्जनके समान भीख मांगना ही नहीं। यदि धर्मनिन्दा का निमित्त स्वयं बने तो इससे उसे परभव में धर्मप्राप्ति होना भी दुर्लभ होता है। इत्यादि अन्य भी दोषोंकी प्राप्ति होती है। इस विषयमें ओघनिर्युक्ति में साधुको आश्रय करके कहा है कि,—

छक्काय देयावंतोपि। संजओ दुल्लहं कुणई बोहिं ॥
आहारे निहारे। दुगंछिए पिंड गहणेय ॥ १ ॥

जो साधु छह कायकी दया पालने वाला होने पर भी यदि दुगंच्छ- नीच कुल, (ब्राह्मण बनिये विना रंगेरे जाट वगैरहके कुल) का आहार पानी वगैरह पिंड ग्रहण करता है वह अपनी आत्माको बोधिबीज की प्राप्ति दुर्लभ करता है। भिक्षासे किसीको लक्ष्मीके सुख आदिकी प्राप्ति नहीं होती।

लक्ष्मीर्वसति वाणिज्ये। किंचिदस्ति च कर्षणे ॥
अस्तिनास्ति च सेवायां। भिक्षायां न कदाचन ॥

लक्ष्मी व्यापारमें निवास करती है, कुछ २ खेती करनेमें भी मिलती है, नौकरी करनेमें तो मिले भी और न भी मिले, परन्तु भिक्षा करनेमें तो कभी भी लक्ष्मीका संग्रह नहीं होता।

भिक्षासे उदरपूर्ण मात्र हो सकता है परन्तु अधिक धनकी प्राप्ति नहीं हो सकती। उस भिक्षावृत्ति का उपाय मनुस्मृति के चौथे अध्याय में नीचे मुजब लिखा है:—

ऋताऽमृताभ्यां जीवेत। मृतेन प्रमृतेन वा ॥
सत्यानृतेन चैवापि। न श्ववृत्त्या कथंचन ॥ १ ॥

उत्तम प्राणीको ऋत और अमृत यह दो प्रकारकी आजीविका करनी चाहिये; तथा मृत और प्रमृत नामकी आजीविका भी करनी चाहिये। अन्तमें सत्यानृत आजीविका करके निर्वाह करना, परन्तु श्ववृत्ति कदापि न करना चाहिये। याने श्वानवृत्ति न करना।

जिस तरह गाय चरती है उस प्रकार भिक्षा लेना ऋत, बिना मांगे बहुमान पूर्वक दे सो अमृत, मांगकर ले सो मृत, खेती बाड़ी करके आजीविका चलाना सो प्रमृत, व्यापार करके आजीविका चलाना सो सत्यानृत। इतने प्रकारसे भी आजीविका चलाना परन्तु दूसरेकी सेवा करके आजीविका चलाना सो श्ववृत्ति गिनी जाती है। इस लिए दूसरेकी नौकरी करके आजीविका न चलाना।

"व्यापार"

इस पांच प्रकारकी आजीविका में से व्यापारी लोगोंको द्रव्योपार्जन करनेका मुख्य उपाय व्यापार ही है लक्ष्मी निवासके विषयमें कहा है कि:—

महुमहणस्सयवच्छे। नचैव कमलायरे सिरि वसई ॥
किंतु पुरिसाण ववसाय। सायरे तीई सुहट्ठाणं ॥

मधू नामक दैत्यका मथन करने वाले कृष्णके वक्षस्थल पर लक्ष्मी नहीं वसती, तथा कमलाकर-पद्म-सरोवरमे भी कुछ लक्ष्मी निवास नहीं करती; तब फिर कहां रहती है? पुरुषोंके व्यवसाय—व्यापार रूप समुद्रमें लक्ष्मीके रहनेका स्थान है।

व्यापार करना सो भी १ सहाय कारक, २ पूंजी, ३ बल हिम्मत ४ भाग्योदय, ५ देश, ६ काल, ७ क्षेत्र, वगैरहका विचार करके करना। प्रथमसे सहाय कारक देखकर करना, अपनी पूंजीका बल देखकर, मेरा भाग्योदय चढ़ता है या पड़ता सो विचार करके, उस क्षेत्रको देखकर, इस देशमे इस अमुक व्यापारसे लाभ होगा या नहीं इस बातका विचार करके, तथा काल, देखके— जैसे कि, इस कालमे इस व्यापारसे लाभ होगा या नहीं इसका विचार करके यदि व्यापार किया तो लाभकी प्राप्ति हो, और यदि विना विचार किये किया जाय तो लाभके बदले जरूर अलाभकी प्राप्ति सहन करनी पड़े। इस विषयमें कहा है कि,:—

स्वशक्त्यानुरूपं हि। प्रकुर्यात्कार्यमार्यधीः॥
नो चेद् सिद्धि ह्रीहास्य। हीला श्री बलहानयः॥ ॥

आर्य बुद्धिवान् पुरुष यदि अपनी शक्तिके अनुसार कुछ कार्य करता है तो उस कार्यकी प्रायः सिद्धि हो ही जाती है और यदि अपनी शक्तिका विचार किये विना करे तो लाभके बदले हानि ही होती है। लज्जा आती है, हंसी होती है, निन्दा होती है, यदि लक्ष्मी हो तो वह भी चली जाती है; बल भी नष्ट होता है। विचार रहित कार्यमें इत्यादिकी हानि प्रगटतया ही होती है। अन्य शास्त्रमें भी कहा है कि—

कोदेशः कानि मित्राणि। कः कालः कौ व्ययागमौ॥
कश्चाहं का च मे शक्ति। रिति चिंत्यं मुहुर्मुहुः॥ २॥

कौनसा देश है? कौन मित्र हैं? कौनसा समय है? मुझे क्या आय होती है? और क्या खर्च? मैं कौन हूं? मेरी शक्ति क्या है? मनुष्यको ऐसा विचार वारम्वार करना चाहिये।

लघुथ्थानान्य विघ्नानि। सम्भवत्सा धनानि च॥
कथयन्ति पुरः सिद्धिः। कारणान्येव कर्मणां॥

प्रारम्भमें व्यापारका छोटा डौल रख कर जब उसमे कुछ भी हरकत न हो तब फिर उसमें सम्भावित बड़े व्यापारका स्वरूप लावे। व्यापारमे लाभ प्राप्त करनेका यही लक्षण है। याने जिस व्यापारके जो कारण हैं वही कार्यकी सिद्धिको प्रथमसे ही मालूम करा देते हैं कि, यह कार्य सफल होगा या नहीं?

उद्भवन्ति विना यत्न। मभवन्ति च यत्नतः॥
लक्ष्मीरेव समाख्याति। विशेषं पुण्यपापयोः॥

लक्ष्मी कहती है कि मैं पुण्य पापके स्वाधीन हूं। याने उद्यम किये विना ही मैं पुण्यवानको आ मिलती हूं, और पापीके उद्यम करने पर भी उसे नहीं मिल सकती (पुन्यके उदयसे में आती हूं, और पापके उदयसे जाती हूं) व्यापारमें निम्न लिखे मुजब व्यवहार शुद्धि रखना चाहिये।

व्यापार करनेमें चार प्रकारसे जो व्यवहार शुद्धि करनी कहा है उसके नाम ये हैं—१ द्रव्यशुद्धि, २ क्षेत्रशुद्धि, ३ कालशुद्धि, ४ भावशुद्धि।

द्रव्यशुद्धि—पन्द्रह कर्मादान के व्यापार का, पन्द्रह कर्मादान के कारणरूप क्रयाणेका व्यापार सवथा त्यागना। क्योंकि, शास्त्रमें कहा है कि—

धर्मबाधाकरं यच्च। यच्च स्यादयशस्करं॥
भूरि लाभ परिग्राह्यं। पण्यं पुण्यार्थिभिन तत्॥

जिस व्यापारसे धर्मका बचाव न हो तथा अपकीर्ति हो वैसा करियाना माल, यदि अधिक लाभ होता हो तथापि पुण्यार्थी मनुष्यको न लेना चाहिये। ऐसे करियानेका व्यापार श्रावकको सर्वथा न करना चाहिए। तैयार हुये वस्त्रका, सूतका, द्रव्यका, सौनेका चांदी वगैरहका व्यापार विशेषतः निर्दोष होता है तथापि उस प्रकारके व्यापारमें ज्यों अधिक आरंभ न हो त्यों उद्यम करना।

अकाल वगैरहके कारण हों और अन्यसे निर्वाह न हो तो अधिक आरंभ वाले या पन्द्रह कर्मादान के व्यापार करनेकी आवश्यकता पड़े तथापि अनिच्छासे, अपने आत्माकी निन्दा करनेसे और वारंवार खेद करते पूर्वक करे। परन्तु निर्दय होकर जैसे चलता है वैसे चलने दो इस भावसे न करे। इसलिए भाव श्रावकके लक्षण बतलाये हुए कहा है कि,:—

वज्जई तिव्वारम्भं। कुणई अकाम अनिव्वहंतो उ॥
थुणई निरारम्भजणं। दयालु ओ सव्वजीवेसु॥ १॥
धन्ना हु महामुणिणो। मणसावि करन्ति जे न परपीडं॥
आरम्भ पोय विरया। भुजंति तिकोडि परिसुद्धं॥ २॥

बहुत आरंभ वाला व्यापार न करे, पन्द्रह कर्मादान का व्यापार न करे, यदि दूसरे किसी व्यापारसे निर्वाह न हो तो कर्मादान का व्यापार करे परन्तु निरारम्भी व्यापार करने वालोंकी स्तुति करे और सर्व जीवों पर दयावान होकर व्यापार चलावे। परन्तु दया रहित होकर व्यापार न करे। तथा ऐसा विचार करे कि, धन्य है उन महामुनियों को कि, जो मनसे भी पर जीवको पीड़ा कारक विचार तक नहीं करते। और सर्व पाप व्यापारसे रहित होकर मन, वचन, कायसे बने हुए पापसे रहित तीन कोटी विशुद्ध ही आहार ग्रहण करते हैं। निम्न लिखे प्रकारका व्याख्यान करना।

न देखे हुए, परीक्षा न किये हुए मालका व्यापार न करना। तैयार हुए, परीक्षा किये हुए मालको खरीदना परन्तु शंकावाला वायदेवाला माल न खरीदना, तथापि यदि वैसा खरीदनेकी जरूरत पड़े तो अकेले नहीं परन्तु बहुतसे जने हिस्सेदार हो कर खरीदना। क्योंकि इकले द्वारा रखनेसे कदाचित् ऐसी हरकत भोगनी पड़े कि, जिससे आबरूका धक्का पहुंचे। यदि सबके हिस्सेमें वैसा माल खरीदा हो तो उसमें सबकी सहायता होनेसे उतनी हरकत आनेका संभव नहीं; और यदि कदाचित् हरकत भोगनी पड़े तथापि बहुतसे हिस्सेदार होनेसे वह स्वयं हंसीका पात्र नहीं बनता। इसलिये कहा है कि;—

अयाणकेष्वदृष्टेषु। न सत्यंकारमर्पयेत्॥
दद्याच्च बहुभिः सार्द्ध। मिच्छेल्लक्ष्मी वणिग्यदि॥

यदि व्यापारी लक्ष्मी बढ़ानेकी इच्छा रखता हो तो नजरसे न देखे हुये वायदेके मालकी साई न दे। कदाचित् वैसा करनेकी आवश्यकता ही पड़े तो बहुत जनोंके साथ मिलकर करे परन्तु अकेला न करे। व्यापारमें क्षेत्रशुद्धि की भी जरूरत है।

क्षेत्रशुद्धि याने ऐसे क्षेत्रमें व्यापार करे कि, जो स्वदेश गिना जाता हो, जहांके बहुतसे मनुष्य परिचित हों, और जहां अपने सगे सम्बन्धी रहते हों, जहांके व्यापारी सत्यमार्गके व्यवसायी हों, वैसे क्षेत्रमें व्यापार करे परन्तु जहां पर स्वचक्रका प्रत्यक्ष भय हो (गांवके राज्यमें कुछ उपद्रव चलता हो उस वक्त), दूसरे राजाका उपद्रव हो, जिस देशमें बीमारियां प्रचलित हों, जहांका हवापानी अच्छा न हो, या जहाँ पर प्रत्यक्षमें कोई बड़ा उपद्रव देख पड़ता हो वहां जाकर व्यापार न करना। उपरोक्त क्षेत्रमें जहां अपना धर्म सुसाध्य हो और आय भी अच्छी ही हो वहां व्यापार करना। बतलाये हुये दूषण वाले क्षेत्रमें यदि प्रत्यक्षमें अधिक लाभ मालूम होता हो तथापि व्यापार न करना चाहिये। क्योंकि, ऐसा करनेसे बड़ी मुसीबतें और हानि सहन करनी पड़ती हैं। इसी प्रकार व्यापारमें काल याने समय शुद्धि रखनेकी आवश्यकता है।

कालसे तीन अठाइयोंमें, पर्व तिथियोंमें (जो आगे चलकर बतलायी जायेगीं) और वर्षाऋतुके विरुद्ध व्यापार न करना (जिस कालमें तीन प्रकारके चातुर्मासमें जिस २ पदार्थमें अधिक जीव पड़ते हैं उस कालमें उस पदार्थका व्यापार न करना)।

"भाव शुद्धि व्यापार या भाव विरुद्ध"

भाव शुद्धिमें बड़ा विचार करनेकी जरूरत है सो इस प्रकार जैसे कि कोई क्षत्रिय जाति वाले, यवन जातीय राज दरबारी या राजाके साथ जो व्यापार करना हो वह सब जोखम वाला है। अधिक लाभ देख पड़ता हो तथापि वैसा व्यापार करनेमें प्रायः लाभ नहीं मिलता। क्योंकि अपने हाथसे दिया हुवा द्रव्य भी वापिस मांगने जाना भय पूर्ण होता है। इसलिये वैसे लोगोंके साथ खुले दिलसे थोड़ा व्यापार भी किस तरह किया जाय? अतः निम्न लिखे व्यापारियोंके साथ व्यापार न करना चाहिये।

लाभ इच्छने वाले व्यापारियों को शस्त्र रखने वाले या ब्राह्मण व्यापारीके साथ व्यापार न करना। उधार, भंगउधार, विरोधिके साथ व्यापार न करना। इसलिए कहा है कि, कदाचित् संग्रह किया हुवा माल हो तो वह समय पर बेचनेसे लाभ प्राप्त किया जा सकता है परन्तु जिससे वैर विरोध उत्पन्न हो वैसे उधार देने वगैरहका व्यापार करना, उचित नहीं।

नटे विटे च वेश्यायां। द्यूतकारे विशेषतः॥
उद्धारके न दातव्यं। मूलनाशो भविष्यति॥

नाटक करने वाले, अविश्वासी, वेश्या, जुवे बाज, इतनोंको उधार न देना। इन्हें उधार देनेसे व्याज मिलना तो दूर रहा परन्तु मूल द्रव्यका भी नाश होता है।

व्याजका व्यापार भी अधिक कीमती गहना रखकर ही करना उचित है, क्योंकि, यदि ऐसा न करे

तो जब लेने जाय, तब उसमेंसे क्लेष, विरोध, धर्म हानि, लोकोपहास्य, वगैरह, बहुतसे अनर्थ उपस्थित होते हैं।

"मुग्ध शेठकी कथा"

सुना जाता है कि, जिनदत्त शेठका मुग्ध बुद्धि वाला मुग्ध नामक पुत्र था। वह पिताके प्रसादसे सदा मौज मजामें ही रहता था, बड़ा हुवा तब दसनर-सगे सम्बन्धियों वाले शुद्ध कुलकी नन्दीवर्धन शेठकी कन्यासे उसका बड़े महोत्सवके साथ विवाह किया। अब उसे बहुत दफा व्यवहार सम्बन्धी ज्ञान, सिखलाते हुये भी वह ध्यान नहीं देता, इससे उसके पिताने अपनी अन्तिम अवस्थामें मृत्यु समय गुप्त अर्थ वाली नीचे मुजब उसे शिक्षायें दीं।

१ सब तरफ दांतों द्वारा वाड़ करना। २ लाभ, खानेके लिए दूसरोंको धन देकर वापिस न मांगना। ३ अपनी स्त्रीको बाँधकर मारना। ४ मीठा ही भोजन करना। ५ सुख करके ही सोना। ६ हरएक गांवमें घर करना। ७ दुःख पड़ने पर गंगा किनारा खोदना। ये सात शिक्षायें देकर कहा कि, यदि इसमें तुझे शंका पड़े तो पाटलिपुर नगरमें रहने वाले मेरे मित्र सोमदत्त शेठको पूछना। इत्यादि शिक्षा देकर शेठ स्वर्ग सिधारे। परन्तु वह मुग्ध उन सातों हितशिक्षाओं का सत्य अर्थ कुछ भी न समझ सका। जिससे उसने शिक्षाओंके शब्दार्थके अनुसार किया, इससे अन्तमें उसके पास जितना धन था सो सब खो बैठा। अब वह दुःखित हो खेद करने लगा। मूर्खाई पूर्ण आचरणसे स्त्रीको भी अप्रिय लगने लगा। तथा हरएक प्रकारसे हरकतें भोगने लगा, इस कारण वह महा मूर्ख लोगोंमें भी महा हास्यास्पद हो गया। अब वह अन्तमें सर्व प्रकारका दुःख भोगता हुवा पाटलीपुर नगरमें सोमदत्त शेठके पास आकर पिताकी बतलायी हुई उपरोक्त सात शिक्षाओंका अर्थ पूछने लगा। उसकी सब हकीकत सुनकर सोमदत्त बोला—"मूर्ख! तेरे बापने तुझे बड़ी कीमती शिक्षायें दी थीं, परन्तु तू कुछ भी उनका अभिप्राय न समझ सका, इसीसे ऐसा दुखी हुवा है! सावधान होकर सुन! तेरे पिताके बतलाये हुए सात पदोंका अर्थ इस प्रकार है:—

तेरे पिताने कहा था कि दांतों द्वारा वाड़ करना, सो दांतों पर सुवर्णकी रेखा बांधनेके लिए नहीं, परन्तु इससे उन्होंने तुझे यह सूचित किया था कि सब लोगोंके साथ प्रिय, हितकर योग्य वचनसे बोलना, जिससे सब लोग तेरे हितकारी हों। २ लाभके लिए दूसरोंको धन देकर वापिस न मांगना, सो कुछ भिखारी याचक सगे सम्बन्धियों को दे डालनेके लिये नहीं बतलाया परन्तु इसका आशय यह है कि अधिक कीमती गहने व्याजपे रख कर इतना धन देना कि वह स्वयं ही घर बैठे बिना मांगे पीछे दे जाय। ३ स्त्रीको बांध कर मारना सो स्त्रीको मारनेके लिये नहीं कहा था परन्तु जब उसे लड़का लड़की हो तब फिर कारण पड़े तो पीटना परन्तु इससे पहले न मारना। क्योंकि ऐसा करनेसे पीहरमें चली जाय या अपघात करले या लोगोंमें हास्य होने लायक बनाव बनजाय। ४ मीठा भोजन करना, सो कुछ प्रतिदिन मिष्ट भोजन बनाकर खानेके लिए नहीं कहा था, क्योंकि वैसा करनेसे तो थोड़े ही समयमें धन भी समाप्त हो जाय और बीमार होनेका

भी प्रसंग आवे। परन्तु इसका भावार्थ यह था कि जहां अपना आदर बहुमान हो वहां भोजन करना क्योंकि भोजनमें आदर ही मिठास है अथवा संपूर्ण भूख लगे तब ही भोजन करना। बिना इच्छा भोजन करनेसे अजीर्ण रोगकी वृद्धि होती है। सुख करके सोना सो प्रतिदिन सो जानेके लिए नहीं कहा था परन्तु निर्भय स्थानमें ही आकर सोना। जहां तहां जिस तिसके घर न सोना। जागृत रहनेसे बहुत लाभ होते हैं। सम्पूर्ण निद्रा आवे तब ही शय्यापर सोनेके लिए जाना क्योंकि, आंखोंमें निद्रा आये बिना सोनेसे कदाचित् मन चिन्तामें लग जाय तो फिर निद्रा आना मुष्किल होता है, और चिन्ता करनेसे शरीर व्यथित हो दुर्बल होता है इसलिये वैसा न करना। या जहां सुखसे निद्रा आवे वहां पर सोना यह आशय था। ६ हरएक गांवमें घर करना जो कहा है उसमें यह न समझना चाहिये कि गांव २ में जगह लेकर नये घर बनवाना। परन्तु इसका आशय यह है कि, हरएक गांवमें किसी एक मनुष्यके साथ मित्राचारी रखना। क्योंकि किसी समय काम पड़ने पर वहां जाना हो तो भोजन, शयन वगैरह अपने घरके समान सुख पूर्वक मिल सके। ७ दुःख आने पर गंगा किनारे खोदना जो बतलाया है सो दुःख पड़नेपर गंगा नदी पर जानेकी जरूरत नहीं परन्तु इसका अर्थ यह है जब तेरे पास कुछ भी न रहे तब तुम्हारे घरमें रही हुई गंगा नामक गायको बांधनेका स्थान खोदना। उस स्थानमें दबे हुये धनको निकाल कर निर्वाह करना।

शेठके उपरोक्त वचन सुन कर वह मुग्ध आश्चर्यमें पड़ा और कहने लगा कि, यदि मैंने प्रथमसे ही आप को पूछ कर काम किया होता तो मुझे इतनी विडम्बनायें न भोगनी पड़तीं। परन्तु अब तो सिर्फ अन्तिम ही उपाय रहा है। शेठ बोला—'खेर जो हुवा सो हुवा परन्तु अबसे जैसे मैंने बतलाया है वैसा बर्त्ताव करके सुखी रहना। मुग्ध वहांसे चल कर अपने घर आया और अपने पुराने घरमें जहां गंगा गायके बांधनेका स्थान था वहां बहुतसा धन निकला जिससे वह फिर भी धनाढ्य बन गया। अब वह पिताकी दी हुई शिक्षाओंके अभि-प्राय पूर्वक वर्त्तने लगा। इससे वह अपने माता पिताके समान सुखी हुवा।

उपरोक्त युक्ति मुजब किसीको भी उधार न देना। यदि ऐसा करनेसे निर्वाह न चले याने उधार व्यापार करना पड़े तो जो सत्यवादी और विश्वासपात्र हो उसीके साथ करना। सूदका व्यापार भी माल रख कर या गहना रख कर ही करना, अंग उधार न करना। व्याजमें भी देश, कालकी अपेक्षा (वार्षिक वगैरह जो मुद्दतकी हो उसका सैकडे) एक, दो, तीन, चार, पांच आदि द्रव्यकी वृद्धि लेनेका ठराव करके द्रव्य देना। लोक व्यवहार के अनुसार व्याज लेना, लोग निन्दा करें वैसा व्याज न लेना। व्याज लेने वालेको भी ठरावके अनुसार उचित समय पर आ कर वापिस समर्पण करना, क्योंकि वचनका निर्वाह करनेसे ही पुरुषोंकी प्रतिष्ठा और बहुमान होता है, इसलिये कहा है कि,:—

तत्तिअमित्तं जंपइ। जित्तिअ मित्तस्स निव्वयं वहइ॥
तं उक्खिवेइ भारं। अद्धपहे जं न छंडेइ॥

सिर्फ उतना ही वचन बोलना कि जितना पाला जा सके। उतना ही भार उठाना कि जो आधे रास्तेमें उतारना न पड़े।

कदाचित् किसी व्यापार प्रमुखकी हानि होनेसे लिया हुवा कर्ज न दिया जाय ऐसी असमर्थता हो गई हो तथापि 'आपका धन मुझे जरूर देना ही है परन्तु वह धीरे धीरे दूंगा' यों कह कर थोड़ा २ भी नियुक्त की हुई अवधिमें दे कर लेने वालेको संतोषित करना। परन्तु कटु वचन बोल कर अपना व्यवहार भंग न करना, क्योंकि व्यवहार भंग होनेसे दूसरी जगहसे मिलता हो तो भी नहीं मिलता, इससे व्यापार आदिमें हरकत आनेसे ऋण मोचन सर्वथा असम्भवित हो जाय। इसलिए ज्यों बने त्यों कर्जा उतारने में प्रवर्त्तना। याने थोड़ा खाना, थोड़ा खर्चना, परन्तु जैसे सत्वर ऋणमुक्ति हो वैसे करना। ऐसा कौन मूर्ख होगा कि, जो दोनों भवमें पराभव-दुःख देने वाले ऋणको उतारने का समय आने पर क्षणवार भी विलम्ब करे। कहा है कि;—

धर्मारम्भे ऋणच्छेदे। कन्यादाने धनागमे॥
शत्रुघातेऽग्निरोगे च। कालक्षेपं न कारयेत्॥

धर्म साधन करनेमें, कर्ज उतारने में, कन्यादान में, आते हुए द्रव्यको अंगीकार करनेमें, शत्रुके मार डालनेमें, अग्निको बुझानेमें और रोगको दूर करनेमें विशेष विलम्ब नहीं करना।

तैलाभ्यंगं ऋणच्छेदं। कन्या मरणमेव च॥
एतानि सद्यो दुःखानि। परिणामे सुखावहा॥

तैलमर्दन, ऋणमोचन और कन्याका मरण ये तत्काल ही दुःखदायी मालूम होते हैं परन्तु परिणाम में सुखदायक होते हैं।

अपने पेटका भी पूरा न होता हो ऐसे कर्जदार को अपना कर्ज देनेके लिए दूसरा कोई उपाय न बन सके तो अन्तमें उसके यहाँ नौकरी वगैरह कार्य करके भी ऋणमोचन करना चाहिए। यदि ऐसा न करे तो याने किसी प्रकारान्तर से भी कर्जदार का कर्ज न दे तो भवान्तर में उसके घर पुत्र, पुत्री, बहिन, भांजी, दास, दासी, भैंसा, गधा, खच्चर, घोड़ा, आदिका अवतार उसका कर्ज देनेके लिए अवश्य धारण करना पड़ता है।

उत्तम लेने वाला वही कहा जाता है कि जब उसे यह मालूम हो कि इस कर्जदार के पास अब बिलकुल कर्ज अदा करनेको द्रव्य नहीं है उस वक्त उसे छोड़ दे। यह समझ कर कि दरिद्रीको व्यर्थ ही क्लेश या पाप वृद्धिके हिस्सेमें डालनेसे मुझे क्या फायदा होगा। उसमें से जो कर्ज न दे सके वैसे कर्जदार पर दबाव करनेसे दोनोंको नये भव बढ़ानेकी जरूर पड़ती है, इसलिये उसे जाकर कहे भाई जब तुझे मिले तब देना और न दिया जाय तो यह समझना कि मैंने धर्मार्थ दिया था, यों कह कर जमा कर ले। परन्तु बहुत समय तक ऋण सम्बन्ध रखना उचित नहीं, क्योंकि वह कर्ज शिर पर होते हुए यदि इतनेमें एकाएकी आयुष्य पूर्ण होने से मृत्यु आ जाय तो भवान्तर में दोनों जनोंको वैर वृद्धिकी प्राप्ति होती है।

"क़र्ज पर भावड़ शेठका दृष्टान्त"

सुना जाता है कि भावड़ शेठसे कर्ज लेनेके लिए अवतार धारण करने वाले दो पुत्रोंमें से जब पहिला

पुत्र गर्भमें आया तबसे ही प्रतिदिन खराब स्वप्न, अनेक विध खराब विचार वगैरह होनेके कारण उसने जाना कि, यह गर्भमें आया तबसे ही ऐसा दुःखदायी मालूम देता है तब फिर जब इसका जन्म होगा तब न जाने हमें कितने बड़े दुःख सहन करने पड़ेंगे ? इसलिए इसका जन्मते ही त्याग करना योग्य है। यह विचार किये बाद जब उसका जन्म हुवा तब मृत्युयोग होनेसे विशेष शंका होनेके कारण उस जातमात्र बालकको ले कर शेठने मलहण नामक नदीके किनारे आ कर एक सूखे हुए पत्तों वाले वृक्षके नीचे रख कर शेठ वापिस जाने लगा। उस वक्त कुछ हंस कर बालक बोला कि, तुम्हारे पास मेरे एक लाख सौनैये—सुवर्ण मुद्रायें निकलते हैं सो मुझे दे दो ! अन्यथा तुम्हें अवश्य ही कुछ अनर्थ होगा। यह वचन सुन कर शेठ उसे वापिस घर ले आया और उसका जन्मोत्सव, छट्टी जागरण, नामस्थापना, अन्नप्राशन, वगैरहके महोत्सव करते एक लाख सुवर्ण मुद्रायें शेठने उसके लिये खर्च कीं। इससे वह अपना कर्ज अदा कर चलता बना। फिर दूसरा पुत्र भी इसी प्रकार पैदा हुवा और वह उसका तीन लाख कर्ज अदा कर चला गया। इसके बाद शुभ शकुनादि सूचित एक तीसरा पुत्र गर्भमें आया। तब यह जरूर ही भाग्यशाली निकलेगा शेठने यह निर्धारित किया था तथापि दो पुत्रोंके सम्बन्धमें बने हुए बनावसे डर कर जब वह तीसरे पुत्रका परित्याग करने आया तब वह पुत्र बोला 'मुझ पर तुम्हारा उन्नीस लाख सोनैयोंका कर्ज है, उसे अदा करनेके लिये मैंने तुम्हारे घर अवतार लिया है। वह कर्ज दिए विना मैं तुम्हारे घरसे नहीं जा सकता। यह सुन कर शेठने विचार किया कि इसकी जितनी कमाई होगी सो सब धार्मिक कार्योंमें खर्च डालूंगा। यह विचार कर उसे वापिस घर पर ला पाल पोश कर बड़ा किया और वह जावड़ साहके नामसे प्रसिद्ध हो वह ऐसा भाग्यशाली निकला कि जिसने श्री शत्रुंजय तीर्थका विक्रमादित्य संवत् १०८ में बड़ा उद्धार किया था। उसका वृत्तान्त अप्रसिद्ध होनेसे ग्रन्थान्तर से यहां पर कुछ संक्षिप्तमें लिखा जाता है—.

सोरठ देशमें कम्पिलपुर नगरमें भावड़ शेठ एक बड़ा व्यापारी व्यापार करता था। उसे सुशीला पतिव्रता भाविला नामकी स्त्री थी। उन दोनोंको प्रेमपूर्वक सांसारिक सुख भोगते हुए कितने एक समय बाद दैवयोग चपल स्वभावा लक्ष्मी उनके घरसे निकल गई, अर्थात् वे निर्धन होगये। तथापि वह अपनी अल्प पूंजीके अनुसार प्रमाणिकता से व्यापार वगैरह करके अपनी आजीविका चलाता है। यद्यपि वह निर्धन है और थोड़ी आयसे अपना भरणपोषण करता है तथापि धार्मिक कार्योंमे परिणामकी अतिवृद्धि होनेसे दोनों वक्तके प्रतिक्रमण, त्रिकाल जिनपूजन, गुरुवन्दन, यथाशक्ति तपश्चर्या, और सुपात्र दानादिमें प्रवृत्ति करते हुए अपने समयको सफलता से व्यतीत करता है। ऐसा करते हुए एक समय उसके घर गोचरी फिरते हुए दो मुनि आ निकले। भाविला शेठानी मुनिमहाराजों को अतिभक्ति पूर्वक नमन वन्दन कर आहारादिक वोरा कर बोली—महाराज ! हमारे भाग्यका उदय कब होगा ? तब उनमेसे एक ज्ञानी मुनि बोला "हे कल्याणी ! आज तुम्हारी दूकान पर कोई एक उत्तम जातिवाली घोड़ी बेचनेको आयगा; ज्यों बने त्यों उसे खरीद लेना। उसे जो किशोर—बछेरा होगा उससे तुम्हारा भाग्योदय होगा। फिर तुम्हें जो पुत्र होगा वह ऐसा भाग्यशाली होगा कि; जो शत्रुंजय तीर्थपर तीर्थोद्धार करेगा। यद्यपि मुनियोंको निमित्त

बतलानेकी तीर्थंकर की आज्ञा नहीं है तथापि तुम्हारे पुत्रसे जैन शासनकी बड़ी उन्नति होनेवाली है; इसी कारण तुम्हारे पास इतना निमित्त प्रकाशित किया है। यों कहकर मुनि चल पड़े तब भाविलाने अति प्रसन्नता से उन्हें अभिवन्दन किया। अब भाविला शेठानी अपने पतिकी दूकान पर जा बैठी। इतनेहीमें वहां पर कोई एक घोड़ी बेचनेवाला आया, उसे देख भाविलाने अपने पतिके पास मुनिराजकी कही हुई सर्व हकीकत कह सुनाई, इससे भावड़ शेठने कुछ धन नगद दे कर और कुछ उधार रख कर घोड़ीवाले को ज्यों त्यों समझाकर उससे घोड़ी खरीद ली। उस साक्षात् कामधेनु के समान घोड़ीको लाकर अपने घर बांधी और उसकी अच्छी तरह सार संभाल करने लगा। कितने एक दिनों बाद उस घोड़ीने सर्वांग लक्षण युक्त सूर्यदेवके घोड़े के समान एक किशोर-बछेरेको जन्म दिया। उसकी भी बड़ी हिफाजतसे सार सम्भाल करते हुए जब वह तीन सालका हुवा तब उसे बड़ा तेजस्वी देखकर तपन नामक राजा शेठको तीन लाख द्रव्य देकर खरीद ले गया। भावड़शेठ उन तीन लाख में से अन्य भी कितनी एक घोड़ियां खरीद उन्हें पालने लगा जिससे एक सरीखे रंग और रूप आकार वाले इक्कीस किशोर पैदा हुए। भावड़ शेठने वे सब उज्जैनी नगरमें जाकर विक्रमार्क नामक बड़े राजाको भेट किये। उन्हें देख राजा बड़ा ही प्रसन्न हुवा और कहने लगा कि इन अमूल्य घोड़ोंका मूल्य मैं तुझे कुछ यथार्थ नहीं दे सकता, तथापि तू जो मुंहसे मांगेगा सो तुझे देनेके लिए तैयार हूं, इसलिए जो तेरे ध्यानमें आवे सो मांग ले। उसने मधुमती (महुवा) का राज्य मांगा, इससे विक्रमार्कने प्रसन्न होकर अन्य भी बारह गांव सहित उसे मधुमतीका राज्य दिया।

अब भावड़ विक्रमार्क से मिली हुई अधिक ऋद्धि, छत्र, चामर, ध्वजा, पताका, निशान, डंका, सहित बड़े आडम्बरसे ध्वजा वगैरहसे सजाई हुई मधुमती नगरीमें आकर अपनी आज्ञा प्रवर्त्ता कर राज्य करने लगा। भावड़ आडम्बर सहित जिस दिन उस नगरमें आया उसी दिन उसकी स्त्री भाविलाने पूर्वदिशा में से उदय पाते हुए सूर्यके समान तेजस्वी एक पुत्ररत्न को जन्म दिया। उस बालकका जन्म हुवा तब दशों दिशायें भी प्रसन्न दिखाववाली दीखने लगीं, पवन भी सुखकारी चलने लगा, सारे देशमें हरेक प्रकारसे सुख शान्ति फैल गई और चराचर प्राणी भी सब प्रसन्न हो गये।

अब भावड़ने बड़े आडम्बरसे उस पुत्रका जन्ममहोत्सव किया और उसका 'जावड़' नाम रक्खा। बड़ी हिफाजत के साथ लालन-पालन होते हुए नन्दन वनमें कल्पवृक्षके अंकुरके समान माता पिताके मनोरथोंके साथ जावड़ वृद्धिको प्राप्त हुवा। भावड़ने एक समय किसी ज्योतिषी को पूछकर अच्छी रसाल और श्रेष्ठ उदय करानेवाली जमीन पर अपने नामसे एक नगर बसाया। उसके बीचमें इस प्रचलित चौवीसी में आसन्न उपकारी होनेसे पोषधशाला सहित श्रीमहावीर स्वामीका मन्दिर बनवाया। जावड़ जब पांच सालका हुवा तबसे वह विद्याभ्यास करने लगा। वह निर्मल बुद्धि होनेसे थोड़े ही दिनोंमें सर्व शास्त्रोंका पारगामी हुवा और सब समयमें अत्यन्त कुशलता पूर्वक साक्षात् कामदेवके रूप समान रूपवान और तेजस्वी आकारवान् होता हुवा यौवनावस्था के सन्मुख आया। भावड़ राजाने अनेक कन्यायें मिलने पर भी जावड़ के योग्य कन्या तलाश करनेके लिए अपने सालेको भेजा। वह कम्पिलपुर तरफ चल पड़ा; मार्गमें शत्रुंजय

की तलहट्टी के पास चेटी नामक गांवमें आकर रातको रहा। वहां पर एक शूर नामक व्यापारी रहता था, उसकी पुत्री नाम और गुणसे भी 'सुशीला' थी। सरस्वती के वरदान को पाई हुई साक्षात् सरस्वतीके ही समान वह कन्या कितनी एक दूसरी कन्याओं के साथ अपने पिताके गृहांगण के आगे खेलती थी। उसे लक्षण सहित देख अजायव हो जावडके मामाने विचार किया कि आकाश मे जैसे अगणित ताराओं के बीच चन्द्रकला झलक उठती है वैसी ही सुलक्षणों और कान्ति सहित सचमुच ही यह कन्या जावड़के योग्य है। परन्तु यह किसकी है, किस जातिकी है, क्या नाम है, यह सब किसीको पूछकर वह उस कन्याके वाप सूरसे मिला। और उसने बहुमान पूर्वक जावड़के लिए उस कन्याकी याचना की। यह सुन कन्याके पिताने जावड़को अत्यन्त ऋद्धिवान जानकर कुछ उत्तर देनेकी सूझ न पड़नेसे नीची गर्दन कर ली, इतने मे ही वहांपर खड़ी हुई वह कन्या कुछ मुस्करा कर अपने पितासे कहने लगी कि, जो कोई पुरुषरत्न मेरे पूछे हुए चार प्रश्नोंका उत्तर देगा मैं उसके साथ सादी कराऊंगी; अन्यथा तपश्चर्या ग्रहण करूंगी, परन्तु अन्यके साथ सादी नहीं करूंगी। यह वचन सुनकर प्रसन्न हुवा जावड़ का मामा शूर नामक व्यापारीके सारे कुटुम्बी सहित अपने साथ लेकर मधुमति नगरीमें आया और भावड़का'कह कर उन्हें अच्छे स्थानमें ठहराकर उनकी खातिर तवज्जे की। अन्तमें उन्हें जावड़के साथ मिलाप करानेका वायदा कर सर्वाङ्ग और सर्व अवयवोंसे सुशोभित करके सुशीलाको साथ ले जावड़के पास आया। बहुतसे पुरुषोंके बीचमें बैठे हुये जावड़को देखकर तत्काल ही उस मुग्धा सुशीलाकी आँखे ठरने लगीं। फिर मन्द हास्य पूर्वक मानो मुखसे फूल झड़ते हों इस प्रकार वह कन्या उसके पास आकर बोलने लगी कि हे विचक्षण सुमति! १ धर्म, २ अर्थ, ३ काम और ४ मोक्ष, इन चार पुरुषार्थोंका अभिप्राय आप समझते हैं? यदि आप जानते हों तो इनका यथार्थ स्वरूप निवेदन करें। सर्व शास्त्र पारगामी जावड़ बोला हे सुभ्रू! यदि तुम्हें इन चार पुरुषार्थोंके लक्षण ही समझने हैं तो फिर मैं कहता हूं उस पर ध्यान देकर सुनिये।

तत्त्वरत्न त्रयाधार। सर्वभूत हित प्रदः॥ चारित्र लक्षणो धर्मो कस्य शर्मकरो नहि॥१॥
हिंसाचौर्यपरद्रोह मोहक्लेशविवर्जितः। सप्त क्षेत्रोपयोगीस्या दर्थो नर्थविनाशकः॥२॥
जातिस्वभाव गुणभृ लुल्प्रान्यकरणः क्षणं। धर्मार्थावाधककामो। दंपत्योर्भाववन्धनं॥३॥
कषायदोषापगत साम्यवान् जितमानसः। शुक्लध्यानमयस्वात्मांत्यक्षोमोक्षइरितः॥४॥

१ धर्म—रत्नत्रयीका आधार भूत, तमाम प्राणियोंको सुखकारक ऐसा चारित्र धर्म किसे नहीं सुखकारक होता? २ अर्थ— हिंसा चोरी, परद्रोह, मोह, क्लेश, इन सबको वर्ज कर उपार्जन किया हुवा, सात क्षेत्रमें खर्च किया जाता हुवा जो द्रव्य है क्या वह अनर्थका विनाश नहीं करता? अर्थात् ऐसे द्रव्यसे अनर्थ नहीं होता। ३ काम—सांसारिक सुख भोगनेके अनुक्रमको उलंघन न करके धर्म और अर्थको बाधा न करते हुए समान जाति स्वभाव और गुणवाले स्त्री पुरुषोंका जो मिलाप है उसे काम कहते हैं। ४ मोक्ष—कषायदोषका त्यागी शांतिवान जिसने मनको जीता है ऐसा शुक्लध्यानमय, जो अपनी आत्मा हैं वह अन्त्यक्ष याने मोक्ष गिना जाता है।

अपने पूछे हुए चार प्रश्नोंके यथार्थ उत्तर सुन कर सुशीला ने सरस्वती की दी हुई प्रतिज्ञा पूरी होनेसे प्रसन्न होकर जावडके गलेमें वरमाला आरोपण की। फिर दोनोंके मातापिताने बड़े प्रसन्न होकर और आडम्बर से उनका विवाह समारम्भ किया। लग्न हुये बाद अब वे नव म स देह छायाके समान दोनों जने परस्पर प्रेम-पूर्वक आसक्त हो देवलोकके समान मनोवांछित यथेच्छ सांसारिक सुख भोगने लगे। जावडके पुण्य बलसे राज्य के शत्रु भी उसकी आज्ञा मानने लगे और उसमें इतना अधिक आश्चर्यकारक देखाव मालूम होने लगा जहां २ पर जावडका पद संचार होता वहांकी जमीन मानो अत्यन्त प्रसन्न ही न हुई हो! ऐसे वह नये नये प्रकारके अधिक स्वादिष्ट और रसाल रसोंको पैदा करने लगी। एक समय जावड़ घोड़े पर सवार हो फिरनेके लिए निकला हुवा था उस वक्त किसी पर्वत परसे गुरुने बतलाये हुये लक्षणवाली 'चित्रावेल' उसके हाथ आई। उसे लाकर अपने भंडारमें रखनेसे उसके भंडारकी लक्ष्मी अधिकतर वृद्धिंगत हुई। कितनेक साल बीतने पर जब भावड राजा स्वर्गवास हुये तब जावड राजा बना। रामके समान राज्यनीति चलानेसे उसका राज्य सचमुच ही एक धर्मराज्य गिना जाने लगा।

फिर दुषमकालके प्रभावसे कितनाक समय व्यतीत हुए बाद जैसे समुद्रकी लहरें पृथिवीको वेष्ठित करें वैसे मुगल लोगोंने आकर पृथिवीको वेष्ठित कर लिया, जिससे सोरठ कच्छ लाट आदिक देशोंमें म्लेच्छ लोगोंके राज्य होगये। परन्तु उन बहुतसे देशोंको संभालनेके कार्यके लिये कितने एक अधिकारियों की योजना की गई। उस समय सब अधिकारियों से अधिक कलाकौशल और सब देशोंकी भाषामें निपुण होनेसे सब अधिकारियों का आधिपत्य जावडको मिला। इससे उसने सबके अधिकार पर आधिपत्य भोगते हुए सब अधिकारियोंसे अधिक धन उपार्जन किया। जैसे आर्य देशमें उत्तम लोग एकत्र बसते हैं वैसे ही जावडने अपनी जातिवाले लोगोंको मधुमतिमें बसा कर वहां श्री महावीर स्वामीका मन्दिर बनवाया।

एक समय आर्य अनार्य देशमें विचरते हुए वहां पर कितने एक मुनि आ पधारे। जावड उन्हें अभि-वन्दन करने और धर्मोपदेश सुनने आया। धर्मदेशना देते हुए गुरु महाराजने श्री शत्रुंजयका वर्णन करते हुये कहा कि पंचम आरेमें तीर्थका उद्धार जावडशाह करेगा यह वचन सुन कर प्रसन्न हो नमस्कार कर जावड पूछने लगा, तीर्थका उद्धार करनेवाला कौनसा जावड समझना चाहिये। गुरुने ज्ञानके उपयोगसे विचार कर कहा—"तीर्थोद्धारक जावडशाह तू ही है" परन्तु इस समय कालके महिमासे शत्रुंजय तीर्थके अधिष्ठायक देव हिंसक मद्य मांसके भक्षक होगये हैं। उन दुष्ट देवोंने शत्रुंजयतीर्थके आस पास पचास योजन प्रमाण क्षेत्र उध्वंस (ऊजड) कर डाला है। यदि यात्राके लिये कोई उसकी हदके अन्दर आवे तो उसे कपर्दिक यक्ष मिथ्यात्वी होनेसे मार डालता है। इससे श्री युगादि देव अपूज्य होगये हैं। इसलिए हे भाग्यशाली! तीर्थोद्धार करनेका यह बहुत अच्छा प्रसंग आया हुवा है। प्रथमसे श्री महावीर स्वामीने यह कहा हुआ है कि जावडशाह तीर्थका उद्धार करेगा अतः यह कार्य तेरेसे ही निर्विघ्नतया सिद्ध हो सकेगा। अब तू श्री चक्रेश्वरी देवीका आराधन करके उसके पाससे श्री बाहुबलीने भरवाये हुए श्री ऋषभदेव स्वामीके बिम्बको मांग ले जिससे तेरा यह कार्य सिद्ध हो सकेगा। यह सुनकर हर्षावेशसे रोमांचित हो जावडने गुरु महाराजको नमस्कार कर अपने घर

जाकर देवपूजा की और बलिदान देकर शुद्ध देवताओं को शान्ति करके श्री चक्रेश्वरी देवीका ध्यान करके तप किया। जब एक महीनेके उपवास होगये तब श्री चक्रेश्वरी देवी तुष्टमान हो कहने लगी कि हे वत्स! तू तक्षशिला नगरीमें जा, वहां पर नगरके मालिक जगन्मल्ल राजाकी आज्ञासे धर्मचक्र आगेसे तुझे वह बिम्ब मिलेगा। प्रथमके तीर्थकरोंने भी तुझे ही इस उद्धारका कर्ता बतलाया है। मैं तुझे सहाय करूंगी तू यह कार्य सुखसे कर, तू बड़ा भाग्यशाली होनेसे तेरेसे यह कार्य निर्विघ्नता पूर्वक बन सकेगा। अमृतके समान उसके वचन सुनकर अति प्रसन्न हो जावड तक्षशिलामें गया और वहांके जगन्मल्ल राजाको, बहुतसा द्रव्य देकर संतोषित कर उसकी आज्ञासे धर्मचक्रके आगे आकर तीन प्रदक्षिणा पूर्वक पूजाकर ध्यान धरके सन्मुख खड़ा रहा, तब बाहुबली की भरवाई हुई श्री ऋषभदेव, पुण्डरीक स्वामीकी मूर्ति सहित साक्षात् अपनेपुण्यकी मूर्तिके समान वे मूर्त्तियां प्रगट हुईं। फिर पंचामृत स्नान महोत्सवादि करके उन मूर्तियोंको नगरमें लाया। फिर वहांके राजाकी सहायसे वहां रहे हुए अपने गोत्रीय लोगोंको अगवा बना करके उन मूर्तियोंको साथ ले प्रतिदिन एकासन करते हुए श्री शत्रुंजय तीर्थ तरफ आया। रास्तेमें मिथ्यात्वी देवता द्वारा किये हुए भूमि कंप, महा घात, निर्घात, अग्निके दाह वगैरह अनेक उपसर्ग हुये तथापि उसके भाग्योदय के बलसे सर्व प्रकारके भयको उलंघन कर अन्तमें वह अपनी मधुमति नगरीमें आया।

उस समय जावड़ शाहने अठारह जहाज मालके भर कर चीन, महाचीन, और भोट देशोंमें भेजे हुए थे, वे विपरीत वायुके प्रयोगसे या दैव-योगसे उस दिशामें न जाकर सुवर्ण दीपमे जा पहुंचे। वहां पर चुल्हेमें सुलगाई हुई अग्निसे जमीनमेंकी रेती तप जानेके कारण सुवर्ण रूप हो जानेसे दूसरा माल खरीदना बन्द रख कर वहांसे वे रेती (तेजम तूरी) के जहाज भरके पीछे लौट आये। उसी मार्गसे वे भाग्य योगसे मधुमति नगरीमें आ पहुंचे। उसी समय वज्रस्वामी भी मधुमतिके उद्यानमें आ विराजे थे। एक आदमीने आकर जावड़ शाहको गुरु महाराज के आगमन की बधाई दी। ठीक उसी समय एक दूसरे आदमीने आकर बारह सालके बाद अकस्मात पीछे आये हुए अठारह जहाजोकी खबर दी। ये दोनों समाचार एक ही समय मिलनेसे जावड शाह बड़ा प्रसन्न हुवा, परन्तु विचार करने लगा कि पहले जहाज देखने जाऊं या गुरु महाराजको वन्दन करने, अन्तमें उसने निश्चय किया कि इस लोक और पर लोकमें हितदायक गुरु महाराजको प्रथम वन्दन करना चाहिए। इससे ऋद्धि सिद्धि सहित बड़े आडम्बरसे समहोत्सव गुरु श्री वज्रस्वामीको वन्दन करने गया। उस वक्त सुवर्ण कमल पर बैठे हुए जंगम तीर्थरूप श्री वज्रस्वामीको देखकर प्रमुदित हो वन्दन प्रदक्षिणा करके जब वह धर्म श्रवणकी मनीषासे गुरु देवके सन्मुख बैठता है उस वक्त अपने शरीरकी कान्तीसे वहांके सारे आकाश मंडल को भी देदीप्य करने वाला एक देवता आकाश मार्गसे उतर कर गुरुको सविनय वन्दन कर कहने लगा कि, महाराज! मैं पूर्व भवमें तीर्थ मानपुर नगरके राजा शुकर्मका कपर्दी नामक पुत्र था, मैं मद्यपायी हुवा था। एक समय दयाके समुद्र आप यहां पधारे थे तब आपने मुझे उपदेश देते हुए पंच पर्वणी महात्म्य, शत्रुंजय महात्म्य, और प्रत्याख्यानके फल बतला कर प्रतिबोध दे मद्यमांस के परित्याग की प्रतिज्ञा कराई थी। मैंने वह प्रत्याख्यान कितने एक वर्षोंतक पालन भी किये थे, परन्तु एक समय उष्ण कालके

दिनोंमें जब मैं स्त्रीके साथ चन्द्रशालामें बैठा था तब मोहमें मग्न होनेसे प्रत्याख्यानकी विस्मृति हो जानेसे मैंने दारू पिया। परन्तु छतपर बैठ कर दारू पीनेके बर्तनमें दारू निकाले बाद उसमें ऊपर आकाशसे उड़ी जाती हुई चीलके मुखमें रहे हुए ओंधे मस्तक वाले सर्पके मुखसे गरल—विष पड़ा। सो मालूम न होनेसे मैंने दारू पीलिया। उससे विष घूर्मित होगया, परन्तु उसी वक्त प्रत्याख्यान भूल जानेकी याद आनेसे उस विषयमें पश्चात्ताप किया और शत्रुंजय तथा पंच परमेष्ठीका ध्यान कर मृत्यु पा मैं एक लाख यक्षोंका अधिपति कपर्दी नामक यक्ष हुवा हूं। स्वामिन् आपने मुझे नरक रूप कूपमें पड़ते हुएको बचाया है। आपने मुझ पर बड़ा उपकार किया है इसलिये मैं आपका सदैव सेवक रहूंगा। मेरे लायक जो कुछ काम काज हो सो फरमाना। यों कह कर हाथी पर चढ़ा हुवा अनेक यक्षोंके परिवार सहित सर्वाङ्ग भूषण धर, पास, अंकुश, त्रिजोरा, रुद्राक्षणी माला एवं चार हाथोंमें चार वस्तुयें धारण करने वाला सुवर्ण वर्ण वाला वह कपर्दि नामक यक्ष श्री वज्रस्वामीके पास आ बैठा। तब श्रुतज्ञानके धारक श्री वज्र स्वामी भी जावड़ शेठके पास श्री शत्रुंजयका सविस्तर महिमा व्याख्यान रूपसे सुनाते हुए कह गये। और फिर कहने लगे कि, हे महा भाग्यशाली जावड! तू श्री शत्रुंजय तीर्थकी यात्रा और तीर्थका उद्धार निःशंक होकर कर। यदि इस कार्यमें कुछ विघ्न होगा तो ये सब यक्ष और मैं स्वयं भी सहायकारी हूं। गुरु देवके वचन सुनकर जावड बड़ा प्रसन्न हुवा और उन्हें वन्दना करके वहांसे उठकर अपने अठारह जहाज देखने चला गया। तमाम जहाजोंमें से तेजम तूरी (सुवर्ण रेति) उतरवा ली और उसमेंसे सुवर्ण बनाकर बखारोंमें भर दिया। तदनंतर महोत्सव पूर्वक शुभ मुहूर्तमें सर्व प्रकारकी तैयारियां करके श्री शत्रुंजय तीर्थकी यात्रार्थ प्रस्थान किया। तब पहले ही दिन तीर्थके पूर्व अधिष्ठायक देवता जो दुष्ट बन गये थे उन्होंने जावड शाह और उनकी स्त्रीके शरीरमें ज्वर उत्पन्न किया। परन्तु श्री वज्र स्वामीकी दृष्टि मात्रके प्रभावसे उस ज्वरका उपद्रव दूर हो गया। जब उन दुष्ट देवताओंने दूसरी दफा उपद्रव किया तब एक लाख यक्षोंके परिवार सहित आकर कपर्दी यक्षने विघ्न निवारण किया। दुष्ट देवताओंने फिर वृष्टिका उपद्रव किया। वह वज्रस्वामीने वायुके प्रयोगसे और महा वायुका पर्वत द्वारा, पर्वतका वज्र द्वारा हाथीका सिंहसे, सिंहका अष्टापदसे, अग्निका जलसे, जलका अग्निसे, और सर्पका गरुडसे निवारण किया। एवं मार्गमें जो २ उपद्रव होते गये सो सब श्री वज्र स्वामी और कपर्दी यक्ष द्वारा दूर किये गये। इस प्रकार विघ्न समूह निवारण करते हुए अनुक्रमसे आदिपुर नगरमें (सिद्धाचलसे पश्चिम दिशामें आदिपर नामक जो इस वक्त गांव है वहां) आ पहुंचे। उस वक्त वे दुष्ट देवता प्रचंड वायु द्वारा चलायमान हुए वृक्षके समान पर्वतको कंपाने लगे, तब वज्र स्वामीने शांतिक कृत्य करके तीर्थ जल पुष्प अक्षत द्वारा मन्त्रोपचार से पर्वतको स्थिर किया। तदनन्तर वज्र स्वामीने बतलाये हुए मार्गसे भगवानकी प्रतिमाको आगे करके पीछे अनुक्रमसे गुरु महाराज और सकल संघ पर्वत पर चढ़ा। उस रास्तेमें भी कहीं कहीं के अधम देवता शाकिनी, भूत, वैताल एवं राक्षस इत्यादिके उपद्रव करने लगे, परन्तु वज्र स्वामी और कपर्दीके निवारण करनेसे अन्तमें निर्विघ्नता पूर्वक वे मुख्य टूंक पर पहुंच गये। वहां देखते हैं तो मांस, रुधिर, हड्डियां, चमड़ा, कलेवर, केश, खुर, नख, सींग, वगैरह दुर्गंधमीय वस्तुओंसे पर्वतको भरा देख तमाम

यात्रिक लोग खेद खिन्न होगये। कपर्दिक यक्षने अपने सेवक यक्षोंसे वह सब कुछ दूर करा कर पवित्र जल मंगाकर उस सारे पहाड़को धुलवा डाला, तथा मूलनायक वगैरहके जो मन्दिर टूट फूट गये थे, खंडित होगये थे उन्हें देख कर जावडको बड़ा दुःख हुवा। रात्रिके समय सकल संघके सो जाने बाद वे दुष्ट देवता एक बड़े रथमें लायी हुई भगवान श्री ऋषभदेवकी प्रतिमाको पर्वतसे नीचे उतार लेगये। प्रभातमें जब मंगल बाजे बजते हुए जावड जागृत होकर दर्शन करने गया तब वहां प्रतिमाको न देख कर अति दुःखित होने लगा फिर वज्र स्वामी और कपर्दी यक्ष दोनों जनें अपनी दिव्य शक्तिसे प्रतिमाको पुनः मुख्य टूंक पर लाये। इसी प्रकार दूसरी रातको भी उन दुष्ट देवताओं ने प्रतिमाको नीचे उतार लिया। मगर फिर भी वह ऊपर ले आये। इस प्रकार इक्कीस रोज तक प्रतिमाजी का नीचे ऊपर आवागमन होता रहा। तथापि जब वे दुष्ट देवता बिलकुल शान्त न हुए तब श्रीवज्रस्वामी ने कपर्दी यक्ष और जावड़ संघपति को बुला कर कहा कि हे कपर्दी! आज रातको तू अपने सब यक्षोंके परिवार सहित क्षुद्र देवताओं रूप तृणोंको जलानेमें एक अग्नि समान बन कर सारे आकाश मंडलको आच्छादित कर सावधान हो कर रहना। मेरे मंत्रकी शक्तिसे तेरा शरीर वज्रके समान अभेद्य हो जानेसे तुझे कुछ भी कोई उपद्रव न कर सकेगा। हे जावड़! तुम अपनी स्त्री सहित स्नान करके पंच नमस्कार गिन कर श्रीऋषभदेव का स्मरण करके प्रतिमाजी को स्थिर करनेके लिए रथके पहियोंके बीच दोनों जने दोनों तरफ शयन करो। जिससे वे दुष्ट तुम्हें उलंघन करनेमें समर्थ न होंगे। और मैं सकल संघ सहित सारी रात कायोत्सर्ग ध्यानमें रहूंगा। गुरुदेव के यह वचन सुन कर नमस्कार कर सब जने अपने २ कृत्यमें लग गये। समय आने पर वज्रस्वामी भी निश्चल ध्यानमें तत्पर हो कायोत्सर्ग में खड़े रहे। फिर वे दुष्ट देवता फुंफाटे मारते हुए अन्दर आनेके लिए बड़ा उद्यम करने लगे, परन्तु उनके पुण्य, ध्यान, बलसे किसी जगहसे भी वे अन्दर प्रवेश न कर सके। ऐसे करते हुए जब प्रातःकाल हुवा तब गुरुदेवने सकल संघ सहित कायोत्सर्ग पूर्ण किया। प्रतिमा जैसे रक्खी थी वैसे ही स्थिर रही देख प्रमोदसे रोमांचित हो सकल मंगल वाद्य बजते हुए धवल मंगल गाते हुए महोत्सव पूर्वक प्रतिमाजी को मूलनायकके मन्दिरके सामने लाये। वज्रस्वामी जावड़ संघपति और उसकी स्त्री सुशीला तथा संघकी रक्षा करनेके लिए रक्खे हुए महाधर पदवीको धारण करने वाले चार पुरुष पुराने मन्दिरमें प्रवेश कर प्रयत्नसे उसकी प्रमार्जना करने लगे। गुरु महाराज ध्यान करके दुष्ट देवताका उपद्रव निवारण करनेके लिए चारों तरफ अक्षत प्रक्षेपादिक शांतिक करने लगे, तब क्षुद्र देवताओं के समुदाय सहित पहलेका कपर्दिक क्रोधायमान हो पुरानी प्रतिमा को आश्रय करके रहा! (पुरानी प्रतिमा को न उठाने देनेका ही उसका मतलब था), परन्तु नई प्रतिमा स्थापन करनेके लिए जब संघपति वहां पर आया तब वज्रस्वामीके मंत्रसे स्तंभित हुवा दुष्ट देवता उन्हें पराभव करनेमें समर्थ न हो सका तब एक बड़े घोर शब्दसे आराटी करने लगा (चिल्लाहट करने लगा) उसकी आराटीका इतना शब्द पसरा कि ज्योतिष चक्र तक भयंकरता होते हुए बड़े २ पर्वत, समुद्र और सारी पृथ्वी भी कांपने लग गई। हाथी घोड़ा, व्याघ्र, सिंहादिक भी मूर्च्छा पा गए। पर्वतके शिखर टूट कर गिरने लगे; शत्रुंजय पर्वतके भी फट जानेसे दक्षिण और उत्तर दो विभाग हो गये। जावड़ संघपति, सुशीला और वज्रस्वामी इन

तीनोंके सिवाय अन्य समस्त संघ भी मूर्छित हो जमीन पर गिर पड़ा हो, ऐसा बनाव नजर आया। इस प्रकार संघको अचेतन बना देख श्री वज्रस्वामी ने नये कपर्दिक यक्षको बुलाया। तब उसने हाथमें वज्र ले कर असुर दुष्ट देवताओंकी तर्जना की जिससे पूर्वका कपर्दिक अपने परिवार को साथ ले भाग कर समुद्रके किनारे चंद्रप्रभास नामक क्षेत्र (प्रभासपट्टन) में जा कर नामान्तर धारक हो कर वहां ही रहने लगा। संघके लोगों को सचेतन करनेके लिए वज्रस्वामी ने पूर्व मूर्तिके अधिष्ठायकों को कहा कि, हे देवताओ! जो जावड़ शाह लाया है सो प्रतिमा प्रासादमें मूलनायक तया स्थिर रहेगी; और तुम इस प्रतिमा सहित इस जगह सुखसे रहो। परन्तु प्रथम मूलनायक की पूजा, स्नात्र, आरती, मंगल दीपक करके फिर इस जीर्ण बिम्बकी पूजा स्नात्रादिक किया जायगा। परन्तु मुख्यता मूलनायक की ही रहेगी। इस प्रकारसे मार्गका यदि कोई भी लोप करेगा तो यह कपर्दिक यक्ष उसके मस्तकको भेदन कर डालेगा। इस प्रकारकी दृढ़ आज्ञा दे कर गुरु महाराजने उन देवताओं को स्थिर किया। फिर जय जय शब्द पूर्वक सारे ब्रह्मांडमें ध्वनि फैल जाय उस तरह परम प्रमोदसे प्रतिष्ठा सम्बन्धी महोत्सव प्रवर्तने लगा। जिसके लिए शत्रुंजय माहात्म्य में कहा है कि:—

या गुरौ भक्ति र्या पूजा। जिने दानं च यन्महत् ॥
या भावना प्रमोदो या। नैर्मल्यं यच्च मानसे ॥ १ ॥
तत्सर्वं बभूवास्मिन्। जावडे न्यत्र न क्वचित् ॥
गवां दुग्धेहि यः स्वादे। स्यक दुग्धे कथं भवेत् ॥ २ ॥

गुरुके ऊपर भक्ति, जिनराज की पूजा, वड़ा दान, भावना प्रमोद, मानसिक निर्मलता, ये छह पदार्थ जितने जावड़में थे उतने अन्य किसी संघपति में नहीं, क्योंकि जैसा स्वाद गायके दूधमें है वैसा आकके दूधमें कहांसे हो सकता है?

फिर तमाम विधि समाप्त कर अपनी स्त्री सहित संघपति ध्वजारोपण करनेके लिए प्रासाद शिखर पर चढ़ा, उस समय वे दम्पती भक्ति पूर्वक प्रमोदके वश यह विचार करने लगे कि अहो! संसारमें हम दोनों जने आज धन्य हैं, कृतकृत्य हैं, हमारा भाग्य अति अद्भुत है कि जिससे जो महा पुण्यवान को प्राप्त हो सके वैसे तीर्थका उद्धार हमसे सिद्ध हुवा। तथा वड़े भाग्यके उदयसे अनेक लब्धि-भंडार दस पूर्व धारक विघ्न रूप अन्धकार को दूर करनेमें सूर्य समान और संसार समुद्रसे तारनहार हमें श्री वज्रस्वामी गुरुदेवकी प्राप्ति हुई। तथा महाराजा बाहुबल द्वारा भराई हुई कि जो बहुतसे देवताओं को भी न मिल सके ऐसी श्री ऋषभदेव स्वामीकी यह महा प्रभाविक प्रतिमा भी हमारे भाग्योदय से ही प्राप्त हुई एवं दूषम कालकी महिमासे जो लुप्त प्राय हो गया था वह शत्रुंजय तीर्थ भी हमारे किए हुए उद्यमसे पुनः चतुर्थ आरेके समान महिमावन्त और अनेक प्राणियोंको सुखसे दर्शन करने योग्य बन सका। श्री वज्रस्वामीका प्रतिबोधित देव कोटि परिवार युक्त विघ्नविनाशक कपर्दिक नामक यक्ष अधिष्ठायक हुवा, इन सबमें हम दोनोंका प्राग्भार—उत्कृष्ट पुण्य ही कारण है। संसारमें बसते हुए सांसारिक प्राणियोंके लिये यही मुख्य फल सार है कि श्री संघको आगे करके श्रीशत्रुंजय तीर्थकी यात्रा करना। वे हमारे मनोरथ आज सर्व प्रकारसे परिपूर्ण हुये, इसलिए आजका दिन

हमारा सुदिन है। आज ही हमारा जन्म और जीवन सार्थक हुवा। आज हमारा मन समता रूप अमृतके रससे भरे हुए कुंडमें निमग्न हुवा मालूम होता है। ऐसी परम समता रूप सुख स्वादकी अवस्थाको प्राप्त होने पर भी कर्मयोगसे आर्त रौद्र ध्यान रूप ज्वालासे व्याप्त कुविकल्प—खराब विचार रूप धूम्रके जालसे भरे हुये गृहस्थावस्था रूप अग्निमें रहना पड़ेगा इस लिए यदि इसी अवस्था में भगवान के ध्यानमें चित्तकी लीनता रहते हुये हमारा आयुष्य पूर्ण हो जाय तो भवान्तरमें सुलभ बोधि भव सिद्धिकता अनेक सुख श्रेणियां प्राप्त की जा सकती हैं।

इस प्रकारकी अनेक निर्मल शुभ भावनायें भाते हुए सचमुच ही उन दंपतिका आयुष्य पूर्ण हो जानेसे मानों हर्षके वेगसे ही हृदय फट कर मृत्यु हुई हो इस प्रकार वहां ही काल करके वे दोनों जने चौथे देवलोक में देवता तया उत्पन्न हुये। उन्होंके शरीरको व्यंतरिक देवता क्षीर समुद्रमें डाल आए। उस देवलोक में जावड़ देव बहुतसे विमानवासी देवताओंके मानने योग्य महर्धिक होने पर भी इस शत्रुंजय पर्वतका महिमा प्रगट करते रहता है। जाज नामक जावड़का पुत्र तथा अन्य भी बहुतसे संघके लोग उन दोनों जनोंका मन्दिरके शिखर पर मृत्यु हुवा सुन कर बड़े शोकातुर हुए। तब चक्रेश्वरी देवीने वहां आकर उन्हें मीठे वचनसे समझा कर शोक निवारण किया। जाज नाग भी ऐसे बड़े मांगलिक कार्यमें शोक करना उचित नहीं यह समझ कर संघको आगे करके गुरु द्वारा बतलाई हुई रीतिके अनुसार रैवताद्री शृंग (गिरनारकी टूंक वगैरह) की यात्रा करके अपने शहरमें आया। वह अपने पिताके जैसा आचार पालता हुवा सुखमय दिन व्यतीत करने लगा। (विक्रमादित्य से १०८ वीं सालमें जावड़शाह का किया हुवा उद्धार हुवा)

ऋणके सम्बन्धमें प्रायः क्लेश नहीं मिट सकता और इसीसे वैर विरोधकी अत्यन्त वृद्धि होकर कितने एक भवों तक उसकी परम्परा में उत्पन्न होनेवाले दुःख सहन करने पड़ते हैं, इतना ही नहीं परन्तु उसके सहवास के सम्बन्ध से अन्य भी कितने एक मनुष्यों को पारस्परिक सम्बन्धके कारण दुःख भोगने पड़ते हैं इस लिए सर्वथा किसीका ऋण न रखना।

उपरोक्त कारणसे ऋणका सम्बन्ध लेने वाला एवं देने वाला दोनों जनोंका उसी भवमें अपने सिरसे उतार डालना ही उचित है। दूसरे व्यापारके लेन देनमें भी यदि अपना द्रव्य अपने हाथसे पीछे न आया यदि वह सर्वथा न आ सकता हो तो यह नियम करना कि, मेरा लेना धर्मखाते है। इसी लिए श्रावक लोगोंको प्रायः अपने साधर्मी भाइयोंके साथ ही व्यापार करनेका कहा है; क्योंकि कदाचित् उनके पास धन रह भी गया हो तथापि वे धर्ममार्गमें खर्चें। यह भी स्वयं खर्चे हुएके समान गिनाया है इससे उसने धर्ममार्गमें खर्चा है ऐसा आशय रखकर जमा कर लेना चाहिये। कदाचित् यदि किसी म्लेच्छ के पास लेना रह जाता हो तो वह लेना धर्मादा खातेमें जमा कर लेना और अपने अवसान के समय भी उसे वोसरा देना उचित है जिससे उसे उसकी पापराशि न लगे। कदापि वह लेना धर्मादा खाते जमा किये बाद भी वोसराये पहले यदि पीछे आ जाय तो उसे अपने घर खर्चमें न खर्च कर उसे श्री संघको सौंप कर अथवा स्वयं धर्म मार्ग में खर्च करना योग्य है।

इस प्रकार अपना द्रव्य या कुछ भी पदार्थ गया हो अथवा चुराया गया हो और उसके पीछे मिलने का सम्भव न हो तो उसे वोसरा देना चाहिए जिससे उसका पाप अपने आपको न लगे। इसी तरह अनन्त भवोंमें अपने जीवने किये हुए जो २ शरीर, घर, हाट, क्षेत्र, कुटुम्ब, हल हथियार आदि पापके हेतु हैं सो भी सब वोसरा देना। यदि ऐसा न करे, तो अनन्त भव ऊपरांत भी किये हुए पापके कारणका पाप अनन्तवें भवमें भी आकर उसीको लगता है। और अनन्त भवों तक उसी कारणके लिए वैर विरोध भी चलता है। इस लिए विवेकी पुरुषोंको वह जरूर वोसरा देना ही योग्य है। पाप अथवा पापके कारण अनन्त भव तक हड़काये हुये कुत्ते के जहरके समान पीछे आते हैं; यह बात आगमके आशय बिनाकी न समझना। इसलिए पांचवें अंग भगवती सूत्रके पांचवें शतकके छटे उद्देशेमें कहा है कि, "किसी शिकारीने एक मृगको मारा, जिससे उसे मारा उस धनुष्यके बांसके और बाणके पणच—तांतके, बाणके अग्रभाग में रही हुई लोहकी अणी वगैरह के जीव (धनुष्य, बाण, पणच और लोहको उत्पन्न करने वाले जो जीव हैं) जगतमें हैं उन्होंको अप्रतिपन से हिंसादिक अठारह पापस्थान की क्रिया लगती है।" ऐसा कथन किया होनेसे अनन्त भव तक भी पाप पीछे आता है यह सिद्ध होता है।

उपरोक्त युक्तिके अनुसार व्यापार करते हुए कदाचित् लाभके बदले अलाभ या हानि हो तथापि उससे खेद न करना; क्योंकि खेद न करना यही लक्ष्मीका मुख्य कारण है। जिसके लिए शास्त्रकारों ने इसी वाक्य पर युक्ति बतलाई है कि,:—

सुव्यवसायिनि कुशले। क्लेश सहिष्णौ समुद्यतारम्भे ॥
नरिपृष्ठतो विलग्ने। यास्यति दूरं कियल्लक्ष्मी ॥१॥

व्यापार करनेमें हुशियार, क्लेशको सहन करने वाला एक दफा किया हुवा उद्यम निष्फल जाने पर भी हिम्मत रखकर फिरसे उद्यम करने वाला ऐसा पुरुष जब कामके पीछे पड़े तब फिर लक्ष्मी दौड़ २ कर कितनी दूर जायगी? अर्थात् वैसा उद्योगी पुरुष लक्ष्मीको अवश्य प्राप्त करता है

धान्य बोनेके समान पहलेसे बीज खोने बाद ही एकसे अनेक बीजकी प्राप्ति की जाती है, वैसे ही धन उपार्जन करनेमें कितनी एक दफा धन जाता भी है, तथापि उससे घबरा जाना या दीनता करना उचित नहीं, परन्तु जब यह जाननेमें आवे कि, अभी मुझे धन प्राप्तिका अन्तराय ही है तब धर्ममें दत्तचित्त हो धर्मसेवन करना। जिससे उसका अन्तराय दूर होकर पुण्यका उदय प्रगट हो। उस समय इस उपायके बिना अन्य कोई भी उपाय काम नहीं करता। इसलिये अन्य वृत्तियोंमें मन न लगा कर जब तक श्रेष्ठ उदय न हो तब तक धर्म ही करना श्रेयस्कर है। कहा है कि—

"कुमलाया हुवा वृक्ष भी पुनः वृद्धि पाता है, क्षीण हुवा चन्द्र भी पुनः पूर्ण होता है, यह समझ कर सत्पुरुष आपदाओं से सन्तापित नहीं होता। पूर्ण और हीन ये दो अवस्था जैसे चन्द्रमा को ही हैं परन्तु तारा नक्षत्रोंको वह अवस्था नहीं भोगनी पड़ती वैसे ही सम्पदा और विपदाकी अवस्था भी बड़ोंके लिए ही होती हैं। हे आम्रवृक्ष! जिसलिये फाल्गुन मासमें अकस्मात ही तेरी समस्त शोभा हरण कर ली है;

इससे तू क्यों उदास होता है ? जब वसन्त ऋतु आयेगी तब थोड़े ही समयमें तेरी पूर्वसे भी बढ़कर शोभा बन जायगी। अतः तू खेद मत कर! इस अन्योक्ति से हरएक विपदा ग्रस्त मनुष्य बोध ले सकता है।

"गया धन पुनः प्राप्त होने पर आभड़ शेठका दृष्टान्त"

पाटण नगरमें श्री माली वंशज नागराज नामक एक कोटिध्वज श्रीमंत शेठ रहता था। उसे प्रियं-मेला नामकी स्त्री थी। जब वह गर्भवती हुई तो तत्काल अजीर्ण रोगसे शेठ मरणकी शरण हुवा। अपु-त्रक की मृत्युबाद उसका धन राजा ग्रहण करे उस समयमें ऐसा एक नियम होनेसे उसका सर्वस्व धन राजाने लूट लिया; जिससे निर्धन बनी हुई शेठानी खिन्न होकर धोलका मे अपने पिताके घर जा रही। वहाँ पर उसे अमारीपटह पलानेका दोहला उत्पन्न हुये बाद पुत्र पैदा हुवा। उसका अभय नाम रक्खा गया। परन्तु वह किसी कारणसे लोकमें आभड़ नामसे प्रसिद्ध हुवा। जब वह पांच वर्षका हुवा तब पाठशाला में जाते हुए किसीके मुखसे यह सुन कर कि, वह बिना बापका है अपनी माताके पास आकर उसने हठपूर्वक पूछा तब उसकी माताने सत्य घटना कह सुनाई। फिर कितने एक आडम्बर से वह पाटण रहनेको गया। वहाँ अपने पुराने घरमें रहते हुए और व्यापार करते हुए प्रतिष्ठा जमानेसे लाछल देवीके साथ उसका लग्न हुवा। स्त्री भाग्यशाली होनेसे उसके आये बाद आभड़के पिताका दबाया हुवा घर में बहुतसा धन निकला; इससे वह अपने पिताके समान पुनः कोटिध्वज हो गया। फिर उसे तीन लड़के हुए परन्तु नशीब कमजोर आनेसे सब धन सफाया होगया और निर्धन बन बैठा। अन्तमें ऐसी अवदशा आ लगी कि, लड़कों सहित उसे बहुको उसके पीहर भेजनी पड़ी। अन्य कुछ व्यापार लाभदायक न मिलनेसे वह स्वयं मनियारी-जौहरीकी दुकान पर बैठा। वहां पर सारा दिन तीन मणके घिसे तब एक पायली अन्न मिलें, उन्हें लाकर स्वयं अपने हाथसे पीसे और पकावे तब खावे। ऐसा विपत्तिमें आ पड़ा। इस विषयमें शास्त्रकार ने कहा है समुद्र और कृष्ण ये दोनों जिस प्रेमसे अपनी गोदमें रखते थे उसके घरमें भी जब लक्ष्मी न रही तब जो लोग खर्च करके लक्ष्मीका नाश करते हैं उनके घरमें लक्ष्मी कैसे रहे ?

एक समय श्री हेमचन्द्राचार्य के पास श्रावकके बारह व्रत अंगीकार करते हुए इच्छा परिणाम धारण करते वक्त आभड बहुत ही संक्षेप करने लगा; तब आचार्यने बहुत दफा समझाया तथापि नव लाख रुपये खुले रखकर अधिक न रखनेका उसने प्रत्याख्यान कर लिया और अन्तमें यह नियम लिया कि, इससे अधिक जितना द्रव्य प्राप्त हो सो सब धर्म मार्गमें खर्च डालूंगा। फिर कितने एक दिन बाद उसके पास पांच रुपये हुये। एक दिन वह गांव बाहिर गया था, वहां पर जलाशयमें बकरियों का टोला पानी पीता था। उस पानी को लीले रंगका हुवा देख आभाड विचारने लगा कि निर्मल जल होने पर भी यह पानी हरे रंगका क्यों मालूम होता है। अधिक विचार करनेसे मालूम हुवा कि, एक बकरीके गलेमें एक लीला पत्थरका टुकड़ा बँधा हुवा है, यह देखकर उसने गडरीये से पूछा यह बकरी तुझे बेचनी है ? उसके मंजूर करनेसे पांच रुपयेमें खरीद कर आभड उस बकरीको अपने घर ले आया और उस पत्थरके टुकड़े करके उसे एक सरीखा घिस-

कर मणका तैयार कर उसे एक लाख रुपयेमें बेच दिया। इससे वह पूर्ववत् पुनः श्रीमन्त होगया। अर्थात् बकरीके गलेमें बन्धे हुए उस नील मणिके छोटे २ एक सरीखे मणके बनाकर उन्हें एक एक लाखमें बेचकर वह फिरसे पूर्ववत् कोटिध्वज श्रीमन्त बना। अब उसने अपने कुटुम्बको घर बुलवा लिया। अब वह साधुओंको निरन्तर उचित दान देता है, साधर्मिक वात्सल्य करता है, दानशालायें खुलवाता है, समहोत्सव मन्दिरोंमें पूजायें कराता है, छह छह महीने समकित धारी श्रावकोंकी पूजा करता है, नाना प्रकारके पुस्तक लिखा कर उनका भंडार कराता है, नये बिम्ब भरवाता है, प्रतिष्ठायें कराता है; जीर्णोद्धार कराता है, एवं अनेक प्रकारसे दीन दुखी जनोंको अनुकंपा दानसे सहाय्य करता है। इस प्रकार अनेक धर्म करणियां करके अन्तमें आमड चौरासी वर्षकी अवस्थासे अपने किये हुए धर्म कृत्यकी टीप पढ़ाते हुए भीमशाही सिक्केके अट्ठानवे लाख रुपये खर्चे हुए पढ़कर खेद करने लगा कि, हा हा! मैं कैसा हूं कि, जिससे एक करोड़ रुपया भी धर्म मार्गमें न खर्चा गया। तब उसके पुत्रोंने मिलकर उसके नामसे दस लाख रुपये उसके देखते हुए धर्म मार्गमें खर्चकर एक करोड और आठ रुपये पूर्ण किये। अन्तमें आठ लाख धर्म मार्गमें खर्चा करानेका अपने पुत्रोंसे मंजूर कराकर अनशन कर आमड स्वर्ग सिधाया।

कदाचित् खराब कर्मके योगसे गत लक्ष्मी वापिस न मिल सके तथापि धैर्य धारण कर आपत्ति रूप समुन्द्रको तरनेका प्रयत्न करना। क्योंकि आपदारूप समुन्द्रमें से उतारने वाला एक जहाज समान मात्र धैर्य ही है। पुरुषोंके सब दिन एक सरीखे नहीं होते। सर्व प्राणियोंको अस्त और उदय हुवा ही करता है। कहा है कि इस जगतमें कौन सदा सुखी है, क्या पुरुषकी लक्ष्मी और प्रेम स्थिर रहते हैं, मृत्युसे कौन बच सकता है, कौन विषयोंमें लंपट नहीं। ऐसी कष्टकी अवस्थामें सर्व सुखोंके मूल समान मात्र संतोषका ही आश्रय लेना उचित है। यदि ऐसा न करे तो उन आपदाओं की चिन्तासे वह दोनों भवमें अपनी आत्माको परिभ्रमण कराता है। शास्त्रमें कहा है कि:—'आशारूप जलसे भरी हुई चिन्तारूपिणी नदी पूर्णवेगसे बह रही है, उसमें असंतोष रूपी नावका आलम्बन लेने पर भी हे मन्द तरनेवाले! तू डूबता है, इसलिये संतोष रूप तूंबे का आश्रय ले! जिससे तू सचमुच पार उतर सकेगा।

यदि विविध उपाय करने पर भी अपने भाग्यकी हीन ही दशा मालूम हो तो किसी श्रेष्ठ भाग्यशाली का आश्रय लेकर (उसके साथ हिस्सेदार हो कर) व्यपार करना। जैसे काष्ठके अधारसे लोह और पाषाण भी तर सकता है वैसे ही भाग्यशाली के आश्रयसे लाभकी प्राप्ति हो सकती है।

"हिस्सेदार के भाग्यसे प्राप्त लाभ पर दृष्टान्त"

सुना जाता है कि, एक व्यापारी किसी एक बड़े भाग्यशाली के प्रतापसे उसके साथ हिस्सेमें व्यापार करनेसे धनवन्त हुवा, पर जब अपने नामसे जुदा व्यपार करता है तब अवश्य नुकसान उठाता है। ऐसा होने पर फिरसे शेठके साथ हिस्सेदारी में व्यापार करता है। उसने इसी प्रकार कितनी एक दफा धन खोया और कमाया। अन्तमें वह शेठ मर गया तब वह व्यापारी निर्धन था, इससे उसने उस शेठके पुत्रके

साथ हिस्सेमें व्यापार करनेकी याचना की, परन्तु उसके निर्धन होनेके कारण उसने उसकी बात पर कान ही न दिया। उस निर्धन व्यपारीने अन्य मनुष्योंसे भी शिफारस कराई परन्तु उसने जरा भी न सुना, तब उस व्यापारी ने मनमें विचार किया कि कुछ युक्ति किये विना दाव न लगेगा। इस विचार से उस शेठके एक पुराने मुनीमसे मिलकर शेठके पुत्रसे गुप्त रह कर अपने पुराने खातेको निकलवा कर दो चार मनुष्योंको साक्षी रूप रख कर अपने खातेमें अपने हाथसे दो हजार रुपये उधार लिख कर वही खाता जैसाका तैसा रख दिया। कितने एक दिन बाद उस बहीको पढ़ते हुए वह खाता मालूम होनेसे मुनीमने नये शेठको बतलाया। नया शेठ बोला कि, यदि ऐसा है तो वसूल क्यों नहीं करते? शेठने मुनीमजी को रुपये मांगनेके लिए भेजा तब उसने स्वयं शेठके पास आकर कहा कि, यह तो मेरे ध्यानमे ही है। आपके मुझपर दो हजार रुपये निकलते हैं परन्तु करूं क्या? इस वक्त तो मेरे पास देनेके लिए कुछ नहीं और व्यापार भी धन बिना कहांसे करूं? इसलिए यदि आप उन रुपयोंको लेना चाहते हों तो व्यापार करनेके लिए मुझे दूसरे रुपये दो जिससे कमाकर मैं आपका देना पूरा करूं और मैं भी कमा खाऊं। यदि ऐसा न हो तो मुझसे कुछ न बन सकेगा। नये शेठने विचार किया सचमुच ही ऐसा किये बिना इससे दो हजार रुपये वापिस न मिलेंगे। इससे उसने दो हजार रुपये लेनेकी आशासे अपने साथ पहले समान ही उसे हिस्सेदार बना कर किसी व्यापारके लिए भेजा; इससे वह गरीब थोड़े ही दिनोंमें पुनः धनवंत बन गया, हिसाब करते समय वे दो हजार रुपये काटलेने के वक्त उसने बीचमें रक्खे हुए साक्षियोंको बुलाकर शेठके पास गवाही दिलाई और अपने हाथ से लिखा हुवा बिना लिये ऊधार खाता रद्दी कराया वह इस प्रकार भाग्यशाली की सहायसे धनवन्त हुवा। अधिक लक्ष्मी प्राप्त होने पर गर्व न करना चाहिये।

निर्दयता, अहंकार, तृष्णा, कर्कश वचन—कठोर भाषण नीच लोगोंके साथ व्यापार, (नट, विट, लंपट, असत्यवादी के साथ सहवास रखना); ये पांच लक्ष्मीके सहचारी हैं अर्थात् ज्यों २ लक्ष्मी बढ़ती है त्यों २ उसके पास यह पांचो जरूर आने ही चाहिए, यह कहावत मात्र तुच्छ प्रकृति वालोंके लिए ही है। इस लिये लक्ष्मी प्राप्त करके भी कभी भी गर्व अभिमान न करना। क्यों कि, जो संपन्न होनेपर भी नम्रतासे वर्तता है वही उत्तम पुरुषोंमें गिना जाता है। जिसके लिए कहा है,:—आपदा आनेपर दीनता न करे, संपदा प्राप्त होनेपर गर्व न करे, दूसरोंका दुःख देखकर स्वयं अपने पर पड़े हुये कष्ट जैसे ही दुःखित हो, अपने पर कष्ट आने पर प्रसन्न हो ऐसे चित्तवाले महान् पुरुषको नमस्कार हो। समर्थ होकर कष्ट सहन करे, धनवान होकर गर्व न करे, विद्वान् होकर नम्र रहे, ऐसे पुरुषोंसे पृथ्वी शोभा पाती है।

जिसे बड़ाई रखनेकी इच्छा हो उसे किसीके साथ क्लेश न रखना चाहिये। उसमें भी जो अपनेसे बड़ा गिना जाता हो उसके साथ तो कदापि तकरार न करना। कहा है कि, खांसीके रोग वालोंको चोरी, निन्द्रा वालेको वाम चोरी (परस्त्री गमन), रोगीष्टको खानेकी लालच और धनवानको दूसरोंके साथ लड़ाई, न करनी चाहिये। यदि वैसा करे तो अनर्थकी प्राप्ति होती है। धनवान, राजा, अधिक पक्षवाला, अधिक क्रोधी, गुरु, नीच, तपस्वी, इतनोंके साथ कदापि वादविवाद—तकरार नहीं करना।

मनुष्यको हरएक कार्य करते हुये अपना बलाबल देखना चाहिये और उसके अनुसार ही उस समय वर्ताव करना चाहिये।

धनवानके साथ व्यापार करते हुए कुछ भी बाधा पड़े तो नम्रतासे ही उसका समाधान करना परन्तु उसके साथ क्लेश न उठाना। क्योंकि, धनवानके साथ, बल, कलह, न करना ऐसा प्रत्याख्यान नीतिमें लिखा है। कहा है कि उत्तम पुरुषको नम्रतासे अपनेसे अधिक बलिष्टको पारस्परिक भेद नीतिसे, नीचको कुछ देकर ललचाके और समानको पराक्रमसे वश करना।

उपरोक्त न्यायके अनुसार धनार्थी और धनवन्तको अवश्य क्षमा रखनी चाहिये। क्योंकि क्षमा ही लक्ष्मीकी वृद्धि करनेमे समर्थ है। जिस लिये नीतिमें कहा है कि;—विप्रको होम और मन्त्रका बल है, राजाको नीति और शस्त्रका बल है, अनाथोंको—दुर्बलोंको राजाका बल है, और व्यापारियोंको क्षमा बल है। धन प्राप्तिका मूल प्रिय वचन और क्षमा है। काम सेवनका विषय विलासका मूल धन; निरोगी शरीर और तारुण्य है। धर्मका मूल दान, दया और इन्द्रीय दमन है, और मोक्षका मूल संसारके समस्त सम्बन्धोंको छोड़ देना है।

दंत कलह तो सर्वथा ही सर्वत्र त्यागना चाहिये। जिसके लिए लक्ष्मी दारीद्र्यके संवादमें कहा है कि,—"लक्ष्मी कहती है —"हे इन्द्र! जहां पर गुरु जनकी—माता पिता धर्म गुरुकी पूजा होती है; जहां न्यायसे लक्ष्मी प्राप्त की जाती है; और जहां पर प्रति दिन दंत कलह—झगड़ा टंटा होता है मैं वहां ही निवास करती हूं।" फिर दारीद्र्यको पूछा तू कहां रहता है? वह बोला—"जुवे बाजोंको पोषण करने वाले, अपने सगे सम्बन्धियोंसे द्वेष रखने वाले, कीमियासे धन प्राप्तिकी इच्छा रखने वाले सदा आलसु, आय और व्ययका विचार न करने वाले पुरुषोंके घर पर मैं सदैव रहता हूं।"

"उघरानी करनेकी रीति"

लेना, लेने जाना हो उस समय भी वहांपर नरमास रखनी चाहिये, परन्तु लोगोंमें निन्दा हो वैसा वचन न बोलना, याने युक्ति पूर्वक प्रसन्नता पैदा करके मांगना जिससे देने वालेको लेने वालेके प्रति देनेकी रुचि पैदा हो। यदि ऐसा न किया जाय तो दाक्षिण्यता आदि गुण लोप होकर धन, धर्म, और प्रतिष्ठाकी हानि होती है। इसी लिए लेना लेने जाते समय या मांगते समय विचार पूर्वक वर्त्तन करना चाहिये। तथा जिसमें स्वयं लंघन करना पड़े और दूसरोंको भी कराना पड़े वैसा काम सर्वथा वर्ज देना। तथा स्वयं भोजन करना और दूसरेको (देनदारको) लंघन कराना यह सर्वथा अयोग्य ही है, क्योंकि भोजनका अन्तराय करनेसे ढंढण कुमारादिके समान अत्यंत भयंकर कर्म बन्धते हैं। यदि अपना कार्य शाम स्नेहसे बन सकता हो तो कठनाई ग्रहण करना योग्य नहीं। व्यापारीको तो स्नेहसे काम बने तब तक लड़ाई झगड़ा कदापि न करना चाहिये। कहा है कि; यद्यपि साध्य साधनमें—काम निकालनेमें शाम, दाम, भेद, और दंड ये चार उपाय प्रख्यात हैं तथापि अन्तिम तीनका संज्ञा मात्र फल है, परन्तु सिद्धि तो शाममें ही समाई है। जो कोमल वचनसे वश नहीं होता—एक दफा उघरानी करनेसे धन नहीं देता वह अन्तमें कटु, कठोर, वचन प्रहार सहन करने वाला बनता है। जैसे कि दांत, जीभके उपासक बनते हैं।

लेन देनके सम्बन्धमे भ्रान्ति होनेसे या विस्मृत होजाने से यद्यपि हरेक प्रकारका विवाद होता है तथापि अरस परस सर्वथा तकरार न करना। परन्तु उसका खुलासा करनेके लिए लोक प्रख्यात मध्यस्थ वृत्ति वाले प्रमाणिक न्याय करने वाले चार गृहस्थोंको नियुक्त करना। वे मिल कर जो खुलासा करें सो मान्य करना। ऐसा किये विना ऐसी तकरारें मिट नहीं सकतीं। इसलिए कहा है कि, ज्यों परस्पर गुंथे हुए सिरके बालोंको अपने हाथसे मनुष्य जुदे नहीं कर सकता या सुलझा नहीं सकता, परन्तु कंघीसे ही वे सुलझाये जा सकते हैं वैसे ही दो सगे भाइयोंमें या मित्रोंमें भी यदि परस्पर कुछ तकरार हो तो वह किसी दूसरेसे ही सुलझाई जा सकती है। तथा जिन्हें मध्यस्थ नियुक्त किया हो उन्हें अपक्षपातसे जिसे जैसा हिस्सा देना योग्य है उसे वैसा ही देना चाहिये। उन दोनोंमें से किसीका भी पक्षपात न करना चाहिये। एवं लोभ या दाक्षिण्यता रख कर या रिसवत वगैरह लेकर अन्याय न करना चाहिये, क्योंकि, सगे सम्बन्धी, स्वधर्मी या हरएक किसी दूसरेके काममें भी लोभ रखना यह सबसे विश्वास घातका काम है अतः वैसा न करना।

निर्लोभ वृत्तिसे न्याय करके विवाद दूर करनेसे मध्यस्थ को जैसे महत्वादि बड़ा लाभ होता है, वैसे ही यदि पक्षपात रख कर न्याय करे तो दोष भी वैसा ही बड़ा लगता है। सत्य विचार किये विना यदि दाक्षिण्यतासे फैसला किया जाय, तो कदाचित् देनदारको लेनदार और लेनदार को देनदार ठरा दिया जाय, ऐसे भी किसी लालच वश या गैर समझसे बहुत दफा फैसला हो जाता है, इसलिए न्यायाधीश को यथार्थ रीतिसे दोनोंका पक्षपात किये विना न्याय करना चाहिये। अन्यथा न्याय करने वाला बड़े दोषका भागीदार बनता है।

"न्यायमें अन्याय पर शेठकी पुत्रीका दृष्टान्त"

सुना जाता है कि, एक धनवान शेठ था। वह शेठाईकी बड़ाई एवं आदर बहुमानका विशेष अर्थी होनेसे सबकी पंचायतमें आगेवानके तौर पर हिस्सा लेता था। उसकी पुत्री बड़ी चतुरा थी। वह बारंबार पिताको समझाती कि पिताजी अब आप वृद्ध हुए, बहुत यश कमाया अब तो यह सब प्रपंच छोड़ो। शेठ कहता है कि, नहीं मैं किसीका पक्षपात या दाक्षिण्यता नहीं करता कि जिससे यह प्रपंच कहा जाय, मैं तो सत्य न्याय जैसा होना चाहिये वैसा ही करता हूं। लड़की बोली पिताजी ऐसा हो नहीं सकता। जिसे लाभ हो उसे तो अवश्य सुख होगा परन्तु जिसके अलाभमें न्याय हो उसे तो कदापि दुःख हुये बिना नहीं रहता। कैसे समझा जाय कि वह सत्य न्याय हुवा है। ऐसी युक्तियोंसे बहुत कुछ समझाया परन्तु शेठके दिमागमें एक न उतरी। एक समय वह अपने पिताको शिक्षा देनेके लिए घरमें असत्य झगड़ा ले बैठी कि पिताजी! आपके पास मैंने हजार सुवर्ण मोहरें धरोहर रक्खी हुई हैं, सो मुझे वापिस दे दो। शेठ आश्चर्य चकित होकर बोला कि बेटी आज तू यह क्या बकती है? कैसी मोहरें क्या बात? विचक्षणा बोली—"नहीं नहीं। जबतक मेरी धरोहर वापिस न दोगे तबतक मैं भोजन भी न करूंगी और दूसरोंको भी न खाने दूंगी। ऐसा कहकर दरवाजेके बीचमें बैठकर जिससे हजारों मनुष्य इकट्ठे हो जाँय उस प्रकार चिल्लाने लगी और साफ २ कहने

लगी कि इतना वृद्ध हुवा तथापि कुछ लज्जा शर्म है ? जो बाल विधवाके द्रव्य पर बुरी दानत कर बैठा है। देखो तो सही यह मा भी कुछ नहीं बोलती और भाईने तो बिलकुल ही मौन धारा है! ये सब दूसरेके द्रव्यके लालचू बन बैठे हैं। मुझे क्या खबर थी कि ये इतने लालचू और दूसरेका धन दबाने वाले होंगे, नहीं नहीं ऐसा कदापि न हो सकेगा। क्या बाल विधवाका द्रव्य खाते हुए लज्जा नहीं आती! मेरा रुपया अवश्य ही वापिस देना पड़ेगा। किस लिए इतने मनुष्योंमें हास्य-पात्र बनते हो ? विचक्षणाके वचन सुन कर बिचारा शेठ तो आश्चर्य चकित हो शरमिन्दा बन गया, और सब लोग उसे फटकार देने लग गये। इस बनावसे शेठके होस हवास उड़ गये। लोगोंकी फटकार स्त्रियोंके रोने कूटनेका करुण ध्वनि और लड़कीका विलाप इत्यादि से खिन्न हो शेठने विचार करके चार बड़े आदमियोंको बुलाकर पंचायत कराई। पंचायती लोगोंने विचक्षणा को बुलाकर पूछा कि तेरी हजार सुवर्ण मुद्रायें जो शेठके पास धरोहर हैं उसका कोई साक्षी या गवाह भी है ? वह बोली—"साक्षी या गवाहकी क्या बात ? इस घरके सभी साक्षी हैं। मा जानती है, बहनें जानतीं हैं, भाई भी जानता है, परन्तु हड़प करनेकी आशासे सब एक तरफ हो बैठे हैं, इसका क्या उपाय ? यों तो सब ही मनमें समझते हैं परन्तु पिताके सामने कौन बोले ? सबको मालूम होते पर भी इस समय मेरा कोई साक्षी या गवाह बने ऐसी आशा नहीं है। यदि तुम्हें दया आती हो तो मेरा धन वापिस दिलाओ नहीं तो मेरा परमेश्वर बेलि है। इसमें जो बनना होगा सो बनेगा। आप पंच लोग तो मेरे मां बापके समान हैं। जब उसकी दानत ही बिगड़ गई तब क्या किया जाय ? एक तो क्या परन्तु चाहे इक्कीस लंघन करने पड़ें तथापि मेरा द्रव्य मिले बिना मैं न तो खाऊंगी और न खाने दूंगी। देखती हूं अब क्या होता है" यों कह कर पंचोंके सिर भार डालकर विचक्षणा रोती हुई एक तरफ चली गयी।

अब सब पंचोंने मिलकर यह विचार किया कि सचमुच ही इस बेचारीका द्रव्य शेठने दबा लिया है, अन्यथा इस बिचारीका इस प्रकारके कल कलाहट पूर्ण वचन निकल ही नहीं सकते। एक पंच बोला अरे शेठ इतना धीठ है कि इस बेचारी अबलाके द्रव्य पर भी दृष्टि डाली! अन्तमें शेठको बुलाकर कहा कि इस लड़की का तुम्हारे पास जो द्रव्य है सो सत्य है, ऐसी बाल विधवा तथा पुत्री उसके द्रव्य पर तुम्हें इस प्रकारकी दानत करना योग्य नहीं। ये पंच तुम्हें कहते हैं कि उसका लेना हमें पंचोंके बीचमें ला दो या उसे देना कबूल करो और उस बाईको बुलाकर उसके समक्ष मंजूर करो कि हाँ! तेरा द्रव्य मेरे पास है फिर दूसरी बात करना। हम कुछ तुम्हें फसाना नहीं चाहते परन्तु लड़कीका द्रव्य रखना सर्वथा अनुचित है, इसलिए अन्य विचार किये बिना उसका धन ले आओ। ऐसे वचन सुनकर बिचारा शेठ लज्जासे लाचार बन गया और शरममें ही उठ कर हजार सुवर्ण मुद्राओंकी रकम लाकर उसने पंचोंको सोंपी। पंचोंने विलाप करती हुई बाईको बुलाकर वह रकम दे दी, और वे उठ कर रास्ते पड़े।

इस बनावसे दूसरे लोगोंमें शेठकी बड़ी अपभ्राजना हुई। जिससे बिचारा शेठ बड़ा लज्जित हो गया और मनमें विचार करने लगा कि हा! हा! मेरे घरका यह कैसा फजीता! यह रांड ऐसी कहांसे निकली कि जिसने व्यर्थ ही मेरा फजीता किया और व्यर्थ हो द्रव्य ले लिया, इस प्रकार खेद करता हुवा शेठ घरके

एक कोनेमें जा बैठा। अब उसे दूसरोंकी पंचायत में जाना दूर रहा दूसरोंको मुंह बतलाना या घरसे बाहर निकलना भी मुश्किल हो गया। घरमें कुछ शांति हो जाने बाद शेठके पास आ कर भाई बहिन और माताके सुनते हुए विचक्षणा बोली—क्यों पिताजी! "यह न्याय सच्चा है या झूंठा? इसमें आपको कुछ दुःख होता है या नहीं?" शेठने कहा--इससे भी बढ़ कर और क्या अन्याय होगा! यदि ऐसे अन्यायसे भी दुःख न होगा तो वह दुनियांमें ही न रहेगा। विचक्षणा ने हजार सुवर्ण मुद्राओंकी थैली ला कर पिताको सोंपी और कहा— "पिताजी! मुझे आपका द्रव्य लेनेकी जरूरत नहीं। यह तो परीक्षा बतलानी थी कि आप न्याय करने जाते हैं उनमें ऐसे ही न्याय होते हैं या नहीं? इससे दूसरे कितने एक लोगोंको ऐसा ही दुःख न होता होगा? इससे पंचोंको कितना पुण्य मिलता होगा? मैं आपको सदैव कहती थी परन्तु आपके ध्यानमें ही न आता था इसलिए मैंने परीक्षा कर दिखलानेके लिए यह सब कुछ बनाव किया था। अब न्याय करना वह न्याय है या अन्याय? सो बात सत्य हुई या नहीं, अबसे ऐसे पंचायती न्याय करनेमें शामिल होना या नहीं? शेठ कुछ भी न बोल सका। अन्तमें विचक्षणा ने शांत करके पिताको न्याय करने जानेका परित्याग कराया। इसलिए कहीं कहीं पर पूर्वोक्त प्रकारसे न्यायमें भी अन्याय हो जाता है इससे न्याय करनेमें उपरोक्त दृष्टान्त पर ध्यान रख कर न्यायकर्त्ता को ज्यों त्यो न्याय न कर देना चाहिये, परन्तु उसमें बड़ी दीर्घ दृष्टि रख कर न्याय करना योग्य है? जिससे अन्यायसे उत्पन्न होने वाले दोषका हिस्सेदार न बनना पड़े।

"मत्सर परित्याग"

दूसरों पर मत्सर कदापि न करना चाहिए, क्योंकि जो दूसरा मनुष्य कमाता है वह उसके पुण्योदय होनेसे अलभ्य लाभ प्राप्त करता है। उसमें मत्सर करके व्यर्थ ही अपने दोनों भवमें दुःखदायी कर्म उपार्जन करना योग्य नहीं। इसलिए हम भी दूसरे ग्रन्थमें लिख गये हैं कि "मनुष्य जैसा दूसरों पर विचार करे वैसा ही अपने आपको भोगना पड़ता है। इस विचारसे उत्तम मनुष्य दूसरोंकी वृद्धि होती देख कदापि मत्सर नहीं करते" (लौकिकमें भी कहा है कि जो चिन्तवन करे परको वही होवे घरको)। व्यापार में खराब विचारोंका भी परित्याग करना चाहिये।

धान्यके व्यापारी, करियानेके व्यापारी, औषध बेचने वाले, कपडेके व्यापारी, इन्हें अपना व्यापार चलाते हुये दुर्भिक्ष—अकाल और रोगोपद्रव की वृद्धिकी चाहना कदापि न करनी चाहिये, एवं वस्त्रादिक वस्तुके क्षयकी चिन्तवना भी न करनी चाहिये। अकाल पड़े तो धान्य अधिक मँहगा हो या रोगोपद्रव की वृद्धि हो तो पन्सारी का क्रयाणा या औषध करने वाले को अधिक लाभ हो ऐसा विचार न करना, क्योंकि सारे जगतको दुःख कारक ऐसे उपद्रव की वांच्छा करनेसे उत्पन्न होने वाले लाभसे उसका क्या भला होगा! तथा दैव योगसे कदाचित दुर्भिक्ष पड़े तथापि उसकी अनुमोदना भी न करना क्योंकि व्यर्थ ही मानसिक मलीनता करनेसे भी अत्यन्त दुःखदायी कर्म बन्धन होता है। जब मानसिक मलीनता करनेका व्यापार भी त्यागने योग्य कहा है तब फिर उसकी अनुमोदना करना किस तरह योग्य कहा जाय?

"मानसिक मलीनता पर दो मित्रोंका दृष्टान्त"

कहीं पर दो मित्र व्यापारी थे। उनमें एक घीका और दूसरा चर्म—चामका संग्रह करनेको निकले। वे दोनों किसी एक गांवमें आ कर रहे। वे सन्ध्या समय किसी एक वयोवृद्धा धाबे वालीके घर रसोई करा जीमने आये, तब उसने पूछा कि, तुम आगे कहां जाते हो? और क्या व्यापार करते हो? एकने कहा कि, मैं अमुक गांवमें घी लेने जाता हूं और मैं घीका ही व्यापार करता हूं। दूसरेने कहा कि, मैं चमड़ेका व्यापारी होनेसे अमुक गांवमें चमड़ा खरीदने जा रहा हूं। रसोई करने वालीने उनके मानसिक परिणाम का विचार करके उन दोनोंमें से घीके व्यापारी को अपने घरके कमरेमें बैठा कर जिमाया और चमड़ेके व्यापारीको घरके बाहर बैठा कर जिमाया। यद्यपि उन दोनोंके मनमें इस बातकी शंका अवश्य पड़ी परन्तु वे कुछ पूछताछ किये बिना ही वहांसे चले गये। फिरसे माल खरीद कर वापिस लौटते समय भी उसी गांवमें आ कर उसी धाबे वाली बुढ़ियाके घर जीमने आये। तब उस बुढ़ियाने चमड़ेके खरीदार को घरमें और घीके खरीदार को घरसे बाहिर बैठा कर जिमाया। जीम कर वे दोनों जने उसके पैसे देते हुए पूछने लगे कि, हम दोनोंको उस दिनकी अपेक्षा आज स्थान बदल कर जिमाने क्यों बैठाया? उसने उत्तर दिया कि, जब तुम माल खरीदने जाते थे उस वक्त जो तुम्हारा परिणाम था वह अब बदल गया है, इसी कारण मैंने तुम्हें जुदे बदल बदल स्थान पर जिमाये हैं। जब घी लेने जाता था तब घी खरीदार के मनमें ऐसा विचार था कि यदि वृष्टि अच्छी हुई हो घास पानी सरसाई वाला हो तो उससे गाय, भैंस, बकरी, भेड़ वगैरह सब सुखी हों इससे घी सस्ता मिले। अब लौटते समय घी बेचनेका विचार होनेसे वह विचार बदल गया; इसी कारण प्रथम घी खरीदार को घरके अन्दर और इस वक्त घरके बाहर बैठाके जिमाया। चमड़ा खरीदार को जाते समय यह विचार था कि यदि गाय, भैंस, बैल वगैरह अधिक मरे हों तो ठीक रहे क्योंकि वैसा होने पर ही माल सस्ता मिलता है, और अब लौटते समय इसका विचार बदल गया, क्योंकि यदि अब चमड़ा मँहगा हो तो ठीक रहे। इसलिए पहले इसे घरके बाहर और अब लौटते समय घरके अन्दर बैठा कर जिमाया है।' ऐसी युक्ति सुन कर दोनों जने आश्चर्य चकित हो चुपचाप चले गये। परिणाम से यह विचार करनेका आशय बतलाते हैं।

यहाँ पर जहाँ परिणाम की मलीनता हो वह कार्य करना योग्य नहीं गिना गया। दूसरेको लाभ होता हुवा देख उसमें मत्सर करना यह तो प्रत्यक्ष ही परिणाम की मलीनता देख पड़ती है, इसलिए किसी पर मत्सर न करना चाहिए। इसीलिए पंचाशकमें कहा है कि "उचित सैकड़े पर जो व्याज लेनेसे या "व्याजें-स्याद्द्विगुणं वित्त" व्याजसे दूना द्रव्य हो, ऐसे धान्यके व्यापारसे दुगुना, तिगुना लाभ होता है यह समझ कर नाप कर, भरके, तोड़ कर, तोल कर, बेचनेके भावसे जो लाभ हो उसमें भी यदि उस वर्षमें उस मालकी फसल न होनेसे उसका भाव चढ़नेके कारण यदि अधिक लाभ हो तो उसे छोड़ कर दूसरा ग्रहण न करे (क्योंकि जब माल लिया था तब कुछ यह जान कर न लिया था कि इस साल इस मालका पाक अधिक न होनेसे दुगुना तिगुना या चौगुना लाभ लेना ही है। इसलिये माल खरीद किये

वाद चढ़े भावमें बेचनेसे कुछ दोष नहीं लगता, इससे उस द्रव्यका लाभ लेना उचित है। परन्तु इसके सिवाय किसी दूसरी तरहके व्यापारमें कपटवृत्ति द्वारा होनेवाले लाभको ग्रहण न करे यह आशय समझना। उपरोक्त आशयको दृढ़ करनेके लिए कहते हैं कि सुपारी वगैरह फल या किसी अन्य प्रकारके मालका क्षय होनेसे याने उस साल उसकी कम फसल होनेसे या समय पर बाहरसे वह माल न आ पहुचने से यदि दुगुना तिगुना लाभ हो तो अच्छा परिणाम रखकर उस लाभको ग्रहण करे परन्तु यह विचार न करे कि अच्छा हुवा कि जो इस साल इस मालकी मौसम न हुई। (इस प्रकारकी अनुमोदना न करे क्योंकि ऐसी अनुमोदनासे पाप लगता है) एवं किसी दूसरेकी कुछ वस्तु गिर गई हो तथापि उसे ग्रहण न करे। उपरोक्त व्याजमें या मालके लेने वेचनेमें देश कालकी अपेक्षासे अपने उचित ही लाभ गृहण करे परन्तु लोक निन्दा करे उस प्रकारका लाभ न उठावे।

"असत्य तोल नापसे दोष"

अधिक तोलसे लेकर कम तोलसे देना, अधिक नापसे लेकर, कम नापसे देना, श्रेष्ठ वानगी वतला कर खराव माल देना, अच्छे बुरे मालमे मिश्रण करना, किसीकी वस्तु लेकर उसको वापिस न देना, एकके आठ गुने या दस गुने करना, अघटित व्याज लेना, अघटित व्याज देना, अघटित याने असत्य दस्तावेज लिखा लेना, किसीका कार्य करनेमें रिसवत लेना या देना, अघटित कर लगाना, खोटा घिसा हुवा ताम्बेका या सीसेका नांवा देना, किसीके लेन देनमें भंग डालना, दूसरेके ग्राहकको वहकाना, अच्छा माल दिखला कर खराव माल देना, माल बेचनेकी जगह अन्धेरा रखकर माल दिखाते समय लोगोंको फसाना, शाही वगैरह की दाग लगाकर अक्षर बिगाड़ना इत्यादि अकृत्य सर्वथा त्यागने चाहिए। कहा है कि - विविध प्रकारके उपाय और छल प्रपंच करके जो दूसरोंको ठगता है वह महामोह का मित्र वन कर स्वयं ही स्वर्ग और मोक्षके सुखसे ठगा जाता है।

यह न समझना कि निर्धन लोगोंका निर्वाह होना दुष्कर है, क्योंकि निर्वाह होना तो अपने अपने कर्मके स्वाधीन है। (उपरोक्त न करने योग्य अकृत्योंके परित्यागसे हमारा निर्वाह न होगा यह बिलकुल न समझना; क्योंकि निर्वाह तो अपने पुण्यसे ही होता है) यदि व्यवहार शुद्धि हो तो उसकी दूकान पर बहुतसे ग्राहक आ सकनेसे बहुत ही लाभ होनेका सम्भव होता है।

"व्यवहार शुद्धि पर हेलाक का दृष्टान्त

एक नगरमें हेलाक नामक शेठ रहता था। उसे चार पुत्र थे। उन्हींके नाम पर तीन सेरी और त्रिपुष्कर, चार सेरी और पंच पुष्कर, ऐसे नाम स्थापन करके उनमेंसे किसीको बुलाना और किसीको गाली देना ऐसी २ संज्ञायें बान्ध रक्खी थीं कि ऐसे नापसे—कम नापसे तोलकर-नाप कर देना ऐसे नापसे अधिक नापसे तोल कर, नाप कर, दूसरेसे लेना। (उसने ऐसा सब दूकान वालोंके

साथ ठहराव कर रखा था) इस प्रकार झूंठा व्यवहार चलाता है । यह बात चौथे पुत्रकी वहूको मालूम पड़नेसे एक दफा उसने ससुरेजी को बुला कर कहा कि आपको ऐसा असत्य व्यापार करना उचित नहीं; शेठने जवाब दिया कि बेटी क्या किया जाय यह संसार ऐसा ही है। ऐसा किये विना फायदा नहीं होता, उसके विना निर्वाह नहीं चलता, भूखा क्या पाप नहीं करे ? वहू बोली— "आप ऐसा मत बोलियेगा, जो व्यवहार शुद्धि है वही सर्व प्रकारके अर्थ साधन करनेमे समर्थ है। इसलिए शास्त्रमें लिखा है कि, न्यायसे वर्ताव करनेवाले यदि धर्मार्थी या द्रव्यार्थी हों तो उन्हें सत्यतासे सचमुच धर्म और द्रव्यकी प्राप्ति हुये विना नहीं रहती इसमें किसी प्रकारकी भी शंका नहीं, इसलिए सत्यता से व्यापार कीजिये जिससे आपको लाभ हुए विना न रहेगा। यदि इस बातमें आपको विश्वास न आता हो तो छह महीने तक इसकी परीक्षा कर देखिये कि इस वक्त जो आप व्यापार करते हैं उसमें जो आपको लाभ होता है उससे अधिक लाभ सत्य व्यापारमें—व्यवहार शुद्धिसे होता है या नहीं। यदि आपको धनवृद्धि होनेकी परीक्षा हो और वह उचित है ऐसा मालूम हो तो फिर सदैव सत्यतासे व्यापार करना, अन्यथा आपकी मर्जीके अनुसार करना। इस तरह छोटी वहूके कहनेसे शेठने मंजूर करके वैसा ही व्यापारमें सत्याचरण किया। सचमुच ही उसकी प्रमाणिकता से ग्राहकोंकी वृद्धि हुई, पहिलेकी अपेक्षा अधिक माल खपने लगा और सुख पूर्वक निर्वाह होनेके उपरान्त कुछ वचने भी लगा। उसे छह महीनेका हिसाव करनेसे एक पत्र प्रमाण (ढाई रुपये भर) सुवर्णका लाभ हुवा। छोटी वहूके पास यह बात करनेसे वह कहने लगी कि इस न्यायोपार्जित वित्तसे किसी भी प्रकारकी हानि नहीं हो सकती। दृष्टान्तके तौर पर यदि इस धनको कहीं डाल भी दिया जाय तो भी वह कहीं नहीं जा सकता। यह बात सुन कर सेठने आश्चर्य पाकर उस सुवर्ण पर लोहा जड़वा कर उसका एक सेर वनवाया। उस पर अपने नामका सिक्का लगाकर दूकानमें उसे तोलनेके लिए रख छोड़ा। अब वे जहाँ तहाँ दुकानमें रखड़ता पड़ा रहता है, परन्तु उसे लेनेकी किसी को वुद्धि न हुई फिर उस सेरकी परीक्षा करनेके लिए शेठने उठाकर उसे एक छोटे तालावमें डाल दिया दैवयोग उस सेर पर चिकास लगी हुई होनेके कारण तलावमें उसे किसी एक मच्छने सटक लिया। फिर कुछ दिन वाद वही मत्स्य किसी मछयारे द्वारा पकड़ा गया। उसे चीरते हुए उसके पेटमें से वह वाट सेर निकला। उस पर हेलाक शेठका नाम होनेसे मछियारा उसे सेठकी दूकान पर आकर दे गया। इससे सेठको सचमुच ही सत्यके व्यापारसे होनेवाले लाभके विषयमें चमत्कारी अनुभव हुवा। जिससे उसने अपनी दूकान पर अबसे सत्यतासे व्यापार चलानेकी प्रतिज्ञा की; वैसा करनेसे उसे बड़ा भारी लाभ हुवा। वह बड़ा श्रीमन्त हुवा, राज्यमान हुवा, धर्म पर रुचि लगनेसे उसने श्रावकके व्रत अंगीकार किये और सब लोगोंमें सत्य व्यापारी तया प्रसिद्ध हुवा। उसे देखकर दूसरे अनेक मनुष्य उसकी प्रमाणिकता का अनुकरण करने लगे। इस उपरोक्त दृष्टान्त पर लक्ष्य रखकर सत्यतासे ही व्यापार करनेमें महा लाभ होता है इस विचारसे कपटवर्ग व्यापारका सर्वथा त्याग करना योग्य है।

"अवश्य त्यागने योग्य महापाप"

स्वामी द्रोह, मित्र द्रोह, विश्वास द्रोह, गुरु द्रोह, वृद्ध द्रोह, न्यासापहार—किसीकी धरोहर दवा लेना, उनके किसी भी कार्यमें विघ्न डालना, उन्हें किसी भी प्रकारका मानसिक, वाचिक और कायिक दुःख देना, उनकी घात चिन्तवना-घात करना या कराना, आजीविका भंग करना या कराना, वगैरह जो महा कुकृत्य हैं वे महा पाप बतलाये गये हैं। जो ऐसे कार्योंसे आजीविका चलाई जाती है वह प्रायः महापाप है। इसलिए उत्तम पुरुषोंको वह सर्वथा त्यागने योग्य है। इस विषयमें कहा भी है कि झूंठी गवाही देने वाला, बहुत समय तक किसी तकरारसे द्वेष रखने वाला, विश्वास घात करने वाला, और किये हुए गुणको भूल जाने वाला, ये चार जने कर्म चांडाल कहलाते हैं। इसमें इतना विशेष समझना भंगी चमार, आदि जाति चांडालोंकी अपेक्षा कर्म चांडाल अधिक नीच होता है, इसलिए उसका स्पर्श करना भी योग्य नहीं।

"विश्वासघात पर दृष्टान्त"

विशाल नगरीमें नन्द राजा राज्य करता था। उसे भानुमति नामा रानी, विजयपाल नामक कुमार, और बहुश्रुत नामक दीवान था। राजा रानीपर अत्यन्त मोहित होनेसे उसे साथ लेकर राजसभा में बैठा करता था। यह अन्याय देखकर दीवानको एक नीतिका श्लोक याद आया कि—

"तद्यथा वैद्यो गुरुश्च मंत्री च यस्य राज्ञप्रियंवदाः॥
शरीरधर्मकोशेभ्यः, क्षिप्रं सपरिहीयते॥"

वैद्य, गुरु, और दीवान; जिस राजाके सामने ये मीठा बोलने वाले हों उस राजाका शरीर धर्म और भाण्डार सत्वर नष्ट होता है। इस नीति वाक्यके याद आने पर दीवान कहने लगा—"हे राजेन्द्र! रानीको पासमें बैठाना अनुचित है। क्योंकि नीति शास्त्रमें कहा है कि राजा; अग्नि, गुरु, और स्त्री इन चारोंको यदि अति नजीक रक्खा हो तो विनाश कारी होते हैं और यदि अति दूर रक्खे हों तो कुछ फलीभूत नहीं होते। इसलिए इन चारको मध्यम भावसे सेवन करना योग्य है। अतः आपको रानीको पास रखना उचित नहीं। यदि आपका मन मानता ही न हो तो रानीके रूपका चित्र पास रक्खा कर। राजाने भी वैसा ही किया। उसने रानीका चित्र तैयार कराकर शारदानन्द नामक अपने गुरुको बतलाया। उसने अपना विज्ञान बतलानेके लिये कहा कि, रानीकी बांई जंघा पर तिल है, परन्तु उसका दिखाव इस चित्रमें नहीं बतलाया गया। इस चित्रमें बस इतनी ही त्रुटि रह गई है। मात्र इतने ही वचनसे रानीके विषयमें राजाको शंका पड़नेसे शारदानन्दको मार डालनेका दीवानको हुकम फर्माया। शारदानन्दको सरस्वतीका वरदान होनेसे उसमें गुप्त बातें जाननेकी शक्ति थी, परन्तु राजाको यह बात मालूम न होनेसे उसने सशंकित हो इस प्रकारका हुकम किया था। दीर्घदृष्टि वाले दीवानने नीति शास्त्रके वाक्यको याद किया कि "जो कार्य करना हो उसमें शीघ्रता न करनी और जिस कार्यको करनेमें लम्बा विचार न किया हो उसमेंसे बड़ी आपदा आ पड़ती है।

विचार पूर्वक कार्य करने वालेको उसके गुणमें लुब्ध हो बहुतसी संपदाय स्वयं आ प्राप्त होती हैं। यह नीति वाक्य स्मरण करके शारदानन्दको न मार कर उसे गुप्त रीतिसे अपने घर पर रख लिया। एक समय विजय-पाल राजकुमार शिकार खेलनेके लिए निकला था, वह एक सूअरके पीछे बहुत दूर निकल गया। सन्ध्या हो जाने पर एक सरोवर पर जाकर पानी पीके सिंहके भयसे एक वृक्ष पर चढ़ बैठा। उसी वृक्ष पर एक व्यंतर देव किसी एक बन्दरके शरीरमें प्रवेश करके राजकुमारको बोला कि तू पहले मेरी गोदमें सोजा। ऐसा कह कर थके हुए कुमारको उसने अपनी गोदमें लिया। जब राजकुमार जागृत हुवा तब बन्दर उसकी गोदमें सोया। उस समय क्षुधासे अति पीड़ित वहांपर एक व्याघ्र आया। उसके वचनसे राजकुमारने अपनी गोदसे उस बन्दरको नीचे डाल दिया, इससे वह बन्दर व्याघ्रके मुखमें आ पड़ा। व्याघ्रको हास्य आनेसे बन्दर उसके मुंहसे निकल कर रोने लगा। तब व्याघ्रके पूछने पर उसने उत्तर दिया कि हे व्याघ्र! जो अपनी जातिको छोड़कर दूसरी जातिमें रक्त बने हैं मैं उन्हें रोता हूं कि उन मूर्खोंका न जाने भविष्य कालमें क्या होगा? यह बात सुनकर राजकुमार लज्जित हुवा। फिर उस व्यंतर देवने राजकुमार को पागल करदिया। इससे वह कुमार सब जगह 'विसेमिरा' ऐसे बोलने लगा। कुमारका घोड़ा स्वयं घर पर गया, इससे मालूम होने पर तलास कराकर राजाने जंगलमेंसे कुमारको घर पर मंगवाया। अब कुमारको अच्छा करानेके लिये बहुतसे उपचार किये गये मगर उसे कुछ भी फायदा न हुआ, तब राजाको विचार पैदा हुवा कि यदि इस समय शारदानन्द होता तो अवश्य यह राजकुमार को अच्छा करता, इस विचारसे उसने शारदानन्द गुरुको याद किया। फिर राजाने इस प्रकार ढिंढोरा पिटवाया कि जो राजकुमार को अच्छा करेगा मैं उसे अर्द्ध राज्य दूंगा। इससे दीवानने राजासे आकर कहा कि मेरी पुत्री कुछ जानती है। अब पुत्रको साथ लेकर राजा दीवानके घर गया। वहां पड़देके अन्दर बैठे हुए शारदानन्द ने नवीन चार श्लोक रचकर राजकुमार को सुना-कर उसे अच्छा किया। वे श्लोक नीचे मुजब थे:—

"विश्वासप्रतिपन्नानां। वंचने का विदग्धता॥ अंकमारुह्य सुप्तानां। हंतु किं नाम पौरुषं॥ १॥
सेतुं गत्वा समुद्रस्य। गंगासागरसंगमे॥ ब्रह्महा मुच्यते पापैः। मित्रद्रोहा न मुच्यते॥ २॥
मित्रद्रोही कृतघ्नश्च। स्तेयी विश्वासघातकः॥ चत्वारो नरकं यान्ति। यावचन्द्रदिवाकरौ॥ ३॥
राजस्त्वं राजपुत्रस्य। यदि कल्याण वांछसि॥ देहि दानं सुपात्रेषु। गृही दानेन शुध्यति॥ ४॥

विश्वास रखने वाले प्राणियोंको ठगनेमें क्या चतुराई गिनी जाय? और गोदमें सोते हुएको मार डालनेमें क्या पराक्रम किया माना जाय? राजकुमार क्षण क्षणमें "विसेमिरा" इन चार अक्षरोंका उच्चारण किया करता था, सो पहिला श्लोक सुनकर "विसेमिरा" मेंसे 'वि' अक्षर भूल गया और 'सेमिरा' बोलने लगा! (२) जहांपर गंगा और समुद्रका संगम होता है याने जहां मगध वरदाम और प्रभास नामक तीर्थ है, अर्थात् समुद्रके किनारे तक जाकर तीर्थ यात्रा करता फिरे तो ब्रह्मचर्य पालने वालेको मारनेके पापसे मुक्त होता है परन्तु मित्रद्रोह करनेके पापसे छूट नहीं सकता। २ यह श्लोक सुननेसे राजकुमारने दूसरा अक्षर बोलना छोड़ दिया। अब वह 'मिरा' शब्द बोलने लगा। (३) मित्र द्रोही, कृतघ्न, चोर, विश्वास घातक,

इन चार प्रकारके कुकर्मोको करने वाला नरकमें जा पड़ता है। जबतक चन्द्र, सूर्य हैं तबतक नरकके दुःख भोगता है। ३ यह तीसरा श्लोक सुनकर तीसरा अक्षर भूलकर राजकुमार सिर्फ 'रा' बोलने लगा। (३) हे राजन! यदि तू इस राजकुमारके कल्याणको चाहता हो तो सुपात्रमें दान दे क्योंकि गृहस्थ दानसे ही शुद्ध होता है। ४ यह चतुर्थ श्लोक सुनकर राजकुमार सर्वथा स्वस्थ बन गया।

फिर राजाने कुमारसे पूछा कि, तुझे क्या हुवा था, उसने सत्य घटना कह सुनायी। राजा पड़देमें रही हुई दीवानकी पुत्रीसे (शारदासे) पूछने लगा कि हे बालिका! हे पुत्री! तू शहरमें रहती है तथापि वन्दर, व्याघ्र और राजकुमार का जंगलमें बना हुवा चरित्र तू किस प्रकार जान सकी? पड़देमेंसे शारदानन्द बोला देव गुरुकी कृपासे मेरी जीभके अग्र भाग पर सरस्वती निवास करती हैं। इससे जैसे भानुमतीकी जंघा पर तिलको जाना वैसे ही यह वृत्तान्त मालूम होगया। यह सुन आश्चर्य चकित हो राजा बोला क्या शारदानन्द है? उसने कहा कि हां! राजा प्रसन्न हो पड़दा दूर कर शारदानन्दसे मिला और अपने कथनानुसार उसे अर्द्ध राज्य देकर कृतार्थ किया। इसलिये ऊपर मुजब विश्वासीको कदापि न ठगना।

"पापके भेद"

शास्त्रमें पापके भेद दो प्रकार कहे हैं, एक गुप्त और दूसरा प्रगट। प्रथम यहांपर प्रगट पापके दो भेद कहते हैं।

प्रगट पाप दो प्रकारके हैं, एक कुलाचार और दूसरा निर्लज्ज। कुलाचार गृहस्थके किये हुए आरंभ समारंभको कहते हैं और निर्लज्ज साधुओंके वेशमें रहकर जीव हिंसादिक करनेको कहते हैं। निर्लज्ज याने यति साधुका वेष रखकर प्रगट पाप करें वह अनन्त संसारका हेतु है, क्योंकि वह जैन शासनके अपवादका हेतु हो सकता है इसलिये कुलाचार से प्रगट पाप करे तो उसका बन्ध स्वल्प होता है। अब गुप्त पापके भेद कहते हैं।

गुप्त पाप भी दो प्रकारके हैं। एक लघु और दूसरा महत। उसमें लघु कम तोल या नाप वगैरहसे देना, और लघु विश्वासघात, कृतघ्न, गुरु द्रोही, देव द्रोही, मित्र द्रोही, बालद्रोही वगैरह २ समझना। गुप्त पाप दंभ पूर्ण होनेसे उससे कर्म बन्ध भी दृढ होता है। अब असत्य पापके भेद कहते हैं।

मनसे असत्य, वचनसे असत्य, और शरीरसे असत्य, ये तीन महापाप कहलाते हैं। क्योंकि मन, वचन कायकी असत्यतासे गुप्त ही पाप किये जा सकते हैं। जो मन, वचन, कायकी असत्यता का त्यागी है, वह कदापि किसी भी गुप्त पापमें प्रवृत्ति नहीं करता। जो असत्य प्रवृत्ति करता है उससे उसे निःशूकता धार्मिक अवगणना होती है। निःशूकतासे, स्वामि द्रोह, मित्र द्रोहादिक महापाप करता है। इसलिये योग शास्त्रमें कहा है कि एक तरफ असत्य सम्बन्धि पाप और दूसरी ओर समस्त पापोंको रख कर यदि केवलीकी बुद्धि रूप तराजूमें तोला जाय तो उन दोनोंमें से पहिला असत्यका पाप अधिक होता है। इस प्रकार जो असत्य मय गुप्त पाप हैं याने दूसरेको ठगने रूप पापको त्यागनेके लिये उद्यम करना योग्य है।

यदि परमार्थसे विचार किया जाय तो द्रव्योपार्जन करनेमें न्याय ही सार है। वर्तमान कालमें प्रत्यक्ष ही देख पड़ता है कि यदि न्यायसे बड़ा लाभ हुवा हो उसमेंसे धर्मकार्य में खर्चता रहे, इससे वह कुवे-के पानीके समान अक्षयता को प्राप्त होता है। जैसे कुवेका पानी ज्यों ज्यों अधिक निकाला जाता है त्यों त्यों उसमें आय भी तदनुसार अधिक होती है वैसी ही नीतिसे कमाये हुए धनको ज्यों ज्यों धर्ममें खर्चा जाता है त्यों त्यों वह व्यापार द्वारा अधिक वृद्धिको प्राप्त होता है। पापी मनुष्यको ज्यों ज्यों अधिक लाभ होता है त्यों त्यों उसका मन खरचने के कारण खुट जानेके भयसे मारवाड़ में रहे हुए तलावका पानी ज्यों दिन प्रतिदिन सूकता जानेसे एक समय वह बिलकुल नष्ट हो जाता है, वैसे ही पापीका धन भी कम होनेसे एक समय वह सर्वथा नष्ट हो जाता है। क्योंकि उसमें पापकी अधिकता होनेसे क्षीणताका हेतु समाया हुवा है और न्यायवान् को धर्मकी अधिकता होनेसे प्रतिदिन प्रत्यक्ष ही वृद्धिका हेतु है। इसलिये शास्त्रमें कहा है कि, जो घटीयन्त्र में छिद्र द्वारा पानी भरता है वह उसकी वृद्धिके लिये नहीं परन्तु उसे डुबानेके लिए ही भरता है। इस तरह बारंबार घटीयन्त्र को डूबना ही पड़ता है सो क्यों प्रत्यक्ष नहीं देखते ? ऐसे ही पापी प्राणीको जो जो द्रव्यकी प्राप्ति होती है वह केवल उसके पापपिण्ड की वृद्धिके लिए ही होती है परन्तु धर्मवृद्धि के लिये नहीं। इसी लिये एक समय उसे ऐसा भी देखना पड़ता है कि उसके किये हुए पापरूप घड़े के भर जानेसे एकदम उसका सर्वस्व नष्ट हो जाता है।

यदि यहाँ पर कोई यह शंका करे कि जो मनुष्य न्यायसे ही धर्मरक्षण करके स्वयं अपना व्यवहार चलाता है वह अधिक दुःखित मालूम होता है, और जो कितने एक अन्यायसे द्रव्य उपार्जन करते हैं वे अधिक धन ऐश्वर्यता वाले दिनों दिन वृद्धि पाते हुए देख पड़ते हैं; इससे न्याय धर्मकी ही एक मुख्यता कहां रही ? इसका उत्तर यह है कि—प्रत्यक्ष अन्याय हो वह करनेसे भी उसे धनकी वृद्धि होती मालूम देती है, वह उसे पूर्वभव में संचय किये हुए पुण्यका उदय करा सकता है, वह इस भवमें किये जाते अन्याय का फल नहीं। जो इस भवमें अन्याय करता है उसका फल आगे मिलनेवाला है। इस समय तो उसके पूर्वभव में किये हुए पुण्यका ही उदय है, वही उसे दिनोंदिन लाभ प्राप्त कराता है यह समझना चाहिये। इसलिये धर्म-घोष सूरिने पुण्य पाप कर्मकी चौभंगी निम्न लिखे मुजब बतलाई है:—

१ पुण्यानुबन्धी पुण्य—जिसके उदयमें पुण्य बांधा जाय। २ पापानुबन्धी पुण्य—पूर्वकृत पुण्य भोगते हुये जिसमें पापका बन्ध हो। ३ पुण्यानुबन्धी पाप—पूर्वभव में किये पापका फल दुःख भोगते हुए जिसमें पुण्यका बन्ध हो। ४ पापानुबन्धी पाप—पूर्वकृत पाप फल भोगते हुए जिसमें पापका ही बन्ध हो। १ पूर्वभव में आराधन किये हुये जैनधर्म की विराधना किये बिना मृत्यु पाकर इस भवमें भी कष्ट न पा कर जो उदय आये हुए निरुपम सुखको भरतचक्रवर्ती के समान भोगता हैं उसे पुण्यानुबन्धी पुण्य कहते हैं। २ पूर्वभव में किये हुए पुण्यके प्रभावसे निरोगी, रूपवान, कुलवान, यशवान् वगैरह कितने एक लौकिक गुण युक्त तथा जो इस लोकमें महान ऋद्धि वाला होता है, वह कौणिक राजाके समान पापानुबन्धी पुण्य भोगता है। एवं अज्ञान कष्टसे भी पापानुबन्धी पुण्य भोगा जाता है। ३ जो मनुष्य पूर्वभव में

सेवन किये पापके उदयसे इस भवमें दरिद्री मालूम होता है, दुःखी देख पड़ता है परन्तु किंचित् दयाके प्रभावसे इस लोकमें जैन धर्मको प्राप्त करता है उसे पुण्यानुबन्धी पाप कहते हैं। (उसके पूर्वकृत पापोंको भोगता है परन्तु नवीन पुण्य बांधता है) ४ पापी, कठोर कर्म करने वाला, धर्मके परिणामसे रहित, निर्दय परिणामी, महिमासे रहित, निरन्तर दुखी होने पर भी पाप करनेमें निरत, पापमें आसक्त जीवोंको 'कालक सुअरिया' चांडालके समान पापानुबन्धी पापवाले समझना।

बाह्य नौ प्रकारकी और अभ्यन्तर अनन्त गुणमयी जो ऋद्धियाँ कहीं हैं वे सब पुण्यानुबन्धी पुण्यके प्रतापसे प्राप्त की जा सकती हैं; परन्तु उन बाह्य और अभ्यन्तर ऋद्धियोंमें से जिसके पास एक भी ऋद्धि नहीं तथापि उसकी प्राप्तिके लिए कुछ उद्योग भी नहीं करता उसका मनुष्यत्व धिक्कारने योग्य है। जो मनुष्य लेश मात्र धर्मवासना से अखण्डित पुण्यको नहीं करता वह मनुष्य परभव में आपदा संयुक्त सम्पदाको पाता है।

तथा यद्यपि किसी एक मनुष्यको पापानुबन्धी पुण्य कर्मके सम्बन्धसे इस लोकमें प्रत्यक्ष दुःख नहीं मालूम देता परन्तु वह सचमुच ही आगे जाकर या परभव में अवश्य दुःख पायगा। इसलिये कहा है कि जो मनुष्य धन प्राप्त करनेमें लोभी होकर पाप करता है और उससे जो लाभ पाता है, वह धन लाभ अणीपर लगाये हुए मांसके भक्षक मत्स्यके समान उसे नाश किये बिना नहीं रहता।

उपरोक्त न्यायके अनुसार स्वामी द्रोह न करना। स्वामी द्रोह के कारण रूप दानचोरी वगैरह राजाज्ञाका भंग करना ये सब वर्जने योग्य हैं। क्योंकि इस लोक और पर लोकमें अनर्थकारी होनेसे सर्वथा वर्जनीय हैं। तथा जिसमें दूसरेको जरा भी सन्ताप कारक हो सो भी न करना और न कराना। अपने आपको कम लाभ होने पर भी दूसरे लोगोंको हरकत पहुंचे ऐसा कार्य भी वर्जने योग्य है क्योंकि दूसरोंकी दुरशीस लेनेसे अपने आपको सुख समृद्धि प्राप्त नहीं हो सकती, कहा है कि—मूर्खाईसे मित्र, कपटसे धर्म, दूसरोंको दुःख देनेसे सुख समृद्धि, सुखसे विद्या, कठोर वचनसे स्त्री, प्राप्त करनेकी इच्छा करे तो वह बिलकुल मूर्ख है। जिससे लोग राजी रहें वैसी प्रवृत्ति करनेमें महा लाभ है। कहा है कि:—जितेन्द्रियता विनयसे प्राप्त होती है, सर्वोत्कृष्ट गुण विनयसे प्राप्त किया जा सकता है, सर्वोत्कृष्ट गुणसे लोक राजी होते हैं और लोगोंको खुश रखना ही सम्पदा पानेका कारण है।

धनकी हानि या वृद्धि और संग्रह किसीके सामने न कहना। धनकी हानि, वृद्धि संख्या, गुप्त करना अन्य किसीके सामने प्रगट न करना। कहा हैं कि—पिताकी स्त्री, स्वयं किया हुवा आहार, अपना किया हुवा सुकृत, अपना द्रव्य, अपने गुण, अपना दुष्कर्म, अपना मर्म, अपना गुप्त विचार; ये दूसरोंको न कहना चाहिये। यदि कोई पूछे कि तेरे पास कितना धन है, तुझे कितनी आय होती है, तब कहना कि ऐसा प्रश्न करनेसे आपको क्या लाभ है? अथवा यह सब कुछ कहनेमें मुझे क्या फायदा है? इस प्रकार भाषा समिति में उपयोग रखकर उत्तर देना। यदि राजा वगैरहने पूछा हो तो सत्य हकीगत कह देना। इस लिये नीति शास्त्रमें कहा है कि—मित्रके साथ सत्य, स्त्रीके साथ प्रिय, शत्रुके साथ झूंठ और मिष्ट, एवं स्वामीके

साथ अनुकूल और सत्य बोलना, सत्य बोलनेसे पुरुषकी उत्कृष्ट प्रतिष्ठा बढ़ती है और इसीसे जगतमें अपने ऊपर विश्वास बैठाया जा सकता है। विश्वास बैठानेसे मनवांच्छित कार्य होता है।

"सत्य पर महणसिंहका दृष्टान्त"

सुना जाता है कि दिल्लीमें महणसिंह (मदनसिंह) नामक एक शेठ रहता था। वह बड़ा सत्यवादी है उसकी ऐसी प्रख्याति सुन कर उसकी परीक्षा करनेके लिए बादशाह ने उसे अपने पास बुला कर पूछा— तेरे पास कितना धन है ? उसने कहा कि बही देख कर कहूंगा। उसने अपने घर आ कर तमाम बही खाता देख कर निश्चित करके बादशाह के पास जा कर कहा है कि मेरे पास अनुमान से ८४ लाख टके मालूम होते हैं; बादशाह विचार करने लगा कि, मैंने तो इससे कम सुना था परन्तु इसने तो सचमुच ही हिसाब करके जितना है उतना ही बतलाया। उसे सत्यवक्ता समझ कर बादशाह ने अब अपना खजानची बनाया।

"सत्य बोलने पर भीम सोनीका दृष्टान्त"

खंभात नगरमें विपद् दशामें आ पड़ने पर भी सत्यवादी तपागच्छीय पूज्य श्री जगच्चन्द्र सूरिका भक्त भीम नामक सुनार श्री मल्लिनाथ स्वामीके मन्दिरमें दर्शन करने गया था; उस वक्त वहां पर हाथमें हथियार ले कर आ पड़े हुये क्षत्रियोंने उसे पकड़ कर धन मांगा। तब उसने कहा कि तुम्हें चार हजार धन दे कर ही भोजन करूंगा। फिर उसने पुत्रके पास धन मांगा; पुत्रोंने अपने पिताको छुड़ानेके लिये चार हजार खोटे रुपये ला दिये। क्षत्री लोगोंने वह धन ले कर भीमसे पूछा कि यह सच्चे रुपये हैं या खोटे ? उसने परीक्षा करके कहा कि—खोटे हैं। इससे उन लोगोंने प्रसन्न हो कर उसे माल सहित छोड़ दिया। फिर वे क्षत्रिय लोक उसी दिन उस गांवके राजवर्गीय यवनोंसे मारे गये। तुम्हें धन दिये बाद ही भोजन करूंगा भीमने ऐसी प्रतिज्ञा की होनेके कारण उन्हें अग्नि संस्कार अपने हाथसे करके कबूल किए हुए चार हजार रुपये व्याज पर रख दिये। उस व्याजमें से उनकी वार्षिक तिथिको बड़ी पूजा श्री मल्लिनाथ के मन्दिर में आज तक होती है और उसमें से जो धन बढ़े वह उसी मन्दिर में खर्चा जाता है।

मित्र करनेके लिए उसकी योग्यता देखना जरूरी है। समान धन प्रतिष्ठादि गुणवन्त निर्लोभी, एक मित्र जरूर करना चाहिये, जिससे सुख दुःखादि कार्यमें सहाय कारक हो। इसलिए रघुवंश काव्यमें भी कहा है कि 'जातिसे, बलसे, बुद्धिसे, और पराक्रमसे हीन लोगोंको यदि मित्र किया हो तो वे वक्त पर उपकार करनेके लिए समर्थ नहीं हो सकते और यदि जातिसे, बलसे, बुद्धिसे और पराक्रम से अधिक हों तो वे सचमुच ही वक्त पर सामना कर बैठनेका सम्भव है। इसलिए राजाको समान जाति, बल, बुद्धि और पराक्रम वालोंके साथ मित्रता रखनी चाहिये। दूसरे शास्त्रमें भी कहा है कि, वैसी ही किसी विषम अवस्था के समय जहां भाई, पिता या अन्य कोई सगे सम्बन्धी भी खड़े न रह सकें वैसी आपदाको दूर करनेके समय भी मित्र सहाय करता है; रामचन्द्रजी लक्ष्मणजी से कहते हैं कि—'हे भाई ! अपनेसे विशेष संपदा वालेके साथ

मित्रता करना मुझे बिलकुल नहीं रुचता; क्योंकि जब हम उसके घर गये हों तब वह हमें कुछ मान सन्मान नहीं दे सकता और यदि वह हमारे घर आये तो हमें धन खरचना पड़े।'

उपरोक्त युक्तिके अनुसार अपने समान लोगोंके साथ प्रीति रखना योग्य है। कदाचित् बड़ी सम्पदा वालेके साथ मित्रता हो तो उससे भी किसी समय दुःसाध्य कार्यकी सिद्धि और अन्य भी अनेक गुणोंकी प्राप्ति होती है। भाषामें भी कहा है कि स्वयं समर्थ हो कर रहना अथवा किसी बड़ेको अपने हाथ कर रखना जिससे मन इच्छित कार्य किया जा सके। काम कर लेनेमें इसके सिवा अन्य कोई उपाय नहीं। यदि कम संपदा वाला भी मित्र रक्खा हो तो वह भी समय पड़ने पर लाभ कारक हो जाता है, उससे कितनी एक बातोंका फायदा होता है। पंचोपाख्यान में कहा है कि "सबल और दुर्बल दोनों प्रकारके मित्र करना, क्योंकि यदि हाथीके चूहे मित्र थे तो उन्होंके उद्यमसे हाथी बन्धनसे छूट सका"। किसी समय जो कार्य छोटे मित्रसे बन सकता है वह बड़े धनवान से भी नहीं बन सकता। जैसे कि सुईका कार्य सुई ही कर सकती है परन्तु वह तरवार वगैरहसे नहीं बन सकता। घासका कार्य घाससे ही बन सकता है, परन्तु हाथीसे नहीं।

"दाक्षिण्यता"

मुखसे दाक्षिण्यता तो दुर्जनकी भी न छोड़ना, इसलिए कहा है कि सत्य बात कहनेसे मित्रके, सन्मान देनेसे सगे सम्बन्धियों के, प्रेम दिखलाने से और समय पर उचित वस्तु ला देनेसे स्त्री और नौकरोंके और दाक्षिण्यता रखनेसे दूसरे लोगोंके मनको हरन करना (उन्होंके मनमें अप्रीति न आने देना)। जैसे कि किसी वक्त ऐसा भी समय आ जाय कि उस समय अपना कार्य सिद्ध कर लेनेके लिये फल, दुष्ट, चुगलखोर लोगोंको भी आगे करना पड़ता है। इसलिए कहा है—रस लेने वाली जीभ जैसे क्लेशके रसिया दांतोंको आगे करके रस ले लेती है वैसे ही चतुर पुरुष किसी समय कहीं पर खल पुरुषोंको भी आगे करके काम निकाल लेता है। प्रायः कांटोंकी बाड़ बिना निर्वाह नहीं हो सकता, क्योंकि क्षेत्र, ग्राम, घर, बाग, बगीचोंकी मुख्य रक्षा उनसे ही होती है।

"प्रीतिके स्थानमें लेन देन न करना"

जहां प्रीति रखनेका विचार हो वहां पर द्रव्यका लेन देन सम्बन्ध न रखना। कहा है कि—द्रव्यका लेन देन सम्बन्ध वहां ही करना कि जहां मित्रता रखनेका विचार न हो। तथा अपनी प्रतिष्ठा रखनेकी चाहना हो तो प्रीतिवान् के घरमें अपनी इच्छानुसार बैठ न रहना—उसकी इच्छानुसार बैठना।

सोमनीति में लिखा है कि—मित्रके साथ लेन देन और सहवास और कलह न करना; एवं किसीकी साक्षी रखे बिना मित्रके घर धरोहर न रखना। मित्रके साथ कहीं पर कुछ भी द्रव्य वगैरह भेजना योग्य नहीं क्योंकि चुराया और खुवाया वगैरह कितनेक कार्योंमें द्रव्य ही अविश्वास का कारण बनता है और अविश्वास ही अनर्थका मूल है। इसलिए कहा है कि जहाँ विश्वास न हो उसका विश्वास न रखना और विश्वास किया जाता हो उसका भी विश्वास न करना, क्योंकि विश्वासे ही भय उत्पन्न होता है।

यदि किसीके पास गुप्त धरोहर रक्खी हो तो वह वहां ही पच जाती है। तथा वैसे द्रव्य पर किसका मन नहीं ललचाता ? कहा है कि किसी शेठके घर कोई मनुष्य धरोहर रखने आया, उस वक्त शेठका घर गिरने लगा, तब उसने अपनी गोत्र देवीसे कहा कि हे देवि ! यदि इस धनका स्वामी यहां ही मर जाय तो तू जो मांगेगी सो दूंगा (ऐसे विचार आये विना नहीं रहते)। इसलिए द्रव्यको बड़ी युक्ति पूर्वक सम्हाल रखना चाहिये।

"विना साक्षी धरोहर धरनेका दृष्टान्त"

कोई एक धनेश्वर नामक शेठ अपने घरमें जो २ सार वस्तु थीं उन्हें बेच कर उनके करोड़ २ मूल्य वाले आठ रत्न ले कर अपने स्त्री पुत्र वगैरह से भी गुप्त मित्रके घर धरोहर रख कर द्रव्य उपार्जन करनेके लिये परदेश चला गया। वहां कितने एक समय तक व्यापारादि करके कितना एक द्रव्य उपार्जन किया परन्तु दैवयोग वह अकस्मात् वहीं बीमार हो गया। इसलिए कहा है कि मचकुन्दके पुष्प समान स्वच्छ और उज्वल हृदयसे हर्ष सहित कुछ अन्य ही विचार करके कार्य प्रारम्भ किया हो परन्तु कर्मवशात् वही कार्य किसी अन्य ही आवेशमें परिणत हो जाता है। जब शेठकी अन्तिम अवस्था आ लगी तब उसके साथ रहे हुये सज्जन प्रमुखने पूछा कि यदि कुछ कहना हो तो कह दो क्योंकि अब कुछ मनमें रखने जैसी तुम्हारी अवस्था नहीं है। उसने कहा कि जो यहांपर द्रव्य है सो दूकानके बही खातेको पढ़कर निश्चित कर मेरे पुत्रादिक को, तगादा करके दिला देना, और मेरे अमुक गांवमें मेरे स्त्री पुत्रादिकसे भी गुप्त अमुक मित्रके पास एक एक करोड़के आठ रत्न धरोहर तया रक्खे हैं, वे मेरे स्त्री पुत्रको दिलाना। उन्होंने पूछा कि उस द्रव्यके रखनेमें कोई साक्षी या गवाह या कुछ निशानी प्रमाण है ? उसने कहा गवाह, साक्षी या निशानी पुराव कुछ नहीं। इसके बाद वह मरण की शरण हुआ। सज्जन लोगों ने उसके पुत्रादिको मरणादिक वृत्तान्त सूचित कर उसका वहांका सर्व धन तगादा वगैरहसे वसूल करके उसके पुत्रको दिलाया। फिर जिसके वहां धरोहर तया आठ रत्न रक्खे थे उसकी लिखत पढ़त कागज पत्र कुछ भी न होनेसे प्रथम तो उससे विनय बहुमान से मांगनी की, फिर राजा आदिका भय दिखला कर मांगा परन्तु उसके लोभीष्ट मित्रने ना तो धन दिया और न ही मंजूर किया। साक्षी गवाह आदि कुछ प्रमाण न होनेके कारण राजा आदिके पास जाकर भी वे उस धनको प्राप्त न कर सके। इसलिये किसीके पास कदापि विना साक्षी धरोहर वगैरह द्रव्य न रखना।

जैसे तैसे मनुष्यको भी साक्षी किया हो तथापि यदि वह वस्तु कहीं दब गई हो तो कभी न कभी वापिस मिल सकती है। जैसे कि कोई एक व्यापारी तगादा वसूल कर धन लेकर कहींसे अपने गांव आ रहा था। मार्गमें चोर मिल गये उन्होंने उसे जुहार करके उससे धन मांगा तब वह कहने लगा कि किसी को साक्षी रख कर यह सब धन ले जावो। जब तुम्हें कहींसे धन मिले, तब मुझे वापिस देना परन्तु इस वक्त मुझे मारना नहीं। चोरोंने मनमें विचार किया कि यह कोई मुग्ध है, इससे जङ्गलमें फिरते हुये एक

कबरे रंगके बिल्लेको साक्षी करके उसके पाससे उन्होंने सब द्रव्य ले लिया। वह व्यापारी एक एक का नाम स्थान ग्राम वगैरह पूछकर अपनी किताब में लिखकर अपने गांव चला गया। कितने एक समय बाद उन चोरोंके गांवके लोग जिनमे उन चोरोंमें से भी कितने एक थे उस व्यापारी के गांवके बाजारमे कुछ माल खरीदनेको आये, तब उस व्यापारीने उनमेंसे कितने एक चोरोंको पहिचान कर उनसे अपना लेना मांगा। चोरोंने कबूल न किया, इससे उसने पकड़वा कर उन्हे न्याय दरबारमे खींचा। दरबार मे न्याय करते समय न्यायाधीशने बनियेसे साक्षी, गवाह मांगा। बनियेने कहा कि मैं साक्षीको बाहरसे बुला लाता हूं। बाहर आकर वह व्यापारी जब इधर उधर फिर रहा था तब उसे एक काला बिल्ला मिला। उसे पकड़ कर अपने कपड़ेसे ढक कर दरबार मे आकर कहने लगा कि इस वस्त्रमे मेरा साक्षी है; चोर बोले, बतला तो सही देखें तेरे साक्षीको। उसने वस्त्रका एक किनारा ऊंचा कर बिल्ला बतलाया। उस वक्त चोरोंमेंसे एक जना बोल उठा कि—नहीं नहीं यह बिल्ला नहीं!" न्यायाधीश पूछने लगा कि यह नहीं तो क्या वह दूसरा था? वे सबके सब बोले, हां! यह बिलकुल नहीं; न्यायाधीशने पूछा कि—"वह कैसा था?" चोर बोले—"वह तो कबरा था, और यह बिलकुल काला है।" बस! इतना मात्र बोलनेसे वे सचमुच पकड़े गये। इससे उन चोरोंने उस सेठका जितना धन लिया था वह सब व्याज सहित न्यायाधीशने वापिस दिलाया। इसलिये साक्षी बिना किसीको द्रव्य देना योग्य नहीं।

किसीके यहाँ गुप्त धरोहर न धरना एवं अपने पास भी किसीकी न रखना। चार सगे सम्बन्धी या मित्र मंडलको बीचमें रख कर ही धरोहर रखना या रखाना। तथा जब वापिस लेनी या देनी हो तब उन चार मनुष्योंको बीचमें रख कर लेना या देना परन्तु अकेले आकर न लेना या अकेलेको न देना। धरोहर रखनेवाले को वह धरोहर अपने ही घरमे रखनी चाहिये। गहना हो तो उसे पहरना नहीं और यदि नगद रुपये हों तो उन्हें व्याज वगैरह के उपयोग में न लेना। यदि अपना समय अच्छा न हो या अपने पर कुछ किसी तरहका भय आनेका मालूम हो तो अमानत रखनेवाले को बुला कर उसकी अमानत वापिस दे देना। यदि अमानत रखनेवाला कदापि कहीं मरण पाया हो तो उसके पुत्र स्त्री वगैरह को दे देना। या उसके पीछे जो उसका वारस हो सब लोगोंको विदित करके उसे दे देना और यदि उसका कोई वारिस ही न हो तो सब लोगोंके समक्ष विदित करके उसका धन धर्म मार्गमें खरच डालना।

"बही खातेके हिसाबमें आलस्य त्याग"

किसीकी धरोहर या उधारका हिसाब किताब लिखनेमें जरा भी आलस्य न रखना। इसलिये शास्त्र मे लिखा है कि "धनकी गांठ बान्धनेमें, परीक्षा करनेमें, गिननेमें, रक्षण करनेमें, खर्च करनेमे, नावाँ लिखनेमें इत्यादि कार्यमें जो मनुष्य आलस्य रखता है वह शीघ्र ही विनाशको प्राप्त होता है" पूर्वोक्त कारणोंमें जो मनुष्य आलस रक्खे तो भ्रांति पैदा हो कि अमुकके पास मेरा लेना है या देना? यह विचार नावाँ ठावाँ लिखनेमें आलस्य रखनेसे ही होता है और इससे अनेक प्रकारके नये कर्मबन्ध हुये बिना नहीं रहते। इस-लिये पूर्वोक्त कार्यमें कदापि आलस्य न रखना चाहिये।

जिस प्रकार तारे, नक्षत्र, अपने पर चन्द्रसूर्यको अधिकारी नायक तरीके रखते हैं वैसे ही द्रव्य उपार्जन करने और उसका रक्षण करनेकी सिद्धिके लिये हर एक मनुष्यको अपने ऊपर कोई एक राजा, दीवान या नगर सेठ वगैरह स्वामी जरूर रखना चाहिये, जिससे पद २ में आ पड़नेवाली आपत्तियोंमें उसके आश्रय से उसे कोई भी विशेष सन्तापित न कर सके। कहा है कि—"महापुरुष राजाका आश्रय करते हैं सो केवल अपना पेट भरनेके लिए नहीं परन्तु सज्जन पुरुषोंका उपकार और दुर्जनोंका तिरस्कार करनेके लिए ही करते हैं। वस्तुपाल तेजपाल दीवान, पेथडशाह, वगैरह बड़े सत्पुरुषोंने भी राजाका आश्रय लेकर ही वैसे बड़े प्रासाद और कितनी एक तीर्थयात्रा, संघयात्रा, वगैरह धर्म करनियाँ करके और कराकर उनसे होने वाले कितने एक प्रकारके पुण्य कार्य किये हैं। बड़े पुरुषोंका आश्रय किये विना वैसे बड़े कार्य नहीं किये जा सकते! और कदाचित् करें तो कितने एक प्रकारकी मुसीबतें भोगनी पड़ती हैं।

"कसम न खाना"

जैसे तैसे ही या चाहे जिसकी कसम न खानी चाहिये। तथा उसम भी विशेषतः देव, गुरु, धर्मकी कसम तो कदापि न खाना। कहा है कि—सचाईसे या झूंठतया जो प्रभुकी कसम खाता है वह मूर्ख प्राणी आगामी भवमें स्वयं अपने बोधिबीज को गंवाता है और अनन्त संसारी बनता है। तथा किसीकी ओरसे गवाही देकर कष्टमें कदापि न पड़ना। इसलिये कार्यासिक नामा ऋषि द्वारा किये हुए नीति शास्त्रमें, कहा है कि—स्वयं दरिद्री होने पर दो स्त्रियां करना, मार्गमें खेत करना, दो हिस्सेदार होकर खेत बोना, सहज सी बातमें किसीको शत्रु बनाना, और दूसरेकी गवाही देना ये पांचो अपने आप किये हुए अनर्थ अपनेको ही दुःखदायी होते हैं।

विशेषतः श्रावकको जिस गांवम रहना हो उसी गांवमें व्यापार करना योग्य है, क्योंकि वैसा करनेसे कुटुम्बका वियोग सहन नहीं करना पड़ता। घरके या धर्मादिक के कार्यमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं आ सकती, इत्यादि अनेक गुणोंकी प्राप्ति होती है। तथापि यदि अपने गांवमें व्यापार करनेसे निर्वाह न हो सके तो अपने ही देशमें किसी नजदीक के गांव या शहरमें व्यापार करना; क्योंकि ऐसा करनेसे जब जब काम पड़े तब शीघ्र गमनागमन वगैरह हो सकनेसे प्रायः पूर्वोक्त गुणोंका लाभ मिल सकता है। ऐसा कौन मूर्ख है कि जो अपने गांवमें सुखपूर्वक निर्वाह होते हुए भी ग्रामान्तर की चेष्टा करे। कहा है कि—दरिद्री, रोगी, मूर्ख, प्रवासी—प्रदेशमें जा रहने वाला और सदैवका नौकर इन पाँचोंको जीते हुए भी मृतक समान गिना जाता है।

कदाचित अपने देशमें निर्वाह न होनेसे परदेशमें व्यापार करनेकी आवश्यकता पड़े तथापि वहां स्वयं या अपने पुत्रादि को न भेजे परन्तु किसी परीक्षा किये हुये विश्वासपात्र नौकरको भेज कर व्यापार करावे और यदि वहां पर स्वयं गये विना न चल सके तो स्वयं जाय परन्तु शुभ शकुन मुहूर्त शकुन निमित्त, देव, गुरु, वन्दनादिक मंगल कृत्य करने आदि विधिसे तथा अन्य किसी वैसे ही भाग्यशाली के समुदाय को या

कितने एक अपने जातीय सुपरिचित सज्जनोंके परिवार के साथ निद्रादिक प्रमाद रहित हो कर बड़े प्रयत्नसे जाय और वहाँ वैसी ही सावधानी से व्यापार करे। क्योंकि समुदाय के बीच यदि एक भी भाग्यशाली हो तो उसके भाग्य बलसे दूसरे भी मनुष्यो के विघ्न टल सकते हैं। बहुत दफा ऐसे बनाव बनते हुए भी नजर आते हैं।

"भाग्यशाली के प्रभावका दृष्टान्त"

कहीं पर इक्कीस पुरुष मिल कर चातुर्मास के दिनोंमें एक गांवसे दूसरे गांव जा रहे थे। रास्तेमें बरसाद पड़नेके कारण और रात्रि हो जानेसे वे सबके सब एक महादेव के पुराने मन्दिरमें ठहर गये। उस समय उस मन्दिरके दरवाजे के आगे बिजली आ आ कर पीछे चली जाती है; तब सबके सब भयभीत हो कर विचारने लगे कि, सचमुच ही हममे कोई एक जना अभागी है, इसी कारण यह बिजली उस पर पडने आती है। परन्तु हममें के अन्य भाग्यशाली के प्रभाव से यह बिजली वापिस चली जाती है। इस वक्त यह विघ्न हम सब पर आ पड़ा है। यदि इसे हम दूर न करें तो उस अभागी के कारण हम सबको कष्ट सहन करने पड़ेंगे, इसलिए हममें से एक एक जना बाहर निकल कर इस मन्दिरकी प्रदक्षिणा दे आवे जिससे वह अभागी कौन है इस बातकी मालूम पड़ जाय। सबकी एक राय होने पर उनमे से एक एक जना उठ कर मन्दिरकी प्रदक्षिणा दे कर आने लगा। इस प्रकार एक एक करके इक्कीसमें से जब बीस जने बाहर निकल कर प्रदक्षिणा दे आए तब इक्कीसवां मनुष्य बड़ी शीघ्रता से प्रदक्षिणा दे कर वापिस आने लगा उस वक्त एकदम मन्दिर पर बिजली पड़नेसे वे सबके सब जल मरे परन्तु वह इक्कीसवां भाग्यशाली जीवित रहा। इसलिए परदेश जाते हुए सज्जन समुदाय का साथ करना योग्य है।

परदेश गए बाद भी आय, व्यय, लेना, देना, बारंबार अपने पुत्र, पिता, माता, भाई, मित्र, वगैरह को विदित करते रहना। तथा अस्वस्थ होनेके समय याने बीमारीके समय उन्हें अवश्य ही प्रथमसे समाचार देना चाहिए। यदि ऐसा न करे तो दैवयोग अकस्मात् आयुष्य क्षय होनेके कारण यदि मृत्यु हो जाय तो संपदा होने पर भी माता, पिता, पुत्रादिक के वियोगमें आना मुश्किल होनेसे व्यर्थ ही उन्हें दुखिया बनानेका प्रसंग आ जाय। जब प्रस्थान करना हो तब भी सबको यथायोग्य शिक्षा और सार सम्हालकी सूचना दे कर तथा सबको प्रेम और बहुमान से बुला कर संतुष्ट करके ही गमन करना। इसलिए कहा है कि, "मानने योग्य देव, गुरु, माता, पिता, प्रमुखका अपमान करके, अपनी स्त्रीका तिरस्कार करके, या किसीको मार पीट कर या बालक वगैर को रुला कर, जीनेकी वांछा रखने वालेको परदेश या पर ग्राम कदापि न जाना चाहिये।

तथा पासमें आये हुए किसी भी पर्व या महोत्सव को करके ही परदेश या परगांव जाना चाहिये। कहा है कि उत्सव, महोत्सव या तयार हुए सुन्दर भोजनको छोड़ कर, तथा सर्व प्रकारके उत्तम मांगलिक कार्यकी उपेक्षा करके, जन्मका या मृतकका सूतक हो तो उसे उतारे विना (अपनी स्त्रीको ऋतु आये उस वक्त)

किसी भी मनुष्यको परदेश गमन करना उचित नहीं। ऐसे ही अन्य भी कितने एक कारणों का शास्त्रके अनुसार यथोचित विचार करना चाहिए।

"कितने एक नैतिक विचार"

दूध पी कर, मैथुन सेवन करके, स्नान करके, स्त्रीको मार पीट कर, वमन करके, थूंक कर, और किसीका भी रुदन वगैरह कठोर शब्द सुन कर प्रयाण न करना।

मुंडन करा कर, आंखोंसे आंसू टपका कर, और अपशकुन होनेसे दूसरे गांव न जाना चाहिये।

किसी भी कार्यके लिए जानेका विचार करके उठते समय जो नासिका चलती हो प्रथम वही पैर रख कर जाय तो मनवांछित सिद्धिकी प्राप्ति होती है।

रोगी, वृद्ध, विप्र, अन्ध, गाय, पूज्य, राजा गर्भवती, भार उठाने वाला, इतनोंको मार्ग दे कर, एक तरफ चलना चाहिये।

रंधा हुवा या कच्चा धान्य, पूजाके योग्य वस्तु, मंत्रका मण्डल, इतने पदार्थ जहां तहां न डाल देना। स्नान किए हुए पानीको, रुधिरको और मुर्देको उल्लंघन न करना।

थूकको, श्लेष्मको, विष्ठाको, पिशाबको, सुलगते अग्निको, सर्पको, मनुष्यको और शास्त्रको, बुद्धिमान् पुरुषको चाहिए कि कदापि उल्लंघन न करे।

नदीके इस किनारेसे, गाय बांधनेके बाड़ेसे, दूध वाले वृक्षसे, (वड़ वगैरह से), जलाशय से, बाग बगीचेसे, और कुवा वगैरह से सगे सम्बन्धीको आगे पहुंचा कर पीछे लौटना।

अपना श्रेय इच्छने वाले मनुष्यको रात्रिके समय वृक्षके मूल आगे या वृक्षके नीचे निवास न करना। उत्सव या सूतक पूर्ण हुए विना कहीं भी न जाना।

किसीके साथ विना, अनजान मनुष्यके साथ, उलंठ, दुष्ट या नीचके साथ, मध्यान समय और आधी रात पंडित पुरुषको राह न चलना चाहिये।

क्रोधी, लोभी, अभिमानी या हठीलेके साथ, चुगली करने वालेके साथ, राजाके सिपाही, जमादार या थानेदार, जैसे किसी सरकारी आदमीके साथ, धोबी, दरजी वगैरह के साथ, दुष्ट, खल, लंपट, गुंडे मनुष्यके साथ, विश्वासघाती या जिसके मित्र छलछंदी हों ऐसेके साथ विना अवसर बात या गमन कदापि न करना। महीष, भैंसा, गधा, गाय, इन चारों पर चाहे जितना थक गया हो तथापि अपना भला इच्छने वालेको कदापि सवारी न करना चाहिये।

हाथीसे हजार हाथ, गाड़ीसे पांच हाथ, सींग वाले पशुओंसे और घोड़ेसे दस हाथ दूर रहकर चलना चाहिये। नजीकमें चलनेसे कदाचित् विघ्न होनेका सम्भव है।

शंबल विना मार्ग न चलना चाहिये, जहां वास किया हो वहां पर अति निद्रा न लेना, सोये बाद भी बुद्धिमान पुरुषको किसीका विश्वास न करना चाहिये।

यदि सौ काम हों तथापि अकेला ग्रामान्तर न जाना चाहिये।

किसी भी इकले मनुष्यके घर अकेला न जाना एवं घरके पिछले रास्तेसे भी किसीके घर न जाना चाहिये।

पुरानी नांवमें न बैठना चाहिये, नदीमें अकेला प्रवेश न करना चाहिये, किसी भी बुद्धिमान पुरुषको अपने सगे भाईके साथ उजाड़ मार्गके रास्तेमें अकेला न चलना चाहिये।

जिसका बड़े कष्टसे पार पाया जाय ऐसे जलके और स्थलके मार्गको एवं विकट अटवीको, गहरापन मालुम हुए विना पानीको, जहाज, गाड़ी, बांस या लंबी लाठी विना उल्लंघन न करना चाहिये।

जिसमें बहुतसे क्रोधी हों, जिसमें विशेष सुखकी इच्छा रखने वाले हों, जिसमें अधिक लोभी हों, उस साथी-समूहको स्वार्थ बिगाड़ने वाला समझना।

जिसमें सभी आगेवानी भोगते हों, जिसमें सभी पांडित्य रखते हों, जिसमें सभी एक समान बड़ाई प्राप्त करनी चाहते हों, वह समुदाय कदापि सुख नहीं पाता।

मरनेके स्थान पर, बांधनेके स्थान पर, जुवा खेलनेके स्थान पर, भय, या पीड़ाके स्थान पर, भंडारके स्थान पर, और स्त्रियोंके रहनेके स्थान पर, न जाना। (मालिककी आज्ञा विना न जाना)।

मनको न रुचे ऐसे स्थान पर, श्मशानमें, सूने स्थानमें, चौराहेमें, जहां पर सूखा घास, या पुराली वगैरह पड़ी हो, वैसे स्थानमें नीचा या टेढी जगहमें, कूड़ी पर, ऊखर जमीनमें, किसी वृक्षके धड़ नीचे पर्वतके समीप, नदीके या कुवेके किनारे, राखके ढेर पर, मस्तकके बाल पड़े हों वहाँ पर, ठीकरों पर, या कोयलों पर, बुद्धिवान् पुरुषको इन पूर्वोक्त स्थानोंपर न बसना और न बैठना चाहिये।

जिस अवसर सम्बन्धी जो जो कृत्य हैं वे उसी अवसर पर करने योग्य हैं, चाहे जितना परिश्रम लगा हो तथापि वह अवसर न चूकना चाहिये। क्योंकि जो मनुष्य मेहनतसे डरता है वह अपने पराक्रम का फल प्राप्त नहीं कर सकता, इस लिये अवसर को न चूकना चाहिये।

प्रायः मनुष्य विना आडम्बर शोभा नहीं पा सकता, इसी लिये विशेषतः किसी भी स्थान पर बुद्धिमान पुरुषको आडम्बर न छोड़ना चाहिये।

परदेशमें विशेषतया अपने योग्य आडम्बर रखना चाहिये, और अपने धर्ममें चुस्त रहना चाहिये, इससे जहां जाय वहाँ आदर बहुमान पूर्वक इच्छित कार्यकी सिद्धि होनेका संभव होता है। परदेशमें यद्यपि विशेष लाभ होता है तथापि विशेष काल पर्यन्त न रहना चाहिये, क्योंकि यदि परदेशमें ही विशेष काल रहा जाय तो पीछे अपने घरकी अव्यवस्था हो जानेसे फिर कितनी एक मुसीबतें भोगनी पड़नेके दोषका सम्भव होता है। परदेशमें जो कुछ लेना या बेचना हो वह काष्ठ शेठके समान समुदाय से मिलकर ही करना उचित है। उसी कार्यमें लाभकी प्राप्ति होनेके और किसी भी प्रकारकी हरकत न आने देनेके लिये बेचना या वैसे प्रसंगमें पंच परमेष्ठी का श्री गौतम स्वामीका, स्थूल भद्रका, अभयकुमार का, और कैवन्ना प्रमुखका नाम स्मरण करके उसी व्यापारके लाभमें से कितना एक द्रव्य देव, गुरु, धर्म, सम्बन्धी, कार्यमें खरचनेकी धारना करके प्रवृत्ति करना कि जिससे सर्व प्रकारकी सिद्धि होनेमें कुछ भी मुसीबत न भोगनी पड़े।

धर्मकी मुख्यता रखनेसे ही सर्व प्रकारकी सिद्धिका सम्भव होनेके कारण, द्रव्य उपार्जन करके उद्यम करते समय भी यदि इसमेंसे अधिक लाभ होगा तो इतना द्रव्य सात क्षेत्रमेंसे अमुक अमुक खर्चनेकी आवश्यकता वाले अत्रोंमें खर्चूंगा। ऐसा मनोरथ करते रहना चाहिये कि जिससे समय २ पर महा फलकी प्राप्ति हुये बिना नहीं रहती। उच्च मनोरथ करना यह भाग्यशाली को ही बन सकता है, इसलिये शास्त्र कारोंने कहा है कि, चतुर पुरुषोंको सदैव ऊंचे ही मनोरथ करते रहना चाहिये, क्योंकि, कर्मराज उसके मनोरथके अनुसार उद्यम करता है।

स्त्री सेवनका, द्रव्य प्राप्त करनेका और यश प्राप्तिका किया हुवा उधम कदाचित् निष्फल हो जाय परन्तु धर्म कार्य सम्बन्धी किया हुवा संकल्प कभी निष्फल नहीं जाता।

इच्छानुसार लाभ हुये बाद निर्धारित मनोरथ पूर्ण करने चाहिये। कहा है कि, व्यापारका फल द्रव्य कमाना, द्रव्य कमानेका फल सुपात्रमें नियोजित करना है। यदि सुपात्रमें न खर्च करे तो व्यापार और द्रव्य दोनों ही दुःखके कारण बन जाते हैं।

यदि संपदा प्राप्त किये बाद धर्म सेवन करे तो ही वह धर्मऋद्धि गिनी जाती है और यदि वैसा न करे तो वह पाप ऋद्धि मानी जाती है। इसलिये शास्त्रमें कहा है कि—धर्म रिद्धि, भोग रिद्धि, और पाप रिद्धि, ये तीन, प्रकारकी ऋद्धियां श्री वीतरागने कथन की हैं। जो धर्म कार्यमें खर्च किया जा सके वह धर्म ऋद्धि, जिसका शरीरके सम्बन्धमें उपभोग होता हो वह भोग ऋद्धि। दान, धर्म, या भोगसे जो रहित हो याने जो उपरोक्त दोनों कार्योंमें न खर्चा जाय वह पाप ऋद्धि कहलाती है और वह अनर्थ फल देने वाली याने नीच गतिके देने वाली कही है। पूर्व भवमें जो पाप किये हों उसके कारण पाप ऋद्धि प्राप्त होती है या आगामी भवमें जो दुःख भोगना हो उसके प्रभावसे भी पाप ऋद्धि प्राप्त की जा सकती है। इस बातको पुष्ट करनेके लिए निम्न दृष्टान्त दिया जाता है।

"पाप रिद्धि पर दृष्टान्त"

वसन्तपुर नगरमें क्षत्रिय, विप्र, वणिक, और सुनार ये चार जने मित्र थे। वे कहीं द्रव्य कमानेके लिए परदेश निकले। मार्गमें रात्रि हो जानेसे वे एक जगह जंगलमें ही सो गये। वहां पर एक वृक्षकी शाखामें लटकता हुवा, उन्हें सुवर्ण पुरुष देखनेमें आया। (यह सुवर्ण पुरुष पापिष्ट पुरुषको पाप रिद्धि बन जाता है और धर्मिष्ठ पुरुषको धर्म ऋद्धि हो जाता हैं) उन चारोंमेंसे एक जनेने पूछा क्या तू अर्थ है? सुवर्ण पुरुषने कहा "हां! मैं अर्थ हूं। परन्तु अनर्थ कारी हूं।" यह वचन सुनकर दूसरे भय भीत होगये, परन्तु सुनार बोला कि यद्यपि अनर्थ कारी है तथापि अर्थ—द्रव्य तो है न! इसलिये जरा मुझसे दूर पड़। ऐसा कहते ही सुवर्ण पुरुष एकदम नीचे गिर पड़ा। सुनारने उठकर उस सुवर्ण पुरुषकी अंगुलियाँ काट लीं और उसे वहां ही जमीनमें गढा खोदकर उसमें दबाकर कहने लगा कि, इस सुवर्ण पुरुषसे अतुल द्रव्य प्राप्त किया जा सकता है, इस लिए यह किसीको न बतलाना। बस इतना कहते ही पहले तीन जनोंके मनमें आशांकुर फूटे।

सुबह होनेके बाद चारोंमेंसे एक दो जनेको पासमें रहे हुये गांवमेसे खान पान लेनेके लिये भेजा। और दो जने वहां ही बैठे रहे। गांवमें गये हुवोंने विचार किया कि, यदि उन दोनोंको जहर देकर मार डालें तो वह सुवर्ण पुरुष हम दोनोंको ही मिल जाय। यदि ऐसा न करें तो चारोंका हिस्सा होनेसे हमारे हिस्सेका चतुर्थ भाग आयगा। इसलिये हम दोनों मिल कर यदि भोजनमें जहर मिला कर ले जांय तो ठीक हो। यह विचार करके वे उन दोनोंके भोजनमें विष मिलाकर ले आये। इधर वहां पर रहे हुए उन दोनोंने विचार किया कि हमें जो यह अतुल धन प्राप्त हुवा है यदि इसके चार हिस्से होंगे तो हमें बिलकुल थोड़ा थोड़ा ही मिलेगा, इस लिये जो दो जने गांवमें गये हैं उन्हें आते ही मार डाला जाय तो सुवर्ण पुरुष हम दोनोंको ही मिले। इस विचारको निश्चय करके बैठे थे इतनेमें ही गांवमें गये हुए दोनों जने उनका भोजन ले कर वापिस आये तब शीघ्र ही वहां दोनों रहे हुये मित्रोंने उन्हें शस्त्र द्वारा जानसे मार डाला। फिर उनका लाया हुवा भोजन खानेसे वे दोनों भी मृत्युको प्राप्त हुये। इस प्रकार पाप ऋद्धिके आनेसे पाप बुद्धि ही उत्पन्न होती है अतः पाप बुद्धि उत्पन्न न होने देकर धर्म ऋद्धि ही कर रखना, जिससे वह सुख दायक और अविनाशी होती है।

उपरोक्त कारणके लिए ही जो द्रव्य उपार्जन हुवा हो उसमें से प्रतिदिन, देव पूजा, अन्न दानादिक, एवं संघ पूजा, स्वामी वात्सल्यादिक समयोचित धर्म कृत्य करके अपनी रिद्धि पुण्योपयोगिनी करना।

यद्यपि समयोचित पुण्य कार्य (स्वामी वात्सल्यादिक) विशेष द्रव्य खर्चनेसे बड़े कृत्य गिने जाते हैं, और प्रतिदिन के धर्म कृत्य थोड़ा खर्च करनेसे हो सकनेके कारण लघु कृत्य गिने जाते हैं, तथापि प्रतिदिनके पुण्य कार्य पूजा प्रभावनादि करते रहनेसे अधिक पुण्य कर्म हो सकता है। तथा प्रतिदिन के लघु पुण्य कर्म करने पूर्वक ही समयोचित बड़े पुण्य कर्म करने उचित गिने जाते हैं।

इस वक्त धन कम है परन्तु जब अधिक धन होगा तब पुण्य कर्म करूंगा इस विचारसे पुण्य कर्म करनेमें विलम्ब करना योग्य नहीं। जितनी शक्ति हो उतने प्रमाण वाली पुण्य करणी करलेना योग्य है। इसलिये कहा है कि—थोड़ेमें से थोड़ा भी दानादिक धर्म करणीमें खर्च करना, परन्तु बहुत धन होगा तब खर्च करूंगा ऐसे महोदय की अपेक्षा न रखना। क्योंकि इच्छाके अनुसार शक्ति धनकी वृद्धि न जाने कब होगी या न होगी।

जो आगामी कल पर करने का निर्धारित हो वह आज ही कर, जो पीछले प्रहर करनेका निर्धारित हो सो पहले ही प्रहर में कर! क्योंकि यदि इतने समयमें मृत्यु आगया तो वह जरा देर भी विलम्ब न करेगा।

"द्रव्य उपार्जनके लिए निरन्तर उद्यम"

द्रव्योपार्जन करनेमें भी उचित उद्यम निरन्तर करते रहना चाहिये। कहा है कि व्यापारी, वेश्या, कवि, भाट, चोर, जुएबाज, विप्र, ये इतने जने जिस दिन कुछ लाभ न हो उस दिनको व्यर्थ समझते हैं।

तथा थोड़ीसी संपदा प्राप्त करके फिर कमानेके उद्यमसे बैठ न रहना, इस लिये माघ काव्यमें कहा है कि जो पुरुष थोड़ी संपदा पाकर अपने आपको कृतकृत्य हुवा मान बैठता है उसे मैं मानता हूं कि विधि भी विशेष लक्ष्मी नहीं देता।

"अति तृष्णा या लोभ न करना"

अति तृष्णा भी न करना चाहिये इस लिये लौकिकमें भी कहा है कि अति लोभ न करना एवं लोभको सर्वथा त्याग भी न देना। जैसे कि अति लोभमें मूर्छित हुये चित्त वाला सागरदत्त नामक शेठ समुद्रमें पड़ा (यह दृष्टान्त गौतम कुलककी वृत्तिमें बतलाया हुवा है)

लोभ या तृष्णा विशेष रखनेसे किसीको कुछ अधिक नहीं मिल सकता। जैसे कि इच्छा रखनेसे वैसा भोजन वस्त्रादिक सुख पूर्वक निर्वाह हो उतना कदापि मिल सकता है; परन्तु यदि रंक पुरुष चक्रवर्ती की ऋद्धि प्राप्त करनेकी अभिलाषा करे तो क्या उसे वह मिल सकती है? इस लिये कहा जाता है कि,—अपनी मर्जी मुजब फल प्राप्त करनेकी इच्छा रखने वालेको अपने योग्य ही अभिलाषा करनी उचित है। क्यों कि लोकमें भी जो जितना मांगता है उसे उतना ही मिलता है, परन्तु अधिक नहीं मिलता। अथवा जिसका जितना लेना हो उतना मिलता है, परन्तु तदुपरान्त नहीं मिलता।

उपरोक्त न्यायके अनुसार अपने भाग्यके प्रमाणमें ही इच्छा करनी योग्य है, उससे अधिक इच्छा करनेसे वह पूरी न होनेसे चिन्ताके कारण अत्यन्त दुःसह्य दुःख पैदा होनेका सम्भव है।

एक करोड़ रुपये पैदा करनेके लिये सैकड़ों दफा लाखों दुःसह्य दुःखोंसे उत्पन्न हुई अति चिन्ताके भोगनेवाले निन्यानवे लाख रुपयोंके अधिपति धनावह शेठके समान अपने भाग्यमें यदि अधिक न हो तो कदापि न मिले। इसलिये ऐसी अत्यन्त आशा रखना दुःखदायी है। अतः शास्त्रमें लिखा है कि—मनुष्यको ज्यों ज्यों मनमें धारण किये हुए द्रव्यकी प्राप्ति होती है त्यों त्यों उसका मन विशेष दुःख युक्त होता जाता है। जो मनुष्य आशाका दास बना वह तीन भुवनका दास बन चुका और जिसने आशाको ही अपनी दासी बना लिया तीन भुवनके लोग उसके दास बन कर रहते हैं।

"धर्म, अर्थ, और काम"

गृहस्थको अन्योन्य अप्रतिबन्धतया तीन वर्गकी साधना करनी चाहिये। इसलिये कहा है कि धर्मवर्ग—धर्मसेवन, अर्थवर्ग—व्यापार, कामवर्ग—सांसारिक भोगविलास, ये तीन पुरुषार्थ कहलाते हैं। इन तीनों वर्गोंको यथावसर सेवन करना चाहिये। सो बतलाते हैं—

उपरोक्त तीन वर्गोंमें से धर्मवर्ग और अर्थवर्ग इन दोनोंको दूर रख कर एकले कामवर्ग का सेवन करने वाले तन्मय बन कर विषय सुखमें ललचाये हुए मदोन्मत्त जंगली हाथीके समान कौन मनुष्य आपत्तियों के स्थानको प्राप्त नहीं करता? जिसे काममें—स्त्री सेवनमें अत्यन्त ललचानेकी तृष्णा होती है

उसे धन, धर्म और शरीर सम्बन्धी भी सुख कहांसे प्राप्त हो ? तथा जिसे धर्मवर्ग और कामवर्ग इन दोनोंको किनारे रखकर अकेले अर्थवर्ग—धन कमाई पर अत्यन्त आतुरता होती है उसके धनके भोगनेवाले दूसरे ही लोग होते हैं। जैसे कि सिंह स्वयं मदोन्मत्त हाथीको मारता है परन्तु उसमें वह स्वयं तो हाथीको मारने के पापका ही हिस्सेदार होता है, मांसका उपभोग लेने वाले अन्य ही शृगाल—गीदड़ आदि पशु होते हैं; वैसे ही केवल धन उपार्जन करनेमें गुलथाये हुयेके धन सम्बन्धी सुखके उपभोग लेने वाले पुत्र पौत्रादिक या राजकीय मनुष्य वगैरह अन्य ही होते हैं और वह स्वयं तो केवल पापका ही हिस्सेदार बनता है। अर्थवर्ग और कामवर्ग इन दोनोंको किनारे रख कर एकले धर्मवर्गका सेवन करना यह मात्र साधु सन्तका ही व्यवहार है, परन्तु गृहस्थका व्यवहार नहीं। तथा धर्मवर्ग छोड़ कर एकले अर्थवर्ग और कामवर्ग का भी सेवन करना उचित नहीं। क्योंकि दूसरेका खा जाने वाले जाटके समान अधर्मीको आगामी भवमें कुछ भी सुखकी प्राप्ति होने वाली नहीं। इसलिये सोमनीति में कहा है कि, सचमुच सुखी वही है कि जो आगामी जन्ममें भी सुख प्राप्त करता है। इसलिए संसार भोगते हुए भी धर्मको न छोड़ना चाहिए। एवं अर्थवर्ग को दूर करके मात्र धर्मवर्ग और कामवर्ग सेवन करनेसे सिर पर कर्ज हो जानेके कारण सुखमें और धर्ममें त्रुटि आये विना नहीं रहती। कामवर्ग को छोड़ कर यदि अर्थवर्ग और धर्मवर्ग का ही सेवन किया करे तो वह गृहस्थके— सांसारिक सुखोंसे वंचित रहता है।

तथा तादात्विक—खाय मगर कमाये नहीं। मूलहर—मा बापका कमाया हुवा खा जाय। कदर्य—खाय भी नहीं और खर्चे भी नहीं, ऐसे तीन जनोंमें धर्म, अर्थ, और कामका अरस परस विरोध स्वाभाविक ही हो जाता है। जो मनुष्य नवीन धन कमाये बिना ज्यों त्यों खर्च किये जाता है उसे तादात्विक समझना। जो मनुष्य अपने माता, पिता, वगैरहका संचय किया हुवा धन, अन्याय की रीतिसे खर्च कर खाली हो जाता है उसे मूलहर समझना। और जो मनुष्य अपने नौकरों तकको भी दुःख देता है और स्वयं भी अनेक प्रकारके दुःख सहन करके द्रव्य होने पर भी किसी कार्यमें नहीं खरचता उसे कदर्य समझना चाहिये। तादात्विक और मूलहर इन दोनोंमें द्रव्य और धर्मका नाश होनेसे उनका किसी भी प्रकार कल्याण नहीं हो सकता (उन दोनोंका धन धर्म कार्यमें काम नहीं आता) और जो कदर्य, लोभी है उसके धनका संग्रह राज्यमें, उसके पीछे सगे सम्बन्धी गोत्रियोंमें, जमीनमें या चोर प्रमुखमें रहनेका सम्भव है। परन्तु उसका धन धर्मवर्ग या काम-वर्ग सेवन करनेमें उपयोगी नहीं होता। कहा है कि जिसे गोत्रीय ताक कर चाहते हैं, चोर लूट लेते हैं, किसी समय दाव आ जानेसे राजा ले लेता है, जरा सी देरमें अग्नि भस्म कर डालती है, पानी बहा लेता है, धरतीमें निधान रूपसे दबाया हो तो हटसे अधिष्ठायक हर लेते हैं, दुराचारी पुत्र उड़ा देता है ऐसे द्रव्यको धिक्कार हो। शरीरका रक्षण करने वालेको मृत्यु, धनका रक्षण करने वालेको पृथ्वी, यह मेरा पुत्र है, इस धारनासे पुत्र पर अति मोह रखने वालेको दुराचारिणी स्त्री हंसती हैं। चींटियोंका संचय किया हुवा धान्य, मक्खियो का संचय किया हुवा शहत -मधु और कृपणकी उपार्जन की हुई लक्ष्मी, ये दूसरोंके ही उपयोग मे आते हैं परन्तु उनके उपयोग में नहीं आते। इसी लिए तीन वर्गमें परस्पर विरोध न आने दे कर ही उन्हें प्राप्त करना गृहस्थोंको योग्य है।

किसी समय कर्मवशात् ऐसा ही बन जाय तथापि आगे आगेके विरोध होते हुए पूर्व पूर्वकी रक्षा करना। कामकी बाधासे धर्म और अर्थकी रक्षा करना, क्योंकि धर्म और अर्थ हों तो काम सुख पूर्वक सेवन किया जा सकता है। काम और अर्थ इन दोनोंकी बाधासे धर्मका रक्षण करना, क्योंकि काम और अर्थ इन दोनों वर्गका मूल धर्म ही है। इसलिये कहा है कि एक फूटे हुए मिट्टीके ठीकरेसे भी यदि यह मान लिया जाय कि मैं श्रीमंत हूं तो भी मनको समझाया जा सकता है। इसलिए यदि धर्म हो तो काम और अर्थ विना चल सकता है। तीन वर्गके साधन विना मनुष्यका आयुष्य पशुके समान निष्फल है, उसमें भी धर्मको इस लिए अधिक गिना है कि उसके विना अर्थ और काम मिल नहीं सकते।

"आयके विभाग"

जैसी आय हो तदनुसार ही खर्च करना चाहिये। नीतिशास्त्र में कहा है कि:—

पादमायान्निधि कुर्या। त्पादं वित्ताय कल्पयेत्॥ धर्मोपयोगयोः पादं। पादं भर्त्तव्यपोषणे॥

जो आय हुई हो उसमें से पाव भागका संग्रह करे, पाव भाग नये व्यापार मे दे, पाव भाग धर्म और शरीर सुखके लिये खर्चे और पाव भागमेंसे दास, दासी, नौकर, चाकर, सगे सम्बन्धी, दीन, हीन, दुःखित जनोंका भरण पोषण करनेमें खर्चे। इस प्रकार आयके चार भाग करने चाहिये। कितनेक आचार्य लिखते हैं कि:—

आयादर्धं नियुंजीत। धर्मे समधिकं ततः॥
शेषेण शेषं कुर्वीत। यत्नतस्तुच्छमैहिकं॥

आयमें से आधेसे भी कुछ अधिक द्रव्य धर्ममें खरचना, और बाकीका द्रव्य इस लोकके कृत्य, सुख तुच्छ मान कर उनमें खर्चना। निर्द्रव्य और सद्रव्य वालोंके लिये ही उपरोक्त विवेक बतलाया है ऐसा कितनेक आचार्योंका मत है। याने "पादमायान्निधि कुर्यात्" इस श्लोकका भावार्थ निर्द्रव्यके लिये है। और "आयादर्द्ध" इस श्लोकका भावार्थ सद्रव्यके लिये है। इस प्रकार इस विषयमे तीन संमत हैं।

जीअं कस्स न इट्ठं। कस्य लच्छी न वल्लहा होइ॥
अवसर पत्ताइं पुणो। दुन्निवि तणयाओ लहुअंति॥

जीवन किसे इष्ट नहीं है? सभीको इष्ट है। लक्ष्मी किसे प्यारी नहीं है? सबको प्रिय है, परन्तु कोई ऐसा समय भी आ उपस्थित होता है कि उस समय जीवन और लक्ष्मी ये दोनों एक तृणसे भी अधिक हलकी माननी पड़ती हैं। दूसरे ग्रन्थोंमे भी कहा है कि—

यशस्करे कर्मणि मित्रसंग्रहे। प्रियासु नारीष्व धनेषु बन्धुषु॥
धर्मे विवाहे व्यसने रिपुक्षये। धनंव्ययोऽष्टासु न गण्यते बुधैः॥

यश कीर्तिके काममें, मित्रके कार्यमें, प्यारी स्त्रीमें, निर्धन बने हुए अपने बन्धु जनोंके कार्यमें, धर्मकार्यमें, विवाहमें, अपने पर पड़े हुए कष्टको दूर करनेके कार्यमे, और शत्रुओंको पराजित करनेके कार्यमें एवं इन आठ कार्योंमें बुद्धिवन्त मनुष्य धनकी पर्वा नहीं करता।

यः काकणीमप्यपथप्रपन्ना। मन्वेषते निष्कसहस्रतुल्यां ॥
काले च कोटिष्वपि मुक्तहस्त। स्तस्यानुबन्धं न जहाति लक्ष्मीः ॥

जो पुरुष बिना प्रयोजनके कार्यमें एक कवड़ी भी खर्च होती हुई एक हजार रुपयोंके बराबर समझता है, (यदि एक कवड़ी निकम्मी खर्च हो गई हो तो हजार रुपयेके नुकसान समान मानता है) और वैसा ही यदि कोई आवश्यक प्रयोजन पड़ने से एक करोड़का खर्च होता हो तथापि उसमें हाथ लंबा करता है, ऐसे पुरुषका लक्ष्मी सम्बन्ध नहीं छोड़ती।

"लोभ और विवेककी परीक्षा करने पर नवी वहूका दृष्टान्त"

किसी एक बड़े व्यापारीके लड़केकी वहू नयी ही ससुराल में आयी थी उसने एक दिन अपने ससूरको दियेमेंसे पडते हुये तेलका बिन्दू लेकर अपने जूतेको चुपडते देखा, इससे उसने विचार किया कि ससुरेजी की परीक्षा करनी चाहिये कि इन्होंने दियेमेंसे टपकते हुये तेलका बिन्दु लोभसे जूतेको चुपड़ा है या विवेकसे? यह बात मनमें रखकर एक समय वह ऐसा ढोंग कर बैठी जिससे सारे घरमें हलचली मच गई। वह चिल्ला-उठी और बोली "अरे मेरा मस्तक फटा जाता है। न जाने क्या होगया! मस्तक पीड़ासे मैं मरी जाती हूं।" ससुर, सासू, वगैरह घरके मनुष्योंने बहुत ही उपाय किये परन्तु फायदा न हुवा! फिर वह बोली मेरे पिताके घर भी यह मस्तक पीड़ा बहुत दफे हुवा करती थी परन्तु उस समय मेरे पिताजी सच्चे मोतियोंका चूर्ण बना कर मेरे मस्तक पर चुपड़ते तो आराम आ जाता था। यह सुन कर ससुरा बोला—हां पहलेसे ही क्यों न कहा था? यह तो घरकी ही दवा है अपने घरमें सच्चे मोती बहुत ही हैं मैं अभी चूर्ण कर डालता हूं। यों कहकर वह तत्काल उठकर बहुतसे सच्चे मोती निकाल खरलमें डालकर उन्हें पीसनेका उपक्रम करने लगा। तब शीघ्र ही नई वहू बोल उठी कि, बस बस रहने दो! अब तो इस वक्त मेरा मस्तक शान्त हो गया इसलिये मोती पीसनेकी जरूरत नही। मुझे तो सिर्फ आपकी परीक्षा ही करनी थी इसलिये विवेक रखकर लक्ष्मीका उपयोग करना योग्य है। धर्म कार्यमें लक्ष्मीका व्यय करना यह तो सचमुच ही लक्ष्मीका वशीकरण है। क्योंकि इसीसे लक्ष्मी स्थिर होकर रहती है इसलिये शास्त्रमें कहा है—

मा मंस्थ क्षीयते वित्तं, दीयमानं कदाचन।
कूपाराम गवादीना, ददतामेव संपदः ॥

दान मार्गमें देनेसे वित्तका क्षय होता है, ऐसा कदापि न समझना, क्योंकि कुवे, बाग, बगीचे, गाय, वगैरह को ज्यों दो त्यों उससे संपदा प्राप्त की जा सकती है।

"धर्म करते अतुल धनप्राप्ति पर विद्यापति का दृष्टान्त"

एक विद्यापति नामक महा धनाढ्य शेठ था। उसे एक दिन स्वप्नमें आकर लक्ष्मीने कहा कि मैं आजसे दसवें दिन तुम्हारे घरसे चली जाऊंगी। इस बारेमें उसने प्रातःकाल उठ कर अपनी स्त्रीसे सलाह की

तब उसकी स्त्रीने कहा कि यदि वह अवश्य ही जानेवाली है तो फिर अपने हाथसे ही उसे धर्ममार्ग में क्यों न खर्च डालें ? कि जिससे हम आगामी भवमें तो सुखी हों। शेठके दिलमें भी यह बात बैठ गई इसलिये पति पत्नीने एक विचार हो कर सचमुच एक ही दिनमें अपना तमाम धन सातों क्षेत्रोंमें खर्च डाला। शेठ और शेठानी अपना घर धन रहित करके मानो त्यागी ही न बन बैठे हों इस प्रकार होकर परिग्रहका परिणाम करके अधिक रखनेका त्याग कर एक सामान्य बिछौने पर सुख पूर्वक सो रहे। जब प्रातःकाल सोकर उठे तब देखते हैं तो जितना घरमें प्रथम धन था उतना ही भरा नजर आया। दोनों जने आश्चर्य चकित हुये परन्तु परिग्रह का त्याग किया होनेसे उसमेंसे कुछ भी परिग्रह उपयोग में न लेते। जो मिट्टीके वर्तन पहलेसे ही रख छोड़े थे उन्हींमें सामान्य भोजन बना खाते हैं। वे तो किसी त्यागीके समान किसी चीजको स्पर्श तक भी नहीं करते अब उन्होंने विचार किया कि हमने परिग्रह का जो त्याग किया है सो अपने निजी अंग भोगमें खर्चनेके उपयोग में लेनेका त्याग किया है परन्तु धर्म मार्गमें खर्चनेका त्याग नहीं किया। इसलिये हमें इस धनको धर्म मार्गमें खर्चना योग्य है। इस विचारसे दूसरे दिन दुपहर से सातों क्षेत्रोंमें धन खर्चना शुरू किया। दीन, हीन, दुःखी, श्रावकों को तो निहाल ही कर दिया। अब रात्रिको सुख पूर्वक सो गये। फिर भी सुबह देखते हैं तो उतना ही धन घरमें भरा हुवा है जितना कि पहले था। इससे दूसरे दिन भी उन्होंने वैसा ही किया, परन्तु अगले दिन उतना ही धन घरमें आ जाता है। इस प्रकार जब दस रोज तक ऐसा ही क्रम चालू रहा तब दसवीं रात्रिको लक्ष्मी आकर शेठसे कहने लगी कि, वाहरे भाग्यशाली! यह तूने क्या किया ! जब मैंने अपने जानेकी तुझे प्रथमसे सूचना दी तब तूने मुझे सदाके लिये ही बांध ली। अब मैं कहां जाऊं ? तूने यह जितना पुण्य कर्म किया है इससे अब मुझे निश्चित रूपसे तेरे घर रहना पड़ेगा। शेठ शेठानी बोलने लगे कि अब हमें तेरी कुछ आवश्यक्ता नहीं हमने तो अपने विचारके अनुसार अब परिग्रह का त्याग ही कर दिया है। लक्ष्मी बोली —"तुम चाहे जो कहो परन्तु अब मैं तुम्हारे घरको छोड़ नहीं सकती।" शेठ विचारने लगा कि अब क्या करना चाहिये यह तो सचमुच ही पीछे आ खड़ी हुई। अब यदि हमें अपने निर्धारित परिग्रहसे उपरान्त ममता हो जायगी तो हमें महा पाप लगेगा, इसलिये जो हुवा सो हुवा, दान दिया सो दिया। अब हमें यहां रहना ही न चाहिये। यदि रहेंगे तो कुछ भी पापके भागी बन जायंगे। इस विचारसे वे दोनों पति पत्नी महा लक्ष्मीसे भरे हुये घर बारको जैसाका तैसा छोड़कर तत्काल चल निकले। चलते हुये वे एक गाँवसे दूसरे गांव पहुंचे, तब उस गांवके दरवाजे आगे वहाँका राजा अपुत्र मर जानेसे मंत्राधिवासित हाथीने आकर शेठ पर जलका अभिषेक किया, तथा उसे उठा कर अपनी स्कंध पर बैठा लिया। छत्र, चमरादिक, राजचिन्ह आप प्रगट हुये जिससे वह राजाधिराज बन गया। विद्यापति विचारता है अब मुझे क्या करना चाहिये ? इतनेमें ही देववाणी हुई कि जिनराज की प्रतिमाको राज्यासन पर स्थापन कर उसके नामसे आज्ञा मान कर अपने अंगीकार किये हुये परिग्रह परिणाम व्रतको पालन करते हुये राज्य चलानेमें तुझे कुछ भी दोष न लगेगा। फिर उसने राज्य अंगीकार किया परन्तु अपनी तरफसे जीवन पर्यन्त त्यागवृत्ति पालता रहा। अन्तमें स्वर्गसुख भोग कर वह पांचवें भवमें मोक्ष जायगा।

"न्यायोपार्जित धनसे लाभ"

ऊपर लिखे मुजब न्यायोपार्जित वित्तमें कितने एक लाभ समाये हुये हैं सो बतलाते हैं। अशंकनीयत्व न्यायसे प्राप्त किये धनमें किसीका भी भय उत्पन्न नहीं होता, उससे मर्जी मुजब उसका उपयोग किया जा सकता है। प्रशंसनीयत्व न्यायसे कमाने वालेकी सब लोग प्रशंसा ही करते हैं। अदीनविषयत्व—न्यायसे कमाये हुये धनको भोगनेमें किसीका भी भय न होनेसे अदीनतया याने दुःख नहीं भोगना पड़ता, एवं किसीसे उसे छिपानेकी भी आवश्यकता नहीं पड़ती, सबके देखते हुये उसका उपयोग किया जा सकता है। सुख समाधीवृद्धिहेतुत्व—वह सुख शान्तिसे भोगा जा सकता है और दूसरे व्यापारमें भी वह वृद्धि करनेमें सहायक बनता है। पुण्यकार्योपयोगीत्वादि—उसे पुण्य कार्योंमें खरचने की इच्छा होती है, अन्य भी अच्छे कामोंमें सुखसे खर्चा जा सकता है, और खराब कार्योंमें उपयोग नहीं होता। जिससे पापकार्य रोके जा सकते हैं इत्यादि लाभ समाये हुये हैं। "इहलोकपरलोकहितं" जगतमें भी शोभाकारी होता है, जीवन पर्यन्त इस लोकमें उससे हितके ही कार्य होते हैं, अनिन्दनीय गिना जाता है इससे इस लोकमें संपूर्ण सुख भोगा जा सकता है, उससे सगे सम्बन्धी सज्जन लोगोंके कार्यमें यथोचित खर्च किया जा सकता है। और अपने कानों अपनी यश कीर्ति सुनी जा सकती है और परभवमें भी हितकारी होता है।

सर्वत्र शुचयो धीराः । स्वकर्मबलगर्विताः ॥
कुकर्मनिहतात्मानः । पापाः सर्वत्र शंकिताः ॥

धर्मी और बुद्धिमान पुरुष सर्वत्र अपने शुभ कृत्योंके बलसे गर्वित रहता है (शंका रहित निर्भय रहता है) और पापी पुरुष अपने किये हुये पाप कर्मोंसे सर्वत्र शंकित ही रहता है।

"शंकित रहने पर जशोशाहका दृष्टान्त"

एक गांवमें देवोशाह और जशोशाह नामक दो बनिये प्रीतिपूर्वक साथ ही व्यापार करते थे। वे दोनों जने किसी कार्यवश किसी गांव जा रहे थे। मार्गमें एक रत्नका कुंडल पड़ा हुवा देख देवोशाह विचारने लगा कि मैंने तो किसीकी पड़ी हुई वस्तु उठा लेनेका परित्याग किया हुवा है, इस लिये मैं इसे ले तो नहीं सकता, परन्तु अब इस मार्गसे आगे भी नहीं जा सकता। ऐसे बोलता हुवा वह पीछे फिरा, जशोशाह भी उसके साथ पीछे लौटा सही परन्तु पड़ी हुई वस्तु दूसरेकी नहीं गिनी जाती या पड़ी हुई वस्तुको लेनेमें कुछ भी दोष नहीं लगता इस विचारसे देवोशाह को मालूम न हो, इस खूबीसे उसने वह पड़ा हुवा कुंडल उठा लिया, तथापि मनमें विचार किया कि धन्य है देवोशाह को कि जिसे ऐसी निस्पृहता है! परन्तु मेरा हिस्सेदार होनेसे इसमेंसे इसे हिस्सा तो जरूर दूंगा। यदि इसे मालूम हो गया तो यह बिलकुल न लेगा, इस लिये मैं ऐसी युक्ति करूंगा कि जिससे इसे खबर ही न पड़े। जशोशाह यह विचार कर वह देवोशाहके साथ वापिस आया। फिर अपने मनमें कुछ युक्ति धारण कर जशोशाह दूसरे गांव जाकर उस

कुंडलको बेच कर उसके द्रव्यसे बहुतसा माल खरीद लाया, और उसे हिस्सेवाली दूकानमें भरकर पूर्ववत बेचने लगा। माल बहुत आया था इसलिये उसे देखकर देवोशाह ने पूछा कि भाई! इतना सारा माल कहांसे आया? उसने ज्यों त्यों जवाब दिया, इसलिये देवोशाह ने फिर कसम दिला कर पूछा तथापि उसने सत्य बात न कहकर कुछ गोलमाल जवाब दिया। देवोशाह बोला कि भाई! मुझे अन्यायोपार्जित वित्त अग्राह्य है और मुझे इसमें कुछ दालमें काला मालूम देता है, इस लिये मैं अब तुम्हारे हिस्से में व्यापार न न करूंगा। तुम्हारे पास मेरा जितना पहलेका धन निकलता हो उसका हिस्सा कर दो, क्योंकि अन्याय से उपार्जित वित्तका जैसे छाछ पड़नेसे दूधका विनाश हो जाता है, वैसे ही नाश हो जाता है, इतना ही नहीं परन्तु उसके सम्बन्ध से दूसरा भी पहला कमाया हुवा निकल जाता है। यों कह कर उसने तत्काल स्वयं हिसाब करके अपना हिस्सा जुदा कर लिया और जुदा व्यापार करनेके लिये जुदी दुकान ले कर उसी वक्त उसने वह हिस्सेमे आया हुवा माल भर दिया।

जशोशाह विचार करने लगा कि, यद्यपि यह अन्यायोपार्जित वित्त है तथापि इतना धन कैसे छोड़ा जाय? यह विचार कर दूकानको वैसे ही छोड़ ताला लगाकर वह अपने घर जा बैठा। दैवयोग उसी दिन रातको यशोशाह की दूकानमें चोरी हुई और उसका जितना माल था वह सब चुराया गया जिससे खबर पड़ते ही प्रातःकाल में जशोशाह हाय हाय, करने लगा, और देवोशाह की दूकान अन्य जगह वैसा शुद्ध माल न मिलनेसे खूब चलने लगी, इससे उसे अपने माल द्वारा बड़ा भारी लाभ हुवा। देवोशाह के पास आकर यशोशाह बड़ा अफसोस करने लगा, तब उसने कहा कि भाई अब तो प्रत्यक्ष फल देखा न? यदि मानता हो तो अब भी ऐसे काम न करनेकी प्रतिज्ञा ग्रहण कर ले। इस तरह समझा कर उसे प्रतिज्ञा करा शुद्ध व्यापार करनेकी सूचना की। वैसा करनेसे वह पुनः सुखी हुवा। इसलिये न्यायोपार्जित वित्तसे सर्व प्रकारकी वृद्धि और अन्यायके द्रव्यसे सचमुच ही हानि विना हुये नहीं रहती। अतः न्यायसे ही धन उपार्जन करना श्रेयस्कर है।

"न्यायोपार्जित वित्त पर लौकिक दृष्टान्त"

चम्पानगरीमें सोमराजा राज्य करता था। उसने एक दिन अपने प्रधानसे पूछा कि—"उत्तरायण पर्वमें कौनसे पात्रमें सुद्रव्य दान देनेसे विशेष लाभ होता है?" प्रधानने कहा—"स्वामिन्! यहां पर एक उत्तम पात्र तो विप्र है परन्तु दान देने योग्य द्रव्य यदि न्यायोपार्जित वित्त हो तब ही वह विशेष लाभ हो सकता है। न्यायोपार्जित वित्त न्याय व्यापारके विना उपार्जन नहीं हो सकता। वह तो व्यापारियों में भी किसी विरलेके ही पास मिल सकता है, तब फिर राजाओंके पास तो हो ही कहांसे? न्यायोपार्जित वित्त ही श्रेष्ठ फल देनेवाला होता है, इस लिए वही दान मार्गमें खर्चना चाहिये। कहा है कि—

दातुं विशुद्धवित्तस्य, गुणयुक्तस्य चार्थिनः।
दुर्लभः खलु योगः, सुबीजक्षेत्रयोरिव॥

निर्मल, कपटरहित, वृत्तिसे और न्याययुक्त रीतिमुजब प्रवृत्तिसे कमाया हुवा धन देनेवाला दान देनेके योग्य गिना जाता है। और अपने ज्ञानादि गुणयुक्त हो वही दान लेने योग्य पात्र गिना जाता है। उपरोक्त गुणयुक्त दायक और पात्र इन दोनोंका संयोग श्रेष्ठ जमीनके खेतमें बोये हुए बीजके समान सचमुच ही दुर्लभ है।

फिर राजाने सर्वोपरि पात्र दान जानकर आठ दिन तक रात्रिमें किसीको मालूम न हो ऐसी युक्तिसे व्यापारी की दूकान पर आकर व्यापारी की लायकीके अनुसार आठ रुपये पैदा किये। पर्वके दिन सब ब्राह्मणों को बुला कर पात्र विप्रको बुलानेके लिए दीवानको भेजा। उसने जाकर पात्र विप्रको आमंत्रण किया, इससे वह बोला—

यो राज्ञः प्रतिगृण्हाति। ब्राह्मणो लोभमोहितः॥
तमिश्रादिषु घोरेषु। नरकेषु स पच्यते॥

जो ब्राह्मण लोभमें मोहित होकर राजाके हाथसे राज्यद्रव्य का दान लेता है वह तमिश्रादिक महा अन्धकारवाली घोर नरकमें पड़ कर महापाप को सहन करता है, इस लिये राजाका दान नहीं लिया जाय।

राज्ञः प्रतिग्रहो घोरो, मधुमिश्रविशोपमः।
पुत्रमांस वरं भुक्तं। नतु राज्ञः प्रतीग्रही॥

राजद्रव्यका दान लेना अयोग्य है क्योंकि यह मधुसे लेप किये हुए विषके समान है, अपने पुत्रका मांस खाना अच्छा, परन्तु राजाका दान पुत्र मांससे भी अयोग्य होनेसे वह नहीं लिया जाता।

दश सूनासमा चक्री, दशचक्री समोध्वजः।
दशध्वजसमा वेश्या, दश वेश्यासमो नृपः॥

दश कसाइओं के समान एक कुंभकार का पाप है, दस कुंभकारों के पाप समान स्मशानिये ब्राह्मण का पाप है, दस श्मशानी ब्राह्मणोंके पाप समान एक वेश्याका पाप है, और दश वेश्याओं के पाप समान एक राजाका पाप है।

यह बात पुराण तथा स्मृति वगैरहमें कथन की हुई होनेसे मुझे तो राजद्रव्य अग्राह्य है इस लिये मैं राजाका दान न लूंगा। प्रधान बोला—"स्वामिन्! राजा आपको न्यायोर्जित ही वित्त देगा।" विप्र बोला नहीं नहीं ऐसा हो नहीं सकता! राजाके पास न्यायोपार्जित धन कहांसे आया।" प्रधान बोला—"स्वामिन्! राजाको मैंने प्रथमसे ही सूचना की थी, इससे उन्होंने स्वयं भुजासे न्यायपूर्वक उपार्जन किया है इसलिये वह लेनेमें आपको कुछ भी दोष लगनेका सम्भव नहीं। सन्मार्गसे उपार्जन किया द्रव्य लेनेमें क्या दोष है? ऐसी युक्तियों से समझा कर दीवान सुपात्र, विप्रको दरबारमें लाया। राजाने अति प्रसन्न होकर उसे आसन समर्पण किया, बहुमान और विनयसे उसके पाद प्रक्षालन किये। फिर हाथ जोड़ कर नम्रभाव से राजाने स्वभुजासे उपार्जन किये उसके हाथमें आठ रुपये समर्पण किये और नमस्कार करके उसे सम्मान पूर्वक विसर्जन किया, इससे बहुतसे विप्र अपने मनमें विविध प्रकारके विचार और खेद करने लगे। परन्तु

राजाने उन्हें सम्मान पूर्वक सुवर्णमुद्रा के दानादिसे प्रसन्न कर विदा किये। यद्यपि राजाने सुवर्णादिक इतना दान किया था; कि उन्हें बहुतकाल पर्यंत खरचते हुए भी समाप्त न हो तथापि वह राजद्रव्य अन्यायो-पार्जित होनेसे थोड़े ही समयमें खानेके खर्चासे ही खुट गया और जो सत्पात्र विप्रको मात्र आठ ही रुपयों का दान मिला था वह न्यायोपार्जित वित्त होनेसे उसके घरमें गये बाद भोजन वस्त्रादिमें खर्चते हुये भी वह अक्षय निधानके समान कायम रहा। न्यायसे प्राप्त किया हुवा, अच्छे खेतमें बोए हुए अच्छे बीजके समान शोभाकारक और सर्वतो बृद्धिकारक होता है।

"दानमें चौभंगी"

१ न्यायसे उपार्जन किये द्रव्यकी सत्पात्रमें योजना करने से प्रथम भंग होता है। उससे अक्षय पुण्या नुबन्धी होकर परलोक में वैमानिक देव तया उत्पन्न हो वहांसे मनुष्यक्षेत्र मे पैदा होकर समकित देशविरति वगैरह प्राप्त करके उसी भवमें या थोड़े भवमें सिद्धि पदकी प्राप्ति होती है। धन्ना सार्थवाह या शाली-भद्रादिक के समान प्रथम भंग समझना।

२ न्यायोपार्जित वित्तसे मात्र ब्राह्मणादिक पोषण करने रूप दूसरा भंग समझना। इससे पापानुबन्धी पुण्य उपार्जन होता है, क्योंकि उस भवमें मात्र संसार सुख फल भोगते हुये अन्तमें भव परंपराकी विडम्बना भोगनेका कारण रूप होनेसे निरसही फल गिना जाता है। जैसे कि लाख ब्राह्मणोंको भोजन कराने वाला विप्र जैसे कुछ सांसारिक सुख भोगादि भोगकर अन्तमे रेचनक नामा सर्वाङ्ग सुलक्षण एक भद्रक प्रकृति वाला हाथी उत्पन्न हुवा। लाख ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे बचे हुये पक्वान्न आदि सुपात्र दानमें योजित करने वाले एक दरिद्री विप्रका जीव सौधर्म देवलोकमें देव तया उत्पन्न हो वहांके सुखोंका अनुभव करके पुनः वहांसे च्यवकर पांचसौ राज कन्याओंका पाणिग्रहण करने वाला श्रेणिक राजाका पुत्र नन्दीषेण हुआ। उसे देखकर मदोन्मत्त हुये रेचनक हाथीको भी जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुवा, तथापि अन्तमें वह पहली नरकमें गया। इसमें पापानुबन्धी पुण्य ही होनेसे भव परंपराकी वृद्धि होती है, इसलिये पहले भंगकी अपेक्षा यह दूसरा भंग फलकी अपेक्षा में बहुत ही हीन फल दायी गिना जाता है। यह दूसरा भंग समझना चाहिये।

३ अन्यायसे उपार्जन किये द्रव्यको सत्पात्रमें योजन करने रूप तीसरा भंग समझना। उत्तम क्षेत्रमें बोये हुए सामान्य बीज कांगनी, कोद्रा, मंडवा, चणा, मटर, वगैरह ऊगनेसे आगामी कालमें कुछ शान्ति सुख पूर्वक उसे पुण्य बन्धके कारण तया होनेसे राजा तथा व्यापारियोंको अनेक आरम्भ, समारम्भ करने पूर्वक उपार्जन किये द्रव्यसे ज्यों आगे लाभकी प्राप्ति होती है, त्यों इस भंगमें भी आगे परम्परासे महा लाभकी प्राप्ति हो सकती है, कहा है कि: -

काशयष्टी रिवैषा श्री। रसाराविरसाप्यहो॥
नीबे क्षुर सतां धन्यः। ससप्तेत्री निसेवनात्॥

कांसका तृण असार और विरस–स्वाद रहित है तथापि आश्चर्यकी बात है कि, जो उत्तम प्राणी होता है वह सात क्षेत्र (साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, मन्दिर, जिनबिम्ब और ज्ञान) में उसका उपयोग कर देता है तो उससे उसकी इक्षुरस के समान दशा प्रगट होती है (असार वस्तु भी श्रेष्ठ कार्योंमें नियोजित करनेसे सारके समान फल दे सकती है) फिर भी कहा है कि:—

खलोपि गविदुग्धं स्या । दुग्धमप्युरगे विषं ॥
पात्रापात्रविशेषेण । तत्पात्रे दानमुत्तमं ॥

तिलकी खल यदि गायके पेटमें गई हो तो वह दूध बन जाती है और यदि दूध सर्पके पेटमें गया हो तो वह विष बन जाता है। यह किससे होता है ? उसमें पात्रापात्र ही हेतु हैं, इसलिये योग्य पात्रमें ही धन देना उत्तम गिना जाता है।

सासाइतं पिजलं । पत्त विसेसेण अन्तरं गुरुअं ॥
अहिमुहपडिअं गरलं । सिप्प उडे मुत्तिअं होइ ॥

स्वाति नक्षत्रमे जो पानी बरसता है वही पानी पात्रकी विशेषतासे बहुत ही फेर फार वाला बन जाता है, क्योंकि वही पानी सर्पके मुंहमें पड़नेसे विष हो जाता है और वही पानी सीपमें पड़नेसे साक्षात् मोती बन जाता है।

इस विषय पर दृष्टान्त तो श्री आबू पर्वत पर बड़े उत्तुंग मन्दिर बनवाने वाले मन्त्री विमलशाह वगैरह का समझ लेना। उनका चरित्र संस्कृतमें प्रसिद्ध होनेसे, और ग्रन्थ बड़ा हो जानेके भयसे यहां पर नहीं दिया गया।

महा आरंभ याने पन्द्रह कर्मादानके व्यापारसे या अघटित कारणोंसे उपार्जन की हुई लक्ष्मी यदि सात क्षेत्रोंमें न खर्ची हो तो वह मम्मण शेठ और लोभानन्दी के समान निश्चयसे अपकीर्ति और दुर्गतिमे डाले बिना नहीं रहती। इसलिये यदि अन्यायोपार्जित वित्त हो तो भी वह उत्तम कार्यमें खरचनेसे अन्तमे लाभ कारक हो सकता है, यह तीसरा भंग समझना।

४ अन्यायसे कमाये हुए धनकी कुपात्रमे योजना करना यह चौथा भंग गिना जाता है। कुपात्रको पोषनेसे श्रेष्ठ लोगोंमें निन्दनीय हो जाता है, याने इस लोकमें भी कुछ लाभ कारक नहीं होता, और परलोक में नीच गतिका कारण होता है। इससे विवेकी पुरुषोंको इस चतुर्थ भंगका सर्वथा त्याग करना चाहिये। इसलिये लौकिक शास्त्रमे कहा है कि,—

अन्यायोपात्तवित्तस्य । दानमत्यन्त दोषकृत् ॥
धेनुं निहत्य तन्मांसैः । ध्वांक्षाणामिव तर्पणं ॥

अन्यायसे उपार्जन किये द्रव्यसे दान करना सो अत्यन्त दोष पूर्ण है। जैसे कि गायको मारकर उसके मांससे कौवोंका पोषण करना।

अन्यायोपार्जितैर्वित्तै । र्यच्छ्राद्धं क्रियते जनैः ॥

तृप्यन्ते तेन चांडाला। बुक्कसादासयोनयः॥

अन्यायसे उपार्जन किये धनसे जो लोग श्राद्ध करते हैं उससे चांडाल जातिके, बुक्कस, जातिके दास योनिके देवता तृप्ति पाते हैं परन्तु पितृयोंकी तृप्ति नहीं होती।

दत्तस्वल्पोपि भद्राय। स्यादर्थो न्यायसंगतः॥

अन्यायात्तः पुनर्दत्तः। पुष्कलोपि फलोज्झितः॥

न्यायसे उपार्जन किया हुवा धन यदि थोड़ा भी दानमें दिया हो तो वह लाभ कारक हो सकता है, परन्तु अन्यायसे कमाया हुवा धन बहुत भी दान किया जाय तथापि उसका कुछ फल नहीं मिलता।

अन्यायार्जितवित्तेन। यो हितं हि समीहते॥

भक्षणात्कालकूटस्य। सोभिवांच्छति जीवितं॥

अन्यायसे उपार्जन किये धनसे जो मनुष्य अपना हित चाहता है, वह कालकूट नामक विष खाकर जानेकी इच्छा करता है।

अन्यायसे उपार्जन किये धन द्वारा आजीविका चलाने वाला एक सेठके समान प्रायः अन्यायी ही होता है, क्लेशकारी, अहंकारी, कपटी, पापकी पूर्ति करनेमें ही अग्रेसरी और पाप बुद्धि ही होता है। उसमें ऐसे अनेक प्रकारके अवगुण प्रत्यक्ष तया मालूम होते हैं।

"अन्यायोपार्जित वित्तपर एक शेठका दृष्टान्त"

मारवाड़के पाली नामक गांवमें काकुआक; और पाताक नामक दो सगे भाई थे। उनमें छोटा धनवान और बड़ा भाई निर्धन होनेसे अपने छोटे भाईके वहां नौकरी करके आजीविका चलाता था। एक समय चातुर्मास के मौसममें रात्रिके वक्त सारा दिन काम करनेसे थक जानेके कारण काकुआक सो गया था। उसे पाताकने आकर, गुस्सेमें कहा कि, अरे भाई! तेरे किये हुए क्यारे तो पानी पड़नेसे भर कर फूट गये हैं और तू सुखसे सो रहा है। तुझे कुछ इस बातकी चिन्ता है? उसे वारंवार इस प्रकार उपालम्भ देने लगा, इससे बिचारा काकुआक आँखें मसलता हुवा धिक्कार है ऐसी नौकरीको, और धिक्कार है इस मेरे दरिद्री पनको, यदि मैं ऐसा जानता तो इसके पास रहता ही नहीं, परन्तु क्या करूं वचनमें बन्ध गया सो बन्ध गया, इस प्रकार बोलता हुवा उठकर हाथमें फावला ले जब वह खेतमें जाकर देखता है तो बहुतसे मजूर लोग क्यारे सुधारने लग रहे हैं, वह उनसे पूछने लगा कि, "अरे! तुम कौन हो?" उन्होंने कहा—"आपके भाईका काम करने वाले नोकर हैं।" तब काकुआक बोला कि कुवेमें पड़ी इस पाताककी नौकरी, वह ऐसा निर्दय है कि, अपने भाई की भी जिसे शरम नहीं आती,! ऐसी अन्धेरी रातमें मुझे भर निद्रामेंसे उठा कर यहाँ भेजा। मैं तो अब इसकी नौकरीसे कंटाल गया हूं।"

यह सुनकर नौकरोंने कहा कि तुम वल्लभीपुर नगरमें जाओ। यदि वहांपर तुम रोजगार करोगे तो तुम्हें बहुत लाभ होगा, कुछ दिनो बाद हमारा भी वहीं जानेका इरादा है।" यह बात सुन कर उसकी वल्लभीपुर जाने

की पूर्ण मर्जी होगई। इससे वहां पर थोड़े दिन निकाल कर अपने कुटुम्बियोंको साथ ले वह वल्लभीपुर नगरमें गया। वहां पर दूसरा कुछ योग न बननेसे नगर दरवाजेके पास बहुतसे अहीर लोग बसते थे वहाँपर ही वह एक घासकी झोंपड़ी बांधकर आटा, दाल, घी, गुड, वगैरह बेचने लगा। उसका नाम काकुआक उन अहीर लोगोंको उच्चार करनेमें अटपटा मालूम देनेसे उसे रंक जैसा देख सब 'राका' नामसे बुलाने लगे। अब वह उस परचूनकी दुकानसे अच्छी तरह अपनी आजीविका चलाने लगा।

उस समय कोई कापड़िक अन्य दर्शनी योगी गिरनार पर जाकर बहुत वर्षोंतक प्रयास करनेसे मरणके मुखमें ही न आ पड़ा हो ऐसा कष्ट सहन करके वहांकी रस कुम्पिकामें से सिद्ध रसका तूंबा भर कर अपने निर्धारित मार्गसे चला जाता था। इतनेमें ही अकस्मात आकाश वाणी हुई कि "यह तूंबा काकुआकका है" इस प्रकारकी आकाश वाणी सुन कर विचारा वह सन्यासी तो डरता हुवा अन्तमें वल्लभीपुर आ पहुंचा और गांवके दरवाजे के पास दूकान करने वाले उसने राका शेठके नजीक ही उतारा किया। उन दोनोंमें परस्पर प्रीतिभाव हो जानेसे वह संन्यासी सिद्ध रसके तूंबेको राका शेठके यहां रख कर सोमेश्वर की यात्रार्थ चला गया।

राँका शेठने वह तूंबा पर्वके दिन रसोई करनेके चुल्हे पर बांध दिया। फिर कितने एक दिन बाद कोई पर्व आनेसे उस चुल्हे पर रसोई करते हुए तापके कारण ऊपर लटकाये हुये तूंबेमेंसे रसका एक बिन्दु चुल्हे पर रक्खे हुये तवे पर पड़नेसे वह तत्काल ही सुवर्णमय बन गया। इससे दूसरा तवा लाकर चुल्हेपर चढ़ाया उस पर भी तूंबेमेंसे एक रसका बिन्दु पड़नेसे वह सुवर्णका बन गया। इस परसे इस तूंबेमें सिद्ध रस भरा समझ कर उस योगीको वापिस देनेके भयसे याने उसे दबा रखनेके लालचसे राँका शेठने अपना माल मत्ता दूसरी जगह रख उस झोंपड़ीमें आग लगादी और वह गांवके दूसरे दरवाजेके समीप एक नई दूकान लेकर उसमें घीका व्यापार करने लगा। तूंबेके रसके प्रतापसे जब चाहता है तब सुवर्ण बना लेता है। इस तरह सारे तूंबेके रसकी महिमासे वह बड़ा भारी धनाढ्य होगया, तथापि वह घीका ही व्यापार करता रहा। एक समय किसी एक गांवकी अहीरिनी उसकी दूकान पर घी बेचने आयी। उसकी घीकी मटकीमें से घी निकाल तोल कर नितरनेके लिए उसे ईंढी पर रक्खी, इससे वह मटकी तत्काल ही घीसे भर गई। दूसरी दफा उसमेंसे घी निकाल कर तोल कर फिरसे ईंढी पर रक्खी जिससे फिर भी वह घीसे भरी नजर आई। यह देख रांका शेठने विचार किया कि सचमुच यह तो कुछ इस ईंढीमें ही चमत्कार मालूम होता है, निश्चय होता है कि इस घासकी बनाई हुई ईंढोमें चित्रावेल है। इस विचारसे राँका शेठने कपट द्वारा अहीरनीसे उस ईंढीको ले लिया। तूंबेके सिद्ध रसके प्रतापसे उसने बहुत कुछ लाभ प्राप्त किया था, परन्तु जब वह रस समाप्त होने आया तब उतनेमें ही उसे चित्रावेल आ मिली। इसकी महिमासे वह अतुल सुवर्ण बनाने लगा इससे वह असंख्य धनपति तुल्य बन बैठा। तथापि वह धनका लोभी देनेके कम वजनके बाट और लेनेके अधिक वजनके बाट रखता था। ऐसे कृत्योंसे व्यापार करते हुये पापानुबन्धी पुण्यके बलसे व्यापारमें तत्पर रहते हुए वह महा धनाढ्य हुवा। इसी समय उसे कोई एक योगी मिला, उससे उसने नवीन सुवर्ण

बनानेकी युक्ति सीखली। इस प्रकार सिद्धि रस, दूसरी चित्र वेल, और तीसरी सुवर्ण सिद्धि इन तीन पदार्थोंके महिमासे वह अनेक कोटिश्वर बन बैठा। परन्तु अन्यायसे उपार्जन किया हुवा होनेके कारण और पहले निर्धन था फिर धनवान बना हुवा होनेसे किसी भी सुकृतके आचरणमें, सज्जन लोगोंके कार्योंमें या दीन हीन, दुःखी, लोगोंको सुख देनेकी सहायता के कार्यमें या अन्य किसी अच्छे कार्यके उपयोगमें उस धनमेंसे उससे एक पाई भी खर्च न हो सकी। मात्र एक अभिमान, मद, कलह, क्लेष, असन्तोष, अन्याय, दुर्बुद्धि, छल, कपट, और प्रपंच करनेके कार्यमें उस धनका उपयोग होने लगा। अब इतनेसे वह राँका शेठ वारंवार लोगोंपर एवं दूसरे सामान्य व्यापारियों पर नया नया कर, नये नये कायदे उन्हें अलाभ कारक और स्वतःको लाभ कारक नियम करने लगा; तथा दूसरोंको कुछ धन कमाता देख उनपर ईर्षा, द्वेष, मत्सर, रखकर अनेक प्रकारसे उन्हें हर-कतें पहुंचाने में ही अपनी चतुराई मानने लगा। हरएक प्रकारसे लेने देने वाले व्यापारियोंको सताने लगा। मानो सारे गांवके व्यापारियोंका वह एक जुलमी राजा ही न हो। इस प्रकारका आचरण करनेसे उसकी लक्ष्मी लोगोंको काल रात्रिके समान मालूम होने लगी।

एक समय राँका शेठकी पुत्रीके हाथमें एक रत्न जड़ित कंघी देख कर वल्लभीपुर राजाकी पुत्रीने अपने पितासे कहकर मंगवाई, परन्तु अति लोभी होनेके कारण उसने वह कंघी न दी। इससे कोपायमान हो शिलादित्य राजाने किसी एक छल भेदसे उस कंघीको मंगवा कर वापिस न दी। इससे राँका शेठको बड़ा क्रोध चढ़ा, परन्तु करे क्या राजाको क्या कहा जाय! अब उसने वदला लेनेके लिये अपर द्वीपमें रहने वाले महा दुर्धर मुगल राजाको करोड़ रुपये सहाय देकर शिलादित्यके ऊपर चढ़ाई करनेको प्रेरित किया। यद्यपि मुगल लोगोंकी लाखों सैना चढ़ आई थीं तथापि उस सेनासे जरा भी भय न रखकर शिलादित्य राजाने उन्होंके सामने सूर्य देवके वरदानसे मिले हुये अश्वकी सहायतासे सहर्ष संग्राम किया। (उसमें इतना चमत्कार था कि शिलादित्य राजाको सूर्यने वरदान दिया था कि जब तुझे संग्राम करना हो तब एक मनुष्यसे शंख बजवाना फिर मैं तुझे अपने स्वयं चढ़नेका घोड़ा भेज दूंगा। उस घोड़े पर चढ़ कर जब तू शंख बजा-येगा तब शीघ्र ही वह घोड़ा आकाशमें उड़ेगा। वहांसे तू शत्रुओंके साथ युद्ध करना जिससे दिनमें घोड़ेके प्रतापसे तेरी विजय होगी) युद्धके समय शिलादित्य राजा सूर्यके वरदान मुजब शंख वाद्यके आवाजसे सूर्य का घोड़ा बुलाकर उस पर चढ़ता है, फिर शंख बजानेसे वह घोड़ा आकाशमें उड़ता है, वहां अधर रह कर मुगलोंके साथ लड़ते हुए बिलकुल नहीं हारता। एवं मुगलोंका सैन्य भी बड़ा होनेसे लड़ाई करनेमें पीछे नहीं हटता, तथापि घोड़ा ऊंचे रहनेसे उनका जोर नहीं चल सकता। यह बात मालूम पड़नेसे राँका शेठ जो मनुष्य शंख बजाया करता था उससे पोशिदा तौर पर मिला और कुछ गुप्त धन देकर उसे समझाया कि शंख बजानेसे घोड़ा आये बाद जब राजा उस पर सवार ही न हुवा हो उस वक्त शंख बजाना; जिससे वह घोड़ा आकाशमें उड़ जाय और राजा नीचे ही रह जाय। इस प्रकार शंख बजाने वालेको कुछ लालच देकर फोड़ लिया। उसने वैसा ही किया, धनसे क्या नहीं बन सकता? ऐसा होनेसे शिलादित्य राजा हा हा! अब क्या किया जाय? इस तरह पश्चात्ताप करने लगा; इतनेमें ही मुगल लोगोंके सुभटोंने आकर हल्ला करके

उसे पहली ही चोटमें पराजित कर दिया, और अन्तमे उसे वहां ही जानसे मार कर वल्लभीपुर अपने तावे कर लिया। इसलिये शास्त्रमें—"तित्थोगिलि पयण्णामे" यह लिखा है कि, विक्रमार्क के संवतसे तीनसौ पिछत्तर वर्ष व्यतीत हुये वाद वल्लभीपुर भंग हुवा। मुगलोंको उनके शत्रुओंने निर्जल देशमें भेजकर मारा। सुना जाता है कि मुगल लोग भी निर्जल देशमें मारे गये थे। इस प्रकार रांका शेठका अन्यायसे उपार्जन किया हुवा द्रव्य अनर्थके मार्गमें ही व्यय हुवा। परन्तु उससे उसका सदुपयोग न हो सका।

अन्यायसे उपार्जन किये हुए द्रव्यसे और क्या सुकृत वन सकेगा? इस विषयमें उपरोक्त दृष्टान्त काफी है। उपरोक्त लिखे मुजब अन्यायसे कमाये हुए धनका फल धर्मादिकसे रहित ही होता है ऐसा समझ कर न्याय पूर्वक व्यवहार करनेमें उद्यम करना, क्योंकि उसे ही व्यवहार सिद्धि कहा जाता है। शास्त्रमें कहा है कि—'विहाराहारव्याहार व्यवहारस्तपस्विनाम्। गृहोणांतु व्यवहार एव दृद्धो विलोक्यते॥ विहार करना, आहार ग्रहण करना, व्यवहार याने तप करना और व्यवहार याने क्रिया करना, साधुओंके लिये इतने शब्दोंमें से व्यवहार अर्थ लिया जाता है। परन्तु श्रावकों के लिये सिर्फ व्यवहार सिद्धि ही अर्थ लिया जाता है।

इसलिये श्रावक लोगोंको जो जो धर्मकृत्य करने हों वे व्यवहार शुद्धि पूर्वक ही करने चाहिये। व्यवहार शुद्धि विना श्रावक जो क्रिया करे वह योग्य नहीं गिनी जाती। श्रावक—दिन कृत्यमें कहा है कि—केवली प्ररूपित जैनधर्मका मूल व्यवहार शुद्धि ही है। इस लिए व्यवहार शुद्धिसे ही अर्थ शुद्धि होती है। (द्रव्य शुद्धि व्यवहार शुद्धिसे ही होती है) अर्थ शुद्धि—न्यायोपार्जित वित्तसे आहारशुद्धि होती है और आहारशुद्धि से (न्यायोपार्जित वित्तसे ग्रहण किये हुए अन्नादिकसे) शरीर शुद्धि होती है। शरीर शुद्धिसे दुष्ट विचार पैदा नहीं होते। शरीर शुद्ध होने पर ही मनुष्य धर्मकृत्य के योग्य होता है, और जब वह धर्मके योग्य हुआ हो तबसे ही जो जो कृत्य करे वह उसे सर्व फल देने वाला होता है। यदि ऐसा न करे तो वह फल रहित होता है। ऐसा किये विना जो जो कृत्य करता है वह व्यवहारशुद्धि रहित होनेसे धर्मकी निंदा कराने वाला ही हो जाता है। जो धर्मकी निन्दा कराता है उसे और अन्यको भी बोधिबीज की प्राप्ति नहीं होती, यह वात सूत्रमें भी बतलाई हुई है। इस लिए विचक्षण पुरुषको सर्व प्रयत्नसे ऐसा ही वर्ताव करना चाहिये कि जिससे मूर्ख लोक उसके पीछे धर्मकी निंदा न करें।

लोकमें भी आहारके अनुसार ही शरीरका स्वभाव और रचना देख पड़ती है। जैसे कि वाल्यावस्था में जिस घोड़ेको भैंसका दूध पिलाया हो, भैंसोको पानी प्रिय होनेसे जैसे वे पानीमें तैरने लगती हैं वैसे ही वह भैंसका दूध पीनेवाला घोड़ा भी पानीमें तैरता है, और जिस घोड़ेको वाल्यावस्था में गायका दूध पिलाया हो वह घोड़ा पानीसे दूर ही रहता है। वैसे ही जो मनुष्य वाल्यावस्था में जैसा आहार करता हैं वैसी ही उसकी प्रकृति वन जाती है। बड़ा हुए वाद भी यदि शुद्ध आहार करे तो शुद्ध विचार आते हैं और अशुद्ध आहार करनेसे अवश्य कुबुद्धि प्राप्त होती है। लौकिकमे भी कहावत है कि 'जैसा आहार वैसा उद्गार'। इस लिए सद्विचार लानेके वास्ते व्यवहारशुद्धि की आवश्यकता है। व्यवहारशुद्धि पीठिकाके

समान होनेसे उस पर ही धर्मकी स्थिति भली प्रकार हो सकती है। यदि पीठिका दृढ़ हो तो उस पर घर टिक सकता है, वैसे ही धर्म भी व्यवहारशुद्धि हो तो ही वह निश्चल रह सकता है। इस लिए व्यवहार-शुद्धि अवश्य रखना चाहिए।

देशकाल विरुद्धाधिकार

"देशादिविरुद्ध त्यागो—देशकाल नृपादिक की विरुद्धता वर्जना। याने देशविरुद्ध, कालविरुद्ध, जातिविरुद्ध, राजविरुद्ध प्रवृत्तिका परित्याग करना। इस लिए हितोपदेशमाला में कहा है कि 'देसस्सय कालस्सय। तिवस्स लोगस्स तहय धम्मस्स॥ वज्जंतो पडिकुलं। धम्मं सम्मं च लहई नरो॥' देशविरुद्ध, कालविरुद्ध, राजविरुद्ध, और लोकविरुद्ध एवं धर्मविरुद्ध वगैरह कितने एक अवगुणोंका परित्याग करनेसे मनुष्य उत्तमधर्म को प्राप्त कर सकता है।"

जैसे कि सौवीर देशमें खेती करना मना है, वह कर्म वहां नहीं किया जाता। लाट देशमें मदिरापान का त्याग है। इस तरह जिस जिस देशमें जो वस्तु लोगों के आचरण करने योग्य न हो वहां उस वस्तु-का सेवन करना विरुद्ध गिना जाता है। तथा जिस देशमें, जिस जातिमें या जिस कुलमें जो वस्तु आचरण करने योग्य न हो उसका आचरण करना देशविरुद्ध में जातिकुल प्रभेदनया गिना जाता है। जैसे कि ब्राह्मण को मदिरा पान करना निषेध है, तिल, नमक वगैरह बेचना निषेध है। इस लिये उन्हींके शास्त्रमें कहा है 'तिलवल्लघुता तेषां तिलवत् स्यामता पुनः। तिलवच्चनिपीड्यन्ते ये तिलव्यवसायिनः॥ 'जो तिलका व्यापार करता है, उसकी तिलके समान ही लघुता होती है, तिलके समान वह काला होता है, तिल के समान पीला जाता है।' यह जातिविरुद्ध गिना जाता है।

यदि कुलके विषयमें कहा जाय तो जैसे कि चालुक्य वंशवाले रजपूतों को मद्यपान का परित्याग करना कहा है। तथा देशविरुद्ध में यह भी समावेश होता है कि दूसरे देशके लोगों के सुनते हुए उस देश-की निन्दा करना। अर्थात् जिस जिस देशमें जो वाक्य बोलने योग्य न हो उन देशोंमें वह वाक्य बोलना यह देशविरुद्ध समझना।

कालविरुद्ध इस प्रकार है कि शीतकाल में हिमाचल पर्वतके समीपके प्रदेशमें यदि कोई हमारे देशमें से जाय तो उसे शीतवेदना सहन करना बड़ा कठिन हो जाय। इस लिये वैसे देशमें उस प्रकारके कालमें जाना मना है। उष्णकाल में विशेषतः मारवाड देशमें न जाना, क्योंकि वहां गरमी बहुत होती है। चातु-र्मास में दक्षिण देशकी मुसाफिरी करना या जिस जमीनमें अधिक वृष्टि होती हो, या जिस देशमें कादव कीचड़ विशेष होता हो, उन देशोंमें प्रवास करना यह कालविरुद्ध गिना जाता है। यदि कोई मनुष्य समयका विचार किये विना ही वैसे देशोंमें जाता है तो वह विशेष विडम्बनायें सहन करता है। चातुर्मास के काल-में प्रायः समुद्रके प्रान्तवाले देशोंमें मुसाफिरी करना ही न चाहिये। तथा जहां पर विशेष अकाल पड़ा हो, राजा राजाओं में पारस्परिक विरोध चलता हो, या संग्राम वगैरह शुरू हो, या रास्तेमें डाका वगैरह पड़नेका

भय हो, या मार्गमें किसी कारण प्रवासीको रोका जाता हो या रुकना पड़ता हो, या रोगादिका उपद्रव चलता हो, या मार्गमें चलना जोखम भरा हो, या मार्गमे कोई गांव न आकर भयंकर अटवीवाला रास्ता हो, या सन्ध्याके समय गमन करना पडे अथवा अन्धेरी रातमें चलना पडे, रक्षक या किसी साथीके विना गमन करना हो, इत्यादि ऐसे स्थानकों में यदि विना विचारे प्रवृत्ति की जाय तो वह सचमुच ही प्राणधनकी हानि से महा अनर्थकारी हो जाती है। इस लिए ऐसे कालमें इस प्रकारकी मुसाफिरी कदापि न करना। फाल्गुन मासके वाद तिल पिलवाने, तिलका व्यापार करना, संग्रह करना तथा तिल खाना वगैरह सब कुछ काल-विरुद्ध है। वर्षाऋतुमें तान्दूलजा, वगरह सर्व प्रकारकी भाजी (शाक) खाना कालविरुद्ध है। जहां पर अधिक जीव उत्पन्न होते हों वैसी जमीन पर गाड़ी वगैरह चलाना महादोष का हेतु है इत्यादि सब काल-विरुद्ध समझना।

"राज विरुद्ध"

राजाने जिस आचरण का निषेध किया हो उसका सेवन करना, या राजाको संमत न हो वैसा आच-रण करना, जैसे कि राज्यके मान्य मनुष्यका अपमान करना, राजाने जिसका अपमान किया हो उसके साथ मित्रता रखना, राजविरोधीको बहुमान देना, राजाके शत्रुके साथ मिलाप रखना, उसके साथ विचार करना या उसके स्थानमें जा कर रहना, या उसे ही अपने घरमे रखना, राजाके शत्रुकी ओरसे आये हुए किसी भी मनुष्यको लोभसे अपने घर उतारना या उसके साथ व्यापार, रोजगार करना, राजाकी इच्छा विरुद्ध उसके शत्रुके साथ सहवास करना, राजाकी मर्जीसे विरुद्ध बोलना, नगरके लोगोंसे विरुद्ध बर्ताव करना, जिसमे स्वामिद्रोहादिक करनेकी राजमनाई हो वैसे आचार का सेवन करना। भुवनभानु के जीव रोहिणीके समान राजाकी राणीका अपवाद बोलना, यह सब राजविरुद्ध गिना जाता है। इसपर रोहिणीका दृष्टान्त बतलाया है।

रोहिणी नामक एक शेठकी लड़की परम श्राविका थी। उसने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा शास्त्रके एक लाख श्लोक मुखपाठ किये थे। वह बड़ी श्रद्धालु, भक्तिवती, धर्मानुरागी, और अपने धारण किये हुए व्रत, नियम पालन करनेमें सदैव सावधान थी। परंतु विकथाकी अति रसीली होनेसे हँसते हँसते एक दिन किसीके पास उससे ऐसा बोला गया कि 'यह राजाकी नई रानी तो व्यभिचारिणी है।' यह बात परंपरा से दरबार तक पहुंची। अन्तमें राजाने सुन कर उस पर बड़ा गुस्सा किया और उसे दरबार में पकड़ बुला कर उसकी जीभ काटनेका हुकम किया। परन्तु दीवानादि प्रधान पुरुषोंके कहने से राजाने वह हुकम पीछे खींच लिया किन्तु उसे देशनिकाल किया। सारांश यह कि यद्यपि उस भवमें उसकी जीभ न काटी गई परन्तु मात्र इतना ही बोलने से उसने ऐसा नीच कर्म बांध लिया कि जिससे कितनेक भवो तक तो उसकी जीभ छेदन होती रही और उस भवमें अन्य कितने एक अति दुःख सहन किये सो जुदे, इसलिए राजविरुद्ध न बोलना। सज्जन मनुष्यको चाहिए कि वह परनिन्दा और स्वगुण वर्णनका परित्याग करे।

लोकनिन्दा बोलने से इस लोकमे भी अति दुःखके कारण उपस्थित होते हैं। तथा गुणकी निन्दा

करना तो विशेषतः त्यागने योग्य है। अपनी बड़ाई और दूसरेके अवगुण बोलनेसे हानि ही होती है। कहा है कि विद्यमान या अविद्यमान दूसरेके अवगुण बोलने से मनुष्यको द्रव्य या यश कीर्तिका कुछ भी लाभ नहीं होता, परन्तु उलटी उसके साथ शत्रुता पैदा होती है। जीभकी परवशता से और कषायोंके उदयसे जो मुनि अपनी स्तुति और परकी निन्दा करते हुए श्रेष्ठ उद्यम करता है तथापि वह पांचों प्रकारके महाव्रतों से रिक्त-रहित है। दूसरेके गुण होने पर भी यदि उसकी प्रशंसा न की हो, अपने गुणोंकी प्रशंसा की हो, अपने आपमें गुण न होने पर भी उसकी प्रशंसा की हो, तो उससे हानिके सिवाय अन्य क्या लाभ है? जो मनुष्य अपने मुंह मियां मिट्ठ बनते हैं याने जो स्वयं ही अपनी प्रशंसा करने लग जाते हैं, मित्र लोग उसका उपहास्य करते हैं, बन्धुजन उसकी निन्दा करते हैं, पूजनीय लोग उसकी उपेक्षा करते हैं और माता पिता भी उसे सन्मान नहीं देते। दूसरे प्राणीको पीड़ा पहुंचाना, दूसरेके अवगुण बोलना, अपने गुणोंका वर्णन करना, इतने कारणोंसे करोड़ों भव परिभ्रमण करते हुये और अनेक दुःख भोगते हुए भी प्राणी ऐसे अति नीचकर्मको बाँधता है जिसका उदय कदापि न मिट सकेगा। परनिन्दा करनेमें प्राणीका घात करनेसे भी अधिक पाप लगता है। पाप न करने वाली वृद्धा ब्राह्मणीके समान अविद्यमान दोष बोलनेसे भी पाप आ कर लगता है।

सुग्राम नामक ग्राममें एक सुन्दर नामक शेठ रहता था। वह तीर्थयात्रा करने वाले लोगोंको उतरने के लिये स्थान, भोजन वगैरह की साहाय्य किया करता था। उसके पडोसमें रहने वाली एक वृद्धा ब्राह्मणी उस सम्बन्ध में उसकी निन्दा किया करती थी तथा प्रसंग आने पर बहुतसे लोगोंके सुनते हुए भी इस प्रकार बोलने लग जाती कि 'यह सुन्दर शेठ यात्रालु लोगोंकी खातिर तवज्जा करता है; उन्हें उतरने के लिये जगह देता है, खानेको भोजन देता है, क्या यह सब कुछ भक्तिके लिए करता है? नहीं, नहीं, ऐसा बिलकुल नहीं है। यह तो परदेश से आने वाले लोगोंकी धरोहर पचानेके लिए भलाईका ढोंग करता है।' एक समय वहां पर कोई एक योगी आया उसकी छांस पीनेकी मर्जी थी परन्तु उस रोज सुन्दर शेठके घरमे छांछ तयार न होनेसे अहीरनी के पाससे उसे मोल ले दी। अहीरनी के मस्तक पर रही हुई उघाड़े मुंहकी छांछको मटकी में आकाश मार्गसे उड़ती हुई चीलके पंजोंमें दबे हुए सर्पके मुखसे जहरके बिन्दु गिरे होनेके कारण वह योगी उस छांसको पीते ही मृत्युके शरण हो गया। यह कारण बना देख वह वृद्धा ब्राह्मणी दो दो हाथ कूदने लगी और हसती हुई तालियां बजाती अति हर्षित हो कर सब लोगोंके सुनते हुए बोलने लगी कि 'वाह! वाह! यह बहुत बड़ा धर्मी बन बैठा है! धन ले लेनेके लिये ही इस बिचारे योगीके प्राण ले लिये।' इस अवसर पर आकाश मार्गमें खड़ी हुई वह योगीकी—हत्या विचारने लगी कि 'अब मैं किसे लगूं? दान देनेवाला याने छांस देनेवाला शेठ तो शुद्ध है, इसके मनमें अनुकम्पा के सिवाय उसे मार डालनेकी बिलकुल ही भावना न थी। तथा सर्प भी अनजान और चीलके पंजोंमें फंसा हुआ परवश था इसलिए उसकी भी योगीको मारनेकी इच्छा न थी। एवं चील भी अपने भक्ष्यको ले कर स्वाभाविक जा रही थी उसमें भी योगी को मारनेकी बुद्धि न थी। तथा अहीरनी भी बिचारी अज्ञात ही थी। यदि उसे इस बातकी खबर होती तो दूसरेका घात करने वाली छाँछको वह बेचती ही नहीं। इस लिये इन सबमें दोषी कौन गिना जाय?

एक भी दोषित मालूम नहीं देता। परन्तु इस निर्दोष सुन्दर सेठ पर बारम्बार असत्य दोषका आरोपण करनेवाली यह वृद्धा ही सबसे विशेष मलीनभाव की मालूम होती है। इस लिए मुझे इसीको लगना योग्य है।' यह विचार करके वह हत्या अकस्मात आकर वृद्धा ब्राह्मणी के शरीरमें प्रवेश कर गयी जिससे उसका शरीर काला, कुबड़ा, कुष्टी बन गया।

उपरोक्त दृष्टान्तका सार यह है कि किसीके दोषका निर्णय किये बिना कदापि असत्य दोषका आरोपण करके न बोलना यही विवेकका लक्षण है। असत्य दोष बोलनेसे होने वाली हानि पर उपरोक्त दृष्टान्त बतलाया है। अब सत्य दोषके विषयमें दूसरा दृष्टान्त दिखलाया जाता है।

एक कारीगर किसी एक राजाके पास सुन्दर आकार वाली तीन पुतलियाँ बनाकर लाया। उनका सुन्दर आकार देख कर राजा पूछने लगा कि इनकी क्या कीमत है। कारीगरने कहा 'राजन्! किसी चतुर पण्डितके पास परीक्षा कराकर आपको जो योग्य मालूम दे सो दें। पण्डितोंको बुला कर राजाने पुतलियों की परिक्षा करानी शुरू की। एक पण्डितने सूतका डोरा लेकर पहिली पुतलीके कानमें डाला परन्तु वह तत्काल ही मुखके आगे रखे हुए छिद्रमेसे बाहर निकल पड़ा। पण्डित बोले इस पुतलीका मूल्य एक पाई है। क्योंकि इसके कानमें जो पड़ा सो इसने बाहर निकाल डाला। दूसरी पुतलीके एक कानमें डोरा डाला वह तत्काल ही दूसरे कानमें से बाहर निकला। पण्डित बोले, हाँ! इससे भी यह समझा गया कि इसके कानमे जो जो बातें आवें वे एक कानसे सुन कर जैसे दूसरे कानसे निकाल दी जायँ याने सुन कर भी भूल जाय। यह दाखला मिलनेसे यह पुतली एक लाख रु०के मूल्यवाली है। फिर तीसरी पुतलीके कानमें भी डोरा डाला वह डोरा तत्काल ही उसके गलेमें उतर गया या पेटमें ही रह गया परन्तु बाहर न निकल सका। इससे पण्डितों ने यह परीक्षा की कि इस पुतलीका दाखला ऐसा लेना योग्य है कि जितना सुने उतना सब कुछ पेटमें ही रक्खे परन्तु बाहर नहीं निकलती। ऐसे गम्भीर—गहरे पेटवाले पुरुष भी बहु मूल्य होते हैं इस लिए इस पुतलीका मूल्य कुछ कहा नहीं जा सकता। राजाने खुशी होकर उन तीनों पुतलियोंको रख कर कारीगर को तुष्टि दान दे विदा किया।

इस दृष्टान्त पर विचार करनेसे मालूम होगा कि किसी भी पुरुषके सत्यदोष बोलनेमें भी मनुष्यकी एक पाईकी कीमत होती है।

"उचिताचारका उलंघन"

जो पुरुष सरल स्वभावी हो उसकी किसी भी प्रकारसे हँसी, मस्करी करना, गुणवान पर दोषारोपण करना, गुणवान पर मत्सर—ईर्षा, द्वेष करना, जो अपना उपकारी हो उसके उपकार को भूल जाना, जो बहुतसे मनुष्योंका विरोधी हो उसके साथ सहवास रखना, जो बहुतसे मनुष्योंका मान्य हो उसका अपमान करना, सदाचारी पुरुषों पर कष्ट आ पड़नेसे खुशी होना, भले मनुष्योंके कष्टको दूर करनेकी शक्ति होने पर भी सहाय न करना, देश, कुल, जाति प्रमुखके नियमोंको तोड़ना वगैरह उचित आचारका उलंघन किया

गिना जाता है या लोकविरुद्ध कहलाता है। इस प्रकारका अनाचार श्रावकोंके लिए सर्वथा परित्याज्य है।

थोड़ी सम्पदावाले को श्रीमन्तके जैसा और श्रीमन्त को दरिद्रीके जैसा वेष रखना, अथवा सदा मलीन ही वेष रखना, फटे टूटे कपड़े पहनना, लोकाचार से विरुद्ध वर्तन करना ऐसे ही कितने एक लोकविरुद्ध कार्योंका परित्याग करना चाहिए। यदि ऐसा न करे तो इस लोकमें भी वह अपयश और अपकीर्त्तिका कारण बनता है। श्री उमास्वाति वाचक भी अपने किये हुए ग्रन्थमें इस प्रसंग पर यह लिखते हैं कि 'धर्ममार्ग में प्रवर्तने वाले समस्त साधुवोंको धर्मसाधन करनेमें लोक भी सर्व प्रकारसे आधार—सहायक है, इसीलिये लोकाचार विरुद्ध और धर्माचार विरुद्ध इन दोनोंको त्यागना ही योग्य है।'

लोकविरुद्ध कार्य त्यागनेसे लोगोंकी प्रीति होती है, धर्मका सुखपूर्वक निर्वाह होता है, सब लोग प्रशंसा करते हैं, इत्यादि गुणकी प्राप्ति होती है। जिस लिए शास्त्रमें लिखा है कि—'इत्यादिक लोकविरुद्ध के त्याग करनेसे प्राणी सब लोगोंको प्रिय होता है। सब लोगोंका प्रिय होना यह भी मनुष्यको सम्यक्त्व-रूप वृक्षके प्रगट होनेमें बीजरूप है।'

"धर्मविरुद्ध"

मिथ्यात्व कृत्य न करना, निर्दयतया गाय, भैंस, बैलको बांधना, मारना, पीटना, खटमल, जूं आदि को वस्त्र वगैरह किसीके आधार बिना ही जहाँ तहाँ फेंक देना, चींटी, जूं, खटमल को धूपमे डालना, सिर को देखे बिना वैसे ही सिरमें बड़ी कंघी डाल कर बहुत दिनोंके न सुधारे हुए बालोंको बाहना, अथवा लीख वगैरह को उखाड़ डालना, ग्रीष्मऋतु में गृहस्थ को प्रति दिन तीन दफा पानी छानने की रीति जानते हुए भी वैसा न करना, पानी छाननेका कपड़ा फटा हुवा रखना, या गाढ़ा कपड़ा न रखना, या छलना छोटा रखना, या पतला जाली जैसा रखना, या पानी छान कर उसका संस्कार—अवशेष—जहांका जल हो उसे वहाँ न डालना, पानी छानते हुए पानीको उछालना, एक दूसरे कुवे या नदी तालावके पानीको इकट्ठा करना, धान्य, इंधन, शाक, सब्जी, ताम्बूल, पान, भाजी वगैरह बराबर साफ स्वच्छ किये बिना और धोये बिना ज्यों त्यों उपयोग में लेना, समूची सुपारी, समूचा फल, छुवारा, बाल, फली चोला—लोब्हिया—वगैरह समूचा ही मुंहमें डालना, टोंटीसे या ऊंची धार करके दूध, पानी या औषध वगैरह पीना इत्यादि ये सब कुछ धर्मविरुद्ध गिना जाता है।

चलते, बैठते, सोते, स्नान करते, किसी भी वस्तुको लेते या रखते हुए, रांधते हुए, खाते हुए, खोटते हुए, दलते हुए, पीसते हुए, औषध वगैरह घोटते हुए, घिसते हुए, पेशाब करते हुए, बड़ी नीति करते, थूकते, खंकार डालते हुए, श्लेष्म डालते हुए, कुल्ला करते, पानी छानते हुए, इत्यादि कार्य करते हुए यदि जीवकी यतना न करे तो वह धर्मविरुद्ध गिना जाता है। धर्मकरणी करते अनादर रखना, धर्म पर बहुमान न रखना, देव, गुरु, साधर्मी पर द्वेष रखना, देवद्रव्य, ज्ञानद्रव्य, साधारणद्रव्य, गुरुद्रव्य का परिभोग करना, प्रसिद्ध पापी लोगोंके साथ संसर्ग करना, धर्मिष्ट गुणवान का उपहास करना, अधिक कषाय करना, जिसमें

अधिक दोष लगता हो उस प्रकारका क्रयाणा—माल बेचना या खरीदना, या उसका व्यापार करना, खर-कर्म—पंद्रह कर्मादान, पापमय अधिकार, (पुलिस आदि) में प्रवृत्ति करना इत्यादि सब कुछ धर्मके विरुद्ध आचरण गिना जाता है। इस लिए इसका परित्याग करना चाहिए।

मिथ्यात्वादिक के अधिकारके विषयमें विशेषतः हम हमारी की हुई वंदितासूत्र की अर्थदीपिका में कह गये हैं। जिसे इस विषयमें अधिक जानना हो उसे वहांसे देखकर अपनी जिज्ञासा पूरी कर लेना उचित है।

देशविरुद्ध, कालविरुद्ध, राजविरुद्ध, लोकविरुद्ध, इन चार प्रकारके विरुद्धोंसे भी धर्मविरुद्ध अधिक दुःखप्रद है। इस लिए धर्मात्मा प्राणीको धर्मविरुद्ध सेवन करनेसे लोकमे अपकीर्त्ति, परलोक मे दुर्गति, आदि अनेक अवगुणों की प्राप्ति होती है। यह समझ कर इसका परित्याग करना चाहिए।

"उचित आचारका सेवन"

'उचिताचरण'—उचितका याने उचित आचारका आचरण याने सेवन करना, वह पिताका उचित, माताका उचित, इत्यादि नव प्रकारका बतलाया है। उस उचिताचरण के सेवनसे स्नेह वृद्धि, कीर्त्ति, बहुमान वगैरह कितने एक गुणोंकी प्राप्ति होती है। उनमेंसे कितने एक गुण बतलाने के विषयमें उपदेश मालाकी गाथा द्वारा उसका अधिकार बतलाते हैं—"इस लोकमे जो कुछ सामान्य पुरुषोंकी यशकीर्त्ति सुनी जाती है वह सचमुच एक उचित। आचरण सेवन करनेका ही माहात्म्य है।"

"उचिताचरण के नव भेद"

१ पिताका उचित, २ माताका उचित, ३ सगे भाईका उचित, ४ स्त्रीका उचित, ५ पुत्रका उचित, ६ सगे सम्बन्धियों का उचित, ७ गुरुजनो का उचित, ८ नगरके लोगोंका अथवा जाति वाले लोगोंका उचित, ९ परतीर्थी का उचित। इस तरह नव प्रकारका उचिताचरण करना चाहिये।

पिताका उचित कायासे, वचनसे और मनसे एवं तीन प्रकार का है। कायिक उचित—पिताके शरीरकी सेवा शुश्रूषा करना, वचनसे उचित—पिताका वचन पालन करना याने विनय पूर्वक—नम्रतासे उन की आज्ञा सुन कर प्रसन्नता पूर्वक तदनुसार आचरण करना, मनसे उचित—सर्व कार्योंमे पिताकी मनोवृत्ति के अनुसार आचरण करना, उनकी मानसिक वृत्तिके विरुद्ध वृत्ति या प्रवृत्ति न करना। मा बापके उपकारों का बदला देना बड़ा कठिन है।

माता पिताके उपकार का बदला इस लोकमें उन्हें धर्मकी प्राप्ति करा देनेसे ही दिया जा सकता है। इसके बगैर उनका बदला देनेका कोई उपाय नहीं। इसलिए ठाणांग सूत्रमें कहा है कि—'तीन जनोंके उप-कार का बदला देना दुष्कर है। १ माता पिताका, २ भरण पोषण करने वाले शेठका, और ३ धर्माचार्य का—जिसके द्वारा उसे धर्मकी प्राप्ति हुई हो उस धर्मगुरु का। इन तीनोंके उपकार का बदला देना बड़ा

दुष्कर है। सुबहसे ही ले कर कोई एक विनीत पुत्र अपने माता पिता को शतपाक और सहस्रपाक तेलसे मर्दन करके सुगन्धित द्रव्यों द्वारा उनके शरीरका विलेपन कर गन्धोदक, उष्णोदक और शीतोदक ऐसे तीन प्रकारके जलसे स्नान करा कर, सर्वालंकार से सुशोभित कर, उनके मनोज्ञ आहार प्राप्त करके अष्टादश—अठारह प्रकारके शाकपाक जिमावे तथा इस तरह खान पान करा कर जब तक वे जीवें तब तक उन्हें पीठ पर बिठा कर फिरावे, जहाँ उनकी इच्छा हो वहाँ ले जाय, उनके जीवन पर्यंत इस प्रकारकी सेवा करने पर भी उनके किये हुये उपकार का बदला कदापि नहीं दे सकता। परन्तु यदि वह माता पिताको अर्हत प्रणीत धर्मकी प्राप्ति करा दे, हेतु दृष्टान्तसे उस तत्वको उन्हें बराबर समझा दे, भेदभेदान्तर की कल्पना से समझा दे. कदाचित धर्ममें शिथिल हो गये हों तो उन्हें पुनः स्थिर कर दे तो हे आयुष्यमान शिष्यो! वह पुत्र अपने माता पिताके किये हुए उपकार का बदला दे सकता है।' इसी प्रकार उपकारी के उपकारों का बदला उतारने का प्रयत्न करना चाहिये।

कोई एक बड़ा दरिद्री किसी बड़े धनवन्त के पास आ कर आश्रय मांगे और उसके दिये हुए आश्रयसे वह दरिद्री उस शेठके समान ही श्रीमन्त हो कर विचरे तब फिर दैवयोग वह सहायकारी धनाढ्य स्वयं दरिद्री हो जाय तो वह अपने आश्रयसे धन पाने वालेके पास आवे तब यह हमारा शेठ है, इसकी ही कृपासे मैंने यह लक्ष्मी प्राप्त की है अतः यह सब लक्ष्मी इसीकी है इस विचारसे उसके पास जितनी लक्ष्मी हो सो सब उसे अर्पण कर दे तथापि उस शेठके प्रथम दिये हुए आश्रयका बदला देनेके लिये असमर्थ है। परन्तु केवली—सर्वज्ञ प्रणीत धर्मकी प्राप्ति करा दे तो उसके उपकार का बदला दे सकता है। अन्यथा किसी प्रकार पूर्ण प्रत्युपकार नहीं किया जा सकता।

"गुरुके उपकारों का बदला"

किसी एक उत्कृष्ट संयमी, श्रमण, माहण—महा ब्रह्मचारी, ऐसे गुणधारक साधुके पाससे एक भी प्रशंसनीय धर्मसम्बन्धी उपदेश वचन सुन कर चित्तमें निर्णय कर कोई प्राणी आयुष्य पूर्ण करके मृत्यु पा किसी एक देवलोक में देवतया उत्पन्न हुआ। फिर वह देवता अपने उपकारी धर्मगुरु के किये हुए उपकारों का बदला देनेके लिए यदि वे—साधु अकालके प्रदेशमें पहुंचा दे, अथवा किसी अटवीके विकट संकट में पड़े हों तो वहाँका उपद्रव दूर करे या जो चिरकाल पर्यंत न मिट सके ऐसा कोई भयंकर रोग उन्हें लागू पड़ा हो तो उसे दूर कर दे, तथापि उनके किये हुए उपकार का बदला नहीं दे सकता। परन्तु यदि कदाचित् वे धर्मसे पतित हो गये हों और उन्हें फिरसे धर्ममें दृढ़ कर दे, तो ही उनके किये हुये उपकारका बदला दे सकता है।

इस बातपर अपने पिताको धर्मप्राप्ति करा देने पर आर्यरक्षित सूरिका तथा केवलज्ञान हुए बाद भी अपने माता पिताको बोध होने तक निर्दूषण आहार वृत्तिसे अपने घरमें रहने वाले कुर्मापुत्र का दृष्टान्त समझना।

सर्व प्रकारके सुख भोग देने वाले शेठके किये हुए उपकार का बदला देने पर किसी मिथ्यात्वी शेठके

पाससे सहाय मिलनेसे स्वयं एक बड़ा व्यवहारी शेठ बना और कर्मयोग से जो मिथ्यात्वी शेठ था वह निर्धन हो गया इससे उसे पुनः धनवन्त करके अन्त में जैनधर्म का बोध देने वाले जिनदास श्रावक का दृष्टान्त समझना।

गुरुके प्रतिबोध पर निद्रादिक प्रमादमें आसक्त बने हुए अपने गुरु सेलक आचार्य को बोध देने वाले पंथक नामा शिष्यका दृष्टान्त समझना चाहिये।

"पितासे माताकी विशेषता"

पितासे माताका उचित इतना ही विशेष है कि स्त्रीका स्वभाव सदैव सुलभ होता है। इसलिए किसी प्रकार भी उसके चित्तको दुःख पहुंचे वैसा आचरण न करके उसका मन सदैव प्रसन्न रहे इस प्रकारका सरल दिलसे वर्ताव करना।

पितासे माता अधिक पूजनीय है। मनुस्मृति में भी कहा है कि 'उपाध्याय से दस गुना आचार्य, आचार्य से सौ गुना पिता और पितासे हजार गुनी अधिक माता मानने योग्य है।' अन्य भी नीति शास्त्रोंमें कहा है कि जब तक स्तनपान किया जाय तब तक ही पशुओंको, जब तक स्त्री न मिले तब तक ही अधम पुरुषोंको, जब तक कमानेकी या घर बसानेकी शक्ति न हो तब तक मध्यम पुरुषोंको, और जीवन पर्यंत उत्तम पुरुषोंको माता तीर्थके समान मानने योग्य है। मेरा यह पुत्र है इतने मात्रसे ही पशुकी माता, धन उपार्जन करनेसे मध्यमकी माता, वीरताके और लोकमें उत्तम पुरुषोंके आचरण समान आचरित अपने पुत्रके पवित्र चरित्रके सुननेसे उत्तम पुरुषकी माता प्रसन्न होती है। इस प्रकार पितासे भी माता अधिक मान्य है।

"सगे भाइयों का उचित"

छोटे भाईका बड़े भाईके प्रति उचिताचरण इस प्रकारका है। छोटा भाई अपने बड़े भाईको पिता समान समझे और सब कार्योंमें उसे बहुमान दे। कदाचित सौतिला भाई हो तथापि जिस प्रकार लक्ष्मणजी ने बड़े भाई रामचन्द्र का अनुसरण किया वैसे ही सौतिले बड़े भाईको पूछ कर कार्योंमें प्रवृत्ति करे। इस तरह बड़े भाईका सन्मान रखना।

ऐसे ही औरतोंमें भी समझना चाहिये। जैसे कि देवरानी जेठानीका सासुके समान मान रक्खे याने उसे पूछ कर ही गृह कार्योंमें प्रवृत्ति करे।

भाई भाईमें किसी प्रकारका अन्तर न रक्खे, जो बात करे सो सरलता से यथार्थ करे, यदि व्यापार करे तो पूछ कर करे तथा जो कुछ धन हो उसे परस्पर एक दूसरेसे छिपा न रक्खे।

व्यापारमें भाईको प्रवृत्ति करानेसे वह उसमें जानकार होता है। पूछ कर करनेसे प्रपंची दुष्ट लोगोंसे या दुष्ट लोगोंकी संगतिसे भी बचाव हो सकता है। किसी बातको छिपा न रक्खें। इससे द्रोह करके एकला रखनेकी बुद्धिका पोषण होता है। संकट आ पड़े उसका प्रतिकार करनेके लिये प्रथमसे ही निधान भंडार कर रखनेकी जरूरत है, परन्तु परस्पर छिपा कर कदापि न रखना।

कदाचित खराब संगतिसे अपना भाई वचन मान्य न करे और खराब रास्ते जाय तब उसके मित्रों द्वारा या सगे सम्बन्धियों द्वारा उसे उसके खराब प्रकृतिके लिए उपालम्भ दिलावे। सगे सम्बन्धी चाचा, मामा, ससुर, साला वगैरहके द्वारा उसे स्नेह युक्त समभावे परन्तु उसे स्वयं अपने आप उपालम्भ न दे, क्योंकि अपने आप धमकाने से यदि वह न माने और मर्यादाका उलंघन करे तो उससे अन्तिम परिणाम अच्छा नहीं आता।

खराब रास्ते जाते हुये भाई पर अन्दरसे स्नेह होते हुये भी बाहरसे उसके साथ रूठ गयेके समान दिखाव करना और जब वह अपना आचरण सुधार ले तब ही उसके साथ प्रेम युक्त बोलना। यदि ऐसा करने पर भी न माने तब यह विचार करना कि इसका स्वभाव ही ऐसा है। स्वभाव बदलने की कुछ भी औषधि नहीं इसलिये उसके साथ उदासीन भाव रखकर वर्ताव करना।

अपनी स्त्री और भाईकी स्त्री तथा अपने पुत्र पौत्रादिक और भाईके पुत्र पौत्रादिक पर समान नजर रक्खे। परन्तु ऐसा न करे कि, अपने पुत्रको अधिक और भाईके पुत्रको कुछ कम दे तथा सौतेली माताके पुत्र पर अर्थात् सौतीले भाई या उसके पुत्र, पुत्री, वगैरह पर अधिक प्रेम रक्खे क्योंकि उनका मन खुश न रक्खें तो लोकमें अपवाद होता है, और घरमें कलह उपस्थित होता है। इसलिये उनका मन अपने पुत्र पुत्रीसे भी अधिक खुश रखनेसे बड़ी शान्ति रहती है। इस प्रकार माता पिता भाई वगैरहकी यथोचित हिफाजत रखना। इसलिये नीति शास्त्रमें भी लिखा है कि—

जनकश्चोपकर्ता च। यस्तु विद्यां प्रयच्छति॥
अन्नदः प्राणदश्चैव। पंचैते पितरः स्मृताः॥ १॥

जन्म देने वाला, उपकार करने वाला, विद्या सिखाने वाला, अन्न दान देने वाला; और प्राण बचाने वाला, इन पांच जनोंको शास्त्रमें पिता कहा है।

राजपत्नी गुरोः पत्नी। पत्नी माता तथैव च॥
स्वमाता चोपमाता च। पंचैते मातरः स्मृताः॥ २॥

राजाकी रानी, गुरुकी स्त्री, सासु, अपनी माता, सौत माता, इन पांचोंको माता कहा है।

सहोदरः सहाध्यायी। मित्रं वा रोगपालकः॥
मार्गे वाक्यसखायश्च। पंचैते भ्रातरः स्मृताः॥ ३॥

एक मातासे पैदा हुये सगे भाई, साथमें विद्याभ्यास करने वाले मित्र, रोगमें सहाय करने वाले, और रास्ता चलते बात चीतमें सहाय करने वालोंको भाई कहा है।

भाई को निरन्तर धर्म कार्य्यमें नियोजित करना, धर्म कार्य्यमें याद करना चाहिये। इसलिये कहा है कि—

भवगिह मझ्झंमि पमाय। जलण जलिअंमि मोहनिदाए॥
उट्ठवइ जोअ सुअंतं। सो तस्सजणो परमबन्धु॥ ४॥

संसार रूप घरमें पंच प्रमाद रूप अग्नि सुलग रहा है उसमे प्राणी मोहरूप निद्रामें सो रहा है, जो मनुष्य उसे जागृत करे वह उसके उत्कृष्ट बांधव समान है।

भाइयोंके परस्पर प्रीति रखनेके वारेमे श्री ऋषभदेव स्वामीके अट्ठाणवें पुत्र भरत चक्रवर्तीके दूत आनेसे ऋषभदेव को पूछने गये तब भगवानने कहा कि, बड़े भाईके साथ विरोध करना उचित नहीं, संसार विषम है, सुखकी इच्छा रखने वालेको संसारका परित्याग ही करना योग्य है। यह सुनकर अट्ठाणवें भाइयोंने दीक्षा ग्रहण की परन्तु अपने वड़े भाई भरतके साथ युद्ध करनेको तैयार न हुये इसी तरह भाईके समान मित्रको भी समझना चाहिये।

अपनी स्त्रीको स्नेह युक्त वचन वोलनेसे और उसका सन्मान करनेसे उसे अपने और अपने प्रेमके सन्मुख रखना, परन्तु उसे किसी प्रकारका दुःख न होने देना। क्योंकि स्नेह पूर्ण वचन ही प्रेमको जिलाने का उपाय है। सर्व प्रकारके उचित आचरनेमें प्रेम और सन्मान पूर्वक अवसर पर उसे जैसा योग्य हो वैसा सन्मान देना यह एक ही सबसे अधिकतर गिना जाता है और इसीसे सदाके लिये प्रेम टिक सकता है। इसलिये कहा है कि—प्रिय वचनसे बढ़ कर कोई वशीकरण नहीं है सत्कारसे कोई भी अधिक धन नहीं है, दयासे वढ़कर कोई भी उत्कृष्ट धर्म नहीं है, और संतोषसे बढ़कर कोई धर्म नहीं।

अपनी सेवा सुश्रूषाके कार्यमें स्त्रीको प्रेम पूर्वक प्रेरित करे। उसे स्नान करानेके काममें, पैर दवानेके कार्यमे, शरीर मर्दन कराने के कार्यमें और भोजनादिके कार्यमें नियोजित करे। क्योंकि उसे ऐसे कार्यमे जोड़ रखने से उसे अभिमान नहीं आता। विश्वासके पात्र होती है, सच्चा प्रेम प्रकट होता है, अयोग्य वर्ताव करने से छुटकारा मिलता है, अपने कार्यमें शिथिलता आनेसे उपालम्भ का भय रहता है, गृह कार्य संभालने की चिवट रहती है, इत्यादि बहुतसे कारणोंका लाभ होता है।

तथा अपनी स्त्रीको देश, काल विभवके अनुसार वस्त्र भूषण पहराना, जिससे उसका चित्त प्रसन्न रहे। अलंकार और वस्त्रोंसे सुशोभित स्त्रियां ही गृहस्थके घरमें लक्ष्मीकी वृद्धि कराती है। इसलिए नीति शास्त्रमें भी कहा है कि—

श्री मंगलात्प्रभवति। प्रागल्भाच्च प्रवर्धते॥
दाक्ष्यात्तु कुरुते मूलं। संयमात्प्रतितिष्ठति॥

लक्ष्मी मांगलिक कार्योंसे प्रगट होती है, चातुर्यतासे व्यापार युक्तिसे वृद्धि पाती है, विचक्षणता से स्थिर होती है, और सदुपयोग से प्रतिष्ठा पाती है।

जैसे निर्मल और स्थिर जल पवनसे हिले विना नहीं रहता और निर्मल दर्पण भी पवनसे उड़ी हुई धूलसे मलीन हुये विना नही रहता वैसे ही चाहे जितने निर्मल स्वभाव वाली स्त्री हो तथापि यदि जहां अधिक मनुष्योंका समुदाय इकठ्ठा होता है, ऐसे नाटक प्रेक्षणादिकमें या रमत गमत देखनेके लिये उसे जाने दे तो अवश्य उसके मनमें खराब लोगोंकी चेष्टायें देखनेमे आनेके कारण मलीनता आये विना नहीं रहती। इसलिए जिसे स्त्रीको अपनी कुल मर्यादामें रखनेकी इच्छा हो उसे स्त्रियोंको नाटकमें या वाहियात मेले ठेलोंमें, या हलके खेल तमाशोंमें कदापि न जाने देना चाहिये।

रात्रिके समय स्त्रीको राज मार्ग या अन्य किसी बड़े मार्गमें, या दूसरे लोगोंके घर जानेकी मनाई करें। क्योंकि रात्रिके प्रचारसे कुल स्त्रियोंको भी मुनिके समान दोष लगनेका सम्भव है। धर्म कार्यमें कदाचित् प्रतिक्रमणादिक करने जाना हो तो भी माता, बहने, या किसी अन्य सुशीला स्त्रियोंके साथ, जाय। घरके कार्य दान देना, सगे सम्बन्धियों का सन्मान करना, रसोईका काम करना स्त्रीको इत्यादि कार्योंमें जोड रखना चाहिये। क्योंकि यदि उसे ऐसे कार्योंमें न जोड रक्खें तो वह काम काज करने में आलसु बन जाय, घरके काम बिगड़ें वह नयी चपलतायें सीखे, मनमें उदासी आवे, अनाचार सेवनकी बुद्धि पैदा हो और शरीर भी तन्दुरुस्त न रहे, इसलिये घरके काम काजोंमें जोड़ रखना उचित है कहा है कि—

शय्योत्पाटनगेह मार्जनपयः पाविश्यचुल्लिक्रिया।
स्थालीक्षालनधान्यपेषणभिदागोदोहतन्मंथने॥
पाकस्तत्परिवेषणं समुचितं पात्रादि शौचक्रिया।
स्वश्रु भर्तननन्ददेवृविनयाः कृत्यानि बद्धा बधूः॥

सोकर उठे बाद सबकी शय्या याने बिछौने उठाना, घरको साफ करना, पानी छानना, चूल्हा साफ करना, बासी बरतन मांजना, आटा पीसना, गाय, भैंसको हो तो उसे दूहना, दही बिलौना, रसोई करना रसोई किये बाद यथायोग्य परोसना, बर्तन धोना, सासू, पति, नणंद, देवर, जेठ, वगैरहका विनय करना, इतने कार्योंमें बहू नियुक्त ही रहती है। वैसे कार्योंमें उसे सदैव जोड़ रखना। उमास्वाति वाचकने प्रशमरति ग्रन्थमें भी कहा है कि:—

पैशाचिकमाख्यानं श्रुत्वा गोपायनं च कुलवध्वा॥
संयमयोगैरात्मा। निरन्तरं व्यापृतः कार्यः॥

मन वश करने पर आवश्यक निर्युक्ति की बृहत् वृत्तीमें कहा हुवा पिशाचका दृष्टान्त—एक शेठ प्रतिदिन गुरुसे विनती करता कि मुझे कोई ऐसा मन्त्र दो कि जिससे कोई देवता वश हो जाय। गुरुने उसे अयोग्य समझकर मना किया तथापि उसने आग्रह न छोड़ा, इससे गुरुने उसे एक सिद्ध मन्त्र दिया। उसके साधनसे उसे एक देवता वश हुआ। देवता कहने लगा—"मैं तेरे वश अवश्य हूं परन्तु यदि मुझे हरवक्त कुछ काम न सोंपेगा तो जब मैं निकम्मा हूंगा तब तेरा भक्षण कर डालूंगा।" इससे सेठ घबराया और गुरुके पास जाकर पूछने लगा कि—"अब मुझे क्या करना चाहिये।" गुरुने कहा—"उस देवतासे एक लंबा बांस मंगवाकर तेरे घरके सामने गाड़ दे और उसे उस बांस पर चढ़ने उतरनेकी आज्ञा दे। जब तुझे कुछ कार्य करानेकी जरूरत पड़े तब उसे बुलाकर करा लेना। बाकीका समस्त समय उसे बांस पर चढ़ उतरनेकी आज्ञा दे रखना। जिससे तुझे उसकी तरफसे कुछ भी भय न रहेगा।" उसने वैसे ही किया, जिससे वह देवता अन्तमें कंटाल कर उसके पास आ हाथ जोड़ कर बोला—"अब मुझे छुट्टी दो। जब मेरा काम पड़ेगा तब मैं याद करते ही फौरन आकर आपका काम कर दूंगा। ऐसा करनेसे वे दोनों सुखी हुए। यह पिशाचका दृष्टान्त याद रखकर अपनी कुलवधूका मन रूपी पिशाच ठिकाने रखनेके लिए हर

समय उसे निकम्मी न बैठा रख कर किसी न किसी उचित कार्यमें जोड़ रखना उचित है। एवं मुनिराज भी हमेशह संयम द्वारा अपने आत्मा को गोप रखते हैं। तथा अपनी स्त्रीको स्वाधीन रखना हो तो उसे अपना वियोग न कराना, क्योंकि निरन्तर देखते रहने से प्रेम बढ़ता है। प्रेम कायम रखनेके लिये शास्त्रमें लिखा है कि:—

अवलो अणेण आलावणेण। गुण कित्तणेण दाणेण॥
छन्देण वट्टमाणस्स। निब्भरं जायए पिम्मं॥

स्त्रीके सामने देखनेसे, उसे बुलानेसे, उसमें विद्यमान गुणोंको कहनेसे, धन, वस्त्र, आभूषण, देनेसे, वह ज्यों राजी रहे वैसा वर्ताव करने से निरन्तर प्रेमकी वृद्धि होती है।

अदंसणेण अइदंसणेण। दिठ्ठे अणालवंतेण॥
माणेण पम्मणेणाय। पंचविहं झिज्जए पिम्मं॥

बिलकुल न मिलनेसे, अतिशय, बड़ी घड़ी मिलनेसे दीखने पर न बुलानेसे, अभिमान रखनेसे, अपमान करनेसे इन पांच कारणोंसे प्रेम बन्धन ढीला हो जाता हैं।

उपरोक्त स्नेह वृद्धीके कारणोंसे प्रेम बढता है उससे विपरीत पांच कारणोंसे प्रेम घटता है; इस लिये स्त्रीको वियोगवती रखना ठीक नहीं। क्योंकि उससे प्रेम घट जाता है। अत्यन्त प्रवासमें फिरनेके कारण बहुत दिनों तक वियोगिनी रहने से उदास होकर कदाचित् अयोग्य वर्तन होनेका भी सम्भव है जिससे कुलमें कलंक लगने का कारण भी बन जाता है। इसलिये स्त्रीको बहुत दिन तक वियोगिनी न रखना चाहिये।

बिना किसी महत्वके कारण स्त्रीका अपमान न करना तथा एक स्त्री होने पर दूसरी व्याह कर उसका अपमान न करना। स्त्रीके रूंठ जाने पर या किसी कारण उसे गुस्सा आजाने से दूसरी स्त्री व्याह कर उसका कदापि अपमान न करना। ऐसा करने से मूर्खता के कारण उसे बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है इसलिये शास्त्रमें कहा है कि:—

बुभुक्षितो गृहायाति। नाप्नोत्यंबु छटामपि॥
अक्षालितपदः शेते। भार्याद्वयवशो नरः॥

दो स्त्रियोंके वश हुवा पुरुष जब भूखा होकर घर भोजन करने आय तो तब भोजन मिलना तो दूर रहा परन्तु कदाचित् पानी पीने को भी न मिले तथा स्नान करनेकी तो बात ही क्या कदाचित् पैर धोनेको भी पानी न मिले।

वरं कारागृहे क्षिप्तो। वरं देशांतर भ्रमी।
वरं नरकसंचारी। न द्वीभार्या पुनः पुनः॥

कैदमें पड़ना अच्छा है, परदेशमें ही फिरना श्रेष्ठ है और नरकमें पड़ना ठीक है परन्तु एक पुरुषको दो स्त्रियां करना बिलकुल ठीक नहीं। क्योंकि उसे अनेक प्रकारके दुःख भोगने पडते हैं। कदापि कर्म वश

दो स्त्रियां करनी पड़ें तो उन दोनोंका और उन दोनोंके पुत्रादिका मान, सन्मान, तथा वस्त्राभूषण देना वगैरह एक समान करना चाहिये। परन्तु न्यूनाधिक न करना। तथा जिस दिन जिस स्त्रीकी बारी हो उस दिन उसीके पास जाय परन्तु क्रम उलंघन न करे। क्योंकि यदि ऐसा न करे और सदैव नई स्त्रीके पास ही जाया करे तो उस स्त्रीको 'इत्वर पुरुष गमन' नामक दूसरा अतिचार तीसरे व्रतका भंग लगता है और पुरुषको भी दूसरी स्त्री भोगनेका अतिचार लगता है, इसलिये ऐसी प्रवृत्ति करना योग्य नहीं। अर्थात् दोनों स्त्रियोंका मान सन्मान सरीखा ही रहना चाहिये।

यदि स्त्री कुछ भी अघटित कार्य करे तो उसे स्नेह युत उचित शिक्षा दे कि जिससे वह फिरसे वैसे अकार्यमें प्रवृत्ति न करे। तथा यदि स्त्री किसी भी कारण से नाराज होगई हो तो उसे तत्काल ही मना लेना चाहिये क्योंकि यदि नाराज हुई स्त्रीको न मनावे तो उसकी बुद्धि तुच्छ होनेसे सोम भट्टकी स्त्रीके समान कुवेमें पड़ना या जहर खा लेना वगैरह अकस्मात् अनर्थका कारण बन जानेका सम्भव रहता है। इसी लिये स्त्रीके साथ सदैव प्रेम दृष्टि रखना चाहिये। परन्तु उस पर कदापि कठोर दृष्टि न रखना। "पंचालः स्त्रीषु मार्दवं" पंचाल पंडितकी लिखी हुई नीतिमें कहा है कि, स्त्रीके साथ कोमलता रखनेसे ही वह वश होती है, यदि स्त्रीसे कठिन वृत्ति रक्खी हो तो उससे सर्व प्रकारके कार्योंकी सिद्धि नहीं हो सकती, इस बातका अनुभव होता है। तथा यदि निर्गुण स्त्री हो तो उसके साथ विशेषतः कोमलतासे काम लेना योग्य है, क्योंकि जीवन पर्यन्त उसीके साथ एक जगह रहकर समय व्यतीत करना है। घरका सर्व निर्वाह एक स्त्री पर ही निर्भर है। गृहं हि गृहिणी विदुः गृहणी ही घर है" इस प्रकारका शास्त्र वाक्य होनेसे स्त्रीके साथ प्रेमका वर्ताव रखना।

स्त्रीको अपने धनकी हानि न कहना, क्योंकि यदि कही हो तो स्त्रियोंका स्वभाव तुच्छ होनेसे उनके पेटमें बात नहीं टिकती। इससे जहाँ तहाँ बोल देनेके कारण जो अपना बहुत समयका प्राप्त किया यश है सो भी खो बैठनेका भय रहता है। कितनी एक स्त्रियां सहजसी बातमें पतिकी आबरू खुवार कर डालती हैं, इसलिये स्त्रीके सामने धन हानिकी बात न कहना। एवं धनकी वृद्धि भी उसे न बतलाना, क्योंकि उसे कहनेसे वह फजूल खर्ची करनेमें बे पर्वाह हो जाती है।

स्त्री चाहे जितनी प्रिय हो तथापि उसके पास अपनी मार्मिक बात कदापि प्रगट न करनी, क्योंकि उसका कोमल हृदय होनेके कारण वह किसी भी समय उस गोप्य विचारका गुप्त भेद अपने मानसिक उफान के लिए अपनी विश्वासु सखियोंके पास कहे बिना न रहेगी। जिससे अन्तमें वह अपना और दूसरेका अर्थ बिगाड़ डालती है, और यदि कदाचित् कोई राज विरोधी कार्य हो तो उसमें बड़े भारी संकटका मुकाबला करना पड़ता है। इसी लिये शास्त्रकार लिखते हैं कि, "घरमें स्त्रीका चलन न रखना। कदाचित् घरमें उसकी चलती हो तो भले चले परन्तु व्यापारादिक कार्यमें तो उसके साथ कुछ भी मसलत न करना। वैसा न करने से याने उचितानुचित का विचार किये बिना हरएक कार्यमें स्त्रीकी सलाह ले तो वह अवश्य ही पुरुषके समान प्रबल बन जाती है। जब जिसके घरमें उसकी मूर्ख स्त्रीका चलन हुवा तब समझ लेना कि उसका घर विनाशके सन्मुख है इस बात पर यहां एक दृष्टान्त दिया जाता है।

"मंथर कोलीका दृष्टान्त"

किसी एक गांवमें मंथर नामक कोली रहता था। उसे वस्त्र बुननेका साधन बनानेकी जरूरत होनेसे वह जंगलमें एक सीसमके वृक्षको काटने गया। उस वक्त उस वृक्ष पर रहने वाले अधिष्ठायक देवने उस वृक्षको काटनेकी मनाई की। तथापि उसने साहस करके उसे काट ही डाला। उसकी साहसिकता देख कर प्रसन्न हो कर व्यन्तर देव बोला "मांग मांग! जो तू मांगे मैं सो ही तुझे दूंगा" मंथर बोला—"यदि सचमुच ऐसा ही है तो मैं अपनी औरत की सम्मति ले आऊं फिर मांगूगा। यों कह कर वह गांवमें आ कर जब घर आता है तब मार्गमें उसका एक नाई मित्र था सो मिल गया। उसने पूछा क्यों? आज जल्दी २ क्यों जा रहा है? उसने उसे सत्य हकीकत कह सुनाई, इससे उसने कहा कि, यदि ऐसा है तो इसमें स्त्रीको पूछनेकी जरूरत ही क्या है। जा देवताके पास एक छोटा सा राज्य मांग ले। परन्तु वह स्त्रीके वश होनेसे उसकी बात न सुनकर घरवाली की सलाह लेने घर गया। उसकी बात सुन कर स्त्रीने विचार किया कि:—

प्रवर्धमानपुरुषस्त्रयाणामुपघातकृत् ॥
पूर्वोपार्जितमित्राणां दाराणामथवेश्यानाम् ॥

जब पुरुष लक्ष्मीसे वृद्धि पाता है तब पुराने मित्र, पुरानी स्त्री, पुराना घर, इन तीन वस्तुओंका उपघात करता है याने पुरानेको छोड़ कर नये करता है।

उपरोक्त नीति वाक्य है। यदि मैं इसे राज्य या अधिक धन मांगनेकी सलाह दूंगी तो सचमुच मुझे छोड़ कर यह दूसरी शादी किये बिना न रहेगा! इससे मैं स्वयं ही दुखिया हो जाऊंगी। इस विचारसे वह उसे कहने लगी कि तू उस व्यन्तरके पास ऐसा मांग कि दो हाथोंके बदले चार हाथ कर दे और एक मस्तकके बदले दो मस्तक कर दे जिससे हमारा काम दूना होने लग जाय। इससे हम अनायास ही सुखी हो जायेंगे। औरत के वश होनेसे उसने भी व्यन्तर के पास वैसी ही याचना की। यक्षने भी सचमुच वैसा ही कर दिया, इससे वह बिलकुल कुरूप मालूम देता हुवा जब गांवमें आने लगा तब लोग उसे देख कर भयभीत हो गये और ईंट पथ्थरोंसे मारने लगे, अन्तमें गांवके लोगोंने उसे राक्षस समझ कर मार ही डाला इसलिये स्त्रीको पूछ कर काम करे तो उसका ऐसा हाल होता है, इस पर पंडितोंने एक कहावत कही है—

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा मित्रोक्तं न करोति यः ।
स्त्रीवश्यः स क्षयं याति यथा मंतरकोलिकः ॥

जिसे स्वयं बुद्धि नहीं और जो अपने मित्रके कथनानुसार नहीं चलता और जो सदैव स्त्रीके कहे मुजब चलता है, सचमुच ही मंथरकोली के समान वह नाशको प्राप्त होता है।

जो यह कहा है कि स्त्रीके पास अपनी गुप्त बात न कहना यह अपवादरूप है याने उस प्रकारकी अशिक्षित और असंस्कारी औरतोंके लिये हैं; परन्तु दीर्घबुद्धि रखने वाली और अपने पतिके हिताहित विचारको करने

वाली स्त्रियोंके लिये यह वाक्य न समझना। यदि कदाचित् स्त्री पतिसे भी चतुरा हो और उसे सदैव अच्छी सीख देती हो तो कार्य करनेमें उसकी सलाह लेनेसे विशेष लाभ होता है जैसे कि वस्तुपाल ने अपनी स्त्री अनुपमादेवी से पूछ कर कितने एक श्रेष्ठ कार्य किये तो उससे वह अधिक लाभ प्राप्त कर सका।

सु कुलगा याहि परिणय वयाहिं निच्छम धम्म निरयाहि ॥
सयण रमणीहि पीई। पाउण इसमाण धम्माहिं ॥

नीच कुलकी स्त्रीका संसर्ग, अपयश रूप होनेसे सदैव वर्जना चाहिये। वैसी नीच कुलकी स्त्रियोंके साथ वातचीत करनेका भी रिवाज न रखना, परन्तु श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुई, परिपक्व अवस्था वाली, निष्कपट, धर्मानुरागी, सगे सम्बन्धियों के सम्बन्ध वाली और प्रायः समान धर्मवाली स्त्रियोंके साथ ही अपनी स्त्रीको प्रीति या सहवास करनेका अवकाश देना।

रोगाइ सुनो विख्खई। सुसहाओ होई धम्मकज्जेसु ॥
रामाइ पणयनिगयं। उचिअं पाराण पुरिसस्स ॥

यदि अपनी स्त्रीको कुछ रोगादिक का कारण बन जाय तो उस वक्त उसकी उपेक्षा न करके रोगोपचार करावे और उसे धर्म कार्यमें प्रेरित करता रहे। अर्थात् तप, चारित्र, उजमना, दान देना, देव पूजा करना और तीर्थ यात्रा करना वगैरह कृत्योंमें उसका उत्साह बढ़ाते रहना चाहिये। सत्कृत्योंमें उसे धन खरचने को देना, वगैरह सहाय करना। परन्तु अन्तराय न करना, क्योंकि, स्त्री जो पुण्य कर्म करे उसमेंसे कितना एक पुण्य हिस्सा पतिको भी मिलता है तथा पुण्य कराणियोंमें मुख्यतया स्त्रियां ही अग्रेसर और अधिक होती हैं इस लिये उनके सत्कृत्योंमें सहायक बनना योग्य है। इत्यादि पुरुषका स्त्रियोंके सम्बन्ध मे उचिताचरण शास्त्रमें कथन किया है।

"पुत्रके प्रति उचिताचरण"

पुत्तंपइ पुणउचितअं। पिउणो लाले वाल भावंमि ॥
उम्मीलिय वुद्धि गुणं। कलासु कुसुलं कुणइ कमसो ॥

पुत्रका उचिताचरण यह है कि पिता पुत्रकी वाल्यावस्था में योग्य आहार; सुन्दर देश, काल, उचित विहार विविध प्रकारकी क्रीड़ा वगैरह करा कर लालन पालन करे, क्योंकि यदि ऐसे आहार विहार क्रीड़ामें वाल्यावस्था में संकोच किया हो तो उसके शरीरके अवयवों की पुष्टता नहीं हो सकती। तथा जब बुद्धिके गुण प्रगट हों, तब उसे क्रम पूर्वक कला सिखलाने में निपुण करे।

लालयेत्पंच वर्षाणि। दशवर्षाणि ताडयेत् ॥
प्राप्ते षोडषमे वर्षे। पुत्रो मित्रमिवाचरेत् ॥

-पांच वर्ष तक पुत्रका लालन पालन करे, दस वर्ष वाद, शिक्षा देनेके लिये कथनानुसार न चले तो उसे घुरकना और पीटा भी जा सकता है, परन्तु जब सोलह वर्षका हो जाय तबसे पुत्रको मित्रके समान समझना।

गुरुदेव धम्मं सुहिसयण। परियं कारवेइ निच्चंपि॥
उत्तम लोएहिं सम्मं। मित्तिभावं रयावेइ॥

देव, गुरु, धर्मकी संगति बाल्यावस्था से ही सिखलानी चाहिये। सुखी, स्वजन, सगे सम्बन्धी और उत्तम लोगोंके साथ उसकी प्रीति और परिचय कराना। यदि बाल्यावस्था से ही बालकको गुरु आदिक सज्जनों का परिचय कराया हो तो खराब वासनासे बच कर, वह प्रथमसे ही अच्छे संस्कारों से वलकल चीरीके समान आगे जाकर लाभकारी हो सकता है। उत्तम जाति, कुल, आचारवन्तों की मित्रता, बाल्यावस्था से ही हुई हो तो कदाचित काम पड़ने पर अर्थकी प्राप्ति न हो, तो भी अनर्थ तो दूर किया जा सकता है। जैसे कि अनार्य देशमें उत्पन्न हुए आर्द्रकुमार को अभयकुमार की मित्रतासे उसी भवमें सिद्धि प्राप्त हुई।

गिराहावेइ अपाणि समाण कुलजम्मरूव कन्नाणं॥
गिहिभारंमि नियुंजइ। पहुत्तणंवियरइ कमेण॥

पुत्रको समान वय, समान गुण, समान कुल, समान जाति और समान रूपवाली कन्याके साथ पाणिग्रहण करावे। उस पर घरका भार धीरे २ डालता रहे और अन्तमें उसे घरका स्वामी करे।

यदि समान वय, कुल, गुण, रूप, जाति वगैरह न हो तो स्त्री और पतिको ग्रहस्थावास दुःखरूप हो पड़ता है, परस्पर दोनों कंटाल कर अनुचित प्रवृत्तियों मे भी प्रवृत्त हो जाते हैं। इस लिये समान गुण, वयादिसे सुखशान्ति मिलती है।

"बेजोड़की सुजोड़"

सुना जाता है कि भोजराजा की धारानगरी में एक घरमें पुरुष अत्यन्त कद्रूप और निर्गुणी था परन्तु उसकी स्त्री अत्यन्त रूपवती और गुणवती थी। दूसरे घरमें इससे बिलकुल विपरीत था, याने पुरुष रूपवान् और उसकी स्त्री कद्रूप थी। एक समय चोरी करने आये हुए चोरोंने वैसी बेजोड़ देख दोनों स्त्रियोंको अदल बदल करके सरीखी जोड़ी मिला दी। सुबह मालूम होनेसे एक मनुष्य बड़ा खुशी हुवा और दूसरा बड़ा नाराज। जो नाराज हुवा था वह दरबारमें जाकर पुकार करने लगा। इससे इस बातका निर्णय करनेके लिए भोजराजा ने अपने शहरमें ढिंढोरा पिटवा कर यह मालूम कराया कि इस जोड़ेको अदल बदल करने वालेका जो हेतु हो सो जाहिर करे। इससे उस चोरने प्रगट होकर विदित किया कि—

मया निशी नरेन्द्रेण। परद्रव्यापहारिणा।
लुप्तो विधिकृतो मार्गो। रत्न रत्ने नियोजितं॥

मैंने चोरके राजाने विधाताका किया हुवा खराब मार्ग मिटा कर, रात्रिके समय रत्नके साथ रत्नकी जोड़ी मिला दी। अर्थात् बेजोड़को सुजोड़ कर दिया।

यह बात सुनते हुये भोज राजाने हंस कर प्रसन्नता पूर्वक यह हुक्म दिया कि चोरने जो योजना की है वह यथार्थ होनेसे उसे वैसे ही रहने देना योग्य है।

ऊपर जो लिखा है कि घरका कार्य भार पिता पुत्रको सौंप दे उसमें भी यही समझना चाहिए कि यदि पिताने अपनी हयाती में ही पुत्रको वैसे कार्यमें जोड़ दिया हो तो उनमें निरन्तर मन लगाये रखनेसे और मनमें उस तरफका विशेष ख्याल होनेसे उसे अपनी स्वच्छंदता का परित्याग करनेकी जरूरत पड़ती है। अपने मनमें उठते हुए खराब विचारोंको दबानेकी या धन रक्षण करनेकी जरूरत पड़ती है। धन कितनी मिहनत से पैदा किया जाता है इस बातका ख्याल हो जानेसे वह अपनी आयके मुताबिक खर्च करने की मेजना करता है। बल्कि आयसे भी कम खर्च करनेकी फरज पड़ती है। घरके आगेवानों द्वारा ही उसे घरके मालिकपन की प्रतिष्ठा दी हुई होती है; इसीसे उसकी शोभा बढ़ती है।

यदि दो पुत्रोंमें से छोटे पुत्रमें अधिक योग्यता हो तो परीक्षा करके उसे ही घरका कार्य भार सौंपा जा सकता है। ऐसा करनेसे कुटुम्ब का निर्वाह और शोभा बढ़ती है जैसे कि प्रसेनजित राजाने अपने सौ पुत्रोंकी परीक्षा करनेमें कुछ भी बाकी न उठा रक्खा, तब अपनी निर्धारित सब परीक्षाओं में अग्रेसरी सबसे छोटा पुत्र श्रेणिककुमार निकला, जिससे उसे ही राज्य समर्पण किया। इसी प्रकार गृहस्थ भी अपने तमाम पुत्रोंमेंसे गुणाधिक पुत्रको ही घरका कार्यभार सौंपे, तथापि दूसरों का मन भी प्रसन्न रखना। जैसी जिसकी बुद्धि हो उसे वैसे ही कार्य्य पर नियुक्त करना। जिससे सबका मन प्रसन्न रहे।

जैसे पुत्रका उचित बतलाया वैसे ही पुत्रियों के प्रति भी उचिताचरण समझ लेना। पुत्रवधू का उचित सर्व प्रकारसे उसकी बुद्धि और गुणपरसे समझ लेना चाहिये।

"बहूकी परीक्षा पर रोहिणीका दृष्टान्त"

राज्यगृही नामक नगरमें धन्ना नामक शेठ रहता था। उसने अपने चार पुत्रोंकी बहुओंकी बुद्धिकी परीक्षा करनेके लिए एक समय अपने सगे सम्बन्धियों का सम्मेलन किया, उस वक्त एक एक बहूको पांच पांच चावलके धान दे कर विदा किया। फिर कितने एक साल बाद फिरसे सगे सम्बन्धियों का सम्मेलन करके बड़ी पुत्रवधू को याद दिला कर उसे दिये हुये वे पांच धानके दाने मांगे तब उसने ले कर तुरन्त फेंक देनेके कारण नये दाने ला कर ससुरके हाथमें दे दिये; ससुरने दानोंको देख कर पूछा कि ये वही हैं? उसने कहा आपके दिये हुये तो मैंने फेंक दिये थे ये दूसरे हैं। दूसरी बहूको बुला कर दाने मांगने पर उसने कहा आपके दिये हुए दाने तो मैं खा गई थी। तीसरी बहूको बुला कर पूछा तब उसने कहा कि आपके दिये दाने मेरे गहनेके डबेमें रक्खे हैं, यदि आपको चाहिये तो ला दूं। यों कह कर उसने दाने ला दिये। फिर चौथी रोहिणी नामा पुत्रवधू से जब वे दाने मांगे तब उसने कहा यदि आपको वे दाने चाहिये तो मेरे साथ गाड़ियें भेजो। ससुरने पूछा कि पांच दानोंके लिये गाड़ियों का क्या काम? रोहिणी बोली—"आपके दिये हुए पांच दाने मैंने पीहरमें भेज कर खेतमें बोनेके लिए कह दिया था, अब उन्हें उसी प्रकार बोये जाते हुये कई वर्ष बीत गये इससे मेरे पीहर वालोंने उन पांच दानोंकी वृद्धि करके वखारें भर रक्खी हैं; इसलिए अब वे गाड़ी बिना किस तरह आ सकें अतः उन्हें गाड़ियों में लाया जा सकता है। धन्ना शेठने उन चार पुत्र-

वधुओं को बुद्धिकी परीक्षा करके प्रत्येकको जुदा २ गृहकार्य सोंपा। पहली उज्झिया—दाने फेंक देने वालीको घरका कचरा कूड़ा बाहर फेंकनेका काम सोंपा। दूसरी भक्खिया—दाने भक्षण करने वाली बहूको घरकी रसोई करनेका कार्य सोंपा। तीसरी रक्खिया—गहनेकी डब्बीमें दाने रक्षण करने वाली बहूको भंडार सुपूर्द किया। चौथी बहू रोहिणी दाने बढ़ाने वालीको घरका सर्वोपरि स्वामित्व समर्पण किया।

पच्चक्खं न पसंसइ। वसणो वहयाण कहइ दुखथ्थं॥
आयंव्ययपवसे संच। सोहण सयमिये हितो॥

पुत्रके सुनते हुए पिता उसकी प्रशंसा न करे, जब कभी पुत्र पर कुछ कष्ट आ पड़ा हो तब उसका बचाव करे, पुत्रके पास आय और व्ययका हिसाब लेता रहे। पुत्र पर हरएक प्रकारसे नजर रक्खे। पुत्रकी प्रशंसा न करनेके विषयमें लिखा है कि:—

प्रत्यक्षे गुरवः स्तुत्या। परोक्षे मित्र बांधवाः॥
कर्मान्ते दासभृत्याश्च। पुत्रा नैव मृता स्त्रियः॥

"गुरु—(माता, पिता, धर्मगुरु) की स्तुति, प्रशंसा उन्होंके सुनते हुए ही करना, मित्र, बन्धु जनोंकी स्तुति उनके परोक्षमें करना, नोकरोंकी प्रशंसा जब वे कुछ कार्य सुधार लाये हों तब करना, परन्तु पुत्रकी न करना और स्त्रीकी उसकी मृत्युके बाद प्रशंसा करना।"

उपरोक्त रीतिसे पुत्रकी प्रशंसा उसके प्रत्यक्ष या परोक्षमें न करना; तथापि उसके गुणसे मुग्ध हो जानेके कारण कदापि उसकी प्रशंसा करनी पड़े तो उसके सुनते हुए कदापि न करना। क्योंकि यदि पिता उठ कर पुत्रकी प्रशंसा करे तो वह पुत्र अभिमान में आ जाय। फिर वह आज्ञानुसार न चल सके, विना पूछे काम काज करने लग जाय। इत्यादि कितने एक अवगुणों की प्राप्तिका सम्भव है।

पुत्रको कुछ भी संकट आ पड़ा हो जैसे कि जुएमें हार जाना, व्यापार में फैल होना, निर्धन होना, किसीसे अपमान होना, मार खाना, तिरस्कृत होना, वगैरह किसी कष्टके आ जाने पर तत्काल ही उसे सहायक बनना, हर एक प्रकारसे उसका बचाव करना।

तथा पुत्रको जो कुछ खर्चनेके लिए दिया हो उसका पूरा हिसाब लेना। ऐसा करनेसे पुत्र प्रभुताका गर्व करनेसे अटक सकता है; और वह स्वच्छन्दी नहीं बनता।

दंसेइ नरिंदसभं। देसंतरभाव पयडणं कुणई॥
नचाइ अवच्चगयं। उचिअं पिउणो सुणेयव्वं॥

राज दरबारकी सभा दिखलाना, परदेशके स्वरूप प्रगट कर बतलाना, इत्यादिक पुत्रके प्रति उचित पिताको करना योग्य है। क्योंकि यदि पुत्रको राज दरबारका परिचय न कराया हो तो कदापि दैवयोग से उस पर कुछ अकस्मात् कष्ट आ पड़े तब उसे क्या करना, किसका शरण लेना, इस बातका बड़ा भय आ पड़ता है। इसलिए यदि सरकारी मनुष्यों के साथ पहलेसे ही परिचय हुवा हो तो उसके उपायकी योजना की जा सकती है। तथा दरबारी पुरुष अकस्मात् (वकीलादिक) के पास आ खड़ा रहनेमें और आगे

के परिचित वालोंके पास जानेमें बड़ा भार यंत्र पड़ता है। इस जगतमें हरएक स्वभावके मनुष्य हैं, जिसमें ऐसे भी हैं कि जो दूसरोंकी संपदा देख कर, स्वयं झुरा करते हैं। उनके हाथमें यदि कुछ जरा भी आ जाय तो वे तत्काल ही फंसा डालते हैं। विना कारण भी दूसरोंको फंसाने वाले दुष्ट पुरुष सदैव नीच कृत्योंके दाव तकते रहते हैं। इसलिए दरबारी मनुष्योंका परिचय रखना कहा है।

गन्तव्यं राजकुले द्रष्टव्या राजपूजिताः लोकाः।
यद्यपि न भवत्यर्था स्तथाप्यनर्था विलीयंते॥

"सब मनुष्योंको राज दरबार में जाना चाहिये, वहाँ जाने आनेसे राजाके मान्य मनुष्यों को देखना, उनके साथ परिचय रखना, क्योंकि, यद्यपि वे कुछ दे नहीं देते तथापि उनके परिचय से अपने पर पड़ा हुवा कष्ट दूर हो सकता है" देशान्तर के आचार या जाने आनेके परिचयसे सर्वथा अनजान हो तो दैवयोग से उसकी जरूरत पड़ने पर वहाँ जाते समय उसे अनेक मुसीबतें भोगनी पड़े। इसलिये पुत्रको प्रथमसे ही सब बातोंमें निपुण करना आवश्यक है।

पुत्रके समान पुत्रीका उचित ही जैसे घटित हो वैसे संभालना। उसमें भी माताको जैसे अपने पुत्र पुत्रीका उचित संभाले वैसे उससे भी अधिक सौतीसे पुत्र पुत्रीका उचिताचरण संभालने में विशेष सावधानता रखनी चाहिये। क्योंकि उन्हें बुरा लगनेमें कुछ भी देर नहीं लगती।

"सगे सम्बन्धियोंका उचित"

सयणाण समुचिअमिणं। जंते निअगेह वुढ्ढी कज्जेसु॥
सम्माणिज्जसयाविहु। करिम्मक्ष हाणीसुवी समीवे॥

पिता, माता, और बहूके पक्षके जो लोग हों, उन्हें सगे कहते हैं। उन सगोंका उचित संभालने में यह विचार है कि, सगे सम्बन्धी लोगोंके पड़ोस में रहे तो बहुतसे कार्योंकी हानि होती है। जिससे उनके घरसे दूर रहना और पुत्र जन्मादि के महोत्सव वगैरह कार्योंमें बुलाकर उन्हें अवश्य मान देना, भोजन वस्त्रादि देना। इस प्रकार उनका उचिताचरण करना।

सयमवि तेसिं वसणू सवे सुहो अव्विमति अंगिसया।
खीण विहवाण रोगाउराण कायव्व मुद्धरणं॥

अपने सगे सम्बन्धियोंके कष्ट समय विना ही बुलाये जाकर सहाय करना, और महोत्सवादिमें निमन्त्रण पूर्वक उन्हें सहायकारी बनना। यदि सगे सम्बन्धियों में कोई धर्म रहित हो गया हो या रोगादिसे ग्रस्त हो तो उसका यथाशक्ति उद्धार करनेमें तत्पर होना चाहिये।

आतुरे व्यसने प्राप्ते, दुर्भिक्षे शत्रुसंकटे,
राजद्वारे श्मशाने च, यस्तिष्ठति स बांधवाः॥

बीमारीमें किसी अकस्मात आ पड़े हुये कष्टमें दुर्भिक्षमें, शत्रुके संकटोंमें, राज दरबारी कार्योंमें और मृत्यु वगैरहके कार्यमें सहाय करे तो उसे बन्धु समझना चाहिये।

उपरोक्त कारणोंमें जो सहाय करे उसे ही भाई कहा है। इसलिये वैसे प्रसंगमें सगे सम्बन्धियों की सहाय करना न भूलना।

उपरोक्त गाथामें कह गये कि, सगे सम्बन्धियों का उद्धार करना, परन्तु तात्विक दृष्टिसे विचार किया जाय तो सगे सम्बन्धियों का उद्धार अपना ही उद्धार है। क्योंकि कुंए पर फिरते हुए अरघट्ट के समान भरे हुये या रीते घटोंके समान लक्ष्मी एक जगह स्थिर नहीं रहती। जिस प्रकार अरघट्ट की घटिकाय एक तरफसे भरी हुई आती हैं और दूसरी तरफसे रीती होकर चली जाती हैं, इसी प्रकार लक्ष्मी भी आया जाया करती है, इसलिये जिस समय अपना सामर्थ्य हो उस समय दूसरोंको आश्रय देना न चूकना चाहिये। यदि अपनी चलती के समय दूसरों को आश्रय दिया हो तो वक्त पड़ने पर वे लोग भी अपने उपकारी को सहाय देनेमें तत्पर होते हैं। क्योंकि सदा काल मनुष्यका एक सरीखा समय नहीं रहता।

खाइज्ज पिट्ठि मंसं, न तेसिं कुज्जा न सुक्क कलहं च,
तद् मित्ते हि मित्ति, न करिज्ज करिज्ज मित्ते हिं,

उसकी पीठका मांस खाना अच्छा है, परन्तु सूका कलह करना बुरा है, इससे सगे सम्बन्धियों के साथ शुष्क-निष्प्रयोजन कलह न करना। सगे सम्बन्धियों के शत्रुओंके साथ मित्रता न रखना, एवं उनके मित्रोंके साथ विरोध न रखना।

विना प्रयोजन एक हसी मात्रसे या विकथा करनेसे जो लड़ाई होती है उसे शुष्क कलह कहते हैं, वह करनेसे बहुत दिनकी प्रीति रूप लता छेदन हो जाती है।

तयभावे तग्गेहे, न वइज्ज च इज्ज अथ्थ सबंधं,
गुरु देव धम्म कज्जेसु, एक चित्ते हि होयव्वं,

जिस समय सम्बन्धियों के घरमें अकेली स्त्री हो तब उनके घर पर न जाना। सगोंके साथ द्रव्य सम्बन्धी लेना देना न रखना, गुरु, देव, धर्मके कार्य, सगे सम्बन्धी सब मिल कर ही करना योग्य है।

यदीच्छेद्विपुलं प्रीतिं, त्रीणि तत्र न कारयेत्,
वाग्वादमर्थसंबन्धं, परोक्षे दारभाषणं (दर्शनं) पाठांतरं

यदि प्रीति बढ़ानेकी इच्छा हो तो प्रीतिके स्थान में तीन बातें न करना। १ वचन विवाद (हाँ ना, करने से उत्पन्न होने वाली लड़ाई), २ द्रव्यका लेन देन, ३ मालिक के अभावमें उसकी पत्नीके साथ सम्भाषण न करना।

जब लौकिकके कार्यमें भी सगे सम्बन्धी मिलकर योग दें उसकी जिस प्रकार शोभा होती है, वैसे ही देव, गुरु, धर्मके कार्यमें इकट्ठे मिल कर योग देनेसे अधिक लाभ और शोभा बढ़ती है। इसलिए वैसे कार्योंमें सब मिलकर प्रवृत्ति करना योग्य है। पंचोंका कार्य यदि पंच मिलकर करें तो उसमें शोभा बढ़ती है। इसपर पांच अंगुलियोंका दृष्टान्त इस प्रकार है:—

अंगूठेके समीप की पहली तर्जनी अंगुली बोली कि लेखन कला, चित्र कला वगैरह सब काम करनेमें मैं ही

प्रधान हूं। अन्य भी काय करने में प्रायः मैं ही आगे रहती हूं। किसीको मेरे द्वारा वस्तु बतलाने में, निशानी करनेमें, दूसरेको वर्जन करनेके चिन्ह में यानी नाकके आगे अंगुलि दिखला कर निषेध करनेमें इत्यादि सब कामोंमें मैं ही अग्र सरी पद भोगती हूं। (मध्यमा कहती है) परन्तु तुझमें क्या गुण है ?

मध्यमा बोली—"चल चल ! मूर्खी, तू तो मुझसे छोटी है। देख सुन ! मैं अपने गुण बतलाता हूं, वीणा बजाने में, सितार बजाने में, सारंगी सितारके तार मिलाने में, ऐसे अनेक उत्तम कार्योंमें मेरी ही मुख्यता है, किसी समय जल्दीके कार्यमें चुकटी बजा कर अनर्थके कार्य अटकाने या भूतादि दोषके छलनेको दूर करनेके कार्यमें और मुद्रा वगैरह रचना, दिखलानेके कार्यमें मेरी ही प्रधानता है। तेरे बतलाये हुये चिन्होंसे उत्पन्न हुये दोषोंको अटकाने के लिए बतलाये जाते हुए मेरे चिन्ह में मैं ही आगेवानी भोगती हूं, तू क्यों व्यर्थकी बड़ाई करती है तेरेमें अवगुणके सिवाय और है ही क्या ! तू और अंगूठा दोनों मिलकर नाकका मैल निकालने के सिवा और काम ही क्या करते हो !"

अनामिका अंगुलि बोली—"तुम सबसे मैं अधिक गुणवाली हूं और मैं तुम सबके पूजनीया हूं। देव, गुरु, स्थापनाचार्य, स्वधर्मिक वगैरहकी नवांगी पूजा, चन्दन पूजा, मांगल्य कार्यके लिये स्वस्तिक करने, नन्द्यावर्तादि करने, जल, चन्दन, वास, आदिको, मन्त्रमें, माला गिनने वगैरह कितने एक शुभ कृत्योंमें मैं ही अग्र पद भोगती हूं।"

कनिष्ठा अंगुलि बोली—"मैं सबसे पतली हूं तथापि कानकी खुजली को दूर करनेके कार्यमें, अन्य किसी भी बारीक कार्यमें, भूत प्रेतादिक दूर करनेके कार्यमें मैं ही प्राधान्य भोगती हूं।"

इस प्रकार चारों अंगुलियां अपने २ गुणसे गर्वित हो जानेके कारण पांचवां अंगुठा बोला—"तुम क्या अपनी बड़ाई करती हो ? तुम सब मेरी स्त्रियां हो और मैं तुम्हारा पति हूं। तुममें जो गुण हैं वे प्रायः मेरी सहायता बिना निकम्मे हैं। जैसे कि, लिखने चित्र निकालने की कला, भोजनके समय, ग्रास ग्रहण करना, चुटकी बजाना, गांठ लगाना, शस्त्र वगरहका उपयोग करना, दाढी वगरह समारना। कतरना, लोंच करना, पींजना, धोना, कूटना, दलना, पीसना, परोसना, कांटा निकालना, गाय भैंसको दूहना, जाप करना, संख्या गिनना, केश गूंथना, फूल गूंथना, शत्रुकी गर्दन पकड़ना, तिलक करना, श्री तीर्थंकर देवके कुमार अवस्थामें, देवता द्वारा संचरित किया हुवा अमृत मुझमें ही तो होता है इत्यादि कार्य मेरे बिना हो नहीं सकते, इन सबमें मैं ही प्रधान हूं।"

यह बात सुनकर उन चारों अंगुलियोंने परस्पर संप किया और अंगूठेका आश्रय ले उसकी पत्नीएं तया रहीं। जिससे सबकी सब सुख पूर्वक अपना निर्वाह करने लगीं, इसलिये संप रखनेसे कार्यकी शोभा होती है।

"गुरुका उचित"

एमाइ सयणो चिअ, मह धम्मायरियस्स सुचिअं भणियो,
भत्ति बहुमाणपुव्वं, पेसि तिसं कंपि परिणामो,

इत्यादि सगे सम्बन्धियों का उचिताचरण बतलाया, अब धर्माचार्य धर्मगुरुका उचित बतलाते है उन्हें भक्ति बहुमान पूर्वक सुबह, दुपहर को, और सन्ध्या समय नमस्कार करना अन्तरंग मनसे प्रीति और वचनसे बहुमान, एवं कायासे सन्मान जो किया जाता है, उसे भक्ति कहते हैं।

तहं सिअ नीइए, आवस्सय पमुह कीच करणं च,
धम्मोवएस सवणं, तदंतीए सुद्ध सद्धाए,

गुर्वादिकी बतलाई हुई रीति मुजब आवश्यक प्रमुख धर्म कृत्य करने और शुद्ध श्रद्धा पूर्वक यहांके पांच धर्म श्रवण करना।

आएसं बहुमन्नई इमेसिं मणसावि कुणइ कायव्वं,
रुमई अवन्नवायं, थुइमायं पयडाइ सयावि,

गुरुकी आज्ञाको बहु मान दे, मनसे भी गुरुकी आसातना न करे, यदि कोई अन्य अवणवाद बोलता हो तो उसे रोकनेका प्रयत्न करे, परन्तु सुनकर बैठ न रहना। क्योंकि अन्य भी किसी महान् पुरुषका अपवाद न सुनना चाहिये तब फिर धर्म गुरुका अपवाद सुनकर किस तरह रहा जाय। यदि गुरुका अपवाद सुनकर उसका प्रतिवाद न करे तो दोषका भागी होता हैं। स्वयं गुरुके समक्ष और उनके परोक्ष गुणोंका वर्णन करता रहे, क्योंकि गुरु गुणवर्णनन करने में पुण्यानुबन्धी पुण्य प्राप्त होता है।

नहवई छिद्दप्पेही, सुहिव्व अणुअत्तए सुहदुहेसु।
पडिणीअ पच्चवायं, सव्व पयत्तेण वारेई॥

गुरुके छिद्र न देखे, गुरुके सुखदुःखों में मित्रके समान आचरण करे, गुरुके उपकार नहीं मानने वाले द्वेषी मनुष्यको प्रयत्न द्वारा निवारण करे।

यदि यहां पर कोई यह शंका करे कि, श्रावक लोग तो गुरुके मित्र समान ही होने चाहिये; फिर वे अप्रमादिक और निर्मल गुरुके छिद्रान्वेषी किस तरह हो सकते हैं? इसका उत्तर यह है कि, धर्म प्रिय श्रावक लोग यद्यपि गुरुके मित्र समान ही होते हैं तथापि भिन्न २ प्रकृतिवाले होनेके कारण जैसा जिसका परिणाम हो उसका वैसा ही स्वभाव होता है, इससे निर्दोषी गुरुमें भी वैसे मनुष्यको दोषावलोकन करनेकी बुद्धि हुआ करती है। इसलिए स्थानांग सूत्रमें भी कहा है कि, "सौतके समान भी श्रावक होते हैं," इसलिये जो गुरुका द्वेषी हो उसे निवारण करना ही चाहिये, शास्त्रमें भी कहा है कि:—

साहूण चेइआणय, पडिणीयं तह अवन्नवायं च।
जिण पवयणस्स अहियं, सव्वथ्थामेन वारेई॥

जो साधुका, मन्दिरका, प्रतिमाका और जिनशासन का द्वेषी हो या अवर्णवाद बोलनेवाला हो उसे सर्व शक्तिसे निवारण करे।

—:o:—

"यात्रियों के संकट दूर करने पर कुम्भारका दृष्टान्त"

सगर चक्रवर्ती के पौत्र भगीरथ राजाका जीव किसी एक पिछले भवमें कुम्भार था। किसी एक गांवमें रहनेवाले साठ हजार चोरोंने मिल कर यात्रा करने जाते हुए संघ पर लूट करनेका काम शुरु था उस वक्त वहां जाकर उसने भर सक प्रयत्नसे चोरोंका उपद्रव बन्द कराया। जिससे उसने बड़ा भारी पुण्य प्राप्त किया। इसी प्रकार यथाशक्ति सब श्रावकोंको उद्यम करना चाहिये।

खलि अंमि चोइओ गुरु, जणेणमन्नइ तहत्ति सव्वंपि।
चोएई गुरुजणपिहु, पमाय खलिएसु एगंते ॥

यदि प्रमादाचरण देखकर गुरु प्रेरणा करे तो उसे कबूल करना चाहिए; परन्तु यदि गुरुका प्रमादाचरण देखे तो उन्हें एकान्त में आकर प्रेरणा करे कि, महाराज! क्या यह उचित है? सच्चरित्रवान्, आप जैसे मुनिको इतना प्रमाद! इस प्रकार उपालम्भ दे।

कुणाई विणउवयारं, भत्तिए समय समुचिअं सव्वं।
गाढ गुणाणुरायं, निम्मायं वहइ हिययंमि ॥

समय पर उचित भक्ति पूर्वक सर्व विनयका उपचार करे, याने उन्हें जिस वस्तुकी आवश्यकता हो सो बहुमान पूर्वक समर्पण करे। गुरुके गुणका अनुरागी होकर हृदयसे निष्कपट रहे, सर्व प्रकारकी भक्ति करे, याने सामने जाना, उनके आजाने पर खड़ा होना, आसन देना, पैर दबाना, वस्त्र देने, पात्र देने, आहार देना और औषध वगैरह देना, एवं आवश्यकतानुसार वैद्यको बुलाना।

भावो वयारमेसिं, देसंतरओवि सुमरई सयावि।
इअ एवमाई गुरुजण, समुचिअ मुचिअं मुणेयव्वं ॥

ऊपर लिखा हुवा तो द्रव्य उपचार याने द्रव्य सेवा है, परन्तु यदि परदेश में गुरु हो तथापि उनसे समकित प्राप्त किया होनेके कारण, उन्हें निरंतर याद किया करे यह भावोपचार कहा जाता है। इत्यादिक गुरुका उचित समझना।

"नागरिकोंका उचित"

जथ्थ सयं निवसम्मई। नयरे तथ्थेव जेकरि वसंति,
ससमाण विचीणोते। नायरयानामवच्चंति ॥

स्वयं जिस नगरमें रहता हो, उस नगरमें रहनेवाले, स्वयं जो व्यापार करता हो उसी व्यापारका करनेवाले, या हरएक व्यापार के करनेवाले, समान प्रवृत्ति वाले सब नगरवासी गिने जाते हैं।

समुचिअ मिणमोतेसिं। जमेग चित्तेहिं सम सुहदुहेहिं ॥
वसणुस्सव तुल्लगमा। गमेहिं निच्चंपि होयव्वं ॥

इसका समुचित बतलाते हैं; सुखके कार्यमें या दुःखके कार्यमें एकचित्त होना याने दूसरोंके साथ सहानुभूति रखना, आपत्तिके समय या महोत्सव के समय भी एकचित्त होना। यदि इस प्रकार एक समान परस्पर वर्ताव न रखा जाय तो राज दरबारी लोग जैसे गीदड़ मांस भक्षणके लिए दौड़धूप करता है वैसे ही व्यापार में या किसी अन्य बातमें पारस्परिक अनबनाव होते ही दोनों पक्षको विपरीत समझा कर महान खर्चके गढ़े में उतारते हैं। इसलिये परस्पर सब मिल कर रहना और संप सलाहसे प्रवृत्ति करना योग्य है।

कायव्वं कज्जेविहु। नइक्कमिक्केण दंसणं पहुणो।
कज्जो न मंतभेत्रो। पेसुन्नं परिहरे सव्वं॥

जिस समय कोई राजद्वारी काम आ पड़े या अन्य कोई कार्य आ उपस्थित हो उस वक्त एक दम उतावल में साहस करके कार्य न कर डालना। राज दरबार में भी एकला न जाना। पांच जनोंने मिल कर जो विचार निश्चित किया हो वह अन्यत्र प्रगट न करना, और किसीकी निंदा चुगली न करना। यदि उतावल में आकर मनुष्य एकला ही कुछ काम कर आया हो तो उस कार्यकी जवाबदारी और सर्व भार उस मनुष्य पर ही आ पड़ता है या दूसरे लोगोंके मनमें भी यही विचार आता है कि इसे एकले को ही मान बड़ाई चाहिये; इस लिए लेने दो! इस विचारसे जब अन्य सब जुदे पड़ जायें, तब अकेलेको उलझन में आनेका सम्भव है। यदि बहुतसे मनुष्य मिलकर और उनमें एक जनेको आगेवान बना कर कार्य शुरु किया हो तो वह कार्य यथार्थ रीतिसे सुगमतया परिपूर्ण होता है। यदि एक जनेको बिना आगेवान किये ही पांच सौ सुभटों के समान सबके सब मान बड़ाईकी आकांक्षा रखकर कार्यके लिये जायें या कोई कार्य शुरु करें, तो अवश्यमेव उसमें विघ्न पड़े बिना न रहेगा। किसी भी कार्यमें अमुक एक मनुष्यको आगेवानी देकर अन्य सब परस्पर संप रखकर कार्य शुरू करें तो अवश्यमेव उससे लाभ ही होता है।

"सभी मानबड़ाई इच्छने वाले पांचसौ सुभटोंकी कथा"

कोई एक पांचसौ सुभटोंका टोला कि जो परस्पर विनय भावसे सर्वथा रहित थे और सबके सब अपने आपको सबसे बड़ा समझते थे एक समय वे किसी राजाके यहाँ नौकरी करनेके लिये गये। नौकरीकी याचना करने पर राजाने दीवानको आज्ञा दी कि इनकी योग्यतानुसार मासिक वेतन देकर इन्हें भरती कर लो। दीवानने उन लोगोंकी योग्यता जाननेके लिए उन्हें एक बड़ी जगहमें ठहराया और सन्ध्याके समय उनके पास एक चारपाई और एक बिछौना भेजा, इससे अभिमानी होनेके कारण उनमें परस्पर यह विवाद होने लगा कि, इस चारपाई पर कौन सोवेगा? उनमें से एक बोला—"यह चारपाई मेरे लिये आई है; इसलिए इस पर मैं सोऊंगा" दूसरा बोला कि नहीं, मेरे लिये आई है मैं सोऊंगा, इसी प्रकार तीसरा चौथा गर्ज सबके सब आधी रात तक इसी बात पर लड़ते रहे। अन्तमें जब वे पारस्परिक विवादसे कंटाल गये तब उस चारपाई को बीचमें रख कर उस चारपाई की तरफ पैर रख कर चारों तरफ सो गये। परन्तु उन्होंने अपनेमें से किसी एकको बड़ा मान कर चारपाई पर न सोने दिया। यह बात दीवानके नियुक्त किये हुए गुप्त

नौकरों ने जान कर सुबह दीवानको कह सुनाई; इससे दीवानने उन्हें तिरस्कार पूर्वक कहा कि जब तुम एक चारपाई के लिए सारी रात लड़ते रहे तब फिर युद्धके समय संप रख कर किस प्रकार अपने स्वामीका भला कर सकते हो! नोकरी न मिल कर उन्हे वहाँसे अपमानित हो वापिस लौट जाना पड़ा। इसलिए एक मनुष्यको आगेवान करके कार्य करना उचित और फलदायक है। शास्त्रमें कहा है कि:—

बहुनामप्यसाराणां। समुदायो जयावहः॥
तृणैरावेष्टिता रज्जु। यया नागापि बध्यते॥

यदि बहुतसे निर्माल्य मनुष्य भी मिल कर काम करें तो उसमें अवश्य लाभ ही होता है जैसे कि, बहुतसे घाँसकी बनाई हुई रस्सीसे मदोन्मत्त हाथी भी बाँधा जा सकता है।

पांच मनुष्योंने मिल कर गुप्त विचार किया हो और वह यदि अन्य किसीके सामने प्रगट किया जाय तो उससे उस कार्यमें अवश्य क्षति पहुंचेगी, बहुतसे मनुष्योंके साथ विरोध हो, राजभय हो, लोगोंमें अपयश वगैरह बहुतसे अवगुणों की प्राप्तिका सम्भव है, इसलिए जितने मनुष्योंने मिल कर वह विचार किया हो उनसे अन्यके समक्ष वह प्रगट न करना चाहिये। राजादिके पास भी मध्यस्थ रहनेसे बहुतसे फायदे होते हैं और दूसरोंके दूषण प्रगट करनेसे कई प्रकारकी आपत्तियों का सम्भव होता है। व्यापार रोजगार में भी यदि ईर्षा की जाय तो उससे बहुतसे दूषण प्रगट हुए विना नहीं रहते। इसलिये कहा है कि:—

एकोदराः पृथक्ग्रीवा। अन्यान्य फलकांक्षिणः॥
असंहता विनश्यन्ति। भारण्डा इव पक्षिणः॥

एक उदर वाले, जुदी जुदी गर्दन वाले—जुदे जुदे मुख वाले यदि भारंड पक्षी दोनों मुखसे फल खाने की इच्छा रक्खे तो वह उससे मृत्युको प्राप्त होता है; वैसे ही पारस्परिक विरोधसे या कुसंपसे मनुष्य तुरन्त ही नाशको प्राप्त होता है।

परस्परस्य मर्माणि। ये न रक्षन्ति जन्तवः॥
त एव निधनं यान्ति। वल्मीकोदर सर्पवत्॥

जो मनुष्य पारस्परिक मर्म गुप्त नहीं रखता और गुप्त रखने योग्य होने पर भी उसे दूसरोंके समक्ष प्रगट करता है वह वलिमकमें रहने वाले सर्पके समान शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

समुवट्ठिए विवाए। तुल्ल समाणेहिं चेवठ्ठायव्वं॥
कारण सावेक्खेहिं। विहूणो यव्वो न नयमग्गो॥

यदि किसी कारण लड़ाई हो जाय तो भी योग्य रीत्यनुसार ही बर्ताव रखना चाहिये, यदि कोई ऐसा कारण आ पड़े कि, जिसमें अपने सगे सम्बन्धियों को हरकत आ पड़ती हो या जाति भाइयोंको हरकत आती हो तो रिसवत दे कर या उपकार करके उन्होंका कार्य कर देना। परन्तु दाक्षिण्यता रख कर भी न्यायमार्ग न छोड़ना। न्यायमार्ग में रह कर सबका बचाव करनेके लिये प्रवृत्ति करना योग्य है।

बलिएहिं दुब्बलजणो। सुङ्ककराइहिं नाभिभवि अव्वो॥

थोवावराह दोसेहि। दंडभूमिं न नेयव्वो ॥

बलवान् पुरुषको चाहिये यदि उससे दुर्बलको सहायता न हो सके तो दुःख तो कदापि न दे। दान या कर वगैरह से लोगोंको दुखी न करे। कम अपराध से दंड हो वैसे किसीको राजदरबार में न घसीटे।

यदि राजा कर बढ़ाता हो तो भी अधिक लोगोंके अनुसार वर्ताव करना; परन्तु अन्य सब व्यापारियों से जुदा हो कर अपने बलसे अकेला ही विरोध करना योग्य नहीं। जंगलके तमाम जाति वाले पशुओं से विरोध रखने वाला और अति बलिष्ट भी सिंह जब कष्टमे आ पड़ता है तब उसका कोई भी सहायकारी नहीं बनता। अन्तमें मेघकी गर्जना सुन कर मदोन्मत्त हुवा सिंह मस्तक पटक कर एकला ही मर जाता है, परन्तु उसे कोई सहायकारी नहीं होता। इसलिये अपने सहायकारी दूसरे व्यापारी लोगोंके समुदाय में ही रह कर जो काम हो सो करना ठीक है। परन्तु एकला जुदा पड़ना योग्य नहीं, इसलिये नीतिमें लिखा है कि —

संहतिः श्रेयसि पुंसां। स्वपक्षे तु विशेषतः ॥
तुषैरपि परिभ्रष्टाः। न प्ररोहंति तंडुलाः ॥

संप रख कर कार्य करना बड़ा लाभकारी है, तथा अपने पक्षमें विशेष संप रखना अधिक लाभकारी है, क्योंकि यदि चावलोंके ऊपरका छिलका उतार डाला हो तो वे चावल अंकुर नहीं दे सकते।

गिरयो येन भिद्यन्ते। धरा येन विदार्यते ॥
संहतेः पश्य माहात्म्यं। तृणैस्तद् वारि वार्यते ॥

जिससे पर्वत भी भेदन किये जाते हैं, जिससे पृथ्वी भी विदीर्ण की जाती है इस प्रकारके घासके समुदाय का माहात्म्य तो देखो कि जिससे आताप या पानी भी रोका जाता है।

कारणिएहिं पिसमं। कायव्वो तान श्रथ्थ संबंधो।
किंपुण पहुणा सद्धिं। अप्पहिअं अहिल संतेहिं ॥

अपना श्रेय इच्छने वाले मनुष्यको कारणिक पुरुषोंके साथ—राजकार्यकारी पुरुषोंके साथ द्रव्य लेन देनका सम्बन्ध योग्य नहीं तब फिर समर्थ राजाके साथ लेन देनका व्यवहार रखना किस तरह योग्य कहा जाय?

जो बहुतसा खर्च रखते हों, धर्म कार्यमे या जाति वगैरह के कार्यमें या लज्जाके कार्यमें खर्चनेकी बड़ी उदारता रखते हों और बिना ही विचार किये खर्च किया करते हों ऐसे राजवर्गीय लोगो या राजमान्य लोगों को कारणिक कहते हैं। वैसे लोगोंके साथ द्रव्य लेन देनका सम्बन्ध कदापि न रखना चाहिये। क्योंकि क्योंकि उन लोगोंको जब धन लेना हो तब वे प्रीति करते हैं, मिष्ट वचन बोलते हैं, वचन सन्मान आदि आडम्बर दिखला कर, सज्जनपन का विश्वास दिलाकर मन हरन करते हैं। परन्तु जब उन्हें दिया हुवा धन वापिस मांगा जाय तब वे निष्कारण शत्रु बन जाते हैं और जिससे कर्ज लिया था उस परकी दाक्षिण्यता बिलकुल धो डालते हैं; इतना ही नहीं बल्कि कुत्ते के समान घुड़कियां देकर डराने लग जाते हैं, इस लिये शास्त्रमें लिखा है कि:—

द्विजन्मनः क्षमा मातुः। द्वेषः प्रेम पणस्त्रियः।
नियोगिनश्च दाक्षिण्य। मरिष्ठानां चतुष्टयं॥

विप्र पर क्षमा, माता पर द्वेष, गणिका पर प्रेम और सरकारी लोगों पर दाक्षिण्यता रखनेसे दुःखादि चतुष्टय मिलता है। अर्थात् ये चार कारण दुःख दिये बिना नहीं रहते।

राजदरबारी लोग ऐसे होते हैं कि दूसरोंका देना तो दूर रहा परन्तु कोई वैसा कारण उपस्थित करके लेनेवालों या उनके सगे सम्बन्धियों को फसा देते हैं कि जिससे पूर्वोपार्जित धन भी उसमें खर्च हो जाय। इस लिए नीतिशास्त्रमें कहा है किः—

उत्पाद्य कृतिमान्दोषान्। धनी सर्वत्र बाध्यते।
निर्धनः कृतदोषोपि। सर्वत्र निरुपद्रवः॥

नवीन बनावटी दोष उत्पन्न करके भी धनवानको पीड़ा दी जाती है, परन्तु निर्धन दोष करनेवाला होने पर भी सब जगह निरुपद्रव ही रहता है।

यदि सामान्य क्षत्रि हो तथापि जब उसके पास दिया हुवा धन वापिस मांगा जाता है तब वह तलवार पर नजर डालता है, तब फिर जो राज मान्य हो वह बल बतलाये बिना कैसे रहेगा। उसमें भी यदि कोई क्रोधी हो तो उसका तो कहना ही क्या है? इसलिये दरबारी राजकीय लोगोंके साथ द्रव्य लेन देनका सम्बन्ध रखनेसे बड़ी हरकत उपस्थित हो जाती है अतः उनके साथ लेन देन रखना मना किया है।

इस प्रकार समान वृत्ति वाले नागरिक लोगोंके साथ विचार करके वर्ताव करना, क्योंकि व्यापारियों में ऐसे बहुत होते हैं कि जो लेते समय गरीब बनकर लेते हैं परन्तु पीछे देते समय सामना करते हैं और राजदरबार तरफका भय बतलाते हैं

एयं परुप्परं नारयाण। पाएण समुचिआचरणं॥
परतित्थिआण समुचिअ। मर्हकिपि भणामि लेसेण॥

प्रायः इस प्रकार नागरिक लोगोंका पारस्परिक उचिताचरण बतलाया अब परतीर्थी अन्य दर्शनी लोगोंका उचित भी कुछ बतलाते हैं।

एएसि तित्थिआण। भिरूवट्ठ मुवट्ठिआण निअगेहे॥
कायव्व मुचिअ किच्चं। विसेसेआ राय महिआणं॥

पर तीर्थीके विषयमें यही उचित है कि यदि वह भिक्षा लेने के लिये घर पर आवे तो उसे दानादि देना और यदि राज मान्य हो तो उनसे विशेष मान सन्मान देकर भी उसका उचिताचरण संभालना।

जइवि न मणंमिभत्ती। न पक्खवाओअ तगय गुणेसु॥
उचिअं गिहागएसु। तहवि धम्मो गिहिण इमो॥

यद्यपि परतीर्थी पर कुछ भक्ति नहीं है एवं उनमें रहे हुए गुण पर भी कुछ पक्षपात नहीं तथापि गृहस्थका यह आचार है कि अपने घर पर आये हुएका उचित सत्कार करे।

गेहागयाण मुचिअं। वसणावडिआण तह समुद्धरणं॥
दुहियाण दयाएसो। सव्वेसिं सम्मओ धम्मो॥

जो घर पर आवे उसका उचित संभालना, जिस पर कष्ट आ पड़ा हो उसे सहाय करना दुखी पर दया रखना, यह आचार सबके लिये समान ही है।

जैसा मनुष्य हो उसे वैसा ही मान देना, मीठे वचन बोलना, आसन देना, आनेका प्रयोजन पूछना, उसकी याचनाके अनुसार कार्य कर देना यह सब उचिताचरण गिना जाता हैं। दुखी, अन्धे, लूले, लंगड़े रोगी वगैरह पर दया रखना, उन्होंके सुखकी योजना करना, क्योंकि जो पुरुष लौकिक कार्यके उचिताचार को समान रीतिसे मान सन्मान देनेमें विचक्षण हो वही मनुष्य लोकोत्तर कार्यमें विचक्षण हो सकता है। जिसने लोकोत्तर पुरुषोंके उपदेश पाकर धर्मके सर्वाचार को जाना हो वही लौकिक और लोकोत्तर कार्यके सूक्ष्म भेद समझ कर यथोचित आचरण करनेमें समर्थ होता है। इसलिए कहा है कि "सबका उचित करना, गुण पर अनुराग रखना, जिन वचन पर प्रीति रखना, निर्गुणी पर भी मध्यस्थ रहना, ये समकित के लक्षण है"

मुंचन्ति न मज्जायं, जलनिहिणो नाचलाविहं चलंति,
न कयावि उत्तमनरा, उचिअआचरणं विलंघंति॥"

जिस तरह समुद्र अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता, पर्वत चलायमान नहीं होता वैसे ही उतम-पुरुष भी उचित आचारका उलंघन नहीं करता।

तेणांचिअ जयगुरुणो, तित्थयराविहु गिहत्थ भावंमि,
अम्मापिउण मुचिअं, अम्भुट्ठाणाई कुव्वंति॥

इसी कारण जगद्गुरु तीर्थंकर देव जब गृहस्थावस्था में होते हैं तब अपने माता पिताका अभ्युत्थानादिक उचित विनय करते हैं।

इस तरह नौ प्रकार के उचित बतलाये। अवसर पर उचित वचन बोलना भी महा लाभकारी होता है।

"समयोचित वचन पर दृष्टान्त"

मल्लिकार्जुन राजाका विजय करके चौदह करोड रुपये, छह मुडे (याने चौदह भार। मुडा और भार एक प्रकारके तोल हैं) के प्रमाण सच्चे मोती, चांदीके बत्तीस बड़े बड़ शृंगार कोटी नामक साड़ी, माणेकका वस्त्र, विषहर छीप, (जिस छीपसे सब तरहके जहर दूर हो जांय) इतने पदार्थ तो सारभूत उसके दरबारमें थे, ये सब और कितने एक पदार्थ उसके भंडारमें लेकर जब अम्बड दीवानने आकर कुमारपाल राजाको भेट किये तब तुष्टमान हुये राजाने उसे राज पितामह नामक विरुद एक करोड़ रुपये और चौबीस जातिवान् घोड़े इनाममें दिये। यह सब सामग्री उसने घर ले जाते हुये रास्तेमें खड़े हुये याचकोंको दे दी। किसीने कुमार-

पालके पास जाकर इस बातकी चुगली की कि आपका दिया हुवा धन अम्बडने याचकोंको दे दिया, तब क्रोधित होकर अम्बड़ मन्त्रीको बुलाकर धमकाते हुये राजाने कहा कि, अरे! तू मुझसे भी बढ़कर दानेश्वरी हो गया? उस समय हाथ जोड़ कर अम्बड मन्त्री बोला कि स्वामिन्! आपके पिता तो सिर्फ बारह गांवके ही मालिक थे और मेरे स्वामी आप तो अठारह देशके अधिपति हैं। तब फिर जिसका स्वामी अधिक हो उसका नौकर भी अधिक हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या? अवसर उचित इतना वचन बोलते ही प्रसन्न होकर राजाने उसे पुत्रपद पर स्थापन कर पहलेसे भी दुगना इनाम दिया। इसलिये अवसर पर उचित वचन महान् लाभकारी होता है। अतः कहा है कि: -

दाने याने माने, शयनासनपानभोजने वचने,
सर्वत्रान्यत्रापि हि, भवति महारसमयः समयः॥

दान देनेमें, वाहन पर चढ़नेमें, मान करने में, शयन करने में, बैठनेमें, पानी पीनेमें, भोजन करने में, वचन बोलनेमें, और भी कितने एक स्थानमें यदि अवसर हो तो ही वह महारसमय मालूम होते हैं।

इसलिये समयको जानना यह भी एक औचित्यका बीज है, इस कारण कहा है कि:—

औचित्यमेकमेकत्र, गुणानां कोटिरेकतः॥
विषायते गुणग्रामः औचित्य परिवर्जितः॥

यदि करोड़ गुन एक तरफ रक्खे जांय और औचित्य दूसरी तरफ रक्खा जाय तो दोनों समान ही होते हैं, क्योंकि जहां औचित्य नहीं ऐसे गुणका समुदाय भी विषमय मालूम होता है। इसी कारण सर्व प्रकारकी अनुचितता का परित्याग करना चाहिये। जो कार्य करनेसे मूर्ख कहलाया जाय तब उसे अनुचित समझ कर त्याग देना उचित है। इस विषय पर मूर्ख शतक बड़ा उपयोगी है। यद्यपि वह लौकिक शास्त्रोक्त है तथापि विशेष उपयोगी होनेके कारण यहां पर उद्धृत किया जाता है।

"मूर्खशतक"

शृणु मूर्खशतं राजं स्तं तं भावं विवर्जय
येन त्वं राजसे लोके, दोषहीनो मणिर्यथाः

हे राजन्! मूर्खशतक सुनो! और मूर्ख होनेके कारणोंका त्याग कर कि जिससे तू दोष रहित मणिके समान शोभाको प्राप्त होगा।

सामर्थ्ये विगतोद्योगः स्वश्लाघ प्राज्ञपर्षदि,
वेश्या वचसि विश्वासी, प्रत्ययो दम्भ डंबरः॥ २॥

१ शक्ति होने पर भी जो उद्योग न करे २ पंडित पुरुषोंकी सभामें अपने ही मुखसे अपनी प्रशंसा करे। ३ वेश्याके वचन पर विश्वास रक्खे, ४ कपट मालूम हो जाने पर भी उसका विश्वास रक्खें, वह मूर्ख हैं।

धूतादि वित्तबद्धाशः, कृष्याद्यायेषु संशयी,

निर्बुद्धिः प्रौढकार्यार्थी, विविक्तरसिको वणिक् ॥ ३ ॥

५ जुआ खेलनेसे मुझे अवश्य धनकी प्राप्ति होगी ऐसी आशा रख कर बैठा रहे। ६ खेती या व्यापार मे मुझे धन प्राप्त होगा या नहीं इस शंकासे निरुद्यमी हो बैठा रहे। ७ निर्बुद्धि होने पर बड़े कार्यमें प्रवृत्ति करे। ८ व्यापारी होने पर अनेक प्रकारके शृंगारादिक रसमें ललचा जाय।

ऋणेन स्थावरक्रेता, स्थविरः कन्यकावरः

व्याख्याता चाश्रुते ग्रन्थे, प्रत्यक्षार्थेप्यपन्हवी ॥ ४ ॥

९ करज लेकर स्थावर मिलकत करावे या खरीद करे। १० वृद्धावस्था हुये बाद छोटीसी कन्याका पति बने। ११ नहीं सुने हुये ग्रन्थोंकी व्याख्या करे। १२ प्रत्यक्ष अर्थोंको दबावे।

चपलापतिरीर्षालु, शक्तशत्रु रशंकितः,

दत्वा धनान्यनुशायी, कविना हठपाठकः ॥ ५ ॥

१३ धनवान होकर दूसरोंकी ईर्षा करे। १४ समर्थ शत्रुका भय न रक्खे। १५ धन दिये बाद पश्चात्ताप करे १६ हठसे पंडितके साथ करार धरे।

अप्रस्तावे पटुर्वक्ता, प्रस्तावे मौनकारक,

लाभकाले कलहकृन्मन्युमान् भोजनक्षणे ॥ ६ ॥

१७ समय विना उचित वचन बोले। १८ अवसरके समय बोलनेके वचन न बोल सके। १९ लाभके समय क्लेश करे। २० भोजनके समय अभिमान रक्खे।

क्रीणार्थ स्थूललाभेन, लोकोक्तौ लिक्लष्ट संकृतः।

पुत्राधीने धने दीनः पत्नीपक्षार्थ याचकः ॥ ७ ॥

२१ अधिक धन मिलनेकी आशासे अपने पास हुये धनको भी चारों तरफ फैला दे। २२ लोगोंकी प्रशंसासे आगे पढ़नेका अभ्यास बन्द रक्खे। २३ पुत्रको प्रथमसे सब धन स्वाधीन किये बाद उदास बने। २४ ससुरालकी तरफसे मदत माँगे।

भार्याखेदात्कृतोद्वाहः पुत्रकोपात्त दन्तकः,

कामुकस्पर्द्धया दाता गर्ववान्मार्गणोक्तिभिः ॥ ८ ॥

२५ स्त्रीके साथ कलह होनेसे दूसरी शादी करे। २६ पुत्र पर क्रोध आनेसे उसे मारडाले। २७ कामी पुरुषोंकी ईर्षासे अपना धन वेश्या आदि पतित क्रियोंमे उड़ावे। २८ याचको की प्रशंसासे अभिमान रक्खे।

धीदर्पान्न हितश्रोता, कुलोत्सेकादसेवकः

दत्वार्थान्दुर्लभान्कामी, दत्वा सुमार्गल्क मर्गगः ॥ ९ ॥

२९ मैं बुद्धिमान हूं, इस विचारसे अपने हितकी भी बात न सुने। ३० कुलके मदसे दूसरेकी नोकरी न करे। ३१ दुर्लभ पदार्थ देकर वापिस माँगे। ३२ दाम लिये बाद चोर मार्गसे चले।

लुब्धे प्रभूजि लाभार्थी, न्यायार्थी दुष्ट शास्तरि

कायस्थे स्नेह बद्धाशः क्रूरे मन्त्रिणि निर्भयः ॥ १० ॥

३३ लोभी राजाके पाससे धन प्राप्त करनेकी आशा रक्खे। ३४ न्यायार्थी दुष्ट पुरुषोंकी सलाह माने। ३५ कायस्थ—राज कार्य कर्ताके साथ स्नेह रखनेकी इच्छा करे। ३६ निर्दय दीवान होने पर निर्भय रहे।

कृतघ्ने प्रतिकारार्थी, नीरसे गुण विक्रयी ॥
स्वास्थ्ये वैद्यक्रियाशोषी, रोगी पथ्यपराङ्मुखः ॥ ११ ॥

३७ कृतघ्न मालूम हुये बाद गुण करके उपकार इच्छे। ३८ गुणके जानकार को गुण दे। ३९ निरोगी होते हुये भी दवा खाय। ४० रोगी होते हुये भी पथ्य न रक्खे।

लोभेन स्वजनत्यागी, वाचा मित्रविरागकृत् ॥
लाभकाले कृतालस्यो, महर्द्धिः कलहप्रियः ॥ १२ ॥

४१ लोभसे—खर्च होनेके भयसे सगोंका सम्बन्ध त्याग दे। ४२ मित्रका न्यूनाधिक वचन सुनकर मित्रता छोड़ दे। ४३ लाभ होनेके समय आलस्य रक्खे। ४४ धनवान होकर कलहप्रिय हो।

राज्यार्थी गणकस्योक्त्या, मूर्खमंत्रे कृतादरः ॥
शूरो दुर्बलबाधायां, दृष्टदोषांगनारतिः ॥ १३ ॥

४८ ज्योतिषी के कहनेसे राज्यकी अभिलाषा रक्खे। ४६ मूर्खके विचार पर आदर रक्खे। ४७ दुर्बल पुरुषोंको पीड़ा देनेमें शूरवीर हों। ४८ एक दफा स्त्रीके दोष—अपलक्षण देखनेके बाद उस पर आसक्त रहे।

क्षणरागी गुणाभ्यासे, संचयेऽन्यैः कृतव्ययः ॥
नृपानुकारी मौनेन, जने राजादिनिन्दकः ॥ १४ ॥

४९ गुणके अभ्यास पर क्षणवार राग रक्खे। शिक्षण प्रारंभ किये बाद उसे पूर्ण किये बिना ही छोड़ दे, वह क्षणरागी कहलाता है। ५० दूसरेकी कमाईका व्यय करे। ५१ राजाके समान मौन धारण कर बैठे रहे। ५२ और दूसरे लोगोंमें राजादिकी निन्दा करे।

दुःखे दर्शितदैन्यार्त्तिः, सुखे विस्मृत दुर्गतिः ॥
बहुव्ययोऽल्परक्षाय, परीक्षाय विषाशिनः ॥ १५ ॥

५३ दुःख आ पड़ने पर दीन होकर चिन्ता करे। ५४ सुख पाये बाद पहले दुःखको भूल जाय। ५५ थोड़े कामके लिये अधिक खर्च करे। ५६ परीक्षा करनेके लिये विष खाय। (विष खानेसे क्या होता है यह जाननेके लिये उसे भक्षण करे)

दग्धार्थो धातुवादेन, रसायनरसः क्षयी ॥
आत्मसंभावनास्तब्धः क्रोधादात्मवधोद्यतः ॥ १६ ॥

५७ सोना चांदी बनता है या नहीं इस भावनासे याने कीमिया बनानेकी क्रियामें अपने द्रव्यको खर्च डाले। ५८ रसायनें खाकर अपनी धातुका क्षय करे। ५९ अपने मनसे अहंकारी होकर दूसरेको न नमे। ६० क्रोधावेशमें आत्मघात करे।

मित्र्यं निष्फलसंचारी, युद्धमेक्षी शराहतः ॥
च्यी शक्त विरोधेन, स्वल्पार्थः स्फीतडंबरः ॥ १७ ॥

६१ बिना ही काम प्रतिदिन निकमा फिरा करे। ६२ बाण लगने पर भी संग्राम देखा करे। ६३ बड़े आदमीके साथ विरोध करके हार खाय। ६४ कम पैसेसे आडंबर दिखलावे।

पंडितोऽस्मीति वाचालः सुभटोऽस्मीति निर्भयः ॥
उद्वेजनोति स्तुतिभिः, मर्मभेदी स्मीतोक्तिभिः ॥ १८ ॥

६५ मैं पंडित हूं इस विचारसे अधिक बोला करे। ६६ मैं शूरवीर हूं इस धारणासे निर्भय रहे। ६७ अत्यन्त स्तुतीसे उद्वेग पाय। ६८ हास्यमें मर्मभेद होनेवाली बात कह डाले।

दरिद्रहस्त न्यस्तार्थः संदिग्धेऽर्थे कृतव्ययः ॥
स्वव्यये लेखकोद्वेगी, दैवाशा त्यक्तपौरुषः ॥ १९ ॥

६९ दरिद्रीके हाथमें धन दे। ७० शंकावाले कार्योंमें प्रथमसे ही खर्च करे। ७१ अपने खरचमें खर्च हुये द्रव्यका हिसाब करते समय अश्चात्ताप करे। ७२ कर्म पर आशा रखकर उद्यम न करे।

गोष्टीरति दरिद्रश्च, दैन्य विस्मृतभोजनः ॥
गुणहीनः कुलश्लाघी, गीतगायी खरस्वरः ॥ २० ॥

७३ दरिद्री होकर बातोंका रसिया हो। ७४ निर्धन हो और भोजन बिसर जाय। ७५ गुणहीन होने पर भी अपने कुलकी प्रशंसा करे। ७६ गधेके समान स्वर होनेपर गाने बैठे।

भार्याभयान्निषिद्धार्थी, कार्पण्ये नाप्तदुर्दशाः ॥
व्यक्तदोष जनश्लाघी, सभायमध्याद्विनिर्गतः ॥ २१ ॥

७७ मेरी स्त्रीको यह काम पसंद होगा या नहीं। इस विचारसे उसे काम ही न बतावे। ७८ द्रव्य होने पर भी कृपणता से बद हालतमें फिरे। ७९ जिसमें प्रत्यक्ष अवगुण हो लोकोंमें उसकी प्रशंसा करे। ८० सभामेंसे बीचमें ही उठकर चल पड़े।

दूतो विस्मृतसंदेशः कासवाश्चोरिकारतः ॥
भूरि भोजव्ययी कीर्त्यै, श्लाघायै स्वल्पभोजनः ॥ २२ ॥

८१ संदेश जाननेवाला होने पर सन्देश भूल जाय। ८२ खासीका दर्दी होनेपर चोरी करने जाय। ८३ कीर्तिके लिये भोजनमें अधिक खर्च करे। ८४ लोग मेरी प्रशंसा करेंगे इस विचारसे भोजन करते समय भूखा उठे।

स्वल्पभोज्येति रसिको, विप्रलब्धश्चचाटुभिः ॥
वेश्या सपत्नकलही, द्वयोर्मंत्रे तृतीयकः ॥ २३ ॥

८५ कम खानेके पदार्थमें अधिक खानेका रसिया हो। ८६ कपटी और मीठे वचन बोल कर ठगित करे ८७ वेश्याको सौत समान समझ कर उसके साथ कलह करे। ८८ दो जने गुप्त बात करते हों वहां जाकर खड़ा रहे।

राजप्रसादे स्थिरधी, रन्यायेन विवर्धिषुः ॥
अर्थहीनोर्थकार्याथी, जने गुह्य प्रकाशकः ॥ २४ ॥

८९ राजाकी कृपामें निर्भय रहे। ९० अन्याय करके विशेष वृद्धि करनेकी इच्छा रक्खे। ९१ दरीद्रीके पाससे धन प्राप्त करनेकी इच्छा रक्खे। ९२ अपनी गुप्त बात लोगोंसे प्रकाशित करे।

अज्ञातप्रतिभूः कीर्त्यौः हितवादिर्ना मत्सरी ॥
सर्वत्र विश्वस्तमनो, न लोक व्यवहारवित् ॥ २५ ॥

९३ कीर्तिके लिये अज्ञात कार्यमें गवाही दे। या साक्षी हो। ९४ हित बोलने वाले के साथ मत्सर रक्खे। ९५ मनमें सर्वत्र विश्वास रक्खे। ९६ लौकिक व्यवहारसे अज्ञात रहे।

भिक्षुकश्चोष्णभोजी च, गुरुश्च शिथिलक्रियः ॥
कुकर्मण्यपि निर्लज्जः, स्यान्मूर्खश्च सहासगीः ॥ २६ ॥

९७ भिक्षुक होकर उष्ण भोजनकी इच्छा रक्खें। गुरु होकर करने योग्य क्रियामें शिथिल बने। ९९ खराब काम करनेसे भी शरमिन्दा न हो। १०० महत्वकी बात बोलते हुए हसता जाय।

उपरोक्त मूर्खके सौ लक्षण बतलाये, इनके सिवाय अन्य भी जो हानि कारक और खराब लक्षण हों सो भी त्यागने योग्य हैं। इस लिए विवेक विलास में कहा है कि—जंभाई लेते हुए, छींकते हुए, डकार लेते हुए, हसते हुए इत्यादि काम करते समय अपने मुखके सन्मुख हाथ रखना। सभामें बैठ कर नासिका शोधन, हस्त मोडन, न करना। सभामें बैठकर पलौथी न लगाना। पैर न पसारना, निन्दा विकथा न करना, एवं अन्य भी कोई कुत्सित क्रिया न करना। यदि सचमुच हसने जैसा ही प्रसंग आवे तो भी कुलीन पुरुषको ज़रा मात्र स्मित—होंठ फरकने मात्र ही हास्य करना, परन्तु अट्टहास्य—अति हास्य न करना चाहिये। ऐसा करना सज्जन पुरुषके लिए बिलकुल अनुचित है। अपने अंगका कोई भाग बाजेके समान बजाना, तृणोंका छेदन करना, व्यर्थ ही अंगुलिसे जमीन खोदना, दांतोंसे नख कतरना इत्यादि क्रियायें उत्तम पुरुषोंके लिए सर्वथा त्यागनीय हैं। यदि कोई चतुर मनुष्य प्रशंसा करे तो गुणका निश्चय करना। मैं क्या चीज हूं; या मुझमें कौनसे गुण हैं, कुछ नहीं? इस प्रकार अपनी लघुता बतलाना। चतुर मनुष्य को यदि किसी दूसरेको कुछ कहना हो तो विचार करके उसे प्रिय लगे ऐसा बोलना। यदि नीच पुरुषने कुछ दुर्वचन कहा हो तो उसके सामने दुर्वचन न बोलना। जिस बातका निर्णय न हुवा हो उस बात सम्बन्धी किसी भी प्रकारका निश्चयात्मक अभिप्राय न देना। जो कार्य दूसरेके पास कराना हो उस पुरुष को प्रथमसे ही अन्योक्ति दृष्टान्त द्वारा कह देना कि यह काम करनेके लिए हमने अमुकको इतना दिया था, अब भी जो करेगा उसे अमुक दिया जायगा। जो वचन स्वयं बोलना हो यदि वही वचन किसी अन्यने कहा हो तो अपने कार्यकी सिद्धिके लिए वह वचन प्रमाण—मंजूर कर लेना। जिसका कार्य न किया जाय उसे प्रथमसे ही कह देना चाहिए कि भाई! यह काम मुझसे न होगा! परन्तु अपनेसे न होते हुए कार्यके लिए दूसरेको कदापि दिलासा न देना; या कार्य करनेका भरोसा न देना। विचक्षण पुरुषको यदि कभी

शत्रुका दूषण बोलना पड़े तो अन्योक्ति में बोलना। माता, पिता, आचार्य, रोगी, महिमान, भाई, तपस्वी, वृद्ध, स्त्री, बालक, वैद्य, पुत्र, पुत्री, सगे सम्बन्धी, गोत्रीय, नौकर, बहिन सम्बन्धी कुटुम्ब, और मित्र इतने जनोंके साथ सदैव ऐसा वचन बोलना कि जिससे कदापि कलह होनेका प्रसंग उपस्थित न हो! मिष्ट वचन से मनुष्य दूसरोंको जीत सकता है। निरंतर सूर्यके सामने, चंद्र सूर्यके ग्रहणके सामने, गहरे कुएंके पानीमें और सन्ध्या के आकाश सन्मुख न देखना। यदि कोई मैथुन करता हो, सिकार खेलता हो, नग्न पुरुष हो, यौवनवति स्त्री हो, पशु क्रीड़ा (मैथुन लड़ाई) और कन्याकी योनि इन्हें न देखना। तेलमें, जलमें, शस्त्रमें, पेशावमें और रुधिरमें समझदार मनुष्यको अपना मुख न देखना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे मनुष्यका आयुष्य टूटता है।

अंगीकार किये वचनका त्याग न करना। गई वस्तुका शोक न करना। किसी समय भी किसी की निन्दा उच्छेद न करना। बहुतोंके साथ वैर विरोध न करना। विचक्षण मनुष्यको हर एक कार्यमें हिस्सा लेना चाहिए और उस कार्यको निस्पृहता और प्रमाणिकता से करना चाहिये। सुपात्र पर कदापि मत्सर न रखना। यदि जाति समाजमे कुछ विरोध हो तो सब मिलकर उसका सुधार कर लेना चाहिए। यदि ऐसा न किया जाय तो जाति समाजमें मान्य मनुष्योंके मानकी हानि होती है और वैसा होनेसे लोगोंमें अपवाद भी होता है। जो मनुष्य अपनी जाति या समाज पर प्रेमभाव न रखकर परजाति पर प्रेम रखता है वह मनुष्य कुकर्दम राजाके समान नाशको प्राप्त होता है। पारस्परिक कलह करनेसे जाति या समाज नष्ट हो जाता है और पानीके साथ ही जिस प्रकार कमल वृद्धि पाता है वैसे ही यदि संपके साथ जाति या समाज कार्य करे तो वह भी वैसे ही वृद्धि प्राप्त करता है। दरिद्री, विपत्तिमें पड़े हुए मित्रको सधर्मी, अपनी जातिमें बड़ा गिना जानेवाले, अपुत्र भगिनी, इतने मनुष्योंका बुद्धिवानको अवश्य पालन करना चाहिये। अन्य किसीको कुछ प्रेरणा करके कार्य करानेमें, दूसरेकी वस्तु बेचनेमें अपने कुलका अनुचित कार्य करनेमें चतुर मनुष्यको कदापि विचार रहित उतावल न करनी चाहिये। महाभारत आदिमें भी कहा है कि पिछली चार घड़ी रात रहने पर जागृत होना और धर्म अर्थका चिन्तन करना। कभी भी उदय और अस्तके समय सूर्यको न देखना। दिनमें उत्तर दिशा सन्मुख बैठकर और रातको दक्षिण दिशा सन्मुख बैठकर विशेष हाजत लगी हो तो इच्छानुसार लघुनीति या बड़ीनीति करना। देवार्चनादिक कार्य करना हो, या गुरु वन्दन करना हो या भोजन करना हो तब जलसे आचमन करके ही करना चाहिये। विचक्षण पुरुषको द्रव्यो-पार्जन करनेका अवश्य उद्यम करना चाहिये। क्योंकि हे राजन्! द्रव्योपार्जन करनेसे ही धर्म, काम, वगैरह साधे जा सकते हैं। जो द्रव्य उपार्जन किया हो उसमेंसे चौथाई हिस्सा पारलौकिक कार्यमें खर्चना। और चौथाई हिस्सेका संचय करना। एवं अर्ध आगमेंसे अपना प्रतिदिन का सब प्रयोजन भरन पोषण करना, परन्तु विना प्रयोजन में न खरचना। मस्तक के बाल संवारना, दर्पण देखना, दतवन करना, देव-पूजा करना, इत्यादि कार्य प्रातःकाल ही याने पहले पहरमें ही करने चाहिए। अपना हित इच्छनेवाले मनुष्य को, अपने घरसे दूर ही पिशाव वगैरह मलोत्सर्ग करना चाहिये। टूटे फूटे आसन पर न बैठना। फूटे हुये

कांसीके बरतनमें या खुले केश रखकर भोजन न करना। और नग्न होकर स्नान न करना। नग्न होकर न सोना, कभी भी मलीन न रहना, मलीन हाथ मस्तक को न लगाना, क्योंकि समस्त प्राण मस्तकका आश्रय करके रहते हैं। विवेकी पुरुषको अपने पुत्र या शिष्यके बिना, अन्य किसीको शिक्षा देनेके लिए न मारना पीटना। और शिष्य या पुत्रको यदि पीटनेका काम पड़े तो उसके मस्तकके बाल न पकड़ना। एवं मस्तक में प्रहार भी न करना। यदि मस्तकमें खुजली आई हो तो दोनों हाथसे न खुजाना। और बारम्बार निष्प्रयोजन मस्तक स्नान न करना। चंद्रग्रहण देखे बिना रात्रिके समय स्नान न करना, भोजन किये बाद और गहरे पानीवाले जलाशयमें स्नान न करना। प्रिय भी असत्य वचन न बोलना, दूसरेके दोष प्रगट न करना। पतितकी कथा न सुनना, पतितके आसन पर न बैठना, पतितका भोजन न करना और पतितके साथ कुछ भी आचरण न करना। शत्रु, पतित, मदोन्मत्त, बहुत जनोंका वैरी और मूर्ख, बुद्धिवान मनुष्यको इतनोंके साथ मित्रता न करनी चाहिए, एवं इनके साथ इकला मार्ग भी न चलना चाहिये। गाड़ी, घोड़ा, ऊंट या वाहन वगैरह यदि दुष्ट हों तो उन पर न बैठना चाहिये। नदी या भेखडकी छायामें न बैठना चाहिये, जिसमें अधिक पानी हो ऐसी नदी—वगैरह के प्रवाहमें अग्रेसर होकर प्रवेश न करना चाहिये। जलते हुए घरमें प्रवेश न करना चाहिये। पर्वतके शिखर पर न चढना, खुले मुख जंभाई न लेना, श्वास और खांसी इन दोनोंको उपाय द्वारा दूर करना। बुद्धिमान मनुष्य को रास्ता चलते समय ऊंचा, नीचा, या तिरछा न देखना चाहिये, परन्तु पृथ्वी पर गाड़ीके जुये प्रमाण दृष्टि रखकर चलना चाहिये। बुद्धिमान् मनुष्य को दूसरेका जूठा न खाना चाहिये। उष्ण काल और वर्षाऋतुमें छत्री रखना एवं रात्रिके समय हाथमें लकड़ी रखना चाहिये। माला और वस्त्र दूसरेके पहने हुये याने उतरे हुए न पहिनना चाहिये। स्त्री पर ईर्षा रखनेसे आयुष्य क्षीण होता है। हे भरत महाराज! रात्रिके समय पानी भरना, छानना, एवं दहीके साथ सत्तु खाना, और भोजनादिक क्रिया सर्वथा वर्जनीय हैं।, हे महाराज! दीर्घ आयुष्य की इच्छा रखनेवाले को मलीन दर्पण न देखना चाहिये, एवं रात्रिमें भी दर्पण न देखना। हे राजन्! कमल और कुवलय (चन्द्रविकासी कमल) सिवा अन्य किसी भी जातिके लाल रंगके पुष्पोंकी माला न पहनना। पंडित पुरुषको सफेद पुष्प अंगीकार करना योग्य है। सोते समय जुदा ही वस्त्र पहनना, देवपूजाके समय जुदा पहनना और सभामें जाते समय दूसरे वस्त्र पहनना। वचनकी, हाथकी और पैरकी चपलता, अतिशय भोजन, शय्याकी, दीयेकी, अधमकी और स्तंभकी छाया दूरसे ही छोड़ देना। नासिका टेढी नहीं करना, अपने हाथसे अपने या दूसरेके जूते न उठाना, सिरपर भार न उठाना, बरसात के समय दौड़ना नहीं। नई बहू को, गर्भवती को, वृद्ध, बाल, रोगी, या थके हुयेको पहले जिमाकर गृहस्थको पीछे जीमना चाहिये। हे पांडव श्रेष्ठ! अपने घरके आंगनमें गाय, वाहन, वगैरह होने पर उन्हें घास, पानी दिलाये बिना ही जो भोजन करता है वह केवल पाप भोजन करता है। और जो गृहांगणमें याचकोंके खड़े हुए उन्हें दिये बिना जीमता है वह भी पाप भोजन करता है। जो मनुष्य अपने घरकी वृद्धि इच्छता हो उसे वृद्ध, अपने जाति भाई, मित्र, दरिद्री जो मिले उसे अपने घरमें रखना योग्य है। बुद्धिमान

पुरुषको अपमान को आगे रखकर मानको पीछे करके अपने स्वार्थका उद्धार करना योग्य है। क्योंकि स्वार्थभ्रष्टता ही मूर्खता है।

जहांपर जानेसे सन्मान न मिलता हो, मीठे वचन तक न बोले जाते हों, जहांपर गुण और अवगुण की अज्ञता हो ऐसे स्थान पर कदापि न जाना। हे युधिष्ठिर! जो बिना बुलाये किसीके घरमें या किसीके कार्यमें प्रवेश करता है, बिना बुलाये बोलता है, और बिना दिये आसन पर बैठता है उसे अधम पुरुष समझना चाहिये। असमर्थ होने पर क्रोध करे, निर्धन होने पर मानकी इच्छा रक्खे, अवगुणी होते हुए गुणी जन पर द्वेष रक्खे, तीनों जनोंको मूर्ख शिरोमणि समझना। माता पिताका भरन पोषण न करने वाला पूर्व कृत कार्यको याद करके मांगने वाला, मृतककी शय्याका दान लेने वाला मर कर फिर पुरुष नहीं बनता। अपनेसे अधिक बलवानके कब्जेमें आये हुये बुद्धिमान पुरुषको अपनी लक्ष्मी बचानेके लिये वैतसी वृत्ति रखना, परन्तु किसी समय उसके साथ भुजंगी वृत्ति न रखना।

वैतसी वृत्ति—नम्रता वृत्ति रखने वाला मनुष्य क्रमशः बड़ी रिद्धिको प्राप्त करता है और भुजंगी वृत्ति-सर्पके समान क्रोधी वृत्ति रखने वाला मनुष्य मृत्युके शरण होता है। जिस प्रकार कछवा अपने आंगोपांग संकोच कर प्रहार भी सहन कर लेता है, वैसे ही बुद्धिमान पुरुष किसी समय दब जाता है, परन्तु जब समय आता है तब बराबर काले नागके समान पराक्रमी हो उसे अच्छी तरह पछाड़ता है। जिस प्रकार महा प्रचंड वायु एक दूसरेके आश्रयसे गुंफित हुये वृक्षोंमें नहीं उखेड़ सकता वैसे ही यदि दुर्बल मनुष्य भी बहुतसे मिले हुये हों तो बलवान् मनुष्य उनका बाल बांका नहीं कर सकता। जिस प्रकार गुड़ खानेसे बढ़ाया हुआ जुखाम अन्तमें निर्मूल हो जाता है वैसे ही बुद्धिमान पुरुष भी शत्रुको बढ़ाकर वक्त आनेपर उखेड़ डालता है। सर्वस्व हरन करनेमें समर्थ शत्रुओंको जैसे वड़वानलको समुद्र अपने पेटमें रखकर संतोषित रखता है। वैसे ही बुद्धिमान पुरुष भी कुछ थोड़ा थोड़ा देकर संतोषित रखता है। जिस प्रकार पैरमें लगे हुये कांटेको कांटेसे ही निकाल दिया जाता है वैसे ही बुद्धिमान पुरुष तीक्ष्ण शत्रुको भी तीक्ष्ण शत्रुसे ही पराजित करता है। जो मनुष्य अपनी और दूसरेकी शक्तिका विचार किये बिना उद्यम करता है, वह मेघकी गर्जनासे क्रोधित हुये केसरी-सिंहके समान उछल उछल कर अपने ही अंगका विनाश करता है, परन्तु उसपर बल नहीं कर सकता। उपाय द्वारा ऐसे कार्य किये जा सकते हैं कि जो कार्य पराक्रमसे भी नहीं किये जा सकते। जैसे कि किसी कव्वेने सुवर्णके तारसे काले सर्पको भी मार डाला। नदी, नखवाले जानवर, सिंगवाले जानवर, हाथमें शस्त्र रखने वाले मनुष्य, स्त्री और राज दरबारी लोग इनका विश्वास कदापि न रखना। सिंहसे एक, एक बगले से, चार मुर्गेसे, पांच कौवेसे, छह कुत्तेसे, और तीन गुण गधेसे सीख लेना योग्य है। सिंहका एक गुण ग्राह्य है।

प्रभूतकार्यमल्पं वा। यो नरः कर्तु मिच्छति॥
सर्वारम्भेण तत्कुर्या। त्सिंहस्यैकं पदं यथा॥

बड़ा या छोटा जो कार्य करना हो वह कार्य सर्व प्रकारके उद्यमसे एकदम कर लेना, परन्तु उसके

करने में हिचकिचाना नहीं। सिंहके समान एक ही उछालमें कार्य करना। यह गुण सिंहसे सीख लेना योग्य है। बगलासे भी दो उत्तम गुण लिये जा सकते हैं।

बकवच्चिन्तयेदर्थान्। सिंहवच्च पराक्रमं ॥ वृकवच्चावलुम्पेत। शशवच्च पलायनं ॥

बगलेके समान विचार विचार कर कदम रक्खे। (अपना कार्य न बिगड़ने देना, उसमें दत्त चित्त रहना यह गुण बगलेसे सीख लेना चाहिये।) सिंहके समान पराक्रम रखना, बरगडाके समान छिप जाना, और खरगोसके समान प्रसंग पड़ने पर दौड़ जाना। इसी प्रकार मुरगेके चार गुण लेना चाहिये।

प्रागुत्थानं च युद्धं च, संविभागं च बंधुषु। स्त्रीयमाक्रम्य भुंजीत, शिक्षेचत्वारि कुक्कुटात् ॥

सबसे पहले उठना, युद्धमें पीछे न हटना, सगे सम्बन्धियों में बाँट खाना, अपनी स्त्रीको साथ लेकर भोजन करना, ये चार गुण मुर्गेसे सीखना। कौवेसे भी पांच गुण सीखलेना योग्य है।

गूढं च मैथुनं धाष्ट्र्यं काले चालय संग्रहः, अप्रमादमविश्वासं, पंच शिक्षेत वायसात् ॥

गुप्त मैथुन करना, धीठाई रखना, समय पर अपने रहनेका आश्रय करना, अप्रमादी रहना, और किसी का भी विश्वास न रखना, ये पांच गुण कौवेसे सीखना। कुत्तेसे छह गुण मिलते हैं।

बव्हाशी चाल्पसंतुष्ट, सुनिद्रो लघुचेतनः। स्वामिभक्तश्च शूरश्च, षडेते श्वानतो गुणाः ॥

मिलने पर अधिक खाना, थोड़े पर भी संतोष रखना, स्वल्प निद्रा लेना, सावधान रहना, जिसका खाना उसकी सेवा करना। शूर वीर रहना, ये छह गुण कुत्तेसे सीखना चाहिये। एवं तीन गुण गधेसे मिल सकते हैं।

आरूढं तु वहेद् भारं, शीतोष्णं न च विंदति, संतुष्टश्च भवेन्नित्यं, त्रीणि शिक्षेच्च गर्दभात् ॥

ऊपर पड़े भारको वहन करना, सर्दी गर्मी सहन करना, निरंतर संतोष रखना, ये तीन गुण गर्दभसे सीखना चाहिये।

इस लिये सुश्रावक को नीति शास्त्र अभ्यास करना चाहिये। इस विषयमें कहा है किः—

हित महित मुचित मनुचित, मवस्तु वस्तुस्वयं न यो वेत्ति,
स पशुः शृंगविहीनः संसारवने परिभ्रमति ॥

जो मनुष्य हित और अहित, उचित और अनुचित, वस्तु और अवस्तुको नहीं जानता वह सचमुच ही संसार रूप जंगलमे परिभ्रमण करने वाले सींग और पुच्छ रहित एक पशुके समान है।

नो वक्तुं न विलोकितं न हसितं न क्रीडितुं नेरितुं ॥
न स्थातुं न परीक्षितुं न पणितुं नो राजितुं नार्जितुं ॥ १ ॥
नो दातुं न विचेष्टितुं न पठितुं नानन्दितुं नोधितुं।
यो जानाति जनः स जीवति कथं निर्लज्जशिरोमणिः ॥ २ ॥

बोलना, देखना, हंसना, खेलना, चलना, खड़े रहना, परखना, प्रतिज्ञा करना, सुशोभित करना, कमाना, दान देना, चेष्टा करना, अभ्यास करना, निन्दा, करना, बढ़ाना, जो मनुष्य इतने कार्य नहीं जनता, वैसे

निर्लज्ज शिरोमणि मनुष्यका जीवन क्या कामका है? अर्थात् पूर्वोक्त बात न जानने वाले मनुष्यका जीवन पशुसे भी बदतर है।

आशितुं शयितुं भोक्तुं। परिधातुं प्रजल्पतुं॥ वेत्तियः स्वपरस्थाने। विदुषां स नरोग्रणी॥

जो मनुष्य अपने और दूसरेके घर बैठना, सोना, जीमना, पहरना, बोलना, जानता है वह विचक्षण पुरुषोंमें अग्रेसरी गिना जाता है।

"मूलसूत्रकी आठवीं गाथा"

मज्झण्हे जिण पूआ। सुपत्त दाणाई जुत्ति संजुत्ता॥ पच्चक्खाइअ गीयथ्थ। अंतिए कुणई सज्झायं॥ ९॥

मध्यान्ह समय पूर्वोक्त विधिसे जो उत्तम भात पानी, वगैरह जितने पदार्थ भोजनके लिये तैयार किये हों वे सब प्रभुके सन्मुख चढानेकी युक्तिका अनुक्रम उलंघन न करके फिर भोजन करना। यह अनुवाद है (पहिली पुजाके बाद भोजन करना यह अनुवाद कहलाता है) मध्यान्हकी पूजा और भोजनके समयका कुछ नियम नहीं, क्योंकि जब खूब क्षुधा लगे तब ही भोजनका समय समझना। मध्यान्ह होतेसे पहले भी यदि प्रत्याख्यान पार कर देवपूजा करके भोजन करे तो उसमे कुछ भी हरकत नहीं। आयुर्वेदमें बतलाया है किः—

याममध्ये न भोक्तव्यं। यामयुग्मं न लंघयेत्॥ याममध्ये रसोत्पत्ति। युग्मादूर्द्ध्वं बलक्षयः॥

पहले प्रहरमें भोजन न करना, दो पहर उलंघन न करना, याने तीसरा पहर होनेसे पहले भोजन कर लेना। पहले प्रहरमें भोजन करे तो रसकी उत्पत्ति होती है। और दो पहर उलंघन करे तो बलकी हानि होती है।

"सुपात्र दानकी युक्ति"

भोजनके समय साधुको भक्ति पूर्वक निमन्त्रण करके उन्हें अपने साथ घर पर लावे। या अपनी मर्जीसे घर पर आये हुये मुनिको देख कर तत्काल उठ कर उनके सन्मुख गमनादिक करे, फिर विनय सहित यह संविज्ञ भावित क्षेत्र हैं या अभावित (वैराग्य वान साधुओंका विचरना इस गांवमें हुवा है या नहीं?) क्योंकि यदि गांवमे वैसे साधु विचरे हों तो उस गांवके लोग साधुओं को वहराने वगैरह के व्यवहार से विज्ञात होते हैं, वह क्षेत्र भावित गिना जाता है और जहां साधुओंका विचरन न हुवा हो वह क्षेत्र असं-भावित गिना जाता है। यदि भावित क्षेत्र हो तो श्रावक कम वोहरावे तथापि हरकत नहीं आती। परन्तु अभावित क्षेत्र हो तो अधिक ही वहराना चाहिये, इसलिये श्रावकको इस बातका विचार करनेकी आवश्य-कता पड़ती है) २ सुकाल दुष्कालमें से कौनसा काल है? (यदि सुकाल हो तो जहां जाय वहांसे आहार मिल सकता है, परन्तु दुष्कालमें सब जगहसे नहीं मिल सकता, इसलिये श्रावकको उस वक्त सुकाल और

अकालका विचार करनेकी जरूरत पड़ती है) ३ सुलभ द्रव्य है या दुर्लभ ? (ऐसा आहार साधुको दूसरी जगहसे मिल सकेगा या नहीं इस बातका विचार करके वहराना) ४ आचार्य, उपाध्याय, गीतार्थ, तपस्वी, बाल, वृद्ध, रोगी और भूखको सहन कर सके ऐसे तथा भूखको सहन न कर सके ऐसे मुनियोंकी अपेक्षाओं का विचार करके किसीकी अदावतसे नहीं, अपनी बड़ाईसे नहीं, किसीके मत्सरभाव से नहीं, स्नेह भावसे नहीं, लज्जा, भय या शरमसे नहीं, अन्य किसीके अनुयायी पनसे नहीं; उन्होंके किये हुये उपकारका बदला देनेके लिये नहीं, कपटसे या देरी लगाकर नहीं, अनादरसे या खराब वचन बोल कर नहीं, और पीछे पश्चात्ताप हो वैसे नही, दान देनेमें लगते हुये पूर्वोक्त दोष रहित अपने आत्माका उद्धार करनेकी बुद्धिसे बैतालीस दोष मुक्त हो वोहरावे। संपूर्ण अन्न, पानी, वस्त्रादिक, इस तरह अनुक्रमसे स्वयं या अपने हाथमें गुरुका पात्र लेकर या स्वयं बराबरमें खड़ा रहकर स्त्री, माता, पुत्री, प्रमुखसे दान दिलावे। दान देनेमें ४२ दोष पिंड विशुद्धिकी युक्ति वगैरहसे समझ लेना। फिर उन्हें नमस्कार करके घरके दरवाजे तक उनके पीछे जाय। यदि गुरु न हो तो या भिक्षाके लिये न आये हों तो भोजनके समय घरके दरवाजे पर आकर जैसे बिना बादल अकस्मात वृष्टी होनेसे प्रमोद होता है वैसे ही आज इस वक्त यदि कदाचित् गुरुका आगमन हो तो मेरा अवतार सफल हो इस प्रकारके विचारसे दिशावलोकन करे। कहा है कि:—

जं साहूण न दीन्नं, कहिंपि तं सावया न भुंजंति, पत्तो भोअण समए, दारस्सा लोअणं कुज्जा॥

जो पदार्थ साधुको न दिया गया हो वह पदार्थ स्वयं न खाय। गुरुके अभावमें भोजनके अवसर पर अपने घरके दरवाजे पर आकर दिशावलोन करे।

संथरणंमि असुद्धं। दुरहंवि गिरहंत दितयाण हियं॥
आउर दिट्टंं तेणं। तं चेव हिअं असंथरणे॥ २॥

संथरण याने साधुको सुख पूर्वक संयम निर्वाह होते हुये भी यदि अशुद्ध आहारादिक ग्रहण करे तो लेने वाले और देने वाले दोनोंका अहित है। और असंथरण याने अकाल या ग्लानादिक कारण पड़ने पर संयमका निर्वाह न होने पर यदि अशुद्ध ग्रहण करे तो रोगीके दृष्टान्तसे लेने वाले और देने वाले दोनोंका हितकारी है।

पहसंत गिलाणेसु, आगमगाहीसु तहय कयलोए। उत्तर पारण गंमिअ, दिरहंसु बहुफलं होई॥ १॥

मार्गमें चलनेसे थके हुयेको रोगी और आगमके अभ्यासको एवं जिसने लोच किया हो उसको तरवारने या पारनेके समय दान दिया हुवा अधिक फल दायक होता है।

एवं देसन्तु खित्तं नु, विआणित्ताय सावओ। फासुअं एसणिज्जंच, देइजं जस्स जुग्गयं॥ २॥
असणं पानगं चेव, खाइमं साइमं तहा। ओसहं मेसहं चेव, फासुअं एसणिज्जयं॥ ३॥

इस प्रकार देश क्षेत्रका विचार करके श्रावक अचित्त और ग्रहण करने लायक जो जो योग्य हो सो दे। अशन, पान, खादिम, स्वादिम, औषध, भैषज, प्रासुक, एषणिक, बैतालीस दोष रहित दे, साधु निमन्त्रणा विधि भिक्षा ग्रहण विधि, वगैरह हमारी की हुई वन्दिता सूत्रकी अर्थ दीपिका नामक वृत्तिसे समझ लेना। इस

तरह जो सुपात्रको दान दिया जाता है वह अतिथिसंविभाग गिना जाता है। इसलिये आगममें कहा है कि—

अतिहि संविभागो नाम नायागयाणं ॥ कप्पणिज्जाणं अन्नपाणाइणं दव्वाणं देसकाल ॥

सद्धा सक्कारमजुअं पराए भत्तीए आयाणुग्गह बुद्धीए संजयाणं दाणं ॥

न्यायसे उपार्जन किया और साधूको ग्रहण करने योग्य जो भात, पानी, प्रमुख पदार्थका देश, कालके पेक्षासे श्रद्धा, सत्कार, उत्कृष्ट भक्तिसे और अपने आत्मकल्याण की बुद्धिसे साधूको दान दिया जाता है वह अतिथी संविभाग कहलाता है।

"सुपात्रदान फल"

सुपात्र दान देवता सम्बन्धी और मनुष्य सम्बन्धी, अनुपम मनोवाञ्छित सर्वसुख समृद्धि, राज्यादिक सर्वसंयोग की प्राप्ति पूर्वक निर्विघ्नतया मोक्षफल देता है, कहा है कि:—

अभयं सुपत्तदाणं, अणुकंपा उचिअ किमिदाणं च ॥

दुण्हवि मुख्खो भणिओ, तिन्नि विभोइअं दिंति ॥

अभय दान, सुपात्र दान, अनुकपा दान, उचित दान और कीर्ति दान इन पांच प्रकारके दानमेंसे पहले दो दान मोक्षपद देते हैं और पिछले तीन सांसारिक सुख देते हैं। पात्रताका विचार इस प्रकार बतलाया है कि—

उत्तमपत्तंसाहु, मज्झिमपत्तं च सावया भणिया ॥ अविरय सम्मदिठ्ठी, जहन्न पत्तं मुणेयव्वं ॥

उत्तम पात्र साधु, मध्यम पात्र व्रतधारी श्रावक और जघन्य पात्र अविरति, व्रत प्रत्याख्यान रहित समकितधारी श्रावक समझना। और भी कहा है कि:—

मिथ्यादृष्टिसहस्रेषु, वरमेको महाव्रती ॥ अणुव्रती सहस्रेषु, वरमेको महाव्रती ॥ १ ॥

महाव्रती सहस्रेषु, वरमेको हि तात्विकः ॥ तात्विकस्य समं पात्रं न भूतं न भविष्यति ॥ २ ॥

हजार मिथ्या दृष्टियोंसे एक अणुव्रती—व्रतधारी श्रावक अधिक है, हजार अणुव्रत श्रावकोंसे एक महाव्रती साधु अधिक है, हजार साधुओंसे एक तत्वज्ञानी अधिक है, और तत्ववेत्ता केवलीके समान, अन्य कोई भी पात्र न हुवा है न होगा।

सत्पात्रं महती श्रद्धा, काले देयं यथोचितं ॥ धर्मसाधनसामग्री, बहुपुण्यैरवाप्यते ॥ ३ ॥

उत्तम पात्र, अति श्रद्धा, देनेके अवसर पर देने योग्य पदार्थ और धर्मसाधन की सामग्री ये सब बड़े पुण्यसे प्राप्त होते हैं। दानके गुणोंसे विपरीततया दान दे तो वह दानमें दूषण गिना जाता है।

अनादरो विलंबश्च, वैमुख्यं विप्रियं वचः ॥ पश्चात्तापं च पंचापि, सद्दानं दुषयंत्यपि ॥ ४ ॥

अनादर से देना, देरी लगाकर देना, मुंह चढाकर देना, अप्रिय वचन सुनाकर देना, देकर पीछे पश्चात्ताप करना, ये पांच कारण अच्छे दानमें दूषणरूप हैं। दान न देनेके छह लक्षण बतलाये हैं।

भिउडी उद्धा लोअण, अंतोवत्ता परं मुहं ठाणं ॥ मोणं काल विलंबो, नक्कारो छव्विहो होई ॥ ५ ॥

भृकुटि चढाना, (देना पडेगा इसलिये मुखविकार करके आंखें निकालना या भृकुटि चढाना) सामने

न देखकर ऊपर देखते रहना, बीचमें दूसरी ही बातें करना, टेढा मुंह करके बैठे रहना, मौन धारण करना, देते हुये अधिक देर लगाना, ये नकारके छह प्रकार याने न देनेवाले के छह लक्षण हैं। दानके विशिष्ट गुणों सहित दान देनेमें पांच भूषण बतलाये हैं।

आनंदाश्रुणि रोमांचो, बहुमानं प्रियवचः ॥ किं चानुमोदनापात्रं, दान भूषणपंचकं ॥ ६ ॥

आनन्दके अश्रु आवें, रोमांच हो, बहुमान पूर्वक देनेकी रुची हो, प्रिय वचन बोले जांय, पात्र देखकर अहा! आज कैसा बडा लाभ हुवा ऐसी अनुमोदना करे! इन पांच लक्षणोंसे दिया हुवा दान शोभता है, और अधिक फल देता है। सुपात्र दान तथा परिग्रह परिमाण पर निम्न दृष्टान्त से विशेष प्रभाव पड़ेगा।

"रत्नसारका दृष्टान्त"

विशेष संपदा को रहनेके लिये स्थानरूप रत्नविशाला नाम नगरीमें संग्राम सिंह समान नामानुसार गुणवाला समर सिंह नामक राजा राज्य करता था। वहांपर सर्व व्यापारादिक व्यवहार में निपुण और दरिद्रियों का दुःख दूर करनेवाला वसुसार नामक शेठ रहता था, और वसुंधरा नामकी उसकी स्त्री थी। उस शेठको जिस प्रकार सब रत्नोंमें एक हीरा ही सार होता है वैसे ही वहांके सर्व व्यापारी वर्गके पुत्रोंमें गुणसे अधिक रत्नसार नामक पुत्र था। वह एक समय अपने समान उमरवाळे कुमारोंके साथ जंगलमे फिरने गया था। वहां अवधिज्ञान को धारण करनेवाले विनयन्धराचार्य को नमस्कार कर पूछने लगा कि स्वामिन्! सुख किस तरह प्राप्त होता है? आचार्य महाराजने उत्तर दिया कि, हे भद्र! सन्तोषका पोषण करनेसे इस लोकमें भी प्राणी सुखी होता है। उसके बिना कहीं भी सुख प्राप्त नहीं किया जा सकता। वह सन्तोष भी देशवृत्ति और सर्ववृत्ति एवं दो प्रकारका है। उसमें भी गृहस्थोंको देशवृत्ति संतोष सुखके लिये होता है। परन्तु वह तब ही होता है कि जब परिग्रहका परिमाण किया हो। बहुतसे प्रकारकी इच्छा निवृत्तिसे गृहस्थ को देशसे सन्तोष का पोषण होता है और सर्वथा सन्तोष का कोष साधुको ही होता है, क्योंकि उन्हें सर्व प्रकारकी वस्तुपर सन्तोष हो जानेसे इस लोकमें भी अनुत्तर विमान वासी देवताओं के सुखसे अधिक सुख मिलता है। इसलिये भगवती सूत्रमें कहा है किः—

"एगमास परिआरा समणे वाणमंतराणं दो मास परिआए भवण वईणं एवं ति चउ पंचच्छ सत्त अट्ठ नव दस एकारस मास परिआए असुरकुमाराणं जोइसिआणं चन्दसूराणं सोहंम्मी साणाणं सणं-कुमारमाहिं दाणं बंभलंतगाणं सुक्कसहस्सादाराण आणयाइ चउण्हं गेविज्जाणं जाव बारसमास परिआए समणे अणुत्तरो ववाय अदेवाणं तेउ लेसं वीईवय इत्ति इह तेजो लेश्या चित्तसुखलाभलक्षणा चारित्रस्य परिणातत्वे सतीति शेषः ॥"

एक महीनेके चारित्र पर्यायसे वानव्यतरिक देवताके, दो महीनेके चारित्र पर्यायसे भुवनपति देवताओं के तीन मासके चारित्र पर्याय से असुरकुमार देवोंके चार मासके चारित्र पर्याय से, ज्योतिषी देवोंके पांच मास चारित्र्य पर्यायसे चन्द्रसूर्यके, छह मास चारित्र पर्यायसे सौधर्म ईशानके, सात मास चारित्र पर्याय से

सनत्कुमार और माहेन्द्रके, आठ मास चारित्र पर्याय से ब्रह्म और लान्तक के, नव मास चारित्र पर्याय से शुक्र और सहस्रार के, दशमास चारित्र पर्याय से आनतादिक चार देवलोक के, ग्यारह मास चारित्र पर्याय से ग्रैवेयक के, बारह मास चारित्र पर्याय से अनुत्तर विमानके देवताओं के सुखसे अधिक सुख प्राप्त किया जाता है। यहां पर तेजो लेश्याका उल्लेख किया है परन्तु तेजो लेश्या शब्द द्वारा चारित्र्य के परिणमन से चित्तके सुखका लाभ होता है; यह समझना चाहिये।

बड़े राज्य सम्बन्धी सुख और सर्व भोगके अंगसे सन्तोष धारण करनेवाले को सुख नहीं मिलता। सुभूम चक्रवर्ती और कौणिक राजा राज्यके सुखसे, मम्मण शेठ और हाला प्रसाहाका पति सुवर्णनन्दी लोभ से असंतोष द्वारा दुःखित ही रहे थे परन्तु वे सुखका लेश भी प्राप्त न कर सके। इसलिए शास्त्रमें कहा है कि:—

असन्तोषोवतः सौख्यं, न शक्रस्य न चक्रिणः। जंतो सन्तोषभाजो य, दभयस्येव जायते॥

सन्तोष धारण करनेवाले मनुष्यको जो निर्भयता का सुख प्राप्त होता है सो असन्तोषी चक्रवर्ती या इन्द्रको भी नहीं होता।

ऊंचे ऊंचे विचारोंकी आशा रखनेसे मनुष्य दरिद्री गिना जाता है और नीचे विचार (हमें क्या करना है! हमें कुछ काम नहीं ऐसे विचार) करनेसे मनुष्यकी महिमा नहीं बढ़ती। जिससे सुखकी प्राप्ति हो सके ऐसे सन्तोषके साधनके लिए धन धान्यादिक नव प्रकारके परिग्रह का अपनी इच्छानुसार परिमाण करना। यदि नियम पूर्वक थोड़ा ही धर्म किया हो तो वह अनन्त फलदायक होता है और बिना नियम साधन किया अधिक धर्म भी स्वल्प फल देता है। जैसे कि कुवेमें पानी आनेके लिये छोटीसी सुरंग होती है, इसलिये उसमेंसे जितना पानी निकाला जाय उतना निकालने पर भी वह अन्तमें अक्षय रहता है; परन्तु जिसमें अगाध पानी भरा हो ऐसे सरोवर में भी नीचेसे पानीके आगमन की सुरंग न होनेसे उसका पानी थोड़े ही दिनोंमें खुट जाता है। चाहे जैसा कष्ट आ पड़े तथापि नियममें रक्खा हुवा धर्म छोड़ा नहीं जा सकता, परन्तु नियमरूप अर्गला रहित सुखके समय कदापि धर्म छूट जाता है याने छोड़ देनेका प्रसंग आता है। नियम पूर्वक धर्म साधन करनेसे धर्ममें दृढता प्राप्त होती है। यदि पशुओंके गलेमें रस्सी डाली हो तो ही वे स्थिर रहते हैं। धर्ममें दृढता, वृक्षमें फल, नदीमें जल, सुभटमें बल, दुष्ट पुरुषोंमें असत्य छल, जलमें ठंडक, और भोजनमें घी जीवन हैं। जिससे अभीष्ट सुखकी प्राप्ति हो सके ऐसी धर्मकी दृढ़तामें हरएक मनुष्यको अवश्य उद्यम करना चाहिये।

गुरु महाराज का पूर्वोक्त उपदेश सुनकर रत्नकुमार ने सम्यक्त्व सहित परिग्रह परिमाण व्रत ऐसे ग्रहण किया कि एक लाख रत्न, दस लाखका सुवर्ण आठ, आठ मूडे प्रमाण मोती और परवाल, आठकरोड़ असर्फियाँ, दस हजार भार प्रमाण चांदी वगैरह एवं सौ मूड़ा भार प्रमाण धान्य, बाकीके सब तरहके क्रयाणे लाख भार प्रमाण, छह गोकुल (आठ हजार गाय भैंसे) पांच सौ घर, दुकान, चारसौ यान-वाहन, एक हजार घोड़े, एक सौ बड़े हाथी, यदि इससे उपरान्त राज्य भी मिले तथापि मैं न रक्खूंगा। सच्ची श्रद्धासे

पंचातिचार से विशुद्ध पांचवां परिग्रह परिमाण व्रत पूर्वोक्त लिखे मुजब लेकर श्रावक धर्म परिपालन करता हुवा मित्रों सहित फिरता हुआ एक वक्त वह रोलंबरोल नामक बागमें आदर पूर्वक जाकर वहांकी शोभा देखते हुए समीपवर्त्ती क्रीड़ा योग्य एक पर्वत पर चढ़ा। वहां दिव्यरूप को धारण करनेवाले, दिव्य वस्त्र और दिव्य संगीतकी ध्वनिसे रमणीक मनुष्यके समान आकारवान् तथापि अश्वके समान मुखवाले एक अपूर्व किन्नर युग्मको देखकर साश्चर्य हो वह हसकर बोलने लगा कि क्या ये मनुष्य हैं या देवता ? यदि ऐसा हो तो इनका घोड़ेके समान मुख क्यों है ? मैं धारता हूं कि ये नर या किन्नर नहीं परन्तु सचमुच ही ये किसी द्विपान्तर में उत्पन्न हुये तिर्यंच पशु हैं अथवा ये किसी देवताके वाहन भी कल्पित किये जा सकते हैं। इस प्रकारका अरुचि कारक वचन सुनकर वह किन्नर मन ही मन खेद प्राप्त कर बोलने लगा कि, हे राजकुमार ! विचार किये विना ऐसे कुवचन बोलकर व्यर्थ ही मेरा मन क्यों दुःखी करता है। मैं तो इच्छानुसार रूप धारण कर विलास क्रीड़ा करनेवाला एक व्यंतरिक देव हूं। तू स्वयं ही पशु जैसा है। इसलिये तेरे पिताने तुझे घरसे बाहर निकाल दिया है। यदि ऐसा न हो तो अपने दरबार में तू अपने पदार्थोंका लाभ क्यों न उठा सके। इतना ही नहीं परन्तु तेरे दरबार में ऐसे ऐसे दैविक पदार्थ रहे हुए हैं कि जो एक बड़े देवताके पास भी न मिल सके ! और जो सदैव जिसकी इच्छा करते हो ऐसे पदार्थ भी तेरे दरबारमें मौजूद हैं तथापि तुझे उनकी बिलकुल खबर नहीं। तब फिर तू अपने घरका स्वामी किस तरह कहा जाय; इससे तू तो एक सामान्य नौकरके समान है। यदि ऐसा न हो तो जो जो पदार्थ तेरे नौकर जानते हैं उन पदार्थों की तुझे कुछ खबर नहीं। अहा हा ! कैसे खेदकी बात है ध्यान देकर सुन ! मैं तुझे उन बातोंसे परिचित करता हूं। तेरा पिता किसी समय कारणवशात् द्वीपान्तर में जाकर नील रंगकी कान्तिवाले एक समन्धकार नामक दिव्य अश्व-रत्न प्राप्त कर लाया है, परन्तु यदि तू उस अश्वरत्न का वर्णन सुने तो एक दफे आश्चर्य चकित हुये बिना न रहेगा। पतला और वक्र उस घोड़ेका मुख है, उसके कान लघु और स्थिति चंचल है। खड़ा रहने पर भी वह अत्यन्त चपलता करता है। स्कन्धार्गल (गरदन पर एक जातिका चिन्ह होता है) और अनाड़ी राजाके समान वह अधिक क्रोधी है, तथापि जगत् भरकी इच्छने योग्य है। चाहे जब तक उसके कौतुक देखा करे तथापि उसके सर्वांग पर रहे हुये लक्षणोंकी रिद्धि पूर्णतया देखनेके लिये कोई भी समर्थ नहीं। इसलिये शास्त्रमें कहा है कि:—

निर्मांसं मुखमण्डले परिमितं मध्ये लघुः कर्णयोः। स्कंधेबन्धुर मप्रमाणमुरसि स्निग्धं च रोमोद्गमे॥
पीनं पश्चिमपार्श्वयोः पृथुतरं पृष्ठे प्रधानं जवे। राजा वाजिन मारुरोह सकलैर्युक्तं प्रशस्तैर्गुणैः॥

'निर्मांस मुखका दिखाव, मध्यम भाग प्रमाणवाला, लघुकान, ऊंचा चढ़ता हुवा गर्दनका दिखाव, अपरिमित अंगुलवाली छाती, स्निग्ध और चमकदार रोमराजी, अतिपुष्ट पृष्ठभाग, पवनके समान तीव्र गतिवान् और अन्य भी समस्त लक्षण और गुणों सहित उस अश्वरत्न पर हे राजन् ! तू सवार हो !

वह घोड़ा सवारके मनकी स्पर्धाके समान प्रतिदिन सौ योजनकी गति करता है। संपदाके अभ्युदय को करनेवाले यदि उस अश्वरत्न पर बैठकर तू सवारी करे तो आजसे सातवें दिन जिससे अधिक दुनियां

घरमें भी कुछ न हो ऐसी अलौकिक दिव्य वस्तुकी तुझे प्राप्ति हो। परन्तु तू तो अपने घरके रहस्य को भी नहीं जानता, तब फिर यथा तथा बोलकर तू मेरी विडम्बना क्यों करता है? जब तू उस अश्व पर सवारी करेगा उस वक्त तेरी धीरता, वीरता और विचक्षणता मालूम होगी। यों कहकर वह किन्नर देव अपनी देवी सहित सन सनाहट करता आकाश मार्ग से चला गया। जो आज तक कभी भी न सुना था ऐसा चमत्कारी समाचार सुन कर कुमार इस विचारसे कि मेरे पिताने सचमुच मुझे प्रपंच द्वारा ठगा है, क्रोधसे दुःखित हो अपने घरके एक कमरेमें दरवाजा बन्द कर पलंग पर सो रहा। यह बात मालूम होनेसे उसका पिता खेद करता हुआ आकर कहने लगा कि हे पुत्र! तुझे आज क्या पीड़ा उत्पन्न हुई है? और वह पीड़ा मानसिक है या कायिक? तू यह बात मुझे शीघ्र बतलादे कि जिससे उसका कुछ उपाय किया जाय! क्योंकि मोती भी विन्धे बिना अपनी शोभा नहीं दे सकता या अपना कार्य नहीं कर सकता। वैसे ही जबतक तू अपने दुःखकी बात न कहे तब तक हम क्या उपाय कर सकते हैं? पिताके पूर्वोक्त वचन सुनकर कुमारने तत्काल उठकर कमरेका दरवाजा खोल दिया और जंगलमें किन्नर द्वारा सुना हुआ सब समाचार पिताको कह सुनाया। तब विचार करके पिता बोला कि भाई! सचमुच ही इस घोड़ेके समान अन्य घोड़ा दुनियां भरमें नहीं है; परन्तु तुझे यह सब समाचार मालूम होनेसे तू उस अश्वरत्न पर चढ़कर दुनियां भरके कौतुक देखनेके लिए सदैव फिरता रहेगा; इसलिये हमसे तेरा वियोग किस तरह सहा जायगा, इस विचारसे ही यह अश्वरत्न आज तक हमने तुझसे गुप्त रक्खा है। जब तू इस बातमें समझदार हुआ है तब यह अश्वरत्न तुझे देने योग्य है क्योंकि यदि मांगने पर भी न दिया जाय तो स्नेहमें अग्नि सुलग उठती है। उसे लेकर तू खुशीसे अपनी इच्छानुसार वर्त। यों कह कर राजाने उसे लीलाविलासवन्त घोड़ा समर्पण किया। जिस प्रकार कोई निर्धन निधान पाकर खुशी होता है वैसे ही अश्वरत्न मिलने पर कुमार अत्यन्त प्रसन्न हुवा।

फिर उस घोड़े पर मणि रत्नजटित जीन कसकर उस पर चढके निर्मल बुद्धिवाला रत्नकुमार मेरुपर्वत पर जाज्वल्यमान सूर्यके समान शोभने लगा। समान अवस्थावाले और समान आचार विचारवाले रंग बिरंगे घोड़ों पर चढ़ अपने मित्रोंको साथ ले नगरसे बाहर जाकर उस घोड़ेको फिराने लगा। द्रुतगति, वल्गित प्लुतगति, उत्तेजित गति, एवं अनुक्रमसे चार प्रकारकी गति द्वारा कुमारने उसे इच्छानुसार फिराया। जिस-प्रकार सिद्धका जीव शुक्लध्यान के योगसे चार गतिका त्याग करके पांचवीं गतिमें चला जाता है वैसे ही उसके मित्रादिकों को छोड़कर वह अश्वरत्न रत्नसार को लेकर आगे चला गया। उसी समय वसुसार नामा शेठके घर पिंजडेमे रहा हुआ एक विचक्षण तोता मनमें कुछ उत्तम कार्य विचार कर शेठसे कहने लगा कि हे पिताजी! वह रत्नसार नामक मेरा भाई उत्तम घोड़ेपर चढ़कर बड़ी जल्दीसे जा रहा है, वह कौतुक देखनेमें सचमुच ही बड़ा रसिक और चंचल चित्त है, तथापि यह घोड़ा हिरनके समान अति वेगसे बहुत ही ऊंची छलांगें मारता हुआ जाता है। अतिचपल विद्युतके चमत्कार समान दैवका कर्तव्य है, इसलिये हे आर्य! नहीं मालूम होता कि, इस कुमारके कार्योंका क्या परिणाम आयगा। यद्यपि मेरा बन्धु रत्नसार कुमार भाग्यका एक ही रत्नाकर है उसे कदापि अशुभ नहीं हो सकता तथापि उसके स्नेहियोंको या उसे

कुछ अनिष्ट न हो ऐसी शंका उत्पन्न हुये विना नहीं रहती। यद्यपि केसरीसिंह जहां जाता है वहां महत्ता ही भोगता है तथापि उसकी माताके मनमें भय उत्पन्न हुये विना नहीं रहता कि न जाने कहीं मेरे पुत्रको किसी बातका कुछ भय न हो। ऐसा होनेपर भी उसे यथाशक्ति भयसे बचानेका उपाय प्रथमसे ही कर रखना योग्य है। बरसाद आनेसे पहले ही तालावकी पाल बान्धना उचित है। इसलिये हे पिताजी! यदि आपकी आज्ञा हो तो रत्नसारकुमार के समाचार लेनेके लिये मैं सेवकके समान उसके पीछे जाऊं। कदाचित् दैवयोग से वह विषमस्थिति में आ पड़ा हो तो वचनादिक संदेशा लाने ले जानेके लिये भी मैं उसे सहायकारी हो सकूंगा। वसुसारके मनमें भो यही बिचार उत्पन्न होता था और तोतेने भी यही विचार बिदित किया इससे उसने प्रसन्न होकर कहा कि हे शुकराज! तूने ठीक कहा। हे निमल बुद्धिवाले शुकराज! तू रत्नकुमार को सहायकारी बननेके लिये शीघ्र गतिसे जा! जिस प्रकार अपने लघुबान्धव लक्ष्मणकी सहायसे पूर्ण मनोरथ रामचन्द्र शीघ्र ही पुनः अपने घर आ पहुंचा वैसे ही तेरी सहायसे कुमोर भी सुख शान्तिपूर्वक अपने घर आ सकेगा।

ऐसी आज्ञा मिलते ही अपने आपको कतार्थ मानता हुआ वह तोता पिंजड़ेमेंसे निकल कर रत्नसारकुमारके पीछे दौड़ा। जब वह तोता एक सच्चे सेवकके समान रत्नसार के पास जा पहुंचा और उसे प्रेमसे बुलाने लगा तब रत्नसार ने उसे अपने लघुबन्धुके समान प्रेमपूर्वक अपनी गोदमें बिठाया। सब अश्वोंमें रत्न समान ऐसे उस अश्वरत्न ने नररत्न रत्नसार को प्राप्त करके अति गर्वपूर्वक अपने साथी सब सवारोंको पीछे छोड़ दिया। मूर्खलोग पंडितोंसे आगे बढ़नेके लिये वहुत ही उद्यम करते हैं तथापि वे पीछे ही पड़ते हैं उसी प्रकार प्रथमसे ही उत्साह रहित रत्नसार के मित्रोंके घोड़े दुःखित हो रास्तेमें ही रह गये। जमीनकी धूल शरीर पर न आ पड़े मानो इसी भयसे वह सुन्दर कायवाला अश्वरत्न पवनवेग के समानके तीव्र गतिसे दौड़ता हुवा चला जा रहा है। इस समय पर्वत, नदी, जंगल, वृक्ष, पृथ्वी वगैरह जो कुछ सामने देख पड़ता है, सो सब कुछ सन्मुख उड़ते हुये आता देखा पड़ता है।

इसी प्रकार अतिवेग से गति करता हुवा वह अश्वरत्न एक शबरसेना नामक महा भंयकर अटवीमें जा पहुंचा। वह अटवी मानो अपनी भंयकरता प्रगट करनेके लिये ही चारों तरफसे पुकार न कर रही हो इस प्रकार वहां पर हिंसक भयंकर पशुओंके भय, उन्माद, और चित्त विभ्रमको पैदा करने वाले भयानक शब्दोंकी ध्वनि और प्रतिध्वनि द्वारा गूंज रही थी। हाथी, सिंह व्याघ्र, वराह वगैरह जंगली जानवर वहां पर परस्पर युद्ध कर रहे हैं। गीदड़ोंके शब्द सुन पड़ते हैं। उस अटवीकी भयंकरता की साक्षी देनेके लिये ही मानो उस अटवीके वृक्ष पवनके द्वारा अपनी शाखा प्रशाखाओं को हिला रहे हैं। उस अटवीमें कहीं कहीं पर जंगलमें रहने वाले भील लोगोंकी युवति स्त्रियां मिलकर उच्च स्वरसे गायन कर रही हैं मानों वे कुमारको कौतुक दिखलाने के लिये ही वैसा करती हैं।

अटवीमें आगे जाते हुये रत्नकुमार ने एक हिंडोलेमें झूलते हुये, जमीन पर चलने वाला मानो पातालकुमार ही न हो इस प्रकारके सुन्दर आकर वाले और स्नेहयुक्त नेत्रवाले एक तापसको देखा। वह तापस

कुमार भी कामदेव के समान रूपवान रत्नकुमार को देख कर जैसे कोई एक युवति कन्या दुल्हेको देख कर लज्जा, और हर्ष, विनोद वगैरह भावसे व्याप्त हो जाती है वैसे संकुचित होने लगा। उस प्रकारके विकार भावसे विधुरित हुवा वह तापस कुमार धिठाईके साथ उस हिंडोलेसे नीचे उतर रत्नसार कुमारके प्रति बोलने लगा। कि, हे विश्ववल्लभ! सौभाग्य के निधान तू हमें अपनी दृष्टिमें स्थापन कर। याने हमारे सामने देख! और स्थिर हो कर हम पर प्रसन्न हो! जिसकी आँख अभी अपने मुखसे प्रशंसा करेंगे ऐसा वह आपका कौनसा देश है? आप अपने निवाससे किस नगरको पवित्र करते हैं? उत्सव, महोत्सव से सदैव आनन्दित आपका कौनसा कुल है? कि जिसमें आपने अवतार लिया है। सारे बगीचेको सुरभित करनेवाले जाईके पुष्प समान जनोंको आनन्द देनेवाला आपका पिता कौन है? कि जिसकी हम भी प्रशंसा करें! जगतमें सन्मान देने लायक माताओंमें से आपकी कौनसी माता है? सज्जन लोगोंके समान जनताको आनन्द-दायक आपके स्वजन सम्बंधी कौन हैं? जिनमें आप अत्यन्त सौभाग्यवन्त गिने जाते हैं। महा महिमाका धाम आपका शुभ नाम क्या है? कि जिसका हम आनन्द पूर्वक कीर्तन करें। क्या ऐसी अति शीघ्रताका कुछ प्रयोजन होगा कि जिसमें आप अपने मित्रोंके विना एकले निकले हैं? जिस प्रकार एकला केतुग्रह मनोवांछित देता है वैसे ही आप एकले किसका कल्याण करनेके लिये निकले हैं? ऐसी क्या जल्दी है कि जिससे दूसरेकी अवगणना करनी पड़े? क्या आपमें ऐसा कुछ जादू है कि, जिससे दूसरा मनुष्य देखने मात्रसे ही आपके साथ प्रीति करना चाहे! कुमार ऐसे स्नेह पूरित ललित लीला विलास वाले वचन सुन कर एकला ही खड़ा रहा इतना ही नहीं परन्तु अश्वरत्न भी अपने कान ऊंचे करके उन मधुर वचनोंको सुननेके लिये खड़ा रहा। कुमारके मनके साथ अश्वरत्न भी स्थिर हो गया। क्योंकि स्वामीकी इच्छानुसार ही उत्तम घोड़ोंकी चेष्टा होती है। उस तापस कुमारके रूप और वचन लालित्यसे मोहित हो रत्नसार कुमार पूर्वोक्त पूछे हुये प्रश्नोंके उत्तर अपने मुखसे देनेके योग्य न होनेसे चुप रह गया इतनेमें ही अवसर का जानकार वह वाचाल तोता उच्चस्वर से बोलने लगा कि हे महर्षि कुमार! इस कुमारका कुलादिक पूछनेका आपको क्या प्रयोजन है? क्या आपको इस कुमारके साथ विवाहादि करनेका विचार है? कैसे मनुष्यका किस समय कैसा उचिताचरण करना सो जाननेमें तो आप चतुर मालूम होते हैं तथापि मैं आपको विदित करता हूं कि अतिथी सर्व प्रकारसे सब तापसोंको मानने योग्य है। लौकिकमें भी कहा है कि:—

गुरुरग्निर्द्विजातीनां, वर्णानां ब्राम्हणो गुरुः। पतिरेको गुरुस्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः॥

ब्राह्मणोंका गुरु अग्नि है, चार वर्णोंका गुरु ब्राह्मण है, स्त्रियोंका गुरु पति है, और अभ्यागत-अतिथि सबका गुरु है।

इसलिये यदि तेरा चित्त इस कुमारमें लीन हुआ हो तो कुमारका अति हर्षसे सविस्तर आतिथ्य कर! तोतेके वचनचातुर्य से प्रसन्न हो कर तापसकुमार ने आग्रह पूर्वक अपने गलेमेंसे कमलोंकी माला उतार कर तोतेके गलेमें डाल दी और वह रत्नसार कुमारसे कहने लगा कि हे कुमार! इस जगतमें प्रशंसाके योग्य

एक तूही है कि जिसका तोता भी इस प्रकारके विचक्षण वचन बोलनेमें चतुर है। इस लिये मेरे चित्तके आशय को जानने वाले और सर्वोत्तम शोभनीय इस घोड़ेसे नीचे उतर कर मेरे अतिथि बनकर मुझे कृतार्थ करो! यह नैसर्गिक सरोवर, इसमें विकस्वर हुये उत्तम कमल, यह निर्मल जल, यह वन और मैं स्वयं ही आपके आधीन हूं। ऐसे जङ्गलमें हम तपस्वी लोग आपका क्या आतिथ्य करें? तथापि यथाशक्ति हमारी भक्ति हमें प्रगट करनी चाहिये। पत्र, पुष्प, फलरहित कैरका पेड़ क्या अपनी किंचित् छायासे पन्थिजनको कुछ विश्राम नहीं देता? इसलिये आज आप हमारी यह विज्ञप्ति अंगीकार करें। यह सुन कर रत्नसार कुमार प्रसन्नता पूर्वक घोड़ेसे नीचे उतर पड़ा। प्रथम तो वह मनसे ही सुखी था; परन्तु जब घोड़ेसे नीचे उतरा तब दोनों जनोंने परस्पर आलिंगन किया, इससे अब शरीरसे भी सुखी हुआ। मानों वे दोनों बालमित्र ही न हों इस प्रकार मानसिक प्रीति स्थिर करनेके लिए या फिर कभी प्रीतिभंग न हो इस आशयसे वे दोनों परस्पर हाथ पकड़ कर आनन्द पूर्वक वहांके वनमें फिरने लगे।

परस्पर करस्पर्श करनेवाले, चित्तको हरनेवाले, जंगलमें फिरनेवाले मानो हाथी शिशुके समान शोभते हुए जब वे उस वन्यप्रदेशमें घूमने लगे तब तापसकुमार रत्नसार को पर्वत, नदी, सरोवर अपनी क्रीड़ाके स्थान वगैरह अपने सर्वस्वके समान वे वनसम्बन्धी सर्व दिखाव दिखलाने लगा। तापसकुमार रत्नसारकुमारको वहांके वृक्षों, एवं उनके फल फूलोंके नाम इस प्रकार बतलाता था कि जैसे कोई शिष्य अपने गुरुको बतलाता है। इस प्रकार घूमनेसे लगे हुये श्रमको दूर करने और विनोदके लिये तापसकुमारके कहनेसे रत्नसारने उस सरोवर में उतर कर निर्मल जलसे स्नान किया। दोनो जनोंने स्नान किये बाद तापसकुमार ने रत्नसारके लिये पकी हुई और कच्ची और साक्षात् अमृतके समान मीठी द्राक्ष लाकर दीं। पके हुये मनोहर आम्रफल कि जिन्हें एक दफा देखनेसे ही साधु जनोंका चित्त चलित हो जाय तथा नरियलके फल, केलेके फल; क्षुधाको तेज करनेवाले खजूरके फल, अति स्वादिष्ट खिरणीके फल, तथा मधुर रसवाले संतरे नारंगी एवं नारियल, द्राक्ष, वगैरह का पानी कमलपत्र में भर कर लाया। तथा अनेक प्रकारके खुसबूवाले पुष्प लाकर उसने उस प्रदेशको ही सुरभित कर दिया। इत्यादि अनेक प्रशस्त वस्तुएं लाकर उसने कुमारके सन्मुख रक्खीं। फिर रत्नसार भी तापसकुमार की अनेक प्रकारसे अति. भक्ति देख प्रसन्न हो कर पहले तो तमाम वस्तुओं को देखने लगा फिर उन सबमेंसे अपूर्व पदार्थ देख यथायोग्य ग्रहण करके उसका भोजन करने लगा; क्योंकि ऐसा करनेसे ही भक्तजन की मेहनत सफल हो सकती है। राजाके भोजन किये बाद सेवकके समान रत्नसार के जीमने पर उस तोतेने भी अपने भोजनके योग्य फलोंका आस्वाद लिया। अश्वरत्न का भी जीन उतार कर चारापानी कराकर श्रम परिहार किया। क्योंकि विचारशील मनुष्य किसीका उचिताचरण करनेमे कसर नहीं उठा रखते। फिर कुमारके विचार जान कर गंभीर स्वभाव वाला वह तोता प्रीतिपूर्वक तापसकुमार से पूछने लगा कि, हे ऋषिकुमार! तुमने इस विकसित यौवनावस्था में यह असंभवित तापस व्रत क्यों अंगीकार किया है। सर्व संपदाको निवास करने या रक्षण करनेके लिए प्राकाररूप कहाँ यह तेरा सुन्दर आकार और कहाँ यह संसारका तिरस्कार करनेवाला दुष्कर व्रत! यह चतुरता और सुन्दरता की

संपदा अरण्यमें पैदा हुये मालतीके पुष्प समान किस लिए निष्फल कर डाली। मनोहर अलंकार और वस्त्रादि पहरने लायक एवं कमलसे भी अति कोमल कहाँ यह शरीर और कहां वह अत्यन्त कठिन वृक्षकी छाल। देखने वाले को मृगपाशके समान यह केश पाश, अत्यन्त सुकोमल है यह इस कठिन और परस्पर उलझी हुई जटाबन्ध के योग्य नहीं लगता। यह तेरी सुन्दर तारुण्यता और पवित्र लावण्यता, सांसारिक सुख भोगनेके योग्य होने पर भी तू इसे क्यों बरबाद कर रहा है? आज तुझे देखकर हमें बड़ी करुणा उत्पन्न होती है। क्या तू वैराग्यसे तापस बना है या कपटकी चतुराई से? कर्मके प्रतापसे तापस बना है, या दुष्ट कर्मके योगसे? इन कारणोंमे से तू कौनसे कारणसे तापस बना है? या किसी बड़े तपस्वीने तुझे शाप दिया है? यदि ऐसा न हो तो ऐसी कोमल अवस्थामें तू ऐसा दुष्कर व्रत किस लिये पालता है?

तोतेके पूर्वोक्त वचन सुनकर तापसकुमार का हृदय भर आया अतः वह अपने नेत्रोंसे अविरल अश्रु-धारा बरसाता हुआ गद्द गद्द कण्ठसे बोला कि हे शुकराज! और हे कुमारेन्द्र! आप दोनोके समान इस जगतमें अन्य कौन हो सकता है कि जिसे मेरे जैसे कृपापात्र पर इस प्रकारकी दया आवे। अपने दुःखसे और अपने सगे सम्बन्धियों के दुःखसे इस जगतमें कौन दुःखित नहीं? परन्तु दूसरोंके दुःखसे दुःखित हो ऐसे मनुष्य दुनियांमें कितने होंगे? पर दुःखसे दुःखित जगतमें कोई विरला ही मिलता है, इसलिये कहा है कि:—

शूराशक्ति सहस्रशः प्रतिपदं विद्याविदोऽनेकशः। सन्ति श्रीपतयोप्यपास्त धनदस्तेऽपि चितौ भूरिशः॥
किंत्वाकर्ण्य निरीक्ष्य चाशय मनुजं दुःखादितं यन्मनः स्ताद्रूप्यं प्रतिपद्यते जगति ते सत्पुरुषः पंचषः॥

इस जगतमे शूरवीर हजारों ही हैं, विद्वान् पुरुष भी पद पदमें अनेक मिलते हैं, श्रीमन्त लोग बहुत हैं धन परसे मूर्छा उतार कर दान देनेवाले बहुत मिलते हैं, परन्तु दूसरेका दुख सुन कर या देख कर जिसका मन उस दुखी पुरुषके समान दुःखार्दित होता हो ऐसे पुरुष इस जगतमें पांच छह हैं।

अवलाओ, अनाथों, दीनों, दुखिआओं और अन्य किसी दुष्ट पुरुषोंके प्रपंचमें फंसे हुए मनुष्योंका रक्षण सत्पुरुषोंके विना अन्य कौन कर सकता है? इसलिए हे कुमारेन्द्र! जैसी घटना बनी है मैं वैसी ही यथा-वस्थित आपके समक्ष कह देता हूं, क्योंकि निष्कपटी और विश्वासपात्र आपसे मुझे क्या छिपाने योग्य है? इसी समय अकस्मात् जैसे कोई मदोन्मत्त हाथी जड़ मूलसे उखाड़ फेंका हो वैसे ही बनमें से अनेक वृक्षोंको समूल उखाड़ फेंकनेवाला महा उत्पातके वायुके समान दुःसह, जगत्रयको भी उछलती हुई धूलके समुदाय से एकाकार करता हुआ, विस्तृत होता हुआ, सघन धूम्रके समान प्रचंड वायु चलने लगा। तोता और कुमार की आंखोंको धूलसे मंत्र मुद्रा देकर सिद्धघोर वायु तापसकुमार को उड़ा लेगया। हा! हे विश्वाधार! हे सुन्दर आकार, हे विश्वचित्तके विश्राम, हे पराक्रमके धाम, हे जगज्जन रक्षामें दक्ष, इस दुष्ट राक्षससे मेरा रक्षण कीजिये!

इस प्रकारका न सुनने लायक प्रलाप सिर्फ कुमार और तोतेको ही सुन पड़ा। यह सुनते ही अरे! मेरे जीवन प्राणको तू मेरे देखते हुये कहां कैसे ले जायगा? ऊंचे शब्दोंमें यों बोलता हुवा, क्रोधायमान हो

रत्नकुमार उसके साथ युद्ध करनेके लिए तत्पर होकर दृष्टि त्रिसर्प के भयंकर दिखाव समान, म्यानसे तलवार खींच अपने हाथमें धारण कर अरे वीरत्वके मानको धारण करनेवाले जरा खड़ा रह! क्या यह वीर पुरुषोंका धर्म है? यों कह कर शीघ्र ही उसके पीछे दौड़ा। परन्तु बिजलीके चमत्कार के समान अति सत्वर वेगसे सिद्ध चोर तापसकुमार को न जाने कहां लेगया! उसके आश्चर्यकारक आचरण से चकित हो तोता बोलने लगा कि हे कुमार! व्यर्थ ही विचक्षण होकर भमितके समान क्यों पीछे दौड़ता है? कहां है वह तापसकुमार और कहां है वह प्रचंड पवन? जैसे जीवितको यमराज हरन करने जाता है वैसे ही इस तापसकुमारको हरन करके अपना निर्धारित कार्य कर न जाने अब वह कहां चला गया, सो किसे मालूम हो सक्ता है? जब वह लाखों या असंख्य योजन प्रमाण क्षेत्रको उलंघन कर अदृश्य होगया तब अब उसके पीछे जानेसे क्या लाभ? इसलिये हे विचक्षण कुमार! आप अब इस कार्यसे पीछे हटो! अब निष्फल प्रयत्न होकर लज्जाको धारण करता हुवा पीछे हटकर कुमार खेद करने लगा। हे गन्धके वहन करनेवाले पवन तूने यह अग्निमें घी डालनेके समान अकार्य क्यों किया? मेरे स्नेही मुनिको तूने क्यों हरन कर लिया? हाय मुनीन्द्र! तेरे मुख रूप चंद्रमासे मेरे नीलोत्पल समान नेत्र कब विकस्वर होंगे? अमृतको भी जीत लेनेवाली तेरी मधुरवाणी कल्पवृक्षके फूलकी आशा रखनेवाले रंक पुरुषके समान अब मैं कहांसे प्राप्त कर सकूंगा? कुमार अपनी स्त्रीके वियोग होनेके समान विविध प्रकारसे विलाप करने लगा। तब कुमारको समझाने के लिये वह चतुर तोता बोला कि, हे कुमार सचमुच ही मेरी कल्पनाके अनुसार यह कोई तापस कुमार न था। परन्तु कोई कौतुक करके गुप्त रूप धारण करने वाला कोई अन्य ही था। उसके आकार, हाव भाव, विकार और उसके बोलनेकी रब ढबसे एवं उसके लक्षणोंसे सचमुच ही मुझे तो यह अनुमान होता है कि वह कोई पुरुष न था किन्तु कोई कन्या ही थी। कुमारने पूछा तूने यह कैसे जाना? तोता बोला कि यदि ऐसा न हो तो उसकी आंखोंमें से अश्रु क्यों झरने लगे? यह स्त्रीका ही लक्षण था परन्तु उत्तम पुरुषसे ऐसा नहीं हो सकता और मैं अनुमान करता हूं कि जो भयंकर पवन आया था वह भी पवन न होना चाहिये किन्तु कोई दैविक प्रयोग ही होना चाहिये। क्योंकि यदि ऐसा न हो तो हम सब क्यों न उड़ सके। वह अकेला ही उडा। प्रशंसा करने लायक वह कन्या भी किसी दिव्य शक्तिवाले के पंजेमें आफंसी होनी चाहिये। मैं यहांतक भी कल्पना करता हूं कि वह कन्या चाहे जैसे समर्थ शक्तिवान के पंजेमें आगई हो तथापि वह अन्तमें आपके ही साथ पाणिग्रण करेगी क्योंकि जिसने प्रथमसे ही कल्पवृक्ष के फल देखे हों वह तुच्छ फलोंकी वांच्छा कदापि नहीं करता उस दुष्ट दैवके पंजेमेंसे भी उसका छुटकारा मेरी कल्पनाके अनुसार तेरे पुण्य उदयसे तेरे ही हाथसे होगा! क्योंकि अवश्य बनने योग्य वांछित कार्यकी सिद्धि श्रेष्ठ भाग्यशाली को ही होती है। जो मुझे सम्भव मालूम होता है मैं वही कहता हूं। परन्तु सचमुच ही वह तुझे मानने योग्य ही होगी और मेरा अनुमान सच्चा है या झूठा इस बातका भी निर्णय तुझे थोड़े ही समयमें होजायगा। इस लिये हे विचारवान कुमार! ये दुखित विलाप छोड़ दे। क्या इस प्रकारका साहसिक विलाप करना उचित है?

तोतेकी यह युक्ति पूर्ण वाणी सुनकर मनमें धैर्य धारण कर रत्नसार कुमार उसका शोक संताप छोड़

कर शान्त हो रहा। फिर इष्ट देवके समान उस तापस कुमारका स्मरण करते हुये घोड़े पर सवार हो पूर्ववत् वहांसे आगे चल पड़ा। रास्तेमें वन, पर्वत, आगर, नगर, सरोवर, नदी, वगैरह उलंघन करके अविछिन्न प्रयाण द्वारा अनुक्रमसे वे दोनों जने अतिशय मनोहर बगीचेमें पहुचे। वहां पर गुंजारव करते हुये भ्रमर मानो गुंजारव शब्दसे कुमारको आदर पूर्वक कुशल क्षेम ही न पूछते हों? इस प्रकार शोभते थे। वहां पर फिरते हुये उन्होंने श्री ऋषभदेव स्वामीका मन्दिर देखा, इतना ही नहीं परन्तु उस मन्दिर पर कम्पायमान होती हुई ध्वजा इस लोक और परलोक एवं दोनों भवमें तुझे इस मन्दिरके कारण सुख मिलने वाला है इसलिये तुझे ग्रहण करनेकी इच्छा हो तो हे रत्नसार! तू यहांपर सत्वर आ, मानो यह विदित करनेके लिये ही बुलाती न हो! इस प्रकारकी ध्वजा भी शोभायमान देख पड़ी। वहांके एक तिलक नामक वृक्षकी जड़में अपने घोड़ेको बांध कर अनेक प्रकारके फल फूल ले दोनों जने दर्शनार्थ मन्दिरमें गये। विधि और अवसरका जानकार रत्नसार वन्य फल फूलसे यथायोग्य पूजा करके प्रभुकी नीचे मुजब स्तुति करने लगा।

श्रीमद्युगादि देवाय, सेवाहेवाकिनाकिने, नमो देवाधिदेवाय, विश्वविश्वैकदृश्वने ॥ १ ॥
परमानन्दकंदाय, परमार्थैकदर्शिने, परब्रह्मस्वरूपाय, नमः परमयोगिने ॥ २ ॥
परमात्मस्वरूपाय, परमानन्द दायिने, नमस्त्रिजगदीशाय, युगादीशाय तायिने ॥ ३ ॥
योगिनामप्यगम्याय, प्रणम्याय महात्मनं, नमः श्री संभवे विश्व, प्रभवेस्तु नमोनमः ॥ ४ ॥

समस्त जगतके सब जीवोंको एक समान कृपा दृष्टिसे देखने वाले, देवताओंके भी पूज्य देव और बाह्याभ्यन्तर शोभनीय श्री युगादि परमात्मा को नमस्कार हो! परमानन्द अनन्त चतुष्टयीके कन्दरूप मोक्ष पदके दिखलानेवाले उत्कृष्ट ज्ञान स्वरूप और उत्कृष्ट योग मय परमात्मा के प्रति नमस्कार हो! परमात्म-स्वरूप मोक्षानन्द को देने वाले तीन जगतके स्वामी, वर्तमान चोविसीके आद्य पदको धारन करने वाले और भवि प्राणियोंका भव दुःखसे उद्धार करने वालेके प्रति नमस्कार हो! मन, वचन, कायके योगोंको वश रखने वाले योगी पुरुषों को भी जिसका स्वरूप अगम्य है एवं जो महात्मा पुरुषोंके भी वंद्य है, तथा बाह्या-भ्यन्तर लक्ष्मीके सुख संपादन करने वाले, जगत की स्थिति का परिज्ञान कराने वाले परमात्मा के प्रति नमस्कार हो!

इस प्रकार हर्षोल्लसित होकर जिनेश्वरदेव भगवान की स्तवना करके रत्नकुमार ने अपना प्रवास सफल किया। और तृष्णा सहित श्री युगादीश के चैत्यके चारों तरफ सुखरूप अमृतका पान कर कष्ट रहित सज्जन-ताके सुखका अनुभव किया। मन्दिरके अति वर्णनीय हाथीके मुखाकार वाले एक गवाक्षमें बैठकर जैसे देव-लोकका स्वामी इन्द्र महाराज ऐरावत नामक हाथी पर बैठा हुआ शोभता है त्यों शोभने लगा। फिर रत्नसार तोतेसे कहने लगा कि उस तापसकुमार की आनन्द दायक खबर हमें अभीतक भी क्यों नहीं मिलती? तोतेने कहा कि हे मित्र! तू अपने मनमें जरा भी खेद न कर, प्रसन्न रह आज हमें ऐसे अच्छे शकुन हुये हैं कि जिससे तुझे आज ही उसका समागम होना चाहिये। इतनेमें ही एक मनोहर सुन्दर मोर पर सवारी की हुई सर्व प्रकारके दिव्यालंकारों से सुशोभित और अपनी दैविक शोभासे दशों दिशाओंको देदीप्यमान करती हुई

वहाँपर एक दिव्य सुन्दरी आई। मन्दिरमे आकर वह पहले अपने मयूर सहित श्री ऋषभदेव स्वामीको नम-स्कार स्तवना करके मानो स्वर्गसे रम्भा नामक देवांगना ही आकर नाटक करती हो इस प्रकार प्रभुके सन्मुख नाटक करने लगी। उसमें भी प्रशंसनीय हाथोंके हाव और अनेक प्रकारके अंग विक्षेप वगैरहसे उत्पन्न होते भाव दिखलाने से मानो नाट्यकला में निपुण नटिका ही न हो इस तरह विविध प्रकारकी चित्रकारी रचनासे नाचने लगी। उसका ऐसा सुन्दर दिव्य नाटक देखकर रत्नसार और तोतेका चित्त सब बातोंको भूलकर नाटकमें तन्मय बन गया, इतना ही नहीं उस रूपसार कुमारको देखकर, मृग समान नेत्र वाली वह स्त्री भी बहुत देर तक अति उल्हास और विलाससे हंसती हुई आश्चर्य निमग्न होगई। तब विकस्वर मुखसे रत्नसारने पूछा कि हे कृषोदरी! यदि तुम नाराज न हो तो मैं कुछ पूछना चाहता हूं। उसने प्रसन्नता पूर्वक प्रश्न करनेकी अनुमति दी। इससे कुमारने पूर्वकी सब बातें विशिष्ट वचनसे पूछीं। तब उसने भी अपना आद्यो-पान्त वृतान्त कहना शुरू किया।

कनक लक्ष्मीसे विराजित कनकपुरी नामा नगरीमें अपने कुलमें ध्वजा समान कनककेतु नामक राजा राज्य करता था। उस राजाके अन्तेपुरमे सारभूत प्रशंसनीय गुणरूप आभूषण को धारण करने वाली इन्द्रकी अग्र महिषीके समान सौन्दर्यवती कुसुमसुन्दरी नामक रानी थी। उस रानीने एक दिन देवताके समान सुखरूप निद्रामें सोते हुये भी स्त्री रत्नके प्रमोदसे उत्कृष्ट आनन्द दायक एक स्वप्न देखा कि पार्वतीके गोदसे उठकर विलास और प्रीतिके देने वाला रति और प्रीतिका जोड़ा अपने स्नेहके उमंगसे मेरी गोदमे आ बैठा है। ऐसा स्वप्न देख तत्काल ही जागृत हो खिले हुये कमलके समान लोचन वाली रानी वचनसे न कहा जाय इस प्रकारके हर्षसे पूर्ण हुई, फिर उसने जैसा स्वप्न देखा था वैसा ही राजाके पास जा कहा, इससे स्वप्न विचारको जानने वाले राजाने कहा कि हे मृगशावलोचना! मालूम होता है कि रचनामें विधाता की उत्कृष्टता बतलाने वाला और सर्व प्रकारसे उत्तम तुझे एक कन्या युग्म उत्पन्न होगा। कन्या युग्म उत्पन्न होगा यह वचन सुनकर वह रानी अति आनन्दित हुई। उस दिनसे रानीके गर्भ महिमासे पहले शरीरकी पीलासके मिषसे मानसिक निर्मलता दीखने लगी। जब जलमें मलीनता होती है तब बादलोंमें भी मलिनता देख पड़ती है और जल रहित बादल स्वच्छ देख पडते हैं वैसे ही यह न्याय भी सुघटित ही है कि जिसके गर्भमें मलीनता नहीं है उससे जलरहित बादलके समान रानीका बाह्य शरीर भी दिनों दिन स्वच्छ दीखने लगा। जिस प्रकार सत्य नीतिसे द्वैत,–कीर्ति और अद्वैत एकली लक्ष्मी प्राप्त की जाती है वैसे ही उस रानीने समय पर सुख पूर्वक पुत्री युग्मको जन्म दिया। पहलीका नाम अशोक मंजरी दूसरीका नाम तिलक मंजरी रक्खा गया।

अब वे पांच धायमाताओं द्वारा लालित पालित हुई नन्दनवन मे कल्पलता के समान दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धिको प्राप्त होने लगीं। वे दोनों जनीं क्रमसे स्त्रीकी चोंसठ कलाओंमें निपुण हो योवनावस्था के निकट हुईं। जैसे बसंत ऋतु द्वारा वन शोभा वृद्धि पाती है वैसे ही यौवनावस्था प्रगट होनेसे उनमें कला चातुर्यता वगैरह गुणोंका भी अधिक विकास होने लगा। अब वे अपने रूप लावण्यसे अपने दर्शक युवकोंके

मनोभाव को भेदन करने लगी उन दोनोंका जिस प्रकार रूप लावण्य समान था वैसे ही उनका आचार विचार और आनन्द विषाद, तथा प्रेमादि गुण भी समान ही था। इसलिए कहा है कि:—

सहजग्गीराण सहसो। विराण सह हरिससो अवंताणं॥
नयणाणव धम्माणाणं। आजम्मं निच्चलं पिम्मं॥१॥

साथमें ही जागना, साथमें ही सोना, साथ ही हर्षित होना, साथ ही शोकयुक्त होना, इस तरह दो नेत्रोंके समान सरीखे स्वभाववाली अपनी पुत्रियोंको देख राजा विचारने लगा कि जिस प्रकार रति और प्रीति इन दोनोंका एकही कामदेव पति है वैसे ही इन दोनों कन्याओं के योग्य एक ही वर कौन होगा? इन दोनोंमें परस्पर ऐसी गाढ प्रीति है कि जो इनकी भिन्न २ वरके साथ शादी करा दी जाय तोप रस्परके विरहसे सचमुच ही ये दोनों कन्यायें मृत्युके शरण हुये विना न रहेंगी। जब एक कल्पलता का निर्वाह करनेवाला मिलना मुश्किल है तब ऐसी दोनों कन्याओं के निर्वाह करनेमें भाग्यशाली हो ऐसा कौन पुण्यशाली होगा। इस जगतमें मैं एक भी ऐसा वर नहीं देखता कि जो इन दोनों कन्याओंमे से एकके साथ भी शादी करनेके लिये भाग्यशाली हो। तब फिर हाय! अब मैं क्या करूंगा? इस प्रकार कनकध्वज राजा अपने मनही मन चिन्ता करने लगा। उस अति चिन्ताके तापसे संतप्त हुआ राजा महीनेके समान दिन, वर्षके समान महीने और युगके समान वर्ष, व्यतीत करने लगा। जिस प्रकार सदाशिव की दृष्टि सामने रहे हुये पुरुषको कष्टकारी होती है, वैसेही ये कन्यायें भाग्यशाली होने पर भी पिताको कष्टकारी हो गईं, इसलिये कहा है कि:—

जातेति पूर्वं महतीतिर्चिता। कस्य प्रदेयेति ततः प्रवृद्धः॥
दत्ता सुखं स्थास्यति वा न वेत्ति। कन्या पितृत्वं किल हंत कष्टम्॥

कन्याका जन्म हुआ इतना श्रवण करते मात्रसे बड़ी चिन्ता उत्पन्न होती है, बड़ी होनेसे अब इसे किसके साथ व्याहें यह चिन्ता पैदा होती है, अपनी ससुराल गये बाद यह सुखी होगी या नहीं ऐसी चिन्ता होती है; इस लिये कन्याके पिताको अनेक प्रकारका कष्ट होता है।

अब कामदेव की बड़ाईका विस्तार करनेके लिये जंगलमें अपनी ऋद्धि लेकर वसंतराज निकलने लगा। वसन्तराजा मलयाचल पर्वतके सुंसुवाट मारता झनझनाहट से, भ्रमरोंके समुदाय से, वाचाल कोकिलाओं के मनोहर कोलाहल से, तीन जगत्को जीतनेके कारण अहंकार युक्त मानो कामदेव की कीर्त्तिका गान ही न करता हो इस प्रकार गायन करने लगा; इस समय हर्षित चित्तवाली राजकन्यायें वसंत-क्रीडा देखनेके लिये आतुर हो कर वनोद्यानमें जानेके लिये तैयार हुईं, हाथी, घोड़े, रथ, पालखीमें बैठकर दास दासियोंके वृन्द सहित चल पड़ीं। जिस प्रकार सखियोंसे परिवरित लक्ष्मी और सरस्वती अपने विमानमें बैठ कर शोभती हैं वैसे ही अपनी सखियों सहित पालखीमें सुखपूर्वक बैठ कर शोभती हुईं, वे दोनों कन्याय शोक सन्ताप को दूर कराने वाले अनेक जातिके अशोक वृक्षोंसे भरे हुये, अशोक नामक उद्यानमें आ पहुंचीं। वहां पर जिन उन्होंने पर श्याम भ्रमर बैठे हैं वैसे चमकदार श्वेत पुष्पवाले आरामको देखा। फिर बावना चन्दनके काष्टसे घडे हुये सुवर्णमय और मणियोंसे जड़े हुये, ढोले जाते हुये चामर सहित लाल अशोकके वृक्षकी एक बड़ी शाखामें

दृढतासे बंधे हुये हिण्डोले पर प्रथम अशोकमंजरी राजकन्या बैठी। हिंडोलेमें झूलने वाली अशोकमंजरी नामक बड़ी बहिनको तिलकमंजरी बड़े जोरसे झुलाने लगी, इससे बड़ी ऊंची ऊंची पींग आने लगीं। जब अशोकमंजरी ने अपने पैरसे अशोक वृक्षको स्पर्श किया कि जिससे जैसे स्त्रीके पदाघातसे प्रसन्न हुआ पति वश हो जाता है वैसे ही वह अशोक वृक्ष प्रफुल्लित होनेसे रोमांचित को धारण करने लगा। हिंडोलेमें झूलती हुई उस सुंदर आकारवाली राजकन्या अशोकमंजरी के विविध प्रकारके विकारों द्वारा अन्य कितने एक युवान् पुरुषोंके नेत्र और मन हिंडोलेके बहानेसे झूलने लग गये, अर्थात् विषयातुर होने लगे। अशोकमंजरी के रत्नजड़ित हलते हुये पैरोंके नूपुर प्रमुख आभूषण रण-झणाहट करते हुये टूट पड़नेके भयसे मानो प्रथमसे ही वे पुकार न करते हों! युवान पुरुषोंसे एवं अन्य युवति स्त्रियोंसे देखी जाती हुई शोभायमान अशोकमंजरी झूलनेके रसमें निमग्न हो रही थी इतनेमें ही दुर्दैवके योगसे एक प्रचंडवायु आनेके कारण वह हिंडोला एक दम टूट पड़ा।

नवजके समान हिंडोला टूट जानेसे हाय हाय! अब इस राजकन्या का क्या होगा? इस विचारमें सबके सब आकुल व्याकुल बन गये। इतनेमें ही हिंडोला सहित अशोकमंजरी मानो स्वर्गमें ही न जाती हो इस तरह लोगोंके देखते हुये वह आकाश मार्गसे उड़ी। यमराज के समान अदृश्य रह कर हाय हाय! इस राजकन्या को कोई हर कर ले जा रहा है, इस प्रकार आकुल व्याकुल हुये लोगोंने ऊंच स्वरसे पुकार किया। अरे! वह ले जा रहा है, वह ले गया, इस प्रकार ऊंचे देख कर बोलते हुये लोगोंने बहुतसे बलवान या धनुष्यधर लोगोने, बहुत वेगसे उसके पीछे दौड़नेवाले शुरवीर पुरुषोंने और अन्य भी कितने एक लोगोंने अपनी अपनी शक्तिके अनुसार बहुत ही उद्यम किया परन्तु किसी की भी कुछ पेश न चली; क्योंकि अदृश्य होकर हरन कर लेने वालेसे क्या पेश आवे? कानोंमें सुनने मात्रसे वेदना उत्पन्न करनेवाले कन्याके अपह-रणका समाचार सुनकर राजाको वज्राघात के समान आघात लगा। हा! हा! पुत्री तू कहाँ गई? हे पुत्री! तू हमें अपना दर्शन देकर क्यों नहीं प्रसन्न करती? हे स्वच्छहृदये! तू अपना पूर्वस्नेह क्यों नहीं दिख-लाती? राजा विव्हल होकर जब इस प्रकार पुत्री विरहातुर हो विलाप करता है तब कोई एक सैनिक राजा के पास आकर कहने लगा कि, हे महाराज! अशोकमंजरी का अपहरन हो जानेके शोकसे आकुल व्याकुल हो जैसे प्रचंड पवनसे वृक्षकी मंजरी हत हो जाती है वैसे ही तिलकमंजरी मूर्छा खाकर पाषाण मूर्त्तिके समान निश्चेष्ट हो पड़ी है। घाव पर नमक छिड़कने के समान पूर्वोक्त वृतान्त सुनकर अति खेदयुक्त राजा कितने एक परिवार सहित तत्काल ही तिलकमंजरीके पास पहुंचा। चंदनका रस सिंचन करने एवं शीतल पवन करने वगैरह के कितने एक उपचारों और प्रयासोंसे किसी प्रकार जब वह कन्या सचेतन हुई तब याद आनेसे वह ऊंच स्वरसे रुदन करने लगी। "हा, हा! स्वामीनी! हा मत्तेभ गामिनी! तू कहां गई, तू कहां है। हा, हा तू मुझ पर सच्ची स्नेहवंती होकर मुझे छोड़ कर कहां चली गई? हे भगिनी! मैं तेरे विना किसका आलम्बन लूं? हे प्रिय सहोदरा! अब मैं तेरे बिना किस प्रकार जी सकूंगी? हे पिताजी! मेरे लिये इससे बढ़ कर और कोई अनिष्ट नहीं। अब मैं अशोकमंजरीके विना किसतरह जीवित रहूं

सकूंगी ? इस प्रकार विलाप करती हुई जल रहित मछलीके समान वह जमीन पर तड़फने लगी। इससे राजाको अत्यन्त दुःख होने लगा, इतना ही नहीं परन्तु महाराणी भी इस समाचारसे अति दुःखित हो वहां पर आकर रुदन करने लगी, और अनेक प्रकारसे दुर्दैवको उपालम्भ दे करुणा-जनक विलाप करने लगी। इस दृश्यसे अशोकमंजरी एवं तिलकमंजरी की सखियाँ तथा अन्य स्त्रियां भी दुःखित हो हृदय द्रावक रुदन करने लगीं। मानो इस दुःखको देखनेके लिये असमर्थ होकर ही सूर्य देव अस्त होगये। अब उस अशोक वनमें पूर्व दिशा की ओरसे अन्धकार का प्रवेश होने लगा। अभी तक तो अन्तःकरण में ही शोकने लोगोंको व्याकुल किया हुआ था परन्तु अब तो अन्धकार ने आकर बाहरसे भी शोक पैदा कर दिया। (पहले अन्दर होमें मलिनता थी परन्तु अब बाहरसे भी अन्धकार होगया। शोकातुर मनुष्यों पर मानो कुछ दया लाकर ही कुछ देर बाद आकाश मण्डलमें अमृतकी वृष्टि करता हुआ चन्द्रमा विराजित हुआ। जिस प्रकार नूतन मेघ मुरझाई हुई लताको सिंचन कर नवपल्लवित करता है उसी प्रकार चन्द्रमाने अपनी शीतल किरणोंकी वृष्टिसे तिलकमंजरी को सिंचन की जिससे वह शान्त हुई, और पिछले प्रहर उठकर मानो किसीदिव्य शक्तिसे प्रेरित कुछ विचार करके अपनी सखियोंको साथ ले वह एक दिशामें चल पड़ी। उसी उद्यानमें रहे हुये गोत्र देवि चक्रेश्वरीके मन्दिर के सामने आकर चक्रेश्वरी देवीके गलेमे महिमावती कमलकी माला चढाकर अति भक्ति भावसे वह इस प्रकार वीनती करने लगी, हे स्वामिनि ! यदि मैंने आजतक तुम्हारी सच्चे दिलसे सेवा भक्ति, स्तवना की हो तो इस एक दीनताको प्राप्त हुई मुझपर प्रसन्न होकर निर्मल वाणीसे मेरी प्रिय बहिन अशोकमंजरी की खबर दो। और यदि खबर न दोगी तो हे माता ! मैं जब तक इस भवमें जीवित हूं तब तक अन्न जल ग्रहण न करूंगी। ऐसा कह कर वह देवीका ध्यान लगाकर बैठगई।

उसकी शक्ति पूर्वक भक्तिसे, और युक्तिसे संतुष्ट हृदया देवी तत्काल उसे साक्षात्कार हुई, एकाग्रता से क्या सिद्ध नहीं हो सकता ? देवी प्रसन्न होकर कहने लगी हे कल्याणी ! तेरी बहिन कुशल है, हे वत्सा ! तू इस बातका चित्तमें खेद न कर ! और सुखसे भोजन ग्रहण कर। तथा आजसे एक महीने बाद दैवयोगसे तुझे अशोकमंजरी की खबर मिलेगी और उसका मिलाप भी तुझे उसी दिन होगा। यदि तेरे दिलमें यह सवाल पेदा हो कि कब ? किस तरह ? कहां पर मुझे उसका मिलाप होगा ? इस बातका खुलासा मैं तुझे स्वयं ही कर देती हूं, तू सावधान होकर सुन। इस नगरीके पश्चिम देशमें यहांसे अति दूर और कायर मनुष्य से जहां पर महा मुश्किलसे पहुचा जाय ऐसे बड़े वृक्ष, नदी, नाले, पर्वत और गुफाओंसे अत्यन्त भयंकर एक बड़ी अटवी है। जहांपर किसी राजा महाराजा की आज्ञा वगैरह नहीं मानी जाती। जिस प्रकार पड़देमें रहने वाली राजाकी रानियां सूर्यको नहीं देख सकतीं वैसे ही वहांकी जमीन पर रहने वाले गीदड़ आदि जंगली पशु भी वहांके ऊंचे ऊंचे वृक्षोंकी सघन घनघटा होनेके कारण सूर्यको नहीं देख सकते। ऐसे भयंकर वनमें मानो आकाशसे सूर्यका विमान ही न उतरा हो इस प्रकारका श्री ऋषभदेवका एक बड़ा ऊंचा मन्दिर है। जिस तरह गगनमण्डल में पूर्णिमाका चन्द्रमण्डल शोभता है वैसे ही चन्द्रकान्त मणिमय श्री ऋषभ-देवकी निर्मल मूर्ति शोभती है। कल्पवृक्ष और कामधेनुके समान महिमावती उस मूर्तिकी जब तू पूजा करेगी

तब तुझे वहां ही तेरी बहिनका वृत्तान्त मिलेगा और मिलाप भी तुझे उसका वहां ही होगा। तथा इतना तू और भी याद रखना कि उसी मन्दिरमें तेरा अन्य भी सब कुछ श्रेय होगा। क्योंकि देवाधि देवकी सेवामें क्या नहीं सिद्ध होता? तू यह समझती होगी कि ऐसे भयंकर वनमें और इतनी दूर रोज किस प्रकार पूजा करने आया जाय? और पूजा करके प्रतिदिन पीछे किस तरह आ सका जाय! इस बातका भी मैं तुझे उपाय बतलाती हूं सो भी तू सावधान होकर सुन ले। सत्यकी विद्याधर के समान अति शक्तिवान् और सर्व कार्योंमें तत्पर चंद्रचूड नामक मेरा एक सेवक है, वह मेरी आज्ञासे मोरका रूप धारण कर तुझे तेरे निर्धारित स्थान पर जैसे ब्रह्माकी आज्ञासे सरस्वतीको हंस ले जाया करता है वैसे ही लाया और ले जाया करेगा। इस बातकी तू जरा भी चिन्ता न करना।

देवी अभी अपना वाक्य पूरा न कर सकी थी इतनेमें ही आकाशमें से अकस्मात् एक मनोहर दिव्य शक्ति वाला और अति तीव्र गति वाला सुन्दर मयूर तिलकमंजरीके सन्मुख आ खड़ा हुआ। उसपर चढकर देवांगना के समान जिनेश्वर देवकी यात्रा करनेके लिये उस दिनसे मैं यहां पर क्षणभर में आया जाया करती हूं। यह वही भयंकर वन है; शीतलता करने वाला वही यह मन्दिर है, वही विवेकवान् यह मयूर है और वही मैं तिलकमंजरी कन्या हूं।

हे कुमार! मैंने यह अपना वृत्तान्त कहा। हे सौभाग्यकुमार! अब मैं आपसे पूंछती हूं कि मुझे यहां पर आते जाते आज बराबर एक महीना पूर्ण हुआ है, परन्तु जिस प्रकार मरु देशमें गंगा नदीका नाम तक भी नहीं सुना जाता वैसे ही मैंने यहां पर आज तक अपनी बहिनका नाम तक नहीं सुना। इसलिये हे भद्रकुमार! आपने जगतमें परिभ्रमण करते हुये यदि कहीं पर भी मेरे समान स्वरूप कान्ति वाली कन्या देखी हो तो कृपा कर मुझे बतलावें। तब तिलकसुन्दरी के वश हुआ रत्नसार कुमार स्पष्टतया बोलने लगा कि हे हरिणाक्षी! हे तीन लोककी स्त्रियोंमें मणि समान कन्यके! तेरे जैसी तो क्या? परन्तु तेरे शतांश भी रूप राशीको धारण करने वाली कन्या मैंने जगतमें परिभ्रमण करते आज तक नहीं देखी और सम्भव है देख भी न सकूंगा। परन्तु शबरसेना नामक अटवीमें एक दिव्य रूपको धारण करने वाला, हिण्डोले में झूलते हुये अत्यन्त सुन्दर युवावस्था की शोभासे मनोहर, वचनकी मधुरतासे, अवस्थासे और स्वरूप से बिलकुल तेरे ही जैसा मैंने पहले एक तापस कुमार अवश्य देखा है। उसका स्वाभाविक प्रेम, उसकी कीहुई भक्ति और अब उसका विरह मुझे ज्यों ज्यों याद आता है त्यों त्यों वह अभी तक भी मेरे हृदयको असह्य वेदना पहुंचाता है। तुझे देखकर मैं अनुमान करता हूं कि वह तापस कुमार तू स्वयं ही है और या जिसका तूने वर्णन सुनाया वही तेरी बहिन हो।

फिर वह तोता गंभीर वाणीसे बोला कि कुमारेन्द्र! जो मैंने आपसे प्रथम वृत्तान्त कहा था वही यह वृत्तान्त है, इसमें कुछ भी शंका नहीं। सचमुच ही हमने जो वह तापस कुमार देखा था वह इस तिलकमंजरी की बहिन ही थी, और मैं अपने ज्ञान बलसे यही अनुमान करता हूं कि आज एक मास उस घटना को पूर्ण हुआ है इसलिये वह हमें यहां ही किसी प्रकारसे आज मिलनी चाहिये। जगत भरमें सारभूत तिलकमंजरी-

मेरी बहिन जो आज यहां हा मिले तो हे निमित्त ज्ञानमे कुशल शुकराज ! मैं बड़ी प्रसन्नता से तेरी कमल पुष्पों से पूजा करुंगी। कुमार बोला—"जो तू कहता है सो सत्य ही होगा क्योंकि विद्वान् पुरुषोने तेरे वचनका विश्वास पाकर ही प्रथम भी तेरी बहुत दफा प्रशंसा की है। इतनेमे ही अकस्मात् आकाश मार्गमें मन्द मन्द घुंगरियोंका मधुर आवाज सुन पड़ने लगा। वे रत्न जड़ित घूंगरियां मन्द मन्द आवाज से चन्द्र मण्डल के समान दृश्यको धारण कर शोभने लगीं। कुमार शुकराज और तिलकमंजरी वगैरह चकित होकर ऊपर देखने लगे। इतनेमें ही अति विस्तीर्ण आकाश मार्गको उलंघन करनेके परिश्रमसे आकुल व्याकुल बनो हुई एक हंसी कुमारकी गोदमें आ पड़ी। वह हंसी किसीके भयसे कंपायमान हो रही थी। स्नेहके आवेशसे टकटकी लगा कर वह कुमारके सन्मुख देखकर मनुष्य भाषामें बोलने लगी कि हे पुरुष रत्न! हे शरणागत वत्सल, हे सात्विक कुमार! मुझ कृपा पात्रका रक्षण कर! मुझे इस भयसे मुक्त कर। मैं तेरी शरण आई हूं, तू शरण देनेके योग्य है, मैं शरण लेनेकी अर्थी हूं, जो बडे मनुष्योंकी शरण आता है वह सुरक्षित रहता है। वायुका स्थिर होना, पर्वतका चलायमान होना, पानीका जलना, अग्निका शीतल होना, परमाणुका मेरु होना, मेरुका परमाणु बनना, आकाशमें कमलका होना, और गधेके सिर सींग होना, ये न होने योग्य भी कदापि बन जाय परन्तु धीर पुरुष अपनी शरणमें आये हुयेको कदापि नहीं छोड़ते। उत्तम पुरुष शरणागत का रक्षण करनेके लिये अपने राज्य तकको तृण समान गिनते हैं, धनका व्यय करते हैं, प्राणोंको भी तुच्छ गिनते हैं, परन्तु शरणागत को आंच नहीं आने देते।

हंसीके पूर्वोक्त वचन सुन कर उसकी पांखों पर अपना कोमल हाथ फिराता हुआ कुमार बोला कि हे हंसनी! तू कायरके समान डरना नहीं, यदि तुझे किसी नरेन्द्र, खेचरेन्द्र या किसी अन्यसे भय उत्पन्न हुआ हो तो मैं उसका प्रतीकार करनेके लिए समर्थ हूं; परन्तु जब तक मुझमें प्राण हैं तब तक मैं तुझे अपनी गोदमें बैठी हुई को न मरने दूंगा। शेष नागकी छोड़ी हुई कांचलीके समान श्वेत तू अपनी पांखोंको मेरी गोदमें बैठी हुई क्यों हिला रही है? यों कह कर सरोवर मेंसे निर्मल जल और श्रेष्ठ कमलके तंतू ला कर उस आकुल व्याकुल बनी हुई हंसीको दयालु कुमार शीतल करने लगा। यह कौन है? कहांसे आई? इसे किसका भय हुआ? यह मनुष्यकी भाषा कैसे बोलती है? इस प्रकार जब कुमार वगैरह विचार कर रहे थे उतनेमें ही अरे! तीन लोकका नाश करने वाले यमराज को कुपित करनेके लिए यह कौन उद्यम करता है? यह कौन अपनी जिन्दगी की उपेक्षा कर शेष नागकी मणिका स्पर्श करता है? यह कौन है कि जो कल्पान्त-कालके अग्निज्वाला में अकस्मात प्रवेश करना चाहता है? यह भयानक वाणी सुन कर वे चारों जने चकित हो गये, शुकराज तत्काल ही उठ कर मन्दिरके दरवाजे के सन्मुख आ कर देखता है तो गंगानदी की बाढ़के समान आकाश मार्गसे आते हुए विद्याधर राजाके महा भयंकर अतुल सैन्यको देखा। तब उस तीर्थके प्रभावसे और देव महिमासे तथा भाग्यशाली रत्नसार कुमारके अद्भुत भाग्योदय से या कुमारके संसर्गसे धीरताके व्रतमें धोरी बन धैर्य धारण करके वह शुकराज उच्च शब्दसे उन सैनिकों को अति तिरस्कार पूर्वक कहने लगा, अरे! विद्याधर वीरो! आप क्यों दुर्बुद्धिसे दौड़ा दौड़ कर रहे हो? यह रत्नसार कुमार देवता

आँसे भी अजय्य है क्या यह तुम्हें मालूम नहीं ? अपने अभिमान को चारों तरफ पसारते हुए तुम सर्पके समान दौड़े चले आ रहे हो ! परन्तु तुम्हें अभी तक यह मालूम नहीं कि तुम्हारा अभिमान दूर करने वाला गरुड़के समान पराक्रमी रत्नसार कुमार सामने ही खड़ा है ? अरे ! तुम यह नहीं जानते कि यह कुमार यदि तुम पर यमराज के समान कोपायमान हो गया तो युद्ध करनेके लिये खड़ा रहना तो दूर रहा परन्तु जान बचा कर यहाँसे भागना भी तुम्हें मुश्किल हो जायगा ?

इस प्रकार वीर पुरुषके समान उस शुकराज की पुकार सुन कर खेद, विस्मय और भय प्राप्त कर विद्याधर मनमें विचार करने लगे कि, यह तोतेके रूपमें अवश्य कोई देवता या दानव है। यदि ऐसा न हो तो हम विद्याधरों के सामने इस प्रकारकी फक्का अन्य कौन करनेके लिये समर्थ है ? हमने आज तक कितनी एक दफा विद्याधरों के सिंहनाद भी सुने हैं परन्तु इस तरह तिरस्कार पूर्वक फक्का आज तक कभी न सुनी थी। तथा जिसका तोता भी इस तरहका वीर है कि जो विद्याधरों को भी भयानक मालूम होता है, तब फिर इसके पीछे रहा हुआ स्वामी कुमार न जाने कैसा पराक्रमी होगा ? जिसका बल पराक्रम मालूम नहीं उस तरहके अनजान स्वरूपमें युद्ध करनेके लिए कौन आगे बढ़े ? जब तक समुद्रका किनारा मालूम न हो तब तक कौन ऐसा मूर्ख है कि—जो तारकपन के अभिमान को धारण करके उसमें तैरनेके लिए पड़े ? इस विचारसे वे निष्पराक्रम हो एकले तोतेकी फक्का मात्रसे सशंक त्रासको प्राप्त कर निर्माल्य हो कर एक दूसरेके साथकी राह देखे बिना ही वापिस लौट गये।

जिस प्रकार एक बालक भयभीत हो अपने पिताके पास जा कर सब कुछ सत्य हकीकत कह देता है वैसे ही उन विद्याधर सैनिकोंने भी वहांके राजाके पास जा कर जैसी बनी थी वैसे ही सर्व घटना कह सुनाई। क्योंकि अपने स्वामीके पास कुछ भी न छिपाना चाहिये। उनके मुखसे पूर्वोक्त वृत्तान्त सुन कर क्रोधायमान होनेके कारण लाल नेत्र करके वह विद्याधर राजा टेढ़ी दृष्टि कर बिजली-चमत्कार के समान भृकुटीको फिराता हुआ मेघके समान गर्जना करने लगा। क्रोधसे लाल सुर्ख हो कर वह सिंह समान तेजस्वी राजा सैनिकोंको कहने लगा वीरताके नामको धारण करने वाले तुम्हें धिक्कार है। तुम निरर्थक ही भयभीत हो कर पीछे लौट आये; कौन तोता, और कौन कुमार ! या कौन देव और कौन दानव ! हमारे सामने खड़े रहनेकी किसकी ताक़त है ? अरे-पामरो ! तुम-अब मेरा पराक्रम देखो यों बोलते हुए उसने अकस्मात् अपनी विद्याके बलसे दस मुख और बीस भुजा धारण कीं। लीला मात्रसे शत्रुके प्राण लेने वाली तलवारको बांयें हाथमें ले दाहिने हाथमें उसने फलक नामक ढालको धारण किया। एवं अन्य दाहिने हाथमें मणिसर्प के समान बाणके तरकस को धारण किया और यमराज की भुजदंडके समान शोभते हुए धनुष्यको दूसरे बायें हाथमें उठाया। एक हाथमें अपने यशनाद को जीत लाने वाले शंखको धारण किया और दूसरे हाथमें नागपाश लिया; इसी प्रकार एक हाथमें तीक्ष्ण भाला, बरछी वगैरह शस्त्र अंगीकार किये। अब वह दर्शन मात्रसे दूसरोंको भय पैदा करता हुआ साक्षात रावणके समान अत्यन्त भयंकर रूप धारण कर रत्नकुमार पर चढ़ाई कर आया। उसके भयानक रूपको देखते ही, बिचारा शुकराज तो त्रासित हो रत्नसार के समीप

दौड़ आया। फिर उस विद्याधर ने रत्नसार कुमारको धमका कर कहा कि अरे! कुमार! तू सत्वर यहांसे दूर भाग जा, अन्यथा यहां पर आज कुछ नया पुराना होगा। हे अनार्य! अरे निर्लज्ज, निरमर्याद! अरे निरंकुश! अरे मेरे जीवितके समान और सर्वस्व के तुल्य हंसीको गोदमें ले कर बैठा है, इससे क्या तू तेरे मनमें लज्जित नहीं होता? तू अभी तक भी मेरे सामने निःशंक, निर्भय होकर ठहरा हुआ है? सचमुच ही हे मूर्खशिरोमणि! तू सदाके लिये दुःखी बन बैठेगा।

इस प्रकारके कटु वचन सुन कर सशंक तोतेके देखते हुए, कौतुक सहित मोरके सुनते हुए, कमलके समान नेत्र वाली, त्रासित हुई उस हंसीके सुनते हुए कुमार हस कर बोलने लगा अरे मूर्ख! तू मुझे व्यर्थ ही भय बतानेका उद्यम क्यों करता है? तेरे इस भयानक दिखावसे कोई बालक डर सकता है परन्तु मेरे जैसा पराक्रमी, कदापि नहीं डर सकता। ताली बजानेसे पक्षी ही डर कर उड़ जाते हैं; परन्तु बड़े नगारे बजने पर भी सिंह अपने स्थान परसे डरकर नहीं भागता। यदि कल्पान्तकाल भी आ जाय तथापि शरणागत आई हुई इस हंसीको म कदापि नहीं दे सकता। शेष नागकी मणिके समान न प्राप्त होने योग्य वस्तुको ग्रहण करनेकी इच्छा रखनेवाले तुझे धिक्कार हो! इस हंसीकी आशा छोडकर तू इसी वक्त यहांसे दूर चला जा। अन्यथा इन तेरे दस मस्तकोंको दस दिशाओंके स्वामी दिक्पालों को बलिदान कर दूंगा। इस वक्त रत्नसार के मनमें यह विचार पैदा हुआ कि यदि इस समय मुझे कोई सहाय दे तो मैं इसके साथ युद्ध करूं। यह विचार करते समय तत्काल ही उस मयूर अपना स्वाभाविक दिव्यरूप बना कर विविध प्रकारके शस्त्र धारण कर कुमारके समीप आ खड़ा हुआ।

अब वह चंद्रचूड़ देवता कुमारसे कहने लगा कि हे कुमारेन्द्र! तू यथारुचि युद्ध कर मैं तुझे शस्त्र पूर्ण करूंगा और तेरी इच्छानुसार तेरे शत्रुका नाश करूंगा। चंद्रचूड देवके वचन सुन कर जिस प्रकार केसरी सिंह सिकारके लिये तैयार होता है और जैसे गरुड अपनी पांखोंसे बलवान् होकर दुःसह्य देख पड़ता है वैसेही रत्नसार कुमार अति उत्साह सहित शत्रुको दुःसहकारी हो इस प्रकारका स्वरूप धारण करता हुआ हर्षित हुआ। तिलकमंजरी के कर कमलोंमे उस हंसीको समर्पण कर तैयार हो रत्नसार अपने घोड़े पर सवार हो गया। चंद्रचूड ने उसे तत्काल ही गांडीव नामक धनुष्य की शोभाको जीत लेनेवाला बाणो सहित एक धनुष्य समर्पण किया। उस चंद्रचूड़ देवताकी सहायता से महा भयंकर और अतुल बल वाले विद्याधर को अंतमें रत्नसार ने पराजित किया। चंद्रचूड़ देवताके दिव्य बलके सामने उस प्रपंची विद्याधर की एक भी विद्या सफल न हो सकी। उस अजय्य शत्रुको जीत कर हर्षित हो रत्नसार कुमार चंद्रचूड देवता सहित मन्दिरमें गया।

कुमारके पराक्रम को देख कर तिलकमंजरी उल्लसित और रोमांचित होकर विचारने लगी कि यदि मेरी बहिनका मिलाप हो तो पुरुषोंमें रत्नके समान हम इस कुमारको हीं स्वामीतया स्वीकार करके अपना अहोभाग्य समझें। इस प्रकार हर्ष, लज्जा और चिन्तापूर्ण तिलकमंजरी के पाससे बालिकाके समान उस हंसीको कुमारने अपने हाथमें धारण की। तब हंसी बोलने लगी हे कुमारेन्द्र! हे धीरवीर शिरोमणि आप

पृथ्वी पर चिरजीवित रहो! पामर और दीनताको तथा दुःखावस्था को प्राप्त हुई मेरे लिये जो आपने कष्ट उठाया है और उससे जो आपको दुःख सहन करना पड़ा है तदर्थ मुझे क्षमा करें। मैं महापुण्य के प्रतापसे आपकी गोदको प्राप्त कर सकी हूं। कुमार बोला—"हे प्रिय बोलने वाली हंसी तू कौन है? किस लिये तुझे विद्याधर पकड़ता था और यह तुझे मनुष्य भाषा बोलनी कहांसे आई? हंसी बोलने लगी कि:—मैं अपना वृतान्त सुनाती हूं आप सावधान होकर सुनें!

वैताढ्य पर्वत पर रथनूपुर चक्रवालपुर का तरुणीमृगांक नामक तरुणियों में आसक्त एक राजा है। वह एक दिन आकाश मार्गसे कहीं जा रहा था; उस वक्त कनकपुरी नगरीके उद्यानमें उसने एक सुन्दराकार वाली अशोकमंजरी को देखा। सानन्द हिंडोलेमें झूलती हुई साक्षात् अप्सरा के समान उस बालिकाको देख कर ज्यों चन्द्रको देख कर समुद्र शोभायमान होता है त्यों वह चलचित्त हो गया। फिर उसने अपनी विद्याके बलसे प्रचंड वायु द्वारा वहांसे उस कन्याको हिंडोले सहित हरन करली, उसने उसे हरन करके जब महा भयंकर शबरसेना नामक अटवीमें ला छोड़ी तब वह कन्या मृगीके समान भयसे त्रसित हो फूट फूट कर रोने लगी। फिर विद्याधर कहने लगा कि हे सुभ्रु! इस प्रकार डरकर तूं कम्पायमान क्यों हो रही है? तू किस लिये चारों दिशाओंमें अपने नेत्रोंको फिरा रही है! तू किस लिये विलाप करती है मैं तुझे किसी प्रकार का दुःख न दूंगा। मैं कोई चोर नहीं हूं। एवं परदार लंपट भी नहीं, परन्तु मैं विद्याधरों का एक महान् राजा हूं, तेरे अनन्त पुण्यके उदय से मैं तेरे वश हुआ हूं मैं तेरा नौकर जैसा बन कर प्रार्थना करता हूं कि हे सुन्दरी! तू मेरे साथ पाणिग्रहण कर जिससे तू तमाम विद्याधर स्त्रियोंकी स्वामिनि होगी। अशोकमंजरी ने उसकी बातका कुछ भी उत्तर न दिया, क्योंकि जो प्रगटमें ही अरुचि कर हो उस बातका कौन उत्तर दे! माता पिता सगे सम्बन्धियों के वियोगसे यह इस वक्त बड़ी दुःखी है, परन्तु धीरे धीरे अनुक्रम से यह मेरी इच्छा पूर्ण करेगी। इस आशासे जिस तरह शास्त्रका पढने वाला शास्त्रको याद करता है, वैसे ही उसने अपनी सर्व इच्छा पूर्ण कराने वाली विद्याको स्मरण करके उसके प्रभाव से उसका रूप बदल कर जैसे नाटक करने वाला अपना रूप बदल डालता है वैसे उसका तापसकुमारका रूप बना दिया। नाना प्रकारके तिरस्कार के समान सत्कार कर, आपत्ति के समान आने जानेके प्रचार और उपचार कर, तथा प्रेमालाप करके उस तापस कुमार के रूपमें रही हुई कन्याको उस दुष्टबुद्धि विद्याधर राजाने कितने एक समय तक समझाया बुझाया, परन्तु उसके तमाम प्रयत्न ऊसर भूमिमें बीज बोनेके समान निष्फल हुये। यद्यपि उसके किये हुये सर्व प्रयत्न व्यर्थ हुये तथापि चित्त विश्राम हुये मनुष्यके समान उसका उस कन्या परसे चित्त न उतरा।

वह दुष्ट परिणाम वाला विद्याधर एक समय किसी कार्यवश अपने गांव चला गया था; उस समय हे कुमारेन्द्र! हिंडोलेमें झूलते हुये उस तापस कुमारने वहां पर आपको देखा था। फिर वह आपकी भक्ति करके और आप पर विश्वास रख कर अपनी बीती हुई घटना कहनेके लिये तैयार हुवा था, इतनेमें ही वह दुष्ट विद्याधर वहां पर आ पहुंचा और अपने विद्याबल से प्रचंड वायु द्वारा उस तापसकुमार को वहांसे

हरन कर ले गया। वह उसे अपने नगरमें ले जाकर मणि रत्नोंसे उद्योतायमान अपने मन्दिरमें कोपायमान हो जैसे कोई चतुर बुद्धिसे अपनी चतुरा स्त्रीको शिक्षा देता हो उस प्रकार कहने लगा कि हे मुग्धे! तू यहां आये हुये किसी कुमारके साथ तो प्रेम पूर्वक बात चीत करती थी और तेरे वशीभूत हुये मुझे तो तू कुछ उत्तर तक नहीं देती? अब भी तू अपने कदाग्रह को छोड़कर मुझे अंगीकार कर! यदि ऐसा न करेगी तो सचमुच ही यमराज के समान मैं तुझ पर कोपायमान हुआ हूं। तब धैर्य धारण कर तापस कुमार ने कहा कि, हे राजेन्द्र! छलवान् पुरुष छल द्वारा और बलवान पुरुष बल द्वारा राज्य ऋद्धि वगैरह प्राप्त कर सकता है। परन्तु छलसे या बलसे कदापि प्रेम पात्र नहीं हो सकता। जहाँपर दोनों जनोंके चित्तकी यथार्थ सरलता हो वहां पर ही प्रेमांकुर उत्पन्न होता है। जैसे जबतक उसमें स्नेह (घी) न डाला हो तबतक अकेले आटेका लड्डू नहीं बन सकता। वैसे ही स्नेह बिना सम्बन्ध नहीं हो सकता। यदि ऐसा न हो तो स्नेह रहित अकेले काष्ठ पाषाण परस्पर क्यों नहीं चिपट जाते? जो स्नेह बिना सम्बन्ध होता हो तो उन दोनोंका सम्बन्ध भी होना चाहिये तब फिर ऐसा कौन मूर्ख है कि जो निस्नेही में स्नेहकी चाहना रक्खे? वैसे मूर्खोंको धिःक्कार है कि जो स्नेह स्थान बिना भी उसमें व्यर्थ आग्रह करते हैं। ये वचन सुनकर विद्याधर अत्यन्त कोपायमान हुआ और निर्दय हो तत्काल म्यानसे तलवार निकाल बोला अरे रे! दुष्ट क्या तू मेरी भी निन्दा करता है? मैं तुझे जानसे मार डालूंगा। धैर्यका अवलम्बन ले तापसकुमार बोला कि अरे दुष्ट पापिष्ठ? अनिश्चित के साथ मिलाप करना इससे मरना श्रेयस्कर है। यदि तू मुझे न छोड़ सकता हो तो विलम्ब किये बिना ही मुझे मार डाल, मैं मरने को तैयार हूं। तापसकुमार के पुण्योदय से विद्याधर ने विचार किया कि अहा! क्रोधावेश में मैं यह क्या कर रहा हूं? मेरा जीवित इस कुमारीके आधीन है, तब फिर क्रोधमें आकर मैं इसे किस तरह मार सकूं? सचमुच ही मीठे वचनोंसे और प्रेमालाप से ही प्रेमकी उत्पत्ति हो सकती है। इस विचारसे तत्काल ही जैसे कंजूस मनुष्य समय आने पर अपना धन छिपा देता है वैसे ही उसने अपनी तलवार म्यानमें डाल दी फिर उस विद्याधर ने अपनी काम रूपिणी विद्याके बलसे तापसकुमार को तुरन्त ही मनुष्य भाषा भाषिणी एक हंसी बना दी। फिर उसे मणि रत्नोंके पिंजड़ेमें रख कर पूर्ववत् आदर पूर्वक प्रसन्न करने के लिये चाटु वचनों द्वारा प्रतिदिन समझाने लगा। चतुराई पूर्ण मीठे वचनों से उसे समझाते हुये एक दिन विद्याधर की कमला नामक रानीने देख लिया। इससे उसके मनमें कुछ शंका पैदा हुई। स्त्रियोंका यह स्वभाव ही है कि वे सौतका सम्भव होता नहीं देख सकतीं और इससे उनमें मत्सर एवं ईर्षा आये बिना नहीं रहती।

एक दिन उस विद्याधरीने सखीके समान अपनी विद्याको याद कर अपने शल्यको निकाल नेके समान सौत भावके भयसे उस हंसीको पिंजरेसे निकाल दिया। अब वह पुण्योदय से नरकमें से निकले के समान उस विद्याधर के घरमें से निकल शबर सेना नामक अटवी को उद्देश कर भ्रमण करने लगी। कदाचित् वह विद्याधर मेरे पीछे आकर मुझे फिरसे न पकड़ ले इस भयसे आकुल व्याकुल मनवाली अति वेगसे उड़ती हुई वह थक गई। पुण्योदय से आकर्षित हो मानो विश्राम लेनेके लिये ही वह हंसी यहां आ पहुंची और आपको देख कर वह आपकी गोद रूप कमलमें आ छिपी। हे कुमारेन्द्र! बस मैं ही वह हंसिनी हूं और वही यह विद्याधर था कि जिसे आपने संग्राम द्वारा पराजित किया।

इस प्रकार उस हंसनीके मुख से अपनी बहिन का वृत्तान्त सुन कर अति दुःखित हो तिलकमंजरी विलाप करने लगी और यह चिन्ता करने लगी कि हाय दुर्भाग्य वशात् उत्पन्न हुवा यह अब तेरा तिर्यंचपन किस तरह दूर होगा ? उसका हृदय स्पर्शी विलाप सुनकर तत्काल ही चन्द्रचूड़ देवता ने पानी छिड़क कर अपनी दिव्य शक्तिसे हंसिनी को उसके स्वाभाविक रूपमें मनुष्यनी बना दिया। साक्षात् सरस्वती और लक्ष्मी के समान अशोकमंजरी और तिलकमंजरी रत्नसार को हर्षका कारण हुई। फिर हर्षोल्लसित हो शीघ्रता से उठकर दोनों बहिनों ने परस्पर प्रेमालिंगन किया। अब कौतुक से मुसकरा कर रत्नसार कुमार तिलकमंजरी से कहने लगा कि हे चन्द्रवदना यह तुम्हारा आनन्ददायी दोनोका मिलाप हुआ है, इससे हम तुमसे कुछ भी पारितोषिक मांग सकते हैं। इसलिये हे मृगाक्षी ! क्या पारितोषिक दोगी। जो देना हो सो जल्दीसे दे देना चाहिये। क्योंकि औचित्य दान देनेमें और धर्मकृत्यों में विलम्ब करना योग्य नहीं।

लांचौचित्यादिदानण। हुड्डा सूक्तीशृहे ॥ धर्मे रोगरिपुच्छेदे। कालक्षेपो न शस्यते ॥

रिसवत देनेमें, औचित्य दान लेनेमें, ऋण उतारने में, पाप करने में, सुभाषित सुनने में, वेतन लेनेमें, धर्म करने में, रोग दूर करने में, और शत्रुका उच्छेद करनेमें अधिक देर न लगाना चाहिये।

क्रोधावेशेनदी पूरे। प्रवेशे पाप कर्मणि ॥
अजीर्णाभुक्तो भीस्थाने। कालक्षेपो प्रशस्यते ॥

क्रोध करने में, नदी प्रवाह में प्रवेश करने में, पाप कृत्य करने में, अजीर्ण हुये बाद भोजन करने में, और भयस्थान पर जानेमें विलम्ब करना योग्य है।

लज्जा, कम्प, रोमांच, प्रस्वेद, लीला, हावभाव आश्चर्य वगैरह विविध प्रकार के विकारों द्वारा क्षोभित हुई तिलकमंजरी धैर्यको धारण करके बोली सर्व प्रकार के उपकार करने वाले हे कुमारेन्द्र ! आपको पुरुषकारमें सर्वस्व समर्पण करना है और उस सर्वस्व समर्पण करनेका यह कौल करार समझिये। यों बोलकर प्रसन्नता-पूर्वक अपने चित्तके समान तिलकमंजरी ने रत्नसार कुमार के गलेमें मोतियों का एक मनोहर हार डाल दिया। निस्पृह होने पर भी कुमार ने वह प्रेम पुरस्कार स्वीकार किया। तिलकमंजरी ने तोते की भी कमलों से सत्वर पूजा की। औचित्य कृत्य करने में सावधान चन्द्रचूड देव कहने लगा कि हे कुमार ! प्रथम तुम्हें तुम्हारे पुण्यने दी हैं और अब मैं ये दोनों कन्यायें आपको समर्पण करता हूं। मंगल कार्यमें विघ्न बहुत आया करते हैं, इसलिये जिस प्रकार आपने प्रथम इनका चित्त ग्रहण किया है वैसे ही आप अब शीघ्र इनका पाणिग्रहण करें। ऐसा कह कर वह चन्द्रचूड देव कन्याओं सहित कुमार को विवाहके लिये हर्षित हो एक तिलक वृक्षकी कुंजमें ले गया। अपना स्वाभाविक रूप करके चन्द्रचूड़ ने तुरन्त ही चक्रेश्वरी देवीके पास जाकर यहां पर बनी हुई सर्व घटना कह सुनाई।

खबर मिलते ही एक सुन्दर दिव्य विमानमें बैठ कर अपनी सखियों सहित श्री चक्रेश्वरी देवी शीघ्र ही यहां पर आ पहुंची। गोत्र देवीके समान उसे वधू वरने प्रणाम किया। इससे कुलमें बड़ी स्त्रीके समान चक-

श्वरी देवी ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि वियोग रहित प्रीति युक्त सुख रूपी लक्ष्मी और पुत्र पौत्रादिक सन्ततिसे तुम वधू वर चिरकाल तक विजयी रहो।

फिर उचित कार्य करने में चतुर चक्रेश्वरी देवीने विवाह की सर्व सामग्री तयार कराकर समहोत्सव और विधि पूर्वक उन्होंका पाणिग्रहण कराया। फिर चक्रेश्वरी देवीने अपने दिव्य प्रभाव से मणि रत्नोंसे जड़ित एक सुन्दर मन्दिर बना कर वर वधूको समर्पण किया।

अब पूर्व पुण्यके योगसे तथा चक्रेश्वरी देवीकी सहायसे पूर्ण मनोरथ रत्नसार देवांगनाओं के समान उन दोनों सुंदरीयों के साथ सांसारिक सुखविलास भोगने लगा। उस तीर्थराज की भक्तिसे, दिव्य ऋद्धिके सुख परिभोग से और वैसे ही प्रकारकी दोनों वधुओंसे रत्नसार को इस प्रकारका सुख प्राप्त हुआ कि जिससे उसके सर्व मनोरथ सफल हुये। शालीभद्र को गोभद्र नामक देवता पिता सम्बन्ध के कारण सर्व प्रकारके दिव्य सुख भोग पूर्ण करता था। उससे भी बढकर आश्चर्य कारक यह है कि माता पिताके सम्बन्ध बिना चक्रेश्वरी देवी स्वयं ही उसे मनोवांछित भोगकी संपदायें पूर्ण करती है।

एक समय चक्रेश्वरी देवीकी आज्ञासे चंद्रचूड देवताने कनकध्वज राजाको अशोकमंजरी, तथा तिलक-मंजरीके साथ रत्नसार के विवाह सम्बन्धी बधाई दी। इस हर्षदायक समाचार को सुनकर कनकध्वज राजा स्नेह प्रेरित हो वर-वधूको देखनेकी उत्कंठा से अपनी सेना सहित वहां जानेको तैयार हुआ। मंत्री सामन्त परिवार सहित राजा थोड़े ही दिनोंमें उस स्थान पर आ पहुंचा कि जहां रत्नसार रहता था, रत्नसार कुमार, *तोता, अशोकमंजरी, और तिलकमंजरी ने समाचार पाकर राजाके सन्मुख आकर प्रणाम किया। जिस प्रकार प्रेम-प्रेरित दो बछडियां अपनी माता गायके पास दौड़ आती हैं वैसे ही अलौकिक प्रेमसे दोनों पुत्रियां अपनी मातासे आ मिलीं। रत्नकुमार के वैभव एवं देवता सम्बन्धी ऋद्धिको देखकर परिवार सहित राजा परम संतोषित हो उस दिनको सफल मनाने लगा। कामधेनु के समान चक्रेश्वरी देवीकी कृपासे रत्नसार कुमारने सैन्य सहित राजाका उचित आतिथ्य किया। उसकी भक्तिसे रंजित हुये राजाने अपने नगरमे वापिस जानेकी बहुत ही जल्दी की, तथापि उससे वापिस न जाया गया, कुमारकी की हुई भक्तिसे और वहां पर रहे हुये उस पवित्र तीर्थकी सेवा करनेसे राजादि ने अपने वे दिन सफल गिने। जिस प्रकार कन्याओं को ग्रहण करके हमें कृतार्थ किया है वैसे ही हे पुरुषोत्तम, कुमार! आप हमारी नगरीमे आकर उसे पावन करें। राजाकी प्रार्थना स्वीकार करने पर एक दिन राजाने रत्नसार कुमार आदिको साथ लेकर अपने नगरप्रति प्रस्थान किया। अपनी सेना सहित विमानमें बैठकर चंद्रचूड एवं चक्रेश्वरी आदि भी कुमारके साथ आये। अवि-लम्ब प्रयाणसे राजा उन सबके साथ अपनी नगरीके समीप पहुंचा। राजाने बड़े भारी महोत्सव सहित कुमारको नगरमे प्रवेश कराया। राजाने कुमारको प्रसन्न होकर नाना प्रकारके मणि, रत्न, अश्व, सेवक आदि समर्पण किये। अपने पुण्य प्रभावसे ससुरके दिये हुये महलमें रत्नसार कुमार उन दोनों स्त्रियोंके साथ भोग विलास करने लगा सुवर्णके पिंजड़ेमें रहा हुआ कौतुक करनेवाला शुकराज प्रहेलिकाके व्यास-के समान उत्तर देता था। स्वर्गमें गये हुयेके समान रत्नसार कुमार माता, पिता या मित्रों वगैरह को कभी

याद न करता था। इस प्रकारके उत्कृष्ट सुखमें एक क्षणके समान उसे वहां पर एक वर्ष व्यतीत हो गया।

इसके बाद दैवयोग से वहां पर जो बनाव बना सो बतलाते हैं। एक समय रात्रिके वक्त कुमार अपनी सुखशय्या में सो रहा था, उस समय हाथमें तलवार लिये और मनोहर आकारको धारण करनेवाला कोई एक पुरुष महलमें आ घुसा। मकानके तमाम दरवाजे बंद थे तथापि न जाने वह मनुष्य किस प्रकार महलमें घुसा। यद्यपि वह मनुष्य प्रच्छन्न वृत्तिसे आया था तथापि दैवयोग से तुरन्त ही रत्नसार कुमार जाग उठा। क्योंकि विचक्षण पुरुषोंको स्वल्प ही निद्रा होती है। यह कौन, कहांसे, किस लिये मकानमें घुसता है? जब कुमार यह विचार करता है, तब वह पुरुष क्रोधित हो उच्च स्वरसे बोलने लगा कि, अरे कुमार! यदि तू वीर पुरुष है तो मेरे साथ युद्ध करनेके लिये तैयार हो! धूर्त, गीदड़के समान तू वणिक मात्र होने पर व्यर्थ ही अपना वीरत्व प्रख्यात करता है; उसे सिंहके समान मैं किस तरह सहन करूंगा? यह बोलता हुआ वह तोतेका पिंजड़ा उतार कर सत्वर ही वहांसे चलता बना। यह देख क्रोधित हो म्यानसे तलवार खींच कर कुमार भी उसके पीछे चल पड़ा। वह मनुष्य आगे और कुमार पीछे इस तरह शीघ्रगति से वे दोनों जने नगरसे बाहर बहुत दूर तक निकल गये। जब रत्नसार ने दौड़ कर जीवित चोरके समान उसे पकड़ लिया तब वह कुमारके देखते हुये गरूड़के समान सत्वर आकाशमें उड़ गया। उसे आकाश मार्गमें कितनीक दूर तक कुमारने जाते हुये देखा, परन्तु वह क्षणवार में ही अदृश्य हो गया। इससे विस्मय प्राप्त कर कुमारने विचार किया कि, सचमुच यह कोई देव या, दानव या विद्याधर होगा, परन्तु मेरा शत्रु है। ये चाहे जितना बलिष्ट हो तथापि मेरा क्या कर सकता है? वह मेरा शुकरत्न ले गया यह मुझे अति दुःखदाई है। हे विचक्षण शिरोमणि शुकराज! मेरे कानोंको वचनामृत दान करनेवाले अब तेरे विना मुझे कौन ऐसा प्रिय मित्र मिलेगा? इस प्रकार क्षणवार खेद करके कुमार विचार करने लगा अब ऐसा व्यर्थ पश्चात्ताप करनेसे क्या फायदा? अब तो मुझे कोई ऐसा उद्यम करना चाहिये कि जिससे गतवस्तु वापिस मिल सके। उद्यम भी तभी सफल होता है कि जब उसमें एकाग्रता और दृढता हो। इसलिये जब तक मुझे वह तोता न मिलेगा तब तक मुझे यहांसे किसी प्रकार पीछे न लौटना चाहिये। यह निश्चय कर कुमार उसे वहां पर ही ढूंढता हुआ फिरने लगा। उस चोरकी आश्रित दिशामें कुमारने बहुत कुछ खोज लगाई परन्तु उस चोरका कहीं भी पता न लगा। तथापि वह कभी भी कहीं मिलेगा इस आशासे रत्नसार निराशित न होकर उसे उस जंगलमें ढूंढता फिरता है।

कुमारको वह रात तथा अगला सारा दिन जंगलमें भटकते हुए व्यतीत हो गया। सन्ध्याके समय उसे एक समीपस्थ प्राकार परिशोभित नगर देखनेमें आया। वह नगर बड़ी भारी समृद्धिसे परिपूर्ण था, नगरके हर एक मकान पर सुन्दर ध्वजायें शोभ रही थीं। रत्नसार उस सुन्दर शहरको देखनेके लिये चला। जब वह शहरके दरवाजे पर आया तब उसने द्वार रक्षिकाके समान दरवाजे पर एक मैनाको बैठी देखा। कुमारको दरवाजेमें प्रवेश करते समय वह मैना बोली कि हे कुमार इस नगरमें प्रवेश न करना, कुमारने पूछा नगरमें न जानेका क्या कारण? मैना बोली—"हे आर्य! मैं तेरे हितके लिये ही तुझे मना करती हूं, यदि

तू अपने जीनेकी इच्छा रखता हो तो इस नगरमें प्रवेश न करना; पशुत्व प्राप्त होने पर भी हमें कुछ उत्तमता प्राप्त हुई है इसलिये उत्तम प्राणी निष्प्रयोजन वचन नहीं बोलता। यदि तुझे यह जाननेकी इच्छा होती हो तो नगरमें प्रवेश करनेके लिये मैं क्यों मना करती हूं सो इस बातका मैं प्रथमसे ही स्पष्टीकरण कर देती हूं तू सावधान हो कर सुन।

इस रत्नपुर नगरमें पराक्रम और प्रभुतासे पुरन्दर (इन्द्र) के समान पुरन्दर नामक राजा राज्य करता था। शहरमें अनेक प्रकारके नये नये वेष बनाकर घर घर चोरी करने वाला और छल सिद्धिके समान किसी से न पकड़ा जाने वाला चोर चोरी किया करता था। नगरमें अनेक भयंकर चोरियां होने पर भी बड़े बड़े तेजस्वी नगर रक्षक राजपुरुष भी उसे न पकड़ सके। कितना एक समय इसी प्रकार बीत गया; एक दिन राजा अपनी सभामें बैठा था उस वक्त नगरके कितने एक लोगोंने आ कर राजाको प्रणाम करके यह विज्ञप्ति की कि हे स्वामिन्! नगरमें कोई एक ऐसा चोर पैदा हुआ है कि जिसने सारे नगरकी प्रजाको उपद्रवयुक्त कर डाला है; अब हमसे उसका दुःख नहीं सहा जाता। यह बात सुन कर राजाने नगर रक्षक पुरुषोंको बुला कर धमकाया। नगर रक्षक लोग बोले कि महाराज! जिस प्रकार असाध्य रोगका कोई उपाय नहीं वैसे ही इस चोरको पकड़ने का भी कोई उपाय नहीं रहा। दरोगा बोला कि महाराज! मैं अपने शरीरसे भी बहुत कुछ उद्यम कर चुका हूं परन्तु कुछ भी सफलता नहीं मिलती, इसलिये अब आप जो उचित समझें सो करें। अन्तमें महा तेजस्वी और पराक्रमी वह राजा स्वयं ही अंधेरी रातमें चोरको पकड़ने के लिये निकला।

एक दिन अन्धेरी रातमें चोरी करके धन ले कर वह चोर रास्तेसे जा रहा था, राजाने उसे देख कर चोरका अनुमान किया परन्तु उस बातका निर्णय करनेके लिये राजा गुप्त वृत्तिसे उस व्यक्तिके पीछे चल पड़ा। उस धूर्त चोरने राजाको अपने पीछे आते हुए शीघ्र ही पहिचान लिया। फिर उत्पातिक बुद्धि वाला वह राजाकी दृष्टि बचा कर पासमें आये हुये किसी एक मठमें जा घुसा। उस मठमें तपरूप कुमुदको विकस्वर करनेमें चन्द्रसमान कुमुद नामक विद्वान् तापस रहता था। वह तापस उस समय घोर निद्रामें पड़ा होनेके कारण चोर उस चुराये हुए धनको वहां रख कर चल पड़ा। इधर उधर तलाश करते हुये चोरको न देखनेसे राजा तत्काल उस समीपस्थ मठमें गया। वहां पर धन सहित तापसको देख कोपायमान हो राजा कहने लगा कि, दंड और मृग चर्मको रखने वाले अरे दुष्ट चोर तापस! इस वक्त चोरी करके कपटसे यहां आ सोया है। तू कपट निद्रा क्यों लेता है? तुझे मैं दीर्घ-निद्रा दूंगा। राजाके वज्रपात समान उद्धत वचन सुनते ही वह एकदम जाग उठा। परन्तु भयभीत होनेके कारण वह जागने पर भी कुछ बोल न सका। निर्दयी राजाने नौकरों द्वारा बंधवा कर उसे प्रातःकालमें मार डालनेकी आज्ञा दे दी। उस समय मैं चोर नहीं हूं, बिना ही विचार किये मुझे क्यों मारते हो, इस प्रकार उसके सत्य कहने पर भी राजा उस पर विशेष क्रोधित होने लगा। सच है कि जब मनुष्यका दैव रूठ जाता है तब कोई भी सत्य बात पर ध्यान नहीं देता। यमराज के समान क्रूर उन राज सुभटोंने उस निर्दोष तापसको गधे पर चढ़ा कर उसकी त्रिविध प्रकारसे विडम्बना कर शूली पर चढ़ा दिया।

यद्यपि वह तापस शान्त प्रकृति वाला था तथापि असत्यारोपण मृत्युसे उसे अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ। इससे वह मृत्यु पा कर एक राक्षसतया उत्पन्न हुआ। क्योंकि वैसी अवस्था में मृत्यु पाने वाले की प्रायः वैसी ही गति होती है। अब उस निर्दयी राक्षसने तत्काल ही एकले राजाको जानसे मार डाला। बिना विचार किये कार्यका ऐसा ही फल होता है। उसने नगरके सब लोगोंको नगरसे बाहिर भगा दिया। जो मनुष्य राजमहल में जाता है उसे तुरन्त ही मार डालता है। इसी कारण तेरे हितकी इच्छासे मैं तुझे यमराज के मन्दिर समान नगरमें जानेसे रोकती हूं। यह वचन सुन कर कुमार मैनाकी वचन चतुराई से विस्मित हुआ। कुमारको किसी राक्षस वाक्षसका भय न था इसलिये मैनाकी कौतुकपूर्ण बात सुन कर नगरमें प्रवेश करनेकी उसे प्रत्युत उत्सुकता हुई।

कौतुकसे और राक्षसका पराक्रम देखनेके लिए निर्भय हो कर जिस प्रकार कोई शूर वीर संग्रामभूमि में प्रवेश करता है, वैसे ही कुमारने तत्काल नगरमें प्रवेश किया। उस नगरमें किसी जगह मलयाचल पर्वत के समान पड़े हुए बावने चन्दनके ढ़ेर और किसी जगह अपरिमित सुवर्ण वगैरह पड़ा देखा। बाजारमें तमाम दुकानें, धन धान्य, वस्त्र क्रयाणे वगैरह से परिपूर्ण देखनेमें आईं, जवाहरात की दूकानोंमें अगणित जवाहरात पड़ा था, रत्नसार कुमार श्री देवीके आवास समान धन सम्पत्ति से परिपूर्ण शहरको अवलोकन करता हुआ देव विमानके समान राज्य महलकी तरफ जा निकला राजमहल में वह वहां पर जा पहुंचा, कि जहां पर राजाका शयनागार था। (सोनेका स्थान) वहां पर उसने एक मणिमय रमणीय पलंग देखा। उस निर्जन नगरमें फिरते हुए कुमारको कुछ परिश्रम लगा था इसलिये वह सिंहके समान निर्भीक हो उस राजपलंग पर सो रहा। जिस प्रकार केसरी सिंहके पीछे महाव्याघ्र (कोई बड़ा शिकारी) आता है, वैसे ही उसके पीछे वहां पर वह राक्षस आ पहुंचा। वहां पर मनुष्यके पदचिन्ह देख कर वह क्रोधायमान हुआ। फिर सुख निद्रामें सोये हुए कुमारको देखकर वह विचार करने लगा कि जहां पर आनेके लिए कोई विचार तक नहीं कर सकता ऐसे इस स्थानमें आ कर यह सुखनिद्रा में निर्भय हो कौन सो रहा है? क्या आश्चर्य है कि यह मनुष्य मृत्युकी भी पर्वा न करके निश्चिंत हो सो रहा है। अब इस अपने दुश्मनको कैसी मारसे मारूं? क्या नखोंसे चीर डालूं? या इसका मस्तक फोड़ डालूं या जिस तरह चूर्ण पीसते हैं वैसे गदा द्वारा पीस डालूं। या जिस तरह महादेवने कामदेवको भस्म कर डाला उस तरह आंखोंमेंसे निकलते हुए जाज्वल्यमान अग्नि द्वारा इसे जला डालूं। या जिस तरह आकाशमें गेंद उछालते हैं वैसे ही इसे आकाशमें फेंक दूं? या इस पलंग सहित उठा कर इसे अन्तिम स्वयम्भू रमण समुद्रमें फेंक दूं? ये विचार करते हुए उसने अन्तमें सोचा कि, यह इस समय मेरे घर पर आ कर सो रहा है इसलिये इसे मारना उचित नहीं क्योंकि यदि शत्रु भी घर पर आया हुआ हो तो उसे मान देना योग्य है तब फिर इसे किस तरह मारा जाय। कहा है कि—

आगतस्य निजगेहमप्यरे, गौरिवं विदधते महाधियः।
मौनमात्म सद् समेयुषे भार्गवाय गुरुत्वतां ददौ॥

गुरू—बृहस्पति का जो मीन लग्न है वह स्वगृहात्—पिताका घर है, यदि वहां पर शुक्र आवे तो उसे उच्च कहा जाता है। (उच्चपद देता है) वैसे ही यदि कोई महान् बुद्धिवाले पुरुषोंके घर आवे तो उसे वे मान बड़ाई देते हैं।

इसलिये जब तक यह जागृत हो तब तक मैं अपने भूतोंके समुदाय को बुला लाऊं, फिर यथोचित करूंगा। यह विचार कर वह राक्षस जैसे नौकरोंको राजाके पास ले आवे वैसे ही बहुतसे भूतोंके समुदायको लेकर कुमारके पास आया। जैसे कोई लड़की की शादी करके निश्चिंत होकर सोता है वैसे ही निश्चिंततया सोते हुये कुमारको देख राक्षस तिरस्कार युक्त बोलने लगा कि अरे! मर्यादा रहित निर्बुद्धि! अरे निर्भय निर्लज्ज! तू शीघ्रही इस मेरे महलसे बाहर निकल जा अन्यथा मेरे साथ युद्ध कर! राक्षसके बोलसे और भूतोंके कलकलाहट शब्दसे कुमार तत्काल ही जाग उठा; और निद्रासे उठनेमें आलसी मनुष्य के समान बोलने लगा कि अरे राक्षसेंद्र! भूखेको भोजनके अन्तराय समान मुझ निद्रालु परदेशी की निद्रामें क्यों अन्तराय किया? इसलिये कहा है कि—

धर्मनिंदी पंक्तिभेदी, निद्राच्छेदी निरर्थकं। कथाभंगी वृथापाकी, पंचैतेऽत्यंत पापिनः॥

धर्मनिन्दक, पंक्तिभेदक, निरर्थक निद्राच्छेदक, कथाभंजक, वृथापाचक, ये पांचों जने महा पापी गिने जाते हैं।

इसलिये ताजा घी पानीमें धोकर मेरे पैरोंके तलियों पर मर्दन कर और ठंढे जलसे धोकर मेरे पैरोंको दबा कि जिससे मुझे फिरसे निद्रा आ जाय। राक्षस विचारने लगा कि, देवेन्द्र के भी हृदय को कंपानेवाला इसका चरित्र तो विचित्र ही आश्चर्य कारी मालूम होता है। कितने आश्चर्य की बात है कि केसरी सिंहकी सवारी करनेके समान यह मुझसे अपने पैरोंके तलियें मसलवाने की इच्छा रखता है। इसकी कितनी निर्भयता! कितनी साहसिकता, और इन्द्रके समान कितनी आश्चर्यकारी विक्रमता है। अथवा जगतके उत्तम प्राणियोंमें शिरोमणि तुल्य पुण्यशाली अतिथिका कथन एक दफा करूं तो सही। यह विचार कर उसके कथनानुसार राक्षस कुमारके पैरोंके तलिये क्षणवार अपने कोमल हाथोंसे मसलने लगा। यह देख वह पुण्यात्मा रत्नसार कुमार उठकर कहने लगा कि सब कुछ सहन करनेवाले हे राक्षसराज! मैंने जो अज्ञानतया मनुष्यमात्र ने तेरी अवज्ञा की सो अपराध क्षमा करना। मैं तेरी भक्तिसे तुझपर संतुष्ट हुआ हूं। इसलिये हे राक्षस! तेरी जो इच्छा हो सो मांग ले। तेरा जो दुःसाध्य कार्य हो सो भी तू मेरे प्रभावसे साध्य कर सकेगा।

आश्चर्य चकित हो राक्षस विचार करने लगा कि अहो कैसा आश्चर्य है और यह कितना विपरीत कार्य है कि मैं देव हूं मुझ पर मनुष्य तुष्टमान हुआ? इतना आश्चर्य कि यह मनुष्य मात्र होकर भी मुझ देवता के दुःसाध्य कार्यको सिद्ध कर देनेकी इच्छा रखता है? यह मनुष्य होकर देवता को क्या दे सकता है? अथवा मुझ देवता को मनुष्य के पास मांगने की क्या चीज है? तथापि मैं इसके पास कुछ याचना जरूर करूंगा। यह धारणा करके वह राक्षस स्पष्ट वाणीसे बोलने लगा कि जो दूसरे की याचना पूर्ण करता है

यह प्राणी तीनों लोकमें दुर्लभ है। मांगने की इच्छा होने पर भी मैं किस तरह मांग सकता हूं? मैं कुछ मागूं मनमे ऐसा विचार धारण करने से भी सब गुण नष्ट हो जाते हैं और मुझे दो ऐसा वचन बोलते हुये मानो भयसे ही शरीरमें से तमाम सद्गुण दूर भाग जाते हैं। दोनों प्रकार के (एक बाण और दूसरा याचक) मार्गण दूसरे को पीड़ा कारक होते हैं परन्तु आश्चर्य यह है कि एक बाण तो शरीर में लगने से ही पीड़ा कर सकता है। परन्तु दूसरा बाण याचक तो देखने मात्र से भी पीड़ा कारी हो जाता है। कहा है कि—

हलकी में हलकी धूल गिनी जाती है, उससे भी हलका तृण, तृणसे हलकी आककी रुई उससे हलका पवन, पवन से हलका याचक, और याचकसे भी हलका याचक वंचक—समर्थ हो कर ना कहने वाला गिना जाता है। और भी कहा है कि—

पर पथ्थणा पवन्नं। मा जणणि जरोसु एरिसं पुत्तं ॥
माउ अरेवि धरिज्जसु पथ्थिअ भंगोक ओजेण ॥ २ ॥

जो दूसरे के पास जाकर याचना करे, हे माता! तू ऐसे पुत्रको जन्म न देना और प्रार्थना भंग करने वाले को तो कुक्षिमे भी धारण न करना। इसलिये हे उदार जनाधार! रत्नसार कुमार! यदि तू मेरी प्रार्थना भंग न करे तो मैं तेरे पास कुछ याचना करूं। कुमार बोला कि, हे राक्षसेन्द्र! यदि वित्तसे, चित्तसे, वचनसे पराक्रम से, उद्यम से, शरीर देनेसे, प्राण देनेसे, इत्यादि कारणों से तेरा कार्य किया जा सकता होगा तो सचमुच ही मैं अवश्य कर दूंगा। आदर पूर्वक राक्षस कहने लगा कि, हे महाभाग्यशाली! यदि सचमुच ऐसा ही है तो तू इस नगरका राजा बन। सर्व प्रकारके गुणोंसे उत्कृष्ट तुझे मैं खुशीसे यह राज्य समर्पण करता हूं अतः तू इस बड़े राज्यको ग्रहण कर और अपनी इच्छानुसार भोग! दैविक ऋद्धिके भोग, सेना, तथा अन्य भी जो तुझे आवश्यकता होगी सो मैं तेरे नौकरके समान वश होकर सब कुछ अर्पण करूंगा। मेरे आदि देवताओं के सहाय से सारे जगत में तेरा इन्द्रके समान एक छत्र साम्राज्य होगा। यहां पर साम्राज्य करते हुये इन्द्र के मित्रके सरीखी लक्ष्मी द्वारा स्वर्ग में भी अनर्गल अप्सरायें तेरा निर्मल यश गान करेंगी।

उसके ऐसे वचन सुन कर रत्नसार कुमार अपने मनमें चिन्ता करने लगा कि अहो आश्चर्य! मेरे पुण्य के प्रभाव से यह देवता मुझे राज्य समर्पण करता है परन्तु मैंने तो प्रथम धर्मके समीप रहे हुये मुनि महाराज के पास पंचम अणुव्रत ग्रहण करते हुये राज्य करने का नियम किया है। और इस वक्त मैंने इस देवता के पास इसकी याचना पूर्ण करना मंजूर किया है कि जो तू कहेगा सो करूंगा। मैं तो इस समय नदी व्याघ्र न्यायके बीच आ पड़ा अब क्या किया जाय? एक तरफ प्रार्थना भंग और दूसरी तरफ व्रत भंग, दोनोंके बीच मैं बड़े संकट मे आ फसा। अथवा हे आर्य! तू कुछ दूसरी प्रार्थना कर कि जिससे मेरे व्रतको दूषण न लगे और तेरा कार्य भी सिद्ध हो सके। ऐसी दाक्षिण्यता किस कामकी कि जिसमें निज धर्म भंग होता हो, वह सुवर्ण किस कामका कि जिससे कान टूट जाय। देहके समान दाक्षिण्यता, लज्जा, लोभादिक सब कुछ बाह्य

मात्र हैं और निज जीवितव्य तो सुकृति पुरुष द्वारा अंगीकार किया हुआ व्रत ही समझना चाहिये। समुद्रमें तूंबा फूट जाने पर अन्य वस्तुओं से नहीं करा जाता, क्या राजाके भाग जाने पर सुभटों से लड़ा जा सकता है, यदि चित्तमें शून्यता हो तो उसे शास्त्रसे क्या लाभ ? वैसे ही व्रत भंग हुआ तो फिर दिव्य सुखादिकसे क्या लाभ ? इस प्रकार विचार करके कुमार ने वहुमान से योग्य वचन बोले कि हे राक्षसेन्द्र ! तुमने जो कहा सो युक्त ही है परन्तु मैंने प्रथमसे ही जब गुरुके समीप नियम अंगीकार किया तब राज्य व्यापार पाप मय होनेसे उसका परित्याग किया है। यदि यम और नियम खंडन किये जांय तो तीव्र दुःखोंका अनुभव करना पड़ता है। यम आयुष्य के अन्तिम भाग तक गिना जाता है और नियम जितने समय तकका अंगीकार किया हो उतने ही समय तक पालना होता है। इस लिये जिसमें मेरा नियम भंग न हो कुछ वैसा कार्य बतला। यदि वह दुःसाध्य होगा तो भी मैं उसे सुसाध्य करूंगा। राक्षस क्रोधायमान होकर बोलने लगा कि अरे ! तू व्यर्थही झूंठ बोलता है पहली ही प्रार्थनामें जब तू नामंजूर होता है तब फिर दूसरी प्रार्थना किस तरह कबूल कर सकेगा। इतना बड़ा राज्य देते हुये भी तू बीमारके समान मन्द होता है ! अरे मूढ बड़ी महत्ताके साथ मेरे घरमें सुख निन्द्रामे शयन करके और मुझसे अपने पैरोंके तलियें मर्दन करा कर भी मेरा वचन हित कारक भी तुझे मान्य नहीं होता तब फिर अब तू मेरे क्रोधका अतुल फल देख। यों बोलता हुआ राक्षस बलात्कार से जिस तरह गीध पक्षी मांसको लेकर उड़ता है वैसे ही कुमारको लेकर तत्काल आकाशमें उड़ा, और क्रोधसे आकुल व्याकुल हो उस राक्षसने रत्नसार कुमारको अपने आत्माको संसार समुद्रमें डालनेके समान तत्काल ही भयंकर समुद्रमें फेंक दिया। फिर शीघ्र ही वहां आकर कुमारके हाथ पकड़ कहने लगा कि हे कदाग्रह के घर ! हे निर्विचार कुमार ! व्यर्थ ही क्यों मरणके शरण होता है ? क्यों नहीं राजलक्ष्मी को अंगीकार करता ? तेरा कहा हुआ निन्दनीय कार्य मैंने देवता होकर भी स्वीकार किया और प्रशंसनीय भी मेरा कार्य तू मनुष्य होकर भी नहीं करता ! याद रख ! यदि तू मेरे कहे हुये कार्यको अंगीकार न करेगा तो धोबीके समान मैं तुझे पाषाणकी शिला पर पटक पटक कर यमका अतिथि बनाऊंगा। देवताओं का क्रोध निष्फल नहीं जाता, उसमें भी राक्षसोंका क्रोध तो विशेषता से निष्फल नहीं होता। यों कह कर वह क्रोधित राक्षस उसके पैर पकड़ अधोमुख करके जहां पर शिला पड़ी थी वहां पर पटकने के लिये ले गया।

साहसिक कुमार बोला कि तू निःसंशय तेरी इच्छानुसार कर ! मुझे किसलिये वारंवार पूछता है मैं कदापि अपने व्रतको भंग न करूंगा। इस समय एक महा तेजस्वी प्रसन्न मुख मुद्रावाला आभूषणों से देदीप्यमान वहां पर वैमानिक देवता प्रगट हुआ और जलवृष्टीके समान रत्नकुमार पर पुष्प वृष्टि करके बन्दि जनकी तरह (भाट चारणके समान) जय जय शब्द बोलता हुआ विस्मयता के व्यापारमें प्रवर्तित कुमार को कहने लगा कि जिस प्रकार मनुष्योंमें सबसे अधिक चक्रवर्ती है वैसे ही सात्विक धैर्यवान पुरुषोंमें तू सबसे अधिक है। हे कुमार ! तुझे धन्य है। तेरे जैसे ही पुरुषोंसे पृथ्वीका रत्नगर्भा नाम सार्थक है। तूने जो साधु मुनिराज से व्रत अंगीकार किया है उसकी दृढतासे आज तू देवताओं के भी प्रशंसनीय हुआ है। इन्द्र महाराज के सेना-

पति हरिनगमेषी नामक देवने जो बहुतसे देवताओं के बीचमें आपकी प्रशंसा की थी वह बिल्कुल युक्त ही है। विस्मित और प्रसन्न हो कुमार बोला कि हरिनगमेषी देवने मेरी किस लिये प्रशंसा की होगी ? वह देव बोला प्रशंसा करनेका कारण सुनो ! एक दिन नये उत्पन्न हुये सौधर्म और ईशान देवलोक के इन्द्र जिस प्रकार मनुष्य अपनी अपनी जमीनके लिये विवाद करते हैं वैसे ही अपने अपने विमानोंके लिये विवाद करने लगे। अनुक्रम से सौधर्म देवलोक के बत्तीस लाख और ईशान देव लोकके अठाईस लाख विमान होने पर भी वे दोनों इन्द्र विवाद करते थे। जब पशुओं में कलह होता है तब उसे मनुष्य निवारण करते हैं, मनुष्योंमें कलह होता है तब उसका फैसला राजा करता है, जब राजाओंमें कलह होता है तब उसका निराकरण देवताओं से होता है, देवताओं का कलह उनके अधिपति इन्द्रोंसे निवारण किया जा सकता है परन्तु दुःखसे सहन किया जाने वाला वज्रकी अग्निके समान जब परस्पर देवेन्द्रोंमें विवाद होता है तब उसका समाधान कौन कर सकता है ? अन्तमें कितने एक समय तक लड़ाई हुये बाद मानवक नामक स्तंभनके भीतर रही हुई अरिहंत की दाढ़ाओंके आधि, व्याधि, महादोष, महा वैर भावको, निवारण करने वाले शान्ति जलसे किसी एक बड़े महोत्तर देवता ने विवाद शान्त किया। फिर पारस्परिक विरोध मिट जाने पर दोनों इन्द्रोंके प्रधान मंत्रियोंने पूर्व शाश्वती व्यवस्था जैसी थी वैसी बतलाई।

शाश्वती रीति—जो दक्षिण दिशामें विमान हैं वे सब सौधर्म इन्द्रके हैं, और उत्तर दिशामें रहे हुये सब विमानों की सत्ता ईशानेन्द्र की है। जितने गोल विमान पूर्व और पश्चिम दिशामें है वे और तेरह इन्द्रक विमान सौधर्मेन्द्र की सत्तामें हैं। तथा पूर्व और पश्चिम दिशामें जो त्रिकोन तथा चौखूने विमान हैं उनमें आधे सौधर्मेन्द्र और आधे ईशानेन्द्र के हैं। सनत्कुमार और महेन्द्र में भी यही क्रम है। तथा इन्द्रक विमान जितने होते हैं वे सब गोल ही होते हैं। उन्होंने इस प्रकारकी व्यवस्था अपने स्वामियों से निवेदित की। इससे वे परस्पर गतमत्सर हो कर प्रत्युत स्थिर प्रीतिवान् बने। उस समय चन्द्रशेखर देवता ने हरिनगमेषी देवको कौतुक से यह पूछा क्या सारे जगत में कहीं भी कोई इन्द्रके समान ऐसा है कि जिसे लोभबुद्धि न हो या लोभ वृत्तिने जब इन्द्रों तक पर भी अपना प्रबल प्रभाव डाल दिया तब फिर अन्य सब मनुष्य उसके गृह दास समान हों इसमें आश्चर्य ही क्या है ? नैगमेषी बोला कि हे मित्र ! तू सत्य कहता है, परन्तु पृथिवी पर किसी वस्तुकी सर्वथा नास्ति नहीं है इस समय भी वसुसार नामक शेठका पुत्र रत्नसार कुमार कि जो सचमुच ही लोभसे अक्षोभायमान मन वाला है, अंगीकार किये हुये परिग्रह परिमाण व्रतको पालन करनेमें इतनी दृढता धारण करता है कि यदि उसे इन्द्र भी चलायमान करना चाहे तथापि वह अपने अंगीकृत व्रतमें पर्वत के समान अकंप और निश्चल रहेगा। यद्यपि लोभ रूप महा नदीकी विस्तृत बाढमें अन्य सब तृणके समान बह जाते हैं परन्तु वह कृष्ण चित्रक के समान अडक रहता है। उसके इन वचनों को सुन कर चंद्रशेखर देव मान्य न कर सका इस लिये वही चन्द्रशेखर नामक देवता मैं तेरी परीक्षा करने के लिये यहां आया हूं। तेरे तोतेको पिंजड़े सहित चुराकर नवीन मैंना बना कर शून्य नगर और भयंकर राक्षस का रूप मैंने ही बनाया था। हे वसुधारत्न ! जिसने तुझे उठा कर समुद्र में फेंका और अन्य भी बहुत से भय बतलाये मै वही चन्द्रशेखर देव

हूं; इसलिये हे उत्तम पुरुष ! खल चेष्टित के समान इस मेरे अपराध को क्षमा कीजिये और देवदर्शन निष्फल न हो तदर्थ मुझे कुछ आज्ञा दीजिये। कुमार बोला श्रेष्ठ धर्मके प्रभाव से मेरी तमाम मनोकामनायें संपूर्ण हुई हैं इससे मैं आपके पास कुछ नहीं मांग सकता। परन्तु यदि तू देवताओं में धुरंधर है तो नन्दीश्वरादि तीर्थोंकी यात्रा करना कि जिससे तेरा भी जन्म सफल हो। देवता ने यह बात मंजूर की और कुमारको पिंजरे सहित तोता देकर कनकपुरी में ला छोड़ा। वहांके राजा वगैरह के सन्मुख रत्नसार का वह सकल महात्म्य प्रकाशित कर वह देवता अपने स्थान पर चला गया।

फिर बड़े आग्रह से राजा वगैरह की आज्ञा ले रत्नसार अपनी दोनों स्त्रियों सहित वहांसे अपने नगर की तरफ चला। कितनी एक दूर तक राजा आदि प्रधान पुरुष कुमार को पहुचाने आये। यद्यपि वह एक व्यापारी का पुत्र है तथापि दीवान सामन्तों के परिवार से परिवरित उसे बहुत से विचक्षण पुरुषोंने राजकुमार ही समझा। रास्ते में कितने एक राजा महाराजाओं से सत्कार प्राप्त करता हुआ रत्नसार थोड़े ही दिनोंमें अपनी रत्न विशाला नगरी में आ पहुंचा। उस कुमारकी ऋद्धिका विस्तार और शक्ति देख कर समरसिंह राजा भी बहुत से व्यापारियों को साथ ले उसके सामने आया। राजाने वसुसारादिक बड़े व्यापारियों के साथ रत्नसार कुमार को बड़े आडम्बर पूर्वक नगर प्रवेश कराया। कुमारका उचिताचरण हुये बाद चतुर शुकराज ने उन सबको रत्नसार कुमार का आश्चर्य कारक सकल वृतान्त कह सुनाया। अद्भुत धैर्यपूर्ण कुमारका चरित्र सुन कर राजा प्रमुख आश्चर्य चकित हो उसकी प्रशंसा करने लगे।

एक दिन उस नगरी के उद्यान में कोई एक विद्यानन्द नामक श्रेष्ठ गुरु पधारे। यह समाचार सुन हर्षित हो रत्नसार और राजा वगैरह उन्हें वन्दन करने के लिये आये। गुरु महाराज की समयोचित देशना हुये बाद राजाने विस्मित हो रत्नसार कुमार का पूर्व वृतान्त पूछा। चार ज्ञानके धारक गुरु महाराज ने फर्माया कि हे राजन्! राजपुर नगर में लक्ष्मी के समान श्रीसार नामक राजा का पुत्र था। क्षत्रि, मन्त्रि और श्रेष्ठि, एवं तीन जनोंके तीन पुत्र उसके मित्र थे। जिस तरह तीन पुरुषार्थों से जंगम उत्साह शोभता है वैसे ही वह तीन मित्रोंसे शोभता था। अपने तीन मित्रों को सर्व कलाओं में कुशल जान कर क्षत्रिय पुत्र अपनी बुद्धिमंदता की निन्दा करता और ज्ञानका विशेष बहुमान करता था। एक दिन किसी चोर ने राजाकी रानीके महलमें चोरी की। मालूम होने से नगर रक्षक लोग चोर को पकड़ कर राजाके पास ले गये। क्रोधित हो राजाने उसे तत्काल ही मार डालने की आज्ञा दी। मृगके समान त्रासित नेत्र वाले उस चोर को मार डालने के लिये वधस्थान पर ले जाया जा रहा था, दैव योग उसे दयालु श्रीसार कुमार ने देखा। मेरी माता का द्रव्य चुराने वाला होने से इस चोरको स्वयं मैं अपने हाथसे मारूंगा यों कह कर उसे घातक पुरुषों के पाससे ले कुमार नगरसे बाहर चला गया। ज्ञानवान् और दयावान् कुमार ने अब फिर कभी चोरी न करना ऐसा समझा कर उसे गुप्तवृत्ति से छोड़ दिया। दुनिया में जिस मनुष्य के दो चार मित्र होते हैं उसके दो चार शत्रु भी अवश्य होते हैं। इससे किसीने चोर को छोड़ देनेकी बात राजा से जा कही। राजाकी आज्ञा भंग करना बिना यह शस्त्रका वध है, इसलिये क्रोधायमान हो कर राजाने श्रीसारको बुला कर बहुत ही धम-

काया। इससे वह अपने मनमें बड़ा दिलगीर हुआ और क्रोध आ जानेसे वह शीघ्र ही नगर से बाहर निकला क्योंकि मानी मनुष्यों के लिये प्राणहानि से भी अधिक मानहानि गिनी जाती हैं। जैसे ज्ञान, दर्शन, चारित्र सहित आत्मा होता है वैसे ही मित्रता से दूर न रहने वाले अपने तीन मित्रों सहित कुमार परदेश चला। कहा हैं कि:—

जानीयात्प्रेषणे भृत्यान्। बांधवान् व्यसनागमे॥ मित्रमापदिकाले च। भार्यां च विभवक्षये॥

नौकर की किसी कार्य को भेजने के समय, बन्धु जनों की कष्ट आनेके समय मित्रकी आपत्तिके समय, और स्त्री की द्रव्य नाश हो जाने के समय परीक्षा होती है।

साथमें चलते हुये मार्गमें वे जुदे हो गये इससे सार्थ भ्रष्टके समान वे राह भूल गये, और बहुत ही बुभुक्षित हो गये, इससे वे अति पीडित होने लगे। बहुतसा परिभ्रमण कर वे तीसरे दिन किसी एक गांवमें इकट्ठे हुये, तब उन्होंने वहां पर भोजन करनेकी तयारी की। इतनेमें ही वहां पर भिक्षा लेनेके लिये और पुण्य महोदय देनेके लिये थोड़े ही भव-संसार वाला जिनकल्पी मुनि गोचरी आया; सरल स्वभाव से और उल्लास पाते हुये शुद्ध परिणाम से राजपुत्र श्रीसारने उस मुनिराज को दान दिया। और उससे पुण्य भोग फलक ग्रहण किया। दूसरे दो मित्रोंने मन, वचन, कायसे, उस सुपात्र दानकी अनुमोदना की, क्योंकि समान वय वाले मित्रोंको सरीखा पुण्य उपार्जन करना योग्य ही है; परन्तु दो दो सब कुछ दो। ऐसा योग फिर कहांसे मिलेगा? इस प्रकार बोलकर दो मित्रोंने कपटसे अपनी अधिक श्रद्धा बतलाई। क्षत्रिय पुत्र तो तुच्छात्मा था, इसलिये वोहराने के समय उन्हें बोलने लगा कि भाई मुझे बहुत भूख लगी है, मैं भूखसे पीडित हो रहा हूं अतः मेरे लिये थोड़ा तो रक्खो। ऐसा बोल कर निरर्थक ही दानान्तराय करनेसे उस तुच्छ-बुद्धिवाले ने भोगान्तराय कर्म बांधा। फिर थोड़े ही समयमें राजाके बुलानेसे वे तीनों जने स्वस्थान पर चले गये और श्रीसारको राज्य प्राप्त हुआ। मंत्रिपुत्र को मंत्रिमुद्रा, श्रेष्ठी पुत्रको श्रेष्ठी पदवी और क्षत्रिय पुत्रको वीराग्रणी पदवी मिली। इस प्रकार चारों जनें अनुक्रमसे पदवियां प्राप्त कर मध्यस्थ गुणवन्त रह कर आयुष्य पूर्ण होने पर कालधर्म को प्राप्त हुये। उनमेंसे श्रीसार सुपात्र दानके प्रभावसे यह रत्नसार हुआ, प्रधान पुत्र और श्रेष्ठिपुत्र दोनों जने मुनिको दान देनेमें कपट करनेसे रत्नसार की ये दो स्त्रियां हुईं। और क्षत्रियपुत्र दाना-न्तराय करनेसे तिर्यंच यह तोता हुआ। परन्तु ज्ञानका बहुमान करनेसे यह इस भवमें बड़ाही विचक्षण हुआ है। श्रीसारसे छूटे हुये उस चोरने तापसी व्रत अंगीकार किया था जिससे वह चंद्रचूड देव हुआ कि जिसने बहुत दफा रत्नसार की सहाय की।

यह सुन कर राजा वगैरह सुपात्र दान देनेमें अति श्रद्धावन्त हुये। और उस दिनसे अरिहन्त प्ररूपित धर्मको सेवन करने लगे। बड़े मनुष्यों का धर्म सूर्यके समान दीपता हुआ प्रथम अज्ञानरूप अन्धकार को दूर करके फिर सर्व प्राणियोंको सन्मार्ग में प्रवर्त्ताता है। पुण्यमें सार समान रत्नसार कुमारने अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ बहुत काल तक उत्कृष्ट सुखानुभव किया। अपने भाग्ययोग से अर्थवर्ग और कामवर्ग सुख-पूर्वक ही प्राप्त हुये होनेके कारण परस्पर विरोध रहित उस शुद्ध बुद्धिवाले रत्नसारने तीनों वर्गोंकी साधना

की। रथयात्रा, तथा तीर्थयात्रायें करना, चांदिमय, सुवर्णमय, एवं मणिमय अरहंत की प्रतिमायें भरवाना, उनकी प्रतिष्ठा करवाना, नये मंदिर बनवाना, चतुर्विध श्री संघका सत्कार करना, उपकारी एवं दूसरोंको भी योग्य सन्मान देना, वगैरह सुकृत्य करनेमें बहुतसा काल व्यतीत करनेसे उसने अपनी लक्ष्मीको सफल किया। उसके संसर्गसे उसकी दोनों स्त्रियां भी धर्ममें निरत हुईं। क्योंकि श्रेष्ठ पुरुषके संसर्गसे क्या न हो ? दोनों स्त्रियोंके साथ आयुष्य क्षय होनेसे वे पंडित मृत्यु द्वारा बारहवें देवलोक में देवतया उत्पन्न हुये। क्योंकि श्रावकपन में इतनी ही उत्कृष्ट उच्चगति होती है। वहांसे चल कर महाविदेह क्षेत्रमे जन्म ले सम्यक् प्रकारसे श्री अरिहंत प्ररूपित धर्मकी आराधना कर मोक्ष लक्ष्मीको प्राप्त हुये।

रत्नसारचरिता दुदीरीता दिध्यमद्भुततया बधारितात्॥
पात्रदानविषये परिग्रह स्वेष्टमान विषये च यत्यतां॥

इस प्रकार रत्नसार कुमारका चरित्र कथन किया। उसे आश्चर्यतया अपने चित्तमें धारण कर सुपात्र दानमें और परिग्रह के परिमाण करनेमें उद्यम करो।

"भोजनादिक के समय दयादान और अनुकंपा"

साधु वगैरह का योग होनेपर विवेकी श्रावकको अवश्य ही विधिपूर्वक प्रतिदिन सुपात्र दान देनेमें उद्यम करना। एवं भोजनके समय आये हुये स्वधर्मी को यथाशक्ति साथ लेकर भोजन करे, क्योंकि वह भी सुपात्र है। स्वामीवात्सल्य की विधि पर्वकृत्य के अधिकार में आगे चलकर कही जायगी। औचित्य द्वारा अन्य भिक्षु वगैरह को भी दान देना चाहिये। परन्तु उन्हें निराश करके वापिस न लौटाना। वैसा करनेसे कर्मबन्धन न करावे, धर्मनिन्दा न करावे; निष्ठुर हृदयवाला न बने। बड़े मनुष्योंके या दयालु लोगोंके ऐसे लक्षण नहीं होते कि जो भोजनके समय दरवाजा बन्द करलें। सुना जाता है कि चित्तौड़में चित्रांगद राजा जब कि शत्रुके सैन्यसे किला वेष्टित था और जब शत्रुओंका नगरमें प्रवेश करनेका भय था, भोजनके समय नगरका दरवाजा खुला रखता था। राजा भोजनके समय दरवाजा खुलवा रखता है, यह मार्मिक बात एक वेश्याने शत्रु लोगोंसे जा कही। इससे वे नगरमें घुस गये, परन्तु राजाने अपना नियम बन्द न किया। इसलिये श्रावकको भोजनके समय दरवाजा बन्द न करना चाहिये। तथा श्रीमंत श्रावकको तो उस बातका विशेष ख्याल रखना चाहिये कि;—

कुक्षि भरिर्नकस्कोत्र, बव्हाधारः पुमान् पुमान्।
ततस्तत्काल मायातान्। भोजये ब्दांधवादिकान्॥ १॥

अपना पेट कौन नहीं भरता ? जो अन्य बहुतोंको आधार देता है वही मनुष्य मनुष्य गिना जाता है, इसलिये भोजनके समय घर पर आये हुये बन्धुजनादि को भोजन कराना यह गृहस्थाचार है।

अतिथी नर्थीनो दुस्थान। भक्ति शक्त्यानुकंपनं॥
कृत्वा कृतार्थानौचित्याद। भोक्तुं युक्तं महात्मनां॥२॥

अतिथी, याचक और दुखी जनका भक्तिसे या अनुकंपासे शक्तिपूर्वक औचित्य संभाल कर उनका मनोरथ सफल करके महात्मा पुरुषोंको भोजन करना युक्त है। आगममें भी कहा है कि:—

नेवदारं पिहावेई। भुंजमाणो सुसावओ। अणुकंपाजिणिंदेहिं। सड्ढाणं न निवारिआ॥ १॥

सुश्रावक भोजनके समय दरवाजा बंद न करावें क्योंकि वीतराग ने श्रावकको अनुकंपा दान देनेकी मनाई नहीं की।

दठ्ठूण पाणि निवहं। भीमे भवसायरंमि दुख्खत्तं॥
अविशेष ओणुकंप। हावि सामथ्थओ कुणई॥ २॥

भयंकर भवरूप समुद्रमें दुःखार्त प्राणि समूहको देख कर शक्तिपूर्वक दोनों प्रकारसे—द्रव्य और भावसे अनुकंपा विशेष करे। यथा योग्य अन्नादिक देनेसे द्रव्यसे अनुकंपा करे और जैनधर्म के मार्गमें प्रवर्तना से भावसे अनुकम्पा करे। भगवती सूत्रमे तुंगीया नगरीके श्रावक वर्णनाधिकार में "अवंगुअ" दुवारा ऐसे विशेषण द्वारा भिक्षुकादि के प्रवेशके लिए सर्वदा खुला दरवाजा रखना कहा है। दीनोंका उद्धार करना यह तो श्री जिनेश्वर देवके दिये हुये सांवत्सरिक दानसे सिद्ध ही है। विक्रमादित्य राजाने भी पृथिवीको ऋणमुक्त करके अपने नामका संवत्सर चलाया था। अकालके समय दीन हीनका उद्धार करना विशेष फल-दायक है इस लिये कहा है कि:—

विणए सिख्ख परिख्खा। सुहड परिख्खाय होइ संगामे॥
वसणे मित्त परिख्खया। दाण परिख्खाय दुभिख्ये॥ ३॥

विनय करनेके समय शिष्यकी परीक्षा होती है, सुभटकी परीक्षा संग्रामके समय होती है, मित्रकी परीक्षा कष्टके समय होती है, और दुष्कालके समय दानीकी परीक्षा होती है।

विक्रम संवत् १३१५ मे महा दुर्भिक्ष पड़ा था, उस समय भद्रेश्वर निवासी श्रीमाल जातिवाले जग-डुशाह ने ११२ दानशाला खुलवाकर दान दिया था। कहा है कि:—

हम्मीरस्य द्वादश। वीसलदेवस्य चाष्ट दुर्भिक्षे॥ त्रिंसत् सुरभाणे। मूढसहस्रान् ददौ जगडू॥

जगडुशाह ने दुर्भिक्षके समय हमारे राजाको बारह हजार मूड़ा विषलदेव राजाको आठ हजार मूडा और बादशाहको २१ हजार मूडा धान्य दिया था। उस समय पड़े हुये दुष्कालमें जगडुशाह ने उपरोक्त राजाओं की मार्फत उपरोक्त संख्या प्रमाण धान्य दुष्काल पीडित मनुष्योंके भरण पोषण के लिये भिजवाया था

इसी तरह अणहिलपुर पाटनमें एक सिंहश्र नामा सुतार था। उसके घरमें बड़ी भारी ऋद्धि सिद्धि थी। उसने विक्रम संवत् १४२९ में आठ मन्दिरोंके साथ एक बड़ा संघ लेकर श्री सिद्धाचल की यात्रा कर एक भविष्य वेत्ता ज्योतिष से यह जानकर कि दुष्काल पडेगा प्रथमसे ही दो लाख मन अन्नका संग्रह किया हुवा था। जिससे बहुत ही लक्ष्मी उपार्जन की परन्तु उसमेंसे २४ हजार मन अन्न दुष्काल पीडित दीन हीन पुरु-षोंको बांट दिया था। एक हजार बांध छुडाये थे (डाकू लोगों द्वारा पकडे हुये लोगोंको बंध कहते हैं) बहुतसे मन्दिर बंधवाये, जीर्णोद्धार कराये; तथा पूज्य श्री जयानंदसूरि और श्रीदेवसुन्दरि सूरिको आचार्य

पद स्थापना करने वगैरहके धर्मकृत्य किये थे इसलिये भोजनके समय गृहस्थको चाहिये कि वह विशेषतः दयादान करे। निश्चय करके गृहस्थ को एवं निर्धन श्रावकको भी उस प्रकारकी औचित्यता रखकर अन्न पकाना कि जिससे उस समय दीन हीन याचक आ जाय तो उन्हें उसमेंसे कुछ दिया जासके। ऐसा करनेसे कुछ अधिक व्यय नहीं होता, क्योंकि उन्हें थोड़ा देकर भी संतोषित किया जा सकता है। इसलिये कहा है कि-

ग्रासात् गलितसिक्थेन। किं न्यूनं करिणो भवेत्॥ जीवत्येव पुनस्तेन। कीटिकानां कुटुम्बकं॥

ग्रासमेंसे गिरे हुये दाणेसे क्या हाथीको कुछ कम हो जाता है? परन्तु उससे चींटीका सारा कुटुम्ब जीवित रह सकता है।

इस युक्तिसे रंधे हुये निर्वद्य आहारसे सुपात्र दान भी शुद्ध होता है। माता पिता बहिन भाई वगैरह की, पुत्र, वहू आदिकी रोगी बांधी हुई गाय, बैल, घोड़ा, वगैरह की भोजनादिक से उचित सार संभाल करके नवकार गिन कर और प्रत्याख्यान; नियम वगैरह स्मरण कर सात्म्य याने अवगुण न करता हो ऐसे पदार्थ का भोजन करे। इसलिये कहा है किः—

पितुर्मातुः शिशूनां च। गर्भिणी वृद्धरोगिणां॥ प्रथमं भोजनं दत्वा। स्वयं भोक्तव्यमुत्तमैः॥ १॥

पिता, माता, बालक, गर्भिणी, वृद्ध और रोगी इतने जनोंको प्रथम भोजन कराकर; फिर आप भोजन करना चाहिये।

चतुष्पदानां सर्वेषां। धृतानां च तथा नृणां॥
चिंतां विधाय धर्मज्ञः। स्वयं भुञ्जीत नान्यथा॥ २॥

धर्म जाननेवाले मनुष्य को अपने घरके तमाम पशुओं तथा वाहरसे आये हुये अतिथि महमान वगैरह की सार संभाल लेकर फिर भोजन करना चाहिये।

"भोजन करनेका विधि"

पानाहारादयो यस्मादविरुद्धाः प्रकृतेरपि॥ सुखित्वा यावकल्पन्ते। तत्सात्म्यमिति गीयते॥

प्रकृतिको न रुचता हो तथापि जो शारीरिक सुखके लिये आहार वगैरह किया जाता है उसे सात्म्य कहते है।

जो वस्तु जन्मसे ही खानपान में आती हो, फिर वह चाहे विष ही क्यों न हो तथापि वह अमृत समान होती है। प्रकृतिको प्रतिकूल वस्तु अमृत समान हो तथापि वह विष समान है। इसमें इतना विशेष समझना चाहिये कि जन्मसे पथ्यतया खाया हुवा विष भी अमृत तुल्य होता है। असात्म्य करके (कुपथ्य करनेसे) अमृत भी विष तुल्य है, इसीलिये जो शरीरको अनुकूल हो परन्तु पथ्य हो वैसा भोजन प्रमाणसे सेवन करना। मुझे सब ही सात्म्य है ऐसा समझ कर विष कदापि न खाना। विष संबन्धी शास्त्र जानता हो विषापहरन करना भी आता हो तथापि विष खानेसे प्राणी मृत्युको ही प्राप्त होता है। तथा यदि ऐसा विचार करे किः—

कंठनाडी मतिक्रांतं। सर्वसदृशनं समं ॥ क्षणमात्रसुखस्यार्थे । लौल्यं कुर्वति नो बुधाः ॥

कंठ नाडीसे नीचे उतरा हुआ सब कुछ समान ही होता है। इस प्रकारके क्षणिक सुखके लिये विचक्षण पुरुषको रसकी लोलुपता रखनी चाहिये ? कदापि नहीं। यह समझ कर भोजनके रसमें लालच न रखकर बाईस अभक्ष्य, बत्तीस अनंतकाय, वगैरह जिनसे अधिक पाप लगे, ऐसी वस्तुओंका परित्याग करके अपनी जठराग्नि का जैसा बल हो उस प्रमाणमें आहार करे। जो मनुष्य अपनी जठराग्निका विचार करके अल्प आहार करता है वही अधिक खा सकता है। किसी दिन स्वादिष्ट भोजनकी लालसाके कारण प्रतिदिनके प्रमाणसे अधिक भोजन करनेसे अजीर्ण, वमन, विरेचन, बुखार, खांसी, वगैरह हो जानेसे अन्तमें मृत्यु तक भी होजाती है। इसलिये प्रतिदिन के प्रमाणसे अधिक भोजन न करना चाहिये। इसलिये कहा है कि:—

जीहे जाणप्पमाणं। जिमि अव्वे तहय जंपि अव्वेअ ॥
अईजिमिअ जंपिआणं। परिणामो दारुणो होई ॥ १ ॥

हे जीभ तू भोजन करने और बोलने में प्रमाण रखना। अतिशय जीमने और बोलनेका परिणाम भयंकर होता है।

अनान्यदोषाणि मितानिमुक्ता। वचांसि चेत्त्वं वदसीत्थमेव ॥
जंतोर्युयुत्सोः सहकर्मवीरैः। स्तत्पट्ट बंधोरसने तथैव ॥ २ ॥

हे जीभ! यदि तू प्रमाण सहित और दोष रहित अन्नको एवं प्रमाण सहित और दोष रहित वचनको उपयोगमें लेगी तो कर्मरूप सुभटोंके साथ युद्ध करने वाले प्राणियोंको मस्तक पर बंध समान होगी।

हित मित विपक्वभोजी। वामशयी नित्य चंक्रमण शीलः ॥
उज्झित मूत्रपुरीषः स्त्रीषु जितात्मा जयति रोगान् ॥ ३ ॥

अपने आपको हितकारी हो इस प्रकारका प्रमाणकृत और परिपक्व हुवा भोजन करने वाला, बायें अंग सोनेवाला, भोजन करके घूमनेके स्वभाव वाला, लघुनीति एवं बडी नीतिकी शंका होनेसे तत्काल उसका त्याग करनेवाला और स्त्री विषयमें प्रमाण रखनेवाला पुरुष रोगोंको जीत लेता है।

भोजनका विधि, व्यवहार शास्त्र विवेक विलासमें नीचे मुजब बतलाया है:—

अतिप्रातश्च सन्ध्यायाः। रात्रौ कुत्सन्नथ व्रजन् ॥
सव्यांघ्रौदत्त पाणीश्च। नाद्यात्पाणिस्थितं तथा ॥ १ ॥

अति प्रभात समय, अति सन्ध्या समय, रात्रिके समय, मार्ग चलते हुये, बांये पैर पर हाथ रखकर, और हाथमें लेकर भोजन न करना चाहिये।

साकाशे सातपे सन्धिकारे द्रुमतलेपि च ॥ कदाचिदपि नाश्नीयात् दूर्ध्वीकृत्य च तर्जनीं ॥ २ ॥

आकाशके नीचे बैठकर, धूपमें, अन्धकार में, वृक्षके नीचे, तर्जनी अंगुलिको ऊंची रख कर कदापि भोजन न करना।

अधौतमुखवस्त्रांघ्रिर्नग्नश्च मलिनांशुकः ॥
सव्येन हस्तेनादात्त । स्थालो भुंजीत न क्वचित् ॥ ३ ॥

हाथ पैर मुख वस्त्र बिना धोये, नग्न हो कर, मलिन वस्त्र पहिन कर, बांये हाथमें थाली उठा कर, कदापि भोजन न करना,

एकवस्त्रान्वितश्चार्द्र वासावेष्टित मस्तकः ॥
अपवित्रोऽतिगार्ध्यश्च, न भुंजीत विचक्षणः ॥ ४ ॥

एक ही वस्त्र पहिन कर, भीने वस्त्रसे, मस्तक लपेट कर, अपवित्र रह कर, अति लालची होकर विचक्षण पुरुषको कदापि भोजन न करना चाहिये।

उपानत्सहितो व्यग्रचित्तः केवल भूस्थितः ॥
पर्यंकस्थो विदिग् याम्याननो नाद्यात्कृशासनः ॥ ५ ॥

जूता पहिने हुये, चपल चित्तसे, केवल जमीन पर बैठके, पलंग पर बैठके, विदिशाके सन्मुख बैठ कर, दक्षिण दिशाके सम्मुख बैठ कर और पतले या हिलते हुये आसन पर बैठ कर भोजन न करना।

आसनस्थपदो नाद्यात् श्वचांडालैर्निरीक्षितः ॥
पतितैश्च तथा भिन्ने भाजने मलिनेऽपि च ॥ ६ ॥

आसन पर पैर रख कर, कुत्ते, चांडाल, धर्मभ्रष्ट, इतनों के देखते हुये, टूटे हुये या मलिन वर्तन में भोजन न करना।

अमेध्यसंभवं नाद्यात्, दृष्टं भ्रूणादिघातकैः,
रजस्वलापरिस्पृष्टं, माघ्रातं गतोश्वपक्षिभिः ॥ ७ ॥

विष्टा करने की जगह में उत्पन्न हुये, बाल हत्या वगैरह महा पाप करने वालेसे देखे हुये रजस्वला स्त्री द्वारा स्पर्श किये हुये, गाय, श्वान, पंखी द्वारा सूंघे हुये भक्ष्य पदार्थ को भी भक्षण न करना।

अज्ञातागममज्ञातं, पुनरुष्णीकृतं तथा, युक्तं च चवचवाशब्दैं र्नाद्याद्वक्त्रविकारवान् ॥ ८ ॥

अनजान स्थानसे आये हुये तथा अज्ञात एवं फिरसे गरम किये हुये खाद्य पदार्थ को न खाना। तथा मुखाकृति विकृति करके या चपचप शब्द करते भोजन न करना।

उपाव्हानोत्पादितप्रीतिः, कृतदेवा भिधास्मृतिः,
समे पृथा वनत्युच्चैः, निविष्टो विष्टरे स्थिरे ॥ ९ ॥

मातृस्वसृ पिंतृका जामी भार्याद्यैः पक्वमादरात्।
शुचिभिर्भुक्तवद्भिश्च। दत्तं चाद्याऽज्जने सति ॥ १० ॥

कृतमौनमवक्रांगं। वहद्दक्षिणनासिकां ॥
प्रतिभक्ष्य समाघ्राण। हतदृग् दोषविक्रियं ॥ ११ ॥

नातिक्षारं न चात्यम्लं। नात्युष्णं नातिशीतलं ॥
नातिशाकं नातिगोल्यं। मुखरोचकमुच्चकैः ॥ १२ ॥

जिसने भोजनकी आमन्त्रणा से प्रीति उत्पन्न की है, वैसे देव, गुरुका स्मरण करने वाले श्रावक को सम आसन पर, चौड़े आसन पर, उच्च आसन पर, स्थिर आसन पर बैठ कर, माता, बहिन, दादी, भांजी, स्त्री, वगैरह से आदर पूर्वक परोसा हुआ पवित्र भोजन करना चाहिये। रसोइये वगैरह के अभाव में घरकी स्त्रियों द्वारा परोसा हुआ भोजन करना चाहिये। भोजन करते समय मौन धारण करना चाहिये, शरीर को वांका चूंका न करना चाहिये, दाहिनी नासिका चलते समय भोजन करना चाहिये, जो जो वस्तु खानी हों उन सबको दृष्टि दोषके विकार को दूर करनेके लिये प्रथम अपनी नासिका से सूंघ लेना चाहिये। और अति खारा, अति खट्टा, अति ऊष्ण, अति शीतल, नहीं परन्तु सुखको सुखकारी भोजन करना चाहिये।

अचुणहं हणइरसं। अइ अंबं इन्दियाइं उवहणइं॥
अइ लोणियं च चक्खुं। अइणिद्धं भंजए गहणि॥ १३॥

अति उष्ण रसका विनाश करता है, अति खट्टा इन्द्रियों को हनता है, अति खारा चक्षुओं का विनाश करता है, अति चिकना नासिका के विषय को खराब करता है।

तित्तकडुएहिं सिंभं। जिणाहिपित्तं कसाय महुरेहिं॥
निठएहेहिं अवायं। सेसावाही अणसणाए॥ १४॥

तिक्त, और कटु पदार्थ के त्याग से श्लेष्म, कषायले, और मधुर पदार्थके परित्याग से पित्त स्निग्ध—चिकने और उष्ण पदार्थ के त्यागसे वायु तथा अन्य व्याधियों को बाकीके रस परित्याग से जीती जा सकती हैं।

अशाकभोजी घृतमत्ति योंधसा। पयोरसान् सेवति नातियोंभसा॥
अभुग्विमुग्मूत्रकृतां विदाहिनां। चलत्यमुग् जीर्ण भूगल्पदेहरुग्॥ १५॥

शाक बिना किया हुआ भोजन घीके समान गुणकारी होता है, दूध और चावल की खुराक मदिरा के समान गुणकारी होती है। खाते समय अधिक जलपान न करना श्रेष्ठ है। जो मनुष्य लघु नीति बड़ी नीति की शंका निवारण करके भोजन करता है उसे अजीर्ण नहीं होता। इस प्रकार उपरोक्त वर्ताव करने वाले को प्राय: बीमारी नहीं होती।

आदौ तावन्मधुरं। मध्ये तीक्ष्णं ततस्ततः कटुकं॥
दुर्जन मैत्री सदृशं। भोजनमिच्छन्ति नीतिज्ञाः॥ १६॥

दुर्जन पुरुषों की मित्रता के समान नीति जानने वाले पुरुष पहले मधुर, बीचमें तीक्ष्ण, और फिर कटु भोजन इच्छते हैं।

सुस्निग्ध मधुरैः पूर्वमश्नीयांदन्वितं रसैः॥
द्रवाम्ललवणैर्मध्ये। पर्यन्ते कटुतिक्तकैः॥ १७॥

पहले चिकने और मधुर रस सहित पदार्थ खाना, प्रवाही खट्टे और खारे रस सहित पदाथ बीचमें खाना, और कटु तथा तिक्त रस सहित पदार्थ अन्तमें खाना।

प्राक् द्रवं पुरुषोऽश्नाति । मध्ये च कटुकं रसं ॥
अन्ते पुनर्द्रवाशी च । बलारोग्यं न मुंचति ॥ १८ ॥

पहले पतला पदार्थ खाना चाहिये; बीचमें कटु रस वाला खाना चाहिये, और अन्तमें पतला पदार्थ खाना योग्य है। इस प्रकार भोजन करने वालेको बल, और आरोग्यकी प्राप्ति होती है।

आदौ मंदाग्नि जननं । मध्ये पीतं रसायनं ॥
भोजनान्ते जलं पीतं । तज्जलं विष सन्निभं ॥ १९ ॥

भोजन से पहले पीया हुआ पानी मंदाग्नि करता है, भोजन के बीचमें पीया हुआ पानी रसायन के समान गुण कारक है। और अन्तमें पीया हुआ विष तुल्य है।

भोजनानन्तरं सर्वं । रस लिप्तेन पाणिना ॥
एकः प्रतिदिनं पेयो । जलस्य चुलुकोंगिना ॥ २० ॥

भोजन किये बाद सर्व रससे लगे हुये हाथ द्वारा मनुष्य को प्रतिदिन एक चुलु पानी पीना चाहिये। अर्थात् भोजन किये बाद तुरन्त ही अधिक पानी न पीना चाहिये।

न पिबेत्पशुवत्तोयं । पीतशेषं च वर्जयेत् ॥
तथा नां जलिना पेयं । पयः पथ्यं मितं यतः ॥ २१ ॥

पशुके समान पानी न पीना चाहिये। पीये बाद बचा हुआ पानी तत्काल ही फेंक देना चाहिये। तथा अंजलि याने ओक से पानी न पीना चाहिये क्योंकि प्रमाण किया हुआ पानी पथ्य गिना जाता है।

करेण सलिलार्द्रेण । न गंडौ नापरं करं ॥
नेत्रणे च स्पृशेत्किन्तु । स्पृष्टव्ये जानुनी श्रिये ॥ २२ ॥

भोजन किये बाद भीले हाथसे मस्तकको, दूसरे हाथको, आंखोंको स्पर्श न करना चाहिये। तब फिर क्या करना चाहिये? लक्ष्मीकी वृद्धिके लिये अपने गोडोंको मसलना चाहिये।

"भोजन किये बाद करने न करनेके कार्य"

अंगमर्दन नीहारं । भारोत्क्षेपोपवेशनं ॥
स्नानाद्यं च कियत्कालं । भुक्त्वा कुर्यान्न बुद्धिमान् ॥२३॥

भोजन किये बाद बुद्धिमान को तुरन्त ही अंगमर्दन, टट्टी जाना, भार उठाना, बैठ रहना, स्नान, वगैरह कार्य न करने चाहिये।

भुक्त्वोपविशतस्तुंदं । बलमुत्तानशायिनः ॥
आयुर्वामकटिस्थस्य । मृत्युर्धावति धावतः ॥ २४ ॥

भोजन करके तुरन्त ही बैठ रहने वालेका पेट बढ़ता है, चित सोने वालेका बल बढ़ता है, बायां अंग दबाकर बैठने वालेका आयुष्य बढ़ता है और दौड़नेसे मृत्यु होती है।

भोजनानंतरं वाम। कटिस्थो घटिकाद्वयं ॥
शयीत निद्रया हीनं। यद्वा पद शतं व्रजेत॥ २५॥

भोजन किये बाद बायां अंग दबा कर दो घड़ी निद्रा बिना लेट रहना चाहिये, या सौ कदम घूमना चाहिये, परन्तु तुरन्त ही बैठ रहना योग्य नहीं। आगमोक्त विधि नीचे मुजब है।

निरवज्जाहारेणं। निज्जीवेणं परित्त मिस्सेणं ॥
अत्ताणु संधणपरा। सुसावगा ए रिसा हुंति॥ १॥

दूषण रहित आहार द्वारा, निर्जीव आहार द्वारा, प्रत्येक मिश्र आहार द्वारा, (अनन्तकाय नहीं) ही अपना निर्वाह करनेमें तत्पर सुश्रावक होता है।

असर सरं अचबचबं, अदुअमविलंबिअं अपरिसाडि।
मणवयकायगुत्तो, भुंजई साहुव्व उवउत्तो ॥२॥

श्रावकको साधुके समान, मौन रह कर चपचपाहट करनेसे रहित, शीघ्रता रहित, अति मन्दता रहित, जूंठा न छोड़ कर, मन, वचन, कायको गोपते हुए उपयोगवान् हो कर भोजन करना चाहिये।

कडपयरच्छेएणं सुत्तव्वं अहव सीह खइएणं।
एगेण अणेगे हिव, वज्जित्ता धूमइंगालं॥ ३॥

जिस प्रकार बांसके टुकड़े करनेके समय उसे एकदम चीरते हैं, उस तरह या सिंह भोजनके समान (सिंह एकदम झपट्टा मार कर खा जाता है वैसे) तथा बहुतसे मनुष्यों के बीच एवं धूम, इंगालादिक दोषोंको वर्ज कर अकलेको एक बार भोजन करना चाहिये।

जहअब्भंगललेवा, सगड क्खवणाण जुत्तिओ हुंति॥
इअसंजम भ रहवहणठ्ठाइ साहुआहारो ॥४॥

जिस प्रकार शरीरका बल बढ़ानेके लिये स्नान करते समय अभ्यंगन किया जाता है और गाड़ीको चलानेके लिये जैसे उसकी धुराओंमें तेल लगाया जाता है वैसे ही संयमका भार वहन करनेके लिए साधु लोक आहार करते हैं।

तित्तगंव कडुअंव, कसायं अंबिलंवमहुरं लवणं वा॥
एअ लद्ध मन्न ठ पउत्तं, महुधयं व भुंजिज्ज संजए॥ ५॥

साधुको तिक्त, कटु, कषायला, खट्टा, मीठा, खारा इस प्रकारका आहार मिले तथापि वह अन्य कुछ विचार न करके उसे ही मिष्ट और स्वादिष्ट मानकर खा लेते हैं।

अहव न जिमिज्जरोगे, मोहुदए सयणमाइ उवसग्गे॥
पाणी दयात वहेउ, अंते तणुमो अणथ्थं च ॥ ६॥

जब रोग हुआ हो, जब मोहका उदय हुआ हो, जब स्वजनादिक को उपसर्ग उत्पन्न हुआ हो, जीवदया पालनेके समय, जप तप करना हो अन्त समय शरीर छोड़नेके लिये जब अनशन करना हो तब भोजन करना।

ऊपर बतलाई हुई समस्त सिद्धान्तोक्त रीति साधुके आश्रित है। श्रावकको यथायोग्य समझ लेना। दूसरे शास्त्र भी कहते हैं कि:—

देवसाधुपुरस्वामी, स्वजनव्यसने सति ॥
ग्रहणे च न भोक्तव्यं शक्तौ सत्यां विवेकिना ॥ ७ ॥

जब देव, गुरु, राजा, स्वजन, इत्यादि पर कुछ कष्ट आ पड़ा हो एवं ग्रहण पड़ते समय विवेकवान् मनुष्यको भोजन न करना चाहिये।

"अजीर्ण प्रभवा रोगाः" अजीर्ण होनेसे रोग उत्पन्न होते हैं। अजीर्णके विषयमें कहा है कि:—

बलावरोधिनिर्दिष्टं, ज्वरादौ लंघनं हितं ॥
ऋतेऽनिलश्रमक्रोध—शोककामक्षतज्वरान् ॥ ८ ॥

वायु, श्रम, क्रोध, शोक, काम या घाव तथा विस्फोटक वगैरह का यदि बुखार न हो तो उसके बलको रोकने वाला होनेसे बुखारकी आदिमें लंघन ही करना हितकारी है। ऐसा वैद्यक शास्त्रका कथन होनेसे ज्वरके समय, नेत्ररोगादिके समय, तथा देव गुरुकी वन्दना करनेका योग न बने उस समय एवं तीर्थ गुरुको नमस्कार करनेके समय कोई विशेष धर्म करणी अंगीकार करनेके आदिमें या किसी प्रौढ़ पुण्य करणीके प्रारम्भमें अष्टमी चतुर्दशी वगैरह विशेष पर्वतिथियों में भोजनका परित्याग करना चाहिये। उपवास आदि तप करनेसे इस लोक और परलोक में सचमुच ही विशेष गुणकी और लाभकी प्राप्ति होती है।

अथिरं पिथिरं वकंपि, उज्जुअं दुलहंपि तहसुलहं ॥
दुसज्झंपि सुसज्झं, तवेण संपज्जए कज्जं ॥ ९ ॥

अस्थिर भी स्थिर, वक्र भी सरल, दुर्लभ भी सुलभ, दुःसाध्य भी सुसाध्य, मात्र तपसे ही हो सकते हैं।

वासुदेव, चक्रवर्ती वगैरह तथा देवता वगैरह जो सेवा करने रूप इस लोकके कार्य हैं वे सब अष्टमादिक तपसे ही सिद्ध होते हैं। परन्तु उस बिना नहीं होते। (यह भोजनादिक विधि बतलाई है।)

"भोजनकर उठे बाद करनेके कार्य"

भोजन किये बाद नवकार गिन कर उठके चैत्यवन्दन करे, फिर यथायोग्य देव गुरुको वन्दन करे। यह सब कुछ "सुपत्तदाणाइजुत्ति इसमें बतलाये हुये आदि शब्दसे सूचन किया हुआ समझना" अब पिछले पद की व्याख्या बतलाते हैं कि भोजन किये बाद प्रत्याख्यान करके दिवसचरिम या ग्रंथि सहितादि प्रत्याख्यान गुर्वादिक को दो वन्दना देने पूर्वक अथवा वैसा योग न हो तो वैसे ही करके गीतार्थोंके, यतियोंके, गीतार्थ श्रावकके, या ब्रह्मचारी श्रावकके पास वांचना, पृच्छना, परावर्त्तना, धर्मकथा, अनुप्रेक्षा लक्षणवाली यथायोग्य स्वाध्याय करना। उसमें १ निर्जराके लिये यथायोग्य जो सूत्र अर्थका पढना, पढाना, है उसे वांचना कहते हैं। २ वांचना लेते समय उसमें जो कुछ शंका रही हो उसे गुरुको पूछ कर निःसंशय होना इसे पृच्छना कहते हैं। ३ पहले पढे हुये सूत्र तथा उनका अर्थ पीछे विस्मृत न होने देनेके कारण जो उनका वारंवार अभ्यास करना सो परावर्त्तना कहलाता है। ४ जम्बूस्वामी वगैरह महान् पुरुषोंके चरित्रोंको स्मरण करना,

दूसरोंको श्रवण कराना, उसे धर्मकथा कहते हैं। ५ मनमें ही सूत्र अर्थका वारंवार अभ्यास करते रहना— उसका विचार करते रहना उसे अनुप्रेक्षा कहते हैं। यहां पर शास्त्रके रहस्यको जानने वाले पुरुषोंके पास पांच प्रकारकी स्वाध्याय करना बतलाया है सो विशेष कृत्यतया समझना। और वह विशेष गुण हेतु है। कहा है कि:—

सज्झाएण पसथ्थं झाणं जाणईअ सव्व परमथ्थं;

सज्झाए वट्टंतो, खणे खणे जाई वेरग्गं ॥ १० ॥

स्वाध्याय द्वारा प्रशस्त ध्यान होता है, सर्व परमार्थ को जानता है, स्वाध्यायमें प्रवर्त्तन से प्राणी क्षण क्षणमें वैराग्य भावको प्राप्त करता है।

हमने (टीकाकारने) पांच प्रकारके स्वाध्याय पर आचारप्रदीप ग्रंथमें दृष्टान्त वगैरह दिये हैं इसलिये यहां पर दृष्टान्त आदि नहीं दिये, यह मूल ग्रंथकी आठवी गाथाका अर्थ समाप्त हुआ।

"मूल गाथ"

संझाई जिणपुणरवि। पूअई पडिकमइ कुणई तहविहिणा॥
विस्समणं सज्झायं। गिहंगओ तो कहइ धम्मं॥ ९॥

उस्सग्गेणं तु सड्ढोअ, सचित्ताहार वज्जओ; इक्कासणग भोइअ, बंभयारी तहेवय ॥ १ ॥

उत्सर्ग से श्रावकको एक ही दफा भोजन करना चाहिये; इसलिये कहा है कि, उत्सर्ग मार्गसे श्रावक सचित्त आहारका त्यागी होता है और एकही दफा भोजन करता है एवं ब्रह्मचारी होता है।

जिस श्रावकका एक दफा भोजन करनेसे निर्वाह न हो उसे दिनके पिछले आठवें भागमें (लगभग चार घड़ी दिन रहे उस वक्त) खाना शुरू करके दो घड़ी दिन बाकी रहे उस वक्त समाप्त कर लेना चाहिये। क्योंकि सन्ध्या समय याने एक घड़ी दिन रहे उस वक्त भोजन करनेसे रात्रिभोजन का दोष लगता है, देरीसे और रात्रिभोजन करनेसे अनेक दोष उत्पन्न होते हैं, इसका स्वरूप अर्थदीपिका वृत्तिसे जान लेना। भोजन किये बाद यथाशक्ति चोविहार, तिविहार, दुविहार, दिवसचरिम, जितना दिन बाकी रहा हो वहांसे लेकर दूसरे दिन सूर्य उदय तक प्रत्याख्यान करना। मुख्य वृत्तिसे तो कितनाक दिन बाकी रहने पर भी प्रत्याख्यान करना चाहिये और यदि वैसा न बन सके तो रात्रिके समय भी प्रत्याख्यान कर लेना चाहिये।

यदि यहां पर कोई यह शंका करे कि दिवस चरिम प्रत्याख्यान करना निष्फल है। क्योंकि दिवस चरिम तो एकासनादि के प्रत्याख्यान में ही भोग लिया जाता है। इस बातका यह समाधान है कि एकासन प्रत्याख्यान के आठ आगार हैं, और दिवसचरिम प्रत्याख्यान के चार आगार हैं; इसलिये वह करना फलदायक है। क्योंकि आगारका संक्षेप करना ही सबसे बड़ा लाभ है।

जिसने रात्रिभोजन का निषेध किया है उस श्रावकको भी कितना एक दिन बाकी रहने पर दिवस

चरिम करनेमें आ जानेसे मेरे रात्रिभोजन का त्याग है, ऐसा स्मरण करा देनेसे उसे भी दिवसचरिम करना योग्य है ऐसा आवश्यक की लघुवृत्ति में लिखा है। यह दिवसचरिम का प्रत्याख्यान जितना दिन बाकी रहा हो उतने समयसे ग्रहण, किया हुआ चोविहार या तिविहार सुखसे बन सकता है और यह महा-लाभकारी है। इससे होनेवाले लाभ पर निम्न दृष्टान्त दिया जाता है।

दशार्णपुर नगरमें एक श्राविका संध्या समय भोजन करके प्रतिदिन दिवसचरिम प्रत्याख्यान करती थी, उसका पति मिथ्यात्वी होनेसे "शामको भोजन करके रात्रिमें किसीको भोजन न करना यह बड़ा प्रत्याख्यान हैं, वाह! यह बड़ा प्रत्याख्यान!" ऐसा बोल कर हंसी करता था। एक दिन उसने भी प्रत्याख्यान लेना शुरू किया, तब श्राविकाने कहा कि आपसे न रहा जायगा, आप प्रत्याख्यान न लो, तथापि उसने प्रत्याख्यान लिया, रात्रिके समय सम्यक्दृष्टि देवी उसकी बहिनका रूप बना कर उसकी परीक्षा करने, या शिक्षा करनेके लिये, घेवरकी सीरनी बांटने आई और उसे घेवर दिये। श्राविका स्त्रीने उसे बहुत मना किया परन्तु रसनाके लालचसे वह हाथमें लेकर खाने लगा, तब देवीने उसके मस्तकमें ऐसा मार मारा कि जिससे उस की आंखोंके डोले निकल पड़े उस श्राविका स्त्रीने इससे मेरा या मेरे धर्मका अपयश होगा यह समझ कर कायोत्सर्ग कर लिया। तब शासन देवीने आकर उस श्राविकाके कहनेसे वहांपर नजदीक में ही कोई बकरे को मारता था उसकी आंखें लाकर उसकी आंखोंमें जोड़ दीं इससे वह एडकाक्ष नामसे प्रसिद्ध हुवा। यह प्रत्यक्ष फल देखनेसे वह भी श्रावक बना। यह कौतुक देखनेके लिए दूसरे गांवसे बहुतसे लोक आने लगे, इससे उस गांवका भी नांव एडकाक्ष होगया। ऐसा प्रत्यक्ष चमत्कार देख कर अन्य भी बहुतसे लोक श्रावक हुए।

फिर दो घड़ी दिन बाकी रहे बाद और अर्ध सूर्य अस्त होनेसे पहिले फिरसे तीसरी दफा विधिपूर्वक देवकी पूजा करे,

"द्वितीय प्रकाश"

"रात्रि कृत्य"

'पडिक्कम इरि' श्रावक साधुके पास या पौषधशालामें यतना पूर्वक प्रमार्जन करके सामायिक लेने वगैरहका विधि करके प्रतिक्रमण करे। इसमें प्रथमसे स्थापनाचार्य की स्थापना करे, मुख वस्त्रिका रजो-ह.ण आदि धर्मके उपकरण ग्रहण करने पूर्वक सामायकका विधि है। यह वन्दिता सूत्रकी वृत्तिमें संक्षेपसे कथन करदेने के कारण यहांपर उसका उल्लेख करना आवश्यक नहीं दीख पड़ता। सम्यक्त्वादि सर्वातिचार विशुद्धिके लिए प्रति दिन सुबह और शाम प्रतिक्रमण करना चाहिए। भद्रक स्वभाव वाले श्रावकको अभ्यास केलिए अतिचार रहित षट् आवश्यक करना तृतीय वैद्यकी औषधीके समान कहा है। ऋषियोंका कथन है कि-

सपडिक्कमणो धम्मो, पुरिमस्स यपच्छिमस्सय जिणस्स,
मज्झिमयाण जिणाणं, कारण जाए पडिक्कमणं ॥ १ ॥

पहले और अन्तिम तीर्थंकरों के चतुर्विध संघका सप्रतिक्रमण धर्म है और मध्यके बाईस तीर्थंकरों के संघका धर्म है कि कारण पड़ने पर याने अतिचार लगा हो तो मध्यान्ह समय भी प्रतिक्रमण करें। परन्तु यदि अतिचार न लगे तो पूर्व करोड़ तक भी प्रतिक्रमण न करें।

तृतीय वैद्य औषधी दृष्टान्त

वाहि मवणेई भावे, कुणइ श्रभावे तयं तु पढमंति ॥

विइश्र मवणेइ, न कुणइ तइश्रं तु रसायणं होई ॥ २ ॥

पहले वैद्यकी औषधी ऐसी है कि यदि रोग हो तो उसे दूर करती है, परन्तु रोग न होतो उसे उत्पन्न करती है। दूसरे वैद्यकी औषधीका स्वभाव रोगके सद्‌भावमें उसे दूर कर करनेका है, परन्तु रोग न होते गुणावगुण कुछ नहीं करती। तीसरे वैद्यकी औषधीका स्वभाव रसायन के समान है। यदि रोग हो तो उसे दूर करती है और यदि न हो तो सर्वांगमें बल पुष्टी करती है। सुख वृद्धिका हेतु होती है और भावी रोगको अटकाती है।

इसी प्रकार प्रतिक्रमण भी यदि अतिचार न लगा हो तो चारित्रधर्म की पुष्टी करता है। यहां पर कोई यह कहता है कि श्रावकको आवश्यक चूर्णीमें बतलाये हुए सामायिक विधिके अनुसार ही प्रतिक्रमण करना। छह प्रकारके आवश्यक दोनों सन्ध्याओं में अवश्य करनीय होनेके कारण उसका घटमानपन हो सकता है। सामायिक करके इर्या वही पडिकम कर, काउस्सग्ग करके, लोगस्स कहकर, वन्दना दे कर श्रावकको प्रत्याख्यान करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे पूर्वोक्त छह आवश्यक पूरे होते हैं।

'सामाइश्र मुभय संझ्झंमि' (सामयिक दो संध्याओंमें) इस वचनसे सामायिक के कालका नियम हो चुका; ऐसा कहा जाय तो इसके उत्तरमें समझना चाहिये कि यह बात घटमान नहीं हो सकती, क्योंकि पाठसे छः प्रकारके आवश्यक के कालका नियम सिद्ध नहीं हो सकता। उसमें भी प्रथम तो प्रश्नकार के अभिप्राय मुजब चूर्णिकाकार ने भी सामायिक, इर्यावही प्रतिक्रमण, वन्दना ये तीन ही आवश्यक दिखलाये हैं। बाकी नहीं बतलाये। उसमें भी इर्यावही प्रतिक्रमण गमन विषयक हैं याने जाने आनेकी क्रियादिरूप है, परन्तु चतुर्थ आवश्यक रूप नहीं। क्योंकि—"गमणागमणविहारे, सुत्ते वा सुमिण दंसणे एवो। नावा-नईसंतारे, इरिश्रावहिया पडिक्कणं। जानेमें, आनेमें; बिहार करनेमें, सूत्रके आरम्भ में, रात्रिमें स्वप्न देखा हो उसकी आलोचना करनेमें, नौकासे उतरे बाद, नदी उतरे बाद, इतने स्थानोंमें इर्यावहि करना कहा है। इत्यादि सिद्धान्तों के वचनसे आवश्यक विषय नहीं है। अब यदि साधुके अनुसार श्रावकको भी इर्यावहि करना कहे तो काउसग्ग, चोवीसत्था भी बतलाया है। क्या वह साधुके अनुसार श्रावकको करना न चाहिये? अर्थात् अवश्य ही श्रावकको भी प्रतिक्रमण करना चाहिये। "असई साहुचेइश्राणं पोसहसाल एवा सगिहेवा सामाइयंवा आवस्सयंवा करेइ" साधु और चैत्य न हो तो पौषधशाला में या अपने घर सामायिक अथवा आवश्यक करे" इस प्रकार आवश्यक चूर्णिमें छह प्रकारका आवश्यक सामायिक से जुदा बतलाया है। सामायिक करनेमें कालका नियम नहीं।"

जथ्थ वावोस मइअच्छइवा निव्वावारो सव्वथ्थ करेइ" जहां विश्राम हो अथवा जहां निर्व्यापार हो— फुरसद हो वहां सर्व स्थानोंमें सामायिक करे अथवा—

"जाहे खणिओ ताहे करेइ तोसे न भज्जइ" जब समय मिले तब करे तो सामायिक भंग नहीं होता" ऐसा चूर्णिका वचन है। इस प्रमाण से 'सामाइय उभय संझ्मं' समायिक दोनों संध्यामें करना" यह वचन सामायिक नामकी श्रावक की प्रतिमा अपेक्षित है और यह वहां ही उस कालके नियम के समय ही सुना जाना है" (जब कोई श्रावक प्रतिमा प्रतिपन्न हो तब उसे दोनों समय सुबह शाम अवश्य सामायिक करना ही चाहिये। इस उद्देश्यसे यह वचन समझना) अनुयोग द्वार सूत्रमें स्पष्टतया श्रावक को भी प्रतिक्रमण करना कहा है, जैसे कि:—

"समणेवा समणीवा सावएवा साविआवा तच्चिरो तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाए तदट्ठोवउत्ते तदप्पि अकरणे तम्भावणभाविए उभओ काल मावस्सयं करेइ ॥

साधु या साध्वी, श्रावक या श्राविका, तद्गत् चित्त द्वारा, तद्गत मनो द्वारा, तद्गत लेश्या द्वारा, तद्गत अध्यवसाय द्वारा और तद्गत तीव्र अध्यवसाय द्वारा, उसके अर्थमें सोपयोगी होकर चवला मुंहपत्ति सहित (श्रावक आश्रयी) उसकी ही भावना भाते हुये उभय काल अवश्य आवश्यक करे।" तथा अनुयोग द्वारमें कहा है—

समणेण सावएणाय। अवस्स कायव्वयं हवइ जम्हा ॥
अन्तो अहो निसस्सय। तंम्हा आवस्सयं नाम ॥

"साधु और श्रावक के लिए रात्रि और दिनका अवश्य कर्तव्य होने से वह आवश्यक कहलाता है" इसलिये साधुके समान श्रावक को भी श्रीसुधर्मा स्वामी आदि से प्रचलित परम्परा के अनुसार प्रतिक्रमण करना चाहिये। मुख्यता से दिन और रात्रिके किये हुये पापकी विशुद्धि करनेका हेतु होनेसे महाफल दायक है। इसलिये हमने कहा है कि:—

अघनिष्क्रमणं भावद्विपदाक्रमणं च सुकृतसंक्रमणं ॥
मुक्तेः क्रमणं कुर्यात्। द्विः प्रतिदिवसं प्रतिक्रमणं ॥

पाप का दूर करना, भाव शत्रुको वश करना, सुकृत में प्रवेश करना, और मुक्ति तरफ गमन करना, ऐसा प्रतिक्रमण दो दफे करना चाहिये।

सुना जाता है कि दिल्लीमें किसी श्रावक को दो दफा प्रतिक्रमण करने का अभिग्रह था। उसे किसी राज्य व्यापारी कार्यके कारण बादशाह ने हथकड़ियाँ डालकर जेलमें डाल दिया। कई लंघन हुये, तथापि संध्या समय प्रतिक्रमण करने के लिये चौकीदार को सुवर्ण मोहोरें देना मंजूर करके दो घड़ी हाथकी हथकड़ियां निकलवा कर उसने प्रतिक्रमण किया। इस प्रकार एक महीना व्यतीत होनेसे उसने प्रतिक्रमण के लिये साठ सुवर्ण मुहरें दीं। उसके नियमकी दृढ़ता सुन कर तुष्टमान होकर बादशाह ने उसे छोड़ दिया। पहले के समान उसे सन्मान दिया, इस प्रकार प्रतिक्रमण के विषयमें उद्यम करना।

प्रतिक्रम के पांच भेद हैं। १ दैवसिक, २ रात्रिक, ३ पाक्षिक, ४ चातुर्मासिक, और ५ सांवत्सरिक। इनका काल उत्सर्ग से नीचे लिखे मुजब बतलाया है:—

अद्ध निबुड्डे सूर। विंव सुत्तं कढ्ढंति गीयथ्था॥
इअ वयणप्पमाणेणं। देवसि आवस्सए कालो॥

जब सूर्यका बिम्ब अर्ध अस्त हो तब गीतार्थ वन्दिता सूत्र कहते हैं। इस वचन के प्रमाण से दैवसिक प्रतिक्रमण का काल समझ लेना चाहिये। रात्रि प्रतिक्रमण का समय इस प्रकार है।

आवस्सयस्से समए। निद्दामुद्दं चयन्ति आयरिआ॥
तहतं कुणंति जहदिसि। पडिलेहाणं तरं सूरो॥

आवश्यक के समय आचार्य निद्राकी मुद्राका परित्याग करते हैं, वैसे ही श्रावक करे याने प्रतिक्रमण पूर्ण होने पर सूर्योदय हो।

अपवाद से दैवसिक प्रतिक्रमण दिनके तीसरे प्रहर से लेकर आधी रात तक किया जा सकता है। योग शास्त्र की वृत्तिमें दिनके मध्यान्ह समय से लेकर रात्रिके मध्य भाग तक दैवसिक प्रतिक्रमण करने की छूट दी है। राई प्रतिक्रमण आधी रात से लेकर मध्यान्ह समय तक किया जा सकता है। कहा भी है कि:—

उग्घाड पोरसिंजा। राईअ मावस्स यस्स चून्नीए॥
ववहाराभिप्पाया। भणंति पुण जावपुरिसड्ढं॥

आधीरात से लेकर उघाड पोरसि याने सुबह की छह घड़ी तक राई प्रतिक्रमण का काल है। यह आवश्यक की चूर्णिका मत है। और व्यवहार सूत्र के अभिप्राय से दो पहर दिन चढ़े तक काल गिना जाता है।

पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक, प्रतिक्रमण का काल पक्ष या चातुर्मास और संवत्सर के अन्तमें है। पाक्षिक प्रतिक्रमण चतुर्दशी को करना या पूर्णिमा को? इस प्रश्नका उत्तर आचार्य इस प्रकार देते हैं। चतुर्दशी के रोज करना। यदि पूर्णिमा को पाक्षिक प्रतिक्रमण होता हो तो चतुर्दशी का और पूर्णिमा का पाक्षिक उपवास करना कहा हुआ होना चाहिये, और पाक्षिक तप भी एक उपवास के बदले छट कहा हुआ होना चाहिये परन्तु वैसा नहीं कहा। उसका पाठ बतलाते हैं कि "अठ्ठं छठ्ठ चउथ्थ संवच्छर चाऊमास पक्खेसु, अठ्ठम, छठ, एक उपवास, सांवत्सरिक, चातुर्मासिक और पाक्षिक, अनुक्रमसे करना।" इस पाठको विरोध आता है। जहां चतुर्दशी ली है वहां पक्खी नहीं ली, और जहां पक्खी ली है वहां चतुर्दशी नहीं ली। सो बतलाते हैं—"अट्ठमी चउद्दशीसु उववास करणं, अष्टमी चतुर्दशी को उपवास करना" इस प्रकार पक्खी सूत्रकी चूर्णि मे कहा है। "सोअ अठ्ठमी चउद्दसीसु उववासं करेइ, वह अष्टमी चतुर्दशी को उपवास करे" ऐसा आवश्यक की चूर्णिमे कहा है "चउथ, छठ्ठ, अठ्ठम करणे अठ्ठमी पक्ख चउमास वरिसेअ अष्टमी, पक्खी, चउमासी, और वार्षिक, क्रमसे उपवास, छट, और अठम करना" ऐसा व्यवहार

भाष्य की पीठीका में कहा है। "अट्ठमी, चउदसी नाण पंचमी चउमासी" अष्टमी, चतुर्दशी, ज्ञान पंचमी, और चौमासी" ऐसा पाठ महा निशीथ में है। व्यवहार सूत्रके छठे उद्देश में बतलाया है कि "पक्खस्स अट्ठमी खलु मासस्सय पक्खिअं मुणेयव्वं। पक्षके बीच अष्टमी और मासके बीच पक्खी आती हैं। इस पाठकी वृत्तिमें और चूर्णिमें पाक्षिक शब्दसे चतुर्दशी ली है।

पक्खी चतुर्दशी को ही होती है। चातुर्मासिक और सांवत्सरिक तो पहले (कालिका चार्यसे पहले) पूर्णिमा की और पंचमी की करते थे। परन्तु श्री कालका चार्यकी आचरना से वर्तमान कालमें चतुर्दशी और चौथको ही अनुक्रम से पाक्षिक एवं सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करते हैं और यही प्रमाण भूत है। क्योंकि यह सबकी सम्मति से हुआ है। यह बात कल्प व्यवहार के भाष्य वगैरह में कही है।

असढ़ेण समाइन्नं। जं कच्छाइ केणाई असावज्जं॥
न निवारिअ मन्नेहिं। बहुमणु मयमेय मायरिअं॥

किसी भी क्षेत्रमें अशठ-गीतार्थ द्वारा आचरण किया गया कोई भी कार्य असावद्य होना चाहिये और उस समय दूसरे आचार्यों गीतार्थों द्वारा अटकाया हुवा न हो और बहुत से संघने अंगीकार किया हो उसे आचरित कहते हैं। तथा तीथ्थो गालिपयंणा में कहा है कि:—

सालाहणेन रन्ना। संघाएसेण कारिओ भयव्वं॥
पज्जो सवण चउथ्थी। चाउमासं च चउदसीए॥

संघके आदेश से शालिवाहन राजाने कालिकाचार्य भगवान के पास पर्यूषणा की चतुर्थी और चातुर्मासी की चतुर्दशी कराई।

चउम्मास पडिक्कमणं। पक्खिअ दिवसम्मि चउविओ संघो॥
नवसयतेणउएहिं। आयारणं तं पमाणन्ति॥

महावीर स्वामी के बाद ९९३ वर्षमें चतुर्विध संघने मिल कर चातुर्मासिक प्रतिक्रमण करने की आचरणा चतुर्दशी के दिन की और वह सकल संघने मंजूर की।

इस विषय में अधिक विस्तार पूर्वक जानने की जिज्ञासा वालेको श्री कुलमंडन सूरि कृत 'विचारामृत संग्रह" ग्रन्थका अवलोकन कर लेना चाहिये। दैवसिक प्रतिक्रमण करनेका विधान इस प्रकार दिया गया है।

प्रतिक्रमण विधि योगशास्त्र की वृत्तिमें दी हुई पूर्वाचार्य प्रणीत गाथासे समझ लेना। सो बतलाते हैं। पांच प्रकार के आचार की विशुद्धि के लिए साधु या श्रावक को गुरुके साथ प्रतिक्रमण करना चाहिये, और यदि गुरुका योग न हो तो एकला ही कर ले। देव वन्दन करके रत्नाधिक चार को खमासमण देकर, जमीन पर मस्तक स्थापन कर समस्त अतिचार का मिच्छामि दुष्कृत दे। 'करेमि भन्ते सामाइयं' कह कर 'इच्छामि ठामि काउसग्गं' कह कर जिन मुद्रा धारण कर, भुजायें लंबायमान कर, पहने हुये वस्त्र कोहनीमें रख कर, कटि वस्त्र नाभीसे चार अंगुल नीचे और गोड़ोंसे चार अंगुल ऊंचे रख कर, घोटकादि उन्नीस

दोष वर्जित कायोत्सर्ग करे। उस कायोत्सर्ग में यथा ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार, ये पांच आचार हैं। क्रमसे दिनमें किये हुये अतिचार को हृदय में धारण करे, फिर 'णमो अरिहंताणं' पदको कह कर कायोत्सर्ग पूर्ण करके, लोगस्स, दंडक पढे। संडासा प्रमार्जना करके, दूसरी जगह अपने दोनों हाथों को न लगाते हुये नीचे बैठ कर पच्चीस अंगकी और पच्चीस कायाकी एवं मुहपत्ति की पचास बोल सहित प्रतिलेखना करे। उठ कर विनय सहित बैठ कर, बत्तीस दोष रहित, आवश्यक के पच्चीस दोषसे विशुद्ध विधि पूर्वक वन्दना करे। अब सम्यक् प्रकार से अंग नमा कर हाथमें विधि पूर्वक मुंहपत्ति और रजोहरन रख कर यथा-नुक्रम से गुरुके पास शुद्ध होकर अतिचार का चिन्तवन करे। फिर सावधान तथा नीचे बैठ कर 'करेमि भन्ते' प्रमुख कहकर वन्दिता सूत्र पढ़े। 'अभुठिओमि आराहणाये' यहांसे लेकर शेष खड़ा होकर पढे। फिर वन्दना देकर तीन दफा पांच प्रमुख साधुको खमावे, फिर वन्दना देकर 'आयरिअ उवज्झाए' आदि तीन गाथायें पढे। फिर 'करेमि भन्ते सामाइअं' आदि कह कर काउसग्ग के सूत्र उच्चारन कर खड़ा रह कर पूर्ववत् काउसग्ग करे। यहां पर चारित्राचार के अतिचार की विशुद्धि के लिये दो लोगस्स का कायोत्सर्ग करे। विधि पूर्वक काउस्सग्ग पार कर सम्यक्त्व की विशुद्धि के लिये एक लोगस्स पढे एवं 'सव्वलोए अरिहन्त चेइयाणं' कह कर पुनः कायोत्सग करे। पुनः शुद्ध सम्यक्त्वी हो कर एक लोगस्स का कायोत्सर्ग पूर्ण करके श्रुतज्ञान की शुद्धिके लिये 'पुक्खर वद्धि वड्ढे' पढे। फिर पच्चीस श्वासोश्वास प्रमाण काउस्सग्ग करके विधि पूर्वक पारे, फिर सकल कुशलानुबन्धी क्रियाके फल रूप 'सिद्धाणं बुद्धाणं' पढे। अब श्रुतसंपदा बढाने के लिए श्रुतदेवता का काउस्सग्ग करे, उसमें एक नवकार का चिन्तन करे। पूर्ण होने पर श्रुतदेवता की स्तुति की एक गाथा पढ़े; इसी प्रकार क्षेत्रदेवी का काउसग्ग करके एक गाथा वाली थोय-स्तुति कहे, फिर एक नवकार पढ कर संडासा प्रमार्जन करके नीचे बैठ जाय। पहले समान ही विधि पूर्वक मुंहपत्ति पडिलेह कर गुरुको वन्दना दे कर 'इच्छामो अणुसट्ठिं' कह कर ऊंचा गोड़ा रख कर बैठे। फिर गुरुकी स्तुति पढ़े, फिर वर्धमान अक्षरों से और उच्च स्वरसे श्री वर्द्धमान स्वामीकी स्तुति पढ़े और फिर शक्रस्तव कह कर 'देवसिय पायच्छित्त' काउसग्ग करे।

इस प्रकार जैसे देवसि प्रतिक्रमण का विधि कहा वैसे ही राइका भी समझ लेना, परन्तु उसमें इतना विशेष है कि पहले मिच्छामि दुक्कडं देकर, सव्व सवि कह कर फिर शक्रस्तव कहना। फिर उठ कर विधि पूर्वक कायोत्सर्ग करना, फिर एक लोगस्स पढना, दर्शन शुद्धिके लिये पुनरपि वैसा ही कायोत्सर्ग करना। फिर सिद्धस्तव—"सिद्धाणं बुद्धाणं' कह कर, संडासा प्रमार्जन करके नीचे बैठना। पहले मुखपत्ति की प्रतिलेखना करना, दो वन्दना देना, 'राइयं आलोयेमि,' यह सूत्र पढ़ कर फिर प्रतिक्रमण पढ़े। (वन्दिता सूत्र पढ़े) फिर वन्दना, अभुट्ठियो, दो वन्दना देकर, आयरिय उवज्झाय की तीन गाथायें पढ़े, फिर कायोत्सर्ग करे।

उस कायोत्सर्ग में इस प्रकारका चिंतन करे कि जिससे मेरे संयमयोग में हानि न हो मैं वैसा तप अंगीकार करूं। जैसे कि छमासी तपकी शक्ति है! परिणाम है! शक्ति नहीं, परिणाम नहीं, इस तरह चित-

वन करे। एकसे लेकर कम करे, यावत् उनतीस तक, ऐसा करते हुये सामर्थ्य न हीं ऐसा चिंतन करे। यावत् पंचमासी तपकी भी शक्ति नहीं। उसमें भी एक एक कम करते हुये, यावत् चार मास तक आवे। एवं एक एक कम करते हुये तीन मास तक आवे। इसी तरह दो मास तक अन्तमें एक मास तपकी भी शक्ति नहीं यह चिंतवन करे। उस एक मासको भी तेरह दिन कम करते हुये चौंतीस भक्त वगैरह एक एक कम करते हुये यावत् चोथ भक्त तक याने एक उपवास तक आवे। वहांसे विचारना करते हुये 'आयंबिल' एकासन, अवढ, आदि यावत् पोरसी एवं नवकारसी तक आवे। जैसा तप करनेकी शक्ति और भाव हो वैसी धारना करके काउस्सग पूर्ण करे। फिर मुंहपत्ति पडिलेह कर दो वन्दना दे, और जो तप धारण किया हो उसका प्रत्याख्यान करे। इच्छामो अणुसट्ठी' यों कह कर नीचे बैठ कर 'विशाल लोचन दलं' ये तीन स्तुतियां कोमल शब्दसे पढे, फिर नमुत्थुणं कह कर देववन्दन करे। पाक्षिक प्रतिक्रमण का विधान इस प्रकार है—

चतुर्दशी के दिन पाक्षिक प्रतिक्रमण करना हो तब प्रथमसे वन्दिता सूत्र तक दैवसिक प्रतिक्रमण करे। फिर अनुक्रम से इस प्रकार करे—मुंहपत्ति पडिलेह कर दो वन्दना दे, संबुद्धा, खामणा, खमा कर, फिर पाक्षिक अतिचार आलोवे, फिर वन्दना देकर प्रत्येक खामणा खमावे, फिर वन्दना देकर पख्खिसूत्र पढे। वन्दिता कह कर खड़ा होकर कायोत्सर्ग करे, फिर मुंहपत्ति पडलेह कर दो वन्दना दे, फिर समाप्त खामणेणं कह कर चार छोभ वन्दनासे पाक्षिक क्षमापना करे। शेष पूर्ववत याने देवसि प्रतिक्रमणवत् करे, इतना विशेष समझना कि भुवन देवताका काउसग्ग करना और स्तवन की जगह अजित शांति पढना।

इसी प्रकार चातुर्मासिक एवं वार्षिक प्रतिक्रमण का विधि समझना। पाक्षिक, चातुर्मासिक, और वार्षिक, प्रतिक्रमण में नामान्तर करना ही विशेष है, एवं कायोत्सर्ग में पाक्षिक प्रतिक्रमण में बारह लोगस्स का, चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में बीस लोगस्स का, वार्षिक प्रतिक्रमण में एक नवकार सहित चालीस लोगस्स का ध्यान करना। 'संबुद्धाणं' खामणामें पाक्षिक प्रतिक्रमण में पांच साधुओंको, चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में सात साधुओंको, और वार्षिक प्रतिक्रमण में यथानुक्रम साधुओंको खमाना। हरिभद्रसूरिकृत आवश्यक वृत्तिके वन्दन निर्युक्तिके अधिकारमें 'चत्तारिपडिक्कमणे' इस गाथाके व्याख्यान में संबुद्धा खामणाके विषयमें उल्लेख किया है कि:—

जहन्नेणतिन्नि। देवसिए पक्खिवय पंच अवस्सं॥
चाउमासिय संवच्छरिए विसत्त अवस्सं॥१॥

जघन्यसे देवसि प्रतिक्रमण में तीन, पाक्षिक प्रतिक्रमण में पांच, चातुर्मासिक और वार्षिक प्रतिक्रमण में, जघन्यसे सात साधुको अवश्य खमाना। परन्तु पाक्षिक सूत्र वृत्तिमें और प्रवचनसारोद्धार की वृत्तिमें कथन किये अनुसार बृहत्समाचारी में भी ऐसा ही कहा है। प्रतिक्रमण के अनुक्रमण की भावना (विचारना) पूज्य श्री जयचन्द्रसूरिकृत प्रतिक्रमण हेतुगर्भ ग्रंथसे जान लेना। गुरुकी विश्रामना से बड़ा लाभ होता है सो बतलाते हैं।

गुरुकी विश्रामना—याने सेवा इस प्रकार करना कि जिससे उनकी आशातना न हो। उपलक्षण से गुरुको सुख संयम यात्रा वगैरह पूछना। परमार्थ से मुनियोंकी एवं धर्मिष्ठ श्रावकादि की सेवा करनेका फल पूर्व भवमें पांचसों साधुओंकी सेवा करनेसे प्राप्त किया हुआ चक्रवर्ती से भी अधिक बाहूबली वगैरह के बल समान समझना। 'सवाहणादंतपदोअणाय' इस वचनसे यहां पर साधु मुनिराज को उत्सर्गमार्ग में अपनी सेवा न कराना, और अपवाद मार्गमें करावे तथापि दूसरे साधुके पास करावे। यदि वैसे किसी साधुका सद्भाव न हो तो उस प्रकारके विवेकी श्रावकसे करावे। यद्यपि महर्षि लोग मुख्यवृत्ति से अपनी सेवा नहीं कराते तथापि परिणाम की विशुद्धिसे साधुको खमासमण देते हुये निर्जराका लाभ होता है, इससे विवेकी श्रावकको उनकी सेवा करनी चाहिये।

फिर अपनी बुद्धिके अनुसार पूर्व सीखे हुये दिन कृत्यादिक श्रावकविधि, उपदेशमाला, कर्मग्रंथादिक ग्रंथोंका परावर्तन स्वाध्याय करे। तद्रूप शीलांगादि रथ, नवकार के वलय गिनने आदि चित्तमें एकाग्रता की वृद्धिके लिये उनका परावर्तन करे, शीलांग रथका विचार नीचेकी गाथासे जान लेना चाहिये।

करणे जोए संन्ना। इंदिअ भूमाइ समण धम्मोअ॥
सीलंग सहस्साणं। अठ्ठारगस्स निप्पत्ति॥ १॥

करन याने न करना, न कराना, न अनुमोदन करना, योग याने मनसे वचनसे कायसे, संज्ञा याने आहार भय, मैथुन, परिग्रह, इन चार संज्ञाओंसे, इंद्रिय—याने पांचों इंद्रियोंसे, भूत याने पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पति, दो इंद्रिय, तेइंद्रि, चौरेंद्रि, और अजीवसे, श्रमणधर्म याने, क्षमा, आर्जवता, मार्दवता, निर्लोभता, तप, संयम, सत्य, शौच, अकिंचनता से शीलांगके अठारह हजार भांगे होते हैं। और उसे रथ कहते हैं। उसका पाठ इस प्रकार है:—

जे नो करंति मणसा। निज्जिअ आहार सन्नि सोइंदि॥
पुढवीकायारंभे। खंतिजुआ ते मुणी वंदे॥ १॥

आहार, संज्ञा, और श्रोतेन्द्रिय जीतने वाला मुनिराज मनसे भी पृथ्वीकाय का आरंभ नहीं करता, ऐसे क्षमा गुण युक्त मुनिको वन्दन करना। इत्यादि अठारह हजार गाथा रचनेका स्पष्ट विचार पत्रकसे समझ लेना

न हणेइ सयं साहु। मणसा आहार संन्न संवुडओ॥
सोइंदिअ संवरणा। पुढवि जिरा खंति संपुन्नो॥ १॥

आहार संज्ञा संवरित और क्षमा संयुक्त श्रोत्रेन्द्रिय का संवर करने वाला साधु स्वयं मनसे भी पृथ्वी कायके जीवोंको नहीं हणता, इत्यादि। इसी प्रकार सामाचारी रथि, क्षामण रथि, नियमरथि, आलोचना रथि, तपोरथि, संसाररथि, धर्मरथि, संयमरथि, वगैरह के पाठ भी जान लेना। यहां पर ग्रंथवृद्धिके भयसे नहीं लिखा गया।

नवकार का वलक गिननेमें पांच पदको आश्रय करके एक पूर्वानुपुर्वी (पहले पदसे पांचवें पद तक जो अनुक्रमसे गिना जाता है) एक पश्चानुपूर्वी (पांचवें पदसे पहिले पद तक पीछे गिनना) नव पदको

आश्रित करके अनानुपूर्वीके तीन लाख, बासठ हजार, आठ सौ अठोत्तर गणना होती है। इसकी रचना करनेका स्पष्टतया विचार पूज्य श्री जिनकीर्ति सूरिपादोपज्ञ (स्वयं रचित) सटीक श्री पंच परमेष्ठी स्तवन से जान लेना। इस प्रकार नवकार गिननेसे इस लोकमें शाकिनी, व्यंतर वैरी, गृह, और महारोगादि तत्काल निवृत होते है और परलोक संबन्धी फल अनन्त कर्मक्षयादिक होता है। इसलिये कहा है कि:—

छह मासिक, वार्षिक, तीव्र तप करनेसे जितने पाप क्षय होते हैं उतने पाप नवकार की अनानुपूर्वी गिननेसे एक अर्द्ध क्षणमें दूर होते हैं। शीलांग रथादिक यदि मन, वचन कायकी एकाग्रता से गिने जांय तो तीनों प्रकारका ध्यान होता है। इसलिये आगममे भी कहा है कि:—

"भंगीअ सुअं गुणंतो वट्टइ तीहैये विभ्भाणमिति"

भांगेवाले याने भेद कल्पना करके श्रुतको (नवकार को) गिने तो तीनो प्रकारके ध्यानमें वर्तता है। इस तरह स्वाध्याय करनेसे अपने आपका और दूसरेका कर्मक्षय होता हैं। धर्मदा श्रावकके समान प्रतिबोधादि अनेक गुणकी प्राप्ति होती है।

"स्वाध्याय ध्यान पर धर्मदासका दृष्टान्त"

धर्मदास नामक श्रावक प्रति दिन संध्याका प्रतिक्रमण करके स्वाध्याय किया करता था। एक दिन उसने अपने पिता सुश्रावक को कि जिसकी प्रकृति क्रोधिष्ट थी उसे क्रोध परित्याग का उपदेश किया; इससे वह अधिक कोपायमान हुआ और हाथमें एक बड़ी लकड़ी लेकर उसे मारनेके लिये दौड़ा। परन्तु रात्रिका समय था इसलिये अंधेरेमें उसका घरके १ थंभेसे मस्तक टकराया जिससे वह तत्काल ही मृत्युके शरण हुवा और सर्पतया उत्पन्न हुआ। एक समय वह काला सर्प पुत्रको डसनेके लिये आता है उस वक्त—

तिव्वंपि पुव्वकोडी। कयंपि सुकयं मुहुत्तमित्तेण ॥
कोहग्गी हओ हणिउ। हहा हवइ भवदुगेविदुही ॥ १ ॥

"क्रोधरूप अग्निसे प्रहित मनुष्य पूर्व क्रोड़ वर्षोंके किये हुये सुकृतको दो घड़ी मात्रमें भस्म कर डालता है और वह दोनों भवमे दुःखित होता है।" इस प्रकारसे स्वाध्याय करते हुये धर्मदास के मुखसे निकलते हुये अभिप्राय को सुनकर तत्काल ही उस सर्पको जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, इससे वैरभाव छोड़ कर अनशन द्वारा मृत्यु पाकर सौधर्म देवलोक मे देवतया उत्पन्न हुआ। फिर वह अपने पुत्रको सब कार्यकारी हुआ। धर्मदास श्रावक भी एक समय स्वाध्याय करते हुये ध्यानमें लीन हो गया जिससे उसने गृहस्थ अवस्था में ही केवलज्ञान प्राप्त किया।

इस लिये स्वाध्याय करना बहुत लाभदायक है। फिर सामायिक पूर्ण करके घर जाके सम्यक्त्व मूल देशविरत्यादि रूप सब कार्योंमें सर्व शक्तिसे यतना करने रूप, सर्वथा अर्हंत चैत्य और साधर्मिक सिवाय अन्य स्थानोंको एवं कुसंसर्ग को वर्जकर नवकार गिनना।

स्वजनोंको त्रिकाल चैत्य वंदना पूजा प्रत्याख्यानादिक अभिग्रह धारण रूप, यथाशक्ति सात क्षेत्रोंमें

अपने द्रव्यको खर्च करने रूप यथायोग्य धर्मका उपदेश करता रहे। तथा स्त्री पुत्र मित्र भाई नौकर भगिनी लड़केकी बहुवें पुत्री पौत्र पौत्री चाचा भतीजा मुनीम वगैरह स्वजनों को उपदेश करता रहे। इतना विशेष समझना। दिनकृत्यमें भी कहा है कि:—

सव्वनुणा पणीअन्तु। जई धम्मं नाव गाहए॥ इहलोए परलोएअ तेसिं दोसेण लिम्पई॥ १॥
जेण लोगट्ठिइ एसा। जो चोरभत्त दायगो॥ लिप्पइ तस्स दोसेण। एवं धम्मे वि आणह॥ २॥
तम्माह नाय तत्तेणं। सद्धेणं तु दिणे दिणे॥ दव्वओ भावओ चेव। कायव्व मणुसासणं॥३॥

सर्वज्ञ वीतरागने कहा है कि यदि स्वजनोंको धर्ममें न जोडे तो इस लोकमें और परलोकमें उनके किये हुये पापसे स्वयं लेपित होता है। इस लिये इस लोककी स्थिति ही ऐसी है कि जो मनुष्य चोरको खाने पीनेके लिये अन्नपानी देता है या उसे आश्रय देता है वह उसके किये हुये पाप रूप कीचड़में सनता है। धर्ममें भी ऐसा ही समझ लेना। इस लिये जिसने धर्मतत्व को अच्छी तरह जान लिया है ऐसे श्रावक को दिनोंदिन द्रव्यसे और भावसे स्वजन लोगोंकी अनुशासना करते रहना। द्रव्यसे अनुशासना याने पोषण करने योग्य हो उसका पोषण करना। उस न्यायसे पुत्र, स्त्री, दोहित्रादिकों को यथा योग्य वस्त्रादिक देना और भावसे उन्हें धर्ममें जोड़ना। अनुशासना याने वे सुखी हैं या दुखी इस बातका ध्यान रखना। अन्य नीतिशास्त्रों में भी कहा है:—

राज्ञि राष्ट्रकृतं पापं। राज्ञ पापं पुरोहिते॥ भर्तरि स्त्रीकृतं पापं। शिष्यपापं गुरावपि॥ १॥

यदि शिक्षा न दे तो देशके लोगोंका पाप राजा पर पड़ता है, राजाका पाप पुरोहित—राजगुरू पर पड़ता है, स्त्रीका किया हुआ पाप पति पर पड़ता है; और शिष्यका पाप गुरु पर पड़ता है।

स्त्री पुत्रादिक घरके कामकाज मे फुरसत न मिलनेसे और चपलता के कारण या प्रमाद बाहुल्यसे गुरुके पास आकर धर्म नहीं सुन सकता तथापि स्वयं प्रति दिन उन्हें उपदेश करता रहे तो इससे वे भी धर्मके योग्य होते हैं और धर्ममें प्रवर्तमान होते हैं,

धन्यपुर में रहनेवाला धनासेठ गुरुके उपदेश से सुश्रावक हुआ था। वह प्रति दिन संध्याके समय अपनी स्त्री और अपने चार पुत्रोंको उपदेश दिया करता था। अनुक्रम से स्त्री और तीन पुत्रोंको बोध प्राप्त हुआ, परन्तु चौथा पुत्र नास्तिक होनेसे पुण्य पाप कहाँ है? इस प्रकार बोलता हुआ बोधको प्राप्त नहीं होता इससे धनासेठ उसे बोधदेने की चिन्तामें रहता था। एक दिन उसके पड़ोसमें रहने वाली किसी एक वृद्धा सुश्राविका को अन्त समय धनासेठ ने निर्यामना करा कर बोध दिया और कहा कि यदि तू देव बने तो मेरे पुत्रको बोध देना। वह मृत्यु पाकर सौधर्म देवलोक में देवी उत्पन्न हुई। उसने अपनी ऋद्धि दिखला कर धनासेठ के पुत्रको प्रतिबोधित किया। इसी प्रकार गृहस्थको भी अपने स्त्री पुत्रको प्रतिबोध देना चाहिये। कदाचित् वे बोध न पावें तो उसे कुछ दोष नहीं लगता। इसलिये कहा है कि:—

न भवति धर्मः श्रोतुः। सर्वस्य कांततो हितः श्रवणाद्॥
ब्रुवतोनिग्रह बुद्धया। वक्तुस्त्वेकांततो भवति॥ १॥

धर्म सुननेवाले सभी मनुष्योंको सुनने मात्रसे निश्चयसे हित नहीं होता, परन्तु उपकार की बुद्धिसे कथन किया होनेके कारण वक्ताको तो एकान्त लाभ होता है। यह नवमी गाथाका अर्थ समाप्त हुआ।

पायं अबंभ विरओ। समए अप्पं करेइ तो निद्दं॥
निद्दंवरमेथी तणु। असुइहोई विचितिज्जा॥ १०॥

इसलिये धर्म देशना किये बाद समय पर याने एक पहर रात्रि व्यतीत हुये बाद अर्ध रात्रि वगैरह के समय सानुकूल शयन स्थानमें जाकर विधि पूर्वक अल्प निद्रा करे। परन्तु मैथुनादि से विराम पाकर सोवे। जो गृहस्थ यावज्जीव ब्रह्मचर्य पालन करनेके लिये अशक्त हो उसे भी पर्व तिथि आदि बहुतसे दिन ब्रह्मचारी ही रहना चाहिये। नवीन यौवनावस्था हो तथापि ब्रह्मचर्य पालना महा लाभकारी है, इस लिये महाभारत में भी कहा है कि:—

एकरात्र्युषितस्यापि। या गतिर्ब्रह्मचारिणः॥
न सा क्रतुसहस्रेण। वक्तुं शक्या युधिष्ठिर॥ १॥

जो गति एक रात्रि ब्रह्मचर्य पालन करने वालेकी होती है हे युधिष्ठिर! वैसी एक हजार यज्ञ करने से भी नहीं कही जा सकती। (इसलिये शील पालना योग्य है)

यहां पर निद्रा' यह पद विशेष्य है और अल्प यह विशेषण है। जो विशेषण सहित है उसमें विधि और निषेध इन दोनों विशेषणों का संक्रमण हुआ। इस न्यायसे यहां पर अल्पत्व को विधेय करना; परन्तु निद्राको विधेय न करना। दर्शनावरणी कर्मके उदयसे जहां स्वतः सिद्धता से अप्राप्त अर्थ हो वहां शास्त्र ही अर्थवान् होता है यह बात प्रथम ही कही गई है। जो अधिक निद्रालु होता है वह सचमुच ही दोनों भवके कृत्यों से भ्रष्ट होता है और उसे तस्कर, वैरी, धूर्त, दुर्जनादिकों से अकस्मात् दुःख भी आ पड़ता है एवं अल्प निद्रा वाला महिमान्त गिना जाता है। इस लिये कहा है—

थोवाहारो थोव भणिओअ। जो होइ थोव निद्दोअ॥
थोवोवहि उवगरणो। तस्स हु देवावि पणमन्ति॥ १॥

कम आहार, कम बोलना, अल्प निद्रा, और जिसे कम उपधि उपकरण हों उससे देवता भी नमता हुआ रहता है। निद्रा करने का विधि नीति शास्त्रके अनुसार नीचे मुजब बतलाया है।

"निद्रा विधि"

खट्वां जीवाकुलां ह्रस्वां। भग्नकाष्ठां मलीमसां॥
प्रतिपादान्वितां वन्हि। दारुजातां च संत्यजेत्॥ १॥

जिसमें अधिक खटमल, हों, जो छोटी हो, जिसकी बही और पाये टूटे हुये हों, जो मलीन हो, जिसमें अधिक पाये जोड़े हुये हों, जिसके पाये या बही जले हुये काष्ठ के हों ऐसी चारपाई पर सोना न चाहिये।

शयनासयनयोः काष्ठ। माचतुर्योगतो शुभं ॥ पंचादिकाष्ठ योगे तु। नाशः स्वस्य कुलस्य च ॥ २ ॥

शय्या, तथा आसन, (चौकी, कुरसी, बैंच वगैरह) के काष्ठमें चार भागसे जोड़ा हुआ हो तो अच्छा समझना (चार जातिके) पंचादि योग किया हुआ हो तो कुलका नाश करता है।

पूज्योर्ध्वस्थोननार्द्रांह्रि। न चोत्तरापराशिराः ॥
नानुवंशनपादांत। नागदंतः स्वयं पुमान् ॥ ३ ॥

पूजनीय से ऊपर, भीने पैरोंसे, उत्तर या पश्चिम दिशामें मस्तक करके, बंसरी के समान लम्बा (पैरों तक वस्त्र ढक कर परन्तु नंगा) हाथीके दांतके समान वक्र, शयन न करे।

देवता धाम्नि वल्मिके। भूरुहाणां तलेपि वा ॥
तथा प्रेतवने चैव। सुप्यान्नापि विदिक् शिराः ॥ ४ ॥

किसी भी देव मन्दिर में, वल्मिक पर—बम्बी पर, एवं वृक्षके तले, श्मशान भूमिमे तथा विदिशा में मस्तक करके शयन न करना चाहिये।

निरोधभगमाधाय। परिज्ञाय तदास्पदं ॥ विसृश्यजलमासन्न। कृत्वा द्वार नियंत्रणं ॥ ५ ॥
इष्टदेवनमस्कार। नाष्टऽपमृतिभीः शुचिः ॥ रक्षामन्त्रपवित्रायां। शय्यां पृथुताम्भृषी ॥ ६ ॥
सुसंवृत्त परीधान। सर्वाहार विवर्जितः ॥ वामपार्श्वे तु कुर्वीत। निद्रां भद्राभिलाषुकः ॥ ७ ॥

लघु शंका निवारण करके, लघु शंका करने का स्थान जान कर, विचार करके जलपात्र पासमें रख कर, द्वार बन्द करके, जिससे अपमृत्यु न हो ऐसे इष्टदेव को नमस्कार करके, पवित्र होकर, रक्षा मन्त्रसे पवित्र हो चौड़ी विशाल शय्यामें दृढ़तया वस्त्र (कटि वस्त्र) पहन कर सर्व प्रकार के आहार से रहित हो बांये अंगको दबा कर अपना कल्याण इच्छने वाले मनुष्य को निद्रा करनी चाहिये।

क्रोधभीशोकमद्यस्त्री। भारयानाध्वकर्मभिः ॥
परिक्लान्ते रतिसार। श्वासहिक्कादिरोगिभिः ॥ ८ ॥
वृद्धबालाबलक्षीणैः। तृट् शूलक्षत विव्हलैः ॥
अजीर्णप्रमुखैः कार्यो। दिवास्वापोपि कर्हिचित् ॥ ९ ॥

क्रोधसे, शोकसे, भयसे, मदिरा से, स्त्रीसे, भारसे, वाहन से, मार्ग चलने वगैरह कार्य करने से, जो खेद पाया हुआ हो उसे, अतिसार, श्वास, हिक्कादिक रोगी पुरुष को, वृद्ध, बाल, बल रहित और जो क्षय रोगी हो उसे, तृषा, शूल, घायल जो क्षत वगैरह से विघुरित हो उसे और अजीर्ण रोग वालेको भी किसी समय दिनको सोना योग्य है।

वातोपचयरौक्षाभ्यां। रजन्याश्चाल्प भावतः ॥
दिवास्वापः सुखी ग्रीष्मे। सोन्यदाश्लेष्मपित्तकृद् ॥ १० ॥

जिसे वायुकी वृद्धि हुई हो या रूक्षता के कारण रातको कम निद्रा आती हो उसे दिनमें सोना योग्य है, इससे उसे उष्ण कालमें सुख होता है, परन्तु दूसरों को श्लेष्म और पित्त होता है।

अत्याशक्त्यानवसरे। निद्रा नैव प्रशस्यते ॥
एषा सौख्यायुषी काल। रात्रिवत् प्रणिहन्ति यत् ॥ ११ ॥

निद्रामें अत्यन्त आसक्त होकर बे वखत निद्रा करना प्रशंसनीय नहीं है। असमय की निद्रा सुख और आयुष्य को काल रात्रिके समान हानि कारक है।

प्राकशिरः शयने विद्या। धनलाभश्च दक्षिणे ॥ पश्चिमे प्रबला चिन्ता। मृत्युर्हानिस्तथोत्तरे ॥ १२ ॥

पूर्व दिशामें सिराना करके सोने से विद्या प्राप्त होती है, दक्षिण में सिराहना करने से धनका लाभ होता है। पश्चिम मे सिराहना करने से चिन्ता होती है और उत्तर में सिराहाना करने से हानि, तथा मृत्यु होती है।

आगम में इस प्रकार का विधि है कि शयन करने से पहले चैत वन्दनादिक करके, देव गुरुको नमस्कार, चोवीहारादि प्रत्याख्यान, गंठसहि प्रत्याख्यान और समस्त व्रतोंको संक्षेप करने रूप देशावगाशिक व्रत अंगीकार करे और फिर सोवे। इसलिये श्रावकादि के कृत्यमें कहा है कि:—

पाणीवह मूसा दत्तं। मेहुण दिण लाभणथ्थ दंडं च ॥
अंगीकयं च मुत्तुं। सव्वं उवभोग परिभोगं ॥ १ ॥
गिहमज्जं मुत्तुणं। दिशिगमणं मुत्तु मसगजुआई ॥
वयकाएहिं न करे। न कारवे गठिसहिएण ॥ २ ॥

जीव हिंसा, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, दिनमें होने वाला लाभ, अनर्थदंड, जितना भोगोपभोग में परिमाण किया हो उसे छोड़ कर, घरमें रही हुई जो जो वस्तुयें हैं उन्हें मन बिना वचन, कायसे न करूं न कराऊं, और दिशामें गमन करने का, डांस, मच्छर, जूं, इत्यादि जीवोंको वर्ज कर, दूसरे जीवोंको मारने का काया, वचन से न करूं और न कराऊं, तथा गंठ सहिके प्रत्याख्यान सहित वर्तना, इस प्रकार का देशावगाशिक व्रत अंगीकार करना। यह बड़े मुनियोंके समान महान फल दायक है, क्योंकि उसमें निःसंगता होती है, इसलिये विशेष फलकी इच्छा वाले मनुष्य को अंगीकृत व्रतका निर्वाह करना चाहिये। अंगीकृत व्रतका निर्वाह करने में असमर्थ मनुष्य को, 'अरणथ्थ णा भोगेणं' इत्यादिक चार आगार खुले रहते हैं। इसलिये घरमें अग्नि लगने वगैरह के विकट संकट आपड़ने पर वह लिया हुआ नियम छोड़ने पर भी व्रतका भंग नहीं होता।

तथा चार शरण अंगीकार करना, सर्व जीव राशिको क्षमापना करना, अठारह पाप स्थानक को वुसराना, पापकी गर्हा करना, और सुकृतकी अनुमोदना करना चाहिये।

जइमे हुज्ज पमाओ। इमस्स देहस्स इमाइ रयणीए ॥
आहारमुवहि देहं। सव्वं तिविहेण वोसरिअं ॥ १ ॥

आजकी रात्रिमे इस देहका मुझे प्रमाद हो याने मृत्यु हो जाय तो मैं आहार उपधि (धर्मोपकरण) और देहको त्रिविध, त्रिविध करके वोसराता हूं।

नवकार को उच्चार करके इस गाथाको तीन दफा पढ़कर सागारी अनशन अंगीकार करना, शयन करते समय पंच परमेष्ठि नमस्कार का स्मरण करना और शय्यामें एकला ही शयन करना; परन्तु स्त्रीको साथ लेकर न सोना, क्योंकि स्त्रीको साथ लेकर सोनेसे निरन्तर के अभ्यास से विषय प्रसंगका प्राबल्य होता है। इस लिये शरीर जागृत होनेसे मनुष्य को विषय की वासना बाधा करती है। अतः कहा है किः—

यथाग्नि संन्निधानेन। लाक्षाद्रव्यं विलीयते॥
धीरोपि कृशकायोपि। तथा स्त्री सन्निधो नरः॥ १॥

जैसे अग्निके पास रहनेसे लाख पिघल जाता है, वैसे ही चाहे जैसा मनुष्य स्त्री पास होनेसे कामका वांच्छा करता है।

मनुष्य जिस वासनासे शयन करता है वह उस वासना सहित ही पाता है, जब तक जागृत न हो (विषय वासनासे सोया हो तो वह जब तक जागृत न हो तब तक विषय वासनामें ही गिना जाता है) ऐसा वीतरागका उपदेश है। इस कारण सर्वथा उपशान्त मोह होकर धर्म वैराग्य भावनासे—अनित्य भावनासे भावित होकर निद्रा करना, जिससे स्वप्न दुःस्वप्नादिक आते हुये रुक कर धर्ममय स्वप्न वगैरह प्राप्त होसकें। इस तरह निःसंगतादि आत्मकतया आपत्तियों का बाहुल्य है। आयुष्य सोपक्रम है, कर्मकी गति विचित्र है, यदि इत्यादि जान कर सोया हो तो पराधीनता से उसकी आयुष्य की परिसमाप्ति हो जाय तथापि वह शुभगति का ही पात्र होता है, क्योंकि अन्त समय जैसी मति होती है वैसी ही गति होती है। कपटी साधु के विनय रत्न द्वारा मृत्युको प्राप्त हुये पोषधमें रहे हुये उदाई राजाके समान सुगति गामी होता है, उदाई राजा विधिपूर्वक होकर सोया था तो उसकी सद्गति हुई, वैसे ही दूसरे भी विधियुक्त शयन करें तो उससे सद्गति प्राप्त होती है। अब उत्तरार्ध पदकी व्याख्या बतलाते हैं।

फिर रात्रि व्यतीत होनेपर निद्रा गये बाद अनादि भवोंके अभ्यास रसके उल्हसित होनेसे दुःसह काम को जीतनेके लिये स्त्रीके शरीरकी अशुचिता वगैरहका विचार करे। आदि शब्दसे जम्बूस्वामी स्थूल भद्रादिक महर्षियों तथा सुदर्शनादिक सुश्रावकों की दुष्पल्य शील पालन की एकाग्रता को, कषायादि दोषोंके विजयके उपायको, भवस्थिति की अत्यन्त दुःखद दशाको तथा धर्म सम्बधी मनोरथों को विचारे, उनमें स्त्रीके शरीरकी अपवित्रता, दुगंच्छनीयता, बगैरह सर्व प्रतीत ही हैं और वह पूज्य श्री मुनि सुन्दर सूरिजीके अध्यात्मकल्पद्रु म ग्रन्थमें बतलाया भी है—

चार्मास्थिमज्जांत्रवसास्त्र मांसा। मेध्याद्यशुच्य स्थिरपुद्गलानां॥
स्त्रीदेहपिंडाकृति संस्थितेषु। स्कंधेषु किं पश्यसि रम्यमात्मन्॥ १॥

हे चेतन! चमड़ा, हाड़, मज्जा, नसें, आंतें, रुधिर, माँस, और विष्टा आदि अशुचि और अस्थिर पुद्गलोंके स्त्रीके शरीर संबन्धी पिण्डकी आकृतिमें रही हुई तू कौनसी सुन्दरता देखता है।

विलोक्य दूरस्थममेध्यमल्पं। जुगुप्ससे मोटितनाशिकस्त्वं॥

मूतेषु तैरेवविमूढयोषा। वपुष्युत तत्किं कुरुषेऽभिलाषं ॥ २ ॥

दूर पड़े हुये अमेध्य (विष्टा वगैरह अपवित्र पदार्थ) को देखकर नासिका चढ़ाकर तू थू थूकार करता है तब फिर हे मूढ़ ! उनसे ही भरे हुये इस स्त्री शरीरमें तू क्यों अभिलाषा करता है ?

अमेध्यभस्त्रावहुरन्ध्रनिर्य । न्मलाविलोद्यत्कृमिजालकीर्णा ॥
चापल्यमायानृतवंचिका स्त्री । संस्कार मोहान्नरकाय भुक्ता ॥ ३ ॥

विष्टेकी कोथली, बहुतसे छिद्रोंमेंसे निकलते हुये मैलसे मलिन, मलिनतासे उत्पन्न हुये उछलते हुये कीड़ोंके समुदाय से भरी हुई, चपलता और माया मृषावाद से सर्व प्राणियोंको ठगनेवाली स्त्रीके ऊपरी दिखावसे मोहित हो यदि उसे भोगना चाहता है तो अवश्य वह तुझे नरकका कारण हो पड़ेगी। (ऐसी स्त्री भोगनेसे क्या फायदा ?)

संकल्प योनि याने मनमें विकार उत्पन्न होनेसे ही जिसकी उत्पत्ति होती है, ऐसे तीन लोककी विडम्बना करनेवाले कामदेव को उसके संकल्प का-विचारका परित्याग करनेसे वह सुख पूर्वक जीता जा सकता है। इसपर नवीन विवाहित श्रीमंत गृहस्थोंकी आठ कन्याओं के प्रतिबोधक, निन्यानवे करोड़ सुवर्ण मुद्राओं का परित्याग करनेवाले श्री जम्बूस्वामी का, साढे बारह करोड़ सुवर्ण मुद्रायें कोषा नामक वेश्याके घर पर रह कर विलासमें उड़ाने वाले और तत्काल संयम ग्रहण कर उसीके घर पर आकर चातुर्मास रहनेवाले श्रीस्थूलभद्रका और अभया नामक रानी द्वारा किये हुये विविध प्रकारके अनुकूल तथा प्रतिकूल उपसर्गों को सहन करते हुये लेशमात्र मनसे भी क्षोभायमान न होनेवाले सुदर्शन सेठ वगैरहके दृष्टान्त बहुत ही प्रसिद्ध हैं।

"कषायादि पर विजय"

कषायादि दोषों पर विजय प्राप्त करनेका यही उपाय है कि जो दोष हो उसके प्रतिपक्षी का सेवन करना। जैसे कि १ क्रोध—क्षमासे जीता जा सकता है, २ मान—मार्दवसे जीता जा सकता है, ३ माया—आर्जवसे जीती जासकती है, ४ लोभ—संतोषसे जीता जा सकता है। ५ राग—वैराग्य से जीता जा सकता है, ६ द्वेष—मैत्रीसे जीता जा सकता है, ७ मोह—विवेकसे जीता जा सकता है, ८ काम—स्त्री शरीरको अशुचि भावनासे जीता जा सकता है, ९ मत्सर दूसरेकी सम्पदा के उत्कर्ष के विषयमें भी चित्तको रोकनेसे जीता जा सकता है, १० विषय-मनके संवरसे जीते जा सकते हैं, ११ अशुभ-मन, वचन, काया, तीन गुप्तिसे जीता जा सकता है, १२ प्रमाद—अप्रमादसे जीता जा सकता है, और १३ अविरती व्रतसे जीती जा सकती है। इस प्रकार तमाम दोष सुख पूर्वक जीते जा सकते हैं। यह न समझना चाहिये कि शेषनाग के मस्तकमें रही हुई मणि ग्रहण करनेके समान या अमृत पानादिके उपदेशके समान यह अनुष्ठान अशक्य है। बहुतसे मुनिराज उन २ दोषोंके जीतनेसे गुणोंकी संपदाको प्राप्त हुये हैं इस पर दृढ़ प्रहारी, चिलाति पुत्र रोहिणीय चोर वगैरह के दृष्टान्त भी प्रसिद्ध ही हैं। इस लिये कहा भी है—

गता ये पूज्यत्वं प्रकृति पुरुषा एव खलुते ॥ जना दोषत्यागे जनयत समुत्साहमतुलं ॥

न साधूनां क्षेत्रं न च भवति नैसर्गिकमिदं ॥ गुणान् यो यो धत्ते स स भवति साधुर्भजतु तान् ॥

जो पुरुष स्वभाव से ही पूज्यताको प्राप्त होते हैं वे दोषोंके त्यागने में ही अपना अतुल उत्साह रखते है, क्योंकि साधुता अंगीकार करनेमें कोई जुदा क्षेत्र नहीं। तथा कोई ऐसा अमुक स्वभाव भी नहीं है कि जिससे साधु हो सके। परन्तु जो गुणोंको धारण करता है वही साधु होता है। इस लिये ऐसे गुणोंको उपार्जन करनेमें उद्यम करना चाहिये।

हंहो स्निग्धसखे विवेक बहुभिः प्राप्तोसि पुण्यैर्मया ॥
गंतव्यं कतिचिद्दिनानि भवता नास्मत्सकाशात्क्वचित् ॥
त्वत्संगेन करोमि जन्म मरणोच्छेदं गृहीतत्वरः ॥
को जानासि पुनस्त्वया सहमम स्याद्वा न वा संगमः ॥ २ ॥

हे स्नेहालु मित्र, विवेक! मैं तुझे बड़े पुण्यसे पा सका हूं। इसलिये अब तुझे मेरे पाससे कितने एक दिन तक अन्य कहीं भी नहीं जाना चाहिये। क्योंकि तेरे समागम से मैं सत्वर ही जन्म मरणका उच्छेद कर डालता हूं। तथा किसे मालूम है कि फिरसे तेरे साथ मेरा मिलाप होगा या नहीं?

गुणेषु यत्नसाध्येषु। यत्ने चात्मनि संस्थिते ॥
अन्योपि गुणिनां धुर्यः। इति जीवन् सहेतकः ॥ ३ ॥

उद्यम करनेसे अनेक गुण प्राप्त किये जा सकते हैं और वैसा उद्यम करनेके लिये आत्मा तैयार है। तथा गुणोंको प्राप्त किये हुए इस जगतमें अन्य पुरुषोंके देखते हुए भी हे चेतन! तू उन्हें उपार्जन करनेके लिए उद्यम क्यों नहीं करता?

गौरवाय गुणा एव। न तु ज्ञातेय डम्बरः ॥ वानेयं गृह्यते पुष्पं मंगजस्त्यज्यते मलः ॥ ४ ॥

गुण ही बड़ाईके लिए होते हैं परन्तु जातिका आडम्बर बड़ाईके लिए नहीं होता। क्योंकि वनमें उत्पन्न हुआ पुष्प ग्रहण किया जाता है परन्तु शरीरसे उत्पन्न हुआ मैल त्याग दिया जाता है।

गुणैरेव महत्वं स्या। न्नांगेन वयसापि वा ॥ दलेषु केतकीनां हि। लघीयस्तु सुगंधिता ॥ २ ॥

गुणोंसे ही बड़ाई होती है; शरीर या वयसे बड़ाई नहीं होती। जैसे कि केतकीके छोटे पत्ते भी सुगंधता के कारण बड़ाईको प्राप्त होते हैं।

कषायादिकी उत्पत्तिके निमित्त द्रव्य क्षेत्रादिक वस्तुके परित्याग से उस उस दोषका भी परित्याग होता है। कहा है कि:—

तं वथ्थु मुत्तव्वं। जंपइ उप्पज्जए कसायग्गी ॥ तं वथ्थु घेतव्वं। जथ्थो वसमो कसायाणं ॥ १ ॥

वह वस्तु छोड़ देना कि जिससे कषाय रूप अग्नि उत्पन्न होती हो, वह वस्तु ग्रहण करना कि जिससे कषायका उपशमन होता हो।

सुना जाता है कि चंडरुद्राचार्य प्रकृतिसे क्रोधी थे, वे क्रोधकी उत्पत्तिको त्यागने के लिये शिष्यादिकसे जुदे ही रहते थे। भवकी स्थिति अति गहन है, चारों गतिमें भी प्रायः बड़ा दुख अनुभव किया जाता

है, इसलिये उसका विचार करना चाहिये। उसमें भी नारकी और तिर्यंचमें प्रबल दुःख है सो प्रतीत ही है अतः कहा भी है कि:—

"नरकादि दुःखस्वरूप"

सत्तसु खित्तज अणा। अन्नुन्नकयावि पहरणेहि विणा॥
पहरणकयावि पंचसु। तेसु परमाहम्मिअ कयावि॥ १॥

सातो नरकोंमें शस्त्र बिना, अन्योन्य कृत, क्षेत्रज-क्षेत्रके स्वभावसे ही उत्पन्न हुई वेदनायें हैं। तथा पहलीसे लेकर पांचवी नरक तक अन्योन्य शस्त्र कृत वेदनायें हैं, और पहलीसे तीसरी नरक तक परमाधामियोंकी का हुई वेदनायें हैं।

अच्छि निमीलण मित्तं। नत्थिसुहं दुःखमेव अणुवद्धं॥
नरए नेरइआणं। अहोनिसं पच्चमाणाणं॥ २॥

जिन्होंने पूर्व भवमें मात्र दुःखका ही अनुबन्ध किया है ऐसे नारकीके जीवोंको रात दिन दुःखमें संतप्त रहे हुये नरकमें आंख मीच कर उघाड़ने के समय जितना भी सुख नही मिलता।

जं नरए नेरइआ। दुःखं पावंति गोयमा तिक्खं॥
त पुण निगोअ मज्झे। अणंत गुणीअं मुणेअव्वं॥ ३॥

नारक जीव नरकमे जो तीव्र दुःख भोगते हैं, हे गौतम! उनसे भी अनंत गुणा दुःख निगोदमें रहे हुये निगोदिये जीव भोगते हैं।

'तिरआ कसय कुसारा' इत्यादिक गाथासे तिर्यंच चाबुक वगैरह की परवशतामे मार खाते हुये दुःख भोगते हैं ऐसा समझ लेना। मनुष्यमें भी कितने एक गर्भका, जन्म, जरा, मरण, विविध प्रकारकी व्याधि दुःखादिक उपद्रव द्वारा दुखिया ही हैं। देवलोक में भी चवना, दास होकर रहना, दूसरेसे पराभवित होना, दूसरेकी ऋद्धि देख कर ईर्षासे मनमें दुःखित होना वगैरह दुःखोंसे जीव दुःख ही सहता है। इसलिये कहा है कि,—

सुइहिं अग्गि वन्नहि। संभिन्नस्स निरन्तरं॥
जारिसं गोअमा दुक्खं। गब्भे अट्ठ गुणं तओ॥ १॥

अग्निके रंग समान तपाई हुई सुईका निरंतर स्पर्श करनेसे प्राणिको जो दुःख होता है हे गौतम! उससे आठ गुना अधिक दुःख गर्भमे होता है।

गब्भाहो निहरंतस्स। जोणीजंत निपीलणे॥
सयसाहस्सिअं दुक्खं। कोडा कोडि गुणं पिवा॥ २॥

गर्भसे निकलते हुये योनि रूप यंत्रसे पीडित होते गर्भसे बाहार निकलते समय गर्भसे लाख गुना दुःख होता है अथवा क्रोडा गुना भी दुःख होता है।

चारग निरोह वहबन्धरोग। धणहरणमरण वसणाई॥
मण संतावो अवयसो। विगोवणयाय माणुस्से॥ ३॥

जेलमे पड़ना, बध होना, बंधनमें पड़ना, धन हरन होना, मृत्यु होना, कष्टमें आ पड़ना, मनमें संतप्त होना, अपयश होना, अपभ्राजना होना इत्यादिक मनुष्य दुःख है।

चिन्ता संतावेहिय। दारिद्दरुआहि दुप्पउत्ताहि॥
लद्धूण विमाणुस्सं। मरंति केईसु निव्विन्ना॥ ४॥

चिन्ता सन्ताप द्वारा, दारिद्र्य रूप स्वरूप द्वारा, दुष्टाचार द्वारा मनुष्यत्व पा कर भी कितने एक दुःखमे ही मरणके शरण होते हैं।

ईर्सा विसाय मयकोहमाय। लोहेहिं एवमाईहिं॥
देवावि समभिभूआ। तेसि कत्तो सुहं नाम॥ ५॥

ईर्षा, विषाद, मद, क्रोध, माया, लोभ, इत्यादिसे देवता भी बहुत ही पीड़ित रहते हैं तब फिर उन्हें सुखलेश भी कहां है?

सावय घरंम्मि वरहुज्ज। चेड ओ नाण दंसण समेओ॥
मिच्छत्त मोहिअ मइओ। माराया चक्कवट्टीवी॥ १॥

धर्मके मनोरथ की भावना इस प्रकार करना जैसे कि शास्त्रकारोंने कहा है कि, ज्ञान, दर्शन सहित यदि श्रावकके घरमें कदाचित दास बनूं तथापि मेरे लिये ठीक है परन्तु मिथ्यात्वसे मूर्च्छित मति वाला राजा चक्रवर्ती भी न बनूं।

कइआ संविग्गाणं। गीयथ्थाणं गुरुण पय मूले।
सयणाई संगरहिओ। पवज्जं संपवज्जिस्सं॥ २॥

वैराग्यवन्त गीतार्थ गुरुके चरण कमलोंमें स्वजनादिक संघसे रहित हो मैं कब दीक्षा अंगीकार करूंगा?

भयभेरव निक्कंपो। सुसाण माईसु विहिअ उस्सगो॥
तव तणुअंगो कइआ। उत्तम चरिअं चरिस्सामि॥ ३॥

भयंकर भयसे अकंपित हो स्मशानादिक में कायोत्सर्ग करके, तपश्चर्या द्वारा शरीरको शोषित कर मैं उत्तम चारित्र कब आचरूंगा? इत्यादि धर्म भावना भावे।

"तृतीय प्रकाश" (दूसरा द्वार)

"पर्व-कृत्य"

"मूलगाथा"

पव्वेसु पोसहाई बंभ। अणारंभ तव विसेसाई॥
आसोय चित्त अट्ठाहिअ। पमुहेसु विसेसेणं॥ ११॥

पर्व याने आगममें बतलाई हुई अष्टमी चतुर्दशी आदि तिथियोंमें श्रावकको पौषध आदि व्रत लेना चाहिये। "धर्मस्य पुष्टी धत्ते इति पौषधं" धर्मकी पुष्टि कराये उसे पौषध कहते हैं। आगममें कहा है कि:—

सव्वेसु कालपव्वेसु। पसथ्थो जिणमए हवइ जोगो॥
अठ्ठमि चउदसीसुअ। निअमेए हविज्ज पोसहिओ॥ १॥

जिन शासनमे पर्वके दिन सदैव मन, वचन, कायाके योग प्रशस्त होते हैं, इससे अष्टमी चतुर्दशी के दिन श्रावकको अवश्य पोषध करना चाहिये।

मूल गाथामें आदि शब्द ग्रहण किया हुआ है इससे यदि शरीरको असुख, प्रमुख पुष्टालंबन से पोषह करनेका शक्ति न हो तो दो दफेका प्रतिक्रमण, बहुतसी सामायिक, विशेष संक्षेपरूप देशावगाशिक व्रत स्वीकारादिक करना। तथा पर्वके दिन ब्रह्मचर्य, अनारंभ, आरंभवर्जन, विशेष तप, पहले किये हुये तपकी वृद्धि, यथाशक्ति उपवासादिक तप, आदि शब्दसे स्नात्र, चैत्य परिपाटी करना, सर्वसाधु वन्दन, सुपात्र दानादि से पहले की हुई देवगुरु की पूजादिसे विशेष धर्मानुष्ठान करना। इसलिये कहा है—

जइ सव्वेसु दिणेसु। पालह किरिअं तओ हवइ लट्ठं॥
जइपुण तहा न सक्कइ तहविहु पालिज्ज पव्वदिणं॥ १॥

यदि सर्व दिनोंमें क्रिया पाली जाय तो बहुत ही अच्छा है, तथापि यदि वैसा न किया जाय तो भी पर्वके दिन तो अवश्य धर्म-करनी करो। जैसे विजयादशमी, दिवाली, अक्षयतृतीया, वगैरह लौकिक पर्वमें लोग भोजन वस्त्रादिक में विशेष उद्यम करते हैं, वैसे ही धार्मिक पर्वदिनों में भी अवश्य प्रवर्त्तना। अन्य दर्शनी लोग भी एकादशी, अमावस्यादिक पर्वमें कितने एक आरंभ वर्जन उपवासादिक और संक्रांति ग्रहण वगैरह पर्वोमें, सर्व शक्तिसे महादानादिक करते हैं। इसलिये श्रावकको भी पर्वके दिन विशेषतः पालन करने चाहिये। पर्व इस प्रकार बतलाये हैं—

अठ्ठमि चउदसी पुण्णिमाय। तदहा मावसा हवइ पव्वं॥
मासंमि पव्व छक्कं। तिन्निअ पव्वाइं पक्खंमि॥ १॥

अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या, ये पर्वणी गिनी जाती हैं। इस तरह एक महीनेमें छह पर्वणी होती हैं। एक पक्षमें तीन पर्व होते हैं। तथा दूसरे प्रकारसे—

बीआ पंचमी अठ्ठमी। एगारसी चउदसी पणतिहिओ ॥
एआओस्रु अ तिहिओ। गोअम गणहारिणा भणिआ ॥ २ ॥

द्वितीया, पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, ये पांच तिथियें गौतम गणधर भगवंत ने श्रुतज्ञान के आराधन करनेकी बतलाई हैं।

बीआ दुविहे धम्मे। पंचमी नाणेसु अठ्ठमी कम्मे ॥
एगारसी अंगाणं। चउदसी चउद पुव्वाणं ॥ ३ ॥

द्वितीया की आराधना करनेसे दो प्रकारके धर्मकी प्राप्ति होती है, पंचमीकी आराधना करनेसे पांच ज्ञानकी प्राप्ति होती है, अष्टमीकी आराधना अष्टकर्म का नाश कराती है, एकादशी की आराधना एकादशांग के अर्थको प्राप्त कराती है, चतुर्दशी की आराधना चौदह पूर्वकी योग्यता देती है।

इस प्रकार एक पक्षमें उत्कृष्ट से पांच पर्वणी होती हैं। और पूर्णिमा तथा अमावस्या मिलानेसे हर एक पक्षमें छह पर्वणी होती हैं। वर्षमें अठाई, चौमासी, वगैरह अन्य भी बहुतसी पर्वणी आती हैं। उनमें यदि सर्वथा आरम्भ वर्जन न किया जा सके तथापि अल्प अल्पतर आरंभसे पर्वणीकी आराधना करना। सचित्त आहार जीवहिंसात्मक ही होनेसे महा आरम्भ गिना जाता है इससे उसका त्याग करना चाहिये। तथा मूलमें जो अनारम्भपद है उससे पर्व दिनोंमें सर्व सचित्त आहारका परित्याग करना चाहिये। क्योंकि—

आहार निमित्तेण। मच्छा गच्छंति सत्तमि पुढविं ॥
सचित्तो आहारो न खमो मणसावि पथ्थेउं ॥ १ ॥

आहार के निमित्त से तन्दुलिया मत्स्य सातवीं नरक में जाता है, इसलिये सचित्त आहार खानेकी (पर्वमें मनसे भी इच्छा न करना) मना है।

इस वचनसे मुख्यवृत्या श्रावक को सचित आहार का सर्वदा त्याग करना चाहिये। कदाचित् सर्वदा त्यागने के लिये असमर्थ हो तो उसे पर्व दिनोंमे तो अवश्य त्यागना चाहिये। इस तरह पर्व दिनोंमें स्नान, मस्तक धोना, संवारना, गूंथना, वस्त्र धोना, या रंगवाना, गाड़ी, हल चलाना, यंत्र वहन करना, दलना, खोटना, पीसना, पत्र, पुष्प, फल वगैरह तोड़ना, सचित्त खड़िया मिट्टी वर्णिकादिक मर्दन करना, कराना, धान्य वगैरह को काटना, जमीन खोदना, मकान लिपवाना, नया घर बंधवाना, वगैरह वगैरह सर्व आरम्भ समारम्भ का यथाशक्ति परित्याग करना। यदि सर्व आरम्भ का परित्याग करने से कुटुम्बका निर्वाह न होता हो तो भी गृहस्थको सचित्त आहार का त्याग अवश्य करना चाहिये। क्योंकि वह अपने स्वाधीन होने से सुख पूर्वक हो सकता है।

विशेष बीमारी के कारण यदि कदाचित् सर्व सचित्त आहार का त्याग न हो सके तथापि जिसके बिना न चल सकता हो वैसे कितने एक पदार्थ खुले रखकर शेष सर्व सचित्त पदार्थों का त्याग करे। तथा आश्विन मासकी अष्टान्हिका और चैत्री अष्टान्हिका आदिमें विशेषतः पूर्वोक्त विधिका पालन करे। यहां पर आदि शब्दसे चातुर्मास की और पर्युषणा की अष्टान्हिका में भी सचित्त का परित्याग करना समझना।

संवत्सर चउम्मिसिएसु । अट्ठाहि आसुअ तिहिसु ॥
सव्वायरेण लग्गइ । जिणवर पूआ तव गुणेसु ॥ १ ॥

१ संवत्सरीय (वार्षिक पर्वकी अष्टान्हिका) तीन चातुर्मास की अष्टान्हिका, एक चैत्र मासकी एवं एक आश्विन मासकी अठाई, और अन्य भी कितनी एक तिथियों में सर्वादरसे जिनेश्वर भगवान की पूजा तप, व्रत, प्रत्याख्यान का उद्यम करना।

एक वर्षकी छह अठाइयोंमें से चैत्री, और आश्विन मासकी ये दो अठाइयां शाश्वती हैं। इन दोनोंमें वैमानिक देवता भी नन्दीश्वरादि तीर्थ यात्रा महोत्सव करते हैं। कहा है कि:—

दो सासय जत्ताओ । तथ्थेगा होइ चित्तमासंमि ॥
अट्ठाहि आई महिश । वीआ पुण असिसणे मासे ॥ १ ॥
एआओ दोवि सासय । जत्ताओ करन्ति सव्व देवावि ॥
नंदिसरम्मि खयरा । । नराय निअएसु ठाणेसु ॥ २ ॥

दो शाश्वती यात्रायें हैं। उसमें एक तो चैत्र मासकी अठाई की और दूसरी आश्विन महीने की अठाई की। एवं इनमें देवता लोग अठाई महोत्सवादिक करते हैं। ये शाश्वति यात्रायें सब देवता करते हैं। विद्याधर भी नन्दीश्वर द्वीपकी यात्रा करते हैं, और मनुष्य अपने निजन स्थानमें यात्रा करते हैं।

तह चउमासि अतिगं । पज्जो सवणाय तहय इअ छक्कं ॥
जिण जम्म दिख्खव केवल । निव्वाणाईसु असासइआ ॥ ३ ॥

त्रिना तीन चातुर्मास की और एक पर्युषणा की ये सब मिलकर छह अठाइयां तथा तीर्थंकरों के जन्म-कल्याणक दीक्षा, कल्याणक, और निर्वाण कल्याणक की अष्टान्हिकाओं में नन्दीश्वर की यात्रा करते हैं, परन्तु ये अशाश्वती समझना। जीवाभिगम में कहा है कि:—

तथ्थ बहवे भवेणवइ वाणमंतर जोइस वेमाणिआ देवा तिहि चउमासि एहिं पज्जोसवणाएअ अट्ठा-हिआओ महापहिमाओ करिंत्तिन्ति ।

वहां बहुतसे भवनपति, वाणव्यंतरिक, ज्योतिषि, वैमानिक, देवता, तीन चातुर्मास की और एक पर्युषण की अठाइयों में महिमा करते हैं।

"तिथि-विचार"

प्रभातमें प्रत्याख्यान के समय जो तिथि हो सो ही प्रमाण होती है। क्योंकि लोकमें भी सूर्यके उद-यके अनुसार ही दिनादिका व्यवहार होता है। कहा है कि:—

चाउम्मासिअ वरिसे । परिखअ पंचट्ठमीसु नायव्वा ॥
ता ओ तिहिओ जासिं उदेइ सूरो न अण्णा ओ ॥ १ ॥

चातुर्मासी, वार्षिक, पाक्षिक, पंचमी और अष्टमी, तिथियें वही प्रमाण होती हैं कि जिनमें सूर्यका उदय होता हो। दूसरी तिथि मान्य नहीं होती है।

पुअ पञ्चखाणं। पडिक्कमणं तहय निअम गहणं च॥
जीए उदेइ सुरो। तीइतिहीएउ कायव्वं॥ २॥

पूजा, प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण, एवं नियम ग्रहण उसी तिथिमें करना कि जिसमें सूर्यका उदय हुआ हो। (उदयके समय वही तिथि सारे दिन मान्य हो सकती है)

उदयंमि ज. तिही सा। पमाणंमि अरीइ कीरमाणीए॥
आणाभंगण वथ्था। मिच्छत विराहणं पावे॥ ३॥

सूर्यके उदय समय जो तिथि हो वही प्रमाण करना। यदि ऐसा न करे तो आणाभंग होती है, अनवस्था दोष लगता है, मिथ्यात्व दोष लगता है और विराधक होता है। पाराशरी स्मृतिमें भी कहा है कि:-

आदित्योदय वेलायां। या स्तोकापि तिथिर्भवेत्।
सा संपूर्णेति मंतव्या। प्रभूता नोदयं विना॥ १॥

सूर्य उदयके समय जो थोड़ी भी तिथि हो उसे संपूर्ण मानना। यदि दूसरी तिथि अधिक समय भोगती हो परन्तु सूर्योदयके समय उसका अस्तित्व न हो तो उसे मानना। उमास्वाती वाचकके वचनका भी ऐसा प्रघोष सुना जाता है कि:—

क्षये पूर्वा तिथिः कार्या। वृद्धौ कार्या तथोत्तरा॥
श्रीवीरज्ञाननिर्वाणं। कार्य लोकानुगैरिह॥ १॥

तिथिका क्षय हो तो पहिलीका करना। (पंचमीका क्षय हो तो चौथको पंचमी मानना) यदि वृद्धि हो तो पिछली स्थिति मानना। (दो पंचमी वगैरह आवें तो दूसरी मानना) श्री महावीर स्वामीका केवल और निर्वाण कल्याणक लोकको अनुसरण करके सकल संघको करना चाहिये।

अरिहंतके पंचकल्याणक के दिन भी पर्व तिथियोंके समान मानना। जिस दिन जब दो तीन कल्याणक एक ही दिन आवें तो वह तिथि विशेष मानने योग्य समझना। सुना जाता है कि श्रीकृष्ण महाराज ने पर्वके सब दिन आराधन न कर सकनेके कारण नेमनाथ भगवान से ऐसा प्रश्न किया कि वर्षमें सबसे उत्कृष्ट आराधन करने योग्य कौनसा पर्व है? तब नेमनाथ स्वामीने कहा कि हे महाभाग! मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी श्री जिनेश्वरोंके पांच कल्याणकों से पवित्र है। इस तिथिमें पांच भरत और पांच ऐरवत क्षेत्रके कल्याणक मिलनेसे पचास कल्याणक होते हैं और यदि तीनकाल से गिना जाय तो डेड़सौ कल्याणक होते हैं। इससे कृष्ण महाराज ने मौन पौषधोपवास वगैरह करणीसे इस दिनकी आराधना की। उस दिनसे 'यथा राजा तथा प्रजा' इस न्यायसे सबने एकादशी का आराधन शुरू किया। इसी कारण यह पर्व विशेष प्रसिद्धिमें

आया है। पर्व तिथिका पालन शुभ आयुष्यके बंधनका हेतु होनेसे महा फलदायक है। इसलिये कहा है किः-

"भयवं बीअ पमुहासु पंचसुतिहीसु विहिअं धम्माणुठ्ठाणं किं फलो होई गोअमा बहु फलं होइ। जम्हा एआसु तिहिसु पाएणंजीवो पर भवाउअं समज्जिणई। तम्हा तवो विहाणाइं धम्माणुठ्ठाणं कायव्वं॥ जम्हा सुहाउअं समज्जिणई।

हे भगवन! द्वितीया प्रमुख तिथियोंमें किया हुआ धर्मका अनुष्ठान क्या फल देता है? (उत्तर) हे गौतम! बहुत फल देता है। इस लिये इन तिथियोंमें विशेषतः जीव परभव का आयु बांधता है अतः उस दिन विशेष धर्मानुष्ठान करना कि जिससे शुभ आयुष्यका बंध हो, यदि पहलेसे आयुष्य बँध गया हो तो फिर बहुतसे धर्मानुष्ठान करने पर भी वह टल नहीं सकता। जैसे कि श्रेणिक राजाने क्षायक सम्यक्त्व पाने पर भी पहले गर्भवती हिरनीको मारा था और उसका गर्भ जुदा पड़ा देखकर अपने स्कंधके सन्मुख देख (अभिमानमें आकर) अनुमोदना करनेसे तत्काल ही नरकके आयुष्य का बंध कर लिया। (फिर वह बंध न टूट सका वैसे ही आयुष्यका बंध टल नहीं सकता) पर दर्शनमें भी पर्वके दिन स्नान मैथुन आदिका निषेध किया है। विष्णुपुराणमें कहा है किः—

चतुर्दश्यष्टमी चैव। अमावास्या च पूर्णिमा॥ पर्वाण्ये तानि राजेंद्र! रविसंक्रांतिरेव च॥ १॥
तैलस्त्रीमांससंभोगी। पर्वप्वे तेषु वै पुमान्। विण् मुत्र भोजनं नाम। प्रयाति नरकं मृतः॥ २॥

हे राजेंद्र! चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस, पूर्णिमा, सूर्यसंक्रांति, इतने पर्वोंमें तैल मर्दन करके स्नान करे, स्त्री संभोग करे, मांस भोजन करे तो उस पुरुषने विष्टाका भोजन किया गिना जाता है, और वह मृत्यु पा कर नरकमें जाता है। मनुस्मृतिमें कहा है किः—

अमावास्या मष्टमीं च। पौर्णमासी चतुर्दशी॥ ब्रह्मचारी भवेन्नित्य। मप्यृतौ स्नातको द्विजः॥ १॥

अमावस्या, अष्टमी, पौर्णिमा, चतुर्दशी इतने दिनोंमें दयावन्त ब्राह्मण निरन्तर ब्रह्मचारी ही रहता है। इसलिये अवसर की पर्वतिथियों में अवश्य ही सर्व शक्तिसे धर्मकार्यों मे उद्यम करना। भोजन पानीके समान अवसर पर जो धर्मकृत्य किया जाता है वह थोड़ा भी महा फल दायक होता है। इसलिये वैद्यक शास्त्रोंमे भी प्रसंगोपात यही बात लिखी है किः—

शरदि यज्जलं पीतं। यभ्दुक्तं पोषमाघयोः॥
जेष्ठाषाढे च यत्सुप्तं। तेन जीवंति मानवाः॥ १॥

जो पानी शरद् ऋतुमें पीया गया है और पोष, महा मासमें जो भोजन किया गया है, जेठ और आषाढ़ मासमें जो निद्रा ली गई है उससे प्राणियोंको जीवित मिलता है।

वर्षासु लवणामृतं। शरदि जलं गोपयश्च हेमन्ते॥
शिशिरे चामल करसो। घृतं वसंते गुडश्चांते

वर्षा ऋतुमें नोन (नमक) अमृत समान है, शरद् ऋतुमें पानी अमृत समान है, हेमंत ऋतुमें गायका दूध, शिशिर ऋतुमें खट्टा रस, वसंत ऋतुमें घी, ग्रीष्म ऋतुमें गुड़ अमृतके समान है।

पर्वकी महिमासे पर्वके दिन धर्म रहित हो उसे धर्ममें, निर्दयीको भी दयामें, अविरति को भी व्रतमें, कृपणको भी धन खर्चनेमें, कुशीलको भी शील पालनेमें तप रहितको भी तप करनेमें उत्साह चढ़ता है। वर्तमान कालमें भी तमाम दर्शनोंमें ऐसा ही देखा जाता है। कहा है कि:—

सो जयउ जेण विहिआ। संवच्छर चउमासि असु पव्वा।
निध्धंधसाणवि हवई। जेसिं पभावा आ धम्ममई ॥ १ ॥

जिसमें निर्दयी पुरुषोंको भी पर्वके महिमासे धर्मबुद्धि उत्पन्न होती है, वैसे संवत्सरीय, चउमासी पर्व सदैव जयवन्ते वर्त्तों।

इसलिये पर्वके दिन अवश्य ही पौषध करना चाहिये। उसमें पोषधके चार प्रकार हैं। वे हमारी की हुई अर्थ दीपिकामें कहे गये हैं इस लिये यहां पर नहीं लिखे। तथा पोषधके तीन प्रकार भी हैं। १ दिन रातका, २ दिनका और ३ रात्रिका। उसमें दिन रातके पौषधका विधि इस प्रकार है।

"अहोरात्र पौषध विधि"

"करेमि भंते पोसहं आहार पोसहं सव्वओ देसओवा। सरीर सक्कार पोसहं सव्वओ। बंभचेर पोसहं सव्वओ अव्वावार पोसहं सव्वाओ। चउव्विहे पोसहे ठाएमि। जाव अहो रत्तं पज्जु वासामि। दुविहं तिविहेणं। मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि। तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

जिस दिन श्रावकको पोषह लेना हो उस दिन गृह व्यापार वर्जकर पौषधके योग्य उपकरण (चर्वला मुंहपत्ति, कटासना,) लेकर पोषधशाला में या मुनिराजके पास जाय। फिर अंग प्रति लेखना करके लघु-नीति एवं बड़ी नीति करनेके लिये थंडिल—शुद्ध भूमि तलाश करके गुरुके समीप या नवकार पूर्वक स्थापनाचार्यको स्थापन करके ईर्यावहि करके खमासमण पूर्वक वन्दना करके पौषधकी मुहपत्ति पडिलेहे। फिर खमासमण देकर खड़ा हो 'इच्छाकारेण संदिस्सह भगवन पोषहसंदिसाहु' (दूसरी दफा) 'इच्छाकारेण संदिस्सह भगवन पोषह ठाऊं' ऐसा कहकर नवकार गिनने पूर्वक पोसह दंडक निम्न लिखे मुजब उचरे।

इस प्रकार पोषहका प्रत्याख्यान लेकर मुंहपति पडिलेहन पूर्वक दो खमासमण से 'सामायकसंदिसाऊं' "सामायक ठाऊं" यों कह कर सामायिक करके फिर दो खमासमण देने पूर्वक "बेसणे संदिसाऊं" "बेसणेठाऊं" यों कह कर यदि वर्षाऋतुके दिन हों तो काष्ठके आसनको और चातुर्मास बिना शेष आठ मासके समयमें प्रोंच्छणको, आदेश मांगकर दो खमासमण देने पूर्वक "सज्झायसंदिसाऊं" "सज्झाय-ठाऊं" ऐसा कहकर सज्झाय करे। फिर प्रतिक्रमण करके दो खमासमण देने पूर्वक "बहुवेल संदिसाहुं" "बहुवेल करूं" ऐसा कहकर खमासमण पूर्वक "पडिलेहणा करूं" ऐसा कहकर मुंहपत्ति, कटासना, और वस्त्रकी पडिलेहन करे। श्राविका भी मुंहपत्ति कटासना, साड़ी, चोली, चणिया (लंहगा या घागरी) वगैरहकी पडिलेहन करे। फिर खमासकण देकर "इच्छकारी भगवन पड़िले-

हामोजी" यों कहे। फिर 'इच्छं' कहकर स्थापनाचार्य की पड़िलेहन करके स्थापकर खमासमण पूर्वक उपधि मुंहपत्ति पडिलेह कर दो खमासमण देने पूर्वक 'उपधि संदिसाहु' 'उपधिपडिलेहू' यों आदेश मांगकर वस्त्र, कम्बल प्रमुखकी प्रतिलेखना करे, फिर पोषधशाला की प्रमार्जना करके कचरा यत्न पूर्वक उठाकर योग्य स्थान पर परठवके—डाल कर ईर्यावहि करे। फिर गमनागमन की आलोचना करके खमा-समण पूर्वक मंडलमे बैठकर साधुके समान सज्झाय करे। फिर जबतक पौनी, पोरसी हो तब तक पठन पाठन करे, पुस्तक पढे। फिर खमासमण पूर्वक मुंहपतिकी पडिलेहन करके जबतक कालवेला हो तबतक सज्झाय करता रहे। यदि देववन्दन करना हो तो 'आवस्सहि' कहकर मन्दिर जाय और वहां देव वन्दन करे। यदि पारण करना हो–भोजन करना हो तो प्रत्याख्यान पुरा हुये बाद खमासमण पुर्वक मुंहपत्ति पडि-लेह कर खमासमण पूर्वक यों कहे कि "पोरसि पराओ' अथवा पुरिमढ चोवीहार या तीविहार जो किया हो सो कहे।" नीवि करके, आयम्बिल करके, एकासन करके, पान हार करके या जो वेला हो उस वेलासे फिर देव वन्दन करके, सज्झाय करके, घर जाकर यदि सौ हाथसे बाहिर गया हो तो ईर्यावहि पूर्वक खमासमण आलो कर यथासम्भव अतिथि संविभाग व्रतको स्पर्श कर निश्चल आसनसे बैठकर हाथ, पैर, मुख, पडि-लेह कर, एक नवकार पढकर, रागद्वेष रहित होकर अचित्त आहार करे। पहले कहे हुये अपने सजन संबन्धि द्वारा पोपधशाला में लाये हुये अन्नादिको जीमे (एकासनादिक आहार करे) परन्तु भिक्षा मांगने न जाय फिर पोपधशाला में जाकर ईर्यावहि पूर्वक देव वन्दन करके वन्दना देकर तीविहार या चौविहार का प्रत्यख्यान करे। यदि शरीर चिन्ता दूर करने का विचार हो (टट्टी जाना हो तो,) "आव्वस्सहि" कहकर साधुके समान उपयोगवान् होकर निर्जीव जगह जाकर विधि पूर्वक बड़ी नीति या लघु नीतिको वोसरा कर शरीर शुद्ध करके पोपधशाला में आकर ईर्यावहि पूर्वक खमासमण देकर कहे कि "इच्छाकारेण संदिस्सह भगवन् गमनागमन आलोऊं" "इच्छं" कहकर उपाश्रय से 'आवस्सहि' कथन पूर्वक दक्षिण दिशामें जाकर सर्व दिशाओंकी तरफ अवलोकन करके "अणुजाणह जस्सग्गो" (जो क्षेत्राधिपति हो सो आज्ञा दो) ऐसा कह कर भूमि प्रमार्जन करके बड़ी नीति या लघु नीति करके उसे वुसरा कर पोषधशाला में प्रवेश करे। फिर "आते जाते हुए जो विराधना हुई हो तत्सम्बन्धी पाप मिथ्या होवो" ऐसा कहे। फिर सज्झाय करे यावत् पिछले प्रहर तक। फिर आदेश मांग कर पडिलेहण करे। फिर दूसरा खमासमण देकर "पोषहशाला को प्रमार्जन करू" यों कह कर श्रावक अपनी मुहपत्ति, कटासना, धोती, आदिकी प्रति लेखना करे। श्राविका भी मुहपत्ति, कटासना, साडी, कंचुक ओढना वगैरह वस्त्र की पडिलेहना करे। फिर स्थापनाचार्य की प्रति-लेखना करके और पोपधशाला की प्रमार्जना करके खमासमण पूर्वक उपधी, मुहपत्ति, पडिलेह कर, खमा समण देकर मंडलो में गोड़ोंके बल बैठ कर सज्झाय करे। फिर दो वन्दना देकर प्रत्याख्यान करे। फिर दो खमासमण पूर्वक "उपधी संदिसाउ" "उपधि पडिलेऊ" यों कह कर वस्त्र कम्बलादि की प्रतिलेखना करे। जो उपवासी हो वह पहिले सर्व उपाधि की प्रतिलेखना करके फिर पहिनी हुई धोतीकी प्रतिलेखना करे। श्राविका प्रातः समय के अनुसार अपनी सब उपाधि की पडिलेहण करे। संध्याके समय भी खमासमण

पूर्वक पोषधशाला के अन्दर और बाहर २ कायाके बाहर उच्चार भूमिके पडिलेहे। "आघाडे आसन्ने उच्चारे पासमणे अहिआसे" इत्यादिक बारह २ मांडले करे। फिर प्रतिक्रमण करके यदि साधुका योग हो तो उसकी वैयावच्च करे, खमासमण देकर स्वाध्याय करे। जबतक पोरसी पूरी हो तबतक स्वाध्याय करे। फिर खमासमण देकर "इच्छा कारेण संदिसह भगवन् बहु पडिपुन्ना पोरसी राइसंथारए ठामि" हे भगवन् बहुपडिपुन्ना पोरसी हुइ है अतः संथारा विधि पढाओ) फिर देव वन्दन करके शरीर चिन्ता निवारण करके शुद्ध होकर उपयोग में आने वाली तमाम उपाधि को पडिलेह कर, गोड़ोंसे ऊपर तक धोती पहिन कर संथारा करने की जगह इकहरा संथारा बिछा कर उस पर एक सूतका उत्तर पट्टा याने इकहरा सूती वस्त्र बिछा कर जहां पैर रखना हो वहांकी भूमिको प्रमार्जन करके धीरे धीरे संथारा करें फिर बायें पैरसे संथारे का स्पर्श करके मुहपत्ति पडिलेह कर "निस्सीहि" शब्दको तीन दफा बोलकर "तपो खमासमण अणुजाणह जिठ्ठिज्जा" यों बोलता हुआ संथारे पर बैठ कर एक नवकार और एक करेमिभंते एवं तीन दफा कह कर निम्न लिखी गाथाएं पढे।

अणुजाणह परमगुरु, गुणगण रहणेहिं भूसिय सरीरा बहु पडिपुन्ना पोरसी राइ संथारए ठामि ॥ १ ॥

गुणगण रत्नसे शोभायमान शरीर वाले हे परम गुरु! पोरसी होने आयी है और मुझे रात्रिमें संथारे पर सोना है अतः इसकी आज्ञा दो।

अणु जाणह संथारं बाहु वहाणेणं वाम पासेणं।
कुक्कुडिय पाय पसरणं। अन्तरन्तु पमज्जए भूमिं॥ २ ॥

बायां हाथ तकिये की जगह रख कर शरीर का बायां अंग दबा कर जिस तरह मुर्गी जमीन पर पर लगाये बिना पैर पसारती है यदि कार्य पड़ा तो वैसा ही करूंगा। बीचमें निद्रामें भी यदि आवश्यकता होगी तो भूमिको प्रमार्जन करूंगा। अतः इस प्रकार के विधिके अनुसार शयन करने की मुझे आज्ञा दो।

संकोइअ संडासा,उव्वट्टन्तेअ काय पडिलेहा। दव्वाइ उवओगं, उसास निरुंभणा लोए ॥ ३ ॥

पैर सकोड़ कर शरीरकी पडिलेहणा न करके द्रव्य क्षेत्र काल, भावका उपयोग दे कर इस संथारे पर सोते हुयेको मुझे यदि कदाचित् निद्रा आवेगी तो उसे श्वास रोकनेसे उच्छेद करूंगा।

जइमे हुज्ज पमाओ, इमस्स देहस्स इमाइ रयणीए।
आहार मुवइ देहं, सव्वं तिविहेण वोसइअं ॥ ४ ॥

मेरे अंगीकार किये हुए इस सागारी अनशनमें कदापि मेरी मृत्यु होजाय तो इस शरीर, आहार, और उपाधि इन सबको मैं त्रिकरणसे आजकी रात्रिके लिये वोसराता हूं—परित्याग करता हूं।

इत्यादि गाथाओंकी भावना परिभाते हुये याने समग्र संथारा पोरसी पढ़ाये बाद नवकार का स्मरण करते हुये रजो हरणादिक से (श्रावक चरवला आदिसे) शरीरको और संथारेको ऊपरसे प्रमार्जित कर बायें अंगको दबाकर बायां हाथ सिर नीचे रख कर शयन करे। यदि शरीर चिन्ता लघुनीति और बड़ी नीतिकी हाजत हो तो संथारेको अन्य किसीसे स्पर्श कराकर आवस्सहि कह कर प्रथमसे देखे हुये निर्जीव स्थानमें

लघुनीति और बड़ी नीति करके वोसरावे और फिर पीछे आकर इर्यावही करके गमनागमन की आलोचना करे। कमसे कम तीन गाथाओंकी सभाय करके नवकार का स्मरण करते हुये पूर्ववत् शयन करे। पिछली रात्रिमें जागृत होकर इर्यावहि पूर्वक कुसुमिण दुसुमिण का कौसग्ग करे। चैत्य बंदन करके आचार्यादिक चारको वन्दना देकर भरहेसर की सज्झाय पढे। जब तक प्रतिक्रमण का समय हो तब तक सज्झाय करके यदि पोषध पारनेकी इच्छा हो तो खमासमण पूर्वक "इच्छा कारेण संदिसह भगवन् मुहपत्ति पडिलेहउं, गुरु फर्मावे कि "पडिलेह" फिर मुहपत्ति पडिलेह कर खमासमण पूर्वक कहे कि "इच्छाकारेण संदिसह भग· वन् पोसह पारुं" गुरु कहे कि "पुणोवि कायव्वो" फिर भी करना। दूसरा खमासमण देकर कहे कि 'पोसह पारिअं" गुरु कहे 'आयरो न मुत्तव्वो' आदर न छोड़ना, फिर खड़ा होकर नवकार पढ़कर गोड़ोंके बल बैठ कर भूमि पर मस्तक स्थापन करके निम्न लिखे मुजब गाथा पढे।

सागर चन्दो कामो, चन्द व डिंसो सुदंसणो धन्नो।
जेसिं पोसह पडिमा, अखंडिआ जीविअन्ते वि॥ १॥

सागरचन्द्र श्रावक, कामदेव श्रावक, चन्द्रावतंसक राजा, सुदर्शन सेठ इतने व्यक्तिओको धन्य है कि जिन्होंकी पौषध प्रतिमा जीवितका अन्त होने तक भी अखंड रही।

धन्ना सलाह णिज्जा, सुलसा आणंद कामदेवाय॥
.सि पसंसइ भयवं, दढ्ढयं यंतं महावीरो॥ २॥

वे धन्य हैं, प्रशंसाके योग्य हैं, सुलसा श्राविका, आनंद, कामदेव श्रावक कि जिनके दृढ़व्रतको प्रशंसा भगवंत महावीर स्वामी करते थे।

पोसह विधिसे लिया, विधिसे पाला, विधि करते हुये जो कुछ अविधि, खंडन, विराधना मन वचन कायसे हुई हो 'तस्स मिच्छामि दुक्कड़' वह पाप दूर होवो। इसी प्रकार सामायिक भी पारना, परन्तु उसमें निम्न लिखे मूजिब विशेष समझना।

सामाइय वयजुत्तो, जावमणे होइ नियम संजुत्तो॥
छिन्नइ असुहं कम्मं सामाइअ जत्ति आवारा॥ १॥

सामायिक व्रतयुक्त नियम संयुक्त जब तक मन नियम संयुक्त है तब तक जितनी देर सामायिक में हूं उतनी देर अशुभ कर्मको नाश करता है।

छउमथ्थो मूढ़ मणो, कित्तीय मित्तंप संभरइ जीवो।
जंच न समरामि अहं, मिच्छामि दुक्कणं तस्स॥ १॥

छद्मस्थ हूं, मूर्ख मनवाला हूं, कितनीक देर मात्र मुझे उपयोग रहे, कितनीक वार याद रहे जो मैं याद न रखता हूं उसका मुझे मिच्छामि दुक्कड़ं हो—पाप दूर होवो।

सामाइअ पोसह सण्ठियस्स, जीवस्स जाइ जो कालो॥
सो सफलो बोधव्वो, सेसो संसार फलहेऊ॥ ३॥

सामायिक में और पोसहमें रहते हुये जीवका जो समय व्यतीत होता है वह सफल समझना। जो अन्य समय व्यतीत होता है वह संसार फलका हेतु है याने संसार वर्धक है।

दिनके पोषहका विधि भी उपरोक्त प्रकारसे ही जानना परन्तु उसमें इतना विशेष समझना कि "जाव-दिवसं पज्जुवा सामि" ऐसा पाठ पढ़ना। देवसी आदि प्रतिक्रमण किये बाद पारना।

रात्रिका पोषध भी इसी प्रकार लेना परन्तु उसमें भी इतना विशेष जानना कि दोपहर के मध्यान्ह से लेकर यावत् दिनका अन्तर्मुहूर्त रहे तबतक लिया जा सकता है। इसी लिये "दिवस सेसरात्रि पज्जु वासामि" ऐसा पाठ उच्चार किया जाता है।

यदि पोषध पारनेके समय मुनिका योग हो तो निश्चयसे अतिथि संविभाग व्रत करके पारना करना

चौथा प्रकाश

॥ चातुर्मासिक कृत्य ॥

मूलार्ध गाथा।

पइ चौमासं समुचिअ। नियमग्गहो पाउसे विसेसेण ॥

जिस मनुष्यने हरएक नियम अंगीकार किया हो उसे उसी नियमको प्रति चातुर्मास में संक्षिप्त करना चाहिये। जिसने अंगोकार न किया हो उसे भी प्रति चातुर्मास में योग्य नियम अभिग्रह विशेष ग्रहण करना चाहिये। वर्षाकाल के चातुर्मास में विशेषतः नियम ग्रहण करने चाहिये। उसमें भी जो नियम जिस समय अधिक फलदायक हो और नियम अंगीकार न करनेसे अधिक विराधना होती हो तथा धर्मकी निंदाका भी दोष लगे वह समुचित न समझना। जैसे कि वर्षाके दिनोंमें गाड़ी चलाना, वगैरह का निषेध करना, बादल या वृष्टि वगैरह होनेके कारण ईलिका वगैरह जीवकी उत्पत्ति होनेसे खिरनी, (रायण) आम वगैरहका परि-त्याग करना। इसी प्रकार देश, नगर, ग्राम, जाति, कुल, वय, वगैरह की अपेक्षासे जिसे जैसा योग्य हो वैसा ग्रहण करे। इस तरह नियमकी समुचितता समझना।

नियमके दो प्रकार हैं। १ दुनिर्वाह, २ सुनिर्वाह। उसमें धनवन्तको (व्यापार की व्यग्रता वाले को) अविरति श्रावकोंको, सचित्त रस शाकका त्याग, प्रतिदिन सामायिक करना वगैरह-दुनिर्वाह समझना और पूजा दानादिक धनवन्त के लिए सुनिर्वाह समझना। निर्धन श्रावकके लिए उपरोक्तसे विपरीत समझना। यदि चित्तकी एकाग्रता हो तो चक्रवर्ती शालिभद्रादिक को दीक्षाके कष्टके समान सबको सर्व सुनिर्वाह ही है। कहा है कि,

> तातुंगो मेरु गिरि मयर हरो ताव होइ दुरुत्तारो॥
> ता विसमा कज्जगई जाव न धीरा पवज्जन्ति॥

तब तक ही मेरु पर्वत ऊंचा है, तब तक ही समुद्र दुष्तर है, (विषमगति दुःखसे बन सके) जब तक धीर पुरुष उस कार्यमें प्रवृत्त नहीं होते। इस प्रकार जिससे दुर्निर्वाह नियम लिया न जासके उसे भी सुनिर्वाह नियम तो अवश्य ही अंगीकार करना चाहिये। जैसे कि मुख्यवृत्ति से वर्षाकाल के दिनोंमें कृष्ण, कुमार पालादिक के समान सर्व दिशाओंमें गमनका निषेध करना उचित है यदि ऐसा न कर सके तो जिस जिस दिशामें गये विना निर्वाह हो सकता हो उस दिशा संबन्धी गमनका नियम तो अवश्य ही लेना चाहिये। इसी प्रकार सर्व सचित्तका त्याग करनेमें अशक्त हों उन्हें जिसके विना निर्वाह हो सकता है वैसे सचित्त पदार्थका अवश्य परित्याग करना चाहिये। जब जो वस्तु न मिलती हो जैसे कि दरिद्रीको हाथी पर बैठना, मारवाड़ की भूमिमें नागरबेल के पान खाना वगैरह स्व स्वकाल बिना आम वगैरह फल खाना नहीं बन सकता। तब फिर उस वस्तुका त्याग करना उचित ही है। इस प्रकार अस्तित्व में न आने वाली वस्तुका परित्याग करनेसे भी विरति वगैरह महाफल की प्राप्ति होती है।

सुना जाता है कि राजगृही नगरीमें एक भिक्षुकने दीक्षा ली थी उसे देखकर 'इसने क्या त्याग किया' इत्यादिक वचनसे लोग उसकी हंसी करने लगे। इस कारण गुरु महाराज को वहांसे विहार करनेका विचार हुवा। अभयकुमार को मालूम होनेसे उसने चौराहेमें तीन करोड़ सुवर्ण मुद्राओंके तीन ढेर लगाकर लोगोंको बुलाकर कहा कि 'जो मनुष्य कुवे वगैरहके सचित्त जल, अग्नि और स्त्री इन तीन वस्तुओंको स्पर्श करनेका जीवन पर्यन्त परित्याग करे वह इस सुवर्ण मुद्राओं के लगे हुये तीन ढेरोंको खुशीसे उठा ले जा सकता है। यह सुनकर विचार करके नगरके लोग बोले इन तीन करोड़ सुवर्ण मुद्राओंका त्याग कर सकते हैं परन्तु जलादि तीन वस्तुओंका परित्याग नहीं किया जा सकता। तब अभयकुमार बोला कि अरे मूर्ख मनुष्यो' ! यदि ऐसा है तब फिर इस भिक्षुक मुनिको क्यों हंसते हो ? जिन वस्तुओंका त्याग करनेमें तीन करोड़ सुवर्ण मुद्रायें लेने पर भी तुम असमर्थ हो उन तीन वस्तुओंका परित्याग करने वाले इस मुनि की हंसी किस तरह की जासकती है, यह बात सुन बोधको पाकर हसी करने वाले नगर निवासी लोगोंने मुनिके पास जाकर अपने अपराध की क्षमा मांगी। इस तरह अस्तित्व में न होनेवाली वस्तुओं का त्याग करनेसे भी महालाभ होता है अतः उनका नियम करना श्रेयस्कर है। यदि ऐसा न करे तो उन २ वस्तुओं को ग्रहण करनेमें पशुके समान अविरतिपन ही प्राप्त होता है और वह उनके फलसे वंचित रहता है। भर्तृहरिने भी कहा है कि—क्षान्तं न क्षमया गृहोचित सुखं त्यक्तं न सन्तोषतः। सोढाः दुस्सह शीत वात तपन क्लेशाः न तप्तं तपः॥ ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमितप्राणैर्न मुक्तेः पदं। तत्तत्कर्मकृतं यदेव मुनिभिस्तैः फलैः वंचिताः॥"

क्षमासे कुछ सहन नहीं किया, गृहस्थावास का सुख उपभोग किया परन्तु संतोषसे उसका त्याग न किया; दुःसह शीत वात, तपन वगैरह सहन किया परन्तु तप न किया रात दिन नियमित धनका ध्यान किया परन्तु मुक्तिपद के लिये ध्यान न किया, उन उन मुनियोंने वे कर्म भी किये परन्तु उनके फलसे भी वेवंचित रहे।

यदि एक ही दफा भोजन करता हो तो भी एकासने का प्रत्याख्यान किये विना एकासने का फल नहीं

मिलता। जैसे कि लोकमें भी यही न्याय है कि बहुतसा द्रव्य बहुतसे दिनों तक किसीके पास रक्खा हो तथापि ठराव किये बिना उसका ज़रा भी ब्याज नहीं मिलता। असंभवित वस्तुका भी यदि नियम लिया हुआ हो उसे कदापि किसी तरह उसी वस्तुके मिलनेका योग बन जाय तो नियममें बद्ध होनेके कारण वह उस वस्तुको ग्रहण नहीं कर सकता। यदि उसे नियम न हो तो वह अवश्य ही उसे ग्रहण करे। अतः नियम करनेका फल स्पष्ट ही है। जिस प्रकार गुरु द्वारा लिये हुए नियन फलमें बंधे हुए वंकचूल पल्लीपति ने भूखा रहने पर भी अटवीमें किंपाक नामक फल अज्ञात होनेसे अन्य लोगों की प्रेरणा होने पर भी न खाया और उससे उसके प्राण बच गये एवं जिन अनियमित मनुष्यों ने उन फलोंको खाया वे सब मरणके शरण हुए अतः नियम लेनेसे महान लाभकी प्राप्ति होती है।

प्रति चातुर्मासिक इस उपलक्षणसे एक एक पक्षमें, एक एक महीनेमें, दो दो मासमें, तीन तीन महीने, या एकेक दो दो वर्ष वगैरह के यथाशक्ति नियम स्वीकार करने योग्य हैं। जो जितने महीने वगैरह की अवधि पालनेके लिये समर्थ हो उस उस अवधिके अनुसार समुचित नियम अंगीकार करे। परन्तु नियम रहित एक क्षणमात्र भी न रहे। क्योंकि विरतिका महाफल होता है और अविरतिका बहु कर्मबन्धादि महादोषादिक पूर्वमें बतलाये अनुसार होता है। यहां पर जो पहले नित्य नियम कहा गया है उसे चातुर्मास में विशेषतः करना चाहिए। जिसमें तीन दफा या दो दफा जिनपूजा करना, अष्टप्रकारी पूजा करना, संपूर्ण देववंदन, जिनमंदिर के सर्व बिम्बकी पूजा, सर्व बिम्बोंको वन्दन करना, स्नात्र, महापूजा प्रभावनादि गुरुको बृहद् वन्दन करना, सर्व साधुओंको वन्दन करना चोवीस लोगस्सका काउसग्ग करना अपूर्व ज्ञानका पाठ या श्रवण करना; विश्रामणा करना, ब्रह्मचर्य पालन करना, सचित्र वस्तुका परित्याग करना, विशेष कारण पड़ने पर औषधादिक शोधनादि यतनासे ही अंगीकार करना, यथाशक्ति चारपाई पर शयन करनेका परित्याग करना, बिना कारण स्नान त्याग करना, बाल गुंथवाना दंतवन करना और काष्टकी खड़ाओं पर चलनेका परित्याग करना वगैरह का नियम धारण करना। एवं जमीन खोदने, नये वस्त्र रंगाने, ग्रामान्तर जाने वगैरह का त्याग करना। घर, दुकान, भींत, स्तंभ, चारपाई, किवाड़, दरवाजा वगैरह पाट, चौकी, घी, तेल, जलादिके बर्तन, इन्धन, धान वगैरह तमाम वस्तुओंमें रक्षाके निमित्त पनकादि संसक्ति—निगोद या काई न लगने देनेके लिये चूना, राख, खड़ी, मैल न लगने देना, धूपमें रखना, अधिक ठंडक हो वहां पर न रखना; पानीको दो दफा छानना वगैरह, घी, गुड़, तेल, दूध; दही, पानी, वगैरहको यत्न पूर्वक ढक कर रखना, अवश्रावण (चावल वगैरहका धोवन तथा बर्तनोंका धोवन या रसोईमें काममें आता हुआ बचा हुआ पानी) स्नान वगैरह के पानी आदिको जहां पर लीलफूल याने निगोद न हो वैसे स्थानमें डालना। सूकी हुई या धूल वाली, हवा वाली, ज़मीन पर थोड़ा थोड़ा डालना चुलहा, दीया, खुला हुआ न रखनेसे पीसने, खोटने, रांधने, वस्त्र धोने, पात्र धोने वगैरह कार्यों में भले प्रकारसे यत्ना करके तथा मन्दिर, पौषधशाला वगैरह को भी वारंवार देखते रहनेसे सार सम्भाल रखनेसे यथा योग्य यतना करना। यथाशक्ति उपधान मालादि पड़िमा वहन, कषाय जय, इन्द्रियजय, योग-शुद्धि विंशति स्थानक, अमृत अष्टमी, ग्यारह अंग, चौदह पूर्व तप; नवकार फलतप, चोविसी तप, अक्षयनिधि

तप, दवयंतीतप, भद्र प्रतिमा, महाभद्र प्रतिमा, संसार तारणतप, अठाईतप, पक्षक्षपण, मासक्षपणादि विशेष तप करना। रात्रिके समय चौविहार तिविहार का प्रत्याख्यान करना। पर्वके दिन विगयका त्याग पोसह उपवासादि करना। पारनेके दिन संविभाग अतिथि-संविभाग करना वगैरह अभिग्रह धारण करना चाहिये।

नीचे चातुर्मासिक नियमके लिये पूर्वाचार्य संग्रहित कितनी एक उपयोगी गाथायें दी जाती हैं।

चाउम्मासि अभिग्गह, नाणे तह दंसणे चरित्तेअ।
तवविरि आयारंम्मिअ, दव्वाइ अणेगहाहुन्ति ॥ १ ॥

ज्ञान सम्बन्धी दर्शन सम्बन्धी, चारित्र संबन्धी, तप सम्बन्धी, वीर्याचार सम्बन्धी, द्रव्यादिक अनेक प्रकार के चातुर्मासिक अभिग्रह—नियम होते हैं। ज्ञानाभिग्रह भी धारण करना चाहिये।

परिवाडी सज्झाओ, देसण सवणं च चिंतणी चेव।
सत्तीए कायव्वं, सिऊ पंचमि नाण पूआय ॥ २ ॥

जो कुछ पढ़ा हुआ हो उसका प्रथम से अन्त तक पुनरावर्तन करना, उपदेश देना, अपूर्व ग्रन्थोंका श्रवण करना, अर्थ चिंतवन करना, शुक्लपंचमी को ज्ञानपूजा करना, शक्ति पूर्वक ज्ञान सम्बन्धी नियम रखना। दर्शन के विषयमें अभिग्रह रखना चाहिये।

समज्जणो वले वण, गुहलिआ मंडव चिइमवणे।
चेइय पूआ वंदण, निम्मल करणं च बिम्बाणं ॥ ३ ॥

मन्दिर सभारना, साफ रखना, विलेपन करना, अथवा गूंहली करनेके लिये जमीन पर गोबर, खड़ी वगैरह से उपलेपन करके उस पर मंदिर में भगवान के समक्ष गुंहली आलेखन करना, पूजा करना देव वन्दन करना, सर्व बिम्बोंको उगटना करना वगैरह का नियम रखना। यह दर्शनाभिग्रह कहा जाता है।

"व्रतोंके सम्बन्धमें नियम"

चारित्तंमि जलोआ, जूआ गंडोल पाडणं चेव।
वण कीड खारदाणं, इन्धण नेलणअतस रक्खा ॥ ४ ॥

जोख लगवाना, जूं, खटमल, पेटमें पड़े हुए चुरने वगैरह जन्तुओं को दवासे पड़ाना, जन्तु पड़ी हुई वनस्पति का खाना, वनस्पति में क्षार लगाना, त्रस कायकी रक्षा निमित्त इन्धन, अग्नि वगैरह की यतना करने का नियम रखना, ये चारित्राचारके स्थूल प्राणातिपात व्रतके अभिग्रह गिने जाते हैं।

वज्जइ अभक्खाणं, अक्कोसं तहय रुक्ख वयणं च।
देवगुरुसवहकरणं, पेसुन्नं परपरिवायं ॥ ५ ॥

दूसरे पर आरोप करना, किसीको कटु वचन बोलना, हलका वचन बोलना, देव गुरु धर्म सम्बन्धी कसम खाना, दूसरे की निन्दा और चुगली करना। दूसरे का अवर्णवाद बोलना, इन सबके परित्याग का नियम करे।

पिईमाई दिट्ठि वंचण, जयणां निहिसुक्क पडिअ विसयंमि।
दिणिबम्भर यणिवेला, परन रसेवाइ परिहारो ॥ ६॥

पिता माताकी दृष्टि बचा कर काम करना, निधान, दाण चोरी, दूसरे की पड़ी हुई वस्तुके विषय में यतना करना, वगैरह इस प्रकार के अभिग्रह धारण करना। स्त्री पुरुष को दिनमें ब्रह्मचर्य पालन करना, यह तो अवश्य ही है। परन्तु रात्रिमें भी इतना अभिग्रह धारण करना चाहिए कि स्त्रीको परपुरुष का और पुरुष को परस्त्रीका त्याग करना। आदि शब्दसे मालूम होता है कि स्त्रीको परपुरुष और पुरुष को पर स्त्रीके साथ मैथुन की तो बात ही दूर रही परन्तु उनके प्रसंग का भी त्याग करना।

धन धन्नाइ नवविह, इच्छा माणंमि नियम संखेवो।
परपेसण सन्देसय, अहगमणाईअ-दिसिमाणे ॥ ७॥

धन धान्यादिक नव विध इच्छानुसार रक्खे हुए परिग्रह में भी नियम करके उसका संक्षेप करना। अन्य किसीको भेजने का, दूसरे के साथ सन्देशा कहलाने का, अधो दिशामें गमन करने वगैरह का नियम धारण करना। (पर्वमें लिये हुए व्रतसे कम करना) यह दिशिपरिमाण नियम कहलाता है।

न्हाणंगराय धूवण, विलेवण हरण फुल तंबोलं।
घणसारागुरुकुंकुम, पोहिस मयनाहि परिमाणं ॥ ८॥
मंजिठ लक्ख कोसुम्भ, गुलिअ रागाण वथ्थ परिमाणं।
रयणं वज्जेमणि, कणग रुप्पं मुत्ताईय परिमाणं ॥ ८॥
जम्बोर जम्ब जम्बुअ, राईण नारिंग बीज पूराणं।
कक्कडि अखोड वायम, कविठ्ठ टिम्बरुअं बिल्लाणं ॥ १०॥
खज्जुर दरुख दाडिम, उत्तत्तिय नारिकेर केलाइं।
चिचिणि अबोर बिलुअ, फल चिब्भड चिब्भडीणं च ॥ ११॥
कयर करमन्दयाणं, भोरड निम्बूअ अम्बिलीणं च।
अथ्थाणं अंकुरिअ, नाणाविह फुल्ल पत्ताणं ॥ १२॥
सचित्तं वहुबीअं, अणन्तकायं च वज्जए कमसो।
विगई विगई गयाणं, दन्ताणं कुणई परिमाणं ॥ १३॥

स्नान करनेके जो साधन हैं जैसे कि उगटण, विलेपन, धूपन, आभरण, फूल, तांबूल, बरास, कृष्णागर, केशर, पोहीस, कस्तूरी वगैरह के परिमाण का नियम करना। मजीठ, लाख, कसुम्बा, गुली, इतने रंगोंसे रंगे हुए वस्त्रका परिमाण करना। तथा रत्न, वज्र, (हीरा) मणि, सुवर्ण, चांदी, मोती वगैरह का परिमाण करना। जंबीर फल, अमरूद, जांबुन, रायण, नारंगी, बिजोरा, ककड़ी, अखरोट वायम नामक फल, कैत, टिम्बरू फल, बेल फल, खजूर, द्राक्ष, अनार, छुवारे, नारियल, केले, बेर, जंगली बेर, खरबूजे, तरबूज, खीरा, कैर, करवन्दा, निंबू, इमली, अंकूरित नाना प्रकारके फल फूल पत्र वगैरह के अचार वगैरह का परिमाण करना।

सचित्त वस्तु, अधिक बीज वाली वस्तु और अनन्त काय ये अनुक्रम से त्यागने योग्य हैं। विगय का तथा विगय से उत्पन्न होने वाले पदार्थों का भी परिमाण करना।

अंसुअ धोअण लिप्पण, खेत्तल्लणयं न्हाण दाणं च।
जूआ कड्ढण मग्गस्स, खित्तं कज्जं च बहुभेअं ॥ १४ ॥

खंडण पीसण माईण, कूड सक्खाई संखेवं ॥ जलमिज्जणन्न रंधण, उव्वट्ठण माईआणं च ॥ १५ ॥

वस्त्र धोना या धुलवाना, लीपना या लिपवाना, खेत जोतना या जुतवाना, स्नान करना या कराना, अन्यकी जूं वगैरह निकालना, एवं अनेक प्रकार के जो क्षेत्रके भेद हैं उन सबका परिमाण करना। खोटने पीसने का तथा असत्य साक्षी देने वगैरह का संक्षेप करना। जलमें तैरना, अन्न रांधना, उगटणा वगैरह करने का जो प्रमाण हो उसमें भी संक्षेप करना।

देसावगासिअ वए, पुढवी खणणेण जलस्स आणयणे।
तहचीर धोयणे न्हाण, पिअण जलणस्स जालणए ॥ १६ ॥

देशावकाशिक व्रतमें पृथ्वी खोदनेका, पानी मंगानेका, एवं रेशमी वस्त्र धुलवाने का, स्नानका, पीनेका, अग्नि जलाने का नियम धारण करना।

तह दीव बोहणे वाय, वीऊणे हरिअ छिंदणे चेव।
अणिवद्ध जंपणे, गुरु जणेणय अदत्तए गहणे ॥ १७ ॥

तथा दीपक प्रगट करने का, पंखा वगैरह करने का, सब्जी छेदन करनेका, गुरु जन के साथ बिना विचारे बोलनेका एवं अदत्त ग्रहण करनेका नियम धारण करना।

पुरिसासण संयणीए, तह संभासण पलोयणा ईसु।
ववहारेण परिमाणं, दिस्सिमाणं भोग परिभोगे ॥ १८ ॥

पुरुष तथा स्त्रीके आसन पर बैठने का, शय्या में सोनेका एवं स्त्री पुरुषके साथ संभाषण करनेका, नजर से देखने का, व्यापार का दिशि परिणामका एवं भोग परिभोगका परिमाण करना।

तह सव्वणथ्थदंडे, समाईअ पोसहे तिहि विभोगे।
सव्वेसुवि संखेवं काहं पई दिवस परिमाणः ॥ १९ ॥

तथा सर्व अनर्थदंड में सामायिक, पोषह, अतिथिसंविभाग में, सर्व कार्योंमें प्रतिदिन सर्व प्रकारके परिमाण में संक्षेप करते रहना।

खंडण पीसण रंधण, भुंजण विख्खणण वथ्थ रयणं च।
कत्तण पिंजण लोढण, धवलण लिपणय सोहणए ॥ १६ ॥

खोटना, दलना, पकाना, भोजन करना, देखना देखाना वस्त्र रंगवाना, कतरना, लोढना, सफेदी देना, लीपना, शोभा युक्त करना, शोधन करना, इन सबमें प्रति दिन परिमाण करते रहना चाहिए।

वाहण रोहण लिख्खाइ जो अणे वाण हीण परिभोगे।
निन्नाणा लुणण उंछण, रंधण दलणाई कम्मेअ ॥ २१ ॥

संवरणं कायव्वं, जह संभव मणुदिणं तहा पढणे ।
जिण भवण दंसणे सुणाण गणेसु जिण भवण किच्चे अ ॥ २२ ॥

वाहन, रथ वगैरह आरोहण, सवारी वगैरह करना, लीख वगरह देखना, जूता पहिरना, परिभोग करना, क्षेत्र वोना एवं काटना, ऊपरसे धान काटना, रांधना, पीसना, दलना आदि शब्दसे वगैरह कार्योंके अनुक्रमसे प्रतिदिन पूर्वमें किये हुए प्रत्याख्यान से कम करते रहना। एवं लिखने पढ़ने में, जिनेश्वर भगवान के मंदिर संबन्धी कार्योंमें धार्मिक स्थानोंको सुधरवाने के कार्योंमें तथा सार संभाल करने के कार्योंमें उद्यम करना।

अठ्ठमी चउद्दसीसु कल्लाण तिहिसु तव विसेसेसु ।
काहामि उज्जम मह, धम्मथ्थं वरिस मज्झंमि ॥ २३ ॥

वर्ष भरमें जो अष्टमी, चतुर्दशी, कल्याणक तिथिओं में तप विशेष किया हुआ हो उसमें धर्म प्रभावना निमित्त उजमणा आदिका महोत्सव करना।

धम्मथ्थं मुहपत्ती, जल छणा ओसहाई दाणं च ।
साहम्मिअ वच्छल्लं जह सजिए गुरु विणओअ ॥ २४ ॥

धर्मके लिये मुहपत्तियें देना, पानी छानने के छाणे देना, रोगिओंके लिये औषधादिक वात्सल्य करना, यथा शक्ति गुरु का विनय करना।

मासे मासे सामाइअं च, वरिसंमि पोसहं तु तहा ।
काहामि स सत्तीए, अतिहिणं संविभागं च ॥ २५ ॥

हरेक महीने मे मैं इतने सामायिक करूंगा, एवं वर्ष में इतने पोषसह करूंगा, तथा यथाशक्ति वर्षमें इतने अतिथि संविभाग करूंगा ऐसा नियम धारण करे।

"चौमासी नियम पर विजय श्रीकुमार का दृष्टान्त"

विजयपुर नगरमें विजयसेन राजा राज्य करता था। उसके बहुत से पुत्र थे परन्तु उन सबमें विजय श्रीकुमार को राज्य के योग्य समझ कर शंका पड़ने से उसे कोई अन्य राजकुमार मार न डाले, इस धारणा से राजा उसे विशेष सन्मान न देता था इससे विजय श्रीकुमार को मनमें बड़ा दुःख होता था।

पादाहतं यदुत्थाय, मुर्धानमधि रोहति स्वस्थाने वापमानेऽपि देहिनः स्तद्वरं रजः ॥

जो अपमान करनेसे भी अपने स्थान को नहीं छोड़ते ऐसे पुरुषों से धूल भी अच्छी है कि जो पैरोंसे आहत होने पर वहांसे उड़ कर उसके मस्तक पर चढ बैठती है। इस युक्ति पूर्वक मुझे यहां रहने से क्या लाभ है? इस लिये मुझे किसी देशान्तर में चले जाना चाहिए। विजयश्री ने अपने मनमें स्वस्थान छोड़नेका निश्चय किया। नीतिमें कहा है कि—

निग्गंतूण गिहाओ, जो न निअई पुहई मंडल मसेसं।
अच्छेरय सयरम्मं, सो पुरुसो कुव मंडुक्को ॥ १ ॥

नज्जंति चित्तभासा, तहय विचित्ताओ देसनीईओ।
अच्चम्भुआइं बहुसो, दीसंति महिं भमंतेहिं ॥ २ ॥

अपने घरसे निकल कर हजारों आश्चर्योंसे परिपूर्ण जो पृथ्वी मंडल को नहीं देखता वह मनुष्य कुएमें रहे हुए मेंढकके समान है। सर्व देशोंकी विचित्र प्रकार की भाषाएं एवं भिन्न भिन्न देशोंकी विचित्र प्रकार की भिन्न भिन्न नीतियां देशाटन किये बिना नहीं जानी जा सकतीं। तरह तरह के अद्भुत आश्चर्य देशाटन करने से ही मालूम होते हैं।

पूर्वोक्त विचार कर विजयश्री एक दिन रात्रिके समय हाथमें तलवार लेकर किसीको कहे बिना ही एकाकी अपने शहरसे निकल गया। अब वह ज्ञाताज्ञात देशाटन करता हुआ एक रोज भूख और प्याससे पीड़ित हो एक जंगलमें भटक रहा था उस समय सर्वालंकार सहित किसी एक दिव्य पुरुषने उसे स्नेह पूर्वक बुला कर सर्व उपद्रव निवारक और सर्व इष्ट सिद्धि दायक इस प्रकार के दो रत्न समर्पण किये। परन्तु जब कुमार ने उससे पूछा कि तुम कौन हो तब उसने उत्तर दिया कि जब तुम अपने नगर में वापिस जाओगे तब वहां पर आये हुए मुनि महाराज की वाणी द्वारा मेरा सकल वृत्तान्त जान सकोगे। अब वह उन अचिंत्य महिमा युक्त रत्नोंके प्रभाव से सर्वत्र इच्छानुसार विलास करता है। उसने कुसुम पूर्ण नगर के देवशर्मा राजाकी आंखकी तीव्र व्यथा का पटह बजता सुन कर उसके दरवाजे में जाकर रत्नके प्रभावसे उसके नेत्रोंकी तीव्र व्यथा दूर की। इससे तुष्टमान होकर राजाने अपना सर्वस्व, राज्य और पुण्य श्री नामक पुत्री कुमार को अर्पण की और राजाने स्वयं दीक्षा अंगीकार की। यह बात सुनकर उसके पिताने उसे बुला कर अपना राज्य समर्पण कर स्वयं दीक्षा अंगीकार कर की। इस प्रकार दोनों राज्य के सुखका अनुभव करता हुवा विजय भी अब सानन्द अपने समय को व्यतीत करता है। एक दिन तीन ज्ञानको धारण करने वाले देव शर्मा राजर्षि उसका पूर्व भव वृत्तान्त पूछने से कहने लगे कि 'हे राजन्! क्षेमापुरी नगरी में सुव्रत नामक सेठने गुरुके पास यथाशक्ति कितने एक चातुर्मासिक नियम अंगीकार किये थे। उस वक्त वह देख कर उसके एक नौकर का भी भाव चढ गया जिससे उसने भी प्रति वर्ष चातुर्मास में रात्रि भोजन न करने का नियम लिया था। वह अपना आयुष्य पूर्ण कर उस नियम के प्रभाव से तूं स्वयं राजा हुआ है, और वह सुव्रत नामक श्रावक मृत्यु पाकर महर्द्धिक देव हुआ है, और उसीने पूर्व भवके स्नेहसे तुझे दो रत्न दिये थे। यह बात सुन कर जातिस्मरण ज्ञान पाकर वही नियम फिरसे अंगीकार करके और यथार्थ रीतिसे परिपालन करके विजयश्री राजा स्वर्गको प्राप्त हुआ, और अन्तमें महा विदेह क्षेत्रमें वह सिद्धि पदको पायगा। इस लिये चातुर्मास सम्बन्धी नियम अंगीकार करना महा लाभकारी है। लौकिक शास्त्रमें भी नीचे मुजब चौमासी नियम बतलाये हुए हैं। वसिष्ट ऋषि कहते हैं कि—

कथं स्वपिति देवेशः, पद्मोद्भव महार्णवे।
सुप्ते च कानि वर्ज्यानि, वर्जितेषु च किं फलम् ॥ १ ॥

देवके देव श्रीकृष्ण बडे समुद्र में किस लिये सोते हैं? उन्होंके सोये बाद कौन कौन से कृत्य वर्जने चाहिए और उन कृत्यों को वर्जने से क्या फल मिलता है?

नायं स्वपिति देवेशो, न देवः प्रति बुध्यते। उपचारो हरेरेवं, क्रियते जलदागमे ॥ २ ॥

यह विष्णु कुछ शयन नहीं करते एवं देव कुछ जागते भी नहीं। यह तो चातुर्मास आने पर हरीका एक उपचार किया जाता है।

योगस्थे च हृषीकेशे, यद्वर्ज्यं तन्निशामयं। प्रवासं नैव कुर्वीत, मृत्तिकां नैव खानयेत् ॥ ३ ॥

जब विष्णु योगमें स्थित होता है उस समय जो वर्जनीय है सो सुनो। प्रवास न करना, मिट्टी न खोदना।

वृन्तांकान् राजमाषांश्च, वल्ल कुलस्थांश्च तूवरी।
कालिंगानि त्यजेद्यस्तु, मूलकं तंदुलीयकम् ॥ ४ ॥

बैगन, बड़े उड़द, वाल, कुलथी, तुंवर (हरहर) कालिंगा, मूली, तांदलजा, वगैरह त्याज्य हैं।

एकान्नेन महीपाल, चातुर्मास्यं निषेवते।
चतुर्भुजो नरो भूत्वा, प्रयाति परमं पदम् ॥ ५ ॥

हे राजन्! एक दफा भोजन से चातुर्मास सेवे तो वह पुरुष चतुर्भुज होकर परम पद पाता है।

नक्तं न भोजयेद्यस्तु, चातुर्मास्ये विशेषतः।
सर्व कामा नवाप्नोति, इहलोके परत्र च ॥ ६ ॥

जो पुरुष रात्रिको भोजन नहीं करता तथा चातुर्मास में विशेषतः रात्रि भोजन नहीं करता वह पुरुष इस लोकमें और परलोक मे सर्व प्रकार की मन कामनाओं को प्राप्त करता है।

यस्तु सुप्ते हृषीकेशे, मद्यमांसानि वर्जयेत्।
मासे मासे श्वमेधेन, स जयेच्च शतं समा ॥ ७ ॥

विष्णुके शयन किये बाद जो मनुष्य मद्य और मांसको त्यागता है वह मनुष्य महीने महीने अश्वमेध यज्ञ करके सौ बरस तक जयवन्त वर्तता है, इत्यादिक कथन किया है। तथा मार्कण्डेय ऋषि भी कहते हैं कि—

तैलाभ्यंगं नरो यस्तु, न करोति नराधिप।
बहु पुत्रधनैर्युक्तो, रोग हीनस्तु जायते ॥ १ ॥

हे राजन्! जो पुरुष तेल का मर्दन नहीं करता वह बहुत पुत्र और धनसे युक्त, होकर रोग रहित होता है।

पुष्पादिभोगसंत्यागात्, स्वर्गलोके महीयते।
कट्वम्लतिक्तमधुर, कषायक्षारजान् रसान् ॥ २ ॥

पुष्पादिक के भोगको और कडवे, खट्टे, तीखे मधुर, कषायले, खारे, रसोंको जो त्यागता है वह पुरुष स्वर्ग लोकमें पूजा पात्र होता है।

यो वर्जयेत् स वैरूप्यं, दौर्भाग्यं नाप्नुयात् क्वचित्।
तांबूल वर्जनात् राजन्, भोगी लावण्य माप्नुयात् ॥ ३ ॥

जो मनुष्य उपरोक्त पदार्थ को त्यागता है वह कुरूपत्व प्राप्त नहीं करता। तथा कहीं भी दुर्भागी पन प्राप्त नहीं करता। हे राजन्! ताम्बूल के परित्याग से भोगी पन और लावण्यता प्राप्त होती है।

फलपत्रादि शाकं च, त्यक्त्वा पुत्रधनान्वितम्।
मधुरस्वरो भवेत् राजन्, नरो वै गुड वर्जनात् ॥ ४ ॥

फल पत्रादि के शाकको त्यागने से मनुष्य पुत्र और धन सहित होता है। तथा हे राजन्! गुड़का त्याग करने से मधुर स्वरी मीठा बोलने वाला होता है।

लभते सन्ततिर्दीर्घां, तापा पक्वस्य वर्जनात्। भूमौ स्त्रस्त रसायी च, विष्णु रनुचरो भवेत् ॥ ५ ॥

तापसे न पके हुए खाद्य पदार्थ को त्यागने से मनुष्य बहुत ही लम्बी पुत्र पौत्रादिक सन्तति को प्राप्त करता है। जो मनुष्य चारपाई, पल्यंक विना भूमि पर शयन करता है वह विष्णु का सेवक बनता है।

दधिदुग्ध परित्यागात्, गो लोकं लभते नरः। यामद्वयजल त्यागात्, न रोगैः परिभूयते ॥ ६ ॥

दही दूधका त्याग करने से देवलोक को प्राप्त करता है। दो पहर तक पाणीके त्यागने से मनुष्य रोगसे पीडित नहीं होता।

एकांतरोपवासी च, ब्रह्मलोके महीयते। धारणान्नखलोमानां, गंगास्नानं दिने दिने ॥ ७ ॥

बीचमें एक दिन छोड़ कर उपवास करने से देवलोक में पूजा पात्र होता है। और नख व लोमके बढ़ाने से (पंच केश रखने से नख बढ़ाने से; प्रति दिन गंगा स्नानके फलको प्राप्त होता है।

परान्नं वर्जयेद्यस्तु, तस्य पुण्यमनन्तकम्।
भुञ्जते केवलं पापं, यो मौनेन न भुञ्जति ॥ ८ ॥

जो मनुष्य दूसरे का अन्न खाना त्यागता है उसे अनन्त पुण्य प्राप्त होता है। जो मनुष्य मौन धारण करके भोजन नहीं करता वह केवल पापको ही भोगता है।

उपवासस्य नियमं, सर्वदा मौन भोजनम् ।तस्मात्सर्वप्रयत्नेन, चतुर्मासे व्रती भवेत् ॥ ९ ॥

उपवास का नियम रखना, और सदैव मौन रह कर भोजन करना, तदर्थ चातुर्मास में विशेषतः उद्यम करना, चाहिए। इत्यादि भविष्योत्तर पुराण में कहा हुआ है।

पंचम प्रकाश

॥ वर्ष कृत्य ॥

पूर्वोक्त चातुर्मासिक कृत्य कहा। अब बारवीं गाथाके उत्तरार्धसे एकादश द्वारसे वर्ष कृत्य बतलाते हैं।

(बारहवीं मूल गाथाका उत्तरार्ध भाग तथा तेरहवीं गाथा)

१ पई वरिस संघचण। साहम्मि भत्तिअ। ३ तत्तातिग ॥ १२ ॥

४ जिणगिहिए न्हवण। ५ जिणधणबुड्ढी। ६ महा पूआ। ७ धम्म जागरिआ।
८ सुअपुआ। ९ उज्जवणं। १० तह तिथ्थप्प भावणा। ११ सोही ॥ १३ ॥

प्रति वर्ष ग्यारह कृत्य करने चाहिये जिनके नाम इस प्रकार हैं। १ संघपूजा, २ साधर्मिक भक्ति, ३ यात्रात्रय, ४ जिनघर पूजा, ५ देव द्रव्य वृद्धि ६ महापूजा ७ धर्मजागरिका ८ ज्ञान पूजा, ९ उद्यापन, १० तीर्थ प्रभावना, और ११ शुद्धि। इन ग्यारह कृत्योंका खुलासा नीचे मुजब है। १ प्रतिवर्ष जघन्यसे याने कमसे कम एकेक दफा संघार्चन अर्थात् चतुर्विध संघकी पूजा करना। २ साधर्मिक भक्ति याने साधर्मिक वात्सल्य करना। ३ यात्रात्रय याने १ रथयात्रा, २ तीर्थ यात्रा, ३ अष्टान्हिका यात्रा करना। ४ जिनेन्द्र गृहस्नपन मह याने मन्दिरमें बड़ी पूजा पढाना या महोत्सव करना। ५ देव द्रव्य वृद्धि याने माला पहनना, इन्द्रमाला पहनना पेहेरामणी करना, इसी प्रकार आरती उतारना आदिसे देवद्रव्यकी वृद्धि करना। ६ महापूजा याने बृहत् स्नात्रादिक करना। ७ धर्म जागरिका याने रात्रि धर्म निमित्त जागरण करना अर्थात् प्रभुके गुण कीर्तन और ध्यान वगैरह रात्रिके वख्त करना। ८ ज्ञान पूजा याने श्रुत ज्ञानकी विशेष पूजा करना। ९ उद्यापन याने वर्ष भरमें जो तप किया हो उसका उजमणा करना। १० तीर्थ प्रभावना याने जैन शासनकी उन्नति करना। ११ शुद्धि याने पापकी आलोचना लेना। श्रावकको इतने कृत्य प्रति वर्ष अवश्य करने योग्य हैं।

वथ्थं पत्तं च पुथ्थं च, कंवलं पायपुच्छणं।
दंड संथारयं सिज्जं अन्नं जं किंचि सुज्झई ॥ १ ॥

साधु साध्वीको वस्त्र, पात्र, पुस्तक, कंबल, पाद प्रोंछन, दंडक, संस्थारक, शय्या, और अन्य जो सूझे सो दे। उपधी दो प्रकारकी होती है। एक तो ओधिक उपधी और दूसरी उपग्रहिक उपधी। मुहपत्ति, दंड, प्रोंछन, आदि जो शुद्ध हों सो दे। याने संयमके उपयोगमें आनेवाली वस्तु शुद्ध गिनी जाती है। इस-लिये कहा है कि

जं वट्टई उवयारे। उवगरणं तंपि होई उवगरणं।
अइरेगं अहिगरणं अजओ अजयं परिहरंतो

जो संयमके उपकारमें उपयोगी हो वह उपकरण कहलाता है, और उससे जो अधिक हो सो अधि-करण कहलाता हैं। अयतना करनेवाला साधु अयतना से उपयोग में ले तो वह उपकरण नहीं परन्तु अधिक-रण गिना जाता है। इस प्रकार प्रवचन सारोद्धारकी वृत्तिमें लिखा है। इसी प्रकार श्रावक श्राविका की भी भक्ति करके यथाशक्ति संघ पूजा करनेका लाभ उठाना। श्रावक श्राविका को विशेष शक्ति न होने पर सुपारी वगैरह देकर भी प्रति वर्ष संघ पूजा करनेके विधिको पालन करना। तदर्थ गरीबाई में स्वल्प दान करनेसे भी महाफल की प्राप्ति होती है। इसलिये कहा है कि—

संपत्तौ नियमः शक्तौ, सहनं यौवने व्रतम्। दारिद्रे दानमप्यल्पं, महालाभाय जायते ॥

संपदामें नियम पालन करना, शक्ति होने पर सहन करना, यौवनमें व्रत पालन करना, गरीबाईमें भी दान देना इत्यादि यदि अल्प हों तथापि महाफलके देने वाले होते हैं।

सुना जाता है कि मंत्री वस्तु पालादिकों का प्रति चातुर्मास में सब गच्छोंके संघकी पूजा वगरह करनेमें बहुत ही द्रव्यका व्यय हुआ करता था। इसी प्रकार श्रावकको भी प्रति वर्ष यथाशक्ति अवश्य ही संघ पूजा करनी चाहिए।

॥ सधार्मिक वात्सल्य ॥

समान धर्म वाले श्रावकोंका समागम बड़े पुण्यके उदयसे होता है। अतः यथाशक्ति समान धर्मी भाइओंकी हरेक प्रकारसे सहायता करके साधर्मिक वात्सल्य करना चाहिए।

सर्वः सर्वं मिथः सर्वं, सम्बन्धान् लब्धपूर्विणः।
साधर्मिकादि सम्बन्धः, लब्धारस्तु मिताः क्वचित् ॥ १ ॥

तमाम प्राणिओं ने (माता पिता स्त्री वगरहके) पारस्परिक सर्व प्रकारके सम्बन्ध पूर्वमें प्राप्त किये हैं। परन्तु साधर्मिकादि सम्बन्ध पाने वाले तो कोई विरले ही कहीं होते हैं।

शास्त्रोंमें साधर्मी वात्सल्यका बड़ा भारी महिमा बतलाते हुए कहा है कि—

एगत्थ सव्व धम्मा, साहम्मिअ वच्छलं तु एगत्थ।
बुद्धि तुल्लाए तुलिआ दोवि अतुल्लाइं भणिआइं ॥ १ ॥

एक तरफ सर्व धर्म और एक तरफ साधर्मिक वात्सल्य रखकर बुद्धिरूप तराजूसे तोला जाय तो दोनों समान होते हैं। यदि संपत्ति और कीमती जन्म व्यर्थ नष्ट होता है इसलिये कहा है कि—

न कयं दीणुद्धरणं, न कयं साहम्मिआण वच्छल्लं।
हिययम्मि वीयराओ, न धारिओ हारिओ जम्मो ॥

दीनोंका उद्धार न किया, समान धर्म वाले भाइओंको वात्सल्यता याने सेवा भक्ति नकी, हृदयमें वीत-राग देवको धारण न किया तो उस मनुष्य ने मनुष्य जन्मको व्यर्थ ही हार दिया। समर्थ श्रावकको चाहिए कि वह प्रमादके वश या अज्ञानताके कारण उन्मार्गमें जाते हुए अपने स्वधर्मी बंधुको शिक्षा देकर भी उसके हितके बुद्धिसे उसे सन्मार्गमें जोड़े।

इस पर श्री संभवनाथ स्वामीका दृष्टान्त ॥

संभवनाथ स्वामीने पूर्वके तीसरे भवमें धातकी खंडके ऐरावत क्षेत्रमें क्षेमापुरीमें विमल वाहन राजा-के भवमें महा दुष्कालके साथमें समस्त साधर्मिको को भोजनादिक दान देनेसे तीर्थंकर नामकर्म बांधा था। फिर दीक्षा लेकर चारित्र पाल कर आनत नामक देवलोक में देव तया उत्पन्न हो फाल्गुण शुक्ल अष्टमीके दिन जब कि महादुष्काल था उनका जन्म हुआ। देव योगसे उसी दिन चारों तरफसे अकस्मात् धान्यका आगमन हुआ। अर्थात् जहा धान्यका असंभव था वहां धान्यका संभव होनेसे उन्होंका नाम संभवनाथ स्वामी स्थापित हुआ। इसलिये बृहद्भाष्यमें भी कहा है कि—

संभोखंति पवुच्चई, दिठ्ठे तं होई सव्वजीवाणं ॥
तो संभवे जिणेसो, सव्वे विहु संभवा एवं ॥ १ ॥

जिसे देखनेसे सब जीवोंको सुख हो उसे ही सुख कहते हैं। इसलिये संभवनाथ जिनेश्वर के प्रभावसे सर्व प्रकारके सुखका संभव होता है।

भणंति भुवण गुरुणो, न वरं अन्नंपि कारणं अथ्थि।
सावथ्थी नयरीए, कयाइ कालस्स दोसेणं ॥ २ ॥
जाए दुभिक्खभरे, दूथ्थी भूए जणे समथ्थेवि ॥
अवयरिओ एस जिणो; सेणादे वीइ उअरंमि ॥ ३ ॥
सयमेवागम्म सुराहिवेण संपूइआ तओ जणणी।
वध्धाविआय भुवणिक्क भाणु तणयस्स लाभेणं ॥ ४ ॥
तद्दिअहं चियसहसा, समथ्थ सथ्थेहिं धन्नपुन्नेहि।
सव्वत्तो इन्तेहिं, सुहं सुभिक्खं तहि जयं ॥ ॥५॥
संभविआइं जम्हा, समत्तासइ संभवे तस्य।
तो संभवोत्तिनामं पइठिअं जणणि जणएहि ॥ ६ ॥

(इन गाथाओंका अर्थ उपरोक्त संभवनाथ स्वामीके संक्षिप्त दृष्टान्तमें समा गया है)

शाह जगसिंह

देवगिरी नगरमें (मांडवगढ़) शाह जगसिंह अपने समान संपदा वाले स्वयं बनाये हुये तीनसौ साठ वणिक पुत्रोंसे बहत्तर हजार (७२०००) रुपियोंका एकमें खर्च हो इस प्रकारके प्रति दिन एकेकके पाससे साधर्मिक वात्सल्य कराता था। इससे प्रति वर्ष उसके तीनसौ साठ साधर्मिक वात्सल्य होते थे। इसी प्रकार आभू संघपति ने भी अपनी लक्ष्मीका सद्व्यय किया था। थरादग्राम में श्री मालवंश में उत्पन्न होने वाले आभू संघपति ने अपनी संपदा द्वारा तीनसौ साठ अपने साधर्मी भाइयों को अपने समान सम्पत्तिवान बनाया था।

कमसे कम श्रावकको एक दफा वर्षमें यात्रा अवश्य करनी चाहिये। यात्रा तीन प्रकारकी कही हैं।

अष्टान्हिकाभिधामेकां, रथयात्रामथापराम्। तृतीया तीर्थयात्रा चेत्याहुर्यात्रा त्रिधा बुधाः ॥ १ ॥

अठाई यात्रा, रथयात्रा, तथा तीर्थयात्रा, इस तरह शास्त्रकारों ने तीन प्रकार की यात्रा बतलाई हैं। उनमें अठाइयों का स्वरूप प्रथम कहा ही गया है। उन अठाइयोंमें विस्तार सहित सर्व चैत्य परिपाटी करना याने शहरके तमाम मन्दिरोंमें दर्शन करने जाना। रथयात्रा तो प्रसिद्ध ही है। तीर्थ याने शत्रुञ्जय, गिरनार आदि एवं तीर्थंकरों के जन्म कल्याणक दीक्षा कल्याणक, केवलज्ञान कल्याणक, निर्वाण कल्याणक, और बहुतसे जीवोंको शुभ भावना सम्पादन कराने तथा भवरूपी समुद्रसे तारनेके कारण तीर्थंकरों की विहार भूमि

भी तीर्थ कही जाती है। ऐसे तीर्थों पर समकित की शुद्धिके लिए और जैनशासन की प्रभावनार्थ विधि पूर्वक यात्रा करने जाना इसे तीर्थयात्रा कहते हैं।

जब तक यात्राके कार्यमें प्रवर्तता हो तब तक इतनी बातें अवश्य अंगीकार करनी चाहिये। एक दफा भोजन करना, सचित्त वस्तुका परित्याग, चारपायी पलङ्गको छोडकर जमीन पर शयन करना, ब्रह्मचर्य पालन करना वगैरह अभिग्रह धारण करना। पालकी उत्तम घोडा, रथ, गाड़ी, वगैरह की समग्र सामग्री होने पर भी यात्रालुको एवं विशेष श्रद्धावान श्रावकको भी शक्त्यानुसार पैदल चल कर जाना उचित हैं। इसलिये कहा जाता है कि

एकाहारी दर्शनधारी, यात्रासु भूशयनकारी। सचित्तपरिहारी पद्चारी ब्रह्मचारी च॥ १॥

एक दफे भोजन करने वाला सम्यक्त्व मे द्रढ रहने वाला, जमीन पर सोने वाला सचित्त वस्तुका त्याग करने वाला पैदल चलने वाला ब्रह्मचर्य पालने वाला ये छह (छहरी) यात्रामे जरूर पालनी चाहिये। लौकिकमें भी कहा है कि

यान धर्मफलं हन्ति तुरीयाशन्नुपानहौ। तृतीयाशमवपन, सर्व हन्ति प्रतिग्रहः॥ २॥

वाहन ऊपर बैठनेसे यात्राका आधा फल नष्ट होजाता हं। यात्रा समय पैरोंमे जूता पहनने से यात्राके फलका पौना भाग नष्ट होजाता है। हजामत करानेसे तृतीयांश फल नष्ट होता हैं और दूसरोंका भोजन करनेसे यात्राका तमाम फल चला जाता है।

एकभक्ताशना भाव्यं, तथा स्थंडिलशायिना। तीर्थानि गच्छता नित्य,मप्यतौ ब्रह्मचारिणा॥

इसीलिये तीर्थयात्रा करने वालेको एक ही दफा भोजन करना चाहिये। भूमिपर ही शयन करना चाहिये और निरन्तर ब्रह्मचारी रहना चाहिये।

फिर यथा योग्य राजाके समक्ष नजराना रख कर उसे सन्तोषित कर तथा उसकी आज्ञा लेकर यथाशक्ति सङ्घमें ले जानेके लिये कितने एक मन्दिर साथमें ले कर साधर्मिक श्रावकों एवं सगे सम्बन्धियों को विनय बहुमान से बुलावे। गुरु महाराज को भक्ति पूर्वक निमन्त्रण करे, जीवदया (अमारी) पलावे, मंदिरोंमें बड़ी पूजा वगैरह महोत्सव करावे, जिस यात्रीके पास खाना न हो उसे खाना दे, जिसके पास पैसा न हो उसे खर्च दे, वाहन न हो उसे वाहन दे, जो निराधार हों उन्हें धन देकर साधार बनावे, यात्रियों को वचनसे प्रसन्न रक्खे, जिसे जो चाहियेगा उसे वह दिया जावेगा ऐसी सार्थवाह के समान उद्घोषणा करे। निरुत्साही को यात्रा करनेके लिये उत्साहित करे, विशेष आडम्बर द्वारा सर्व प्रकारकी तैयारी करे। इस प्रकार आवश्यकानुसार सर्व सामग्री साथ लेकर शुभ निमित्तादिक से उत्साहित हो शुभ मुहूर्तमें प्रस्थान मंगल करे। वहां पर सर्वश्रावक समुदाय को इकठ्ठा करके भोजन करावे और उन्हें तांबूलादिक दे। पंचांग वस्त्र रेशमी वस्त्र, आभूषणादिक से उन्हें सत्कारित करे। अच्छे प्रतिष्ठित, धार्मिष्ठ, पूज्य, भाग्यशाली, पुरुषोंको पधराकर संघपति तिलक करावे। संघाधिपति होकर संघपूजा का महोत्सव करे और दूसरेके पास भी यथोचित कृत्य करावे। फिर संघपति की व्यवस्था रखनेवालों की स्थापना करे। आगे आनेवाले मुकाम, उतरने के

स्थान वगैरह से श्री संघको प्रथमसे ही विदित करे। मार्गमें चलती हुई गाड़ियां वगैरह सर्व यात्रियों पर नजर रक्खे यानी उनकी सार सम्हाल रक्खे। रास्तेमें आने वाले गामोंके मन्दिरोंमें दर्शन, पूजा प्रभावना करते हुये जाय और जहां कहीं जीर्णोद्धार की आवश्यका हो वहांपर यथाशक्ति वैसी योजना करावे। जब तीर्थका दर्शन हो तब सुवर्ण चांदी रत्न मोती वगैरह से तीर्थकी आराधना करे, साधर्मिक वात्सल्य करे और यथोचित दानादिक दे। पूजा पढ़ाना, स्नात्र पढ़ाना, मालोद्घाटन करना महाध्वजा रोपण करना, रात्रि जागरण करना, तपश्चर्या करना, पूजाकी सर्व सामग्री चढ़ाना, तीर्थरक्षकों का बहुमान करना तीर्थकी आय बढ़ानेका प्रयत्न करना इत्यादि धर्मकृत्य करना। तीर्थयात्रा में श्रद्धा पूर्वक दान देनेसे बहुत फल होता है जैसे कि तीर्थंकर भगवान के आगमन मात्रकी खबर देने वालेको चक्रवर्ती वगैरह श्रद्धावंतों द्वारा साढ़े बारह करोड़ सुवर्ण मुद्रायें दान देनेके कारण उन्हें महालाभ की प्राप्ति होती है। कहा है कि—

बित्तीइ सुवन्नस्सय, वारस अद्धं च सय सहस्साइं।
तावइ अं चिअकोडी, पीइ दाणंतु चक्किस्स॥

साडे बारह लाख सुवर्ण मुद्राओंका प्रीतिदान वासुदेव देता है। परन्तु चक्रवर्ती प्रीतिदान में साढे बारह करोड़ सुवण मुद्राएं देता है।

इस प्रकार यात्रा करके लौटते समय भी महोत्सव सहित अपने नगरमें प्रवेश करके नवग्रह दश दिक्पालादिक देवताओं के आराधनादिक करके एक वर्ष पर्यन्त तीर्थोपवासादिक तप करे। याने तीर्थ यात्राको जिस दिन गये थे उस तिथिको या तीर्थका जब प्रथम दर्शन हुआ था उस दिन प्रति वर्ष उस पुण्य दिनको स्मरण रखनेके लिये उपवास करे इसे तीर्थतप कहते हैं। इस प्रकार तीर्थ यात्रा विधि पालन करना।

विक्रमादित्य की तीर्थयात्रा

श्री सिद्धसेन दिवाकर सूरि प्रतिबोधित विक्रमादित्य राजाके श्री शत्रुंजय तीर्थकी यात्रार्थ निकले हुए संघमें १६७ सुवर्ण के मन्दिर थे, पांचसौ हाथीदांत के और चंदनमय मंदिर थे। श्री सिद्धसेन सूरि आदि पांच हजार आचार्य उस संघमें यात्रार्थ गये थे। चौदह बड़े मुकुटबद्ध राजा थे। सत्तर लाख श्रावकोंके कुटुंब उस संघमें थे। एक करोड़ दस लाख नव हजार गाड़ीयां थीं! अठारह लाख घोड़े थे। छहत्तर सौ हाथी थे, एवं खच्चर, ऊंट वगैरह भी समझ लेना।

इसी प्रकार कुमारपाल, आभू संघपति, तथा पेथड़ शाहके संघका वर्णन भी समझ लेना चाहिए। राजा कुमारपाल के निकाले हुए संघमें अठारह सौ चुहत्तर सुवर्णरत्नादि मय मन्दिर थे। इसी प्रमाणसे सब सामग्री समझ लेना।

थराद के पश्चिम मंडलिक नामक पदवीसे विभूषित आभू नामा संघपति के संघमें सात सौ मंदिर थे। उस संघमें बारह करोड़ सुवर्ण मुद्राओंका खर्च हुआ था। पेथड़शाह के संघमें ग्यारह लाख रुपियोंका खर्च हुआ था। तीर्थका दर्शन हुआ तब उसके संघमें बावन मन्दिर थे और सात लाख मनुष्य थे।

मंत्री वस्तुपाल की साड़े वारह दफा संघ सहित शत्रुंजय की तीर्थयात्रा हुई यह बात प्रसिद्ध ही है।

पुस्तकादिक में रहे हुए श्रुतज्ञान का कपूर वासक्षेप डालने वगैरह से पूजन मात्र प्रति दिन करना। तथा प्रशस्त वस्त्रादिक से प्रत्येक मासकी शुक्ल पञ्चमी को विशेष पूजा करना योग्य है। कदाचित् ऐसा न बन सके तो कमसे कम प्रति वर्ष एक दफा तो अवश्यमेव ज्ञान भक्ति करना जिसका विधि आगे बतलाया जायगा।

"उद्यापन"

नवकार के तपका आवश्यक सूत्र, उपदेशमाला, उत्तराध्ययनादि ज्ञान, दर्शन चारित्रके विविध तप सम्बन्धी उद्यापन कमसे कम प्रति वर्ष अवश्यमेव करना चाहिए। इसलिये कहा है कि।

लक्ष्मीः कृतार्थी सफलं तपोपि ध्यानं सदोच्चैर्जनबोधि लाभः।
जिनस्य भक्तिर्जिन शासनश्रीः,गुणाः स्युरुद्यापनतो नराणां ॥१॥

लक्ष्मी कृतार्थ होती है, तप भी सफल होता है, सदैव श्रेष्ठ ध्यान होता है, दूसरे लोगोंको बोधिबीज की प्राप्ति होती है, जिनराज की भक्ति और जिन शासन की प्रभावना होती है। उद्यापन करने से मनुष्य को इतने लाभ होते हैं।

उद्यापनं यत्तपसः समर्थने, तच्चैत्यमौलो कलशाऽधिरोपणं।
फलोपरोपो ह्यतपात्र मस्तके, तांबूलदानं कृतभोजनो परि ॥ २ ॥

जिस तप की समाप्ति होने से उद्यापन करना है वह मन्दिर पर कलश चढानेके समान है, अक्षत पात्र के मस्तक पर फल चढाने रूप और भोजन किये बाद तांबूल देने समान है।

सुना जाता है कि विधि पूर्वक नवकार एक लाख या करोड़ जपनेपूर्वक मन्दिर में स्नात्र, महोत्सव, साधर्मिक वात्सल्य, संघपूजा वगैरह प्रौढ आडम्बर से लाख या करोड अक्षत, अडसट सुवर्ण की तथा चांदी की प्यालियां, पट्टी, लेखनी, मणी मोती प्रवाल तथा नगद द्रव्य, नारियल वगैरह अनेक फल विविध जातिके पक्वान्न, धान्य, खादिम, स्वादिम, कपडे प्रमुख रखनेसे नवकार का उपधान वहनादि विधि पूर्वक माला रोपण होता है।

एवं आवश्यक के तमाम सूत्रोंका उपधान वहन करने से प्रतिक्रमण करना कल्पता है, इस प्रकार उपदेशमाला की ५४४ गाथाके प्रमाणसे ५४४ नारियल, लड्डू, कचौली वगैरह विविध प्रकार की वस्तुएं उपदेशमाला ग्रन्थ के पास रखने से उपदेश माला प्रकरण पढना, उद्यापन समझना। तथा समकित शुद्धि करने के लिये ६७ लड्डुओं में सुवर्ण मोहरें, चांदी का नाणा डाल कर उसकी लाहणी करे वह दर्शन मोदक गिना जाता है।

ईर्यावहि नवकार वगैरह सूत्रोंके यथाशक्ति विधि पूर्वक उपधान तप किये बिना उनका पढ़ना गिनना वगैरह नहीं कल्पता। उनकी आराधना के लिये श्रावकोंको अवश्य उपधान तप करना चाहिये। साधुओं

को भी योगोद्वहन करना पड़ता है। तद्वत् श्रावक योग्य सूत्रोंका उद्यापन तप करके मालारोपण करना योग्य है।

उपधान तपो विधिवद्विधाय, धन्यो निधाय निजकण्ठे।
द्वेधापि सूत्रमालां द्वेधापि शिवश्रियं श्रयति॥ १॥

धन्य हैं वे पुरुष कि जो उपधान तप विधि पूर्वक करके दोनों प्रकार की सूत्र माला (१०८ तार और इतने ही रेशमी फूल वगैरह बनाई हुई, अपने कंठ मे धारण करके दोनों प्रकार की मोक्षश्री को प्राप्त करते हैं

मुक्तिकनीवरमाला, सुकृतजलाकर्षणे घटीमाला।
साक्षादिव गुणमाला, मालापरिधीयते धन्यैः॥ २॥

मुक्ति रूपिणी कन्या को वरने की वर माला, सुकृत जलको खेंचने की अरघट्ट माला, साक्षात् गुण-माला, प्रत्यक्ष गुणमाला सरीखी माला धन्य पुरुषों द्वारा पहनी जाती है।

इस प्रकार शुक्ल पंचमी वगैरह तप के भी उसके उपवासों की संख्या के प्रमाणमें नाणा, कचोलियां, नारियल, तथा मोदकादिक एवं नाना प्रकारकी लाहाणी करके यथाश्रुत संप्रदाय के उद्यापन करना।

"तीर्थ प्रभावना"

तीर्थ प्रभावनाके निमित्त कमसे कम प्रति वर्ष श्रीगुरु प्रवेश महोत्सव प्रभावनादि एक दफा अवश्य-करना। गुरुप्रवेश महोत्सव में सर्व प्रकारके प्रौढ़ आडम्बर से चतुर्विध श्री संघ को आचार्यादिक के सन्मुख जाना। गुरु आदि का एवं श्री संघका सत्कार यथाशक्ति करना। इसलिये कहा है कि—

अभि गमण वंदण नमंसणेण, पडिपुच्छणेण साहूणं।
चिर संचिअंपि कम्मं, खणेण विरलत्तण मुवेइ॥ १॥

साधुके सामने जाने से, वंदन करनेसे सुखसाता पूछनेसे चिरकाल के संचित कर्म भी क्षणवारमें दूर हो जाते हैं।

पेथड़शाह ने तपगच्छ के पूज्य श्री धर्मघोषसूरि के प्रवेश महोत्सव में बहत्तर हजार रुपयोंका खर्चा किया था। ऐसे वैराग्यवान आचार्योंका प्रवेश महोत्सव करना उचित नहीं यह न समझना चाहिए। क्योंकि आगम को आश्रय करके विचार किया जाय तो गुरु आदिका प्रवेश महोत्सव करना कहा है। साधुकी प्रतिमा अधि-कार में व्यवहार भाष्य में कहा है कि—

तीरिअ उब्भाम निओग, दरिसणं सन्नि साहु मप्पाहे।
दण्डिअ भोइअ असई, सावग संघोव सक्कारं॥ १॥

प्रतिमाधारी साधु प्रतिमा पूरी होने से (प्रतिमा याने तप अभिग्रह विशेष) जो समीप में गांव हो वहां जाकर वहां रहे हुए साधुओं से परिचित होवे। वहां पर साधु या श्रावक जो मिले उसके साथ आचार्य को सन्देश कहलावे कि मेरी प्रतिमा अब पूरी हुई हैं। तब उस नगर या गांवके राजाको आचार्य विदित करे कि

अमुक मुनि बड़ा तप करके फिरसे गच्छमें आने वाला है। इससे उनका प्रवेश महोत्सव बड़े सत्कार के साथ करना योग्य है। फिर राजा अपनी यथाशक्ति उसे प्रवेश करावे। सत्कार याने उस पर शाल दुशाला चढ़ाना, वाजित्र बजाना, अन्य भी कितनेक आडम्बरसे जब गुरुके पास आवे तब उस पर वे वासक्षेप करें। यदि वैसा श्रद्धालु राजा न हो तो गांवका मालिक सत्कार करे। यदि वैसा भी न हो तो ऋद्धिवन्त श्रावक करे। और यदि वैसा श्रावक भी न हो तो श्रावकों का समुदाय मिलकर करे। तथा ऐसा प्रसंग भी न हो तो फिर साधु साध्वी वगैरह मिलकर सकल संघ यथाशक्ति सत्कार करे। सत्कार करने से गुणोंकी प्राप्ति होती है सो बतलाते हैं।

पम्भावणा पवयणे, सद्धा जणणं तहेव वहुमाणो।
ओहावणा कुतीथ्थ। जीअतह तीथ्थ वुद्दीअ॥ १॥

जैन शासन की उन्नति तथा अन्य साधुओं को प्रतिमा वहन करने की श्रद्धा उत्पन्न होती है। उनके दिलमें विचार आता है कि यदि हम भी ऐसी प्रतिमा वहन करेंगे तो हमारे निमित्त भी ऐसी जैन शासन की प्रभावना होगी। तथा श्रावक श्राविकाओ या मिथ्यात्वी लोगोंको जैन शासन पर बहुमान पैदा होता है जैसे कि दर्शक लोग विचार करें कि अहो आश्चर्य कैसा सुन्दर जैन शासन है कि जिसमें ऐसे उत्कृष्ट तपके करने वाले हैं। तथा कुतीर्थियों की अपभ्राजना हेलना होती है। एवं जैन शासन की ऐसी शोभा देख कर कई भव्य जीव वैराग्य पाकर असार संसार का परित्याग करके मुक्ति मार्गमें आरूढ़ हो सकते हैं। इस प्रकार बृहत्कल्प भाष्य की मलयगिरी सूरिकी की हुई वृत्तिमें उल्लेख मिलता है।

तथा यथाशक्ति श्री संघका बहुमान करना, तिलक करना, चन्दन जवादि सुरभित पुष्पादि वगैरह से भक्ति करना। इस तरह संघका सत्कार करने से और शासन की प्रभावना करने से तीर्थंकर गोत्र आदि महान गुणोंकी प्राप्ति होती है। कहा है कि

अपुव्व नाणगहणे, सुअभत्ती पवयण पभावणया। एएहिं कारणेहिं, तिथ्थयरत्तं लहइ जीवो॥ १॥

अपूर्व ज्ञानका ग्रहण करना, ज्ञान भक्ति करना, जैन शासन की उन्नति करना इतने कारणों से मनुष्य तीर्थंकरत्व प्राप्त करता है।

भावना मोक्षदा स्वस्य, स्वान्य योस्तु प्रभावना। प्रकारेणाधिकायुक्तं, भावनातः प्रभावना॥ २॥

भावना अपने आपको ही मोक्ष देने वाली होती है। परन्तु प्रभावना तो स्व तथा परको मोक्षदायक होती है। भावना में तीन अक्षर हैं और प्रभावना में हैं चार। प्र अक्षर अधिक होने के कारण भावना से प्रभावना अधिक है।

"आलोयण"

गुरुकी जोगवाई हो तो कमसे कम प्रति वर्ष एक दफा आलोयणा अवश्य लेनी चाहिए। इसलिये कहा है कि

प्रति संवत्सरं श्राद्धं, प्रायश्चित्तं गुरोः पुरः।
शोद्धयमानो भवेदात्मा, येनादर्श इवोज्वलः ॥ १ ॥

शोधते हुए याने शुद्ध करते हुए आत्मा दर्पण के समान उज्वल होती है। इसलिये प्रति वर्ष अपने गुरुके पास अपने पापकी आलोयणा-प्रायश्चित्त लेना। आवश्यक निर्युक्ति में कहा है कि—

चाउमासिअ वरिसे, आलोअ निअमसोउ दायव्वा।
गहणं अभिग्गहाणय, पुव्वग्गहिए निवेएउं ॥ १ ॥

चातुर्मास में तथा वर्षमें निश्चय ही अलोयण लेना चाहिये। नये अभिग्रहों को धारण करना और पूर्व ग्रहण किये हुए नियमों को निवेदित करना। याने गुरुके पास प्रगट करना। श्राद्ध जितकल्प वगैरह में आलोयण लेनेकी रीति इस प्रकार लिखी है—

पक्खिअ चाउम्मासे, वरिसे उक्कोस ओअ बारसहिं।
निअमा आलोइज्जा, गीआइ गुणस्स भणिअं च ॥ १ ॥

निश्चय से पक्षमें, चार महीने में, या वर्षमें या उत्कृष्ट से बारह वर्षमें भी आलोयण अवश्य लेनी चाहिए। गीतार्थ गुरुकी गवेषणा करने के लिये बारह वर्षकी अवधि बताई हुई है।

सल्लुद्धरणा निमित्तं, खित्तंमि सत्त जोअणसयाइं।
काले बारस वरिसं, गीअथ्थ गवेसणं कुज्जा ॥ २ ॥

पाप दूर करने के लिये क्षेत्रसे सातसौ योजन तक गवेषण करे, कालसे बारह वर्ष पर्यन्त गीतार्थ गुरुकी गवेषणा करे। अर्थात् प्रायश्चित्त देनेसे योग्य गुरुकी तलाशमें रहे।

गीअथ्थो कडजोगी, चारित्ती तहय गाहणा कुसलो।
खेअन्नो अविसाई, भणिओ आलोयणायरिओ ॥ ३ ॥

निशीथादिक श्रुतके सूत्र और अर्थको धारण करने वाला गीतार्थ कहलाता है। जिसने मन, वचन, कायाके योगको शुभ किया हो या विविध तप वाला हो वह कृत योगी कहलाता है, अथवा जिसने विविध शुभ योग और ध्यानसे, तपसे, विशेषतः अपने शरीर को परिकर्मित किया है उसे कृतयोगी कहते हैं। निरतिचार चारित्रवान हो, युक्तियों द्वारा आलोयणा दायकों के विविध तप विशेष अंगीकार कराने में कुशल हो उसे ग्रहणा कुशल कहते हैं। सम्यक् प्रायश्चित्त की विधिमें परिपूर्ण अभ्यास किया हुआ हो और आलोयणा के सर्व विचार को जानता हो उसे खेदज्ञ कहते हैं। आलोयण लेने वालेका महान अपराध सुनकर स्वयं खेद न करे परन्तु प्रत्युत उसे तथा प्रकार के वैराग्य वचनों से आलोयणा लेनेमें उत्साहित करे। उसे अविखादी कहते हैं। जो इस प्रकार का गुरु हो, उसे आलोयणा देने लायक समझना। वह आलोचनाचार्य कहलाता है।

आयार व माहार वं, ववहारुव्वीलए पकुव्ववीय।
अपरिस्सावी निज्जव, अवाय दंसी गुरु भणिओ ॥ ४ ॥

ज्ञानादि पंचविध आचार वाद, आलोयणा लेने वालेने जो अपने दोष कह सुनाए हैं उन पर चारो तरफका विचार करके उसकी धारणा करे वह आधार वान, आगमादि पांच प्रकारके व्यवहारको जानता हो उसे आगम व्यवहारी कहते हैं। उसमें केवली, मनः पर्ययज्ञानी, अवधिज्ञानी, चौदह पूर्वी, दस पूर्वी, और नव पूर्वी तक ज्ञानवान आगम व्यवहारी गिने जाते हैं। आठ पूर्वसे उतरते एक पूर्वधारी, एकादशांगधारी, अंतमें निशीथादिक श्रुतका पारगामी श्रुत व्यवहारी कहलाता है। दूर रहे हुए आचार्य और गीतार्थ यदि परस्पर न मिल सकें तो परस्पर उन्हें पूछकर एक दूसरेकी गुप्त सम्मति ले कर जो आलोयणा देता है वह आज्ञाव्यवहारी कहा जाता है। गुरु आदिकने किसीको आलोयणा दी हो उसकी धारणा कररखनेसे उस प्रकार आलोयणा देनेवाला धारणा व्यवहारी कहलाता है। आगममें कथन की हुई रीतिसे कुछ अधिक या कम अथवा परम्परासे आचरण हुआ हो उस प्रकार आलोयण दे सो जीतव्यवहारी कहलाता है।

इन पांच प्रकारके आचारको जानने वाला व्यवहार वान कहा जाता है। आलोयणा लेने वालेको ऐसी वैराग्यकी युक्तिसे पूछे कि जिससे वह अपना पाप प्रकाशित करते हुए लज्जित न हो। आलोयण लेनेवाले को सम्यक् प्रकारसे पाप शुद्धि कराने वाला प्रकूर्वी कहलाता है। आलोयण लेने वालेका पाप अन्यके समक्ष न कहे वह अपरिश्रावी कहलाता है। आलोयणा लेने वालेकी शक्ति देखकर वह जितना निर्वाह कर सके वैसा ही प्रायश्चित्त दे वह निर्वाक कहलाता है। यदि सचमुच आलोयणा न ले और सम्यक् आलोयणा न बतलावे तो वे दोनों जने दोनों भवमें दुःखी होते हैं। इस प्रकार विदित करे वह आपायदर्शी कहलाता है। इन आठ प्रकारके गुरुओंमें अधिक गुणवानके पास आलोयणा लेनी चाहिये।

आयरिआ इसगच्छे, संभोइअ इअर गीअ पासथ्यो। सारुवी पच्छाकड, देवय पडिमा अरिह सिद्धि ॥८॥

साधु या श्रावकको प्रथम अपने अपने गच्छोंमें आलोचना करना, सो भी आचार्यके समीप आलोचना करना। यदि आचार्य न मिले तो उपाध्यायके पास और उपाध्यायके अभावमें प्रवर्तकके पास एवं स्थविर, गणावच्छेदक, सांभोगिक, असांभोगिक, सविज्ञ गच्छमें ऊपर लिखे हुए क्रमानुसार ही आलोचना लेना। यदि पूर्वोक्त व्यक्तिओंका अभाव हो तो गीतार्थ पासथ्थाके पास आलोयण लेना। उसके अभावमें सारूपी गीतार्थके पास रहा हुआ हो उसके पास लेना, उसके अभावमें गीतार्थ पश्चात्य कृत्य गीतार्थ नहीं परन्तु गीतार्थके कितने एक गुणोंको धारण करने वालेके पास लेना। सारूपिक याने श्वेत वस्त्र धारी, मुंड, अबद्ध कच्छ, (लांग खुली रखने वाला) रजोहरण रहित, अब्रह्मचारी, भार्या रहित, भिक्षा ग्राही। सिद्ध पुत्र तो उसे कहते हैं कि जो मस्तक पर शिखा रक्खे और भार्या सहित हो। पश्चात्कृत उसे कहते हैं कि जिसने चारित्र और वेष छोड़ा हो। पार्श्वस्थादिक के पास भी प्रथमसे गुरु वंदना विधिके अनुसार वन्दना करके, विनयमूल धर्म है इस लिये विनय करके उसके पास आलोयणा लेना। उसमे भी पार्श्वस्थादिक यदि स्वयं ही अपने हीन गुणों को देखकर वन्दना प्रमुख न करावे तो उसे एक आसन पर बैठा कर प्रणाम मात्र करके आलोचना करना। पश्चात्कृत को तो थोड़े कालका सामायिक आरोपण करके (साधुका वेष देकर) विधि पूर्वक आलोचना करना।

ऊपर लिखे मुजब पार्श्वस्थादिक के अभावमे जहां राजगृही नगरी है, गुणशील चैत्य है, जहां पर अर्हन्त गणधरादिकों ने बहुनसे मुनियोको बहुतसी दफा, आलोयण दी हुई है वहांके कितने एक क्षेत्राधिपति देवताओंने वह आलोयणा वारंवार देखी हुई है और सुनी हुई है उसमें जो सम्यक्धारी देवता हों उनका अष्टमादिक तपसे आराधन करके (उन्हें प्रत्यक्ष करके) उन्होंके पास आलोयण लेना। कदापि वैसे देवता च्यव गये हों और दूसरे नवीन उत्पन्न हुए हो तो वे महाविदेह क्षेत्रमें विद्यमान तीर्थंकरको पूछकर प्रायश्चित्त दें। यदि ऐसा भी योग न बने तो अरिहन्तकी प्रतिमाके पास स्वयं प्रायश्चित्त अंगीकार करना। यदि वैसी किसी प्रभाविक प्रतिमाका भी अभाव हो तो पूर्व दिशा या उत्तर दिशाके सन्मुख अरिहन्त, और सिद्धको साक्षी रख कर आलोयण लेना। परन्तु आलोचना विना न रहना। क्योंकि सशल्यको अनाराधक कहा है। इसलिये

अगिओ नवि जाणई, सोहि चरणस्स देइ ऊणहिअं।
तो अप्पाणं आलोअगं, च पाडेई संसारे॥ ७॥

चारित्रकी शुद्धि अगीतार्थ नहीं जानता, कदापि प्रायश्चित्त प्रदान करे तो भी न्यूनाधिक देता है उससे प्रायश्चित्त लेने वाला और देनेवाला दोनो ही संसारमें परिभ्रमण करते हैं।

जह बालो जंपंतो, कज्जमकज्जं च उज्जुअं भणइ॥
तह तं आलोइज्जा, मायामय विप्प मुक्को अ॥ ८॥

जिस तरह बालक बोलता हुआ कार्य या अकार्यको सरलतया कह देता है वैसे ही आलोयण लेने वाले को सरलता पूर्वक आलोचना करनी चाहिए। अर्थात् कपट रहित आलोचना करना।

मायाई दोसरहिओ, पइसमयं वड्ढमाण संवेगो।
आलोइज्जा अकज्जं, न पुणो काहिति निच्छयओ॥ ९॥

मायादिक दोषसे रहित होकर जिसका प्रतिक्षण वैराग्य बढ रहा है, ऐसा होकर अपने कृत पापकी आलोचना करे। परन्तु उस पापको फिर न करनेके लिये निश्चय करे।

लज्जा इगार वेणं, बहुस्सुअ मएण वाविदुच्चरियं।
जो न कहेइ गुरुणं, नहु सो आराहगो भणिओ॥ १०॥

जो मनुष्य लज्जा से या बड़ाईसे किंवा इस खयालसे कि मैं बहुत ज्ञानवान हूं, अपना कृत दोष गुरुके समीप यदि सरलतया न कहे तो सचमुच ही वह आराधक नहीं कहा जासकता। यहां पर रसगारव, ऋद्धि गारव और साता गारवमें चेतनबद्ध हो तो उससे तप नहीं कर सकता और आलोयण भी नहीं ले सकता। अपशब्द से अपमान होनेके भयसे, प्रायश्चित्त अधिक मिलने के भयसे, आलोयण नहीं ले सकता। ऐसा समझना।

संवेग परं चित्तं, काउणं तेहिं तेहि सुत्तेहिं। सल्लाणुद्धरण विवाग, देसगाइहिं आलोए॥ ११॥

उस उस प्रकार के सूत्रके वचन सुनाकर, विपाक दिखला कर, वैराग्य वासित चित्त करके सल्यका उद्धरण करने रूप आलोयण करावे। आलोयण लेने वालेको दश दोष रहित होना चाहिये।

आकंपइत्ता अणुमाणइत्ता, जं दिठ्ठं वाहिरं व सुहुमंवा।
छन्नं सद्दाउलय, बहुजणं अवत्तं तस्सेवी ॥ १२ ॥

१ यदि मैं गुरु महाराज की वैयावच्च सेवा करूंगा तो मुझे प्रायश्चित्त तप कम देंगे इस आशय से गुरुकी अधिक सेवा करके आलोयण ले इसे 'आकंप' नामक प्रथम दोष समझना।

२ अमुक आचार्य सबको कमती प्रायश्चित्त देते हैं इस अनुमान से जो कम प्रायश्चित्त देते हों उनके पास जाकर आलोचना करे इसे 'दूसरा अनुमान दोष समझना चाहिए।

३ जो जो दोष लगे हुए हैं उनमे से जितने दोष दूसरों को मालूम हैं सिर्फ उतने ही दोषोंकी आलोचना करे। परन्तु अन्य किसी ने न देखे हुए दोषोंकी आलोचना न करे, उसे तीसरा दृष्ट दोष कहते हैं।

४ जो जो बड़े दोष लगते हैं उनकी आलोचना करे परन्तु छोटे दोषोंकी अवगणना करके उनकी आलोचना ही न करे उसे 'बादर' नामक चौथा दोष समझना चाहिए।

५ जिसने छोटे दोषोंकी आलोचना की वह बड़े दोषों की आलोचना किये बिना नहीं रह सकता इस प्रकार बाहर से लोगोंको दिखला कर अपने सूक्ष्म दोषों की ही आलोचना ले वह 'पांचवां सूक्ष्म दोष' कहलाता है।

६ गुप्त रीति से आकर आलोचना करे या गुरु न सुन सके उस प्रकार आलोचे वह 'छन्न दोष' नामक छट्टा दोष समझना।

७ शब्दाकुल के समय आलोचना करे जैसे कि बहुत से मनुष्य बोलते हों, बीचमें स्वयं भी बोले अथवा जैसे गुरु भी बराबर न सुन सके वैसे बोले अथवा तत्रस्थ सभी मनुष्य सुनें वैसे बोले तो वह 'शब्दाकुल' नामक सातवां दोष समझना।

बहुत से मनुष्य सुन सकें उस प्रकार बोलकर अथवा बहुत से मनुष्यों को सुनाने के लिये ही उच्च स्वरसे अलोचना करे वह 'बहुजन नामक आठवां दोष कहलाता है।

९ अव्यक्त गुरुके पास आलोवे याने जिसे छेद ग्रन्थोंका रहस्य मालूम न हो वैसे गुरुके पास आकर आलोचना करे वह 'अव्यक्त' नामक नवम दोष समझना चाहिए।

१० जैसे स्वयं दोष लगाये हुए हैं वैसे ही दोष लगाने वाला कोई अन्य मनुष्य गुरुके पास आलोचना करता हो और गुरुने उसे जो प्रायश्चित्त दिया हो उसकी धारणा करके अपने दोषोंको प्रगट किये बिना स्वयं भी उसी प्रायश्चित्त को करले परन्तु गुरुके समक्ष अपने पाप प्रगट न करे अथवा खरंट दोष द्वारा आलोचना करे (स्वयं सत्ताधीश या मगरुरी होनेके कारण गुरुका तिरस्कार करते हुए आलोचना करे) या जिसके पास अपने दोष प्रगट करते हुए शरम न लगे ऐसे गुरुके पास जाकर आलोचना करे वह 'तत्सेवी' नामक दसवां दोष समझना चाहिए। आलोयण लेने वालेको ये दशों ही दोष त्यागने चाहिए।

"आलोयणा लेनेसे लाभ"

लहुआ ल्हाई जणणं, अप्पपर निवत्ति अवज्जवं सोही।
दुर कक्करणं आणा, निस्सलतं च सोहीगुणा ॥ १३ ॥

१ जिस प्रकार भार उठाने वालेका भार दूर होनेसे शिर हलका होता है वैसे ही शल्य पापका उद्धार होनेसे–आलोचना करने से आलोयण लेने वाला हलका होता है याने उसके मनको समाधान होता है। २ दोष दूर होनेसे प्रमोद उत्पन्न होता है। ३ अपने तथा परके दोषकी निवृत्ति होती है। जैसे कि आलोयण लेनेसे अपने दोषकी निवृत्ति होना तो स्वाभाविक ही है परन्तु उसे आलोयण लेते हुए देख अन्य मनुष्य भी आलोयण लेनेको तय्यार होते हैं। ऐसा होनेसे दूसरों के भी दोषकी निवृत्ति होती है। ४ भले प्रकार आलोयण लेनेसे सरलता प्राप्त होती है। ५ अतिचार रूप मैलके दूर होनेसे आत्माकी शुद्धि होती है ६ दुष्कर कारकता होती है जैसे कि जिस गुणका सेवन किया है वही दुष्कर है, क्योंकि अनादि कालमें वैसा गुण उपार्जन करने का अभ्यास ही नहीं किया, इस लिये उसमें भी जो अपने दोषकी आलोचना करना है याने गुरुके पास प्रगट करना है सो तो अत्यन्त ही दुष्कर है। क्योंकि मोक्षके सन्मुख पहुंचा देने वाले प्रबल वीर्योल्लास की विशेषता से ही वह आलोयण ली जा सकती है। इसलिये निशीथ की चूर्णीमें कहा है कि—

तन्न दुक्करं जं पडिसे वीज्जई, तं दुक्करं जं सम्मं आलोइज्जइ ॥

जो अनादि कालसे सेवन करते आये हैं उसे सेवन करना कुछ दुष्कर नहीं है परन्तु वह दुष्कर है कि जो अनादि कालसे सेवन नहीं की हुई आलोयणा सरल परिणाम से ग्रहण की जाती है। इसीलिये अभ्यन्तर तपके भेद रूप सम्यक् आलोयणा मानी गयी है। लक्ष्मणादिक साध्वीको मास क्षपणादिक तपसे भी आलोयण अत्यन्त दुष्कर हुई थी। तथापि उसकी शुद्धि सरलता के अभाव से न हुई। इसका दृष्टान्त प्रति वर्ष पर्युषणा के प्रसंग पर सुनाया ही जाता है।

ससल्लो जइवि कुठ्ठुग्गं, घोरं वीरं तवं चरे। दीव्वं वाससहस्सं तु, तओ तं तस्स निष्फलं ॥ १ ॥

यदि सशल्य याने मनमें पाप रख कर उग्र कष्ट वाला शूर वीरतया भयंकर घोर तप एक हजार वर्ष तक किया जाय तथापि वह निष्फल होता है।

जह कुसलो विहु विज्जो, अन्नस्स कहेइ अप्पणो वाही।
एवं जाणं तस्सवि, सल्लुद्धरणं पर सगासे ॥ २ ॥

चाहे जैसा कुशल वैद्य हो परन्तु जब दूसरे के पास अपनी व्याधि कही जाय तब ही उसका निवारण हो सकता है। वैसे ही यद्यपि प्रायश्चित्त विधानादिक स्वयं जानता हो तथापि शल्यका उद्धार दूसरे से ही हो सकता है।

७ तथा आलोयणा लेनेसे तीर्थंकरों की आज्ञा पालन की गिनी जाती है। ८ एवं निःशल्यता होती है यह तो स्पष्ट ही है। उत्तराध्ययन के २९ वें अध्ययन में कहा है कि—

आलो अणयाएणं भंते जीवे किं जणइगो। आलो अणयाएणं माया निआण मिच्छादंसण सल्लाणं। अणंत संसार वद्धणाणं उद्धरणं करेइ। उज्जु भावं चणं जणइ। उज्जु भाव पडिवन्ने अणंजीवे अमाई इथ्थीवेअं न पुंसग वेअं च न बंधइ। पुव्व वध्दं चणं निज्जरेइ॥

(प्रश्न) हे भगवन्! आलोयण लेनेसे क्या होता है?

(उत्तर) हे गौतम! अलोयणा लेनेसे मायाशल्य, निदानशल्य, मिथ्यात्व शल्य, जो अनन्त संसारको बढ़ाने वाले हैं उनका नाश होता है। सरलभाव प्राप्त होता है। सरल भाव प्राप्त होनेसे मनुष्य कपट रहित होता है। स्त्रीवेद, नपुंसक वेद, नहीं बांधता। पूर्वमें बांधे हुए कर्मकी निर्जरा करता है—उन कर्मोंको कम करता है। आलोयणा लेनेमें इतने गुण हैं। यह श्राद्ध जित कल्पसे और उसकी वृत्तिसे उद्धृत करके यहां पर आलोयणा का विधि बतलाया है।

तीव्रतर अध्यवसाय से किया हुआ, बृहत्तर बड़ा, निकाचित-दृढ बांधा हुआ भी, बाल, स्त्री, यति, हत्या, देवादिक द्रव्य भक्षण, राजा की रानी पर गमनादिक महा पाप, सम्यक् विधि पूर्वक गुरु द्वारा दिया हुआ प्रायश्चित्त ग्रहण करने से उसी भवमें शुद्ध हो जाता है। यदि ऐसा न हो तो दृढ़प्रहारी आदिको उसी भवमें मुक्ति किस तरह प्राप्त हो सकती। इस लिये प्रतिवर्ष और प्रति चातुर्मास अवश्यमेव आलोयणा ग्रहण करना ही चाहिये।

षष्टम प्रकाश

॥ जन्म कृत्य ॥

अब तीन गाथा और अठारह द्वारसे जन्मकृत्य बतलाते हैं।

मूल गाथा।

जम्मंमि वासठाणं, तिवग्ग सिद्धीइ कारणं उचिअं।
उचिअं विज्जा गहणं, पाणिग्गहणं च मित्ताई॥ १४॥

जिन्दगी में सबसे पहले रहने योग्य स्थान ग्रहण करना उचित है। सो विशेषण द्वारसे हेतु बतलाते हैं। जहां पर धर्म, अर्थ व काम इन तीनों वर्गका यथा योग्यतया साधन हो सके ऐसे स्थानमें श्रावक को रहना चाहिए। परन्तु जहां पर पूर्वोक्त तीनों वर्गोंकी साधना नहीं हो सके वह दोनों भवका विनाशकारी स्थान होनेसे वहां निवास न करना चाहिए। इसलिये नीति शास्त्रमें भी कहा है कि—

न भील्लपल्लीषु न चौरसंश्रये, न पार्वती येषु जनेषु संवसेत्
न हिंस्र दुष्टाश्रयलोकसंन्निधौ, कुसंगतिः साधुजनस्य गर्हिता॥ १॥

भील लोगोंकी पल्लीमें न रहना, जहां बहुतसे चोरोंका परिचय हो वहां पर न रहना, पहाड़ी लोगोंके

पास न रहना, जहां पर दुष्ट आशय वाले और हिंसक लोग निवास करते हों वहां पर न रहना, क्योंकि कुसंगति साधु पुरुषोंको याने श्रेष्ठ मनुष्योंके लिये निंदनीय कही है।

तत्र धाम्नि निवसे द्गृह मेधी सम्पतन्ति खलु यत्र मुनींद्राः।
यत्र चैत्यगृहमस्ति जिनानां, श्रवकाः परिवसन्ति यत्र च ॥ १ ॥

जहां पर साधु लोग आते जाते हों वैसे स्थानमें गृहस्थको निवास करना चाहिए। तथा जहां जैन मन्दिर हो और जहां पर अधिक श्रावक रहते हों वैसे स्थानमें रहना चाहिए।

विद्वत्प्रायो यत्र लोको निसर्गात्। शील' यस्मिन् जीवितादप्यभीष्टं।
नित्य' यस्मिन् धर्मशीलाः प्रजाः स्युः तिष्ठेत्तस्मिन् साधु संगो हि भूत्यै ॥ ३ ॥

जहांके लोग स्वभावसे ही विचारशील—विद्वान्—हों, जिन लोगोंमें अपने जीवितके समान सदाचार की प्रियता हो, तथा जहां पर धर्मशील प्रजा हो, श्रावक को वहां ही अपना निवास स्थान करना चाहिए क्योंकि सत्संगत से ही प्रभुता प्राप्त होती है।

जथ्थ पुरे जिण भुवणं, समयविउ साहु सावया जथ्थ।
तथ्थसया वसियव्वं, पउरजलं इंधणं जथ्थ ॥ ४ ॥

जिस नगरमें जिन मन्दिर हो, जैन शासनमें जहां पर विज्ञ साधु और श्रावक हों, जहां प्रचुर जल और इंधन हो वहां पर सदैव निवास स्थान करना चाहिए।

जहां तीनसो जिन भुवन हैं, जो स्थान सुश्रावक वर्गसे सुशोभित है, जहां सदाचारी और विद्वान् लोग निवास करते हैं, ऐसे अजमेरके समीपस्थ हरखपुर में जब श्री प्रियग्रंथ सूरि पधारे तब वहांके अठारह हजार ब्राह्मण और छत्तीस हजार अन्य बड़े गृहस्थ प्रतिबोध को प्राप्त हुए थे।

सुस्थानमें निवास करनेसे धनवान, और धर्मवान को वहां पर श्रेष्ठ संगति मिलनेसे धनवन्तता, विवेकता, विनय, विचारशीलता, आचार शीलता, उदारता, गांभीर्य, धैर्य, प्रतिष्ठादिक अनेक सद्गुण प्राप्त होते है। वर्तमान कालमें भी ऐसा ही प्रतीत होता है कि सुसंस्कारी ग्राममें निवास करनेसे सर्व प्रकार की धर्म करनी वगैरह में भली प्रकार से सुभीता प्रदान होता है। जिस छोटे गांवमें हलके विचार के मनुष्य रहते हों या नीच जातिके आचार विचार वाले रहते हों वैसे गांवमें यदि धनार्जनादिक सुखसे निर्वाह होता हो तथापि श्रावक को न रहना चाहिए। इसलिये कहा है कि

जथ्थ न दिसंतिजिणा, नय भवणं नेव संघमुह कमलं।
नय सुव्वइ जिणवयणं, किंताए अथ्थ भूईए ॥१॥

जहां जिनराजके दर्शन नहीं, जिन मन्दिर नहीं, श्री संघके मुखकमल का दर्शन नहीं, जिनवाणी का श्रवण नहीं उस प्रकारकी अर्थ विभूतिसे क्या लाभ ?

यदि वांछसि मूर्खत्वं, ग्रामे वस दिनत्रयं। अपूर्वस्यागमो नास्ति, पूर्वाधीतं विनश्यति ॥ २ ॥

यदि मूर्खताको चाहता हो तो तू तीन दिन गांवमें निवास कर क्योंकि वहां अपूर्व ज्ञानका आगमन नहीं होता और पूर्वमें किये हुए अभ्यासका भी विनाश हो जाता है।

सुना जाता है कि किसी नगर निवासी एक मनुष्य जहां बिलकुल बनियोंके थोड़े से घर हैं वैसे गांव-में धन कमानेके लिये जाकर रहा। वहां पर खेती वाड़ी वगैरह विविध प्रकारके व्यापार द्वारा उसने कितना एक धन कमाया तो सही परन्तु इतनेमें ही उसके रहनेका घासका झोंपड़ा जिलग उठा। इसी प्रकार जब उसने दूसरी दफे कुछ धन कमाया तब चोरीकी धाडसे, राजदण्ड, वगैरह कारणोंसे जो जो कमाया सो गमाया। एक दिन उस गांवके किसी एक चोरने किसी नगरमें जाकर डांका डाला इससे उस गांवके राजाने उस गांवके बनियों वगैरहको पकड़ लिया। तब गांवके ठाकुरने राजाके साथ युद्ध करना शुरू किया, इससे उस बड़े राजाके सुभटोंने उन्हें खूब मारा। इसी कारण कुग्राममें निवास न करना चाहिए।

ऊपर लिखे मुजब उचित स्थानमे निवास किया हुआ हो तथापि यदि वहां गांवके राजाका भय, एवं अन्य किसी राजाका भय, या परस्पर राज बंधुओंमें विरोध हुआ हो, दुर्भिक्ष, मरकी, ईति याने उपद्रव, प्रजा विरोध, वस्तुक्षय, याने अन्नादिक की अप्राप्ति, वगैरह अशांतिका कारण हो तो तत्काल ही उस नगर या गांव को छोड़ देना चाहिए। यदि ऐसा न करे तो तीनों वर्गकी हानि होती है। जैसे कि जब मुगल लोगोंने दिल्लीका विध्वंस किया और उन लोगोंको वहांपर जब भय उत्पन्न हुआ तब जो दिल्लीको छोड़कर गुजरात वगैरह देशोंमे जा बसे उन्होंने तीनवर्गकी पुष्टि करनेसे अपने दोनों भव सफल किये। परन्तु जो दिल्लीको न छोड़कर वहां ही पड़े रहे उन्हें कैदका अनुभव करना पड़ा और वे अपने दोनों भवसे भ्रष्ट हुए। वस्तु-क्षय होनेसे स्थान त्याग करना वगैरह पर क्षिति प्रतिष्ठित, चणकपुर, ऋषभपुरके दृष्टान्त समझ लेने चाहिए, एवं ऋषिओंने कहा है (खीइ चण उसभ कुसग्गं, रायगिह चंप पाडली पुत्तं। क्षिति प्रतिष्ठितपुर, चणक-पुर, कुशाग्रपुर, चंपापुरी, राजगृही, पाटलीपुर, इस प्रकारके दृष्टान्त नगर क्षयादि पर समझना। जो योग्य वासस्थानमें रहनेका कहा है उसमें वासस्थान शब्दसे घर भी समझ लेना।

"पड़ोस"

खराब पड़ोसमें भी न रहना चाहिए इसलिये आगममे इस प्रकार कहा है कि—

खरिश्रा तिरिक्ख जोणि, तालायर समणमाहण सुसाणा।
वगुरिश्र वाह गुम्मिश्र, हरिएस पुलिंद मच्छंधा॥ १॥

वेश्या, गड़रिया, गवालादिक, भिखारी, बौद्धके तापस, ब्राह्मण, स्मशान, वाघरी—हलके आचार वाली एक जाति, पुलिसादिक, चांडाल, भिल्ल, मछिआरे,

जुआर चोर नड नट्ठ, भट्ट वेसा कुकम्म कारिणं।
संवासं वज्जिमज्जा, घर हट्टाणं च मित्ति अ॥ २॥

जुये बाज, चोर, नट (वादी), नाटक करने वाले, भाट (चारण) कुकर्म करने वाले, आदि मनुष्यों-का पड़ोस तथा मित्रता वर्जनी चाहिए।

दुःखं देव कुलासन्ने, गृहे हानि चतुः पथे।
धूर्तामात्य गृहाभ्यासे, स्यातां सुत धनक्षयौ॥ १॥

मन्दिरके पास रहे वह दुःखी हो, बाजारमें घर हो उसे विशेष हानि होती है, धूर्त दीवानके पास रहनेसे पुत्र पौत्रादिक धनकी हानि होती है।

मूर्खा धार्मिक पाखंडि, पतितस्तेन रोगिणां।
क्रोधनांत्यज हप्तानां, गुरु तुल्पग वैरिणां ॥ २ ॥
स्वामिवंचक लुब्धाना, मृषो स्त्री बालघातिनां।
इच्छन्नात्महितं धीमान्, प्रातिवेश्मकतां त्यजन् ॥ ३ ॥

मूर्ख, अधर्मी, पाखंडी, धर्मसे पतित, चोर, रोगी, क्रोधी, अन्त्यज, (कोली, घाघरी आदि हलकी जाति वाले तथा चांडाल) उद्धत, गुरुकी शय्या पर गमन करने वाला, वैरी, स्वामी द्रोही, लोभी, ऋषि, स्त्री, बालहत्या करनेवाला, जिसे अपने हितकी चाहना हो उसे उपरोक्त लिखी व्यक्तियोंके पड़ोसमें निवास नहीं करना चाहिये।

कुशील आदिकोंके पड़ोसमें रहनेसे सचमुच ही उनके हलके वचन सुननेसे और उनकी खराब चेष्टायें देखनेसे स्वाभाविक ही अच्छे गुणवानके गुणोंकी भी हानि होती है। अच्छे पड़ोसमें रहनेसे पड़ोसनोंने मिल कर खीरकी सामग्री तय्यार कर दी ऐसे संगमें शालीभद्र के जीवको महा लाभकारी फल हुआ। और बुरे पड़ोसके प्रभावसे पर्वके दिन पहिलेसे ही बहूने मुनिको दिया हुआ अग्रपिंड से भी पड़ोसनों द्वारा भरमाई हुई सोमभट्ट की भार्याका दृष्टांत समझना।

सुस्थान घर वह कहा जाता है कि जिसमें जमीनमें शल्य, भस्म, क्षात्रादिक दोष न हों। याने वास्तुक शास्त्रमें बतलाये हुए दोषोंसे रहित हो। ऐसी जमीनमें बहुल दुर्वा, प्रवाल, कुश, स्तंभ, प्रशस्त, वर्णगंध, मृत्तिका सुस्वादु जल, निधान वगैरह निकलें वहां पर बनाए हुए घरमें निवास करना। इसलिये वास्तुक शास्त्रमें कहा है कि—

शीतस्पर्शोष्ण काले या, त्युष्णा स्पर्शा हिमागमे।
वर्षासु चोभयस्पर्शा, सा शुभा सव देहिनां ॥ १ ॥

उष्ण कालमें जिसका शीत स्पर्श हो, शीतकाल मे जिसका उष्ण स्पर्श हो, चातुर्मास में शीतोष्ण स्पर्श हो ऐसी जमीन सब प्राणिओं के लिये शुभ जानना।

हस्तमात्र खनित्वादौ, पूरिता तेन पांशुना।
श्रेष्ठा समधिके पांसो, हीना हीने समे समा ॥ २ ॥

मात्र एक हाथ जमीन को पहिले से खोद कर उसमें से निकली हुई मट्टीसे फिर उस जमीन को समान रीतिसे पूर्ण कर देते हुए यदि उसमें की धूल घटे तो हीन, बराबर हो जाय तो समान, और यदि बढ़ जाय तो श्रेष्ठ जमीन समझना।

पदगति शतं यावत्तांभः पूर्णा न शुष्यति। सोचमे कांगुला हीना, मध्यमा तत्पराधमा ॥ ३ ॥

जमीन में पानी भरके सौ कदम चले उतनी देरमें यदि वह पानी न सूखे तो उत्तम जानना, एक अंगुल पानी सूख जाय तो मध्यम और अधिक सूख जाय तो जघन्य समझना।

अथवा तत्र पुष्पेषु, खाते सत्युषि तेषु च।
समार्थं शुष्कशुष्केषु, सुवस्त्रैविध्य मा जिशेत् ॥ ४ ॥

अथवा जमीन की खातमें पुष्प रख कर ऊपर वही मट्टी डाल कर सौ कदम चले इतने समय में यदि पुष्प न सूके तो वह उत्तम, आधा सूख जाय तो मध्यम और सारा सूख जाय तो जघन्य जमीन समझना इस तरह परीक्षा द्वारा तीन प्रकारकी जमीन जानना।

त्रि पंच सप्त दिवसैः, रुप्त व्रीह्यादि रोहणात्।
उत्तमा मध्यमा हीना, विज्ञेया त्रिविधा मही ॥ ५ ॥

तीन, पांच, सात दिनमें बोई हुई शाली वगैरह के उगने से उत्तम, मध्यम, और हीन इस तरह अनुक्रमसे तीन प्रकार की पृथ्वी समझना।

व्याधिं वल्मीकिनीनैः, स्वं शुषिरा स्फुटितामृतिं।
दत्ते भूःशल्ययुगदुःखं, शल्यं ज्ञेयं तु यत्नतः ॥ ६ ॥

जमीन को खोदते हुए अन्दर से जो कुछ निकले उसे शल्य कहते हैं। जमीन खोदते हुए यदि इसमेंसे वल्मीकी (वंबी) निकले तो व्याधि करे, पोलार निकले तो निर्धन करे, फटी हुई निकले तो मृत्यु करे, हाड़ वगैरह निकले तो दुःख दे, इस प्रकार बहुत से यत्नसे शल्य जाना जा सकता है।

नृशल्य नृहान्यैः खरशल्ये नृपादिभिः। शुनोस्थिडिंभमृत्यैः शिशुशल्यं गृहस्वामि प्रवासाय। गौशल्यं गोधन हान्यै नृकेश कपालभस्मादि मृत्यै इत्यादि ॥ जमीनमें से नर शल्य हड्डियां निकले तो मनुष्य की हानि करे, खरका शल्य निकले तो राजादि का भय करे, कुत्तेकी हड्डियां निकलें तो बच्चों की मृत्यु करे, बालकों का शल्य निकले तो घर बनाने वाला प्रवास ही किया करे, याने घरमें सुख से न बैठ सके। गायका शल्य निकले तो गोधन का विनाश करे और मनुष्य के मस्तक के केश, खोपड़ी भस्मादिक निकलने से मृत्यु होती है।

प्रथमांत्य याम वर्ज्य, द्वित्रि प्रहार संभवा। छाया वृक्ष ध्वजादीनां, सदा दुःखप्रदायनी ॥ १ ॥

पहले और चौथे प्रहर सिवाय दूसरे और तीसरे प्रहर की वृक्ष या ध्वजा वगैरह की छाया सदैव दुःखदायी समझना।

वर्जयेदर्हतः पृष्ठं, पार्श्वं ब्रह्म मधु द्विषोः।
चंडिकासूर्ययोर्दृष्टिं, सर्वमेवच शूलिनः ॥ २ ॥

अरिहन्त की पीठ वर्जना, ब्रह्मा और विष्णु का पासा वर्जना, चंडीकी और सूर्य देवकी दृष्टि वर्जनी, और शिवकी पीठ, पासा और दृष्टि वर्जना।

वामांग वासुदेवस्य, दक्षिणां ब्रह्मणः पुनः।
निर्माल्यं स्नानपानीयं, ध्वजच्छाया विलेपनं।
प्रशस्ता शिखरच्छाया, दृष्टिश्चापि तथार्हतः ॥

कृष्णके मन्दिर का बायां पासा, ब्रह्माके मन्दिरका दहिना पासा, निर्माल्य स्नान का पानी, ध्वजाकी छाया और विलेपन इतनी चीज वर्जने योग्य हैं।

मन्दिर के सिखर की छाया और अरिहन्त की दृष्टि प्रशंसनीय है। कहा भी है कि

बज्जिज्जई जिण पुठ्ठी, रवि ईसर दिट्ठि विण्हु वामोअ।
सव्वथ्थ असुह चण्डी, तम्हा पुण सव्वहा चयइ ॥ २ ॥

जिनकी पीठ वर्जना, सूर्य, शिवकी दृष्टि वर्जना, बाएँ विष्णु वर्जना, चंडी सर्वत्र अशुभकारी है अतः उसका सर्वथा त्याग करना।

अरिहन्त दिट्ठि दाहिण, हरपुठ्ठी वामए सुकल्लाणं।
विवरीए बहु दुख्खं, पर न मग्गंतरे दोसो ॥ २ ॥

अर्हन की दहिनी दृष्टि, शिवकी पीठ, बाएं विष्णु कल्याणकारी समझना। इससे विपरीत अच्छे नहीं। परन्तु बीचमें मार्ग होवे तो दोष नहीं।

ईसाणाइ कोणे, नयरे गामे न कीरिए गेहं। संतलो आए असुहं, अन्तिम जाईण रिद्धिकरं ॥ ३ ॥

नगरमें या गांवमें ईशान तरफ घर न करना, क्योंकि यह उच्च जाति वालोंको असुखकारी होता है। परन्तु नीच जाति वालोंके लिये ऋद्धि कारक है। घर करने में स्थानके गुण दोषका परिज्ञान, शकुनसे, स्वप्नसे, शब्द, निमित्त से करना। सुस्थान भी उचित मूल्य देकर पड़ोसियों की संमति लेकर न्याय पूर्वक लेना। परन्तु दूसरे को तकलीफ देकर न लेना। एवं पड़ोसिओं की मर्जी बिना भी न लेना चाहिए। एवं ईंट, पाषाण, काष्ठ वगैरह भी निर्दोष, दृढ, सारत्वादि गुण जान कर उचित मूल्य देकर ही मंगवाना। सो भी बेचने वालेके तैयार किये हुए ही खरीदना परन्तु उससे अपने वास्ते नवीन तैयार न करना। क्योंकि वैसा कराने से आरंभादि का दोष लगता है।

"देवद्रव्य के उपभोग से हानि"

सुना जाता है कि दो बनिये पड़ोसी थे उनमें एक धनवन्त और दूसरा निर्धन था। धनवान सदैव निर्धन को तकलीफ पहुंचाया करता था। निर्धन अपनी निर्धनता के कारण उसका सामना करने में असमर्थ होनेसे सब तरह लाचार था। एक समय धनवान का एक नया मकान चिना जाता था। उसकी भींत वगैरह में नजीक में रहे हुए जिन भुवन की पुरानी भीतमें से निकल पड़ी हुई, ईंटें कोई न देख सके उस प्रकार चिन दीं। अब जब घर तैयार हो गया तब उसने सत्य हकीकत कह सुनायी तथापि वह धनवन्त बोला कि इससे मुझे क्या दोष लगने वाला है? इस तरह अवगणना करके वह उस घरमें रहने लगा। फिर धनवान् का थोड़े ही दिनोंमें वज्राग्नि वगैरह से सर्वस्व नष्ट होगया। इसलिये कहा भी है कि—

पासाय कूव वावी, मसाण मसाण मठ राय मंदिराणं च।
पाहाण इट्टकठ्ठा, सरिसवं मित्तावि वज्जिज्जा ॥ १ ॥

मन्दिर के, कुएके, बावड़ी के, स्मशान के, मठके, राज मन्दिर के पाषाण, ईंट, काष्ट, वगैरह का सर्वत्र मात्र तक परित्याग करना चाहिए।

पाहाण मयं थंभं, पीढं च बार उत्ताड़ं।

एएगोहि विरुद्धा, सुहावहा धम्मठाणेसु ॥ २ ॥

स्तंभे पीढा, पट्ट, बारसांख इतने पाषाण मय धर्म स्थानमें सुखकारक होते हैं परन्तु गृहस्थ को अपने घरमें न करना चाहिये।

पाहाणम एकट्ठं, कट्ठमए पाहाणस्स थंभाइं। पासाएअ गिहेवा, वज्जे अव्वा पयत्तेणं ॥ ३ ॥

पाषाण मयमें काष्ट, काष्ठ मयमें पाषाण, स्तंभे, मन्दिर में या घरमें प्रयत्न पूर्वक त्याग देना। (याने घरमें या मन्दिर में एवं उलट सुलट न करना।

हल घाणय सगडाई, अरहट्ट यन्ताणि कंटई तहय।

पंचूंबरि खीरतरु, एआणं कट्ठ वज्जिज्जा ॥ ४ ॥

हल, घाणी, गाडी, अरहट्ट, यन्त्र (चरखादि भी) इतनी वस्तुएं, कंटाला वृक्षकी या पंचुम्बर (वड, पीपलादि) एवं दूध वाले वृक्षकी वर्जनीय हैं।

बीज्जउरी केलिदाडिम, जंबीरी दोहिलिह अंबिलिआ।

बुब्बुलिबोरी माई, कणयमया तहवि वज्जिज्ज ॥ ५ ॥

बिजोरी के, केलेके, अनारके, दो जातियोंके अंबोरेके, हलदूके, इमलीके, कीकरके, बेरीके, धतूरा, इत्यादि के वृक्ष मकान में लगाना सर्वथा वर्जनीय है।

एआणं जइअ जड़ा, पाडवसाओ पविसइ अहवा।

छायावा जंमिगिहे कुलनासो हवइ तथ्येव ॥ ६ ॥

इतने वृक्ष यदि घरके पड़ोस में हो और उनकी जड़ या छाया जिस घरमें प्रवेश करे उस घरमें कुलका नाश होता है।

पुव्वुन्नय अथ्थहरं, जमुन्नयं मंदिरं धणसमिद्धं।

अवरुन्नय विद्धिकरं, उत्तरुन्नय होइ उव्वसिअं ॥ ७ ॥

पूर्व दिशामें ऊंचा घर हो तो धनका नाश करे, दक्षिण दिशामें ऊंचा हो तो धन समृद्धि करे, पश्चिम दिशामें ऊंचा हो तो ऋद्धिकी वृद्धि करे, और यदि उत्तर दिशामें घर ऊंचा हो तो नाश करता है।

वलयागारं कूणेहिं, संकूलं अहव एग दुति कूणं।

दाहिण वामय दीहं, न वासियव्वेरि संगेहं ॥ ८ ॥

गोल आकार वाला, जिसमे बहुतसे कोने पड़ते हों, और जो भीडा हो, एक दो कोने हो, दक्षिण दिशा तरफ और बांयी दिशा तरफ लम्बा हो, ऐसा घर कदापि न बनवाना।

सयमेव जे किवाडा, पिहिअन्तिअ उग्घडंतिते असुहा।

चित्तकलसाइ सोहा, सविसेसा मूल वारिसुहा ॥ ६ ॥

जिस घरके किवाड़ स्वयं हो बन्द हो जांय और स्वयं ही उघड़ जाते हों वह घर अशुभ समझना। जिस घरके चित्रित कलशादिक शोभा मूल द्वार पर हों, वह सुखकारी समझना। याने घरके अग्र भाग पर चित्र कारी श्रेष्ठ गिनी जाती हैं।

"घरमें न करने योग्य चित्र"

जोइणि नट्टारंभं, भारह रामायणं च निवजुद्धं।
रिसिचरियं देव चरिअं, इअ चित्तं गेहि नहुजुत्तं ॥ ७ ॥

योगिणी के चित्र, नाटक के आरंभ के चित्र, महाभारत के युद्धके चित्र, रामायण में आये हुए युद्ध के देखाव के चित्र, राजाओं में पारस्परिक युद्धके चित्र, ऋषिओं के चरित्र के दिखाव, देवताओं के चरित्र के दिखाव, इस प्रकार के चित्र गृहस्थ को अपने घरमें कराने युक्त नहीं। शुभ चित्र घरमें अवश्य रखना चाहिये।

फलिह तरु कुसुमवलि सरस्सई नवनिहाण जुअ लच्छी।
कलसं वद्धावणयं, कुसुमावलि आइ सुहचित्तं ॥

फले हुए वृक्षोंके दिखाव, प्रफुल्लित वेलके दिखाव, सरस्वति का स्वरूप, नव निधान के दिखाव, लक्ष्मी देवता का दिखाव, कलश का दिखाव आते हुए वर्धापनी के दिखाव, चौदह स्वप्न के दिखाव की श्रेणी, इस प्रकार के चित्र गृहस्थ के घरमें शुभकारी होते हैं। गृहांगण में लगाये हुए वृक्षोंसे भी शुभाशुभ फल होता है।

खजूरी, दाडमारम्भा, कर्कन्धूर्बीज पूरिका। उत्पद्यते गृहे यत्र, तन्निकृतंति मूलतः ॥ ८ ॥

खजूरी, दाडम, केला, कोहली, बिजोरा, इतने वृक्ष जिसके गृहांगण में लगे हुए हों वे उसके घरके लिये मूलसे विनाशकारी समझना।

लक्ष्मी नाशकरः क्षीरी, कंटकी शत्रुभीप्रदः।
अपत्यघ्नः फली, स्तस्मादेषां काष्ठमपि त्यजेत् ॥ १० ॥

जिनमेंसे दूध झरे ऐसे वृक्ष लक्ष्मीको नाश करनेवाले होते हैं, कांटेवाले वृक्ष शत्रुका भय उत्पन्न करनेवाले होते हैं, फलवाले वृक्ष बच्चोंका नाश करनेवाले होते हैं इसलिये वृक्षोंके काष्टको भी वर्जना चाहिये।

कश्चिदुचे पुरोभागे, वटः श्लाघ्य उदंबरः। दक्षिणे पश्चिमेश्वच्छो, भागेप्लक्षस्तथोत्तरे ॥ ११ ॥

किसी शास्त्रमें ऐसा भी कहा है कि घरके अग्रभागमें यदि वटवृक्ष हो तो वह अच्छा गिना जाता है और उंबर वृक्ष घरसे दहिने भागमें श्रेष्ठ माना जाता है। पीपल वृक्ष घरसे पश्चिम दिशामें हो तो अच्छा गिना जाता है, और घरसे उत्तर दिशामें पिलखन वृक्ष अच्छा माना जाता है।

घर बनवानेके नियम

पूर्वस्यां श्री ग्रहं काय, माग्नेयां च महानसं। शयनं दक्षिणस्यां तु, नैऋत्यामायुधादिकं ॥ १ ॥

पूर्व दिशामें लक्ष्मीघर—भंडार करना, अग्नियकोन में पाकशाला रखना, दक्षिण दिशामें शयनगृह रखना, और नैऋत्यकोन में आयुधादिक याने सिपाई वगैरह की बैठक करना।

भुजिक्रिया पश्चिमायां, वायव्यां धान्यसंग्रहं। उत्तरस्यां जलस्थान, मैशान्यां देवतागृहं ॥ २ ॥

पश्चिम दिशामें भोजनशाला करना, वायव्य कोनमें अनाज भरनेका कोठार करना, उत्तर दिशामें पानी रखनेका स्थान करना, ईशानकोन मे इष्टदेव का मन्दिर बनाना।

गृहस्य दक्षिणे वन्हिः, तोयगो निल दीपभूः।
वामाभक्षदिग्गशो भुक्तिः, धान्यार्था रोह देवभूः ॥ ३ ॥

घरके दहिने भागमे अग्नि, जल, गाय बंधन, वायु, दीपकके स्थान करना, घरके बांये भागमें या पश्चिम भागमें भोजन करनेका, धाना भरनेका कोठार, गृह मन्दिर वगैरह करना।

पूर्वादि दिग्विनिर्देशो, गृहद्वार व्यपेक्षया।
भास्करोदयदिक्पूर्वा, न विज्ञेया यथाक्षुते ॥ ४ ॥

पूर्वादिक दिशाका अनुक्रम घरके द्वारकी अपेक्षासे गिनना। परन्तु सूर्योदयसे पूर्व दिशा न गिनना। ऐसे ही छींकके कार्यमें समझ लेना। जैसे कि सन्मुख छींक हुई हो तो पूर्व दिशामें हुई समझते हैं।

घरको बांधने वाला बढ़ई, सलाट, राजकर्म कर (मजदूर) वगैरहको ठराये मुजब मूल्य देनेकी अपेक्षा कुछ अधिक उचित देकर उन्हें खुश रखना, परन्तु उन्हें किसी प्रकारसे ठगना नहीं। जितनेसे सुख पूर्वक कुटुम्बका निर्वाह होता हो और लोकमें शोभादिक हो घरका विस्तार उतना ही करना। असंतोषीपन से अधिकाधिक विस्तार करनेसे व्यर्थ ही धन व्ययादि और आरंभादि होता है। विशेष दरवाजे वाला घर करनेसे अनजान मनुष्योंके आनेजाने से किसी समय दुष्ट लोगोंके आनेका भय रहता है और उससे स्त्री द्रव्यादिकका विनाश भी हो सकता है। प्रमाण किये हुये द्वार भी दृढ़ किवाड़, सांकल, अर्गला, वगैरह से सुरक्षित करना। यदि ऐसा न किया जाय तो पूर्वोक्त अनेक प्रकारके दोषोंका संभव है। किवाड़ भी ऐसे कराना चाहिये कि जो सुखपूर्वक बन्द किये जायें और खुल सकें। शास्त्रमें भी कहा है कि—

न दोषो यत्र वेधादि, नवं यत्राखिलं दलं। बहु द्वाराणि नो यत्र, यत्र धान्यस्य संग्रहः ॥ १ ॥
पूज्यते देवता यत्र, यत्राभ्युक्षणमादरात्। रक्ता जवनिका यत्र यत्रसंमार्जनादिकं ॥ २ ॥
यत्र जेष्ठकनिष्ठादि, व्यवस्थासु प्रतिष्ठिता। भानवीया विशंत्यंत, र्भानिवो नैव यत्र च ॥ ३ ॥
दीप्यते दीपको यत्र, पालनं यत्र रोगिणां। श्रांत संवाहना यत्र, तत्र स्यात्कमलागृहं ॥ ४ ॥

जिसके घरमें वेधादिक दोष न हो, जिस घरमें पाषाण ईंट वगैरह सामग्री नयी हो, जिसमें बहुतसे दरवाजे न हों, जिसमें धान्यका संग्रह होता हो, जिसमें देवकी पूजा होती हो, जिसमें जलसिंचन से घर साफ

रक्खा जाता हो, जहां चिक वगैरह बांधी जाती हो, जो सदैव साफ किया जाता हो, जिस घरमें बड़े छोटोंकी सुख प्रतिष्ठित व्यवस्था होती हो, जिसमें सूर्यकी किरणें प्रवेश करती हों परन्तु सूर्य (धूप) न आता हो, जहां दीपक अखंड दीपता हो, जहां रोगी वगैरह का पालन भली भांति होता हो, जहां थक कर आये हुए मनुष्योंकी सेवा बरदास्त होती हो, वैसे मकानमें लक्ष्मी स्वयं निवास करती है।

इस प्रकार देश, काल, अपनी संपदा, जाति वगैरहसे औचित्य, तैयार कराए हुए घरमें प्रथमसे स्नात्र-विधि साधर्मिक वात्सल्य, संघ पूजा वगैरह करके फिर घरको उपयोग में लेना। उसमें शुभ मुहूर्त शुभश-कुन वगैरह बलघर-चिनाते समय, प्रवेश वगैरह में बारंबार देखना। इस तरह बने हुये घरमें रहते हुये लक्ष्मी-की वृद्धि होना कुछ बड़ी बात नहीं।

विधियुक्त बनाये य घरसे लाभ

सुना आता है कि उज्जैन में दांता नामक सेठने अठारह करोड़ सुवर्ण मुद्रायें खर्च कर बारह वर्ष तक वास्तुक शास्त्रमें बतलाये हुए विधिके अनुसार सात मंजिल का एक बड़ा महल तैयार कराया। परन्तु रात्रिके समय 'पड़ूं पड़ूं' इस प्रकारका शब्द घरमेंसे सुन पड़नेके भयसे दांता सेठने जितना धन खर्च किया था उतना ही लेकर वह घर विक्रमार्क को दे दिया। विक्रमादित्यको उसी घरमेंसे सुवर्ण पुरुषकी प्राप्ति हुई। इसलिये विधि पूर्वक घर बनवाना चाहिये।

विधिसे बना हुवा और विधिसे प्रतिष्ठित श्री मुनि सुव्रत स्वामीके स्तूपके महिमासे प्रबल सैन्यसे भी कौणिक राजा वैशाली नगरी स्वाधीन करनेके लिए बारह वर्ष तक लड़ा तथापि उसे स्वाधीन करनेमें समर्थ न हुआ। चारित्रसे भ्रष्ट हुये कूलवालूक नामक साधुके कहनेसे जब स्तूप तुड़वा डाला तब तुरत ही उस नगरीको अपने स्वाधीन कर सका।

इसलिये घर और मन्दिर वगैरह विधिसे ही बनवाने चाहिए। इसी तरह दुकान भी यदि अच्छे पड़ोस में हो, अति प्रगट न हो, अतिशय गुप्त न हो, अच्छी जगह हो, विधिसे बनवाई हुई हो, प्रमाण किये द्वारवाली हो इत्यादि गुण युक्त हो तो त्रिवर्गकी सिद्धि सुगमता से होसकती है। यह प्रथम द्वार समझना।

२ त्रिवर्ग सिद्धिका कारण, आगे भी सब द्वारोंमें इस पदकी योजना करना। याने त्रिवर्ग की सिद्धि के कारणतथा उचित विद्यायें सीखना, वे विद्यायें भी लिखने, पढ़ने, व्यापार सम्बन्धी, धर्म सम्बन्धी, अच्छा अभ्यास करना। श्रावकको सब तरहकी विद्याका अभ्यास करना चाहिये। क्योंकि न जाने किस समय कौनसी कला उपयोगी हो जाय। अनपढ़ मनुष्य को किसी समय बहुत सहन करना पड़ता है। कहा है कि—

> अट्ट मट्टं पि सिखिज्जा, सिखिअं न निरथ्थअं।
> अट्टमट्ट पसाएण, खज्जए गुलतुंबअं॥ १॥

अट्टमट्ट भी सीखना क्योंकि सीखा हुआ निरर्थक नहीं जाता। अट्टमट्ट के प्रभावसे गुड़ और तुम्बा खाया जा सकता है। (यहां पर कोई एक दृष्टांत है परन्तु प्रसिद्ध नहीं)

जो तमाम विद्याय सीखा हुवा होता है उसका पूर्वोक्त सर्व प्रकारकी आजीविकाओं में से चाहे जिस प्रकारकी आजीविका से सुख पूर्वक निर्वाह चल सकता है और वह धनवान भी बन सकता है। जो मनुष्य तमाम विद्याय सीखनेमें असमर्थ हो उसे भी सुखसे निर्वाह हो सके और परलोक का साधन हो सके इस प्रकारकी एकाद विद्या तो अवश्य सीखनी ही चाहिये। इसलिये कहा है कि—

सुवसायरो अपारो, आउथ्थोवं जिआय दुम्मेहा। तं किंपि सिरिखव अव्वं, जं कज्जकरं थोव च ॥ १ ॥

श्रुतज्ञान सागर तो अपार है, आयुष्य कम है, प्राणी खराव बुद्धि वाला है, इसलिये कुछ भी ऐसा सीख लेना जरूरी है कि जिससे अपना थोड़ा भी काय हो सके।

जाएण जीवलोए, दोचेव नरेण सीखिअव्वाइं।
कम्मेण जेण जीवइ, जेण मओ सग्गई जाइ ॥ २ ॥

इस संसारमें जो प्राणी पैदा हुआ है उसे दो प्रकारका उद्यम तो अवश्य ही सीखना चाहिए। एक तो वह कि जिससे आजीविका चले और दूसरा वह कि जिससे सद्गति प्राप्त हो। निन्दनीय, पापमय कर्म द्वारा आजीविका चलाना यह सर्वथा अयोग्य है। यह दूसरा द्वार समाप्त हुआ

अब तीसरे द्वारमें पाणिग्रहण करना बतलाते हैं।

३ पाणिग्रहण याने विवाह करना, यह भी त्रिवर्गकी सिद्धिके लिये होनेसे उचित ही गिना जाता है। अन्य गोत्र वाले, समान कुल वाले, सदाचारवान, समान स्वभाव, समान रूप, समान वय, समान विद्या, समान सम्पदा, समान वेष, समान भाषा, समान प्रतिष्ठादि गुण युक्तके साथ ही विवाह करना योग्य है। यदि समान कुल शीलादिक न हो तो परस्पर अवहेलना, कुटुम्ब कलह, कलंकदान वगैरह आपत्तियां आ पड़ती हैं। जैसे कि पोतनपुर नगरमें एक श्रावककी लड़की श्रीमतीका बड़े आदरके साथ एक मिथ्यात्वी ने पाणि ग्रहण किया था परन्तु श्रीमती अपने जैनधर्म मे दृढ़ थी इससे उसने अपना धर्म न छोड़नेसे और समान धर्म न होनेसे उस पर पति विरक्त हो गया। अन्तमें एक घड़ेमे काला सर्प डाल कर घरमे रख कर श्रीमतीको कहा कि घरमें जो घड़ा रक्खा है उसमें एक फूलोंकी माला पड़ी है सो तू ले आ। नवकार मन्त्रके प्रभावसे श्रीमतीके लिये सचमुच ही वह काला नाग पुष्पमाला बन गई। इस चमत्कार से उसके पति वगैरह ने जिन-धर्म अंगीकार किया।

यदि कुल शीलादिक समान हो तो पेथड़शाह की प्राथमिणी देवीके समान सर्व प्रकारके सुख धर्म महत्वादिक गुणकी प्राप्ति हो सकती है। सामुद्रिक शास्त्रादि में बतलाए हुए शरीर वगैरह के लक्षण, जन्म-पत्रिकादि देखना वगैरह करनेसे कन्या और वरकी प्रथमसे परीक्षा करना। कहा है कि—

कुलं च शीलं च सनाथता च, विद्या च वित्तं च वपुर्वयश्च।
वरे गुणा सप्त विलोकनीया, ततः परं भाग्यवती च कन्या ॥ १ ॥

कुल, शील, सनाथता, विद्या, धन, निरोगी शरीर, उम्र, वरमें ए सात बात देख कर उसे कन्या देना। इसके बाद बुरे भलेकी प्राप्ति होना कन्याके भाग्य पर समझना।

मूर्ख निर्धन दूरस्थ, शूर मोक्षाभिलाषिणां ।
त्रिगुणाधिकवर्षाणां, न देया कन्यका बुधैः ॥ २ ॥

मूर्ख, निर्धन, दूर देशमें रहने वाले, शूर वीर, मोक्षाभिलाषी, दीक्षा लेनेकी तैयारी वाले तथा कन्यासे तीन गुना अधिक वय वालेको कन्या नहीं देनी चाहिये ।

अत्यद्भुतधनाढ्याना, मति शीतातिरोषिणः ।
विकलांग सरोगाणां, न देया कन्यका बुधैः ॥ ३ ॥

अतिशय आश्चर्यकारी, बड़े धनवानको, अतिशय ठंडे मिजाज वालेको, अति क्रोधीको, लूले, लंगड़े, पंगु वगैरह विकलांग को, सदा रोगीको, कदापि कन्या न देनी चाहिये ।

कुलजातिविहीनानां, पितृमातृवियोगिनां ।
गेहिनीपुत्रयुक्तानां, न देया कन्यका बुधैः ॥ ४ ॥

कुल जातिसे हीन हो, माता पितासे वियोगी हो जिसको पुत्र वाली स्त्री हो, इतने मनुष्यों को विचक्षण पुरुषको चाहिये कि अपनी कन्या न दे ।

बहु वरापवादानां, सदैवोत्पन्नभक्षिणां ।
आलस्याहतचित्तानां, न देया कन्यका बुधः ॥ ५ ॥

जिसके बहुतसे शत्रु हों, जो बहुत जनोंका अपवादी हो, जो निरन्तर कमा कर ही खाता हो याने बिलकुल निर्धन हो, आलस्य से उदास रहता हो ऐसे मनुष्यको कन्या न देना ।

गोत्रिणां द्यूतचौर्यादि, व्यसनोपहतात्मनां ।
विदेशीनामपि प्रायो, न देया कन्यका बुधैः ॥ ६ ॥

अपने गोत्र वालेको, जूआ, चोरी वगैरह व्यसन पड़नेसे हीन आबरू वालेको और विशेषतः परदेशी को कन्या न देना ।

निर्व्याजा दायतादौ, भक्ता श्वश्रूषु वत्सला स्वजने ।
स्निग्धा च बंधुवर्गे, विकसित वंदना कुलवधूटी ॥ ७ ॥

बंधु स्त्री वगैरह में निष्कपटी, सासूमें भक्ति वाली, सगे संबन्धियों में दयालु, बन्धु वर्गमें स्नेह वाली और प्रसन्न मुखी बहू होनी चाहिये ।

यस्य पुत्रा वशे भक्ता, भार्या छंदानुवर्तिनी । विभवेष्यपि संतोष, स्तस्य स्वर्ग इहैव हि ॥ ८ ॥

जिसके पुत्र वश हो और पिता पर भक्तिवान हो, स्त्री पतिकी आज्ञानुसार वर्तने वाली हो, संपत्तिमें भी संतोष हो, ऐसे गृहस्थ को यहां ही स्वर्ग है ।

आठ प्रकारके विवाह

आदमी और देवता की साक्षी पूर्वक लग्न करना, उसे पाणिग्रहण कहते हैं । साधारणतः लग्न या

विवाह आठ प्रकार के होते हैं। १ अलंकृत की हुई कन्या अर्पण करना वह "ब्राह्मी विवाह" कहलाता है। २ द्रव्य लेकर कन्या देना वह 'प्राजापत्य विवाह' कहा जाता है। ३ गाय और कन्या देना सो 'आर्ष विवाह' कहलाता है। ४ जिसमें महा पूजा कराने वाला महा पूजा विधि करने वालेको दक्षिणा में कन्या अर्पण करे उसे 'देव विवाह' कहते हैं। ये चार प्रकारके विवाह धर्म विवाह कहलाते हैं। ५ अपने पिता, भाइयोंके प्रमाण किये विना पारस्परिक अनुराग से गुप्त संबन्ध जोड़ना उसे गांधर्व विवाह कहते हैं। ६ पण बंध—कुछ शर्त या होड़ लगा कर—कन्या देना उसे "आसुरी विवाह" कहते हैं। ७ जबरदस्ती से कन्या को ग्रहण करना इसे राक्षसी विवाह कहते हैं। ८ सोती हुई या प्रमाद मे पड़ी हुई कन्या को ग्रहण करना उसे पैशाचिकी विवाह कहते हैं। ये पिछले चार प्रकारके लग्न अधर्म विवाह गिने जाते हैं। यदि वधू वर की परस्पर प्रीति हो तो अधर्म विवाह भी सधर्म गिना जाता है। शुद्ध कन्या का लाभ होना विवाह का शुभ फल कहलाता है और उसका फल वधूकी रक्षा करते हुये उत्तम प्रकार के पुत्रोत्पत्ति की परम्परा से होता है। पूर्वोक्त प्रकार के पारस्परिक प्रेम लग्नसे मनुष्य सुख शांति भोगते हुये सुगमता से गृह कृत्य कर सकता है और शुद्धाचार की विशुद्धि से सुख पूर्वक देव अतिथि बांधवों की निरवद्य सेवा करते हुये त्रिवर्ग की साधना कर सकते हैं।

वधूको सुरक्षित रखने के लिये घरके काम काजमे नियोजित करना चाहिये। उसे द्रव्यादि का संयोग करना चाहिये। उसे द्रव्यादि का संयोग कार्य पूरता ही सौंपना चाहिये। संपूर्ण योग्यता आने तक उसे घरका सर्वतंत्र न सौंपना चाहिये।

विवाहमें खर्च अपने कुल, जाति, संपदा, लोक व्यवहार की उचितता से करना योग्य है। परन्तु आवश्यकता से अधिक खर्च तो पुण्यके कार्योंमें ही करना उचित है। विवाह में खर्चने के अनुसार आदर पूर्वक मन्दिर मे स्नात्र पूजा, बड़ी पूजा, सर्व नैवेद्य चढ़ाना, चतुर्विध संघकी भक्ति, सत्कार वगैरह भी करना योग्य है। यद्यपि विवाह कृत्य संसार का हेतु है तथापि पूर्वोक्त पुण्य कार्य करने से वह सफल हो सकता है। यह तीसरा द्वार समाप्त हुआ। अब चौथे द्वारमें मित्र वगैरह करने के सम्बन्ध में उल्लेख करते हैं।

४ मित्र सर्वत्र विश्वास योग्य होनेसे साहायकारी होता है इस लिये जीवन में एक दो मित्रकी आवश्यकता है। आदि शब्दसे मुनीम, साहाय कारक कार्यकर, वगैरह भी त्रिवर्ग साधन के हेतु होनेसे उनके साथ भी मित्रता रखना योग्य है। उत्तम प्रकृतिवान, समान धर्मवान, धैर्य, गांभीर्य, उदार और चतुर एवं सद्बुद्धिवान इत्यादि गुण युक्त ही मनुष्य के साथ मित्रता करना योग्य है। इस विषय पर दृष्टान्तादिक व्यवहार शुद्धि अधिकार में पहले बतला दिये गये हैं। इस चौथे द्वारके साथ चौदहवीं मूल गाथाका अर्थ समाप्त हुवा। अब पंद्रहवीं मूल गाथासे पंचम द्वारसे लेकर ग्यारह द्वार तकका वर्णन करते हैं।

मूल गाथा

चेइय पडिम पइट्ठा सुआई पव्वावणाय पयठवणा।
पुथ्थय लेहण वायण, पोसह सालाई कारवाणं ॥ १५ ॥

पांच द्वारसे लेकर ग्यारह पर्यन्त (५) मन्दिर कराना, (६) प्रतिमा बनवाना, (७) प्रतिष्ठा कराना, (८) पुत्रादिकको दीक्षा दिलाना, (६) पदकी स्थापना कराना, (१०) पुस्तक लिखाना और पढ़ाना, (११) पौषधशाला आदि कराना इन सात द्वारका विचार नीचे मुजब है।

चैत्य कराना

मन्दिर ऊंचा शिखर, मंडपादिक से सुशोभित भरत चक्रवर्ती वगैरहके समान मणिमय, सुवर्णमय, पाषाणमय कराना एवं सुन्दर काष्ठ ईंट चूना वगैरह से शक्त्यनुसार कराना। यदि वैसी शक्ति न हो तो अन्तमें न्यायोपार्जित धनसे फूंसकी झोंपड़ी के समान भी मन्दिर कराना। कहा है कि—

न्यायार्जितवित्तेशो मतिमान् स्फीताशयः सदाचारः।
गुर्वादि मतो जिनभुवन, कारणस्याधिकारीति ॥ १ ॥

न्यायसे उपार्जन किये हुये धनका स्वामी बुद्धिमान निर्मल परिणाम वाला, सदाचारी, गुर्वादि की संमतिवाला, इस प्रकार का मनुष्य जिनभुवन कराने के लिये अधिकारी होता है।

पायण अणंत देउल, जिणपडिमा कारि आओ जीवेण।
असमन्त सवित्तीए, नहु सिद्धो दंसण लवोवि ॥ २ ॥

इस प्राणीने प्रायः अनन्त दफा मन्दिर कराये, प्रतिमायें भरवाईं, परन्तु वह सब असमंजस वृत्तिसे होनेके कारण समकित का एकांश भी सिद्ध नहीं हुआ।

भवणं जिणस्स न कयं, नय बिंब नेव पूइआ साहु।
दुद्धरवय न धरीअं, जम्मो परिहारीओ तेहिं ॥ ३ ॥

जिनेश्वर भगवान के मन्दिर न बनवाये, नवीन जिनबिंब न भरवाये, एवं साधु संतोंकी सेवा पूजा न की और दुर्धर व्रत भी धारण न किये, इससे मनुष्यावतार व्यर्थ ही गमाया।

यस्तृणमयीमपि कुटीं, कुर्याद्दद्यात्तथैकपुष्पमपि।
भक्त्या परमगुरुभ्यः, पुण्यात्मानं कुतस्तस्य ॥ ४ ॥

जो प्राणी एक तृणका भी याने फूंसका भी मन्दिर बंधवाता है, एक पुष्प भी भक्ति पूर्वक प्रभुको चढ़ाता है उस पुण्यात्मा के पुण्यकी महिमा क्या कही जाय? अर्थात् वह महा लाभ प्राप्त करता है।

किं पुनरुपचितदृढ़घन, शिलासमुद्घातघटितजिनभवनं।
ये कारयंति शुभमति, विमानिनस्ते महाधन्याः ॥ ५ ॥

जो मनुष्य बड़ी दृढ़ और कठोर शिलायें गड़वा कर शुभमति से जिनभुवन कराता है वह प्राणी महान पुण्यका पात्र बन कर वैमानिक देव हो इसमें नवीनता ही क्या है ? अर्थात् वैसा मनुष्य अवश्य ही वैमानिक देव होता है। परन्तु विधि पूर्वक कराना चाहिये।

मन्दिर कराने का विधि इस प्रकार कहा है कि प्रथम से शुद्ध भूमि, ईंट पत्थर, काष्ठादिक, सर्व शुद्ध सामग्री, नौकरोंको न ठगना, वढई राज, सलाट वगैरह का सत्कार करना। प्रथम घर बांधनेके अधिकार में जो कहा गया है सो यथायोग्य समझ कर विधिपूर्वक मंदिर बंधवाना चाहिये। इसलिये कहा है कि—

धम्मथ्थ मुज्जएणं, कस्सवि अप्पत्तिअं न कायव्वं।
इय संजमो विसेओ, एथ्थय भयवं उदाहरणं ॥ १ ॥

धार्मिक कार्योंमें उद्यमवान मनुष्य को किसीको भी अप्रीति उत्पन्न हो वैसा आचरण न करना चाहिये यहां पर नियममें रहना श्रेयस्कर है, उस पर भगवन्त का दृष्टान्त कहा है।

सो वावसी समाओ, तेसि अप्पत्तिअं मुणेऊणं।
परमअबोहिअवीअं, तओ गओ हंत क्कालेवि ॥ २ ॥

उन तापसोंके आश्रमसे उन्हें परम उत्कृष्ट अबोधि बीजके कारणरूप अप्रतीत उत्पन्न हुई जान कर भगवान उसी वक्त वहांसे अन्यत्र चले गये।

कट्ठाइ विदलं इह, सुद्धं जं देवया दुववणाओ।
णो अविहिणो वणियं, सयंवकरां विअंजं नो ॥ ३ ॥

यहां पर मन्दिर करानेमें जिस देवतासे अधिष्ठित वृक्षके, उस प्रकारके किसी वनसे मंगाये हुए काष्ठादिक दल ग्रहण करना। परन्तु अविधिसे लाये हुए काष्ठादिक को न लेना। एवं शास्त्र या गुरुकी संमति विना स्वयं भी कराये हुए न लेना।

कम्मकरायवराया, अहिगेण दढं उचिति परिओसं।
तुठ्ठाय तथ्थ कम्मं, तत्तो अहिगं पकुव्वंति ॥ ४ ॥

जो काम काज करने वाले नौकर चाकर तथा राजा इन्हें अधिक धन देनेसे संतोषित हो वे अधिक काम करते हैं।

मन्दिर कराये बाद पूजा, रचना वगैरह करके भावशुद्धि के निमित्त गुरु संघ समक्ष इस प्रकार बोलना कि इस कार्यमें 'जो कुछ अविधिसे दूसरेका द्रव्य आया हो उसका पुण्य उसे हो।' इस लिये षोडशक ग्रंथमें कहा है कि—

यद्यस्य सत्कमनुचित मिहवित्तोतस्यतज्जमिहपुण्यं।
भवतु शुभाशयकरणा, दित्येतद्भाव शुद्धं स्यात् ॥ १ ॥

मन्दिर बंधवाने मे या पूजा रचानेमे जो जिसका अनुचित द्रव्य आया हो तत्सम्बन्धी पुण्य उसे ही हो। इस प्रकार शुभाशय करनेसे भावशुद्धि होती है।

नवीन जमीन खोदना, पाषाण घड़वाना, ईंट वगैरह तैयार कराना, काष्ठ वगैरह फड़वाना, चूना आदि चिनवाने वगैरह में महा आरंभ होता है। चैत्यादिक करानेमें इस तरहकी आशंका न रखना। क्योंकि यतना पूर्वक प्रवृत्ति करनेसे दोष नहीं लगता। नाना प्रकारकी प्रतिमायें स्थापन करना, पूजन करना संघ को बुलाना, धर्मदेशना कराना, दर्शन व्रतादिक की प्रतिपत्ति करना, शासन प्रभावना करना; यह अनुमोदनादिक अनन्त पुण्यका हेतु होनेसे शुभानुबन्धी होती है इस लिये कहा है कि—

जा जयमाणस्सभवे, विराहणा सुत्त विहिसमग्गस्स।
सा होइ निज्जरफला, अम्मथ्थ विसोहिजुत्तस्स ॥ १ ॥

समग्र विधियुक्त, यतना पूर्वक करते हुए जो विराधना होती है वह दयात्मक विशुद्धियुक्त होनेसे सब निर्जरारूप फलको देनेवाली है।

जीर्णोद्धार

नवीनजिनगेहस्य, विधाने यत्फलं भवेत्।
तस्मादष्टगुणं पुण्यं, जीर्णोद्धारेण जायते ॥ १ ॥

नवीन मंदिर बनवाने में जो पुण्य होता है उससे जीर्णोद्धार करानेमें आठगुणा पुण्य अधिक होता है।

जीर्णसमुद्धृतेयावत्तावत्पुण्य ननूतने।
उपमर्दो महास्तत्र, स्वचैत्यख्यातिधीरपि ॥ २ ॥

जीर्णोद्धार करानेसे जितना पुण्य होता है उतना पुण्य नवीन मन्दिर बनानेसे नहीं हो सकता। क्योंकि उसमें उपमर्दन अधिक होता है और यह हमारा मन्दिर है इस प्रकारकी प्रसिद्धि प्राप्त करनेकी बुद्धि भी रहती है।

राया अमच्च सिठ्ठी, कोडंबि एवि देसणं काउं।
जिण्णे पुव्वाययणे, जिणकप्पीयावि कारवई ॥ ३ ॥

राजा, अमात्य, शेठ, कौटुंबिक वगैरह को उपदेश देकर जिनकल्पी साधु भी जीर्णोद्धार पूर्वायतन सुधरवाते हैं।

जिणभवणाइ जे उद्धरंति, भत्तीअसडिय पडिआइं।
ते उद्धरंति अप्प, भीमाओ भवसमुद्दाओ ॥ ४ ॥

पुराने, गिरानेकी तैयारीमें हुए जिनभुवन को जो मनुष्य सुधरवाता है वह भयंकर भवसमुद्र से अपनी आत्माका उद्धार करता है।

बाहडदे मंत्रीने जीर्णोद्धार करानेका विचार किया था, परन्तु उसका विचार आचारमें आनेसे पहिले ही उसकी मृत्यु हो गयी। फिर उसके पुत्र मंत्री वाग्भट्ट ने वही विचार करके वह कार्य अपने जिम्मे लिया। उसकी सहायके लिये बहुतसे श्रीमन्त श्रावकोंने मिल कर अधिक प्रमाणमे चन्दा करना शुरू किया।

उस वक्त वहां पर टीमाणी गामके रहने वाले घी की कुलडीका व्यापार करने वाले भीम नामक श्रावकने घी वेचनेसे छह ही रुपये जमा किये थे, उसने वे छह ही रुपये चंदेमें दे दिये। इससे खुश हो कर समस्त श्रीमंतों ने मिल कर उस चंदेमें सबसे ऊपर उसका नाम लिखा। फिर उसे जमीनमें से एक सुवर्णमय निधान मिलनेका दृष्टान्त प्रसिद्ध है।

सिद्धाचलजी पर पहिले काष्ठका मन्दिर था। उसका जीर्णोद्धार करा कर पाषाण मय मन्दिर बनाते हुए दो वर्ष व्यतीत हुए। मन्दिर तय्यार होनेकी जिसने प्रथम आ कर बधाई दी उसे वाग्भट्ट मन्त्रीने सोनेकी बत्तीस जीभ बनवा दीं। कुछ समयके बाद वही मन्दिर बिजली वगैरहसे गिर जानेके कारण दूसरे किसीने जब मन्दिर के पड जानेकी खबर दी तब वाग्भट्ट मन्त्रीने विचार किया कि, अहो मैं कैसा भाग्यशाली हूं कि जिसे एक ही जन्म में दो दफा जीर्णोद्धार करने का सुअवसर मिल सका। इस भावना से उसने तत्काल ही खबर देने वाले मनुष्य को सुवर्ण की चौंसठ जीभें सहर्ष समर्पण कीं। फिर दूसरी दफे मन्दिर तय्यार कराया। इस प्रकार करते हुये उसे दो करोड़ सत्ताणवे लाखका खर्च हुआ था। मन्दिर की पूजाके लिये उसने चौवीस गांव और चौवीस बगीचे अर्पण किये थे।

बाहड़दे के भाई अंबड मन्त्रीने भरुच नगरमें दुष्ट व्यन्तरी के उपद्रव निवारक श्री हेमाचार्य महाराज के सान्निध्य से अठारह हाथ ऊंचा शकुनीका विहार नामक मन्दिर का उद्धार किया था। मल्लिकार्जुन राजाके भंडार का बत्तीस घड़ी प्रमाण सुवर्ण का कलश और ध्वज दंड चढ़ाया था। आरती, मंगलदीवा के अवसर पर बत्तीस लाख रुपये याचकोंको दानमें दिये थे। इस लिए जीर्णोद्धार पूर्वक ही नवीन मन्दिर कराना उचित है। इसी कारण संप्रति राजाने सवा लाख मन्दिरों में से नवासी हजार जीर्णोद्धार कराये थे।

ऐसे ही कुमारपाल, वस्तुपाल वगैरह ने भी नये मन्दिर बनवाने की अपेक्षा जीर्णोद्धार ही विशेष किए हैं। उनकी संख्या भी पहले बतला दी गई है।

जब नया मन्दिर तय्यार हो तब उसमें शीघ्र ही प्रतिमा पधरा देना चाहिए। इसलिए हरिभद्रसूरि महाराज ने कहा है कि

जिनभवने जिनविम्बं, कारयितव्यं द्रुतंतु बुद्धि मता।
साधिष्ठानं ह्येवं, तद्भवनं वृद्धिमद्भवति ॥ १ ॥

जिनभुवन मे बुद्धिमान मनुष्य को जिनबिम्ब सत्वर ही बिठा देना चाहिए। इस प्रकार अधिष्ठान सहित होनेसे मन्दिर वृद्धिकारी होता है।

नवीन मन्दिर में तांबा, कूंडी, कलश, ओरसिया, दीवट, वगैरह सर्व प्रकार के उपकरण, यथाशक्ति भंडार, देव पूजाके लिए वाड़ी (बगीचा) वगैरह युक्ति पूर्वक करना।

यदि राजाने नवीन मन्दिर बनवाया हो तो भण्डार में प्रचुर द्रव्य डालना, मन्दिर खाते गांव, गोकुल वगैरह देना जैसे कि श्री गिरनार के खर्चके लिए मालवा देश निवासी जाकूड़ी प्रधान ने पहले के काष्ठ मय मन्दिर के स्थानमें पाषाण मय मन्दिर बनाना शुरू किया। परन्तु दुर्दैवसे वह स्वर्गवासी हुआ। फिर एक

सो पैंतालीस वर्ष व्यतीत होने पर सिद्धराज जयसिंह राजाके कोतवाल सज्जन ने तीन वर्ष तक सोरठ देशकी वसूलात मेंसे इकट्ठे किये हुये सत्ताईस लाख रुपये खर्च कर नवीन पाषाण मय मन्दिर कराया। जब वह सत्ताईस लाख द्रव्य सिद्धराज जयसिंह राजाने मांगा तब उसने उत्तर दिया कि महाराज गिरनार पर निधान कराया है। राजा वहां देखने आया और नवीन मन्दिर देख कर प्रसन्न हो बोला कि यह नवीन मन्दिर किसने बनवाया? सज्जन ने कहा स्वामिन् यह आपने ही बनवाया है। यह सुन राजा आश्चर्य में पड़ा। फिर सज्जन ने सर्व वृत्तान्त राजासे कह सुनाया। सज्जन वर्ग श्रीमन्तों के पाससे सत्ताईस लाख रुपिया ले राजासे कहा कि 'आप या तो यह रुपिया लें और या मन्दिर बनवाने से उत्पन्न हुआ पुण्य लें'। विवेकी राजाने पुण्य ही अंगीकार किया परन्तु सत्ताईस लाख रुपिया न लिया। इतना ही नहीं बल्कि गिरनार पर श्री नेमिनाथ स्वामी के मन्दिर के खर्चके लिये बारह गांव मन्दिरको समर्पण किये। इसी प्रकार जीवित स्वामी देवाधिदेव की प्रतिमाका चैत्य प्रभावती रानीने कराया था और अनुक्रमसे चंडप्रद्योतन राजाने उसकी पूजा के लिये बारह हजार गांव समर्पण किये थे यह बात प्रतिवर्ष पर्यूषणा के अट्ठाई व्याख्यान में सुनने में ही आती है।

इस प्रकार देवद्रव्य की पैदास करना कि जिससे विशिष्ट पूजादिक विधि अविच्छिन्न तया हुआ करे और जब आवश्यकता पड़े तब मन्दिरादिके सुधारने वगैरह में द्रव्यका सुभीता हो सके। इसलिये कहा है कि—

जो जिणवराण भवणं, कुणइ जहासत्ति वित्त विहव संजुत्तं।
सो पावइ परम सुहं, सुरगण अभिनन्दिओ सुइरं॥ १॥

जो मनुष्य यथाशक्ति द्रव्य खर्चने पूर्वक जिनेश्वर भगवान के मन्दिर बनवाता है उसकी देवताओं के समुदाय भी बहुत काल तक अनुमोदना करते हैं और वह मोक्ष पदको प्राप्त करता है।

छठे द्वारमें जिन बिम्ब बनवाने का विधि बतलाया है। अर्हत बिम्ब मणिमय, स्वर्णादिक धातुमय, चन्दनादि काष्ठमय, हाथीदांत मय, उत्तम पाषाण मय, मट्टी मय, पांच सौ धनुष से लेकर छोटेमें छोटा एक अंगुष्ठ प्रमाण भी यथा शक्ति अवश्य बनवाना चाहिये। कहा है कि—

सन्मृत्तिकाऽमलशिलातलदन्तरौप्य, सौवर्णरत्नमणिचन्दनचारु बिंबं।
कुर्वंति जैनमिह ये स्वधनानुरूपं ते प्राप्नुवंति नृसुरेषु महासुखानि॥

श्रेष्ठ मट्टीके, निर्मल शिला तलके, दांतके, चांदीके, सुवर्णके, रत्नके, मणीके और चन्दनके जो मनुष्य उत्तम बिम्ब बनवाता है और जैन शासन की शोभा बढ़ानेके लिये यथाशक्ति धन खर्च करता है वह मनुष्य देवतांके महासुख को प्राप्त करता है।

दालिद्दं दोहग्गं कुजाई कुसरीर कुगई·कुमइओ।
अवमाण रोग सोगा, न हुंति जिनंपिव कारिणं॥ २॥

जिनबिम्ब भराने वालेको दारिद्र, दुर्भाग्य, कुजाति, कुशरीर, कुगति, कुमति, अपमान, एवं रोग, शोक, आदि प्राप्त नहीं होते। इसलिये कहा है कि—

अन्याय द्रव्य निष्पन्ना। परवास्तु दलोद्भवा। हीनाधिकांगी प्रतिमा स्वपरोन्नति नाशिनी ॥ १ ॥

अन्याय द्रव्यसे उत्पन्न हुई एक रंगके पाषाणमें दूसरा रंग हो ऐसे पाषाण की, हीन या अधिक अंग-वाली प्रतिमा स्व तथा परकी उन्नति का विनाश करती है।

मुहनक्क नयण नाहीं, कडिभंगे मूलनायगं चयह।

आहरण वथ्थ परिगर, चिंधाउह भंगि पूइज्जा ॥ २ ॥

मुख नाक नयन नाभि कटिभाग इतने स्थानोंमें से टूटी हुई हो ऐसी प्रतिमाको मूलनायक न करना। आभरण सहित, वस्त्र सहित, परिकर, और लंछन सहित, तथा ओघसे शोभती हुई प्रतिमायें पूजने लायक हैं।

वरिसा सयाओ उड्ढं, जं बिम्बं उत्तमेहिं संठविअं।

वियलंगु पूइज्जइ, तं बिम्बं निक्कलं न जओ ॥ ३ ॥

सौ वर्षसे उपरांत की उत्तम पुरुष द्वारा स्थापन की हुई (अंजन शलाका कराई हुई) प्रतिमा कदापि विकलांग (खंडित) हो तथापि वह पूजनीय है। क्योंकि वह प्रतिमा प्रायः अधिष्ठायक युक्त होती है।

बिम्बं परिवारमझ्झे, सेलस्सय वन्न संकरं न सुहं।

सम अंगुलप्पमाणं, न सुन्दरं होइ कइयावि ॥ ४ ॥

बिम्बके परिवार में, पाषाणमें दूसरा वर्ण हो तो उसे सुखकारी न समझना। यदि सम अंगुल प्रतिमा हो तो उसे कदापि श्रेष्ठ न समझना।

इक्कं गुलाइ पडिमा, इक्कारस जावगेहि पूइज्जा।

उड्ढं पासा इपुणो, इअ भणिअं पुव्व सुरीहिं ॥ ५ ॥

एक अंगुल से लेकर ग्यारह अंगुल तककी ऊंची प्रतिमा गृह मन्दिर में पूजना। इससे बड़ी प्रतिमा बड़े मन्दिर में पूजना ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है।

निरयावलि सुत्ताओ, लेवोवल कठ्ठदंत लोहाणं।

परिवार माण रहिअं, घरं मिनो पूअए बिम्बं ॥ ६ ॥

निर्यावलिका सूत्रमें कहा है कि लेपकी, पाषाण की, काष्ठकी, दांतकी, लोहकी, परिवार रहित और मान रहित प्रतिमा गृह मन्दिर में न पूजना।

गिह पडिमाणं पुरओ, बलि विच्छारो न चेव कायव्वो।

निच्चं न्हवणं तिसंझमच्चणं भावओ कुज्जा ॥ ७ ॥

गृह मन्दिरकी प्रतिमा के सन्मुख बलि विस्तार न करना—याने अधिक नैवेद्य न चढाना। प्रति दिन जलका अभिषेक करना भावसे त्रिसंध्य पूजा करना।

मुख्य वृत्तिसे प्रतिमाको परिकर सहित तिलक सहित आभरण सहित वगैरह शोभा कारी ही करना चाहिये। उसमें भी मूलनायक की विशेष शोभा करनी चाहिये। ज्यों विशेष शोभा कारी प्रतिमा होती है त्यों विशेष पुण्यानुबन्धी पुण्यका कारण होती है। इसलिये कहा है कि

पासाई आ पडिमा, लक्खण जुत्ता समत्त लंकरणा।
जह पल्हाइमणं तह निज्जर मोयि आणाहि ॥ १ ॥

मनोहर रूप वाली देखने योग्य लक्षण युक्त समस्त अलंकार संयुक्त मनको आल्हाद करने वाली प्रतिसे बड़ो निर्जरा होती है।

मन्दिर व प्रतिमा वगैरह कराने से महान फलकी प्राप्ति होती है। जहां तक वह मन्दिर रहे तब तक या असंख्य काल तक भी उससे उत्पन्न होने वाला पुण्य प्राप्त हो सकता । जैसे कि भरत चक्रवर्ती द्वारा कराये हुये अष्टापद परके मन्दिर, गिरनार पर ब्रह्मेंद्र का कराया हुआ कंचनबलानक नामक मन्दिर (गिरनार में कंचनबलानक नामकी गुफामें ब्रह्मेंद्र ने नेमिनाथ स्वामी की प्रतिमा पधराई थी) वगैरह भरत चक्रवर्ती की मुद्रिका मेंकी कुल्यपाक 'नामक तीर्थ पर रही हुई माणिक्य स्वामी की प्रतिमा, थंभणा पार्श्वनाथ की प्रतिमा, वगैरह प्रतिमायें आज तक भी पूजी जाती हैं। सो ही कहते हैं कि—

जल शीताशन भोजन नासिक वसनाब्द जीविकादानं।
सामायक पौरुष्या द्युपवासा भिग्रह व्रताग्रथा वा ॥ १ ॥
क्षणयाम दिवस मासायन हायन जीविताद्यवधि विविधं।
पुण्यं चैत्यार्चा दे त्वनवधि तद्दर्शनादि भवं ॥ २ ॥

१ जल दान, २ शीताशन, (ठंडे भोजन का दान) ३ भोजन दान, ४ सुगंधी पदार्थ का दान, ५ वस्त्रदान, ६ वर्षदान, ७ जन्म पर्यन्त देनेका दान, इन दोनोंसे होने वाले सात प्रकार के प्रत्याख्यान। १ सामायिक २ पोरसी का प्रत्याख्यान, ३ एकाशन, ४ आंबिल, ५ उपवास, ६ अभिग्रह, ७ सर्वव्रत, इन सात प्रकार के दान और प्रत्याख्यान से उत्पन्न होते हुए सात प्रकार के अनुक्रमसे पुण्य। १ पहले दान प्रत्याख्यान का पुण्य क्षण मात्र है। २ दूसरे का एक प्रहरका। तीसरे का एक दिनका। चौथेका एक मासका। पांचवें का एक अयन याने ६ मासका छठेका एक वर्षका और सातवें का जीवन पर्यन्त फल है। इस प्रकार की अवधिवाला पुण्य प्राप्त होता है। परन्तु मन्दिर बनवाने या प्रतिमा बनवाने या उनके अर्चन दर्शनादिक भक्ति करनेमे पुण्यकी अवधि ही नहीं है याने अगणित पुण्य है।

"पूर्व कालमें महा पुरुषोंके बनवाए हुए मन्दिर"

इस चौवीसी में पहले भरत चक्रवर्ती ने शत्रुंजय पर रत्नमय, चतुर्मुख, चौराशी मंडप सहित, एक कोस ऊंचा, तीन कोस लंबा, मन्दिर पांच करोड़ मुनियोंके साथ परिवरित, श्री पुंडरीक स्वामीके ज्ञाननिर्वाण सहित कराया था। इसी प्रकार बाहुबलि मरुदेवो प्रमुख टूंकोंमें गिरनार, आबू, वैभारगिरि, समेदशिखर और अष्टापद वगैरह पर्वतों पर पांच सौ धनुषादिक प्रमाण वाली सुवर्णमय प्रतिमायें और जिनप्रासाद कराए थे। दंडवीर्य राजा, सगर चक्रवर्ती वगैरह ने उन मन्दिरोंके जीर्णोद्धार कराये थे। हरीषेण चक्रवर्ती ने जैन मन्दिरोंसे पृथ्वीको विभूषित किया था। संप्रति राजाने सवा लक्ष मन्दिर बनवाए थे। उसका सौ-वर्षका आयुष्य

होनेके कारण यदि उसकी दिन गणना की जाय तो प्रति दिनका एक गिनने पर छत्तीस हजार नये जिन प्रासाद कराए गिने जाते हैं और अन्य जीर्णोद्धार कराए हैं। सुना जाता है कि संप्रतिने सवा करोड़ सुवर्ण वगैरह के नये जिनबिम्ब बनवाये थे। आम राजाने गोपालगिरि पर याने ग्वालियर के पहाड़ पर एकसौ एक हाथ ऊंचा श्री महावीर भगवान का मन्दिर बनवाया था। जिसमें साढ़े तीन करोड़ सुवर्ण मोहरोंके खर्चसे निर्माण कराया हुआ सात हाथ ऊंचा जिनबिम्ब स्थापित किया था। उसमें मूल मंडपमें सवा लाख और प्रेक्षा मंडपमें इक्कीस लाखका खर्च हुआ था।

कुमारपाल राजाने चौदहसौ चवालीस नये जिनमन्दिर और सोलह सौ जीर्णोद्धार कराए थे। उसने अपने पिताके नाम पर बनवाये हुए त्रिभुवन विहारमे छानवें करोड़ द्रव्य खर्च करके तय्यार कराई हुई सवा सौ अंगुली ऊंची रत्नमयी मुख्य प्रतिमा स्थापन कराई थी। बहत्तर देरियोंमें चौवीस प्रतिमा रत्नमयी, चौवीस सुवर्णमयी और चौवीस चांदीकी स्थापन की थीं। मंत्री वस्तुपाल ने तेरह सौ और तेरह नये मन्दिर बनवाए थे, बाईसौ जीर्णोद्धार कराए और धातु पाषाणके सवा लाख जिनबिम्ब कराये थे।

पेथड़शाह ने चौरासी जिनप्रासाद बनवाये थे जिसमें एक सुरगिरि पर जो मन्दिर बनवाया था वहांके राजा वीरमदे के प्रधान ब्राह्मण हेमादे के नामसे मांधातापुर (मांडवगढ़) में और ओंकारपुर मे तीन वरस तक दानशाला की, इससे तुष्टमान हो कर हेमादे ने पेथड़शाह को सात महल बंध सके इतनी जमीन अर्पण की। वहां पर मन्दिर की नींव खोदते हुये जमीनमें से मीठा पानी निकला इससे किसीने राजाके पास जा कर उसके मनमें यह ठसा दिया कि यहां मीठा पानी निकला है इससे यदि इस जगह मन्दिर न होने दे कर जलवापिका कराई जाय तो ठीक होगा। पेथड़शाह को यह बात मालूम पड़नेसे रात्रिके समय ही उस जलके स्थानमे बारह हजार टकेका नमक डलवा दिया। वहां मन्दिर करानेके लिये बत्तीस ऊटणी सोनेसे लदी हुई भेजी गयीं। चौरासी हजार रुपये मन्दिर का कोट बांधनेमें खर्च हुये थे। मन्दिर तय्यार होनेकी बधावणी देने वालेको तीन लाख रुपयेका तुष्टिदान दिया गया था। इस प्रकार पेथड़विहार मन्दिर बना था। पेथड़ शाहने शत्रुंजय पर इक्कीस घड़ी सुवर्णसे मूलनायक के चैत्यको मंढ कर मेरुशिखर के समान सुवर्णमय कलश चढ़ाया था।

गत चौवीसी में तीसरे सागर नामक तीर्थंकर जब उज्जेणीमें पधारे थे तब नरवाहन राजाने उनसे यह पूछा कि मैं केवलज्ञान कब प्राप्त करूंगा। तब उन्होने उत्तर दिया था कि तुम आगामी चौवीसीमें बाईसमें तीर्थंकर श्री नेमिनाथजी के तीर्थमें सिद्धिपद प्राप्त करोगे। तब उसने दीक्षा अंगीकार की और अनशन करके वह ब्रह्मदेव लोकमें इन्द्र हुआ। उसने वज्र, मिट्टीमय श्री नेमिनाथजी की प्रतिमा बना कर दस सागरोपम तक वहां ही पूजी। फिर अपना आयुष्य पूर्ण होता देख वह प्रतिमा गिरनार पर ला कर मन्दिर के रत्नमय, मणिमय, सुवर्णमय, इस प्रकारके तीन गभारे जिनबिम्ब युक्त कर उसके सामने कंचनबलानक (एक प्रकार की गुफा) बना कर उसमें उसने उस बिम्बको स्थापन किया। इसके बाद बहुतसे काल पीछे रत्नोशाह संघपति एक बड़ा संघ ले कर गिरनार पर आया उसने बड़े हर्षसे मन्दिरमें मूलनायक की स्नात्रपूजा की। उस वक्त

वह बिम्ब मट्टीमय होनेके कारण जलसे गल गया। इससे संघपति रत्नोशाह अति दुःखित हुआ, उपवास करके वहां ही बैठ गया, उसे साठ उपवास हो गये तब अंबिका देवी की वाणीसे कांचनबलानक से वज्रमय श्री नेमि नाथ प्रभुकी प्रतिमा कच्चे सूतके तगोंसे लपेट कर मन्दिर के सामने लाये। परन्तु दरवाजे पर पीछे फिरके देखनेसे प्रतिमा फिर वहां ही ठहर गई। फिर मन्दिरका दरवाजा परावर्तन किया गया और वह अभी तक भी वैसा ही है।

कितनेक आचार्य कहते हैं कि कंचन वलानक में बहत्तर बड़ी प्रतिमायें थीं। जिसमें अठारह प्रतिमा सुवर्णकी, अठारह रत्नकी, अठारह चांदीकी और अठारह पाषाणकी थीं। इस तरह सब मिला कर बहत्तर प्रतिमायें गिरनार पर थीं।

प्रतिमा बनवाये बाद उसकी अंजनशलाका कराने में विलंब न करना चाहिये।

७ वां द्वारः—प्रतिमाकी प्रतिष्ठा अंजनशलाका शीघ्रतर करनी चाहिये। इसलिए षोडशक में कहा है कि—

निष्पन्नस्यैवं खलु, जिनबिम्बस्योदिता प्रतिष्ठाश्च।
दशदिवसाभ्यंतरतः, सो च त्रिविधा समासेन ॥ १ ॥

तैयार हुए जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा—अंजनशलाका सचमुच ही दस दिनके अन्दर करनी कही है। वह प्रतिष्ठा भी संक्षेपसे तीन प्रकारकी है। सो यहां पर बतलाते हैं।

व्यक्त्याख्या खल्वेषा, क्षेत्राख्या चापरा महाख्या च।
यस्तीर्थंकृत् यदाकिल, तस्य तदाद्येति समयविदः ॥ २ ॥

व्यक्त्याख्या, क्षेत्राख्या, और महाख्या एवं तीन प्रकारकी प्रतिष्ठाय होती हैं। उसमें जो तीर्थंकर जब विचरता हो तब उसकी प्रतिष्ठा करना उसे 'व्यक्ता' शास्त्रके जानकार कहते हैं।

ऋषभाद्यानां तु तथा सर्वेषांमेव मध्यमाज्ञेया।
सप्तत्यधिक शतस्यतु, चरमेह महा प्रतिष्ठेति ॥ ३ ॥

ऋषभदेव प्रमुख समस्त चौवीसीके बिम्बोंको अपने अपने तीर्थमें 'व्यक्ता' प्रतिष्ठा समझना। सर्व तीर्थ करोंके तीर्थमें चौवीसों ही तीर्थंकरों की अंजनशलाका करना यह 'क्षेत्रा' नामक अंजनशलाका कहलाती है। एक सौ सत्तर तीर्थंकरों की प्रतिमा इसे 'महा' जानना। एवं बृहद्भाष्यमें भी ऐसे ही कहा है कि—

वत्ति पइट्ठा एगा, खेत्त पइट्ठा महापइट्ठाय।
एग चउवीस सीत्तरी, सयाणं सा होइ अणुकमसो ॥ ४ ॥

व्यक्ता प्रतिष्ठा पहली, क्षेत्रा प्रतिष्ठा दूसरी और महा प्रतिष्ठा तीसरी है। एक प्रतिमाको मुख्य रख कर प्रतिष्ठा करना सो पहली, चौवीस प्रतिमायें दूसरी, और एक सौ सत्तर प्रतिमायें यह तीसरी, इस अनु-क्रमसे तीन प्रकारकी प्रतिमा अंजनशलाका समझना चाहिए।

प्रतिष्ठा करानेका विधि तो इस प्रकारका बतलाया है कि सब प्रकारके उपकरण इकट्ठे करके, नाना प्रकारके ठाठसे श्री संघको आमंत्रण करना, गुरु वगैरह को आमंत्रण करना, उनका प्रवेश महोत्सव करना, कैदिओंको छुड़ाना, जीवदया पालना, अनिवारित दान देना, मन्दिर बनाने वाले कारीगरों का सत्कार करना, उत्तम वाद्य, धवल मंगल महोत्सवपूर्वक अष्टादश स्नात्र करना वगैरह विधि प्रतिष्ठाकल्प से जानना।

प्रतिष्ठामें स्नात्र पूजासे जन्मावस्था को, फल, नैवेद्य, पुष्पविलेपन, संगीतादि उपचारों से कौमारादि उत्तरोत्तर अवस्था को, छद्मस्थावस्थ, सूचक आच्छादनादिक से, वस्त्र वगैरह से प्रभुके शरीरको सुगन्ध अधिवासित करना वगैरह से चारित्रावस्था को, नेत्र उन्मीलन (शलाकासे अंजन करते हुए) केवलज्ञान उत्पत्ति अवस्था को, सर्व प्रकारके पूजा उपकरणों के उपचार से समवशरणावस्था को विचारना। (ऐसा श्राद्ध समाचारी वृत्तिमें कहा है)

प्रतिष्ठा हुए बाद बारह महीने तक प्रतिष्ठाके दिन विशेषतः स्नात्रादिक करना। वर्षके अन्तमें अठाई महोत्सवादि विशेष पूजा करना। पहलेसे आयुष्य की गांठ बांधनेके समान उत्तरोत्तर विशेष पूजा करते रहना। (वर्षगांठ महोत्सव करना) वर्षगांठ के दिन साधर्मिक वात्सल्य, संघ पूजादि यथाशक्ति करना। प्रतिष्ठाषोडशक में कहा है कि—

अष्टौ दिवसान् यावत् पूजा विच्छेदतास्य कर्तव्या।
दानं च यथाविभवं, दातव्यं सर्वसत्वेभ्यः॥

आठ दिन तक अविच्छिन्न पूजा करनी, सर्व प्राणिओंको अपनी शक्तिके अनुसार दान देना। सप्तम द्वार पूर्ण॥

पुत्रादिक की दीक्षा

८ वां द्वार।—प्रौढ़ महोत्सव पूर्वक पुत्रादिको आदि शब्दसे पुत्री, भाई, चाचा, मित्र, परिजन वगैरह को दीक्षा दिलाना। उपलक्षण से उपस्थापना याने उन्हें बड़ी दीक्षा दिलाना। इसी लिये कहा है कि—

पंचय पुत्त सयाइं भरहस्सय सत्तनत्तुअ सयाइं।
सयाराहं पव्वइआ, तंमिकुमारा समोसरणे॥

ऋषभदेव स्वामीके प्रथम समवसरण मे पांच सौ भरतके पुत्रोंको एवं सात सौ पौत्रों (पोते) को दीक्षा दी।

कृष्ण और चेड़ा राजाको अपने पुत्र पौत्रिओंको विवाहित करनेका भी नियम था। अपने पुत्र पौत्रिओंको एवं अन्य भी थावच्चा पुत्रादिकों को प्रौढ महोत्सव से दीक्षा दिला कर सुशोभित किया था। यह कार्य महा फलदायक है। इसलिये कहा है कि—

ते धन्ना कयपुन्ना, जणओ जणणीअ सयलवग्गोअ।
जेसिं कुलंमि जायई, चारित्त धरो महापुत्तो॥ १॥

वे पुरुष धन्य हैं, कृतपुण्य हैं, उस पिताको धन्य है, उस माताको धन्य है, एवं उस सगे सम्बन्धी समूहको भी धन्य है कि जिनके कुलमें चारित्रको धारण करनेवाला एक भी महान पुत्र पैदा हुआ हो। लौकिकमें भी कहते हैं कि—

तावत् भ्रमन्ति संसारे, पितरः पिण्डकांक्षिणः।
यावत्कुले विशुद्धात्मा यतिः पुत्रो न जायते ॥ १ ॥

पिण्डकी आकांक्षा रखने वाले पित्री तब तक ही संसारमें भटकते हैं कि जब तक कुलमें कोई विशुद्धात्मा यतिपुत्र न हो।

द्वार नववां—पदस्थों के पदकी स्थापना करना। जैसे कि गणीपद, वाचनाचार्यपद, उपाध्यायपद, आचार्यपद, वगैरह की स्थापना कराना। या पुत्रादिकों को वा दूसरोंको उपरोक्त पद देनेके योग्य हो उन्हें शासन उन्नत्ति के लिये बड़ी पदवियोंसे महोत्सव पूर्वक विभूषित करना।

सुना जाता है कि पहले समवसरण में इन्द्रमहाराज ने गणपद की स्थापना कराई है। मन्त्री वस्तु पाल ने भी इक्कीस आचार्योंको आचार्यपद स्थापना करायी थी। नवम द्वार समाप्त ॥

दशम द्वार: ज्ञान भक्ति- पुस्तकोंको, श्री कल्पसूत्रागम, जिनचरित्रादि सम्बन्धी पुस्तकोंको न्यायोपार्जित द्रव्य खर्च कर विशिष्ट कागजों पर उत्तम और शुद्ध अक्षरादि की युक्तिसे लिखाना। वैराग्यवान गीतार्थोंके पास प्रारंभके प्रौढ़ महोत्सव करके प्रतिदिन पूजा बहुमानादि पूर्वक अनेक भव्य जीवोंके प्रतिबोध के लिये व्याख्यान कराना। उपलक्षण से पढने लिखने वालोंको वस्त्रादिक की सहाय देना इस लिये कहा है कि—

ये लेखयन्ति जिनशासन पुस्तकानि, व्याख्यानयन्ति च पठन्ति च पाठयन्ति।
श्रृण्वन्ति रक्षणविधौ च समाद्रियन्ते, ते मर्त्यदेव शिवशर्मनरा लभन्ते ॥ १ ॥

जो मनुष्य जैन शासनके पुस्तक लिखता है, व्याख्यान करता है, उन्हें पढ़ता है, दूसरोंको पढ़ाता है, सुनता है, उनके रक्षण करनेके कार्यमें आदर करता है, वह मनुष्य सम्बन्धी तथा देवसम्बन्धी एवं मोक्षके सुखों को प्राप्त करता है।

पठति पाठयति पठतामसुं, वसन भोजन पुस्तक वस्तुभिः।
प्रतिदिनं कुरुतेय उपग्रहं, स इह सर्व विदेवभवेन्नरः ॥ २ ॥

जो मनुष्य स्वयं उन पुस्तकोंको पढ़ता है, दूसरोंको पढाता है, और जो जानता हो उन्हें वस्त्र भोजन पुस्तक, वगैरह वस्तुओं से प्रतिदिन उपग्रह करता है, वह मनुष्य इस लोकमें भी सर्व वस्तुओं को जानने वाला होता है। जैनागम का केवल ज्ञानसे भी अतिशयीपन मालूम होता है। इस लिये कहा है कि—

ओहो सुश्रोवउत्तो, सुअनाणी जइहु गिराहइ असुद्धं।
तंकेवलिविभुंजइ, अपमाणं सुअं भवेइ हवा ॥ १ ॥

सामान्य श्रुत ज्ञानके उपयोग वाला श्रुतज्ञानी यद्यपि अशुद्ध आहार ग्रहण कर आता है, और यह बात

केवल ज्ञानी जानता है तथापि उस आहारको वह ग्रहण करता है। क्योंकि यदि इस प्रकार आहार ग्रहण न करें तो श्रुतज्ञान की अप्रमाणिकता शाबित होती है।

दूषम कालके प्रभावसे बारह वर्षी दुष्कालादि के कारण श्रुतज्ञान विच्छेद होता जान कर भगवंत नागार्जुनाचार्य और स्कंदिलाचार्य वगैरह आचार्योंने मिल कर श्रु तज्ञान को पुस्तकोंमें स्थापन किया। इसी कारण श्रु तज्ञान की बहुमान्यता है। अतः श्रु त ज्ञानके पुस्तक लिखवाना, पवित्र, शुद्ध वस्त्रोंसे पूजा करना, सुना आता है कि पेथड़शाह ने सात, और मन्त्री वस्तुपाल ने अठारह करोड़ द्रव्य व्यय करके, ज्ञानके तीन बड़े भण्डार लिखवाये थे। थराद के संघवी आभूशाह ने एक करोड़ का व्यय करके सकल आगम की एकेक प्रति सुनहरी अक्षरों से और अन्य सब ग्रन्थों की एकेक प्रति शाईके अक्षरों से लिखा कर भण्डार किया था। दशम द्वार समाप्त।

ग्यारहवां द्वारः—श्रावकों को पौषध ग्रहण करने के लिये साधारण स्थान पूर्वोक्त गृह चिना की रीति मुजब पौषधशाला कराना। वह साधर्मियों के लिये बनवायी होनेके कारण गुणयुक्त और निरवद्य होनेसे यथावसर साधुओं को भी उपाश्रय तया देने लायक हो सकती है और इससे भी उन्हें महा लाभकी प्राप्ति होती है इसलिये कहा है कि—

जो देइ उवस्सयं जइ वराण तव नियम जोग जुत्ताणं।
तेणं दिन्ना वथ्यन्न पाणसयणासणा विगप्पा॥ १॥

तप, नियम, योगमें युक्त मुनिराज को, जो उपाश्रय देता है उसने वस्त्र, पात्र, अन्न, पानी, शयन, आसन, भी दिया हैं ऐसा समझना चाहिये।

श्री वस्तुपाल ने नव सौ और चौरासी पौषधशाला बनवाई थीं। सिद्धराज जयसिंह के बड़े प्रधान सांतु नामकने एक नया आवास याने रहनेके लिये महल तयार कराया था। वह बादी देवसूरी को दिखला-कर पूछा कि स्वामिन् यह महल कैसा शोभनीक है ? उस वक्त समयोचित बोलने में चतुर माणिक्य नामक शिष्यने कहा कि यदि यह पौषधशाला हो तो बहुत ही प्रशंसनीय है। मंत्री बोला कि यदि आपकी इच्छा ऐसी ही है तो अबसे यह पौषधशाला ही सही। (ऐसा कह कर वह मकान पौषधशाला के लिये अर्पण कर दिया) उस पौषधशालाके दोनों तरफके बाहरी भागमे पुरुष प्रमाण दो बड़े सीसे जड़े हुये थे। वे श्रावकों को धर्म ध्यान किये बाद मुख देखने के लिये और जैन शासन के शोभाकारी हुए। इस ग्यारहवें द्वारके साथ पंद्रहवीं गाथाका-अर्थ समाप्त हुआ।

मूल गाथा

आजम्मं समत्तं, जह सत्ति वयाइं दिक्खगह अहवा।
आरंभचाओ बंभंच, पडिमाइ अंति आराहणा॥ १६॥

१२ वां आजन्म सम्यक् द्वार, १३ वां यथाशक्ति व्रत द्वार, १४ वां दीक्षा ग्रहण द्वार, १५ वां आरम्भ

त्याग द्वार, १६ वां ब्रह्मचर्य द्वार, १७ वां प्रतिमा वहन द्वार, १८ वां चरमाराधना द्वार, ये अठारह द्वार जन्म पर्यन्त आचरण में लाने चाहिये। अब इनमें से बारहवां एवं तेरहवां द्वार बतलाते हैं।

बाल्यावस्था से लेकर जीवन पर्यन्त सम्यक्त्व पालन करना एवं यथाशक्ति अणुव्रतोंका पालन करना इन दो द्वारोंका स्वरूप अर्थ दीपिका याने वन्दीता सूत्रकी टीकामें वर्णित होनेके कारण यहां पर सविस्तर नहीं लिखा है।

दीक्षा ग्रहण याने समय पर दीक्षा अंगीकार करना अर्थात् शास्त्रके कथनानुसार आयुके तीसरे पनमें दीक्षा ग्रहण करे। समझ पूर्वक वैराग्य से यदि बालवय में भी दीक्षा ले तो उसे विशेष धन्य है। कहा है कि—

धन्नाहु बाल मुणिणो, कुमार वासंमि जेउ पव्वइश्रा।
निज्जिणिऊण अणंगं, दुहावहं सव्वलोआणं ॥ १ ॥

सर्व जनोंको दुःखावह कामदेव को जीत कर जो कुमारावस्था मे दीक्षा ग्रहण करते हैं उन बाल मुनियोंको धन्य है।

अपने कर्मके प्रभावसे उदय आये हुये गृहस्थ भावको रात दिन दीक्षा लेनेकी एकाग्रता से पानी भरे हुये घड़ेको उठानेवाली पनिहारी स्त्रीके समान सावधान हो सत्यवादि न्यायसे पालन करे अर्थात् ग्रहस्थ अपने ग्रहस्थी जीवनको दीक्षा ग्रहण करनेका लक्ष रख कर ही व्यतीत करे। इसलिये शास्त्रकार भी कहते हैं कि—

कुर्वन्ननेक कर्माणि, कर्मदोषैर्न लिप्यते। तद्ध्येन स्थितो योगी, यथा स्त्री नीरवाहिनी ॥ २ ॥

पानी भरने वाली स्त्रीके समान कर्ममें लीन न होने वाला योगी पुरुष अनेक प्रकार के कर्म करता हुआ भी दोषसे कर्म लेपित नहीं होता।

पर पूंसि रता नारी, भर्तारमनुवर्तते। तथा तत्वरतो योगी, संसार मनुवर्तते ॥ ३ ॥

पर पुरुषके साथ रक्त हुई स्त्री जिस प्रकार इच्छा रहित अपने पतिके साथ रमण करती है, परन्तु पतिमें आसक्त नहीं होती उसी प्रकार तत्त्वज्ञ पुरुष भी संसारमें अनासक्ति से प्रवृत्ति करते हैं इससे उन्हें संसार सेवन करते हुये भी कर्मबन्ध नहीं होता।

जह नाम सुद्ध वेसा भुअंग परिकम्मणं निरासंसा।
अज्जकल्लं चएमि एयंमिअ भावणं कुणइ ॥ ३ ॥

जैसे कि कोई विचारशील वेश्या इच्छा बिना भी भोगी पुरुषको सेवन करती है परन्तु वह मनमें यह विचार करती है कि इस कार्यका मैं कब त्याग करूंगी? वैसे ही तत्वज्ञ संसारी भी आजकल संसार का परित्याग करूंगा यही भावना करता है।

अहवा पउथ्यवइआ, कुल वहुआ नवसिणेहरंग गया।
देह ठिइ माइअं सरमाणा पइगुणे कुणइ ॥ ४ ॥

या जिसका पति परदेश गया हो ऐसी प्रोषित पतिका श्रेष्ठ कुलमें पैदा हुई कुल बधू नये नये प्रकार के स्नेह रंगमें रंगी हुई देहकी स्थिति रखने के लिये पतिके गुणोंको याद करती हुई समय बिताती है।

एवमेव सव्वविरइं, मणे कुणंतो सुसावओ सिचं ॥
पालेज्ज गिहत्थत्तं, अप्पमहन्नं च मन्नंतो ॥ ५ ॥

इसी प्रकार अपने आपको अधन्य समझता हुआ निरन्तर सर्व विरति को मनमें धारणा रखता हुआ सुश्रावक गृहस्थ पनका पालन करता है।

ते धन्ना सपरिसा, पविचित्तं तेहि धरणि वलयमिणं।
निम्महि अमोह पसरा, जिणादिक्खं जे पवज्जन्ति ॥ ६ ॥

जिन्होंने मोहको नष्ट किया है और जिन्होंने जैनी दीक्षा अंगीकार की है ऐसे पुरुषोंको धन्य है उन्हींसे यह पृथ्वी पावन होती है।

"भाव श्रावक के लक्षण"

इथ्थिदि अथ्थ संसार, विसय आरम्भगेह दंसणाओ।
गड्डरिआइ पवाहे, पुरस्सरं आगमविची ॥ १ ॥
दाणाई जहा सत्ती, पवत्तणं विहिररत्त दुट्ठेअ।
अभमथ्थ असंवद्धे, परथ्थकामोव भोगीअ ॥ २ ॥
वेसाइ वगिह वासं, पालइ सत्तरस पय निवद्धन्तु।
भावगयभावसावग, लक्खणमेयं समासेणं ॥ ३ ॥

१ स्त्रीसे वैराग्य, २ इन्द्रियों से वैराग्य भावना करे, ३ द्रव्यसे वैराग्य भाव भावे, ४ संसार से विराग चिन्तन करे, ५ विषयसे वैराग्य, आरम्भ को दुःख रूप जाने. ८ शुद्ध समकित पाले, गतानुगत—भेड़ा चालका परित्याग करे, १० आगम के अनुसार प्रवृत्ति करे, ११ दानादि देनेमें यथा शक्ति प्रवृत्ति करे, १२ विधिमार्गकी गवेषणा करे, १३ राग द्वेष न रक्खे, १४ मध्यस्थ गुणोंमें रहे, १५ संसार में आसक्त होकर न प्रवर्ते, १६ परमार्थ के कार्यमें रुचि पूर्वक प्रवृत्ति करे, १७ वेश्या के समान गृह भाव पाले ये सत्रह लक्षण संक्षेप से भाव श्रावक के बतलाये हैं। अब इन पर पृथक् पृथक् विचार करते हैं।

इथ्थि अणथ्थ भवणं, चलचित्तं नरयवट्टणी भूअं।
जाणं तोहि अकामी, वसवत्ती होइ नहुत्तीसे ॥ ४ ॥

स्त्री वैराग्य—स्त्री अनर्थ का मूल है, चपल चित्त है, दुर्गति जानेका मार्ग रूप है यह समझ कर हितार्थी पुरुष स्त्रीमें आसक्त नहीं होता।

इन्दिय चवल तुरंगे, दुग्गइ मग्गाणु धाविरे निच्च।
भाविअ भवस्सरूवे, संभइ सन्नाण रस्सीहिं ॥ ५ ॥

सदैव दुर्गतिके मार्गकी ओर दौड़ते हुये इन्द्रिय रूप चपल घोड़ोंको संसार स्वरूप का विचार करने से सद्ज्ञान रूप लगाम से रोके।

सयलाणथ्थ निमित्तं, आयास किलेस कारणमसारं ।
नाऊण धणं धीमं, नहु लुब्भइ तंमि तणु अंपि ॥ ६ ॥

सकल अनर्थका मूल प्रयास—क्लेशका कारण और असार समझ कर बुद्धिमान मनुष्य धनके लोभमें नहीं फसता ।

दुहरूवं दुक्ख फलं दुहाणु बंधि विडम्बणा रूवं ।
संसारमसारं जाणि, ऊण नरइ तहिं कुणाई ॥ ७ ॥

दुःखरूप, दुःखका ही फल देनेवाले, दुःखका अनुबन्ध कराने वाले, विडंबना रूप संसार को असार जान कर उसमें प्रीति न करे,

खणमित्त सुहे विसए, विसोवमाणे सयाविमन्नंतो ।
तेसुन करेइ गिद्धि, भवभीरु मुणिअ तत्तथ्थो ॥ ८ ॥

क्षणिक सुख देने वाले और अन्तमें विषके समान दारुण फल देने वाले विषय सुखको समझ कर तत्वज्ञ भवभीरु श्रावक उसमें लंपट नहीं होता ।

वज्जइ तिव्वारम्भं, कुणइ अकामोअ निव्वहं तोअ ।
थुणइ निरारम्भजणं, दयालुओ सव्वजोवेसु ॥ ९ ॥

तीव्र आरम्भ का त्याग करे, निर्वाह न होने पर अनिच्छा से आरम्भ करे, सर्व जीवों पर दया रख-कर निरारम्भी मनुष्योंकी प्रशंसा करे ।

गिहवासं पासं मिव भावं तो वसई दुक्खिओ तम्मि ।
चारित्त मोहणिज्जं, निज्जीणिओ उज्जमं कुणाई ॥ १० ॥

गृह वासको पासके समान समझता हुआ उसमें दुःखित हो कर रहे, चारित्र मोहनीय कर्मको जीत-नेका उद्यम करता रहे ।

अथ्थिक्क भाव कलिओ, पभावणा वन्नवाय माईहिं ।
गुरुभत्ति जुओधि इमं, धरेइ सदंसणं विमलं ॥ ११ ॥

आस्तिक्य भाव युक्त जैन शासन की प्रभावना, गुण वर्णन वगैरह से गुरुभक्ति युक्त हो कर बुद्धिमान निर्मल दर्शनको धारण करे ।

गड्डरिअ पवाहेण, गयाणु गइअं जणं विआणंतो ।
पइहरइ लोकसन्नं, सुसमिक्खिअ कारओ धीरो ॥ १२ ॥

गतानुगतिकता को छोड़ कर—याने लोक संज्ञाको त्याग कर सारासार का विचार करके धीर बुद्धिमा श्रावक संसार में प्रवृत्ति करे ।

नथ्थि परलोक मग्गे पमाण मन्नं जिणागमं मुत्तु ।
आगम पुरस्सरं चिअ करेइ तो सव्व किरियाओ ॥ १३ ॥

परलोक के मार्गमें जिनागम को छोड़ कर अन्य कुछ प्रमाण नहीं है अतः आगमें के अनुसार ही तमाम क्रियायें करे।

अणि गहन्तो सत्ति, आया वाहाई जह वहु कुणाई। आयरई तहा सुमई, दाणाइ चउव्विहं धम्मं॥

शक्ति न लोप कर आत्मा को तकलीफ न हो त्यों सुमति वान श्रावक दानादि चतुर्विध धर्माचरण करे।

हिअमण वज्जं किरिअं, चिंतामणि रयण, दुल्लहं लहिआ।

सम्मं समायरन्तो, नहु लज्जइ मुद्ध हसिओवि॥ १५॥

चिन्तामणि रत्न समान दुर्लभ हितकारी और पाप रहित शुद्ध क्रिया प्राप्त कर उसे भली प्रकार से आचरण करते हुये यदि अन्य लोग मस्करी करें तथापि लज्जित न हो।

देहठि‌ठइ निबन्धण, धण सयण हार गेह माइसु।

निवसइ अरत्त दुठ्ठो, संसारगएसु भावेसु॥ १६॥

शारीरिक स्थिति कायम रखने के लिये धन, स्वजन, आहार, घर वगैरह सांसारिक पदार्थों के सम्बन्धमें राग द्वेष रहित होकर प्रवृत्ति करे।

उव समसार विआरो, वाहिज्जइ नेव राग दोसेहिं।

मज्झत्थोहि अकामी, असग्गहं सव्वहा चयइ॥ १७॥

उपशम ही सार विचार है अतः रागद्वेष मे न पड़ना चाहिये यह समझ कर हिताभिलाषी असत्य कदाग्रह छोड़ कर मध्यस्थपन को अंगीकार करता है।

भावंतो अणवरयं, खणभंगुरयं समथ्थ वथ्थूणं।

संबंधोवि धणाइसु, वज्जइ पडिबंध संबंधं॥ १८॥

यद्यपि अनादि कालीन सम्बन्ध है तथापि समस्त वस्तुओंका क्षणभंगुर स्वभाव समझता हुआ सर्व वस्तुओं के प्रतिबन्ध का परित्याग करे। अर्थात् तमाम वस्तुओं में अनाशक्ति रक्खे।

संसारविरत्तमणो, भोगुवेभोगातित्ति हेउत्ति।

नाउं पराखुरोहा, पवत्ताए कामभोगेसु॥ १९॥

भोगोपभोग यह कोई तृप्तिका हेतु नहीं है यह समझ कर संसारसे विरक्त मनवाला होकर स्त्री वगैरह काम भोगके विषयमें अनिच्छा से प्रवर्ते।

इअसत्तरसगुणजुत्तो, जिणागमे भावसावओ भणिओ।

एसपुण कुसलजोगा, लहइ लहु भावसाहुत्तं॥ २०॥

इस प्रकारके सत्रह गुणयुक्त जिनागम में भाव श्रावकका स्वरूप कथन किया है। इस पुण्यानुबन्धी पुण्यके योगसे मनुष्य शीघ्र ही भाव साधुता प्राप्त करता है, यह बात धर्मरत्न प्रकरण में कथन की है।

पूर्वोक्त धर्मभावनाय भाता हुआ दिन कृत्यादि में तत्पर रह कर "इणमेव निग्गंथे पावयणे अठ्ठे

परमठ्ठे सेसे प्रण प्रणठ्ठेत्ति" यह निग्रंथ प्रवचन (वीतराग प्ररूपित जैनधर्म) ही सत्य है, परमार्थ है, अन्य सब मार्ग त्यागने योग्य हैं, इस तरह जैनसिद्धान्तों में बतलाई हुई रीत्यनुसार वर्तता हुआ सब कामोंमें यतनासे प्रवृत्ति करे। सब कार्योंमें अप्रतिबद्ध चित्त होकर क्रमशः मोहको जीतनेमें समर्थ होकर अपना पुत्र या भाई या अन्य सम्बन्धी जन जब तक गृहभार वहन करनेमें असमर्थ हो तब तक गृहस्थावस्था रहे या वैसे भी कितने एक समय तक गृहस्थावास में रह कर समय आने पर अपनी आत्माको समतोल कर जिनमन्दिरों में अठाई महोत्सव करके चतुर्विध संघकी पूजा सत्कार करके साधर्मिक वत्सल कर और दीन हीन अनाथोंको यथाशक्ति दान देकर सगे सम्बन्धी जनोंको खास कर विधिपूर्वक सुदर्शन शेठ वगैरह के समान दीक्षा ग्रहण करे। इसलिये कहा है कि—

सव्वरयणा मएहिं विभूसिअं जिणहरेहिं महिवलय।
जो कारिज्ज समग्गं, तओवि चरणं महड्ढीअ ॥ ३ ॥

सर्व रत्नमय विभूषित मन्दिरोंसे समग्र भूमंडल को शोभायमान करे उससे भी बढ़ कर चारित्रका महात्म्य है।

नो दुष्कर्मप्रयासो न कुयुवतिसुतस्वामिदुर्वाक्यदुःखं।
राजादौ न प्रणामो शनवसनधनस्थान चिंता न चैव ॥
ज्ञानाप्तिर्लोकपूजा प्रशमसुखरतिः प्रेत्य मोक्षाद्यवाप्तिः।
श्रामण्येमीगुणाःस्युस्तदिह सुमतयस्तत्र यत्नं कुरुध्वम् ॥ २ ॥

जिसमें दुष्कर्म का प्रयास नहीं, जिसमें खराब स्त्री पुत्रादिके वाक्योंसे उत्पन्न होनेवाला दुःख नहीं, जिसमें राजादिको प्रणाम करना नहीं पड़ता, जिसमें अन्न वस्त्र धन कमाने खानेकी कुछ भी चिंता नहीं, निरन्तर ज्ञानकी प्राप्ति होती है, लोक सम्मान मिलता है, समताका सुखानन्द मिलता है और परलोक में क्रमसे मोक्षादिकी प्राप्ति होती है। (ऐसा साधुपन है) साधुपन में इतने गुण प्राप्त होते हैं इसलिये हे सद्बुद्धि वाले मनुष्यो! उसमें उद्यम करो।

कदाचित किसी आलंबन से उस प्रकारकी शक्तिके अभाव वगैरह से दीक्षा लेनेमें असमर्थ हो तो आरम्भ का परित्याग करे। यदि पुत्रादिक घरकी संभाल रखने वाला हो तो सर्व सचित्तका त्याग करना चाहिए। और यदि वैसा न बन सके तो यथा निर्वाह याने जितना हो सके उतने प्रमाणमें सचित्त आहार वगैरह का परित्याग करके कितनेक आरम्भ का त्याग करे। यदि बन सके तो अपने लिये रांधने, रंधवाने का भी त्याग करे। इसलिये कहा है कि—

जस्सकए आहारो, तस्सठ्ठा चेव होइ आरम्भो।
आरम्भे पाणिवहो, पाणिवहे दुग्गइच्चेव ॥ १ ॥

जिसके लिये आहार पकाया जाता है उसीको आरम्भ लगता है, आरम्भ में प्राणीका वध होता है, प्राणीवध होनेसे दुर्गतिकी प्राप्ति होती है।

सोलहवां द्वारः—ब्रह्मचर्य यावज्जीव पालना चाहिए। जैसे कि पेथड़शाह ने बत्तीसवें वर्षमें ही ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार किया था। क्योंकि भीम सोनी मढी पर आवे तब ब्रह्मचर्य लूं इस प्रकारका पण किया हुआ होनेके कारण उसने तरुण वयमे भी ब्रह्मचर्य अंगीकार किया था। ब्रह्मचर्य के फलपर अर्थदीपिका मे स्वतंत्र संपूर्ण अधिकार कहा गया है। इसलिये दृष्टान्तादि वहांसे ही समझ लेना चाहिए।

श्रावककी प्रतिमायें

श्रावकको संसार तारणादिक दुष्कर तप विशेषसे प्रतिमादि तप वहन करना चाहिये। सो श्रावककी ग्यारह प्रतिमाओं का स्वरूप इस प्रकार समझना।

दंसण वय सामाइय, पोसह पडिमा अबंभ सचित्ते। आरम्भपेस उद्दिठ, वज्जए समणा भूएअ॥ १॥

१ 'दर्शन प्रतिमा' एक मासकी है, उसमें अतिचार न लगे इस तरहका शुद्ध सम्यक्त्व पालना। २ व्रत प्रतिमा दो महिनेकी है, उसमें पूर्वोक्त क्रिया सहित पहले लिये हुए बारह व्रतोंमें अतिचार न लगे उन्हें इस प्रकार पालना। ३ 'सामायिक प्रतिमा' तीन मासकी है, उसमें पूर्वोक्त क्रिया सहित सुबह, शाम, दो दफा शुद्ध सामायिक करना। ४ 'पौषध प्रतिमा' चार महीनेकी है, उसमें पूर्वोक्त क्रिया सहित अष्टमी, चतुर्दशी पर्व तिथिके पौषध अतिचार न लगे वैसे पालन करना। ५ 'काउसग्ग प्रतिमा' पांच मासकी है, उसमें पूर्वोक्त क्रिया सहित अष्टमी चतुर्दशी के लिए हुए पौषध में रात्रिके समय कायोत्सर्ग में खड़े रहना। ६ ब्रह्म प्रतिमा' छह महीने की है, उसमें पूर्वोक्त क्रिया सहित ब्रह्मचर्य पालन करना। ७ 'सचित्त प्रतिमा' सात मासकी है, उसमें पूर्वोक्त क्रिया सहित सचित्त भक्षण का परित्याग करना। ८ 'आरम्भ त्याग प्रतिमा' आठ महीने की है, उसमें पूर्वोक्त क्रिया सहित स्वयं आरम्भ का परित्याग करे। ९ 'प्रेष्य प्रतिमा' नव मासकी है, उसमें पूर्वोक्त क्रिया सहित अपनी तरफसे नौकर चाकर को कहीं न भेजे। १० 'उद्दिश्य वर्जक प्रतिमा' दस मासकी है, उसमें पूर्वोक्त क्रिया सहित अपने आश्रित आरम्भ का त्याग करे और ११ 'श्रवण भूत प्रतिमा' ग्यारह मास की है, उसमे पूर्वोक्त सर्व क्रिया सहित साधुके समान विचरे। यह ग्यारह प्रतिमाओंका संक्षिप्त अर्थ कहा गया है।

अब प्रत्येक प्रतिमा का जुदा उल्लेख करते हैं।

१ दर्शन प्रतिमा—राजाभियोगादिक छह आगार जो खुले रक्खे थे उनसे रहित चार प्रकारके श्रद्धानादि गुणंयुक्त, भय, लोभ, लोकलज्जादि से भी अतिचार न लगाते हुये त्रिकाल देवपूजादि कार्योंमें तत्पर रह कर जो एक मास पर्यन्त पंचातिचार रहित शुद्ध सम्यक्त्व को पाले तब वह प्रथम दर्शन प्रतिमा कहलाती है।

२ व्रत प्रतिमा—दो महीने तक अखंडित पूर्व प्रतिमामें बतलाये हुये अनुष्ठान सहित अणुव्रत का पालन करे याने उनमें अतिचार न लगाये सो दूसरी व्रत प्रतिमा कहलाती है।

३ सामायिक प्रतिमा—तीन महीने तक उभयकाल अप्रमादी हो कर पूर्वोक्त प्रतिमा अनुष्ठान सहित सामायिक पाले सो तीसरी सामायिक नामक प्रतिमा समझना।

४ पौषध प्रतिमा—चार महीने तक चार पर्व दिनोंमें पूर्वोक्त प्रतिमा अनुष्ठान सहित परिपूर्ण पौषध का पालन करे सो चौथी पौषध प्रतिमा समझना ।

५ कायोत्सर्ग प्रतिमा—पांच महीने तक स्नान त्याग कर और रात्रिके समय चारों प्रकारके आहारका परित्याग करके दिनके समय ब्रह्मचर्य पालन करते हुये, धोतीकी लांग खुली रख कर चार पर्वणीमें घर पर या घरके बाहर अथवा चौराहेमें परिसह उपसर्गादि से अकंपित हो कर पूर्वोक्त प्रतिमानुष्ठान पालते हुये सारी रात कायोत्सर्ग में रहना सो पांचवीं कायोत्सर्ग प्रतिमा कहलाती है।

६ ब्रह्मचर्य प्रतिमा—इसी प्रकार अगली प्रतिमा भी पूर्वोक्त प्रतिमाओं की क्रिया सहित पालन करना। छठी प्रतिमामे इतना ही विशेष समझना कि छह महीने तक ब्रह्मचारी रहना ।

७ सचित्त त्याग प्रतिमा—पूर्वोक्त क्रिया सहित सात महीने तक सचित्त भक्षण का त्याग करना याने सजीव वस्तु न खाना । यह सातवीं सचित्त त्याग प्रतिमा समझना ।

८ आरम्भत्याग प्रतिमा—इस प्रतिमाका समय आठ महीनेका है । याने आठ महीने तक अपने हाथसे किसी भी प्रकारका आरम्भ न करनेका नियम धारण करना । सो आठवीं आरम्भ त्याग प्रतिमा समझना ।

९ प्रेष्यवर्जक प्रतिमा—पूर्वोक्त प्रतिमानुष्ठान सहित प्रेष्य याने नौकर चाकरके द्वारा या अन्य किसीके द्वारा भी नव महीने तक आरम्भ न करावे यह नववीं प्रेष्यवर्जक प्रतिमा समझना ।

१० उद्दिष्ट आरम्भवर्जक प्रतिमा—दसमी प्रतिमामें दस महीने तक पूर्वोक्त प्रतिमाओं के अनुष्ठान सहित मात्र चोटी रख कर उस्तरेसे मुंडन करावे और निधान किया हुआ धन भी यदि कोई उस समय पूछे तो स्वयं जानता हो तो बतला देवे और यदि न जानता हो तो साफ कह देवे कि यह बात मैं नहीं जानता। अर्थात् सरलता पूर्वक सत्यको अपने प्राणोंसे भी अधिक समझे। घरका कार्य कुछ भी न करे और अपने लिये यदि घरमें आहार तैयार हुआ हो तो उसे भी ग्रहण न करे। यह दसमी प्रतिमा समझना।

११ श्रमणभूत प्रतिमा—ग्यारह महीने तक पूर्वोक्त प्रतिमाओं के अनुष्ठान सहित घरका काम काज छोड़ कर, लोक परिचय छोड़ कर, लोच करे अथवा उस्तरेसे मुंडन करावे। शिखा न रक्खे। रजोहरण प्रमुख रखनेसे मुनिवेष धारी बने। अपने परिचित गोकुलादिकमें रहने वालोंको "प्रतिमाप्रतिपन्नाय श्रमणोपासकाय भिक्षां दत्त" ऐसा बोलते हुये, धर्मलाभ शब्द न बोल कर सुसाधु के समान विचरे। यह ग्यारहवीं प्रतिमा समझना। इस प्रकारके अभिग्रह तपरूप श्रावक की ग्यारह प्रतिमा कही हैं।

अब आयु समाप्त होनेके समयका अन्तिम कृत्य बतलाते हैं।

> सोऽथावस्यकयोगानां, भंगे मृत्योरथागमे।
> कृत्वा संलेखनामादौ, प्रतिपद्य च संयमं ॥ १ ॥

आवश्यक योगोंका भंग होनेसे और मृत्यु नजीक आ जानेसे प्रथम संयमको अंगीकार करके फिर सल्लेखना करके आराधना करे।

शास्त्रमें ऐसा कथन होनेके कारण श्रावकके आवश्यक कर्तव्य जो पूजा प्रतिक्रमणादि न बन सकनेसे

और मृत्यु समीप आ जानेसे द्रव्य और भाव इन दोनों प्रकारकी संलेखना को करे। उसमें द्रव्यसंलेखना याने आहारादिक का परित्याग करना और भावसंलेखना क्रोधादिक कषायका त्याग करना। कहा भी है कि—

देहंमि असंलिहिए, सहसा धाऊ हिं खिज्जमाणेहि।
जायइ अट्टम्भाणं, सरीरिणो चरमकालंमि॥ १॥

शरीरको अनसन न कराने पर यदि अकस्मात् धातुओं का क्षय हो जाय तो शरीरधारी को अन्तिम कालमें आर्तध्यान होता है।

न ते एयं पसंसामि, किसं साहु सरीरयं। किसं ते अंगुलीभग्ग, भावसंलीण माचर॥ २॥

हे साधु! मैं तेरे इस शरीर के दुर्बलपन को नहीं प्रशंसता। तेरे शरीरका दुर्बलपन तो इस तेरी अंगुली के मोड़नेसे मालूम ही हो गया है। इसलिये भावसंलीनता का आचरण कर। याने भावसंलीनता आये विना द्रव्यसंलीनता फलीभूत नहीं हो सकती।

"मृत्यु नजीक आनेके लक्षण"

स्वप्न देखनेसे, देवताके कथन वगैरह कारणोंसे मृत्यु नजीक आई समझी जा सकती है। इस लिये पूर्वमें पूर्वाचार्यों ने भी यही कहा है कि—

दुःस्वप्न प्रकृतित्यागै, दुर्निमित्तैश्च दुग्रहैः। हंसचारान्यथात्वैश्च, ज्ञेयो मृत्युसमीपगः॥ १॥

खराब स्वप्न आनेसे, प्रकृतिके बदल जानेसे, खराब निमित्त मिलने से, दुष्ट ग्रहसे, नाड़ीयें याने नब्ज बदल जानेसे मृत्यु नजदीक आई है, यह बात मालूम हो सकती है।

इस तरह संलेखना करके श्रावक धर्मरूप तपके उद्यापन के समान अन्त्यावस्था में भी दीक्षा अंगीकार करे। इसलिये कहा है कि—

एग दिवसंपि जीवो, पव्वज्ज मुवागओ अनन्नमणो।
जइ विन पावइ मुक्खं, अवस्स वेमाणिओ होई॥ १॥

जो मनुष्य एक दिनकी भी अनन्य मनसे दीक्षा पालन करता है वह यद्यपि उस भवमें मोक्षपदको नहीं पाता तथापि अवश्य ही वैमानिक देव होता है।

नल राजाका भाई कुबेरका पुत्र नवीन परिणीत था। परन्तु अब 'पांच ही दिनका तेरा आयुष्य है' इस प्रकार ज्ञानी का वचन सुन कर तत्काल ही उसने दीक्षा अंगीकार की और अन्तमें सिद्धि पदको प्राप्त हुआ।

हरिवाहन राजाने नौ प्रहरका ही आयुष्य बाकी है यह ज्ञात ज्ञानीके मुखसे जान कर तत्काल ही दीक्षा ली और अन्तमें वह सर्वार्थसिद्धि विमान में देव तया पैदा हुआ।

संथारा किये बाद दीक्षा ली हो तो उस वक्त जैनशासन की उन्नति निमित्त यथाशक्ति धर्मार्थ खर्च करना, जैसे कि उस अवसर में सातों क्षेत्रमें सात करोड़ द्रव्यका व्यय थराद के संघपति आभूने किया था।

जिसे संयम लेनेका सुभीता न हो उसे संलेखन करके शत्रुंजय तीर्थादिक श्रेष्ठ स्थान पर निर्दोष स्थण्डिल में (निर्दोष जगहमें) विधिपूर्वक चतुर्विध आहार प्रत्याख्यानरूप आनन्दादि श्रावक के समान अनसन अंगीकार करना। इस लिये कहा है कि—

तवणियमेणायमुक्खो, दाणेणय हुन्ति उत्तमा भोगा।
देवच्चणेण रज्जं, अणसण मरणेण इन्दत्तं ॥ १ ॥

तप और नियमसे मनुष्य को मोक्षपद की प्राप्ति होती है दान देनेसे मनुष्य को उत्तम भोग सम्पदा की प्राप्ति होती है और अनशन द्वारा मृत्यु साधने से इन्द्र पदकी प्राप्ति होती है। लौकिक शास्त्रमें भी कहा है कि—

समाः सहस्त्राणि च सप्त वै जले, दशैवमग्नौ पतने च षोडश।
महाहवेषष्टिरशीतिगोग्रहे, अनाशने भारतचाक्षया गतिः ॥ १ ॥

जलमें पड़ कर मृत्यु पानेसे सात हजार वर्ष, अग्निमें पड़ कर मृत्यु पानेसे दस हजार वर्ष, झंपापात करके मृत्यु पानेसे सोलह हजार वर्ष, महा संग्राम में मरण पानेसे साठ हजार वर्ष, गायके कलेवर में घुसकर मृत्यु पानेसे अस्सी हजार वर्ष, और अनसन करके (उपवास करके) मृत्यु पानेसे अक्षय गति होती है।

फिर सर्व अतिचार का परिहार करने पूर्वक चार शरणादि रूप आराधना करना। उसमें दस प्रकारकी आराधना इस प्रकार है।

आलो असु अइयारे वयाइं उच्चरसु खमसु जीवेसु।
वोसिरसु भावि अप्पा, अट्ठारस पावठ्ठाणाइं ॥ १ ॥
चउसरण-दुक्कड गरिहणं च सुकडाणु मोअणं कुणसु।
सुहभावणं अणसणं, पंचनमुक्कारसरणं च ॥ २ ॥

१ पंचाचार के और बारह व्रतोंमेंके लगे हुये अतिचारों की आलोचना रूप पहिली आराधना समझना। २ आराधना के समय नये व्रत प्रत्याख्यान अंगीकार करने रूप दूसरी आराधना समझना। ३ सर्व जीवोंके साथ क्षमापना करने रूप तीसरी आराधना समझना। ४ वर्तमान कालमें आत्मा को अठारह पाप स्थान त्यागने रूप चौथी आराधना समझना। ५ अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म इन चारोंका शरण अंगीकार करने रूप पांचवीं आराधना समझना। ६ जो जो पाप किये हुये हैं उन्हें याद करके उनकी गर्हा करना, निंदा करना, तद्रूप छठी आराधना समझना। ७ जो जो सुकृत कार्य किये हों उनकी अनुमोदना करना तद्रूप सातवीं आराधना समझना। ८ शुभ भावना याने बारह भावना भानेरूप आठवीं आराधना जानना। ९ चारों आहार का त्याग करके अनशन अंगीकार करने रूप नवमी आराधना कही है और १० पंच परमेष्ठी नवकार महा मन्त्रका निरन्तर स्मरण रखना तद्रूप दशमी आराधना है।

इस प्रकार की आराधना करनेसे यद्यपि उसी भवमें सिद्धि पदको न पाये तथापि सुदेव भवमें या सुनर भवमें अवतार लेकर अन्तमें आठवें भवमें तो अवश्य ही मोक्षपद को पाता है। 'सत्तट्ठ भवाइं' नावक-

मइ' इति आगम प्रवचनात्। 'सात आठ भव उल्लंघन नहीं करे' इस प्रकार का आगमका पाठ होनेसे सचमुच ही सात आठ भवमें मोक्षपदको पाता है। यह अठारहवां द्वार समाप्त होते हुये सोलहवीं गाथाका अर्थ भी पूर्ण होता है। अब उपसंहार करते हुये दिन कृत्यादि के फल बतलाते हैं।

मूल गाथा

एअं गिहि धम्मविहिं, पइदि अहं निव्वहंति जे गिहिणो॥
इहभव परभव निव्वुइ, सुहं लहुं ते लहंति धुवं॥ १७॥

यह अन्तर रहित बतलाये हुए दिन कृत्यादिक छह द्वारात्मक श्रावक धर्मके विधिको जो गृहस्थ प्रतिदिन पालन करते हैं वे इस वर्तमान भवमें एवं आगामी भवमे अन्तर रहित आठ भवकी परम्परा में ही सुखका हेतु भूत पुनरावृत्ति व्याख्यान संयुक्त निवृत्ति याने मोक्ष सुखको अवश्य ही शीघ्रतर प्राप्त करते हैं। इति सत्रहवीं गाथार्थ॥

इति श्री तपागच्छाधिप श्री सोमसुन्दर सूरि श्री मुनि सुन्दर सूरि श्री जयचन्द्र सूरि श्री भुवनसुन्दर सूरि शिष्य श्री रत्नशेखर सूरि विरचितायां विधिकौमुदी नाम्न्यां श्राद्धविधि प्रकरणवृत्तौ जन्मकृत्यप्रकाशकः षष्ठः प्रकाशः श्रेयस्करः।

प्रशस्ति

विख्यात तपेत्याख्या। जगति जगचंद्र सूरयो भुवन्।
श्री देव सुन्दर गुरुत्तमाश्च सदगुरुक्रमाद्विदिताः॥ १॥

श्री जगत्चन्द्रसूरि तपा * नामसे प्रसिद्ध हुये। अनुक्रम से प्रसिद्धि प्राप्त उनके पट्ट पर श्री देवसुन्दरसूरि हुये।

पंच च तेषां शिष्यास्तेष्वाद्या ज्ञानसागरा गुरवः।
विविधाव चूर्णि लहरि प्रकटनतः सान्द्रवाञ्छानाः॥ २॥

उस देव सुन्दर सूरि महाराज के पांच शिष्य हुये। जिनमें ज्ञानामृत समुद्र समान प्रथम शिष्य ज्ञान-

---

* श्री जगत्चन्द्र सूरिको युवावस्थामे आचार्यपद प्राप्त हुआ था। वे निरन्तर आंबिल तप करते थे अत. उनका शरीर कृश हो गया था। एक समय सं० १२८५ मे वे उदयपुर पधारे, उस वक्त वहांके संघने बडे आडम्बर से उनका नगर प्रवेश महोत्सव किया। उसवक्त नगरमें प्रवेश करते हुये राजमहल मे एक गवाक्षसे महाराणा की पटरानीमे कृश शरीरं आचार्य महाराज को शुष्क शरीर वाला देखा महारानी ने संघके आगेवानों को बुलवा कर पूछा कि जिसका तुम लोग इतने आडम्बर से प्रवेश महोत्सव कर रहे हो यह महाज्ञानी होने पर भी उसका इतना दुर्बल शरीर क्यों? क्या तुम उसे पूरा खानपान नहीं देते? आगेवानों ने कहा कि ये सदैव एक दफा शुष्क आहार करते हैं अर्थात् हमेशह आंबिल तप करते हैं इसी कारण उनका शरीर सूख गया है। यह सुन कर महारानीजी को बडा आनन्द हुआ और वहां आकर आचार्य महाराज को उसने 'तपा' विरुद पूर्वक सादर नमस्कार किया। बस उसवक्त से ही वडगच्छ को तपा विरुदकी शुरुआत हुई है।

सागर सूरि हुये। जिन्होंने विविध प्रकार बहुतसे शास्त्रों पर चूर्णिरूपी लहरोंके प्रगट करनेसे अपने नामकी सार्थकता की है।

श्रुतगत विविधालापक समुद्धृतः समभवंश्च सूरीन्द्राः।
कुलमण्डना द्वितीयाः श्रीगुणरत्नास्तृतीयाश्च ॥ ३ ॥

दूसरे शिष्य श्री कुलमण्डन सूरि हुये जिन्होंने सिद्धान्त ग्रन्थोंमें रहे हुये अनेक प्रकारके आलावे लेकर विचारामृत संग्रह जैसे बहुतसे ग्रन्थोंकी रचना की है। एवं तीसरे शिष्य श्री गुणरत्न सूरि हुये हैं।

षट्दर्शनवृत्तिक्रिया रत्नसमुच्चय विचार निचयसृजः।
श्रीभुवनसुन्दरादिषु भेजुर्विद्यागुरुत्वं ये ॥ ४ ॥

जिस गुणरत्न सूरि महाराज ने षट्दर्शन समुच्चय की बड़ी वृत्ति और हैमी व्याकरण के अनुसार क्रियारत्न समुच्चय वगैरह विचार नियम याने विचारके समूहको प्रगट किया है। और जो श्री भुवनसुन्दर सूरि आदि शिष्योंके विद्यागुरु हुए थे।

श्रीसोमसुन्दरगुरुप्रवरास्तुर्या अहार्य महिमानः।
येभ्यः संततिरुच्चैर्भवतिद्वेधा सुधर्मभ्यः ॥ ५ ॥

जिनका अतुल महिमा है ऐसे श्री सोमसुन्दर सूरि चतुर्थ शिष्य हुए। जिनसे साधुसाध्वीओं का परिवार भली प्रकार विस्तृत हुआ। जिस तरह सुधर्मास्वामी से ग्रहणा आसेवना की रीत्यानुसार साधु साध्वी प्रवर्ते थे।

यति जितकल्पविवृतिश्च पंचमाः साधुरत्न सूरिवराः।
यैर्मादृशोप्यकृष्यत करप्रयोगेण भवकूपात् ॥ ६ ॥

यति जीतकल्पवृत्ति वगैरह ग्रन्थोंके रचने वाले पांचवें शिष्य श्री साधुरत्न सूरि हुए कि जिन्होंने हस्तावलंबन देकर मेरे जैसे शिष्योंको संसाररूप कूपमें डूबते हुओंका उद्धार किया।

श्रीदेवसुन्दरगुरोः पट्टे श्रीसोमसुन्दरगणेन्द्राः।
युगवरपदवीं प्राप्तास्तेषां शिष्याश्च पञ्चैते ॥ ७ ॥

पूर्वोक्त पांच शिष्योंके गुरु श्रीदेवसुन्दरसूरि के पाट पर युगवर पदवीको प्राप्त करने वाले श्रीसोमसुन्दर सूरि हुये और उनके भी पांच शिष्य हुये थे।

मारीत्यमनिराकृति सहस्रनामस्मृति प्रभृति कृत्यैः।
श्रीमुनिसुन्दरगुरवश्चिरन्तनाचार्यमहिमभृतः ॥ ८ ॥

पूर्वाचार्यों के महिमाको धारण करने वाले, संतिकरं स्तोत्र रच कर मरकी रोगको दूर करने वाले, सहस्रावधानी के नाम वगैरह से प्रख्यात श्रीमुनिसुन्दर सूरि प्रथम शिष्य हुये।

श्रीजयचन्द्रगणेन्द्राः निस्तन्द्राः संघगच्छकार्येषु।
श्रीभुवनसुन्दरवरा दूरविहारैर्गणोपकृतः ॥ ९ ॥

संघके एवं गच्छके कार्य करनेमें अप्रमादी दूसरे शिष्य श्रीजयचन्द्र सूरि हुये कि जो दूर देशोंमें विहार करके भी अपने गच्छको परम उपकार करने वाले तीसरे शिष्य श्रीभुवनसुन्दर सूरि हुये।

विषममहाविद्यातद्विडम्बनाब्धौ तरीवद्विषयः ॥
विदधे यद् ज्ञाननिधिं मदादिशिष्या उपाजीवन् ॥ १० ॥

जिस भुवनसुन्दर सूरि गुरु महाराज ने विषम महा विद्याओं की विडम्बना रूप समुद्रमें प्रवेश कराने वाली नावके समान विषम पदको टोका की है। इस प्रकारके ज्ञाननिधान गुरुको पा कर मेरे जैसे शिष्य भी अपने जीवनको सफल कर रहे हैं।

एकांगा अप्येका दशांगितश्च जिनसुन्दराचार्याः।
निर्ग्रन्थाग्रन्थकृताः श्रीमज्जिनकीर्ति गुरवश्च ॥ ११ ॥

तप करनेसे एकांगी (इकहरे शरीर वाले) होने पर भी ग्यारह अंगके पाठी चौथे शिष्य श्रीजिनसुन्दर सूरि हुये और निर्ग्रन्थपन को धारण करने वाले एवं ग्रन्थोंकी रचना करने वाले पाँचवें शिष्य श्रीजिनकीर्ति सूरि हुये।

एषां श्रीसुगुरूणां प्रसादतः षट्-खतिथिमिते वर्षे।
'श्राद्धविधि' सूत्रवृत्तिं व्यधत्त श्रीरत्नशेखरसूरिः ॥ १२ ॥

पूर्वोक्त पांच गुरुओंकी कृपा प्राप्त करके संवत् १५०६ में इस श्राद्धविधि सूत्रकी वृत्ति श्रीरत्नशेखर सूरिजी ने की है।

अत्र गुणसत्रविज्ञावतंस जिनहंसगणिवरप्रमुखैः।
शोधनलिखनादिविधौ व्यधायी सांनिध्यमुद्युक्तैः ॥ १३ ॥

यहां पर गुणरूप दानशाला के जानकारों में मुकुट समान उद्यमी श्रीजिनहंस गणि आदि महानुभावों ने लेखन शोधन वगैरह कार्योंमें सहाय की है।

विधिवैविध्याश्रुतगतनैयत्यादर्शनाच्च यत्किंचित्।
अत्रोत्सूत्रमसूत्र्यतत्तं मिथ्यादुष्कृतं मेस्तु ॥ १४ ॥

विधिके—श्रावकविधि के अनेक प्रकार देखनेसे और सिद्धान्तों में रहे हुये नियम न देखनेसे इस शास्त्र में यदि मुझसे कुछ उत्सूत्र लिखा गया हो तो मेरा वह पाप मिथ्या होवो।

'विधिकौमुदीतिनाम्न्यां वृत्तावस्यां विलोकितैर्वर्णैः।
श्लोकाः सहस्रषट्कं सप्तशती चैकषष्ठ्याधिकाः ॥ १५ ॥

इस प्रकार इस विधिकौमुदी नामक वृत्तिमें रहे हुये सर्वाक्षर गिनने से छह हजार सात सौ एकसठ श्लोक हैं।

श्राद्धहितार्थं विहिता, श्राद्धविधिप्रकरणस्य सूत्रवृत्तिरियं।
चिरं समयं जयता, जयदायिनी कृतिनाम् ॥

श्रावकोंके हितके लिये श्राद्धविधि—श्रावकविधि प्रकरण की श्राद्धविधि कौमुदी नामक यह टीका रची है सो चिरकाल तक पंडितजनों को जय देने वाली हो कर जयवन्ती वर्तो।

(१)

यह आचार प्रपासमान महिमा, वाला बड़ा ग्रन्थ है,
जैनाचार विचार ज्ञात करता, मुक्तिपुरी पन्थ है।
प्राज्ञों के हृदयंगमी हृदय में, कंठस्थ यह हार है,
हस्तालम्बक सारभूत जगमें, यह ज्ञान भाण्डार है॥

(२)

निश्चय औ व्यवहार सार समझै, सम्यक्त्व पाले वही,
उपसर्गे अपवाद से सकल यह, वस्तु जनावे सही।
प्राणीको परमार्थ ज्ञान मिलने, में है सुशैली खरी,
पूर्वाचार्य प्रणीत ग्रन्थ रचना, हो तारनेको तरी॥

(३)

यह भाषान्तर शुद्ध श्राद्धविधिका, हिन्दी गिरामें करा,
होगा पाठकवृन्द को हिततया, स्पष्टार्थ जिसमें भरा।
श्रावक श्री पुखराज और मनसा, चन्द्राभिधानो यति,
प्रेरित हो अनुबाद कार्य करने, की हो गई है-मती॥

(४)

सम्बत विक्रम पञ्च अस्सी अधिके उन्नीस सौमें किया,
है हिन्दी अनुवाद बांच जिसको होता प्रफुल्लित हिया।
हिन्दी पाठक वृन्दसे विनय है 'भिक्षु तिलक' की यही,
करके शुद्ध पढें कदापि इसमें कोई त्रुटि हो रही॥

श्राद्धविधि प्रकरण
समाप्त।

आत्म तिलक ग्रंथ सोसाइटी की मिलने वाली पुस्तकें।

जैन दर्शन,—इस प्रसिद्ध पूर्वाचार्य श्रीमान् हरिभद्र सूरि जी महाराजने छहों ही दर्शनोंका दिग्दर्शन कराते हुये अकाट्य युक्तियों द्वारा जैनदर्शन का महत्व बतलाया है। आरम्भ में जैनधर्मके श्वेताम्बरीय एवं दिगम्बरी मुनियों का आचार वेष भूषा का वर्णन करके फिर जैन दर्शन में माने हुये धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आदि षट् द्रव्यों एवं जीवाजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा मोक्ष, आदि तत्त्वोंका सप्रमाण वर्णन किया है। हिन्दीभाषाभाषी जैन तत्वको जानने को इच्छा वाले जैनी तथा जैनेतर सज्जनों के लिये यह ग्रन्थ अद्वितीय मार्ग दर्शक है। शीघ्र ही पढ़कर लाभ उठाइये। मूल्य मात्र १)

'गृहस्थ जीवन'—इस पुस्तक में सरल हिन्दी भाषा द्वारा ग्रहस्थाश्रममें प्रवेश करनेके सरल उपाय बतलाए गये हैं। सामाजिक कुरीतियोंके कारण एवं तमाम प्रकार की सुख सामग्री होने पर भी मनुष्य किन किस सद्गुणों के अभाव से अपने अमूल्य जीवन को निष्फल कर डालता है इत्यादि का दिग्दर्शन कराते हुये जीवन को सफल बनानेके एवं सुखी बनाने के सहज मार्ग बतलाए हैं। जुदे जुदे परिच्छेदोंमें क्रमसे जीवन निर्माण, स्त्री पुरुष, सासु बहू, स्त्री संस्कार, वैधव्य परिस्थिति, आत्म संयम, एवं सच्चरित्रतादि अनेक उपयोगी विषयों पर युक्ति दृष्टान्त पूर्वक प्रकाश डाला गया है। यह पुस्तक जितना पुरुषों के लिये उपयोगी है उससे भी अधिक स्त्रियोंके लिये उपयोगी है। अतः घरमें स्त्रियों को तो यह अवश्य ही पढ़ाना चाहिये, पक्की जिल्द सहित मूल्य मात्र १।)

स्नेहपूर्णा—यह एक सामाजिक उपन्यास—नोवेल है। इसमें उत्तम मध्यम और जघन्य पात्रों द्वारा कौटुम्बिक चित्र खींचा गया है। घरमें सुसंस्कारी स्त्रियोंसे किस प्रकार की सुख शान्ति और सारे कुटुम्ब को स्वर्गीय आनन्द मिल सकता है और अनपढ़ मूर्ख स्त्रियोंसे कौटुम्बिक जीवन की कैसी विडम्बना होती है सो आबेहूब चित्र दिखलाया है। पुस्तक को पढ़ना शुरू किये बाद संपूर्ण पढ़े बिना मनुष्य उसे छोड़ नहीं सकता। यह पुस्तक भी पुरुषोंके समान ही स्त्रियोंके भी अति उपयोगी है। लगभग सवा दोसौ पृष्ठकी दलदार होनेपर भी सजिल्दका मूल्य मात्र १)

जैन साहित्यमां विकार थवाथी थयेली हानि यह पुस्तक पण्डित बेचरदासजी की प्रौढ़ लेखनी द्वारा ऐतिहासिक दृष्टिसे गुर्जर गिरामें लिखा गया है। श्री महावीर प्रभुके बाद किस किस समय जैन-साहित्य में किस किस प्रकार का विकार पैदा हुवा और उससे क्या हानि हुई है यह बात सूत्र सिद्धान्तोंके प्रमाणों द्वारा बड़ी ही मार्मिकता से लिखी गई है। मूल्य मात्र १)

सुखीजीवन—यह पुस्तक अपने नामानुसार गुणसंपन्न है। यह एक यूरोपियन विद्वानकी लिखी हुई पुस्तक का अनुवाद है। सुखी जिन्दगी बिताने की इच्छा रखने वाले महाशयोंको यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये मूल्य मात्र ॥)

धर सुन्दरी चरित्र,—यह ग्रन्थ साधु साध्वियों एवं लाइब्रेरियों के अधिक उपयोगी है मूल्य २)